प्रकर

माघ : २०५० [विक्रमाब्द] :: जनवरी : १९९४ [ईस्वी]

मकर-संक्रान्ति अंक

'प्रकर' का छब्बीसवें
वर्षमें प्रवेश-अंक

अंक-सामग्री

ंक-सामग्री

सम्पादक...
भारती...
काव्य च...

फाल्गुन : २०५० [विक्रमाब्द] :: फरवरी : १९९४ [ईस्वी]

अंक-सामग्री

प्रकर

चैत्र : २०५१ [विक्रमाब्द] :: मार्च : १९९४ [ईस्वी]

अंक-सामग्री

वैशाख : २०५१ [विक्रमाब्द] :: अप्रैल : १९९४ [ईस्वी]

अंक-सामग्री

प्रकर

ज्येष्ठ : २०५१ [विक्रमाब्द] :: मई : १९९४ [ईस्वी]

प्रकर

भाद्रपद : २०५१ [विक्रमाब्द] :: अगस्त : १९९४ [ईस्वी]

"स्वाधीनता दिवस हमें आर्थिक दासतासे मुक्तिकी प्रेरणा दे" की मंगलकामनाओंके साथ

[अनुशीलन-अध्ययन-समीक्षाकी मासिक पत्रिका]

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार
ए-८/४२, राणा प्रताप बाग,
दिल्ली-११०००७.

वर्ष : २६ अंक : १ माघ : २०५० [विक्रमाब्द] जनवरी : १९९४ [ईस्वी]

स्वर : विसंवादी

भारतीय साहित्यमें आत्मसाक्षात्कारकी प्रवृत्तिका विकास

भारतीय साहित्यमें यूरोपीय चिन्तनका प्रवेश और उसका प्रबल रूपसे साहित्यमें अपना स्थान बना लेना किसी सहज-स्वाभाविक सम्पर्कका परिणाम नहीं है न स्वैच्छिक ही; बल्कि ब्रिटिश सत्ता की भारतीय मानसिकताको परिवर्तित कर एवं उसमें हीन-भावना उत्पन्नकर सामाजिक-सांस्कृतिक स्तरपर भारतीय श्रेष्ठता, उसकी साहित्यिक, बौद्धिक ज्ञान-विज्ञान-आध्यात्मिक उच्चता और पारम्परिक वरीयता को प्रायोजित एवं शासकीय अनिवार्य शिक्षा पद्धति द्वारा समाप्त करनाथा। अपने इस आयोजनमें वे सफल हुए, समाजमें रिक्तता उत्पन्न हुई, क्योंकि बौद्धिक वर्ग परम्परागत, युगोंके श्रम-निरीक्षण-परीक्षण से अर्जित इतिहास-ज्ञान-विज्ञान-साहित्यसे कट गया और उस शून्यतासे, जोभीआयातित बौद्धिक उपहारके रूपमें उसे प्राप्त हुआ, बह उसका केवल अनुकरणही कर सका। अनुकरण, अर्थात् उपहार रूपमें प्रस्तुत बौद्धिक उपहारको देख-देखकर, आश्चर्य स्तब्ध होकर विमुग्ध भावसे, किसी आलोचन-प्रत्यालोचनसे कन्नी काटता हुआ, उसी चिन्तनके पीछे-पीछे चलने लगा। असंदिग्ध रूपमें कुछ अपवादभी है, पर अपवाद-परम्परा के अनुसार उनकी संख्या बहुत कम रही और प्रायः सामाजिक-सांस्कृतिक-साहित्यिक स्तरपर अप्रभावी ही रहे। जिस काल-बिन्दुसे हम अपनी स्वतंत्रताकी घोषणा करतेहैं, वह हमारी किसी नवीन चेतनाके साथ नहीं, अपितु ब्रिटिशकालके इतिहास-ज्ञान-विज्ञान-साहित्यसे पूर्वापेक्षया कहीं अधिक आसक्ति और संलग्नताके साथ पनपने लगा। ब्रिटिश कालमें अन्तश्चेतनाके जो स्फुलिंग स्मृतिवशात् यदा-कदा प्रस्फुटित हो उठतेथे, उन्हें भी 'नामसे', स्वतंत्र देशकी अन्तश्चेतनासे मिटानेके प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रयत्न और अधिक सबल हो गये, क्योंकि आपाद् मस्तक यूरोपीय चिन्तनसे होते हुए भी वे यह कहनेमें समर्थ हो गयेथे कि देशको यहांकी सभ्यताको—संस्कृतिको—इतिहास ज्ञान विज्ञान कला साहित्यको आधुनिकतम बनाना उनका प्रथम और उच्चतम ध्येय है। यह उच्चतम ध्येय, गत ४५ बर्षके आकलनके आधारपर मात्र, अनुकरण रूपमें सामने आयाहै। राजनीति-अर्थतन्त्रसे लेकर ज्ञान-विज्ञान-कला-साहित्य तथा अन्य क्षेत्रोंमें हमारी आधुनिकता जिस रूपमें उद्भूत होकर प्रत्यक्ष हुईहै, वह प्रबल रूपसे अधिकतर अनुकरण है जो 'इस देशकी महती जीवनधारामें आत्मरूप हो गयीहै। जब हम अनुकरणके 'जीवनकी महती जीवनधारामें आत्मरूप' होनेकी चर्चा करतेहैं तो हमारा मुख्य उद्देश्य उन कृतित्वोंकी ओर ध्यान खींचनाहै जो स्वतंत्र देशकी सत्ताके प्रश्रय, आश्रय और सहयोगसे पनपाहै और सत्ताके बलपर जिसका देशमें एकाधिकार हो गयाहै।

इस अनुकरणी अवतरणके पक्षमें यह अवश्य कहा जा सकताहै कि इस देशके बुद्धिजीवी (पाश्चात्य चिन्तनसे जुड़े) अवश्य विभिन्न प्रकारके वादों, आन्दोलनों, सामाजिक आवर्तनों-प्रत्यावर्तनोंसे उद्भूत सिद्धान्तोंसे परिचित हुए। ऐसेभी वर्ग इन बुद्धिजीवियोंमें उत्पन्न हुए जो इन्हींको रट-रटकर प्रत्येक अवसरपर उन्हें दोहराते रहे जिससे देशकी अन्तश्चेतनाको प्रभावितकर उन्हींको देशकी जीवनधाराका

ही अंग बना सकें। परन्तु पिछले कुछ दशकोंमें जो स्थिति उभरकर आयीहै उससे प्रतीत होताहै कि चिन्तन-आलोचन-प्रत्यालोचनके साथ परम्पराके जो यथार्थ उभरकर आयेथे, वे सनातन चिन्तनसे जुड़ेथे। वे भारतीय परम्पराके बुद्धिजीवियोंकी प्रतिभाको इस धरतीसे जुड़ी जीवन्तताके कारण प्रेरित करनेमें समर्थ रहे। यह धरती प्राचीन है, प्राचीनताकी अनुभूतियां भी इसके कण-कणमें समायीहैं। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होताहै कि अनुभूतियोंकी यह प्राचीनता उसीमें रच-बसकर उन्हें सनातन बना देतीहैं और कोई संवेदनशील मनीषी उसी सनातनतासे निमंत्रित होकर उन्हें अभिव्यक्ति प्रदान करताहै। हिन्दीके सुविख्यात कवि नरेश मेहताको, आजके परिवेशमें, हम उन्हीं पंक्तिपावनोंमें गिनना चाहेंगे।

वस्तुत: हम यहां साहित्यके उस प्रत्यावर्तनकी ओर ध्यान खींचना चाहतेहैं, जिसकी छटपटाहट तो पर्याप्त समयसे लक्षित कीजा रहीथी, परन्तु अभिव्यक्तिके स्तरपर उसकी पहचानको स्वीकार ही नहीं कियाजा रहाथा। यह स्थिति केवल हिन्दीमें नहीं, अन्य भारतीय भाषाओंकी भी है। इसका परिणाम यह हुआ कि 'नाम' और 'भावभूमि' पौराणिक स्वीकार कर भी उसे आधुनिकताके आवरणमें उपस्थित करनेकी आवश्यकता कृतिकारोंको प्रतीत हुई क्योंकि आधुनिकताके व्यामोहसे वे अपनेको पृथक् रखनेमें समर्थ नहीं हुए। उड़िया कवि रमाकान्त रथकी 'श्रीराधा' की राधाको प्रयत्नपूर्वक पुराण-प्रसिद्ध राधाको आधुनिकाके रूपमें चित्रित करनेका उत्साह है, यद्यपि इस राधाकी प्रगाढ़ प्रेमानुभूति उसे पौराणिक राधासे बहुत दूर लें जानेमें समर्थ नहीं होती। फिरभी आत्मनिष्ठा, निरपेक्षता, निर्वैयक्तिता इसकी विशेषता है। इसीके आधारपर समीक्षकोंकी दृष्टिमें यह आधुनिक कृति कुछ मध्यकालीन अथवा अनाधुनिक होजातीहै, क्योंकि कवि अपनी तल्लीनता तथा रहस्यवादका व्याख्याता और समर्थक जान पड़ताहै। परन्तु असाधारण शाश्वत शुद्ध प्रेमकी ओर उन्मुखता, कामका ऊर्ध्वान्तिरण प्राचीन परम्पराका नवमूल्यायन है। राधाको आधुनिक युगमें अवतीर्ण करनेका प्रयास धर्मवीर भारतीके काव्य 'कनुप्रिया' में भी है। परन्तु राधा जन-जनके हृदयमें मूल राधा ही बसीहै। गतिशील युगका प्रवाह अथवा प्रगतिशीलता उसे उसके मूल रूपसे विलग नहीं कर सकी वह आजभी पुराणोंकी ही राधाके रूप में सुरक्षित है। इस प्रकारके प्रयोग केवल हिन्दी-उड़िया तक सीमित नहीं हैं बल्कि अन्य भारतीय भाषाओंमें भी हुएहैं। वस्तुस्थिति यह है कि आजकी प्रवृत्ति भारतीय चेतनाको बहिष्कृत करनेकी नहीं अपितु उसकी अन्तश्चेतनाको कृतिकारकी अपनी अन्त:सामर्थ्य के अनुसार प्रस्तुत करनाहै और आजके वातावरण में सहृदयको अपनी परिधिके निकट लानाहै।

'श्रीराधा' और 'कनुप्रिया' से भिन्न स्तर और शैलीकी, परन्तु सनातन रूप-रंगके साथ आधुनिक भाषा-शिल्पकी काव्य-कृति 'इसी जन्ममें पुनर्जन्म'[1] की चर्चा इसलिए प्रासंगिक प्रतीत होतीहै क्योंकि "वैदेशिक चिन्तनसे प्रत्यावर्तन" की सामग्री ही केवल प्रचुर मात्रामें यहां विद्यमान नहीं है अपितु प्रगतिशीलता और प्रतिबद्धताकी भी व्यंग्यात्मक स्थितिका प्रतिपादन है।"... मेरे कवि और कृतिकर्मीजी/ अपनेही गाढ़ की/ अन्दरूनी आगके जमालसे/ क्या तुमने कभी भी अपनीही रात तोड़ीहै ?... कलमके हलके फालसे/ क्या तुमने कभी भी / जनमन-परती गोड़ी है ?... राष्ट्रैक्य-प्रेमके इस्पाती बांधोंसे/ क्या तुमने कभी भी प्रांतज धारा मोड़ीहै ? ..." मानव-मानवमें ब्रह्मकी प्रतिष्ठा करनेवाली और सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके साथ तादात्म्य स्थापित करनेवाली भारतीय दृष्टिसे प्रेरित कवि की बृहत्तर जीवन-मूल्योंकी उद्घोषणा है : "कौन हो पायेगा/ विश्व पुरुष ऐसा/ कि प्यारके विस्तारमें/ रूह उसकी होगी भू / मन असीम गगन/ उदर सागर गंभीर/...ललाट नव विहान/ नयन करुणायन/ कंठ सरगम-संगम/ वाणी सर्व कल्याणी/ भुजाएं हरित दिशाएं/ हाथ जगन्नाथ/ चरण मंगलाचरण। रोम समरस लोग।...दृष्टि सारी सृष्टि/और/पिण्ड सकल ब्रह्माण्ड।' इसके विपरीत आजकी प्रतिबद्ध कवितामें आवेग-आक्रोश-क्षोभ-क्रोध-विद्रोह-आतंक महिमामंडित हैं, इससे कविताका रूप क्षणजीवी होगया क्योंकि आवेग आदि स्वयं क्षणजीवी हैं। इसलिए विदेशोंसे भारतयात्रा पर आयी क्रुद्ध कविता भी क्षण परिवर्तनके साथ विलीन हो गयी। इस क्षणजीवी काव्यके युगमें जन्म लेनेवाले कविको "इसी जन्ममें पुनर्जन्म" लेकर इस

१. दिल्ली विश्वविद्यालयकी 'संस्कृति परिषद्' द्वारा इस काव्य कृतिपर आयोजित परिचर्चाने हमारा ध्यान खींचा, जो हमारे चिन्तनकी अनुकूलतामें सहायक हुई।

देशकी चेतनासे जुड़े पुन: पुन: जन्म लेकर आधुनिक चुनौतियोंसे जूझनेकी क्षमताका स्मरण करना पड़ा : "मनस्तलकी तरलता/ संभाले हुएहै / हरी भरी घास ।"

साहित्यमें आत्मसाक्षात्कारका प्रसंग उठनेपर मुख्य समस्या तादात्म्यकी होतीहै । यह सामान्य अनुभवकी बात है कि वैदेशिक चिन्तनसे देशके जनसाधारणका तादात्म्य स्थापित नहीं होपाया । उस चिन्तनमें निमग्न कुछ मुट्ठीभर लोगोंका एक ऐसा सिहानस्थ वर्ग है जो जन साधारणके सामान्य सम्पर्कमें भी नहीं है, तादात्म्यकी स्थितिकी चर्चा ही कैसी हो सकती है ? इस वर्गके साहित्यमें जनसाधारण आत्मसाक्षात्कार इस कारण नहीं कर पाता क्योंकि जीवनधारा का दो विपरीत दिशाओंका प्रवाह उन्हें एक दूसरेके निकट नहीं आने देता, तादात्म्यका तो प्रश्न उठता ही नहीं । इसलिए ऐसे समान धरातलकी आवश्यकता होती हैं जहां आत्मसाक्षात्कारके लिए वे एक दूसरेके निकट आ सकें । यह समान धरातल भारतीय चिन्तन और दृष्टि प्रदान कर सकताहै क्योंकि युगोंके ऊहापोह के बाद ही विभिन्न आकांक्षाओं, प्रवृत्तियों, अभ्यासों, कर्मकाण्डों, धारणाओं, चिन्तनोंमें तादात्म्यकी भावना और संतुलनकी है जिससे वे सीमान्तक स्थितियोंमें भी एक दूसरेके निकटवर्ती हो सकें ।

'आत्मसाक्षात्कार' और 'समान धरातल' की चर्चा करते हुए राजनीतिक-आर्थिक विवशताओं, सत्ता द्वारा शिक्षाके माध्यमसे बलात् थोपे जानेवाली दृष्टियों एवं चिन्तनोंके आक्रमणों और आधुनिकताके भ्रममें अपनायी जानेवाली विकृतियोंके आकर्षणोंसे उत्पन्न भ्रान्तियोंको भी ध्यानमें रखना आवश्यक है । ब्रिटिश सत्ताने अपने उत्तराधिकारियोंका चुनाव बहुत सावधानी और चतुराईसे कियाथा, उनके विभाजनके चिन्तनोंपर पुनर्चिन्तन, परीक्षा और उनके प्रभावों-परिणामोंपर बिना ध्यान दिये केवल अनुकरण तक सीमित रहनेवाले, केवल प्रचार और आत्मप्रवंचनाके माध्यमसे अपनेको स्थापित करनेवाले व्यक्तियों, संस्थाओं-दलोंके चुने हुए आत्मरतिमें पगे 'प्रतिभावान्' लोगोंको ही सत्ता सौंपी । ब्रिटिशकालकी वैचारिक धारासे इन पैंतालीस वर्षोंमें, ब्रिटिशकालकी प्रशासनिक व्यवस्थामें दीक्षित लोगोंकी लोह-जकड़से मुक्ति पानेको आतुर एवं इसी देशके सांस्कृतिक जीवनका स्वप्न लेनेवाले साहित्यकर्मियोंका आत्मसाक्षात्कारकी दिशा में बढ़ना अपने आपमें चमत्कारिक कार्य है ।

ऐतिहासिक स्तरपर यहभी स्मरणीय है कि ब्रिटिश कालमें ही अनेक क्रान्तदर्शियोंने आत्मसाक्षात्कारके लिए जन-साधारणको प्रेरित कियाथा । उस समयकी सर्वग्रासी ब्रिटिश नीतियोंने इस वर्गके मनीषियोंको भारतीय परिदृश्यसे विसर्जित करनेके शक्तिभर प्रयत्न कियेथे, परन्तु वे इस सांस्कृतिक जन-आन्दोलनको विचलित नहीं कर सके, बल्कि इसका विस्तार ही होता गया । विडम्बना यह हुई कि ब्रिटिश सत्ताके उत्तराधिकारी राजनीतिक-आर्थिक प्रशासनिक कुशलतामें भलेही अपने पूर्व ब्रिटिश स्वामियोंको मात न दे पायेहों, परन्तु अनुकरणी वृत्ति और प्रवृत्तिमें वे अपने इन स्वामियोंसे कहीं आगे निकल गये और इस अपनेही देशकी भूमिसे जुड़नेकी प्रवृत्ति, 'समान धरातल' पर समान रूपसे खड़े हो सकनेकी आकांक्षा, आत्म-साक्षात्कारकी आन्तरिक उमंगका जड़मूलसे अस्तित्व मिटा देनेके लिए ऐसे संकल्पशील, राजनीतिक-आर्थिक-प्रशासनिक स्तर पर शक्तिशाली वर्गका संगठन करनेमें समर्थ होगये जो आज मन-बुद्धि-विचार-कार्य सभी दृष्टियोंसे इस देशमें नहीं, सुदूर यूरोपीय कल्चरके देशोंमें बसताहै और केवल उन्हीं देशोंकी आवश्यकताओं-आकांक्षाओंके लिए अपने सर्वस्वकी आहुति दे रहाहै । इसी वर्गका प्रचार-तन्त्र इतना प्रबल है कि वैचारिक स्तरपर आदान-प्रदानको वह उसी सीमातक समर्थन प्रदान करताहै अथवा प्रोत्साहन देताहै जहांतक यह आदान-प्रदान यूरोपीय कल्चरकी दिशामें गतिशील होताहै, 'समान धरातल' पर समान रूपसे खड़े होनेकी वह तभी अनुमति देताहै जब वे उनके राजनीतिक-आर्थिक आयोजनोंमें सहायक होतेहैं अन्यथा वह सावधानी और चतुराईसे इन 'समान धरातल' के समान लोगोंको विभिन्न पंथों, सम्प्रदायों, जातियों, दलोंमें बांटकर उन्हें आत्म-विनाशकी दिशामें धकेल देताहै । इस आत्म-विनाशकी लीलाका ये कर्ताधर्ता देशके मूल्यपर आत्म-सन्तोष प्राप्त करतेहैं । वे प्रतिबद्ध हैं, प्रतिदानके माध्यमसे बंधे हैं ।

इस प्रकारकी सर्वग्रासी जटिल स्थितिमें जन जागरणका तात्कालिक उपाय भारतीय साहित्यके आत्म-दर्शन और आत्मसाक्षात्कारके रूपको जागृत करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि न केवल व्यक्तिगत और समूहगत रूपसे यह आकर्षक है, निरापद भी है । हमारा विश्वास है कि भारतीय साहित्यमें जो यह नवीन प्रवृत्ति जागृत हुईहै, उसका निरन्तर विकास होगा । □

दौलत कवि ग्रन्थावली[1]

सम्पादक : डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित
समीक्षक : डॉ. गजानन चव्हाण

डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित हिन्दीके उन इने-गिने विद्वानोंमें विशिष्ट हैं जिन्होंने एकाधिक क्षेत्रोंमें मौलिक चिन्तन एवं लेखन द्वारा छठे दशकके आरम्भसे अबतक हिन्दी समीक्षाको बहुत बड़ा योग प्रदान कियाहै। वे काव्य-शास्त्रमें रस-सिद्धान्तके विशेषज्ञ, साहित्यमें आधुनिक तथा मध्ययुगीन काव्यके गंभीर अध्येता एवं मर्मज्ञ रहेहैं।

विवेच्य कृति 'दौलत कवि ग्रंथावली' उनके द्वारा संपादित प्राचीन ग्रन्थोंकी सरणिमें चौथे क्रमपर आतीहै। इसके पूर्व क्रमशः 'बेसि क्रिसन रुक्मणी री', 'हरिचरण दास ग्रंथावली (काव्य-खण्ड)', तथा शिवचंद कृत काव्य-दोष निरूपक ग्रन्थ 'प्रताप पचीसी' के सुसंपादित संस्करण सन् १९५३ से १९८० ई. के बीच प्रकाशमें आ चुकेहैं। हरिचरणदास तथा शिवचंद कृत उक्त कृतियोंके समान ही 'दौलत कवि ग्रन्थावली' भी हिन्दी साहित्यकी अज्ञातप्राय और साहित्येतिहासोंमें से केवल एकाधमें उल्लिखित कविकी अविवेचित कृतियोंका प्रथम प्रकाशन है। कविवर वृंदके प्रपौत्र दौलतराम उर्फ दौलत कविको प्रामाणिक रूपमें सामने लानेकी डॉ. दीक्षितकी यह पहल ऐतिहासिक मूल्य रखतीहै।

अप्रकाशित प्राचीन ग्रंथोंके संपादन-कार्यमें बहुत-सी कठिनाइयोंसे जूझना पड़ताहै। मूल कृतिका अन्वेषण, प्रतिलिपियोंकी खोज, एकाधिक प्रतिलिपियोंमें पाठभेदकी स्थितिमें पाठनिश्चिति आदि कार्य समय, कष्ट तथा अर्थ जैसी बाह्य अनुकूलताओंकी मांग तो करतेही हैं, साथही, साहित्य, भाषा, लिपिसे संबद्ध सभी पक्षोंपर संपादकके असाधारण अधिकारकी अपेक्षा करते हैं। यह कार्य संपादकसे औरभी मनोनिवेशकी मांग करताहै जब उसमें पाठनिश्चितिके अतिरिक्त रचयिता के जीवन-वृत्त विषयक भ्रांतियोंको दूर करने, ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक परिप्रेक्ष्यमें उसके कृतित्वकी अस्मिताको पहचानने या संबंधित साहित्य-धारामें रचयिताके अवदानको अधोरेखित करनेका अतिरिक्त भार भी अन्तर्भूत हो जाताहो। डॉ. दीक्षितने इसी प्रकारके परिपूर्ण संपादन-कार्यके लक्ष्यको सामने रखकर 'दौलत कवि ग्रंथावली' का संपादन कियाहै। उन्होंने दौलत कविकी प्राप्त रचनाओं—'रस प्रबोध' एवं 'रितुसुखसार'—को इस कृतिके माध्यमसे हिन्दी साहित्य-संसारके सम्मुख रखाहै।

'दौलत कवि ग्रंथावली' की, डॉ. दीक्षित द्वारा लिखी गयी विस्तृत भूमिकामें छोटे-छोटे छह प्रकरण हैं जिनमें क्रमशः कवि-परिचय, कविकी रचनाओंका परिचय, 'रस प्रबोध' के संस्कृत आधार ग्रन्थ, उपजीव्य ग्रन्थोंसे 'रस-प्रबोध' की मौलिकता, दौलतका कवित्व और पाठ-संपादन विधिपर विवेचन प्रस्तुत किया गया है। भूमिका भागसे स्पष्ट होताहै कि संपादकका ध्यान अधिक सूचनाएं देनेकी अपेक्षा निर्भ्रांत सूचनाएं देनेपर अधिक है। यही कारण है कि कवि-जीवन-वृत्तके विविध पक्षों तथा रचना-परिचयके विविध पहलुओंको लेकर इतिहास-ग्रंथों एवं शोध-प्रबंधों द्वारा जो भ्रम फैलाये गयेहैं, 'दौलत कवि ग्रन्थावली' की भूमिकामें उनका तर्कसम्मत निराकरण किया गयाहै। सार-असार के विवेकपर आधारित सामग्रीका चयन, छोटे-छोटे उपविषयोंमें सामग्रीका विभाजन, सरल एवं स्पष्ट निवेदन, विवादातीत साक्ष्यके रूपमें अन्तःसाक्ष्यका अधिकाधिक उपयोग, सप्रमाण प्रतिपादन, तथ्याधारित निष्कर्ष तथा सूक्ष्म विवेचन-दृष्टि डॉ. दीक्षितकी संपा-

---

१. प्रका. : अनुसंधान संस्थान, डी. पी. रोड, औंध, पुणे-४११००७ (महाराष्ट्र)। पृष्ठ : १६+१७१; डिमा. ९३; मूल्य : ५५.०० रु.।

दन-कलाकी विशेषताएं हैं। उदाहरणार्थ, 'भूमिका' भागके अन्तर्गत 'दौलत और भानुदत्त तथा दौलतकी स्वतंत्रता' शीर्षक प्रकरणमें डॉ. दीक्षितने भानुदत्त कृत 'रस मंजरी' तथा 'रस तरंगिणी' और दौलत कृत 'रस प्रबोध' को बहुतही सूक्ष्मतासे देखकर काव्य-शास्त्रकर्ता के रूपमें दौलत कविकी स्वतंत्रताके विविध पहलुओंको दर्शायाहै। "यह स्वतंत्रता भी कई प्रकारकी है। यथा, पूर्वप्रचलित तथा भानुदत्त द्वारा स्वीकृत पारिभाषिक नामोंमें परिवर्तन करना, जहां भानुदत्त लक्षण या उदाहरण नहीं देते वहां लक्षण या उदाहरण देना अथवा इसके विपरीत भानुदत्त द्वारा लक्षण-उदाहरण दिये जानेपर भी दौलतका इन्हें न देना; कुछ स्थानोंपर भानुदत्तके अनुसार चेष्टादिका वर्णन न करना, कहीं भेदोंका उल्लेख न करना अथवा भेदवर्णनमें भानुदत्तका अनुकरण न करना; लक्षणोंमें स्वतंत्रता बरतना या अंशतः अनुवाद करना आदि।" (पृ. २७)।

भूमिका भागके 'दौलतका कवित्व' शीर्षक प्रकरण में डॉ. दीक्षितने रस-भाव-व्यंजना, अलंकार-निर्वाह, भाषाधिकार तथा छंद-योजनाके धरातलपर दौलत कवि के कवित्वको परखाहै। यह परख करते हुए उन्होंने बराबर ध्यान रखाहै कि कहीं रसयुक्त प्रसंगोंके केवल उल्लेख मात्रके कारण यह जांच नीरस एवं गिनती मात्र न रह जाये। यही कारण है कि उन्होंने दौलतके 'रस प्रबोध' और विशेषकर 'रितुसुखसार' में प्राप्त मार्मिक प्रसंगोंकी व्याख्या कर उसकी रसात्मकताको उद्घाटित कियाहै। दौलत कविकी कविताका उक्त आधारोंपर किया गया विश्लेषण कविकी अस्मिताको उजागर करनेकी दृष्टिसे अत्यन्त उपयोगी है।

'रस प्रबोध' की चार प्रतिलिपियां प्राप्त हुईहैं। इनमें पाठ, शब्द तथा वर्तनीके स्तरपर भेद मिलताहै। ऐसी स्थितिमें एक संपादन-विधि निश्चितकर उसके उपयोजनसे पाठ-निश्चिति करनी पड़तीहै। डॉ. दीक्षित ने भूमिकामें, उनके द्वारा अपनायी गयी विधिकी भी विस्तृत चर्चा कीहै जो प्राचीन ग्रन्थोंके संपादन-कार्यमें रूचि रखनेवालोंके लिए पथदर्शक एवं उपयोगी सिद्ध होगी।

जैसाकि पहले कहा गयाहै, डॉ. दीक्षितने 'दौलत कवि ग्रन्थावली' में दौलत विरचित 'रस प्रबोध' तथा 'रितुसुखसार' का सटिप्पण संपादन कियाहै। 'रस प्रबोध' शृंगार-रस निरूपक लक्षण ग्रन्थोंकी परम्पराकी रचना है। इसमें नायक-नायिकाके भेदों, लक्षणों एवं उदाहरणोंके अतिरिक्त बैसिक, सखा, उपपति, सखी, दूती आदिके लक्षण-उदाहरण भी ग्रथित किये गयेहैं। चूंकि शृंगार-रस ही इस रचनाका मुख्य प्रतिपाद्य है, इसमें शृंगारसे संबंधित अन्य विषयों—दर्शन, भाव, स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव, हाव—के लक्षण-उदाहरणोंका अन्तर्भाव स्वाभाविक है। इसमें वियोगके प्रकारों एवं दस-दशाओंके लक्षण-उदाहरण भी दिये गयेहैं। दोहाकी एक पंक्तिमें लक्षण तथा दूसरी पंक्तिमें उदाहरणकी पद्धतिको अपनाया गयाहै। आवश्यकता पड़नेपर एकाधिक दोहा छंदोंमें लक्षण और उसके पश्चात् उदाहरण दिये गयेहैं। 'रस प्रबोध' की विषय-सामग्री अध्याय अथवा प्रकाशमें विभाजित न कर शीर्षकोंमें विभाजित की गयीहै। (उदाहरणार्थ—'अथ नायिका लच्छिनं', 'अथ चतुर्विध नायिका', 'अथ अष्ट नायिका' इ.) 'इति अष्ट नायिका' के ढंगपर समाप्तिकी सूचना दी गयीहै। रचयिताने 'प्राचीननि परमानि' (पृ. ९६), 'ग्रन्थनि' (पृ. ११३), 'कविजन' (पृ. ११३) कहकर अथवा कहीं-कहीं स्पष्टतः लेखक या ग्रन्थका नाम लेकर अपने प्रतिपादनके आधारका संकेत दियाहै। लक्षण और उदाहरण स्पष्ट हैं।

संपादक डॉ. दीक्षितने 'रस प्रबोध' के प्रायः प्रत्येक दोहेको लेकर टिप्पणी दीहै। टिप्पणीमें दो भाग स्पष्टतः लक्षित कियेजा सकतेहैं—१. पाठभेद तथा २. टिप्पणी। पाठभेदके अन्तर्गत स्पष्ट किया गयाहै कि 'रस प्रबोध' की अन्यान्य प्रतियोंमें कौन-सा पाठ मिलता है। टिप्पणी भागमें डॉ. दीक्षितका व्यापक अध्ययन एवं तुलनात्मक पैनी दृष्टि झलकतीहै। उन्होंने अधिकतर दोहोंकी टिप्पणियोंमें दौलत कवि द्वारा निरूपित लक्षण-उदाहरणका स्रोत बतायाहै। उन्होंने कई स्थानोंपर संस्कृत तथा हिन्दीके आचार्य कवियों द्वारा निरूपित सामग्रीके साथ दौलतकी मान्यताओंकी तुलना कीहै। यह तुलना वर्ण्य-विषयके नामकरण, लक्षण, उदाहरण, प्रकार, संख्या आदि बिन्दुओंको आधार बनाकर की गयीहै। चूंकि भानुदत्तके दो ग्रंथ—'रस मंजरी' एवं 'रसतरंगिणी'—'रसप्रबोध' के उपजीव्य ग्रंथ हैं, यह तुलना अधिकतर इन्हीं ग्रन्थोंके साथ की गयीहै; फिर भी आवश्यकतानुसार भरत मुनि, रूद्रट, भोज, शिङ्गभूपाल, विश्वनाथ, धनंजय, रुद्रभट्ट, शारदातनय, वाग्भट, पंडितराज जगन्नाथ आदि संस्कृत आचार्यों

तथा चिन्तामणि, केशवदास, देव, मतिराम, भिखारीदास, पद्माकर, कुमारमणि, कृपाराम, तोष, बेनी प्रवीण, रसलीन, रहीम सुन्दर, नन्दराम, लच्छिराम, प्रताप नारायण, बिहारीलाल भट्ट, दास, भानु आदि हिन्दी आचार्य-कवियोंके द्वारा किये गये निरूपणके साथ भी तुलनाकर संबंधित मुद्देपर मतभेद, मतैक्य, उपजीव्य ग्रंथोंसे ग्रहण अथवा त्याग विषयक स्थितिकी सूचनाएँ दी गयीहैं। ये सूचनाएँ "दौलत कविके अवदानको समझने और संबंधित विषयको सुविस्तृत ज्ञान सहित आत्मसात् करनेमें" निश्चय ही उपयोगी हैं।

'दौलत कवि ग्रन्थावली' में समाविष्ट दूसरी रचना 'रितुसुखसार' ऋतुवर्णनसे संबंधित है। इसके आरंभिक तीन दोहोंमें मंगलाचरण, आश्रयदाता एवं ग्रन्थ-परिचय मिलताहै। बादमें कुल ४८ सवैयोंमें क्रमशः छह ऋतुओंका वर्णन किया गयाहै। प्रत्येक ऋतुका वर्णन अष्टकमें किया गयाहै। दो सवैये हास्य रसके हैं। अंतिम तीन दोहोंमें कवि-परिचय तथा रचना-काल दिया गयाहै। काव्य-रूपकी दृष्टिसे इसे 'काव्य-प्रबन्ध' तथा छंद-संख्याकी दृष्टिसे 'पचासा' कहा जा सकताहै। कविने सवैयाके तीन प्रकारों—मत्तगयंद, किरीट तथा दुर्मिल—को अपनायाहै।

ऋतुवर्णनसे संबंधित होनेपर भी 'रितुसुखसार' में किसीभी ऋतुका समग्र एवं प्रकृत रूप नहीं आ पाया है। उदाहरणार्थ, शरद्-वर्णनमें चांदनीकी बिछायत, सुन्दर कमल पुष्प, प्रफुल्लित हंसावलीको मात्र पृष्ठभूमि में रखा गयाहै। ये उद्दीपनका कार्य करतेहैं। कविका मन अधिकतर प्रियतम और प्रियतमाके रूप, वियोग-जन्य दुःख, मिलनातुर नायिकाकी अभिलाषा, शरद् चाँदनीकी पृष्ठभूमिपर प्रेमी युगलके मिलन-सुख आदि के वर्णनमें ही रमाहै। यही स्थिति अन्य ऋतुओंके वर्णनमें देखी जा सकतीहै। अतएव संपादक डॉ. दीक्षित का यह मत कि 'रितुसुखसार' ऋतुओंका प्रकृत रूप उपस्थित करनेके लिए नहीं, बल्कि दम्पती अथवा प्रेमी-प्रेमिकाकी रसकेलिके सन्दर्भमें सुख-विलासका चित्रण करनेके लिए रचा गयाहै", सहज स्वीकार्य हो जाता है। स्वतंत्र कल्पना शक्ति, शब्द-चातुर्य, अलंकार-योजना-कौशल, यमक तथा अनुप्रासके अनूठे प्रयोग, भावोत्कर्षमें सहायक सहज-भाषापर अधिकार 'ऋतुपुख सार' के रचयिताकी विशेषताएँ हैं। डॉ. दीक्षितने 'भूमिका' भागमें दौलत कविकी इन विशेषताओंपर सोदाहरण प्रकाश डालाहै। संपादित मूल पाठके साथ पादटिप्पणियोंमें कठिन शब्दोंके अर्थ तथा श्लेष, यमक के संकेत दिये गयेहैं।

'दौलत कवि ग्रंथावली' के अंतमें तीन परिशिष्ट भी दिये गयेहैं जिनमें क्रमशः सवेठा (दौलतकी जाति) के सम्बन्धमें जनगणना रिपोर्ट, 'रस प्रबोध' एवं 'रितुसुखसार' का प्रतीकानुक्रम, व्यक्ति नामानुक्रमणिका, ग्रन्थानुक्रमणिका समाविष्ट हैं। 'रस प्रबोध' की प्रतिलिपियोंके आरम्भिक एवं समाप्ति भागकी फोटोस्टेट कापियां भी जोड़ दी गयीहैं। मूल संपादित पाठ मोटे टाइपमें मुद्रित किये जानेके कारण दोनों रचनाओंके मूल पाठ सहज सुपाठ्य बन गयेहैं। बढ़िया कागजपर निर्दोष मुद्रण, आकर्षक आवरण पृष्ठ इस ग्रन्थावली की अन्य उपलब्धियां हैं। कुल मिलाकर, रीतिकालीन आचार्य-कवि-परंपराकी एक महत्त्वपूर्ण कड़ीके रूपमें दौलतके कृतित्व जानने-समझनेकी तथा अज्ञातप्राय कविको सामने लानेकी पहलकी दृष्टिसे 'दौलत कवि ग्रंथावली' डॉ. दीक्षितकी एक महत्त्वपूर्ण देन है। मध्य-युगीन हिन्दी कविता तथा हिन्दी काव्य-शास्त्रमें रुचि रखनेवाले साहित्यानुरागियोंके लिए यह ग्रन्थावली लाभप्रद होनेसे संग्रहणीय है। ☐

चिड़िया बम नहीं बनायेगो[1]

कवि : योगेश छिब्बर

समीक्षक : डॉ विजय कुलश्रेष्ठ

कवि अपने चिन्तनके अन्तिम छोरपर अत्यन्त भावुक एवं सम्वेदनशील होताहै और अपनी भावमयतामें गहरी सम्वेदनाके साथ कुछ वस्तुओंको नितान्त मौलिक दृष्टिसे देखता और अनुभवकी अभिव्यक्तिमें भी व्यक्तिसे अधिक 'कुछ' होताहै और जब वह यह कहताहो कि—'आलोचना न कर पाये आदमी/ तो घबराता है / पागल हो जाताहै/ आलोचना संतुलन है आदमीका' (पृ. ४६) तो लगताहै कि आचार्य शुक्लका कवि अपनी समग्र चिन्तनशीलता और सम्वेदनशीलता के निकषपर जिस पागलपनके यथाप्रथित दौरसे गुजरे,

---

१. प्रका. : आशिर प्रकाशन, रामजीवन नगर, चिलकाना रोड, सहारनपुर-२४७००१। पृष्ठ : ११२ + ८; डिमा. ९३; मूल्य : ६०.०० रु.।

वे आलोचक एवं निबन्धकार बन गये। यही स्थिति कुछ अन्य श्रेष्ठ आलोचकों तथा पूर्व कवियोंकी रहीहै। यथार्थ कुछ भी हो, मौलिकता चेरी नहीं होती, न किसी आलोचककी और न कविकी, वह तो स्वत:स्फूर्त सर्जना-शक्ति होतीहै जो अपने इंगित मात्रसे लेखनी उठाकर शब्दको अर्थायित करनेकी प्रेरणा देतीहै। इसीलिए आलोच्य काव्यकृतिकी भूमिकामें डॉ. सुरेश चन्द्र त्यागी कहतेहैं कि—वैचारिक शून्यताकी व्याप्ति और भावात्मक अस्त-व्यस्तताके वर्तमान परिवेशमें कविताकी अनिवार्यता और अधिक बढ़ गयीहै क्योंकि वही जीवनके नये आयामोंसे हमारी पहचान कराती है। (भूमिकाका षष्ठ पृष्ठ)।

आलोच्य काव्य कृति 'चिड़िया बम नहीं बनायेगी' का शीर्षक दीर्घ है पर जिस भव्य धरातलपर इस काव्यकृतिकी सृष्टि हुईहै, इससे लघुकाय शीर्षककी सम्भावना भी नहीं दिखायी देती जो कृतिकी मूल सम्वेदनाका हामी बन सके। कवि युद्ध, विद्रोह और अशांतिके इस घटाटोपमें बार-बार याद दिलाताहै कि मानवको मानव बना रहकर मानवतापर दृढ़ रहनाही अपेक्षित है क्योंकि—'कविताके इस पार पशु है और उस पार देवता' / देवता कविता नहीं करते.../ मनुष्य दुःखको मथकर कविता पा लेताहै (हृदयका नृत्य—भूमिका सप्तम पृष्ठ)।

यही कारण है कि श्री योगेशका कवि पूछताहै—···फिर भारत जीतोगे/ फिर विश्व / उसके बाद क्या करोगे सिकन्दर ?···हाथमें तलवार घोड़ेपर सवार/ कहाँ तक आगे बढ़ोगे सिकन्दर ? (पृ १-२) और फिलासफर अरस्तूका साक्ष्य देकर पूछ बैठताहै कवि —'अरस्तु शोर नहीं है/ फकीर शोर नहीं है।···फिर भी कम नहीं साम्राज्य/ अरस्तूका /···कैसे पार करोगे सिकन्दर/ फकीरके संन्यासका झेलम ? (पृ. ४-५)।

विश्व-शान्तिकामी कवि कुरुक्षेत्र और कलिंगमें से अपना विकल्प चयन करते समय कलिंगकी ओर ही उन्मुख है—कुरुक्षेत्रके बाद है हस्तिनापुर/। कलिंगके बाद क्या है ?···अस्तु निष्कर्षपर आते हुए—'एकमें उभरताहै सिंहासन और एकमें संन्यासी तो —सिंहासन पर बैठूं/ कुरुक्षेत्रसे लौटकर/ इससे अच्छा है/ कलिंग में शवोंके बीच बैठकर सोचूं/ चिन्तनका महायज्ञ किये बिना/ कोई नहीं हो सकता/ चक्रवर्ती सम्राट (पृ. ६)। मानवताके रिश्तोंके सहारे आदमी जीताहै लेकिन कविताके रिश्ते बिखर जानेपर भी आदमी जीताहै। लेकिन कवि कहताहै कि इन रिश्तोंमें गांठ नहीं लग पातीहै अत: कविता फलितार्थ नहीं हो पाती इस जीवन में जबकि—'रिश्तेकी जो गांठ/ मछली लगातीहै पानी से/ उसमें गहरी कविता है (पृ. १२), उसी मानवीय रिश्तोंके सन्दर्भोंमें गहरे उतरकर वह सोचताहै कि आज कहीं जीवनमें विसंगति घर कर चुकीहै तभी तो —'यह जो रिश्तोंकी भटकन है/ रिश्ते बनानेकी/ रिश्तोंके होनेकी,/ और न होनेकी/ यह जो विवशताहै/ रिश्तोंके होते हुए/ यह जो अकेलापन है (पृ. १५) शायद वही उसके होनेका औचित्य बन गयाहै। हालांकि विसंगतियों और संत्रासके क्षणोंमें कवि अनुभव करताहै कि—भेड़ियेका हिरन होजाना एक सम्भावना है/ बहुत क्षीण···बहुत फर्क नहीं है/ भेड़िये और हिरन में/ सिर्फ भेड़ियेमें हिरनका संगीत नहीं है/···हिरन हो जानेकी कोई किताब नहीं लिखी गयी (पृ. १६)। परिणामत: इन्सान प्रेम एवं सहिष्णुताके सन्दर्भ भूल चुकाहै आज। यही कारण है कि कवि युद्ध संघर्ष, शोषणके वर्तमानमें गहराते आतंकके प्रति बहुत सजग है—'चिड़ियाकी किसी पीढ़ीमें/ बुद्धने जन्म नहीं लिया/ चिड़ियाके संसारमें/ कोई ईसा नहीं हुआ/ फिरभी··· चिड़िया नहीं सोचेगी / वह बम नहीं बनायेगी/··· चिड़िया आदमी नहीं है (पृ. २४-२५)।

क्रान्तद्रष्टा कविका स्पष्ट मत है कि क्रान्तियां—'अफसरोंके लाये नहीं आती/ वे धनवानोंके लाये नहीं आती/ हर देशमें क्रान्तियां/ मजदूरोंके कन्धोंपर चढ़कर आतीहैं···और इस तरह/ किसी क्रांतिमें शामिल हूं/ (पृ. ३१-३२) भले ही 'सांप और नेवला', 'कालू और भालू', 'द्रोपदी', 'समाचार', 'तिलस्मी आवाज', 'काली बिल्ली' ऐसी कविताएं हैं जो सम्वेदनशील कविके परिवेशगत यथार्थकी ईमानदार अभिव्यक्ति बनकर पाठकको झकझोरतीहैं और सोचनेपर मजबूर करतीहै कि—देव ऋण, गुरु ऋण/ और पितृ ऋणवाले बच्चेका/ शिशु ऋण है हमपर/ कि हम उसे संस्कृति दें (पृ. ५६), ताकि वह मानवताके सन्दर्भ ग्रहण कर सके। प्रतीत होताहै कि कवि कविताको नारा नहीं, चिन्तन का ऐसा अस्त्र समझकर उसके प्रयोगके लिए प्रतिबद्ध है जो मात्र मनोरंजन न हो, बल्कि सर्जना हो, जो बार बार यक्षप्रश्नसे सामना न हो और—'नसोंमें

बहता खून/ कितना लज्जित होताहै'— से मुक्ति पा सके।

योगेश छिब्बरकी कविताएं, कविताएं भर नहीं है, कवितासे अधिक वे कुछ और हैं जो सम्वेदनशील हृदयको छूतीहैं, आहत भी करतीहैं। कविने इसी संकलनमें अपनी तेरह गजलें भी दी हैं जिनमें रोमानीयतसे हटकर आधुनिक सन्दर्भ, परिवेशगत यथार्थ और मूल्य-संक्रमणता विद्यमान है। गजलकार कहताहै कि—'छोड़ो भी अखलाककी बातें/ इन किस्सोंमें क्या रखाहै (पृ. १००) क्योंकि आज 'रिश्वत लेते पकड़में आये/ रिश्वत देकर पार हुएहैं (पृ. १०१) और इधर एक अर्सेसे बगावतकी कहीं चर्चा नहीं/ मेरी बस्तीमें कोई भी शख्स अब जिन्दा नहीं है (पृ. १०२) 'हम सभी मुजरिम हो गये यारो/ उसने जब चांदको रोटी समझा (पृ. १०४) या फिर 'उसको जिंदा देखकर सारे शहरको डर लगा| इस सियासी दौरमें वो साहिबे किरदार था (पृ. १०६)। कारणभी स्पष्ट करताहै—अब सियासतमें उसे हासिल तो होगा कुछ न कुछ/ साथ मजहबकी किताबें और नारे ले गया (पृ. १०६) है। लेकिन गजलमें इज़हारे इश्कके छींटे तो होंगे ही, वे कहीं कहीं हैं। योगेश छिब्बरकी इस कृतिसे भावी आशाएं जड़ें जमातीहै, काव्य जगत्में उनका स्वागत होगा—ऐसा विश्वास है। भाषा और शैली सहज एवं सुबोध है। सुन्दर व आकर्षक आवरण सहित मुद्रणमें एक मानवीय प्रयास स्पष्ट है। ▢

भूमिजा[1]

कवि : नागार्जुन
समीक्षक : दिगन्त शास्त्री

'भूमिजा' की संरचनाकी परिकल्पनामें सम्भवतः बृहत् रामकथाको एक नवीन दृष्टिसे प्रगतिशील और यथार्थवादी धरातलपर उद्घाटित करनेकी थी, किन्तु, आधुनिक सन्दर्भोंमें लोकधर्मको वैचारिक कसौटीपर परखनेका वह कवि-संकल्प, रामगाथाके विभिन्न मार्मिक प्रसंगोंको ही बांधकर विच्छिन्न होगया। दशरथ-पुत्रोंकी एकान्त साहसिकता और लोकधर्मी संकल्प-शक्ति, नारीकी गरिमा और सामाजिकतामें द्वैत रहित स्थिति, और अधुना नारीकी विवशतामें चिन्तन और विचारकी प्रामाणिकता 'भूमिजा' के केन्द्रमें प्रतिष्ठित है। नामार्जुनका खुला-सजग चिन्तन पुराण-प्रतिरोध नहीं है, वरन् मिथकको आधुनिकतामें प्रतीकीकृत करनाहै। उनकी कविताकी प्रेरक-दृष्टि मात्र मानव-निष्ठ है। रामकथाके लोक धरातलपर, तीन काल खण्डोंकी तत्कालीन स्थितिशीलता और गतिशीलता का तर्कबुद्धिसे मार्मिक चित्रण नहीं है बल्कि सहृदय सामाजिक आत्मसजगताकी अतिमुखर सम्प्रेषणीयता है।

राजतंत्रीय परिसर और राजमहलके परिजन-स्नेह और परिचारकोंके सुरक्षा-बन्धनोंसे मुक्त, दोनों राजकुमार सर्वप्रथम महर्षि विश्वामित्रके साथ कोसल और मिथिलाके अनन्य प्राकृतिक सौन्दर्यको तरुण-सुलभ कौतूहलसे निहारतेहैं, उनसे युद्ध शिक्षा ग्रहण कर यज्ञ-विरोधी राक्षसोंका नाश करतेहैं।

दूसरा प्रसंग है शंकाकुल ऋषि गौतमसे अभिशप्त अहल्याका। भूलुंठित पाषाणवत् अहल्याकी, रामकी सेवा-सुश्रुषासे मुक्ति।

और तीसरा प्रसंग है भूमिजाकी जन्मकथा, और अपमानित परित्यक्ताकी, अपने पुत्रोंके भविष्यकी चिन्ता।

प्रथम प्रसंगमें गंगाके तटपर कोसलके प्राकृतिक वैभवपर मुग्ध रामके कथनका अनुज समर्थन करतेहैं— 'नहीं मिलेगा ऐसा सुन्दर देश/ नहीं मिलेगी ऐसी उर्वर भूमि/ धन्य हमारा कोसल जनपद, धन्य/ कहीं चराचर किंवा त्रिभुवन मध्य/ (पृ. ३७)। दूसरे दिन गंगापार उन्होंने देखा 'आम्र वृक्षकी छायामें आसीन/ मुनि गौतम थे ध्यानमग्न ज्यों मौन /'' और आश्रमके पार देखा एक 'पाषाणवत् भू-लुंठित थी नारी प्रतिमा।" रामने उस मूर्तिको स्पर्श किया सहलाया और 'शिरसे लेकर तलवे तक प्रत्यंग/ लगे फेरने मनोयोगसे हाथ।' यथार्थ-वादी कविके लिए परम्परित अहल्या-उद्धार-प्रसंगका मिथकीय प्रकरण निष्प्रयोजन हो गयाथा। न ठोकरसे और न पाद-धूलिसे, बल्कि मानवीय संवेदनशीलतासे उस मार्मिक घटनाका उद्घाटन किया। अहल्याका 'यातुधानकी लीला-सी वह देह/ हाड़ोंका वह शिलीभूत संसार हिला। नागार्जुनके राम अवतारी पुरुष नहीं,

---

[1] प्रका. : राधाकृष्ण प्रकाशन, २/३८ अंसारी मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १२०; डिमा.; मूल्य : ३५.०० रु.।

लोकधर्मी नर है। पीडितके प्रति सामाजिक-कर्म भावनामें उत्प्रेरित है। उसकी सेवा-सुश्रुषासे परि-प्लावित वह पति-अभिशप्त, पीड़ित नारी, रामका परिचय पूछतीहै। यहां नारी-चेतना, उस विभूतिमें आदिम भावनासे मुक्त, मानव और उच्चाशयित संस्कारोंको देखकर प्रसन्नता प्रगट करतीहै। कविने इस मिथकीय प्रसंगमें सार्वजनिक जीवनानुभवोंका चेतनायुक्त अनुभूति और खुलापन दिखलाया। मुनि-पत्नीने जब कहा कि 'पाकर तेरे कर कमलोंका स्पर्श/ प्राणावंत हो उठा आज पाषाण/' रामने तत्काल प्रति-वाद किया—'नहीं हुईथी अम्ब, आप पाषाण/ नहीं हुई थी अम्ब आप निष्प्राण/'—जिसमें कविकी गहरी चेतना थी, सृजनात्मक कल्पनामें उत्कट विश्वास था और इस सम्प्रेषणीयतामें आधुनिक चिन्तनका प्रखर बोध था।

तीसरे खंडमें सीताकी जन्मकथा, परित्यक्ता नारीकी व्यथा और कलंकिनीके पुत्रोंका भविष्य—आदि कुछ ऐसे प्रसंग हैं जो नारी मनोविज्ञानके पहलुओं, सामाजिक रचनाकी खुली स्वीकृति और मानवीय अर्थको टटोलती संवेदनासे जुड़ेहै।

'होगा शासक कलंकिनीका पुत्र/ प्रजा करेगी क्या इसको बरदाश्त ?/ अपनी मांका यह संक्रमित कलंक/ कैसे होगा इन दोनोंसे दूर।'—में अधुना-नारी, आत्म-ग्लानि और द्विधामें केन्द्रस्थित होकर, अपनी सन्तानकी आर्थिक सुरक्षाका समाधान ढूंढतीहै। नागार्जुनने सीता की अकारण भावोन्मुखतामें खींचतान नहीं की। अधुना-नारीके मानसिक अनावरणमें, उनकी पौराणिक अल-गावकी दृष्टि अपना मूल्य चुका रहीहै।

अन्यान्य टिप्पणियों, संदर्भित लेखों और शब्दार्थ से संयुक्त, इस काव्य-पुस्तिकाको सम्पादक द्वयने किसी पाठ्य-क्रमके निमित्त प्रकाशित कियाहै। ☐

पिरुल[1]

कवि : महेश पाठक

समीक्षक : बीना शैलज

साहित्य समाज, परिवेश एवं व्यक्तिके मध्य सम्बन्धोंकी खोज तथा जीवनकी कटु विषमताओंको प्रतिबिम्बित करनेवाला दर्पण है, जिसमें कविने जीवन की जटिलता, भ्रष्टाचार, अव्यवस्था, विसंगति, विद्रू-पता तथा वैचारिक द्वन्द्वको यथातथ्य रूपमें प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत काव्य-संग्रहपचास कविताओंका संकलन है। प्रारम्भमें 'आशीर्वाद' शीर्षकसे प्रसिद्ध साहित्यकार श्री विष्णु प्रभाकरने भूमिकामें संकलित कविताओंके शीर्षक जोड़कर नवीन शब्द गाम्भीर्य युक्त भाषाका प्रयोग कियाहै।

संकलित कविताओंमें श्री पाठकने सामाजिक विद्रूपताओंसे उद्भूत त्रासदीको उद्घाटित करनेका प्रयास कियाहै। संकलनकी प्रथम कविता 'हे शारदे !' में कविने अविश्वासकी स्थितिसे टूटते-जूझते हृदयकी लालसा व्यक्त कीहै कि—'हे शारदे/ अन्धकारोंमें जूझता/ एक योद्धा हूं / इस कुरुभूमिमें गिर जाऊं/ तो चेतना दे देना।' अधिकांश कविताओंमे विषमता तथा भ्रष्ट प्रजातन्त्र द्वारा उत्पन्न किंकर्तव्यविमूढ़ तथा विफलताकी स्थितिका चित्राकन हुआहै। कविताओंमें जहां एक ओर भ्रष्ट तन्त्रको झकझोरनेका प्रयास है, दूसरी ओर चारों ओर फैली अराजकता, गुंडागर्दी और बेरोजगारी तथा डिग्रीधारी शिक्षासे उत्पन्न घायल जीवनकी अनुभूति है। ऐसी शिक्षा जो मात्र बेरोजगारी, भूख और प्यास जगातीहै—के प्रति कवि मनमें तीखा आक्रोश है। इस शिक्षा-व्यवस्थाने युवावर्ग के व्यक्तित्व एवं भविष्यपर प्रश्नचिह्न लगा दियाहै। 'आजकी खामोशी' तथा 'धूल' कवितामें इसी नैराश्य पूर्ण मन:स्थितिका चित्रण है, यथा—

'सार्टिफिकेटकी खूंटीसे/ टंगा हुआ युवा व्यक्तित्व/ और नीचे जमींमें धंसी पैरोंकी/ कोमल/ राजसी/ उंगलियां तुम्हारी' (पृ. ३)।

आजकी बदलती स्थिति तथा सामाजिक अस्तित्वकी समस्या, समसामयिक राजनीतिक स्थिति, आर्थिक विषमता तथा देशके भ्रष्ट तन्त्रपर तीखा प्रहार हैं, इम जनतन्त्र लोकतन्त्रको उपेक्षा, दमन और शोषणकी संज्ञा दीहै। 'प्रश्न' कवितामें यही आक्रोश इस रूपमें है, जिस देशमें जनतन्त्रके नामपर चुनाव-तन्त्र और समाजवादके नामपर साम्राज्यवाद, ताना-शाही अन्याय और शोषण होताहै, जहां शासन सत्ता अन्यायी, अत्याचारी, रिश्वतखोर, चापलूस, ढोंगी खद्दरधारी कुछ ही नेताओंके हाथमें केन्द्रित है। कवि

---

१. प्रका. : तक्षशिला प्रकाशन, २३/४७६२ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १११; डिमा. ८३; मूल्य : ५०.०० रु.।

स्वतन्त्रता संग्राममें शहीद हुए सैनिकोंसे प्रश्न करताहै कि—

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता:' रटने वाले/औरतें बेचतेहैं/ 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' गानेवाले/इस देशको नंगा करतेहैं / पता होता तुम्हें सब/ तो क्या/ तब भी तुम इस देशके नामपर शहीद हो जाते ?—पृ. ७८।

इसी प्रकारका भाव 'चहकती चिड़ियाके शोर' कवितामें भी व्यंजित हुआहै। कवि सोचताहै कि इस शासन व्यवस्थामें मांगनेसे कुछ भी नहीं मिलता, छीनना पड़ताहै। 'अरे ओ गांवके लोगो' कवितामें 'करो या मरो' का भाव अभिव्यक्त हुआहै—'किन्तु सच मानो/ झुग्गी-झोंपड़ीमें आजतक/ खुद कभी उजाला नहीं आयाहै/ तुम्हें उपाय आताहो तो/ पकड़कर ले आओ'—पृ. ७२।

कवि प्रतीक्षारत युवा वर्गका प्रतिनिधित्व करता है। वह उस दिनकी प्रतीक्षामें है जब 'वह रक्तिम सैलाब जरूर बनेगा/ जिसमें एक नहीं/ कई तानाशाही राजगद्दियां डूबेंगी/···रक्त मगन होकर/ एक नये धरातल का स्वरूप बनायेंगें।—पृ. ४०।

आज नयी संस्कृति, नवपरिवेशका युग है। नयी संस्कृति बाहरसे जितनी रंगीन है भीतरसे उतनी ही खोखली है। नयी संस्कृतिकी ओर बढ़ते चरण अपने चिरपोषित परम्परागत सम्बन्धोंको भूलते जा रहेहैं। व्यक्ति अपने हालमें ही अजनबी है। अस्तित्वहीनता की स्थितिने उसे भीड़में भी अकेला बना दियाहै। इस अकेलेपनसे कवि मनकी व्याकुलता है : 'खो रहेहैं भीड़में हम/···पहचान भूल गये हम अपनी भी/ इस शहरमें न जाने/ कौन किस गलीमें अदृश्य हो रहाहै' —पृ. ३८।

संग्रहकी कविताओंमें जहां समष्टिका चित्रण है वहां कविकी निरी वैयक्तिकता प्रेम-चित्रणमें व्यंजित हुईहै। प्रेमके सम्बन्धमें कविने मात्र कल्पनालोकमें ही विचरण नहीं किया अपितु प्रेमकी मधुरताको भोक्ता बन जियाहै। 'तुम्हारी प्रतीक्षाका दीपक' 'यहां कुछभी ऐसा नहीं है प्रिय', 'पता नहीं क्यों, 'अन्तहीन तलाश', 'क्या नाम दूं', तुम्हें', आदि कविताओंमें प्रेमके विविध चित्र प्रस्तुत हैं। कवि प्रेयसीको ही अपना प्रेरणास्रोत मानताहै। कहताहै 'मेरे गीतोंका स्वर तुम्हीं हो/ हरेक कविताका/ आखिरी हस्ताक्षर तुम्हीं 'हो'।—पृ. ८२।

प्रेयसीका स्वरूप यहां देवी या अलौकिक नहीं है, वह इसी संसारकी नारी है। वह अपनी प्रियतमाको नव-नव उपमानोंसे सजाना चाहताहै। 'क्या नाम दूं मैं तुम्हें कवितामें। नवीन उपमानोंकी झलक है : 'कैसा होगा ? चंचल नदीकी वेगवती धारा-सी/ तुम्हें सम्बोधित करना'—पृ. ९९। यहां 'अज्ञेय' की 'कलगी बाजरेकी' कविताका प्रभाव स्पष्ट है।

शिल्प एवं शैलीके सन्दर्भमें कविमें कोई नवीनता नहीं है। जहां उन्होंने नयी भाषा गढ़नेका प्रयत्न किया, वहां या तो व्याकरणगत अशुद्धियां आयीं अथवा भाषा की कृत्रिमतासे भाव दब गया। कविका ध्यान नवीन शब्दोंके प्रयोगमें अधिक रहा, पर इस प्रयाससे भाव गाम्भीर्य आहत हुआहै। कुछ शब्दोंकी पुनरावृत्ति भी खटकतीहै फिरभी अधिकांश कविताओंकी भाषा सशक्त है। कुमाऊंनी भाषाके शब्दों—चौमसिया, पिरुल, मडूबे, हरिया, गुडोल-भगनोल और चॉचरी आदिके प्रयोगसे लोकवातावरणको जीवन्त रूपमें प्रस्तुत किया है। नवीन बिम्ब एवं प्रतीक, पौराणिक प्रतीक भी ग्रहण कियेहैं। जैसे—'घाटके घाट/ अर्जुनोंकी लाशें पड़ी हैं।' कुछ' कविताएं स्तरीय हैं। अधिकांश कविताओंमें बौद्धिक प्रयास अधिक है।

संकलनका शीर्षक 'पिरुल' प्रतीकात्मक कहाजा सकताहै : शीर्षक रखनेका कारण और उद्देश्य भूमिका में बताया गयाहै। वस्तुत: संग्रहकी कविताओंमें 'पिरुल' का सा तीखापन और 'पिरुल' की सी हरीतिमा, स्निग्धता एवं कोमलता व्यक्त हुईहै। कविकी मान्यता है कि वह जनवादी नहीं है अपितु प्रकारान्तरसे जनवादका समर्थक है। श्री महेश पाठकका यह कविता-संकलन आजकी विषमताओंके प्रति 'पिरुल' की भांति तीखा है, वैचारिक द्वन्द्वको स्वर मिलाहै। आक्रोश, तीखा स्वर, व्यंग्य, प्रेमकी मधुर स्निग्धताका यह संकलन पठनीय है। ☐

अध्ययन-अनुशीलन

एक सांस्कृतिक अनुष्ठान : आधुनिक हिन्दी कविता[1]

लेखक : डॉ. ओम्प्रकाश गुप्त
समीक्षक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह

कवि, आलोचक और कथाकार ओम्प्रकाश गुप्त जहां एक ओर कविके रूपमें जाने जातेहैं, वहीं एक आलोचकके रूपमें भी उन्हें जाना गयाहै, और यही कारण है कि "कविता जो साक्षी है" की विवेचनात्मक पद्धतिका एक विकास हम उनके नवप्रकाशित आलोचना ग्रन्थ "एक सांस्कृतिक अनुष्ठान : आधुनिक हिन्दी कविता" में पातेहैं। साहित्यमें सांस्कृतिक आशयोंका एक रचनात्मक संदर्भ प्राप्त होताहै और यह पुस्तक इस संदर्भको आधुनिक कविताके द्वारा प्रस्तुत करना चाहतीहै। लेखकके अनुसार साहित्य यदि विचार-प्रवाहकी कलात्मक अभिव्यक्ति है, तो आलोचना इस प्रवाहका—बृहद् सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्यमें—इतिहास प्रस्तुत करतीहै।' (आमुख)। यह एक व्यापक सन्दर्भ हैं और लेखक अपने निबन्धों द्वारा इस परिप्रेक्ष्यको 'अर्थ' प्रदान करनेका प्रयत्न करताहै। इस सांस्कृतिक प्रक्रियाको वह गुप्तजी (राष्ट्रकवि), दिनकर, पंत, सर्वेश्वर, अज्ञेय, विनयकी रचनाओंके माध्यमसे व्यक्त करना चाहताहै और उन मूल्यों, प्रतिमानों, समस्याओं तथा वैचारिक द्वन्द्वको रेखांकित करना चाहताहै जो आजके सांस्कृतिक अनुष्ठानमें किसी-न-किसी रूपमें अथवा नकारात्मक या सकारात्मक योगदान देते रहेहैं। इसमें परिवार, व्यक्ति-समष्टि, युद्ध शांति, कामाध्यात्म, ब्रह्मज्ञान एवं कर्मज्ञान जैसे प्रत्ययोंपर विचार किया गयाहै और साथही भिन्न रचनाओंके सन्दर्भमें अपने विवेचनको अधिक तर्कमूलक और प्रासंगिक बनाया गयाहै। मेरे विचारसे, यदि लेखक आजके सांस्कृतिक 'संकट' पर एक और आलोक दे देता, तो पुस्तक अधिक अर्थवान् हो जाती। यह सही है कि युद्ध (दिनकर) जैसे प्रत्ययोंको लिया गयाहै जो सांस्कृतिक संकट को दर्शातेहैं, फिरभी मुझे ऐसा लगताहै कि इस पक्षको और अधिक विस्तारकी अपेक्षा थी। एक अन्य बात जो खटकतीहै कि लेखक नयी कविता तक आताहै और १९६०-६५ के बाद जो सांस्कृतिक परिवर्तन आयाहै, उसपर भी कुछ आलेख होने चाहियेथे, तभी 'आधुनिक हिन्दी कविता' का सम्पूर्ण परिदृश्य उभरकर सामने आता। १९६०-६५ के बाद मूल्योंका विघटन, द्वन्द्वात्मकता, जनसंस्कृतिके प्रति रुझान, परिवर्तनकी अदम्य आकांक्षा, सामाजिक चिन्ताओंके प्रति अधिक आग्रह तथा विषानुभूति (रसानुभूतिसे अलग) की भिन्न कोटियां—ये सभी तत्त्व एक संघर्षशील सांस्कृतिक चेतनाको गति एवं 'अर्थ' देतेहैं। फिरभी, जितने भी निबन्ध इस संग्रहमें हैं, उनमें सांस्कृतिक बोधके भिन्न आयाम अवश्य मिलतेहैं जो आगेके काल-खण्डोंको प्रभावित अवश्य करतेहैं। ऐसेही कुछ सन्दर्भोंका यहां उल्लेख है।

राष्ट्रकविसे सम्बन्धित दो निबन्ध हैं जिनमें उनके प्रबन्ध काव्योंके आधारपर परिवारकी धुरी 'बहू' तथा दूसरेमें राजनीतिक सन्दर्भोंको विवेचित किया गयाहै। पहला निबन्ध इस दृष्टिसे ध्यान देने योग्य है कि इसमें परिवारके महत्त्वको दिखाया गयाहै तथा रोमांस और कर्त्तव्यमें बंधी 'बहू' के बिम्बको एक सांस्कृतिक अर्थवत्ता दी गयीहै। (२१-२२) दूसरा निबन्ध राजनीतिक सन्दर्भोंको प्रस्तुत करताहै जिसमें राजाके ईश्वरीय रूप का खंडन, व्यक्तिका समष्टिमें लय (पृ. २३) तथा

---

१. प्रका. : साहित्य संगम पब्लिकेशंस, ४ सी मदनमोहन स्ट्रीट, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : ७१; डिमा. ९२; मूल्य : ४०.०० रु.।

किसान चित्रणका रूप (पृ. २६-२७) आदिपर विचार कियाहै। यहां लेखकका यह मत सही है कि आदर्शीकरणकी अधिकताके कारण गुप्तजी किसान जैसे विषय का सतही वर्णन करके रह गयेहैं। (पृ. २७)। क्रांति व विद्रोहका स्वर भी अत्यन्त क्षीण है। इसका कारण यह है कि गुप्तजीका काव्य अधिकतर मिथकीय प्रसंगोंपर आधारित है, और वहांपर जोभी विद्रोहकी अनुगूंज है, बह परोक्ष है — मारक नहीं है। लेखकने इस तथ्य की उपेक्षा कीहै। गुप्तजीके काव्यमें राजनीति प्रच्छन्न है, वे सीधे व्यवस्थासे टकराते नहीं है।

इस संग्रहमें दो निबन्ध ऐसे हैं जो दर्शन, युद्ध, कर्म, भावना और जनसाधारणके प्रत्ययोंसे टकरातेहैं। ये दोनों निबन्ध इस संग्रहके उत्कृष्ट निबन्ध कहे जाने चाहियें जहां लेखक विशद सन्दर्भोंको उठाताहै। 'धरती पर दिव्य जीवनका साधक—सत्यकाम' निबन्धमें अरविंदके 'दिव्य जीवन' (द लाइफ डिवाइन) का विवेचन करते हुए लेखकने पंतके काव्य 'सत्यकाम' का विश्लेषण कर 'सत्यकामके सत्य' को मानवकी परिधिके अन्दर मानाहै, वह किसी परलोकका सत्य नहीं है। यहांपर देवों और मानवोंके अन्तरको 'भावना' के स्तर पर अलगाया गयाहै (पृ. ३१-३२)। पंतकी 'सत्यकाम' रचना ब्रह्म ज्ञानको मानवकी सीमाओंमें लाताहै, उसे वह कोई पारलौकिक सत्ताके रूपमें स्वीकार नहीं करता। कुछ विकासवादी चिंतक यह मानतेहैं कि विकासकी गतिके साथ 'पराशक्ति' का भी विकास हुआ है, अत: ईश्वर विकासके साथ है, नकि विकाससे परे एक निरपेक्ष सत्ता। एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य जिसे लेखक देताहै, वह है कामायनी, उर्वशीसे सत्यकामकी तुलना। 'कामायनी' मनुको दूर सारस्वत प्रदेशमें ले जातीहै, उर्वशी पुरुरवाको गंधमादन पर्वतपर ले जाती हैं जबकि पंत सत्यकामको निर्जनसे उत्तरदायित्वोंके लोकमें लौटातेहैं। (पृ. ३४)।

दूसरा निबन्ध "एक बृहद् सांस्कृतिक अनुष्ठानकी साहित्यिक अभिव्यक्ति" है जिसमें कुरुक्षेत्र, उर्वशी, अंधायुग, एक प्रश्न मृत्यु (विनय) जैसे खण्डकाव्योंके आधारपर युद्ध-दर्शन और भावना-कर्मके द्वन्द्वको एक सांस्कृतिक फलक प्रदान किया गयाहै। युद्ध एक आदिम प्रवृत्ति है जो विकासके साथ है। कुरुक्षेत्रमें दिनकरने युद्धको समाज सापेक्ष मानाहै जो कल्याणका सूचक हो। अन्यायका दमन युद्धसे होताहै क्योंकि अभी सांस्कृतिक स्तरपर वह स्थिति नहीं आयीहै कि समतावादी समाज संरचनाका स्वप्न पूरा हुआहो। यह भविष्यकी कल्पना है। (पृ. ७३) कुरुक्षेत्रमें भावना और विवेकके द्वन्द्व को प्रेम और कर्मके द्वन्द्वके रूपमें भी प्रस्तुत किया गया है। इस द्वन्द्वको 'कुरुक्षेत्र' (भीष्म) में, 'उर्वशी' में तथा 'अंधायुग' में लेखकने विस्तारसे दिखायाहै जो मनोवैज्ञानिक द्वन्द्वको स्पष्ट करताहै। (पृ. ६५-६७)। यह सारा प्रसंग, विवेचनाकी दृष्टिसे प्रभावशाली है और हमें सोचनेको विवश करताहै। आलोचनाका एक धर्म यहभी है कि वह हमें उकसाए, सोचनेको विवश करे।

सर्वेश्वरकी कविताका लेखकने जो विवेचन किया है, वहभी सार्थक है क्योंकि लेखक 'कुमानो नदी' तथा उनके काव्य संग्रहोंके आधारपर आपात्कालके कवि कर्मको दृढ़तासे शांत खड़े रहकर मुक्तिके उपाय खोजने वाला कवि अंतमें, आकर अपनी ही ऊर्जाके सामने नतशिर हो जाताहै, अनुत्तरित रह जाताहै। लेखकका अंत में यह मत कि इन अनुत्तरित प्रश्नोंके उत्तर पाना आज के हिन्दी कविका उत्तरदायित्व है। (पृ. ४७)। यही कारण है कि लेखक अपने इन निबन्धोंमें सांस्कृतिक प्रश्नोंसे जूझताहै और भावी संभावनाके प्रति जागरूक है।

समग्र रूपसे, यह कहना उचित होगा कि लेखककी यह पुस्तक आलोचनाके उस रूपको प्रकट करतीहैं जो आलोचनाको मात्र भाव तक सीमित न कर उसे विचार-संवेदनके भिन्न आयामों तक ले जातीहै। इन निबन्धों से गुजरते हुए मुझे यह लगता रहा कि यदि लेखक अन्य ज्ञानानुशासनोंका और अधिक सहारा ले, उनका अध्ययन करें, तो उसकी आलोचना अधिक व्यापक हो सकेगी। □

सूरकी सौंदर्य चेतना[1]

लेखक : डॉ. एस. टी. नरसिंहाचारी

समीक्षक : राजमल बोरा

डॉ. एस. टी. नरसिंहाचारी उन गिने-चुने विद्वानों

---

१. प्रका : राधाकृष्ण प्रकाशन, २/३८ अंसारी मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : २६७; डिमा. ९३; मूल्य : १९५.०० रु.।

में हैं, जिनका सम्बन्ध 'सौंदर्यशास्त्र' से है उनके पी-एच. डी. के शोध-प्रबन्धका विषय 'साहित्यिक अभिरुचि और समीक्षा' रहाहै। उसके बादभी वे निरन्तर सौंदर्यशास्त्रका अध्ययन करते रहेहैं। 'सौन्दय-तत्त्व-निरूपण' उनकी सैद्धान्तिक पुस्तक है। उसी क्रममें 'सूर की सौन्दर्यचेतना' व्यावहारिक पुस्तक लिखी गयीहै।

आचार्यजी प्राक्कथनमें लिखतेहैं—"सौन्दर्य तत्त्व निरूपण' लिखनेके बाद कई वर्षोंसे प्रबल इच्छा रहीहै कि सौन्दर्य तत्त्व निरूपक एक व्यावहारिक आलोचना प्रस्तुत करूं। इसके लिए सूरसे अधिक उपयुक्त महाकवि और कौन हो सकतेहैं?" (पृ. ७)। कविका चयन ही अपने आपमें साहित्यिक अभिरुचिको व्यक्त करनेवाला है।

आचार्यजीकी यह पुस्तक विशुद्ध रूपसे व्यावहारिक है। सौन्दर्यशास्त्रको व्यावहारिक रूपमें प्रस्तुत करना कठिन कार्य है। 'सौंदर्य चेतना' को स्पष्ट करनेका तात्पर्य संश्लिष्ट रचनाको विश्लेषित करनाहै। यों कहिये कि टुकड़ों-टुकड़ोंमें समझाना और फिर उसे जोड़कर प्रस्तुत करनाहै। 'तादात्म्य' को कैसे समझाया जाये? पारम्परिक आचार्योंकी शैलीसे हटकर सौन्दर्य चेतनाको आधुनिक आलोकमें परखनेका प्रयास आचार्य जीने कियाहै।

पुस्तकमें सात अध्याय हैं—(१) सूरका सौन्दर्य बोध: प्रेरक और निर्धारक तत्त्व (२) काव्यवस्तु और सौन्दर्य (३) रूप सौन्दर्य (४) भाव-सौन्दर्य और कर्म सौन्दर्य (५) कलात्मक अभिव्यंजना (६) सौन्दर्यानुभूति और (७) उपसंहार। अध्यायोंके ये शीर्षक सैद्धान्तिक नहीं है। इन अध्यायोंमें 'सूरकी सौन्दर्य चेतना' को अलग-अलग परिप्रेक्ष्यसे उजागर करनेका प्रयास किया गयाहै।

प्रथम अध्याय, प्रधान रूपसे सूरकी आन्तरिक प्रेरणाके प्रधान बिन्दुओंकी व्याख्या करनेके लिए लिखा गयाहै। आचार्यजी मानतेहैं कि **सूरदासका सौन्दर्य बोध मानसिक है**। यों तो सूरकी दृष्टि लीलावर्णनके सौन्दर्य और माधुर्यमें प्रवृत्त दिखायी देतीहै किन्तु वास्तवमें कविकी चेतना पारदर्शी होकर अन्तःसौन्दर्यके प्रत्यक्षीकरणमें संलग्न हुईहै। (पृ. १७)। भक्त कवियोंकी सौन्दर्य चेतनाको व्यक्तिनिष्ठ कहा गयाहै। (पृ. २२)। काव्य-प्रवृत्तिकी दृष्टिसे विचार करनेपर भक्तिकाव्यको स्वच्छन्दतावादी काव्य कहना उपयुक्त समझाहै। (पृ. २३)। सूरदासकी भक्तिभावनाको स्पष्ट करते हुए लिखाहै—"भक्तिकाव्यको व्यापक अर्थमें स्वच्छन्दतावादी काव्य कह सकतेहैं। उसमें स्वच्छन्दतावादकी दोनों मूलभूत विशेषताएं—विद्रोहकी भावना और स्वच्छन्दता का आग्रह स्पष्ट परिलक्षित होतेहैं। संत काव्यमें पहलेकी और कृष्णभक्ति काव्यमें दूसरेकी प्रधानता है। अन्तःप्रेरित संवेगात्मकता, रहस्यमयता, कल्पनाशीलता, सौन्दर्यमयता, आत्मकेन्द्रित अभिव्यंजना आदि अन्य स्वच्छन्दतावादी या रोमांटिक प्रवृत्तियां भी भक्ति काव्यमें मिल जातीहैं।" (पृ. २३) प्रसादजीकी शब्दावलीका प्रयोग आचार्यजीने कियाहै। तदनुसार लिखाहै—"संकल्पात्मक अनुभूति और कोमल भावना सूरके सौन्दर्यबोधको सूचित करतीहै।" (पृ. २४)। सूरदास को आचार्यजी शुद्ध सौन्दर्यवादी कवि कहतेहैं। सूरका काव्य शुद्ध भावनाका काव्य है। वह साम्प्रदायिक नहीं है। उसे पुष्टिमार्गीय कहकर उसे साम्प्रदायिक कहनेका प्रयत्न हुआहै किन्तु सच तो यह है कि सूरने अपने गुरु पर एक ही पद रचाहै। ऐसा सूरने क्यों किया? आचार्यजी मानतेहैं कि सूरदास साम्प्रदायिकतासे मुक्त हैं और स्वच्छन्द रूपमें काव्य रचनामें प्रवृत्त रहेहैं।

दूसरा अध्याय 'काव्यवस्तु और सौन्दर्य' से सम्बन्धित है। सूरके काव्यको पौराणिक वस्तुका आधार प्राप्त है। उसका आधार भागवत है। इसपर भी सूर सागर सूरदासकी स्वतंत्र रचना है। उसे भागवतका अनुवाद नहीं कह सकते। कविने वस्तु और भावको नया सौन्दर्यात्मक स्वरूप प्रदान कियाहै। आचार्यजीने भागवतके साथ सूरसागरकी तुलना करते हुए लिखा हैं—"प्रथम स्कंधमें केवल विनयके पद है जो पुष्टिमार्ग में दीक्षित होनेके पहले लिखे गये और कुछ परवर्ती स्तोत्र या नाम संकीर्तन है। दशम स्कंधके पूर्वार्द्धको छोड़कर शेष स्कंधोंमें पद रचना नाममात्रकी है। दशम स्कंधके पूर्वार्द्धमें श्रीकृष्णकी बाल एवं यौवनकी लीलाओं का निरूपण है जिसपर सूरकी दृष्टि केन्द्रित है। सूरकी काव्यवस्तु केवल श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंसे ही सम्बन्धित है। ऐसा लगताहै कि भागवतका अनुसरण करते हुए सूरसागरका स्कंधोंमें विभाजन सूरके समयका न होकर परवर्ती है।" (पृ. ३८-३९)। और आगे लिखाहै—"जहां भागवतमें दुष्ट संहारकी लीलाओंमें श्रीकृष्णके देवत्वकी प्रतीतिका प्रयत्न हुआहै, सूरके काव्यमें वे केवल विस्मयकारी हैं और विस्मयकारिताके

माध्यमसे सौन्दर्यका बोध करातेहैं। ... सकतेहैं कि दुष्ट संहारकी लीला अपने अद्भुतपनमें निषेधात्मक रूपमें माधुर्यकी अनुभूति देतीहै। भागवत और सूरसागरकी अलौकिकतामें अन्तर है। पहला देवत्वकी अलौकिक अनुभूति देतीहै तो दूसरा सौन्दर्यकी अलौकिक अनुभूतिमें तन्मय कर देतीहै। भागवत और सूरसागरकी मधुर लीलाओंके निरूपणमें भी यह अन्तर देखाजा सकताहै। दूसरेकी आधारभूमि मानवीय संवेदना है।" (पृ. ४७)। आचार्यजी सूरदासकी काव्य-वस्तुको शुक्लजीके अर्थोंमें (भक्ति, वात्सल्य तथा प्रेम तक) सीमित मानते हुएभी उसका कारण अन्तर्मुखी भक्ति भावना और सौन्दर्य चेतना बतातेहैं। इस रूपमें परखनेपर ही सूरकी सौन्दर्य चेतनाको ठीकसे समझा जा सकेगा।

तीसरा अध्याय 'रूप सौन्दर्य' है। सौन्दर्यको रूपाश्रित मानकर यह अध्याय लिखा गयाहै। 'कामायनी' की शब्दावलीका उपयोग आचार्यजीने यथास्थान किया है। लिखाहै—"रूप नयनका अभिराम इन्द्रजाल है जो इन्द्रियों और मनमें अनुकूल स्पन्दन करताहै।" (पृ. ४६)। रूप सौन्दर्यको प्रधान रूपसे दो वर्गोंमें विभाजित है—(१) सृष्टिगत—जिसे नैसर्गिक सौंदर्य कहा और (२) मानवनिर्मित रूपगत। रूप सौन्दर्य के बहुतसे उदाहरण आचार्यजीने दितेहैं। उदाहरणोंके कारण अध्याय कुछ विस्तार पा गयाहै। मानवीय स्तरके सौन्दर्यपर विस्तारसे लिखा गयाहै। बालकृष्ण, किशोर छवि, नेत्र सौन्दर्य, मुरली माधुरी, अलंकरण-सौंदर्य आदिके उदाहरण दिये गयेहैं। बादमें इसी प्रकार प्रकृति-सौन्दर्यपर भी विस्तारसे लिखा गयाहै। सूरदास के काव्यको नायक प्रधान काव्य कहा गयाहै।

चतुर्थ अध्याय 'भाव-सौन्दर्य और कर्म-सौन्दर्य' से सम्बन्धित है। सौन्दर्यको काव्य-मूल्य माना जाये या नहीं इस प्रश्नका उत्तर आचार्यजीने अलग-अलग रूपमें देनेका प्रयत्न कियाहै और इसी सन्दर्भमें रूप तत्त्व, भाव तत्त्व और कर्म तत्त्वके साथ सौन्दर्यका स्वरूप बतलानेका प्रयत्न कियाहै। कृष्णभक्तिमें वात्सल्य, सख्य और मधुर तीनों प्रकारकी भक्ति भावना प्रेम-मूलक है। प्रेम साधनाको मूल्य रूपमें समझनेपर ही सूरकी सौन्दर्य चेतना ठीकसे समझमें आ सकतीहै। सूरदासकी प्रेम-व्यंजनामें सौन्दर्यके उत्कर्षकी अभिव्यक्ति हुईहै। सौन्दर्य और प्रेमको व्यावहारिक स्तरपर परखने का प्रयत्न आचार्यजीने कियाहै। राधा और कृष्णके सम्बन्धमें लिखाहै—"राधा शुद्ध प्रेम-रूपा आत्मा है जिसने परम तत्त्वको पहचानाहै। लौकिक धरातलपर रह जानेपर उस परम-प्रेम तत्त्वको पहचान नहीं सकता। राधामें आलम्बनके रूपमें सौन्दर्य तत्त्वकी अपेक्षा आश्रयके रूपमें श्रीकृष्णके प्रति सूक्ष्म और गंभीर प्रेम तत्त्वकी अधिक विस्तृत व्यंजना है (पृ. १४२) और मूल्यांकन करते हुए लिखाहै—"सूरसागरमें रूप-वर्णन की अपेक्षा भाव-व्यंजनाका ही अधिक विस्तार है। ऐसी स्थितिमें सूरकी सौन्दर्य चेतनाके अनुशीलनमें भाव-व्यंजनाका सौन्दर्यशास्त्रीय विश्लेषण और मूल्यांकन बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाताहै। **सूरने जीवनको सौन्दर्यमय, प्रेममय और आनन्दमय मानाहै। उनकी पुष्टि-मार्गीय भक्तिभावनाके आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे भी इसीका समर्थन** होताहै।" (पृ. ४४)।

कलात्मक अभिव्यंजनासे सम्बन्धित पाँचवाँ अध्याय है। कविके सौन्दर्यबोधसे लेकर उसकी शाब्दिक अभिव्यंजना तक रूपायनके अनेक पहलू बतानेका प्रयास इस अध्यायमें हुआहै। सूरका सौन्दर्य-बोध नैसर्गिक है। प्राकृतिक शोभाकी परिधिसे आगे बढ़कर कविने उसका आदर्शीकरण कियाहै। छायावादके प्रतिमानोंका उपयोग कर आचार्यजीने सूरकी कल्पना-शक्तिका विवेचन यहां किया है। काव्य और कला-के सम्बन्धको उजागर करनेमें अभिव्यंजना शक्तिको उजागर करना पड़ताहै। कलात्मक अभिव्यंजनाका प्रधान धर्म सौन्दर्य ही है। इसीके अन्तर्गत शाब्दिक अभिव्यंजना, वचनवक्रता, सौन्दर्य-निरूपक-पद्धतियों, कल्पना, अप्रस्तुत योजना, चित्रांकन, प्रतीक प्रयोग, नाटकीय दृश्यांकन, काव्यरूप आदिका सोदाहरण विवेचन किया गयाहै। मूल्यांकनमें साहित्यिक अभिरुचिकी बिशेषताएं बतायी गयीहैं।

छठा अध्याय 'सौन्दर्यानुभूति' है। पाश्चात्य विचारकोंने सौन्दर्यानुभूतिको वस्तुनिष्ठ तथा व्यक्तिनिष्ठ कहाहै। दोनोंको जोड़नेवालोंमें अलेग्जेंडर है। सभी पहलुओंपर विचार करते हुए सौन्दर्यानुभूतिका विवेचन इस अध्यायमें हुआहै। आचार्यजी भारतीय सौन्दर्यबोध के विचारोंका उपयोग शुक्लजीके समान नहीं करते। उनके विवेचनमें पाश्चात्य सौन्दर्य-बोधकी अवधारणाएं अपेक्षाकृत अधिक है। 'रस-सिद्धान्त' या 'साधारणीकरण'—के सन्दर्भमें आचार्यजी अधिक नहीं लिखते। छायावादी सौन्दर्यबोधके प्रतिमानोंका उपयोग उन्होंने

कियाहै। शुक्लजीके विचारोंका उपयोग पुस्तकमें अधिक हुआहै। शुक्लजीसे सभी जगह सहमत न होते हुएभी शुक्लजीके मूल्यांकनको शुक्लजीकी सीमाएं बताकर उन्हें स्वीकार कियाहै। सौन्दर्यानुभूतिका आधार आश्रय मानाहै। तत्व रूपमें सौन्दर्यानुभूतिका आधार काम्य या कामना कहाहै। कांटके विचारोंका पल्लवन करने का प्रयास उन्होंने कियाहै। सौन्दर्य-भावनकी चार विशेषताएं तदनुसार बतायीहैं—"१. आनन्दानुभूति २. लौकिकतासे निर्लिप्त तटस्थ अनुभूति, लौकिक सामाजिक अनुभूति, शुद्ध सौन्दर्यानुभूतिसे भिन्न आनुषंगिक अनुभूति है, ३. उद्देश्यहीन सार्थकता और ४. इन्द्रियों और मनकी स्वच्छन्द क्रियाशीलता और सामंजस्यसे उत्पन्न एकोन्मुखता, चैतन्यमयता और पूर्णता है।" (पृ. २१५)। सौन्दर्यको देखकर मनकी जो स्थिति होती है, उस स्थितिको उजागर करनेका प्रयास इस अध्यायमें अधिक हुआहै। तर्करूपमें इसका विवेचन संभव नहीं लगता। सौन्दर्यानुभूतिकी स्थितिमें आश्रयकी मनोदशा को बतलानेमें सूरने जिस शब्दावलीका उपयोग कियाहै, उसे बतलाया गयाहै। कुछ उदाहरणभी दियेहैं। सौंदर्य को देखकर मन चकित होताहै, विस्मित होताहै, भ्रमित होताहै, दृष्टि स्थिर होतीहै, आलोकसे विभ्रम होताहै, रहस्यमय (स्पष्ट न होनेके कारण) लगताहै, अनिर्वचनीय लगताहै—इन सब स्थितियोंमें जो मानसिक अनुभूति होतीहै उसकी व्यंजना सूरसागरमें अधिक है। सबके केन्द्रमें 'प्रेम' है और इसीलिए सौन्दर्यानुभूति प्रेमानुभूतिका रूप ले चुकीहै। 'मोहन बदन बिलोकत अँखियन उपजत हैं अनुराग।' प्रेमके पर्यायी रूपोंका उपयोग सूरने अलग-अलग संदर्भोंमें, अलग-अलग प्रसंगों में कियाहै। सूरकी कुछ विशेष शब्दावली—रूप मनोहर/प्रेम मगन तन/सकल सुखकी सींव/कोटि मनोज सोभा हरनि/सुन्दरताको सागर/अँखियां अति अनुरागी/मृदु-हंसनि-माधुरी/मोहनि मूरति/छवि निहारि थकित रहीं/लोचन भरि देखौं/ बलि बलि जाऊं/गिरा पंग/चकित भई/स्याम रस मतवारी/कौतुत अंबर छावे/चंचल नैन/—और कुछ शब्द—रूपनिधि, रूपरासि, रूप माधुरी, रूप खानि, रूप सुधा, रूप रस की ढेरि, रूप प्रकास, अगाध छवि, छबि धाम, छबि सिंधु, छबि महाप्रकास, सौन्दर्य सागर, अक्षयनिधि,'' आदि आदि। आचार्यजीने इसी संदर्भके उदाहरण दियेहैं। अन्तमें उपसंहार है।

आचार्यजीकी यह पुस्तक उनके स्वतंत्र विचारोंको व्यक्त करतीहै। व्यावहारिक समीक्षा और वहभी सौन्दर्यशास्त्रको आधार मानकर करना कठिन है। यह ऐसा काम है जिसे अनिर्वचनीयको वचनका स्वरूप देनाहै। आचार्य केशवप्रसाद मिश्रके सान्निध्यमें रहकर जो रस-संवेदना आचार्यजीने प्राप्त की उसका पल्लवन पुस्तकमें अभिव्यंजित है। 'कामायनी' का विशेष उल्लेख न करते हुए भी जयशंकर प्रसादके **'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध'** पुस्तकका उपयोग आचार्यजी ने अधिक कियाहै। शुक्लजीके विचारोंसे असहमति प्रसादके आधारपर ही (संकल्पात्मक अनुभूति) बतलायीहैं। पाश्चात्य विचारोंको भारतीय संदर्भमें ही परखनेका प्रयास कियाहै। कुल मिलाकर **'सूरकी सौंदर्य चेतना'** समीक्षाकी साहित्यिक अभिरुचिको समृद्ध करनेमें सहायक है। सौंदर्य बोधके प्रतिमानोंका उपयोग मध्यकालीन कविके शाश्वत मूल्योंकी निरन्तरताको उजागर करनेमें हुआहै। सूरदासके काव्यको शुद्ध सौन्दर्यवादी दृष्टिकोणसे परखनेका प्रयास हुआ है। पुस्तककी छपाई तथा साजसज्जा उत्तम है। ▢

परम्परा और परिवर्तन[1]

लेखक : नन्दकिशोर आचार्य
समीक्षक : घनश्याम शलभ

परम्परा और परिवर्तन प्रयोग और प्रगति ऐसे शब्द युग्म हैं जो इस शताब्दीमें प्रायः समाज और साहित्यके क्षेत्रमें प्रयोगमें आते रहेहैं। परम्पराएं जब रूढ़ या जड़वत् हो जातीहैं तो परिवर्तन स्वाभाविक तौर पर अनिवार्य हो जाताहै, पर परम्पराएं जीवन्त और जागृत भी होतीहैं और उनके निर्वहन, नियमन और गत्यात्मक संवर्धनके लिए, व्यक्ति और समाजको निरंतर साधना करनी पड़तीहै। सामाजिक परिवेश और मनुष्यके अन्तर्मनमें होता हुआ बदलाव, परम्पराको प्रकारान्तरसे नवोन्मेषित करताहै। चिन्तनका एक दौर ऐसाभी आयाथा जब कुछ समयतक आधुनिकता और तज्जन्य विचारधाराओंकी सनकने परम्पराको नका-

---

१. प्रका. : कविता प्रकाशन, तेलीबाडा, बीकानेर-३३४००१। पृष्ठ : १२०; डिमा. ९१; मूल्य : ८०.०० रु.।

रनेका अकारथ प्रयत्न भी कियाथा। परन्तु परम्परा तो मनुष्य-समाजकी अनवरत और बृहत्तर मानवीय साधना का प्रतिफल है, उसका उत्स उसी सामूहिक अन्तर्मनमें परिणत संवेदनाकी गहराई और संबुद्धिमें सन्निहित है। उसमें बृहत्तर जनसमाजकी कल्याणकारी चेतना भी विद्यमान रहतीहै। वह उसीकी है, उसके द्वारा निर्मित है, और उसीके लिए है। अत: उसमें जो परिवर्तन-परिवर्धन होता रहताहै, वह निसर्गत: समाजकी संचेतना द्वारा ही होताहै। 'द्रुत झरो जगत्के जीर्ण पत्र' की सी कामना, जीवनमें नये वसंतकी अगवानी की कामना भर है, क्योंकि प्रकृति बासी फूलोंसे शृंगारित होना कबतक पसंद करतीहै ?

फिरभी परम्परा और परिवर्तनके बीच ऐसेही किसी ऋतुचक्रकी खोज संभवत: सार्थक न हो। और यहीं, प्रश्न उसके 'शाश्वत' या 'सामयिक' भर होनेका उठताहै, क्योंकि परम्परा भी मूलत: एक 'मूल्यबोध' है, जो समाजके विभिन्न क्रिया-कलापों, सम्बंधों, व्यवहारों और विचारोंमें प्रकट होताहै। ऐसा 'मूल्यबोध' हठात् या कुछ ही बर्षोंकी देन नहीं होता, बल्कि युगों तक समाजकी जनकल्याणकी अनथक साधना ही उसे निर्मित करतीहै, इसीलिए वह संस्कृतिका अनिवार्य अंग होताहै। वह निश्चय ही सामाजिक उथल पुथल, वैचारिक संघर्षण और अन्तर्बाह्य अनेक सांघातिक संघर्षों का प्रतिफल है, अत: वह युगीन जनसमाजके विकास और उसके इतिहासको अपनेमें अन्तर्भुक्त किये होता है। यही नहीं, परम्परा जिस जीवन-दर्शनकी संरचना होतीहै, उसीसे वह संपुष्ट भी होतीहै, पर आज उसे आधुनिक विज्ञानके आलोकातपमें तपना और गलना भी पड़ताहै, इसलिए कि आजके समाजका दृष्टिबोध अधिकाधिक विज्ञानाश्रित होता चला जा रहाहै। परम्परामें सन्निहित जैविक विश्वास, आस्था-निष्ठा, संवेदनापरक मूल्य-मनोरथ तथा उनके प्रचलनकी प्रक्रियाको वह इसी निकषपर कसता रहाहै, जिसे कुछ चिन्तक 'कल्पान्तर' भी कहतेहैं।

और इस कल्पान्तरमें आजके राजनीतिक परिवेश का ही हाथ प्रबल है। लगताहै 'कामायनी' का यह कथन कि 'परम्परा लग रही यहां, ठहरा जिसमें जितना बल है'--इन्हीं पारिवेशिक स्थितियोंकी ओर संकेत है, जहां एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रको बैलेस्टिक मिसाइलोंके डण्डोंसे धमकाता रहाहै। वह स्वयं कुछ भी करता रहे—दूसरोंको मानवाधिकारोंके उपदेश पिलाता रहाहै; जहां सचाईको देखते हुए और जानते हुए भी न देखा जाताहै, न जाना जाताहै; जहां अपनी ही स्वार्थ-पूर्ति सर्वोत्तम और सार्थक जीवन दर्शन है, और जिसके क्रियान्वयनके लिए एक शाही नौकर—आणविक विज्ञान-पुरुष रोबो पाल रखाहै !

क्या यह सच नहीं है कि आजकी हमारी यह दुनियां, इसी खाकी रंगके विस्फोटक विज्ञानसे चारों ओर घिरी हुईहै ? जहां परम्पराकी बात करना जैसे अंधविश्वास-सा हास्यास्पद हो गयाहै ? ऊपरी स्तरपर भले ही इतिहास और परम्परा, कला और साहित्य, धर्म और दर्शन आदिपर क्लास रूम लेक्चर्स, परिसंवाद और गोष्ठियां आयोजित की जाती रहीहैं, पर हमारी जातीय और राष्ट्रीय परम्पराओंकी धज्जियां वे ही लोग अपने अंकुरणीय कार्योंसे उड़ा रहेहै, जो ऊंचे पदोंपर आसीन हो, अपना और अपनी पार्टियों, मोर्चों और दलोंकी दलदली स्वार्थ-सिद्धिमें मनोयोग पूर्वक लगे हुएहै। मजहब या धर्मको डंकेकी चोटपर अपने राजनीतिक हितोंके लिए तो उपयोग कर रहेहैं, कभी जातीयता तो कभी साम्प्रदायिकता कभी फिरकापरस्ती—परम्परा, अदब या संस्कृतिकी सतनामी ओढ़, आदमीयतके दूधकी जगह, लोगोंके दिलोंको विघटनका जहर पीनेके लिए बांटती फिर रहीहैं।

ऐसे समय परम्परापर गहराईसे विचार होना अनिवार्य है। इस आलोच्य पुस्तक 'परम्परा और परिवर्तन' का लेखक प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृतिका एक तत्वान्वेषी अध्येता रहाहै। उसके द्वारा लिखित इन निबन्धोंमें अनेक स्थानोंपर उसकी झलक देखी जा सकतीहै। कुल जमा बाईस निबन्ध हैं, जो समय-समयपर लिखे गयेहैं, और इसीलिए समसामयिकताका प्रभाव लिये हुएहैं। कहीं यह लेखक हमें 'बराहमिहिर परम्परामें फिर झांकिये' के लिए आमंत्रित करताहै, तो कहीं 'महासागरीय वृत्तकी राष्ट्रीय एकता' की बात कहताहै तो कहीं वह "पूंजीवादी 'बेस' पर लडा साम्यवादी सुपर स्ट्रक्चर" के बिखरावकी पड़ताल करताहै; कहीं फिर 'विकेन्द्रीकरण वा स्थानीय सर्वसत्तावाद' पर गांधीवादी जीवन-दर्शनके आलोकमें अपना विवेचन प्रस्तुत करताहै। उसका तो

यह निश्चित मत कि 'जिस व्यवस्थाको अहिंसात्मक नहीं कहाजा सकता उसे लोकतांत्रिक भी नहीं कहा जा सकता और इसीलिए उसे वास्तविक अर्थोंमें स्वतंत्र नहीं कहाजा सकता'—इस पुस्तकके प्रायः सभी निबन्धोंका यह केन्द्रीय तत्त्व है। वह महात्मा गांधीको 'अहिंसाका सबसे बड़ा पुरोधा' मानताहै, और उन्हींके विचारालोकमें—मनसा, वाचा, कर्मणा तक अहिंसाके अस्तित्वकी महत्ताको स्वीकारते हुए, उस हर चेष्टा और भावनाको हिंसा करार देताहै जो 'प्रत्येक व्यक्ति सहित पूरी मानवताकी सृजनात्मक संभावनाओंकी अभिव्यक्ति और विकासका दमन करतीहै।' इसी विचारावेशमें वह हमारे समाजकी स्वतंत्रतापर प्रश्न चिह्न भी लगाताहै। ब्रिटिश पार्लमेन्टके अन्धानुकरण की बात करते हुए वह यहभी मानताहै कि 'सरकार को बदल देना कोई पर्याप्त विकल्प नहीं है'। वह जय-प्रकाश जीकी सम्पूर्ण क्रान्तिकी उद्घोषणके होते हुएभी नेहरुवादी आधुनिकतावादके ढर्रेपर विकसित होते हमारे समाजकी आलोचना करताहै। गांधीजीके कथन का यह उद्धरण कि 'जिसे आप पार्लियामेन्टोंकी माता कहते हैं, वह पार्लियामेन्ट तो बांझ और वेश्या है। ये दोनों शब्द बड़े कड़े हैं तोभी उसपर अच्छी तरह लागू होतेहैं। मैंने उसे बांझ कहा, क्योंकि अबतक उस पार्लियामेन्टने अपने आप एकभी अच्छा काम नहीं किया···प्रधानमंत्री पार्लमेन्टकी चिन्ताकी अपेक्षा अपने दलको बलवान करनेके लिए उसमें मनमाने काम करवाताहै...वे दूसरोंसे काम निकलवानेके लिए उपाधि आदिकी घूस बहुत देतेहैं। मैं हिम्मतके साथ कह सकताहूं कि उनमें शुद्ध भावना और ईमानदारी नहीं होती' (हिन्दी स्वराज्य १९०३)—अपने मत समर्थनके लिए उद्धृत करताहै।

और उपर्युक्त गांधी मत ही इस लेखकके मन-बुद्धि पर प्रायः इसके हर निबन्धमें प्रकारान्तरसे अपना प्रभाव अंकित करताहै—चाहे फिर 'वैकल्पिक शिक्षा नीति का सवाल' हो, 'भारतीय परम्परा और परिवर्तन' या 'इतिहासकी लोकदृष्टि' हो, 'विकेन्द्रीकरण या स्थानीय सर्वसत्तावाद' हो, 'गांधीवाद और राज-सत्ता' आदि निबन्ध ही क्यों न हो। गांधीजी द्वारा प्रकट किये गये वे ही विचार-सूत्र कि—'सत्ताका विकेन्द्रीकरण और ग्रामराज्य, उत्पादनके साधनोंपर निजी स्वामित्व, पैत्रिक उत्तराधिकार, व्यक्तिगत सम्पत्तिका अधिकार, हृदय परिवर्तनपर आस्था, पूंजीपतियोंकी ट्रस्टीशिप, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, आत्म संयम, स्नेह समता आदिपर बल, साधन और उपार्जन की शुद्धता, निर्वाचित प्रतिनिधियोंको वापस बुलानेका अधिकार, लोक-समितियों और पंचायतों आदिका निर्माण या चयन जैसे विचार इस लेखककी दिशा-दृष्टि पर छाये रहेहैं। उसे भी यह अनुभव होताहै कि 'नेता के रूपमें हमें हमेशा संत ही नहीं मिलते रहेंगे'।

गांधीवादी जब स्वयं सत्तामें होताहै तभी उसे सत्ता-संचालनकी व्यावहारिक कठिनाइयोंका आभास भी हो जाताहै। तभी तो श्री मोरारजी भाई देसाईने प्रधानमंत्रीके रूपमें यहभी कहाथा कि 'शासन हमें चलाना है, जयप्रकाशजीको नहीं।' चरखा चलाना तब और बात लगने लगताहै, और मशीनोंके पहियोंपर पूरी तरह आधारित इस सभ्यताके विस्तृत साम्राज्यके वातावरणमें शासनतन्त्रका संचालन अलग ही बात है। संभवतः गांधीजी स्वयंने इसीलिए सत्तामें कभी भागीदारी नहीं की। संभव है एक सच्चा गांधीवादी भी इसे स्वीकार करनेमें हिचकिचायेगा।

और अपने ही युगमें वह राष्ट्रपुरुष अपने कितने साथियोंको अपनेही समतुल्य बना पाया? हजार-दो हजार गांधी होभी नहीं सकतेथे। फिर 'स्वभावसे अनिवार्य और विकेन्द्रीकृत स्थानीय प्रौद्योगिकी'का विकास किसी 'सेवाग्राम' के समतुल्य क्या अबतक संभव हो पायाहै? पर गांधीजीकी जन्मस्थली पोर-बन्दर आज तस्करीका जमघट अवश्य बन सकाहै, और यह कोई अजाना सच नहीं है। देशमें दूरदूर क्षेत्रों तक हाथ करघोंपर आजभी लाखों लोग किसी प्रकार जीवित हैं। हमारा संसदीय लोकतंत्र जो कवि धूमिल के अनुसार एक ऐसी घाणी है, जिसमें 'आधा तेल और आधा पानी' है, और प्रतीकार्थमें जिसका संविधान भैंस चरा करतीहै तभी तो हमारे करोड़ों देशवासी अब भी गरीबी, गन्दगी और आर्थिक गुलामीकी दलदलीय इस व्यवस्थामें जी रहेहैं। हमारा यह मोह कि 'भारत सरकार कभी गांधीवादी हो सकतीहै'—अबतक तो टूट जाना चाहियेथा। परन्तु हमारे एक श्रेष्ठ दार्शनिक का यह विचार कि 'संस्थाएं तो और अच्छी व्यवस्था तक पहुंचनेकी सीढ़ियां मात्र हैं। वह ठीक है—असंभव पूर्णताकी खोजमें हमें अपने आपको खो बैठनेकी आवश्यकता नहीं है, फिरभी हमें अपूर्णताको हटाने और

आदर्शकी ओर बढ़नेके लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिये। सभ्यतामें प्रगतिकी परख इस बातसे की जातीहै कि ऐसे अवसर कितने आये और वे किस ढंगके थे, जिनपर नियमका अपवाद करनेकी छूट दी गयी' —ऐसा सच कहीं न कहीं हमारे अन्तर्मनकी किसी गहराईमें अब भी अवस्थित है। उपर्युक्त मत 'महज फलसफा' नहीं, एक शीर्ष राजनेताका विचार है जो इस महादेशके राष्ट्रपति पदपर कभी आसीन थे। इस लेखककी भी पूरी आस्था इसीपर टिकी हुईहै, तभी तो अपने अन्तिम निबंध 'भारतीय परम्परा और परिवर्तन' में उसे सम्पूर्णता देनेके लिए उद्धृत कियाहै

परन्तु 'नियमका अपवाद करनेकी छूट' का यह लचीलापन निरन्तर अबभी जारी है। इस प्रकारकी छूटके 'फ्लडगेट' से अबतक न जाने कितनी विकृतियाँ इस समाज-व्यवस्थाका अंग बन गयीहैं, फिर चाहे ऐसे अवसर किसी ढंगके और कितनेही आयेहों', छूट का यह क्रम कोई अपवाद अब नहीं है। जो लोग हमारी संस्कृतिके इस संदेशके विश्वासी हैं कि 'मन वचन और कर्ममें आचरणकी शुद्धता हो'—ऐसे लोग आजकी लोकतान्त्रिक इस संसदमें जा पानेमें शायद ही समर्थ हो पायें। भारतीय समाजवादके पुरोधा आचार्य श्री नरेन्द्रदेव क्या इसी बातके उदाहरण नहीं हैं? जिनका मत है कि 'किसीभी देशमें काव्य, शास्त्र, दर्शनका बहुत प्रचार होनेपर भी यह आवश्यक नहीं है कि वहांके लोगोंका पारस्परिक आचरण भी शुद्ध हो, अपना ध्यान रखते हुए, दूसरोंका भी ध्यान रखना संस्कृतिका मूल'। आचरणकी शुद्धताके ऐसे कर्मठ कर्मयोगी, चुनाव लड़कर भी संसद्‌में कभी बैठ नहीं पाये तो इससे बढ़कर क्या विडम्बना हो सकतीहै?

आज तो विश्वकी सीमाएं इतनी अधिक संवेदनशील और खुली हुईहैं कि हिंसा, आतंक, शोषण-उत्पीड़न, ड्रग सेवन, सामूहिक बलात्कार आदि वैश्विक समस्याएं बनी हुईहैं। ऐसे विषाक्त वातावरणमें 'आचरणकी शुद्धतापर बल देना' किसी मंदिर, मठ, गिरजाघर या चैत्यालयके उपदेश जैसे ही है, जिसपर उसका उपदेष्टा भी उसके अनुरूप शुद्ध आचारण संभवतः न कर पाये। इस लेखकने अनेक स्थलोंपर शासन और सत्ताके विकेन्द्रीकरणपर बल दियाहै और समाजके भीतरसे उसके लिए आवाज उठती रहीहै, शासनभी इस ओर कुछ सजग है ही, पर प्रश्न तो 'आचरणकी शुद्धता' का है, परिवर्तनकी वास्तविक चाह और नीयतकी अम्लानताका है, चाहे फिर 'देश की भाषाकी समस्या हो', 'दूरदर्शनका दायित्व' हो, 'कलाके संरक्षणका सवाल' हो। पंचायती राजकी गांधीवादी परिकल्पना आजके इस भ्रष्ट और अनैतिक राजनीतिक वातावरणमें असंभव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। क्योंकि इस देशके विस्तृत इसके जनांचल इसी प्रदूषित वायुमें श्वास ले-लेकर जीवित हैं। 'एकताकी अनुभूतिसे प्रसूत अहिंसाबोध' आज तो एक विरल सत्य है। ऐसे वातावरणमें वैयक्तिक और सामूहिक प्रकारकी सामाजिक-आर्थिक क्रियाशीलताओंको राज्यके आवश्यक नियंत्रणसे कैसे मुक्त रखाजा सकताहै? इस अस्सी करोडके महादेशमें 'नियमका अपवाद करने की छूट' तो पहलेही से है। लेखकके विचार गहरे आदर्शवादी हैं, जो अपनी 'तमाम अदबी विरासत' की दुहाईके बावजूद, उपर्युक्त सचाईकी अनदेखी करनेके कारण निरे एकांगी हैं। लेखकका मानना है कि साम्यवादका पतन 'स्वभावमें अनिवार्य और स्थानीय और विकेन्द्रीकृत प्रौद्योगिर्काके अभावके कारण हुआ', वह पूंजीवादी 'बेस' पर खड़ा 'सुपरस्ट्रक्चर' था, तो फिर उसी पूंजीवादी प्रौद्योगिकीका जो स्थानीय और विकेन्द्रिकृत प्रौद्योगिकी नहीं है, अबतक पतन क्यों नहीं हुआ? जो नितान्ततः अबभी शोषण और पर-उत्पीड़नपर आधारित है, और जिसने मनुष्यको मशीनका एक पुर्जा भर बना रखाहै।

भारतीय समाजके पश्चिमीकरणके खतरेको लेखक ने दो एक स्थलोंपर शब्दांकित कियाहै, औरभी कुछ चिन्तक इस खतरेके लिए सावधान करते रहेहैं, पर आज इससे अछूता कौन है? चीन जैसा प्राचीन देश तक उदारीकरणकी नीतिसे क्या आज आक्रान्त नहीं है? उसकी सांस्कृतिक विरासत तो भारतकी भांति प्राचीन और महत्त्वपूर्ण भी रहीहै। नेहरूके भारतकी असंगतियोंको एक अच्छी समाजशास्त्रीय और इतिहासविद् दृष्टि सहजमें ही रेखांकित कर सकतीहै, पर क्या वर्तमान समाज-व्यवस्थाके लिए वे ही उत्तरदायी हैं, उसके अन्यान्य भागीदार नहीं। यह तो आज भी सच है कि 'ज्ञान विज्ञानकी कोई राष्ट्रीयता नहीं होती' परन्तु प्रत्येक संस्कृति उसे आत्मसात् करनेके पहले अनुरूप रंगत और रूपमें ढाल ही लेतीहै, वह अपनीही शर्तोंपर उसे स्वीकारतीहै, जहां कहींभी

प्रकाशवती किरण दीखे उससे आंखें नहीं मूंद सकती। उसे वह प्रकारान्तरसे संस्कारित करतीहै, उसका नाम संस्कृति इसीलिए तो है। अपनी अन्तर्दृष्टिका विकास भी तभी संभव हो पाताहै, फिर अपने अनुभवको समृद्धतर बनाना किसके लिए श्रेयस्कर नहीं होता? अतः पश्चिमसे आये ज्ञान-विज्ञानमें कैसे विमुख और वितृष्ण रहाजा सकताहै? भारतमें तकनीकी और प्रौद्योगिकीका इतना और ऐसा विकास क्या इसके बिना संभव हो सकताथा? पश्चिमका भी अपनी एक सांस्कृतिक दृष्टि है, माना कि वह उसके लिए ही ठीक हो, पर उसे पहचाननेके लिए हमारे पास दृष्टिकी सजगता होना भी आवश्यक है ही।

सारे निबन्ध पढ़नेपर यह सहजही ज्ञात हो जाता है कि इस लेखकने अपने विचार गांधी-दर्शनसे संस्कारित कियेहैं, और उन्हींके माध्यमसे इस देशकी अन्यान्य समस्याओंका समाधान खोजनेका भरसक प्रयत्न किया है। परन्तु वर्तमान सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवेशमें वे अधिक संगत और सार्थक इसलिए नहीं लगते कि इस अंतरिक्ष युगकी विकृतियोंका प्रभाव मनुष्य-मनपर अत्यधिक गहरा और विस्तृत है। वैज्ञानिकी, तकनीकी और प्रौद्योगिकी-विकासकी इस अंधी दौड़में नैतिक और मानवीय मूल्योंके सार्थक बोधका लोप-सा हो गयाहै। साहित्य और शास्त्र, कला और दर्शन, ज्ञान और विज्ञानका जैसा व्यवसायीकरण आज है, वैसा पहले कब था? सब ओर संवेदनहीन प्रतियोगिता और ज्वलनशील प्रतिशोधके विचारोंका प्राधान्य है। फिरभी 'न लोकतंत्र बचेगा न राष्ट्र'—जैसी लेखककी वैचारिक आशंका उसके पुराणों और याज्ञवल्क्य, भीष्म और कौटिल्य जैसे प्रखर पुरुषोंकी साक्षीके विद्यमान होते हुएभी, आजभी मात्र आशंका मात्र बनकर रह गयीहै। यह ठीक है कि सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्योंका राजनीतिकरण धड़ल्लेसे हो रहाहै। इस लेखकको परितोष यही सोचकर मिल रहाहै कि 'हमारे ग्रामीण समाज और छोटे नगरोंके समाजोंमें यह मूल्यबोध अभी भी बहुतसी विकृतियोंके होते हुएभी हमारे आचरणकी प्रेरणा बना हुआहै।' पर जिस पंचायती या लोक समितियों पर लेखकको इतना विश्वास है, उनके चुनावों और कार्य-कलापोंसे लेखकको उनकी वास्तविकतासे परिचय अबतक तो हो जाना चाहिये। 'भारतमाता ग्रामवासिनी' के मैले अंचलमें सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यबोधके स्थानपर लोकपीटक कर्मकाण्ड ही प्रतिष्ठा पा रहेहैं। कवि पंतने गलत थोड़ेही लिखा है—'यह भारतका ग्राम, सभ्यता-संस्कृतिसे निर्वासित/झाड़-फुंसके विवर, यही क्या जीवन-शिल्पीके घर? कीड़ोंसे रेंगते कौन ये बुद्धिहीन नारी नर।' हो सकता है ऐसी कवि-वाणी कुछ अतिरंजित चित्र प्रस्तुत करती हो। पर जिन्होंने पीठासीन अधिकारीके रूपमें से तीन चार बार सुदूर ढाणियों और गांवोंमें जाकर पंचायती चुनाव करवायेहैं, उन्हें दलगत राजनीतिके गहरे प्रभावका अच्छा अनुभव हो जाताहै।

अतः 'राष्ट्र एक स्वतंत्र भावात्मक-वैचारिक अस्मिताकी कर्मभूमि होतीहै, विदेशी उत्पादन पद्धतियों का बाजार नहीं'—जैसी लेखककी विचार-दृष्टि, आज के वैश्विक व्यावसायिक विकासके विस्तारमें एकांगी और निरी आदर्शवादी है। इस ओरसे इस शतुरमुर्ग की भांति वितृष्णाकी रेतमें गर्दन डालकर बच नहीं सकते। फिरभी गांधीजीका जीवन-दर्शन इस महादेश की सामाजिक और सांस्कृतिक अस्मिताके लिए आज भी मार्गदर्शक प्रकाश-किरण हैही। अतः इस लेखकने फिर इसकी श्रेयस्कर प्रासंगिकताकी ओर पाठकका ध्यान खींचनेका सार्थक प्रयत्न कियाहै। □

वार्षिक शुल्ककी राशिका शीघ्र भुगतानके लिए निवेदन

वार्षिक शुल्कके शीघ्र भुगतानके यह निवेदन करना इसलिए आवश्यक हो गयाहै क्योंकि बहुतसे ग्राहक-सदस्य, विशेष रूपसे शिक्षण संस्थाएं देयकोंका भुगतान लम्बे समयके बाद करतेहैं। इस बीच अनेक बार पिछले अंक उपलब्ध नहीं रहते और पिछले अंक देना सम्भव नहीं रहता। इस कठिनाईको ध्यानमें रखते हुए निवेदन करना आवश्यक हो गयाहै कि पूर्व शुल्क की अवधि समाप्त होनेसे पहले, अधिकतम अगला मास शुरू होनेसे पहले, शुल्क का भुगतान कर दें। सधन्यवाद।

"व्यवस्थापक : 'प्रकर'"

सुधियाँ उस चन्दनके वनकी[1]

लेखक : विष्णुकान्त शास्त्री

समीक्षक : डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

कलकत्ता विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागके पूर्व आचार्य श्री विष्णुकान्त शास्त्रीने विभिन्न क्षेत्रोंके महा-पुरुषोंके संसर्गमें आनेसे उद्दीप्त होकर ये संस्मरण लिखे हैं। पहले दो संस्मरण स्वामी अखंडानन्द सरस्वतीके हैं जिन्हें 'श्रद्धा और विवेकके ज्योतिवाही और खंड खंड फिरभी अखंड' शीर्षक दिया गयाहै। इधर बौद्धिकों विशेषत: विश्वविद्यालयोंके आचार्य-प्राचार्योंमें धर्म-अध्यात्मके प्रति एक विचित्र आकर्षण बढ़ाहै, जिसके मूलमें अलौकिक शक्तिके चमत्कारोंके प्रति मोह और रूढ़ि-रीतिग्रस्त कर्मकांडके प्रति अविवेक ही अधिक है, परन्तु प्रस्तुत संस्मरणोंमें ऐसा कोई कुहासा नहीं है। शुद्ध बुद्धि-विवेक सम्मत तथ्योंका ही उल्लेख है। अखंडानन्दजी लेखकको सचेत करतेहैं—'दलीय राजनीतिका सबसे बड़ा दोष यह है कि अपनी पार्टीके दुष्ट व्यक्तियों और गलत नीतियोंका भी समर्थन करना पड़ताहै एवं दूसरी पार्टीके विशिष्ट व्यक्तियों और अच्छाइयोंका भी विरोध करना पड़ताहै। यहभी एक प्रकारका भाई भतीजावाद है। पार्टी मुख्य नहीं है, नरनारायण मुख्य हैं। (पृ. १७)।

यज्ञ और तपको भी आजकी परिस्थितियोंमें परिभाषित किया गयाहै। अपने ऊपर कमसे कम खर्च करना ही तप है और इस प्रकार न्यायोपार्जित धनको दूसरोंके हित व्यय कर देनाही यज्ञ है। क्रोधकी व्या-ख्या—"कं सुखं रोधयति इति क्रोध:" (पृ. १४) शब्द क्रीड़ा अधिक है। स्वामीजीकी व्याख्याएं गंभीरताके साथ खिलवाड़ नहीं है। प्रज्ञानसे नहीं, अपितु भग-वत्कृपासे आत्मतत्त्वकी उपलब्धिके प्रसंगमें स्वामीजीने कहा—"अनुकूलता-प्रतिकूलता दोनोंमें प्रभुकी कृपा देखनेवालोंको कृपाकी अधिकाधिक अनुभूति होने लगतीहै।" (पृ. १६)।

आस्तिकोंको तो बड़ीसे बड़ी विपत्ति प्रभुकी ओर ले जानेवाली लगतीहै और सामान्यजन भी अपने कष्टोंको अपने कर्मोंका भोग समझकर सह लेताहै। परन्तु तर्कसंगत विवेचनसे जब इन कष्टोंके मूलमें दुराचारी अन्यायी दिखायी पड़तेहैं तब प्रभुकृपा समझ कर इन्हें सहना कठिन पड़ताहै। आस्तिकता जहां प्रतिकूलताको सह लेनेका कवच है वहां वह कार्य-कारण परम्पराको अनदेखाकर वास्तविकताको झुठलाने की प्रवंचना भी है। फिर तो किसी अन्याय अत्याचार या दु:खके निवारणकी आवश्यकता नहीं रहेगी और इस प्रकार अवतारवाद भी निरर्थक हो जायेगा। अत: स्वामीजीकी यह बात भक्तोंके लिए ही है आजके बुद्धि-विवेक सम्पन्नकी इससे संतुष्टि नहीं होती।

दूसरा संस्मरण उनके देहान्तके बाद भावुकतामें लिखा गयाहै 'मरणको भी चुनौती देताहै स्मरण', देहान्तके बाद स्मृति रूपमें वह कुछ कालतक सुरक्षित रहताहै। स्वामीजीके अनेक नीति कथनोंको उद्धृत किया गयाहै। "बिना शुद्ध पवित्र हुए देश सेवा करने का दम भरनेवाले बादमें अपनीही सेवा करने लगते हैं" (पृ. २२)। लेखकको सचेत किया गयाहै—'प्रार्थनाके समयपर यह निश्चय कर लीजिये कि 'सत हरिभजन जगत् सब सपना' (पृ. २३)। लेखन जगत् गतिसे अत्यधिक व्याप्त ही नहीं अपितु त्रस्त होकर आपात्कालसे प्रेरित होकर राजनीतिमें कूद पड़नेवाला लेखक इस जगत्को सपना कैसे मान ले? वह तो एक राजनीतिक उद्देश्य पूरा करनेके लिए रामका सेवक है।

---

१. प्रका. : भारतीय साहित्य प्रकाशन, २८६ चाणक्य पुरी, सदर, मेरठ-२५०००१। पृष्ठ : १५६; डिमा. ९२; मूल्य : ८०.०० रु.।

पत्रोंके माध्यमसे भी स्वामीजी दिशा निर्देश करते रहेहैं लेखकको "यदि सच्चा मनुष्य राजनीतिमें पड़ेगा तो उसको बादमें वैराग्य अवश्य होगा।··· कालान्तरमें या तो वह राजनीति छोड़ ही देगा या मूल्योंपर अधिष्ठित राजनीतिके आंतरिक कष्ट झेलता रहेगा" (पृ. २३)।

काव्यशास्त्रीय शब्दावलीका प्रयोग स्वामीजीके द्वारा उपासनाके क्षेत्रमें असमंजस पैदा करताहै—'उपासना वाच्यार्थकी ही होतीहै, लक्ष्यार्थकी नहीं। शालग्राम शिला शिवलिंग देव प्रतिमा साक्षात् भगवान् है, यही भाव रखना चाहिये ।···प्रतिमा-पूजन करनेवाले की भावना यदि दृढ़ है तो वह प्रभुका ही पूजन करता है" (पृ. २६)। इसी कारण प्रतिमा-पूजन सर्वस्व हो उठी। प्रतिमा परमात्मातक पहुंचनेका साधन है, यह भूलकर मूर्तिपूजाकी रूढ़िके अभिशाप भयावह हो उठे। तुलसीके विषयमें स्वामीजीकी यह धारणा विचारणीय है—"उन्होंने ब्रह्मको ही इष्टदेव बनाया है, इष्टदेवपर ब्रह्मत्वका आरोप नहीं कियाहै। वेदान्तवेद्य विभु ही उनके राम हैं" (पृ. २६)। वास्तविकता यह है कि दशरथ सुतपर ब्रह्मत्वका आरोप तुलसीने कियाहै।

मूल सत्यकी रक्षा करते हुए युगकी आवश्यकताओं के अनुसार धर्मके आचार्योंने निरन्तर परिवर्तन किये हैं और आजभी किये जाने चाहियें। उनकी ऐसी मान्यता थी। किसी एकही आचारसे धर्म बंधा हुआ है, ऐसा स्वामीजी नहीं मानतेथे—"अपने-अपने कर्तव्य कर्ममें व्यापक ईश्वर दृष्टिका अवतरण ही धर्म है, धनियों और गरीबोंके बीच आये धनको हस्तांतरित करनेमें सहयोग दे" (पृ. २९)। व्यवहारमें यह कितना असम्भव है? व्यावहारिक जीवनकी जटिलता में इन उपदेशोंको कभी परखा नहीं गया।

एक अन्य जिज्ञासाके उत्तरमें स्वामीजीने कहा—मोक्षकामियों या निष्काम भक्तोंके लिए निवृत्तिकी ही बात ठीक है किन्तु प्रवृत्तिपरायण गृहस्थोंके लिए वैदिक उपदेश, धर्म-अर्थ कामके त्रिवर्गको सिद्ध करने को कहाहै।···गृहस्थोंके लिए मानेच्छा शुभ है। धर्मपूर्वक मान प्राप्त करनेकी चेष्टामें कोई दोष नहीं है। ···जब सर्वत्यागी संन्यासी बननेकी सच्ची प्रेरणा होगी तब मानेच्छाभी अपने आप छूट जायेगी।··· अच्छे काम करते हुए मान प्राप्त हो तो उसका स्वागत है, मान प्राप्त करनेके लिए ही विभिन्न काम करना ठीक नहीं है" (पृ. २८-२९)। पोंगापंथी प्रवचनकर्त्ताओंसे काफी भिन्न दृष्टि है स्वामीजीकी। भक्तिपूर्वक लिखा गया यह संस्मरण लेखककी सत्यके प्रति रूचिको व्यक्त करताहै।

'दीप बुझ गया, शिखा अमर है' महादेवीजी विषयक संस्मरण है, जिसमें बड़ेसे बड़े राजनेताके सामने उनकी स्पष्टवादिता, सरलता, राजनीतिक सामाजिक जीवनमें उनके योगदान, प्रशासनिक और दैनिक जीवनमें हिन्दीको उचित स्थान दिलानेकी तड़प और जनजीवनमें व्याप्त भ्रष्टाचारके प्रति आक्रोश मुखर हुआहै। इलाहाबादमें अवैध बम फैक्ट्री पकड़े जानेपर महादेवीजीकी करुणा चीख उठी—"देश की वर्तमान स्थितिको देख-देखकर शरीर अब ऐसा नहीं रह गयाहै कि इस सबके विरोधमें सक्रिय रूपसे कुछ कर सकूं तुम लोग कुछ करते नहीं, क्या हो गया है?···ये बम किनपर चलेंगे। निर्दोषों और गरीबों पर ही तो। अब मेरा परमधाम जानेका समय आ गयाहै" (पृ. ६१)। कर्त्तव्य-निर्वाहमें अक्षमतासे उत्पन्न यह निराशा ही है।

बापूसे वार्तालापमें महादेवीजीने कहा—आपका प्रिय भजन है 'वैष्णवजन तो तेने कहिए, जो पीर पराइ जाणे रे।' यही तो कविका भी लक्षण है। दूसरोंकी पीड़ाको जानना। आप कैसे वैष्णव हैं जो कविता नहीं समझते।' बापू द्वारा कविता-पुरस्कारकी राशि मांगनेपर महादेवीजी बोली—'यदि आप कविता समझते होते तो मैं ये रुपये आपको दे देती। पर आप तो कविता समझते ही नहीं, समझना भी नहीं चाहते। अब तो मैं ये रुपये महिला विद्यापीठको ही दूंगी" (पृ. ३४)। यह बात सुलभ वार्तालाप दोनोंके हृदयोंकी निर्मलताको व्यक्त करतीहै। लेखनमें ही असीम करुणामयीके रूपमें महादेवीजी व्यक्त नहीं होती अपितु व्यावहारिक जीवनमें राष्ट्रीय आन्दोलनके समय बंदी कार्यकर्ताओंकी महिलाओंके लिए यही महिला विद्यापीठ आश्रयस्थल बनताथा और इसीके माध्यमसे भारतीय नारीके अभिशापके कारण और निवारणका विवेचन एवं समाधान व्यावहारिक धरातलपर महादेवीजीने प्रस्तुत किया। महामना मालवीयजीके विषय में प्रचलित विवादको निर्मूल करनेवाला एक प्रमाण महादेवीजीने दिया—"काशीके पंडितोंके विरोधके

बावजूद मालवीयजीने हरिजनोंको राममंत्रकी दीक्षा दीथी" (पृ. ३५)।

राष्ट्रीय संकटमें साहित्यकारके दायित्वका निर्वाह करते हुए उन्होंने ४३ में बंगालके अकालके समय तथा चीनी आक्रमणके समय 'हिमालय' संकलन तैयार किया और इसी परम्परामें लेखकने भी बांग्लादेश मुक्ति संग्रामके दिनोंमें धर्मवीर भारतीके साथ मोर्चेपर जाकर लोमहर्षक अनुभूतियोंको मौलिक और अनूदित रचनाओंके प्रकाशनके माध्यमसे अभिव्यक्ति दी। "हिन्दीकी चेतना इस प्रकार न्यायके पक्षमें और अन्यायके विरोधमें मुखरित होती रहे।" यह कामना भी महादेवीजीके लोक-समर्पित मनकी अभिव्यक्ति ही है।

७५ में प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन नागपुरमें अनेक राजनेताओंके समक्ष महादेवीजीने भैरवनाद किया—"संस्कृति तबतक गूंगी रहेगी, जबतक राष्ट्र की अपनी वाणी नहीं होती। राष्ट्रभाषा नहीं होती। ...हमारी संस्कृतिमें दिशा निर्देशक दूसरे होतेथे और शासक दूसरे। अब शासकहीं दिशा निर्देश देने लगे हैं। इसीलिए दिशा नहीं मिल रहीहै" (पृ. ३६)। चालीस वर्ष पहले प्रेमचन्दने ऐसेही चेतायाथा—साहित्य राजनीतिके आगे चलनेवाली मशाल है। चित्रकूट के रामायण मेलेमें मोरारजी देसाईकी उपस्थितिमें जब डॉ. रामकुमार वर्माको मंचपर नहीं आने दिया, तब महादेवीजीने फिर सिंह गर्जना की—"चित्रकूट तो वह पावन स्थान है जिसमें प्रवेश करनेसे पूर्व महाराजाधिराज जनकने भी रथसे उतरकर पैदल चलना उचित समझाथा। संस्कृतिपर शासन क्षमताको हावी नहीं होना चाहिये" (पृ. ३९)। ऐसे ही तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलनमें भी उनका तेजस्वी रूप प्रकट हुआ। राष्ट्रभाषाके नामपर ऐसे प्रदर्शनकर लेनेसे हिन्दीको शासन कार्यसे बहिष्कृत रखनेका उसका पाप धुल नहीं जाता" (वही पृष्ठ)।

काव्यमें निर्गुण और जीवनमें सगुण साकारके प्राकट्योत्सव रामनवमी और कृष्ण जन्माष्टमी महादेवीजी मनातीहै जिसे लेखकने तुलसीके निर्गुण सगुण समन्वय जैसा बतायाहै। महादेवीजी बोलीं—'अच्छा अब रामजी पैदा हो गयेहैं तो दुष्टोंका नाश भी करें। उनकी संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है" (पृ. ३८)। समारोहोंके तामझामके प्रति उनके मनमें कोई आकर्षण नहीं था 'दद्दाके नामपर आयोजन तो कई हुए पर ठोस काम कुछ भी नहीं हुआ। न उनकी समस्त कृतियोंका अल्पमोली संस्मरण प्रकाशित कियाजा सका, न कोई स्थायी महत्त्वका सर्वांगीण दृष्टिसे उनका मूल्यांकन करनेवाला कोई ग्रन्थ निकला" (पृ. ३८)। मैं आजकल पत्रकारोंका बिल्कुल भरोसा नहीं करती। वे लोग कुछका कुछ छापकर अपने लेखन को चटपटा बनाते रहतेहैं" (पृ. ३९)।

दुःखकी बदलीके रूपमें प्रसिद्ध महादेवीजीकी यह प्रखरता प्रायः प्रच्छन्न ही रहीहै, जिसे प्रमुखतः इस संस्मरणमें उजागर किया गयाहै।

अज्ञेयजीका संस्मरण उन्हींकी कविताकी एक पंक्तिके शीर्षक 'आलोक छुआ अपनापन' है, जो लेखक की अपनी शब्दावली 'स्मृति मंथन' शैलीमें लिखा गया है। अपनेको खोलकर न मिल सकनेवाली प्रवृत्तिके विषयमें अज्ञेयके सन्दर्भमें दो मत नहीं है। ऐसा ही रहस्य, वेदना-विद्रोहकी रचनाकार महादेवीमें मिलता है 'महादेवीजीकी हंसी और आपका मौन क्रियामें विपरीत होते हुएभी फलमें एक जैसे हैं, औरोंसे अलग रहनेके वर्म जैसे" (पृ. ४१)। एककी हंसी, दूसरेका कौन अनजानोंकी भीड़में ही नहीं अपनोंके साथभी एक दूरी बनाये रखताहै। फ्रायडके प्रभावके विषयमें पूछे जानेपर अज्ञेयने जगत्के व्यापारोंको समझनेके लिए बड़े मनीषियोंकी कृतियोंका अध्ययन गौरवका विषय बताकर टाल दिया (द्रष्टव्य पृ. ४१)। 'काव्यका अर्थ कुछ प्रकट, कुछ छिपा हुआ होना चाहिये' अज्ञेय के विचारको लेखकने 'नयेपनके नामपर कविताको अनबूझ पहेली बना देनेका समर्थन नहीं किया' (पृ. ४२)। अज्ञेयजीने हिन्दी साहित्यके भारतीय बने बिना विश्वका बननेपर आपत्ति प्रकट की—"मेरा सौभाग्य है कि मैं आजका भी हूं और भारतीयभी। पिछला बोध मुझे भी कुछ देरसे हुआ। धीरे-धीरे मुझे लगा कि मुझे भारतीय होनाहै" (पृ. ४३)। परन्तु उनका 'आज' और 'भारतीय होना' जनसामान्यसे अलग होनेके कारण विवादास्पद है। इसी प्रकार उनकी नवीनता विषयक धारणा भी विवादग्रस्त है—"बदली हुई परिस्थितियोंका वर्णन करते हुए अपनी नयी दृष्टिसे पुरानेका वर्णन करनाभी जिस प्रकार नया है, उसी प्रकार पुरानी दृष्टिसे ही किया गया नये का वर्णन भी एक सीमा तक नया है" यह शब्दोंके

गड़बड़झालेके अलावा विचारोंकी गड्डमड्ड भी है, भलेही लेखकके पारम्परिक मनको यह अच्छी लगीहो (पृ. ४३)। अज्ञेयजीका यह कथन यथार्थ ही है कि कृतिकारकी बातोंका कम उसकी कृतियोंका अधिक विश्वास करना चाहिये तथा व्यक्तिके चिन्तन या अनुभवपर आधारित सत्यके ही वे समर्थक है। वर्षों तक मनमें चुभती रहकर स्पष्टतर होनेवाली बातको ही अज्ञेय लिखने बैठतेहैं। प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलनमें विदेशियों द्वारा हिन्दी प्रयोगपर हिन्दीवालोंकी मुग्धता को उनकी अपरिपक्वता ही मानतेहैं वे। उनके अनुसार ऐसे सम्मेलनोंके प्रदर्शनोंसे नहीं, लोक-सम्मेलनों के निर्णयोंके क्रियान्वयनसे हिन्दीको वास्तविक शक्ति मिल सकतीहै, पर विश्व हिन्दी सम्मेलनोंने विश्वमें हिन्दीकी स्थितिका जो साक्षात्कार करायाहै, उसे अनदेखा नहीं किया जाना चाहिये। अज्ञेयके परवर्ती काव्य में भक्ति चेतनाको लेकर लेखककी धारणाका खण्डन मार्क्सवादी आलोचकोंने राजनीतिक निष्ठाके कारण किया, यद्यपि अज्ञेय जीने उसका समर्थन किया।

निजी और विशिष्ट अनुभवोंके कारण अज्ञेय पुनर्जन्मको न मानते हुए भी आस्तिक हैं। वे भक्ति स्तोत्रोंके पाठ करने लगेहैं विद्यानिवास मिश्रकी प्रेरणा से, भलेही इनके फलश्रुतिके अंशोंको छोड़ देतेहों। जय जानकी यात्रा और भागवत यात्राके आयोजनोंमें निहित अज्ञेयका आध्यात्मिकताके प्रति रुझान स्पष्टतर होता गया। लेखकके अनुसार यह जीवन और जगत्‌को उपेक्षा या पलायन न होकर इनको अधिक सारवान् बनानेकी अन्तर्दृष्टि थी। वैचारिक स्तरपर यह भले ही सत्य हो, रचनाके स्तरपर यह जीवन और जगत् अज्ञेय तक ही सिमटा हुआहै। मुक्त छंदके पाठ-कौशलके विकासके पक्षधर थे अज्ञेय। बोधगया की महानो नदी तथा नर्मदा किनारेकी पतली धारामें घुटनों पानीमें खड़े होकर अज्ञेयजीने कविताएं सुनायीं, जिनका मखौल भी उड़ाया गया। क्रांतिकारीको अपने साथीके प्रति रागात्मक नहीं होना चाहिये उसके विपथगामी होनेपर शत्रु समझकर समाप्त कर देनेके अज्ञेयजीकी धारणाको लेखकने अमान्य ठहरायाहै, जबकि क्रांतिके अनुशासनके लिए यह अपरिहार्य है। सत्तारूढ़ होनेपर क्रांतिकारी भी स्थितिशील हो जाते हैं, अज्ञेयजीकी इस धारणासे लेखकके असहमत होने का कोई कारण नहीं है।

लेखक अज्ञेयजीकी इस धारणासे बड़े आश्वस्त होतेहैं कि मूलतः हिन्दू देश होनेके कारण भारतमें रूस चीन जैसी क्रांति नहीं हो सकती तथा यहां लोकतन्त्रके स्थायी होनेका कारण भारतमें हिन्दू धर्म संस्कृतिकी चेतना ही है। हिन्दू संस्कृति, सत्तापर अधिकार किये

बिना समाजको बदल देनेका संकल्प करनेवालोंको क्रांतिकारीसे अधिक संत कहतीहै और गांधीजी ऐसेही संत थे" (पृ. ५३)।

अज्ञेयका विद्रोह समर्थक होना लेखकको रोचक प्रतीत होताहै परन्तु क्रांतिकारी आन्दोलनके बाद तो अज्ञेय वैयक्तिकताके क्षेत्रमें ही विद्रोहकी बातें करते रहे और 'अच्छी कुंठा रहित इकाई सांचे ढले समाज से' की घोषणा करते हुए 'नदीके द्वीप' बने रहनेमें ही अपनी सार्थकता घोषित करते रहे। भलेही 'यह दीप स्नेहभरा मदमाता इसको भी पंक्ति को दे दो' वे कहते रहेहों, लेकिन उनका जीवन और साहित्य दोनों ही आभिजात्य वैयक्तिकताके पक्षधर रहेहैं। इसलिए इनपर अहंवाद या वैयक्तिकताका आरोप यदि लगताहै, भले ही वे फासिज्मके विरोध में खड्गहस्त रहे, पर समाजवाद/साम्यवादको उन्होंने नहीं अपनाया। अज्ञेयकी इसी प्रवृत्तिका लेखकने इस रूपमें समर्थन किया 'किसीसे उधार लिये हुए तथाकथित सत्य सिद्धान्तकी बेदीपर वे व्यक्तिके अनुभव और विचारकी बलि नहीं चढ़ातेथे" (पृ. ५४)। यह तो ठीक है कि उन्नत स्वतन्त्र और विवेकी व्यक्तियोंके आधारपर ही सचमुच बड़ा समाज निर्मित हो सकताहै पर जहां आधीसे अधिक आबादी भूख बीमारी और प्राकृतिक अभिशापसे ग्रस्त हो वहां उनमें व्यक्ति विवेक कहांसे आयेगा? यह तो अज्ञेय जीकी वैचारिकताका समर्थन लेखकने क्षेमेन्द्रके एक श्लोकसे कियाहै जिसमें नियतिवाद और अतर्कित रूपसे आते जाते रहनेवाले भोगोंका अनुभव करते रहनेको कहा गयाहै (द्रष्टव्य पृ. ५४)।

अज्ञेय-निधनसे आहतोंको उन्हींकी ये पंक्तियों आश्वस्त करतीहैं "लेकिन/फिर आऊंगा मैं झोलीमें लिये अग्निबीज/धारेगी जिसको धरा तापसे/होगी रत्न प्रसू", । फिर कैसे अज्ञेयको पुनर्जन्ममें अविश्वास करनेवाला मानाजा सकताहै? और यहभी कैसे माना जाये कि 'वे जीवनकी धज्जियां उड़ानेवाले थे' (पृ. ५६)। वास्तवमें अज्ञेय अपने नामके अनुरूप ही रहे। एक संस्मरण क्या एक ग्रंथमें भी पूरे रूपमें उन्हें समझना-समझाना संभव नहीं है। ☐

[शेष आगामी अंकमें। शेष अंशके चर्चित व्यक्तित्व है: डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. नामवरसिंह, उमाशंकर जोशी (गुजरात)]

स्मृति शेष : मेरे समकालीन[१]

[मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, वृन्दावनलाल वर्मा, आ. चतुरसेन शास्त्री, आ. किशोरीदास वाजपेयी, जैनेन्द्रकुमार, रामधारीसिंह दिनकर, उदयशंकर भट्ट, आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, स. ही. वात्स्यायन 'अज्ञेय,' अमृतलाल नागर, प्रभाकर माचवे]

लेखक : विजयेन्द्र स्नातक

समीक्षक : डॉ. मूलचन्द सेठिया

आलोच्य कृतिमें हिन्दीके मूर्धन्य समीक्षक डॉ. विजयेन्द्र स्नातकने हिन्दीके उन बारह साहित्य-महारथियोंके जीवन और साहित्यका मूल्यांकन प्रस्तुत किया है, जो अब स्मृतिशेष हैं। प्रायः सभी निबन्ध उक्त साहित्यकारोंकी मृत्युके पश्चात् लिखे गयेहैं, अतः उनमें कुछ स्नेह और सम्मानजन्य भावोष्माका अनुभव कियाजा सकताहै, परन्तु लेखककी दृष्टि जीवन से हो कर साहित्यपर जानेके बावजूद बहुत कुछ तटस्थ और भावुकतासे अप्रभावित रहीहै। मैथिलीशरण गुप्त और माखनलाल चतुर्वेदी विषयक लेख तो शुद्ध समीक्षात्मक कहेजा सकतेहैं क्योंकि वे वैयक्तिक जीवन-प्रसंगोंके समावेशसे सर्वथा शून्य है। शेष निबन्धोंमें डॉ. स्नातकने सम्बद्ध साहित्यकारोंके साथ अपने व्यक्तिगत स्नेह-सम्पर्कोंका उल्लेख अवश्य कियाहै, जिसमें वैयक्तिक संस्पर्शके कारण समीक्षामें एक प्रकारकी सजीवता और आत्मीयताका समावेश हो गयाहै। फिरभी, मूल्यांकनमें तटस्थता और निर्वैयक्तिकताका सम्यक् निर्वाह सम्भव हो सकाहै। व्यक्तित्वके माध्यम से कृतित्व तक पहुंचनेका यह प्रयास लेखकी बौद्धिक सजगता और निर्लिप्तताके कारण व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों से सर्वथा मुक्त रहाहै। समीक्षकके रूपमें डॉ. विजयेन्द्र स्नातक वैसेभी किसी दल, सम्प्रदाय या आन्दोलनसे प्रतिबद्ध नहीं रहेहैं।

डॉ. विजयेन्द्र स्नातककी ये समीक्षाएं अतिविस्तृत न होनेपरभी सारगर्भित हैं। इसका कारण यह है कि

---

१. सम्पर्क : भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ। पृष्ठ : १०१; डिमा. ९३; मूल्य : ६५.०० रु.।

उन्होंने रचनाकारोंकी मूल प्रेरणाको पकड़नेका प्रयास कियाहै। उनकी दृष्टि उस केन्द्रके सन्धानकी ओर प्रवृत्त रहीहै, जिसपर स्थिर होकर वे साहित्यकी परिक्रमा करते रहेहैं। मैथिलीशरण गुप्तके सम्बन्धमें उन्होंने लिखाहै : "उनके काव्यकी मूल प्रेरणा-शक्ति वैष्णव भावना है।" यह इतनी व्यापक और उदार है कि उसमें किसी प्रकारकी संकीर्णता, रुढ़िवादिता और हठधर्मिताके लिए कोई अवकाश नहीं रह गयाहै। "इस वैष्णव भावनाका मूल अहिंसा, प्रेम, समता, ममता, दया, करुणा और सर्वभूत कल्याणमें निहित हैं।" इसी प्रकार 'राष्ट्र और राष्ट्रीयताकी चिन्तामें निमज्जित' माखनलाल चतुर्वेदीके काव्यकी मूल प्रेरणा-शक्ति भी परम्परागत वैष्णव भावना है। परन्तु, गुप्तजी और माखनलालजीकी वैष्णव भावना तत्त्वतः एक होनेपर भी अपने फलितार्थमें भिन्न हो जातीहैं। गुप्तजी अपनी वैष्णवताको नरमें नारायणकी प्रतिष्ठा करते हुए राष्ट्रीय अस्मितासे सांस्कृतिक मूल्योंकी स्थापनाकी ओर उन्मुख कर देतेहैं तो माखनलालजी एक ओर अपनी वैष्णव भावनाको रहस्य और अध्यात्मके साथ अनुस्यूत करतेहैं तो दूसरी ओर "वैष्णवता और राष्ट्रीयताका मणि-कांचन संयोगकर उसे बलि-पथकी ओर अग्रसर कर देतेहैं।" डॉ. स्नातककी दृष्टिमें 'दिनकर मूलतः राष्ट्रीयताके कवि हैं, शौर्य, तेज और मन्युके कवि हैं। 'रसवन्ती, 'द्वन्द्वगीत' और 'उर्वशी' परम श्रेष्ठ काव्य हैं, पर वे उस निकुंजके समान हैं, जहां युद्धसे लौटा हुआ योद्धा विश्राम करताहै। 'दिनकर' का दिनकरत्व 'रेणुका', 'हुंकार', 'रश्मिरथी' और 'परशुरामकी प्रतीक्षा' में पूरे तेजके साथ जलताहै।" इसी प्रकार "अज्ञेयकी साहित्य-चिन्तामें मूल्य-चिन्ता ही प्रमुख थी। उनके साहित्य-सृजनमें 'मूल्य' केन्द्रमें रहा। उनकी मान्यता थी कि जीवनसे बड़ा मूल्य होताहै और उसे मानव ही गढ़ताहै।" इसमें सन्देह नहीं कि अज्ञेय के कृतिकारके साथ मूल्योंकी यह खोज बराबर जुड़ी है; फिर चाहे अपनी अभिव्यक्तिके लिए उन्होंने किसी भी विधागत माध्यमको क्यों न स्वीकार कियाहो।

कवियों ही नहीं उपन्यासकारोंकी समीक्षामें भी डॉ. स्नातकने उनके मेरुदण्डको पकड़कर उनकी रचनाओंके केन्द्रस्थ तत्त्व तक पहुंचनेका प्रयास किया है। आचार्य चतुरसेन शास्त्रीके सम्बन्धमें वे लिखतेहै : "अन्याय और अनीतिके प्रति विद्रोह उनका स्वभाव बन गया... इस प्रकार उनके साहित्यमें हम जिन तत्त्वोंको प्रेरक शक्तिके रूपमें देखतेहैं उन्हें हम अभाव, श्रम, वेदना, सेवा, विद्रोह, कल्पना, विवेक और संयम आदि शब्दोंमें समाहित कर सकतेहै।" चतुरसेनके उपन्यासों में अतीतकी ओर उन्मुखताके होते हुएभी कहीं अतीत-जीवी दृष्टिका परिचय नहीं दिया गयाहै। उनके उपन्यासोंमें शक्तिपूर्ण प्रतिरोध और उत्साहपूर्ण नवनिर्माणके दृश्य ही चित्रित किये गयेहैं। जैनेन्द्रकुमार के "कथा-साहित्यकी मूल संवेदना प्रेम है, अतः प्रेममें कार्य-कारण सम्बन्धोंकी व्याख्यामें उनका मन स्वभावतः रमताहै।" उनके सभी उपन्यासोंमें नर-नारीके पारस्परिक राग-विरागसे उत्पन्न होनेवाली आकर्षण और विकर्षणकी द्वन्द्वात्मक स्थितियोंको चित्रित किया गया है। वृन्दावनलाल वर्माकी सृजन-प्रेरणा बुन्देलखण्डकी शौर्य गाथाओंसे सम्बद्ध रहीहै और उन्होंने इतिहास और कल्पनाके संयोगसे वीरता और रोमांसके जिस सम्मोहक लोककी सृष्टि कीहै वह सर्वथा यथार्थ न होने पर भी मिथ्या नहीं है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीके अधिकांश लेखनका स्वर मूलतः सांस्कृतिक रहाहै।" उनकी औपन्यासिक कृतियोंमें युगके सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिवेशका सजीव चित्रण होनेके साथही रचना-दृष्टि मूलतः 'मनुष्यपर ही केन्द्रित रही है। उनकी दृष्टिमें "मनुष्य समस्त संस्कारों, समस्त रीति-रिवाजोंसे बड़ा है।" अमृतलाल नागरके उपन्यासोंकी केन्द्रीय-भूमिका सन्धान करते हुए डॉ. स्नातक इस निष्कर्षपर पहुंचतेहैं "यथार्थवाद ही ऐसी भूमि है जो प्रामाणिकताके साथ युगीन परिवेशको समेटकर खड़ा रहने योग्य बना सकतीहै"। इस तथ्य को समझकर नागरजीने मनुष्यको जीवनके यथार्थके साथ जूझने और जीवित रहनेका सन्देश दियाहै।" अपनी इस अदम्य जीवन आस्थाके बलपर ही वे तारे जैसे जटिल और जीवन्त चरित्रकी अनुपम सृष्टि कर सकेहैं। अज्ञेयने 'शेखर : एक जीवनी' में सतही नैतिकताको रुढ़ रूपमें स्वीकार करनेके बजाय उसके मूल उत्सोंको खोजनेका प्रयास कियाहै। शेखर हो या भुबन अपनेसे बड़े किसी जीवन मूल्यकी खोजमें ही भटकते रहेहैं, भले ही वे उसे उपलब्ध करनेमें कृतकार्य न हो सकेहों।

'स्मृति शेष: मेरे समकालीन" विशुद्ध समीक्षात्मक निबन्धोंका संकलन नहीं है क्योंकि डॉ. स्नातकने अपने

समकालीनोंके साथ अपने व्यक्तिगत सम्बन्ध-सूत्रोंके माध्यमसे उनकी रचनाधर्मिताके साक्षात्कारका प्रयास कियाहै। मैथिलाशरणजी और माखनलालजीके अतिरिक्त अन्य सभी साहित्यकारोंसे सम्बद्ध कुछ जीवन-प्रसंगोंका उल्लेख अनायास हो गयाहै। किशोरी दास वाजपेयीके रूपमें एक उद्भट वैयाकरणसे अधिक 'एक तेजस्वी ब्राह्मणके विद्रोही व्यक्तित्व" का ही अभिनन्दन किया गयाहै। हिन्दीके इस पाणिनीको अधिकतर 'एक क्रोधी, अक्खड़, लड़ाकू और मुंहफट व्यक्तिके रूपमें ही स्मरण किया जाताहै, परन्तु डॉ. स्नातकका मत है यदि उनके विद्रोही स्वभावका विश्लेषण किया जाये तो वाजपेयीजी स्पष्टवादी, सत्यवादी होनेके साथ-साथ निस्पृह त्यागी, बलिदानी, स्वदेशाभिमानी, राष्ट्रवादी, और फक्कड़ही सिद्ध होंगे।" उदयशंकर भट्टके सम्बन्धमें डॉ. स्नातकने लिखाहै "मैं उन्हें कवि नाटककार या कलाकारके नाते नहीं वरन् एक निष्कपट सरल और सात्विक व्यक्तिके रूपमें श्रद्धास्पद समझताहूं।" कविके रूपमें उनकी विशेषता यह रहीहै कि 'छायावादी युगसे नयी कविताके सन् ६५ तक के समस्त आन्दोलन, वाद, विचार प्रवृत्ति आदि उनके साहित्यमें किसी-न-किसी रूपमें प्रतिफलित होते रहेहै।" युग-चेता होते हुएभी शिविरबद्धताको उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया। डॉ. स्नातकने प्रायः सभी साहित्य विधाओंके माध्यमका प्रयोग करनेवाले डॉ. प्रभाकर माचवेको एक ऐसे अद्वितीय व्यक्तिके रूप में स्मरण कियाहै "जो भारतीय भाषाओं और साहित्योंके मध्य सेतु बनकर भारतीयताको सही परिप्रेक्ष्यमें परिभाषित और प्रस्तुत करनेमें" आजीवन प्राणप्रणसे संलग्न रहेथे।

मैथिलीशरण गुप्त और माखनलाल चतुर्वेदी विषयक निबन्धोंमें राष्ट्रीय सांस्कृतिक धाराके इन दो शलाका पुरुषोंके काव्यकी मूल प्रेरणा और विविध प्रवृत्तियोंका विश्लेषण करते हुए उनके महत्त्वपूर्ण प्रदेय को रेखांकित किया गयाहै। उनके सम्बन्धमें जो कतिपय उद्धरण प्रस्तुत किये गयेहैं वे भी उल्लेखनीय हैं। डॉ. राजेन्द्रप्रसादने गुप्तजीके बारेमें कहाथा "गुप्तजी तीन पीढ़ीके कवि हैं। मैं, मेरा पुत्र और मेरे पौत्र तीनों ने गुप्त जीकी कवितासे हिन्दीका संस्कार पायाथा।" चतुरसेन शास्त्रीपर लिखते हुए उनके राजनीति, इतिहास एवं आरोग्य शास्त्र आदि साहित्येतर विषयोंके ग्रंथोंको भी दृष्टिगत रखा गयाहै। "विद्रोह और क्रान्तिकी चिनगारीसे भास्वर उनका लेखन अतीतको समेटता हुआ वर्तमानमें होकर अनागतकी झांकी प्रस्तुत करनेवाला है।" जैनेन्द्रके विचार-साहित्यको उसके कथा-साहित्यसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण घोषित किया गयाहै। "जैनेन्द्र मूलतः उच्च कोटिके चिन्तक थे उनके चिन्तनमें सुकरात जैसी मौलिक सूझबूझकी चेतना लक्षित कीजा सकतीहै। दिनकरके सर्वश्रेष्ठ काव्य 'उर्वशी' के महत्त्वको डॉ. स्नातकने दो-चार पंक्तियोंमें ही गागरमें सागरकी तरह भर दियाहै: "उर्वशी यौन आकर्षणका महाकाव्य है, यह नर-नारीके मिलन और विरहकी कविता है, काम और अध्यात्मके द्वन्द्वका साहित्य है।" डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीकी समीक्षा-दृष्टिका विवेचन करते हुए यह सारगर्भित वक्तव्य प्रस्तुत किया गयाहै: "उन्होंने ऐतिहासिक तथा समाजशास्त्रीय समीक्षा पद्धतिकी नींव डालकर समीक्षा क्षेत्र में अपना स्वतंत्र स्थान बनायाथा मनुष्यको जीवनके केन्द्रमें प्रतिष्ठित कर समूचे साहित्यको देखनेका आग्रह कियाथा।

डॉ. विजयेन्द्र स्नातककी समीक्षाका मापदण्ड प्रायः सदा सन्तुलित रहाहै। किसी भाव विचार या मतके आग्रहका झोंका उसे कम्पित नहीं कर पाताहै। 'अज्ञेय' पर अहंवादी व्यक्तिवादी और असामाजिक होने का आरोप लगानेवालोंको वे स्वयं तो अपनी 'प्रतिवाद-शून्य अपराजेय मौन मुद्रा' से ही उत्तर देतेहैं; पर डॉ. स्नातकने उनकी पूरी खबर ली है। "अज्ञेय किस अर्थ में असामाजिक हैं? क्या वे समाज विमुख हैं? क्या उनका साहित्य समाजकी उपेक्षा कर अपने अहंकी तृप्तिका माध्यम है?...हां, जिन्हें संस्कारी शब्दोंसे परहेज है और जो भदेस और भोंडेपनमें जनसम्पर्क खोजनेके अभ्यस्त हैं, अज्ञेयने उन्हें तुष्ट करनेका कोई प्रयास नहीं किया।" डॉ. स्नातकके अकादमिक ठण्डेपन और नपेतुलेपनके बीच उनके विचारोंकी प्रखरता और तेजस्विताके ऐसे ज्वलन्त प्रसंग पाठकको रुचिकर प्रतीत होतेहैं।

'स्मृति शेषः मेरे समकालीन' की भूमिकामें डॉ. विजयेन्द्र स्नातकने लिखाहै "इन लेखोंकी साहित्य-विधाका मैं स्वयं निर्णय नहीं कर सका। जीवनवृत्त, संस्मरण, समीक्षा और उनके प्रदेयका सामान्य-सा मूल्यांकन इन लेखोंमें हैं।" मैथिलीशरण और माखन-

लाल चतुर्वेदीपर लिखे गये निबन्धोंमें लेखकका व्यक्तिगत संस्पर्श नहीं के बराबर है, वे शुद्ध समीक्षात्मक हैं। पर, उदयशंकर भट्ट, पं. किशोरीदास वाजपेयी और डॉ. प्रभाकर माचवे से सम्बद्ध निबन्धोंमें समीक्षांश अत्यल्प है। शेष निबन्धोंमें संस्मरण और समीक्षाका सम्मिश्रण है, परन्तु सभीमें उनका अनुपात अलग-अलग है। संस्मरण भी समीक्षक और समीक्ष्यके व्यक्तिगत सम्बन्धों तक सीमित हैं, जीवनके व्यापक क्षेत्रकी रंगा-रंग झाकियाँ उनमें नहीं मिलतीहैं। कुल मिलाकर, लेखकके इस मन्तव्यसे सहमत हुआजा सकताहै "समीक्षा-पक्ष प्रधान हो गयाहै। किन्तु, यह समीक्षा शास्त्र-बद्ध न होकर स्वतंत्र प्रकृतिकी है, जिसमें व्यक्तिगत प्रभावका उन्मेष अधिक है।" इसीलिए, ये निबन्ध इतने सजीव और प्रेरक बन सकेहैं। इन समीक्षाओंको पढ़कर पाठकके मनमें समीक्ष्य कृतियों और कृतिकारों के प्रति रुचि और जिज्ञासा उत्पन्न होतीहै। समीक्षा की सार्थकता क्या यही नहीं है कि वह अपने आपमें समाप्त न होकर एक ऐसे माध्यमका रूप धारण कर ले जो पाठक और रचनाकारके बीच एक सेतु बन जाये। रही बात, विधाके स्वरूप-निर्धारणकी तो आज विभिन्न विधाएं एक दूसरेमें इस प्रकार घुसपैठ कर गयीहैं कि उनका स्वरूप गड्डमड्ड हो गयाहै। डॉ. स्नातकके इन निबन्धोंकी सार्थकता इसी बातमें है कि वे हमें हिन्दीके बारह प्रमुख रचनाकारोंकी मानसिक संरचना, प्रेरणा-भूमि और सृजनधर्मिताके आमने-सामने खड़ा कर देतेहैं। □

संस्कृति-सेतु : उमाशंकर जोशी[1]

संपादक : डॉ. रजनीकान्त जोशी

समीक्षक : डॉ. चन्द्रप्रकाश आर्य

राष्ट्रीय एकताकी स्थापनामें साहित्यका विशिष्ट स्थान है। प्रादेशिक साहित्यका आदान-प्रदान भावात्मक एकताकी सुदृढ़तामें सहायक होताहै। इस दिशामें उसके साहित्यकारोंके कृतित्वके मूल्यांकनका भी पर्याप्त महत्त्व है। आलोच्य कृति 'संस्कृति-सेतु : उमाशंकर जोशी' इसी शृंखलामें आतीहै। गुजरातीके महान् साहित्यकार, बहुभाषाविद्, उत्कृष्ट संपादक, साहित्य अकादमीके भूतपूर्व अध्यक्ष, अनेक मानार्ह उपाधियोंसे विभूषित और साहित्य अकादमी तथा ज्ञानपीठ पुरस्कारोंसे सम्मानित श्री उमाशंकर जोशी सही अर्थोंमें भारतीय साहित्यकार तथा सांस्कृतिक चेतनाके वाहक, थे। उनका काव्य भारतीय अस्मिता और सार्वदेशिक भाव-बोधसे संपृक्त है।

कृति पांच भागोंमें विभक्त है। प्रथम भागमें जोशीजीके प्रति तीन श्रद्धांजलिपरक कविताएं संकलित हैं। इन कविताओंमें जोशीजीकी जीवन-झांकी, सारस्वत साधना तथा प्रकृति-प्रेमका वर्णन है।

कृतिके दूसरे भागमें जोशीजीकी 'सासणगीरमें सिंहमय रात्रि' शीर्षक अन्तिम कविताका गुजरातीसे हिन्दीमें अनुवाद प्रस्तुत किया गयाहै। इस कवितामें कविका प्रकृति-प्रेम स्पष्ट झलकताहै।

पुस्तकके तीसरे भागमें श्री उमाशंकर जोशीकी छत्तीस गुजराती कविताओंका हिन्दी रूपान्तर है। इन कविताओंमें जोशीजीका प्रकृति-प्रेम सर्वोपरि हैं। प्राकृतिक सौन्दर्यपर कवि मुग्ध है। बचपनकी अपनी पाठशालामें वह उस पेड़को ढूंढ़ताहै, जिसकी डालियों पर वह झूलताथा और छायामें खेलताथा। कवि वृक्षों की अंधाधुंध कटाईसे उत्पन्न संकटोंके प्रतिभी सचेत करताहै—

> पेड़पर कुल्हाड़ीकी एक-पर-एक भयंकर चोट,
> पहाड़की खोहमें गहरे-गहरे गूंजती।
> अरराकर आखिर तनेसे वह गिर पड़ा,
> पेड़के आधार बिन मानों पहाड़ ढह गया !

जोशीजीकी कविताओंमें एक ओर राष्ट्रके प्रति असीम प्रेम है तो दूसरी ओर सम्पूर्ण विश्वके प्रति अपनत्वकी मानवीय भावना विद्यमान है—

> हो हिन्द सुरभित फूलदल अरविन्द यह
> स्वातंत्र्य दिनकी बंदगी।
>
> × × +
>
> मैं आज यहां और कल तो कहां ?
> सभी हैं तो मेरे संग, जाऊं जहां।
> भाषा नयी है व नवीन भेष,
> नये नहीं हैं लोग, न नये देश।

जोशीजीके काव्यमें जनवादी चेतनाका स्वरभी सुनायी

1. प्रका. : शांति प्रकाशन, प्रासन-१२४४२१, (रोहतक, हरियाणा)। पृष्ठ : १७६; डिमा. ९०; मूल्य : ९५.०० रु.।

पड़ताहै। भूखसे व्याकुल दरिद्र जनताका उपहास देख कर कवि तीव्र आक्रोशसे भर उठताहै। उसकी गरजती वाणीमें स्वत्व-प्राप्तिका स्वर है। जोशीकी कविताओंमें सत्यके प्रति आस्था तथा महात्मा गांधी और गुरुदेव रवीन्द्रके प्रति निष्ठा परिलक्षित होतीहै। वे २६ जून, १९७५ ई. (आपात्कालकी घोषणा) को आतंक और मृत्युकी छायाके रूपमें देखतेहैं।

आलोच्य कृतिके चौथे भागमें श्री उमाशंकर जोशी का 'कविकर्म' शीर्षक गुजराती लेख संकलित है, जिसका हिन्दी-अनुवाद डॉ. रणधीर उपाध्यायने किया है। जोशीजीके अनुसार काव्य-सृजनके मूलमें प्रेरणा और उपयुक्त भाषाका महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनका चिन्तन फ्रांसीसी कवि वालेरीके विचारोंसे प्रभावित है।

पुस्तकके महत्त्वपूर्ण पांचवें भागमें जोशीजी विषयक ग्यारह लेख संगृहीत हैं। इन लेखोंमें वे विश्वकवि के रूपमें प्रतिष्ठित हैं। जोशीजी मानववादी कवि थे। डॉ. चन्द्रकांत शेठके शब्दोंमें, "कविकी समग्र काव्ययात्रा शब्द और मौनके दो ध्रुवोंके बीच चक्राकार चलती ऊर्ध्वीकरण साधतीहै।" डॉ. प्रभाकर माचवेने कविके 'विश्वशांति' से लेकर 'गंगोत्री' तक के काव्यों का मूल्यांकन करते हुए उनपर मुख्यत: गांधीवादी चेतनाके प्रभावको निरूपित कियाहै। डॉ. महावीरसिंह चौहानने कविके प्रख्यात काव्य 'महाप्रस्थान की मूल संवेदनापर प्रकाश डालाहै। उनका दूसरा संस्मरणात्मक लेख भी अत्यन्त मनोरम है। प्रो. जयेन्द्र त्रिवेदी ने जोशीजीके व्यक्तित्वमें परम्परा और आधुनिकताके सामंजस्यको स्पष्ट कियाहै। डॉ. रजनीकान्त जोशी, डॉ. इन्द्रनाथ चौधुरी तथा डॉ. घनानन्द शर्माने कविके व्यक्तित्वकी महानताको रेखांकित कियाहै। प्रो. मंदाकिनी त्रिवेदीने जोशीजीके काव्यमें समष्टि भावपर प्रकाश डालाहै। इस भागके अन्तिम लेखमें जोशीजी की जन्म-तिथि (२१ जुलाई, १९११ ई.) से लेकर मृत्युपर्यन्त (१९ दिसम्बर, १९८८ ई.) तक की प्रमुख घटनाओंका संकलन है। संकलन डॉ. चन्द्रकान्त शेठ तथा डॉ. श्रद्धा बहन त्रिवेदीने कियाहै। यद्यपि आलोच्य कृतिमें जोशीजीके कवि रूपका ही मूल्यांकन किया गया है तथापि इस संकलनसे पता चलताहै कि उन्होंने गुजरातीमें एकांकी, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, डायरी, संस्मरण (व्यक्ति चित्र) आदि गद्य-विधाओंमें भी साहित्य-सृजन कियाहै।

वस्तुत: महान् गुजराती कवि श्री उमाशंकर जोशी के व्यक्तित्व एवं कृतित्वके मूल्यांकनकी दृष्टिसे समीक्ष्य पुस्तक महत्त्वपूर्ण है। □

वाङ्मीमांसा

नामोंका भाषा-विज्ञान[1]

लेखक : डॉ. राजमल बोरा
समीक्षक : डॉ. सुरेशकुमार

इस पुस्तकमें सात अध्याय तथा छह परिशिष्ट हैं। अन्तमें अनुक्रमणिका भी है। अध्यायोंके शीर्षक हैं—१. नाम और भाषा, २. नाम और अर्थ, ३. देवताओं के नाम, ४. भौगोलिक नाम, ५. भौगोलिक नामोंकी भाषा, ६. दिल्लीके विविध नाम, ७. नाम और भाषा-भूगोल। पुस्तकके आमुखके रूपमें प्रो. अशोक केलकर की 'पाठवणी' (मराठी शब्द) है जिसका उपयुक्त हिन्दी व्युत्पन्न रूप, लेखकके अनुसार (तथा लेखक द्वारा निर्मित), 'पठवन' है—पाठकोंको पठाया (भिज-

१. : प्रका. : राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट दिल्ली-११०००६ । पृष्ठ : १६५; डिमा. ९२, मूल्य : १२५.०० रु.।

वाया)—पाठकोंको सन्देश। यह सन्देश पाठक तथा लेखक दोनोंको सम्बोधित है। इसमें 'नाम' की परिभाषा और स्वरूपको स्पष्ट करते हुए विविध प्रकारके नामोंके अध्ययनका शास्त्रीय पक्ष—अध्ययन-क्षेत्र, वर्गीकरण, अध्ययन-पद्धति आदि—प्रस्तुत किया गया है जिसके आधारपर व्यवस्थित और शास्त्रसम्मत शोध-कार्य कियाजा सकताहै और किया जाना चाहिये।

पुस्तकके शीर्षकके दोनों शब्दोंको समझना होगा —'नाम', 'भाषा-विज्ञान'। पुस्तकमें सामान्य नामों का नहीं, विशेष नामोंका अध्ययन है, और विशेष नामोंमें भी मुख्य रूपसे स्थान-नामोंका, और स्थान-नामोंमें भी, वास्तविक रूपमें, केवल एक स्थान—, दिल्लीके विविध नामोंका; तथा गौण रूपसे, देवताओं के नामोंका और वास्तविक रूपमें केवल 'ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण'का, और वहभी सामान्य निर्देश मात्र। पुस्तकके संदर्भमें 'भाषा-विज्ञान' शब्द स्थान-नामोंके सांस्कृतिक-ऐतिहासिक अध्ययनका अर्थ देताहै, जिसे भाषा-अध्ययनकी उपशास्त्रीय परिपाटीके अन्तर्गत मानना समीचीन होता।

पुस्तकका मेरुदण्ड है अध्याय छह—दिल्लीके विविध नाम। परिशिष्टोंमें से तीन परिशिष्ट दिल्लीके विविध नामोंसे सम्बन्धित मूल अभिलेखोंके पाठ हैं। ('पृथ्वीराज रासो' का तीसरा समय 'दिल्ली किल्ली कथा'; दिल्ली नगर निगमके नामकरणसे सम्बन्धित प्रस्तावोंका विवरण; साहिबराय टाक का 'दिल्ली नामा')। यह सामग्री समूची पुस्तकका एक तिहाई भाग है।

पुस्तक मुख्य रूपसे दिल्लीके विविध नामोंके सांस्कृतिक-ऐतिहासिक अध्ययनमें लेखककी व्यक्तिगत अभिरुचि, तथा नामोंके अध्ययनके शास्त्र और पद्धतिके विषयमें लेखकके अपने दृष्टिकोणको प्रकट करतीहै। यह भी लेखककी निजी रुचिकी ही बात है कि उसने दिल्लीके विविध नामोंपर केन्द्रित इस अध्ययनमें, एक छोटे अध्यायमें, देवताओंके नामोंके विषयमें भी कुछ बातें कहीहैं। शेष अध्यायोंको सामूहिक रूपसे स्थान-नाम-अध्ययनका, लेखककी ओरसे प्रस्तावित, सैद्धांतिक पक्ष कहाजा सकताहै।

दिल्लीके विविध नामोंके विषयमें लेखकने रोचक सामग्री एकत्रित कीहै। महाभारत कालके नाम 'इन्द्रप्रस्थ' और 'योगिनीपुर' से लेकर, मध्यपूर्व तथा मध्यकालके नामों—अनंगपुर, ढ़िल्लिकापुरी, ढ़ीली, दिल्ली —से होते हुए ईस्वी सन् १९७८ (दिल्ली नगर निगम का कार्यकाल) तकके नाम-वैविध्यपर अनेक तथ्य पुस्तकमें संकलित हैं। कालप्रवाहके किन-किन चरणोंमें दिल्लीके क्या-क्या नाम रहे, किन आधारोंपर वे नाम रखे गये, स्वयं 'दिल्ली' शब्दकी व्युत्पत्ति (ढ़िल्ली-ढ़िल्लिका-ढ़िल्लिकापुरी—ढ़ीली-दिल्ली, इस शृंखलाके प्रमुख ध्वनि-परिवर्तनोंका और मध्यवर्ती रूपोंकी पहचानका संकेत) इत्यादिका वर्णन है; तथा इन सबके लिए प्रमाणस्वरूप ऐतिहासिक अभिलेख भी उद्‌धृत किये गयेहैं।

स्थान-नाम-अध्ययनके सैद्धांतिक पक्षके रूपमें लेखकने प्रमुख रूपसे नामोंकी भाषा-व्यवस्था सम्बन्धी, भाषा-भूगोल सम्बन्धी, भाषा-विकासक्रम सम्बन्धी, और समाजभाषिक संदर्भसे सम्बन्धित चर्चाएं कीहैं। 'नाम' का भाषा तथा अर्थ पक्षसे सम्बन्ध, नामोंका भूखण्ड विशेषसे सम्बद्ध होना, नामोंकी भारतीय आर्यभाषाओंके विकासक्रम (संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश-आधुनिक) सम्बन्धी तथ्योंसे सम्बद्ध होना, विदेशी सामाजिक-सांस्कृतिक सम्पर्कसे नामोंका प्रभावित होना—ये सिद्धांत चर्चाके मुख्य आयाम हैं, और जिस रूपमें ये प्रस्तुत किये गयेहैं उस रूपमें पुस्तककी मुख्य विषयवस्तुसे परोक्ष रूपसे जुड़तेहैं।

ऐतिहासिक कालक्रमकी प्रधानताके ढांचेमें भाषा के किसी अंशका अध्ययन करनेकी जो परिपाटी वाङ्-मीमांसा (फिलॉलजी) में दिखायी देतीहै, यह पुस्तक उसीके अंतर्गत है। उसीके अनुसार इसमें परिकल्पनात्मक अभिमत प्रकट करनेकी प्रवृत्ति है। ऐसे अध्ययनों का अपना स्थान है। जो जिज्ञासु और शोधार्थी भाषा विज्ञानकी परिपाटीमें प्राक्कल्पनाकी परीक्षण पुष्टिकी प्रधानताके ढांचेमें, विशेष नामोंके प्रणालीबद्ध अध्ययन में प्रवृत्त होना चाहतेहों उनके लिए प्रो. केलकरकी 'पाठवणी' एक आदर्श प्रारूप प्रस्तुत करतीहै, जिसे हिन्दी पाठकोंको उपलब्ध करानेका श्रेय भी लेखकको जाताहै। ▢

रथचक्र[1]

[साहित्य अकादमीसे पुरस्कृत
मराठी उपन्यासका हिन्दी अनुवाद]

उपन्यासकार : श्रीपाद नारायण पेंडसे
अनुवाद : डॉ. र. श. केलकर
समीक्षक : मधुरेश

श्री. न. पेंडसेके मूल मराठी उपन्यास 'रथचक्र' को सन्' ६३ में साहित्य-अकादमी पुरस्कार मिलाथा। उसके बाद ही इसका हिंदी अनुवाद राजपाल एण्ड संस दिल्लीने प्रकाशित कियाथा। उपन्यासकी श्रेष्ठता को ध्यानमें रखकर वर्षोंसे उसकी अनुपलब्धताके बाद, यह संस्करण भारतीय ज्ञानपीठने अपनी 'भारतीय उपन्यासकार' शृंखलाके अन्तर्गत प्रकाशित कियाहै। ...'रथचक्र' स्वाधीनता पूर्वके निम्न मध्यवर्गीय कोंकणी समाजका वहाँकी ग्रामीण पृष्ठभूमिमें लिखा गया एक मार्मिक उपन्यास है। उपन्यासकी कथा एक संयुक्त परिवारको केंद्रमें रखकर विकसित होतीहै और बहुत सांकेतिक एवं संवेदनशील ढंगसे उन कारणों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करते हुए आगे बढ़तीहै जो इस व्यवस्थाके बिखरावका मूल हेतु थे। कथाके केंद्रमें एक पैंतीस वर्षीय स्त्री है जो चार बच्चोंकी माँ है और जिसका पति दस वर्ष पूर्व घर छोड़कर संन्यासी बनकर चला गयाहै। जेठ-जेठानियोंवाले संयुक्त-परिवारमें रात-दिन खटती और अपने बच्चों को अनाथ और निरीह-सा देखते हुए वह जीती रही है। उसका एक जेठ पढ़-लिखकर नोकरीमें आकर अच्छा पद पा जाताहै जो अब लखनऊमें अधिकारी है। दूसरे जेठका खेत-खलिहान, जमीन जायदाद और गंडों-ताबीजों वाला कभी खूब फैला हुआ काम था, लेकिन दुराचरण और अव्यवस्थाके कारण वह सब नष्ट हो चुकाहै। मझले जेठने एक रखैल रखी हुईहै, जिससे उनके बच्चे भी हैं और जिनके गुजारेके लिए हर महीने कुछ निश्चित धन भेजना होताहै। सबसे बड़ी जेठानी विधवा हैं जिन्होंने ही इन देवरोंको माँ की तरह पाल-पोसकर बड़ा कियाहै। उन्हींकी सहृदयताके कारण, दूसरी जेठानियोंकी गाली-गलोज और क्रूरताके बाद भी वह घरमें रह रहीहै—इस आशाके साथ कि कभी पति लौटेगा और बच्चे बड़े होंगे।

दस वर्षबाद परिवारमें अचानक सूचना आतीहै कि पति कहीं नर्मदा-क्षेत्रमें है और साधना कर रहा है। उसे लिवा लानेके लिए तैयारियां होतीहै। इसपर आनेवाले खर्चके लिए उसका जेवर गिरवी रखनेका बिरोध करनेपर जेबर बच पातेहैं। पर इसी बीच पति का यह पत्र आ जाताहै कि वह बारह वर्षोंका पुरश्चरण करनेकी प्रतिज्ञा लेकर निकलाहै, अतः उसे ढूंढने और बुलानेका प्रयास न किया जाये। समय पूरा होनेपर वह स्वयं घर पहुंच जायेगा।

पत्नी अपने छोटे बेटेके मिडिलमें सर्वप्रथम आने पर उसकी आगेकी पढ़ाईके विचारसे तहसील जानेका निश्चय करतीहै। सबके विरोधके होते हुएभी वह अपने निर्णयपर दृढ़तापूर्वक अमल करतीहै। पड़ोसी काका और बड़ी जेठानीके सहयोगसे उनके हिस्सेका चावल मिलते रहनेकी बात तय होतीहै पर आगे वह क्रम भी भंग हो जाताहै। बड़ा बेटा पहलेसे ही जेठ-जेठानियोंकी सेवामें है—पैसा लेकर किसी विकलांग लड़कीसे उसके विवाहकी योजना भी वे लोग बनाते हैं। दो बेटियों और छोटे बेटेको लेकर वह तहसील आ जातीहै। उसकी सहेली थोटो वहाँ तीज-त्योहार

---

१. प्रका. : भारतीय ज्ञानपीठ, १८ इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-३। पृष्ठ : २५३; डिमा. ९२; मूल्य : ६५.०० रु.।

पर वावणकरका भोजन बनातीहै। वह उसका हौसला बढ़ातीहै कि बीचमें परेशानी होनेपर भी कोई रास्ता निकलेगा ही।

उपन्यास संयुक्त-परिवारकी आकांक्षाओं-स्वार्थों, ईर्ष्या-स्पर्धाके सहारे विकसित होताहै। 'वह' पतिके प्रति अपने मनमें कभी कोई आदर-भाव नहीं संजो सकी। 'संचार', देवता और धर्मके नामपर उसका यह पलायन उसके मनमें उसके प्रति गहरी वितृष्णा पैदा करताहै, जिसने उस और उसके बच्चोंको इस अंधी सुरंगमे बंद कर दियाहै। उसे रह-रहकर यह मलाल होताहै—काश उसके पतिके गुण किसी बड़े काममें लगते। विवाहके बाद यहां आनेपर उसे याद नहीं पड़ता कि कभी किसीका प्यार और सद्व्यवहार उसे मिलाहो। पति घुन्ना और चुप्पा होनेके कारण कभी उससे बोलता नहीं था। दिनमें वह पूजा पाठ और पद्मासन किया करताथा ..हर सप्ताह एक निश्चित दिन और समयपर रातमें 'आंखें बंद करके दूध पीनेवाली बिल्लीकी तरह वह उसके पास आया करताथा...' (रथचक्र पृ. २२०)। उसके 'संचार' को जहां सब लोग देवताका आना मानकर पाखण्डका प्रचार करके खुश होतेथे, वह उसका वही इलाज ठीक समझतीहै जो शुरुमें कभी लखनऊवाले जेठने यहां होने पर कियाथा क्योंकि बेंतसे देवताभी डरतेहैं। बेटीको भी उसकी शुरुआत होनेपर, परिवारके और लोग जहां उसे उसी राहपर ठेलनेकी कोशिश करतेहैं, तहसीलमें रहते हुए वह एक पडोसिनकी सहायतासे उसकी 'दमा' की बीमारीकी वास्तविकताको समझ लेतीहै... जीवन कभी और कहींभी स्थिर नहीं रहता—'रहंट की बाल्टी हमेशा ही खाली कैसे आ सकतीहै? मैंने इतना दुःख भोगाहै—अब कुछ अच्छा भी हो सकता है। लड़केका प्रथम आना शायद शुरुआत है...' (पृ. ५९)। दुःख-सुखका यह चक्र ही जीवनकी वास्तविकता है जीवनका रथ जैसे इसी परिवर्तनके सहारे चलता और बढ़ताहै। घरमें उसे जेठ-जेठानी उपेक्षा और अपमानसे 'चालू' और 'टेढ़ी' कहतेहैं, क्योंकि बचपनमें कभी बुखार आनेपर, हवा लग जानेसे उसका नीचेका होंठ टेढ़ा हो गयाहै। पतिको लेकर लोग कैसे उमंग और आनंदपूर्वक रहतेहैं, लेकिन वह सुख उसने एक दिनको नहीं जाना। कपड़े बदलते हुए कभी अपने सूखते और छीजते शरीरमें स्फुरण जैसा कुछ होता जरूर है, पर दस वर्षोंका अभाव उस स्फुरण को सिर उठानेका मौका ही जैसे नहीं देता।

उपन्यासमें पात्रोंके नाम नहीं हैं—एक-दो अपवादोंको छोड़कर। 'वह', पति, जेठ-जेठानी, बड़े, मझले, लखनऊवाले, काका, बेटा-बेटी आदि कहकर लेखक शायद अपनी कथाको कुछ विशेष व्यक्तियोंकी कथाके रूपमें सीमितकर देनेसे बचना चाहताहै। तहसीलमें कृष्णाबाई और गांवमें सहेली थोटी जैसे कुछ नाम अपवादके रूपमें हैं, जो कथामें विशेष महत्त्व नहीं रखते। हमारे समाजमें स्त्रीका जीवन यातनाकी एक अंतहीन शृंखला है—थोटी, कृष्णाबाई बड़ी, जेठानी या फिर वह स्वयं उदाहरण सब ओर बिखरे पड़ेहैं। दुःखको लेकर हर आदमीकी प्रतिक्रिया अलग होतीहै। वह स्वयं गहरी हताशाके बीच आशाके साथ संघर्ष करतीहै, लगभग एक निरर्थक और निष्फल संघर्ष। कृष्णाबाई ढेरों पैसा कमाकर और आर्थिक दृष्टिसे आत्मनिर्भर होकर भी अपनी अतृप्त काम-कुंठासे टूट रहीहै, थोटी, कटहलके फलकी तरह है, ऊपरसे कठोर होनेपरभी चार टुकड़े करनेपर जिसके अंदरकी गिरियां बाहर आ जातीहैं। सब कुछ होते हुएभी जीवनका यह रथ रुके बिना चलता रहताहै। उसका पति लौटताहै तो पुत्र भाग जाताहै, क्योंकि कृष्णाबाई के मकड़जालसे बचनेका उसे यही रास्ता सूझताहै। दूर रहकर भी उसके परिश्रमपूर्वक पढ़ने और प्रथम आनेकी सूचना उसे मिलतीहै। पर उसकी संतान भी उसे ही दोषी मानकर उससे दूर भागतीहै।

'रथचक्र' जीवनके सत्यको हार्दिकता और संवेदनाके साथ अंकित करताहै। कर्म और मंत्र-तंत्रके पाखण्डको वह निर्ममतापूर्वक तोड़ताहै क्योंकि इसी पाखण्डसे जीवनकी वास्तविक राह धूमिल होतीहै। गंडे और ताबीजोंकी कमाईसे उसका मझला जेठ घर में भले ही 'बड़ा' हो गयाहो लेकिन भतीजेके साथ एक दिन अकस्मात् कोठेपर जाकर जहां ताबीज बनाये जातेथे, उस सच्चाईको वह अपनी आंखों देख चुकीहै।

'रथचक्र' की कहानी वहांसे शुरु होतीहै जब दस साल बाद पतिके नर्मदा-क्षेत्रमें होनेकी सूचना घरमें आतीहै। उसकी गहमा-गहमी और दौड़-धूपमें, बीच-बीचमें, उसकी स्मृतियां पीछेकी ओर लौटतीहैं... प्रशस्त आंगन और इस सारे कारोबारको संभालने

वाला लंबा-चौड़ा घर। उसके पतिके पूर्व प्रसंग उसकी या फिर काकाकी स्मृतियोंमें उभरकर सामने आतेहैं। दस साल बाद, पतिकी सूचना आनेपर उसकी स्मृतियां तीव्रतापूर्वक सक्रिय हो उठतीहै—छोटी बेटीको पेट छोड़कर साधना और सिद्धिके नामपर उसका भागना, बेटेके गलेमें जेठानी द्वारा डाली गयी उपलोंकी माला ...और इसी प्रकार उसके जीवनको हताशा और आक्रोशसे भरनेवाले अनेक छोटे-छोटे प्रसंग। तहसील जानेके लिए नावपर बैठनेपर लंबे सम्पर्ककी स्मृतियाँ एक बार फिर बहुत सहज रूपसे उसे घेरने लगतीहै—दुलहिनके रूपमें उसका ससुराल आना, पंद्रह व्यक्तियों वाला भरा-पूरा परिवार, पच्चीस पशुओंकी गौशाला, कड़वा सेठको झुककर उसके नमस्कार कर लेनेपर जेठानियोंके ताने और व्यंग्य—अब कहारियोंको भी नमस्कार करेगी।

सारे अभावों और दुःखोंके बीच संवेदना और कोमलताकी अर्थपूर्ण तलाशकी दृष्टिसे 'रथचक्र' एक मार्मिक उपन्यास है। वह एक ऐसी रचनाका उदाहरण है जो समयके विपरीत प्रभावसे अपनेको बचा पानेमें समर्थ होतीहै। [!]

सुजानके आंगन[1]

लेखिका : माया शबनम

समीक्षक : शत्रुघ्नप्रसाद

ऐतिहासिक उपन्यासोंकी परम्परा किशोरीलाल गोस्वामीसे आरम्भ होतीहै। गंगाप्रसाद गुप्त और जय रामदास गुप्त उनके समकालीन थे। उनके ऐतिहासिक उपन्यासोंमें मात्र मनोरंजन है। मिश्रबन्धुमें राष्ट्रीय चेतनाकी प्रेरणासे इतिहासबोध जगाहै, पर कला चेतना दुर्बल है। वृन्दावनलाल वर्मामें अंग्रेजोंकी साम्राज्यवादी चेतनाके इतिहासके प्रति विद्रोह और स्वातंत्र्य प्रेमने इतिहास-बोध जगाया। उन्होंने बुन्देलखंडी रंगके साथ ऐतिहासिक उपन्यासको प्रस्तुत किया। उनकी इतिहास दृष्टि, लोक संवेदना एवं कलाने ऐतिहासिक उपन्यासके सही रूपको रखा। ऐतिहासिक उपन्यासकी परम्परा आगे बढ़ी।

'हिन्दी अनुशीलन' के वृन्दावनलाल वर्मा विशेषांकमें मैंने लिखाहै—"यदि उपन्यास वर्त्तमानके यथार्थकी काल्पनिक कथा है तो ऐतिहासिक उपन्यास अतीतके यथार्थकी काल्पनिक कथा है। यदि इतिहासकार इतिहासके सत्यका दर्शन कराताहै तो ऐतिहासिक उपन्यासकार सत्यका सरस सृजन करताहै।" सच है कि इतिहासके किसी कथा-प्रसंगपर आधारित उपन्यास वर्त्तमानके साथ जुड़नेकी सृजना चेतनाकी परिणति है। ऐतिहासिक उपन्यास गतिशील मानवजीवनके यथार्थ का आलोकन-आलोचन होताहै। कारण है कि कालप्रवाह खंडित नहीं होता। कालप्रवाह अविराम और अखंड है। एक कालखंडसे जुड़ना सम्पूर्णसे कटना नहीं है, न पलायन है। वर्त्तमान उसके सामने रहताहै। यदि एक उपन्यासकार 'पेशवाकी कंचनी' लिखकर मस्तानी के प्रेममय जीवनको तत्कालीन संघर्षमय परिवेशमें पेश करताहै तो दूसरा साहित्यके इतिहाससे सुजान और घनानन्दकी अल्पज्ञात प्रेम-कथाका चयनकर 'सुजानके आँगन' की रचना मुगल सामन्तवादके पतनशील परिवेशमें करताहै। दोनोंमें सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक संदर्भ स्पष्ट हैं। इतिहासका मर्मस्पर्शी प्रसंग कलासृष्टि बनाहै। डॉ. माया शबनमने 'सुजान के आँगन' में साहित्यके इतिहासके एक मर्मस्पर्शी प्रसंग को अपनी कल्पना एवं कलाके माध्यमसे नया जीवन दियाहै, नयी सृष्टि कर दीहै।

उपन्यास लेखिकाने उपन्यासकी भूमिकामें लिखा है—"इस उपन्यासमें साहित्यिक इतिहासके रीतिकालीन कवि घनानन्द और उनकी प्रिया 'सुजान' का चरित्रांकन अवश्य किया गयाहै, किन्तु ये घनानन्द और सुजान इतिहासके नहीं, अपितु नारी इतिहासपर आधारित मेरी भावभूमिपर पल्लवित परिकल्पना फलकके दो मोती हैं।" इससे स्पष्ट हो जाताहै कि इस उपन्यासमें लेखिकाकी नारी-संवेदना प्रमुख हो गयीहै। इसका कारण भी हैं कि लेखिकाने युगोंसे नारीकी उपेक्षा, शोषण तथा विवशताका अनुभव कियाहै। मुगल राजतान्त्रिक युगमें नारीकी विवशता तथा पीड़ा अधिक करुण है। फलतः साहित्यके इतिहासके घनानन्द और उनकी प्रेमिका सुजानका संजीव एवं मार्मिक चित्रण हो गयाहै। यह लेखिकाकी उपलब्धि है।

हिन्दी साहित्यके इतिहासमें रीतिकालीन घनानन्द

---

१. प्रका. : साहित्य भवन, ९३ के. पी. कक्कड़ रोड, इलाहाबाद-२११००३। पृष्ठ : १७२; डिमा. ९३; मूल्य : ६०.०० रु.।

ने स्वच्छन्द काव्यधाराका प्रवर्त्तन कियाहै। स्वच्छन्द काव्य रचनाके मूलमें घनानन्द एवं सुजानका निश्छल स्वच्छन्द अनुराग है जो मुगल सामन्तवादकी ऐय्याशी और साजिशके कारण मिलनोल्लासमें परिणत नहीं हो पाता। वही अनुराग अनन्त विरह काव्यकी राहसे फूट पड़ाहै। एक ओर अठारहवीं सदीका मुगलिया भ्रष्ट परिवेश है जहां नारी, नृत्य और संगीत केवल भोग्य हैं, पाशविक विलासिता और क्रूरता है। दूसरी ओर मीर मुंशी घनानन्द और गायिका सुजानका शुद्ध स्वच्छन्द प्रेम है। मुगल परिवेश और प्रेमका टकराव है। तीसरी ओर स्वच्छन्द भावधाराके कविकी काव्य साधना है। इन्हीं स्थितियोंमें दोनोंके चरित्र विकसित होतेहैं। कहना कठिन है कि यह सुजानके नारी जीवन की उपेक्षा, विवशता तथा करुणाका उपन्यास है या घनानन्दकी समर्पित प्रेम साधना एवं काव्य साधनाका। दोनोंने समर्पण एवं करुणाकी यमुना प्रवाहित कर दी है। इस रूपमें यह अन्य ऐतिहासिक उपन्यासोंसे भिन्न हैं। इसे ऐतिहासिक धरातलका रोमांटिक उपन्यास भी कह सकतेहैं। इस स्वच्छन्द प्रणय कथामें निश्छलता, समर्पण, साहस, विरह यातना, बलिदान एवं भक्तिमें पर्यवसानकी मार्मिक स्थितियाँ हैं। सम्भवतः यही रोमानी प्रेमकथाका स्वरूप है।

उपन्यास लेखिका माया 'शबनम' ने एक छोटेसे इतिहास-प्रसंगको सम्पूर्ण स्वच्छन्द प्रेमकथाके रूपमें पल्लवित तथा पुष्पित कियाहै। अल्पज्ञात कथाप्रसंग उपन्यासके कथानकमें पूर्ण विकसित हुआहै। कल्पनाने सहस्र ढंगसे योगदान कियाहै। बचपनमें बुलन्दशहरके मेलेमें दादीसे जीनतका बिछड़ जाना और घन्नु द्वारा बचाकर पहुंचा देना और फिर बदमाशों द्वारा नुसरत बाईके यहां बेच आना—सुजानके करुण जीवनके आरंभ का सामान्य उल्लेख है। तरुण घनानन्द दिल्लीमें पहले दीवान रतनचन्दका अंगरक्षक बनताहैं, बादमें मुहम्मद शाह रंगीलेका मीर मुंशी। किस योग्यतासे एक अंग रक्षक मीर मुंशी बन जायेगा—स्पष्ट नहीं हो पाता! राजा रतनचन्द सैयद बन्धुओंका पक्षधर था। इन्हींकी महफिलके लिए एक नयी गायिकाकी खोजमें घनानन्द निकला। बचपनकी जीनत मिल गयी। मनका तार जुड़ गया। मुहम्मदशाह रंगीलेके ऐय्याश शहजादा अहमदशाहके चरोंसे टकराकर जीनता-जानू...अब सुजान को ले गया। और उसने प्रेमकी भूमिपर प्रतिज्ञा करायी कि वह केवल ग़ज़ल गायेगी। फनकारकी जिन्दगी जियेगी। बादशाहने भी इजाजत दे दी। दोनों का अनुराग सबसे छुपा रहा। वह भावकी भूमिपर विकसित होता रहा।

लेखिकाने उपन्यासमें पृष्ठभूमिके रूपमें ही नहीं, दिल्ली सल्तनतके आन्तरिक द्वन्द्व, षड्यन्त्र और विलासिताको स्वच्छन्द प्रेमके प्रतिपक्षके रूपमें दिखायाहै। बादशाह मुहम्मदशाहका संगीत प्रेम एक (खलनायक) हद तक संयमित है, पर शाहजादा अहमदशाह और वजीर निजामुलमुल्ककी ऐय्याशी पाशविक है। लेखिका ने आरम्भ, मध्य तथा अंतके पहले इस अमानवीय, नारी अस्मिताके प्रतिकूल ऐय्याशीका रोमांचकारी वर्णन कियाहै। यत्र-तत्र लेखिकाका हृदय विद्रोह कर उठाहैं। दूसरी ओर दोनोंका प्रेम, प्रेमका वातावरण और कवि आलम एवं शेखका सहयोग—उस जिस्मानी (आदमखोर) ऐय्याशीके माहौलसे सर्वथा भिन्न है। दोनोंका संघर्ष करुणसे करुणतर होता चला गयाहै।

कथानकके अंतमें चरित्रके उत्थानके लिए लोक प्रचलित विश्वासको उपन्यास लेखिकाने बदल दियाहै। राजमाता मरियम मकानीने सैयद बन्धुओंके प्रभावको समाप्त करनेके लिए निजामुलमुल्क तथा सआदतखां को बुलाया। षड्यन्त्रके द्वारा दोनोंको खत्म किया। पक्षधर राजा रतनचंदको हटाया। घनानन्दको इसी पक्षका मानकर निजामुलमुल्कने षड्यन्त्र किया। घनानन्दको ध्रुपद गानेके लिए बाध्य किया। उसने सुजान के कहनेपर गाया। अतः शाह रंगीलेको भड़काकर उसे दंडित किया। अपने प्रेमपात्रकी रक्षाके लिए सुजानने वजीर निजामुलमुल्कसे निवेदन किया। वजीरने ख्वाबगाह में शमा बननेकी शर्त रखी। सुजानने अपने प्रियके लिए शर्त मान ली याने अपना शरीर सौंप दिया। घनानन्द फांसीसे बचा और उसे दिल्ली छोड़नी पड़ी। सुजान तिलतिल जलती रही। मनमें घनानन्द जीवित रहा। घनानन्द वृन्दावनमें निम्बार्क सम्प्रदायमें दीक्षित हो गया। पर सुजानसे कृष्ण तक पहुंचनेमें मनोवैज्ञानिक प्रक्रियासे गुजरता रहा। एक बार सुजान अपने घन्नूको देख आयी। आत्मतुष्ट होकर लौट गयी। आजमगढ़में मृत्यु हुई। उधर अब्दालीके आक्रमणके समय घनानन्द आहत हुआ। फलस्वरूप वह सुजानको स्मरण करता हुआ इहलोकसे मुक्त होगया।

लेखिका मुग़लिया माहौलके चित्रणमें यत्रतत्र अपनी टिप्पणी देती रहीहै। नारीके शोषणके विरुद्ध मन विद्रोह करता रहाहै। यथार्थके चित्रणमें टिप्पणी आवश्यक नहीं थी। अब्दालीके आक्रमणका वर्णन प्रभावी नहीं हो सकाहै। कल्पनाके द्वारा अन्तमें संभाव्य मिलनकी स्थिति आ सकतीथी। घनानन्दकी मृत्युके पास सुजान पहुंच सकतीथी। मृत्युके क्षणमें दोनोंका मिलन और महाप्रयाण अधिक प्रभावी हो सकताथा।

लेखिकाने घनानन्द और सुजानके चरित्रांकनमें छायावादी प्रायः अशरीरी प्रेमकी तीव्रता और विरहकी यातनाको माध्यम बनायाहै। यदि मुगल दरबार और हरम खलनायकके रूपमें भयानक हैं तो इन दोनोंका प्रेममय चरित्र निरन्तर आदर्शोन्मुख है। प्रेम, कुल, जाति और धर्म-मजहबसे परे हो गयाहै। घनानन्दके मित्र-आलमने शेखके प्रेमके लिए इस्लामको कबूल कर लियाथा। पर घनानन्द तथा सुजानमें किसी ओरसे किसी प्रकारका आग्रह-दुराग्रह नहीं है। संगीत साधना हो या प्रेम साधना—दोनों ही क्षेत्रमें राधा-कृष्णकी रागात्मक रोमांटिक युगलकी ओर झुकाव स्वाभाविक रहाहै। सुजान भी झुकती गयीहै। सूर और मीराके पदोंके गायनका अभ्यास करती रहीहै। वह प्रेममें राधा और मीरा-सी बन गयीहै। उधर शेखमें इस्लामके प्रति आग्रह है। वह सुजानपर नाखुश होतीहै। पर सुजानके कारण ही उसमें उदारता आ पातीहै। आलमके प्रेमसे उसमें धर्मोंके प्रति उदारता नहीं आ सकीथी।

लेखिकाकी भाषा वस्तु और परिवेश (देश और काल)के अनुसार कहीं हिन्दी और कहीं उर्दू बहुल हो गयीहै। कहीं चिंतनकी गंभीरता है। कहीं प्रेमकी उच्छल एवं वेगपूर्ण स्थितिके कारण काव्यात्मक अभिव्यक्ति है। प्रेमका भक्तिमें संक्रमण भी मनोवैज्ञानिक बन पड़ाहै। कृष्णका सुजान बन जाना लौकिक और अलौकिकका संगम है। आलम एवं शेखकी गौण कथा को थोड़ा और विकसित कियाजा सकताथा।

इन छोटी मोटी त्रुटियोंके बाद लेखिकामें संभावना प्रबल है। हम इनसे प्रभावी ऐतिहासिक उपन्यासकी संभावना कर सकतेहैं। ☐

कहानी

अनय[1]

[मराठी कहानियां]

लेखक : अरविन्द गोखले

सम्पादन : अरुन्धती देवस्थले

समीक्षक : डॉ. भगीरथ बड़ोले

मराठी नवकथा लेखनकी परम्परामें श्री अरविन्द गोखलेका नाम प्रमुखतासे परिगणित होताहै। अनेक पुरस्कारों एवं सम्मानोंसे अलंकृत श्री गोखले मराठीके सर्वाधिक लोकप्रिय कहानीकार हैं। श्री गोखलेका एक ऐसा महत्त्वपूर्ण कहानी-संग्रह है, जिसमें जीवनके विविध पहलुओंको मनोवैज्ञानिक धरातलपर सूक्ष्मतासे चित्रित कर विविध विषमताओंसे जूझ रहे मूल्योंको रचनात्मकताके धरातलपर प्रस्तुत किया गयाहै। इस संदर्भमें स्वयं कथाकारने स्पष्टतासे कहाहै—'मेरे लेखन का प्रयोजन मनुष्यकी मूलभूत प्रवृत्तियोंकी थाह ढूंढ़ना और समाज जिन सूत्रोंको जोड़ता हुआ प्रगतिकी ओर जाताहै, उन्हें उजागर करनाहै।' स्पष्ट है कि कथाकार ने पूरी मुक्तताके साथ जीवनकी स्थिति-दशाकी छानबीन कीहै तथा साधारण व्यक्तिकी पीड़ाका ब्यौरा प्रस्तुत कियाहै।

---

१. भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली। पृष्ठ : २५०; डिमा. ९२; मूल्य : ७५.०० रु.।

'अनय' में निहित कुल उन्नीस कहानियां जहां एक ओर श्री गोखलेकी कथायात्राके विविध आयामोंको स्पष्ट करतीहैं, दूसरी ओर मराठी कथा प्रवाहकी प्रवृत्तियोंकी दशा और दिशाको भी अभिव्यक्त करतीहैं। जीवनके यथार्थको प्रामाणिकताके साथ प्रस्तुत करनेमें श्री गोखलेकी दृष्टि सकारात्मक ही रहीहै। जीवनकी विविधता, कथ्यकी नवीनता तथा रूप शिल्पका बहुरंगी वितान श्री गोखलेकी कहानियोंकी विशेषता है। इन कहानियोंमें समाजके जिस वर्गकी समस्या प्रमुखतासे उभारी गयीहै, वह है स्त्री वर्ग। नारी जीवनके विविध पक्षोंका यथार्थ दृष्टिसे आलेखन प्रस्तुतकर रचनाकारने उनके स्वभाव एवं समस्याओंके बीच जूझ रहे व्यक्तित्वको पूरी सामर्थ्यके साथ अभिव्यक्त किया है। अकृत्रिम सहजता द्वारा नारी जीवनके अन्यान्य पहलुओंको उभारकर लेखक उनके शोषित स्वरूपके प्रति अपनी उदार मानवीय दृष्टिको द्योतित करताहै।

प्रस्तुत संकलनकी प्रथम कहानी 'उर्मिला' रामकथा प्रसंगकी एक प्रमुख पात्रा उर्मिलाके बहाने संत्रस्त और अभिशापित जीवन जी रही नारीकी एकाकी व्यथा-कथाको अभिव्यंजित करतीहै। संपन्न एवं प्रतिष्ठित घरकी इकलौती पुत्री होनेके बाद भी निरन्तर उपेक्षाके कारण उर्मिलाके मनमें हीनता ग्रंथि विकसित होती रहतीहै। उसके मनमें अनेक बार विद्रोहकी भावना आकार पाने लगतीहै, किन्तु विपरीत स्थितियों के मध्य वह अपने प्रकृत रूपके अनुरूप बहुत कुछ सहती रहतीहै। इसी सर्वसहा रूपने उसकी महत्ताको बनाने रखाहै। पुरस्कृत कहानी '**गंधवार्ता**' के अन्तर्गत भी रचनाकारने नौ वर्षीया मेरीके उपेक्षित विद्रोही जीवनको अभिव्यक्तकर उसकी प्रतिशोधी भावनाको उभाराहै, किन्तु अंतमें उसकी स्वभावगत दुर्बलता यथास्थितिमें जीनेको विवश करनेवाली स्थिति है, जिसे जीवनमें भोगना नारीकी नियति है। यद्यपि मायकेके जीवनकालमें वह असुविधाओं-कष्टोंके बीच भी स्वयं को विश्वाससे भरापूरा अनुभव करतीहै, जिसे '**पीहर**' शीर्षक प्रतीकात्मक कहानीमें रचनाकारने अच्छी तरह से अभिव्यक्त कियाहै, तथापि सर्वत्र गंध बिखेरने वालीको अन्तमें गंदगीमें जीनेके लिए विवश होना पड़ताहै।

मायकेमें भरे भरे मनके साथ महत्त्वमें वृद्धिका ऐसाही अनुभव 'गोधूलि' की नायिकाको भी होताहै। विवाहके बाद जब वह मायके लौटतीहै तो देखतीहै कि सभी उसे अतिरिक्त महत्त्व दे रहेहैं, सदैव अनदेखी करनेवाले मौसा-मौसी भी पूछ-परख करने लगेहैं, तो उसे अपना जीवन सार्थक लगने लगताहै। लेखकने इन क्षणोंमें नायिकाकी उत्फुल्लताका खुलकर प्रशंसनीय चित्रण कियाहै। किन्तु उत्फुल्लताके इस घटाटोप वातावरणके बीच जब शामको एकांतमें नायिकाको अपने बाल सहचर अविनाशकी याद कचोटने लगतीहैं, तो कहानीमें अनुगुंजित स्वरोंकी स्थिति ही बदल जातीहै। लगताहै कि अंततः नारी जीवन व्यथा और विडम्बनासे ही परिपूर्ण है, जिसमें सदैव अनचाहा ही होताहै और अतृप्तिकी लकीरें भीतर ही भीतर सतत सालती रहतीहैं। इस प्रकार जीवन-मंथनके सतत जारी रहनेके परिणामस्वरूप ऊपरसे भरा-भरा लगने वाला जीवन किसी अनाम धुंधलकेमें खो जाताहै।

बहुचर्चित कहानी '**अविधवा**' की इरावतीके माध्यमसे भी लेखकने नारी मनकी इन्हीं तहोंको खोलनेका समर्थ प्रयास कियाहै। वह निर्धन परिवारके युवक अविनाशको चाहतीथी, किन्तु विवाहसे पूर्वही अविनाशकी मृत्यु हो जातीहै। इस वज्राघातको सहना इराके लिए बहुत कठिन था। इसी बीच उसके मनमें यह बोध जागताहै कि अविनाशके परिवारको सम्हालनेकी जिम्मेदारी उसकी है। सद्भावना, त्याग और सेवाके लक्ष्यको लेकर वह उस विपन्न परिवारके समीप जाकर कर्तव्य निबाहनेका अनेक बार प्रयास करतीहै, किन्तु स्वाभिमानसे बंधा वह परिवार उसकी प्रार्थनाको अस्वीकार कर देताहै और अन्तमें जीवनके दुहरे दुःखको झेलती द्वन्द्वग्रस्त इरावती एकाकिनी बन कर रह जातीहै।

'**शकुन्त**' की अविवाहित शकुन्तलाका दर्द आर्थिक अभावोंसे ग्रस्त नौकरी पेशा किसी भी स्त्रीका दर्द है। एक ओर उसके घरके लोग उसे कमाऊ देखकर अकर्मण्य हो जातेहैं और दायित्वोंकी दुहाई देते हुए उसके व्यक्तिगत अधिकारोंका हनन करतेहैं, तो दूसरी ओर घरसे बाहरका असुरक्षित-अभिशप्त जीवन उसे कठिन प्रतीत होताहै। अजीतके प्रति प्रेमकी सहज भावनासे वह घर छोड़ देतीहै, किन्तु वह और उसकी मौसी भी उसे अपने घरके लोगों जैसे ही दिखायी देतेहैं। अंततः चारों ओर छाये अंधेरेमें उभरते अनेक प्रश्न-चिह्न उसे तोड़ देतेहैं। आर्थिक

अभावसे ग्रस्त विवशतावश नौकरी करनेवाली स्त्रीकी मनोव्यथाको व्यक्त करनेवाली कहानियोंमें 'मंजुला' एक महत्त्वपूर्ण कहानी है। यद्यपि उसका पति भी नौकरी करताहै, किन्तु बेहद थकी-हारी मंजुला जब शामको घर लौटतीहै और स्वयंको अनचाहे वातावरण में पातीहै, तो चिढ़ उठतीहै। वह अपने पतिके साथ उत्साहसे रहना चाहतीहै, पर महानगरीय यांत्रिक जीवनके बीच सदैव निरुत्साहित बनी रहतीहै। परिणामत: पति-पत्नीके सहज संबंधोंमें दरार खड़ी हो जातीहै। इसके उपरांत भी मंजुला प्रयत्नपूर्वक अपनी गृहस्थीके तारको जोड़े रखनेका प्रयास करतीहै। 'रिक्ता' कहानीमें भयानक दरिद्रताका जीवन जी रही एक नारीकी दूभर स्थितिका यथार्थ चित्र प्रस्तुत हुआ है। पति बेकार है और उसे सौतके बच्चों सहित अपने जीवनकी आवश्यकताएं पूरी करनीहैं। न उसके पास सौंपने लायक देह है, न रूप, न सामर्थ्य है। दया या कृपा उसके स्वाभिमानी व्यक्तित्वको रास नहीं आतीं। अत: वह मार खा-खाकर भी तन-जतनसे मेहनत मजूरी करती हुई जीवन बिता रहीहै। वह कथानायकसे स्पष्ट कहतीहै—'जिस मात्रामें आप सब भगवानका रूप धारण करतेहैं, उसी मात्रामें हम दीन-हीन होते जातेहैं।' इस प्रकार यह कहानी लेखकके प्रगतिशील मानवीय चिन्तनको भी स्पष्ट आकार देतीहै।

'प्रनय' प्रस्तुत कहानी-संग्रहकी एक महत्त्वपूर्ण कहानी है, जो नारी-पुरुष संबंधोंके दुर्भाग्यपूर्ण स्वरको प्रमुखतासे मुखर करतीहै। पति विश्रामके कहनेपर देवेन्द्रकी प्रेरणासे कौसल्या गरीबोंकी सेवाका व्रत ले उस कार्यमें जी-जानसे जुट जातीहै, किन्तु धीरे-धीरे उसे लगताहै कि उसका पति उससे अलग होता जा रहाहै। सचमुच ही विश्राम टूटा हुआ-सा जीवन जी रहाथा। इसलिए नहीं कि कौसल्या समाज सेवामें जुटीथी, इसलिए कि वह देवेन्द्रके व्यक्तित्वसे पूर्णत: प्रभावित होकर प्रत्येक बातमें उसका अंधानुसरण करती हुई विश्रामके महत्त्वको क्षीण और उसके पतित्वको क्षतिग्रस्त कर रहीथी। किन्तु बादमें वह पति की आंखोंमें समाये दर्दको अनुभव करती हुई निश्चय करतीहै कि वह पुन: उसके टूटते भविष्यको व्यवस्थित बनायेगी। इस प्रकार प्रस्तुत कहानी स्थितियोंसे प्रभावित जीवनके द्वन्द्वपूर्ण क्षणोंको समर्थता एवं जीवंतता से प्रस्तुत करतीहै।

नारीकी भव्यताके ऐसे ही चित्रको क्षीण कथारस वाली निबन्धात्मक कहानी 'त्रिमूर्ति' में अंकितकर लेखकने बतायाहै कि आयुके प्रत्येक स्थलपर स्त्रीकी प्रेम भावनाका सफर विस्तृत होता रहताहै। बीचमें कुछ भिन्न अनुभवोंका दौर आताहै, कभी पुरुष प्रवृत्ति के प्रति प्रतिहिंसात्मक प्रवृत्तिभी उभरतीहै, फिरभी जीवनमें उसकी सत्ता अक्षुण्ण है। 'शपथ' शीर्षक कहानीमें लेखकने एक ओर नारीके प्रति हिंसात्मक रूपको प्रस्तुत कियाहै, तो दूसरी ओर उसके महनीय रूपको भी। ऋषिकेशको मालिनी चाहतीथी, किन्तु विवाहके लिए वचनबद्ध होनेके बादभी वह जीवनके पथपर बिछुड़ जातीहै और ऋषिकेशका विवाह अम्बिकासे हो जाताहै। अम्बिका जब असाध्य रोगसे ग्रस्त थी, तभी ऋषिकेश मालिनीको तलाश लेताहै और पत्नीको अपने इस संबंधकी सच्चाइयाँ बता देता है। चूंकि मालिनी विवाह परम्परा एवं वचनको प्रमुख मानतीहै, अत: ऋषिकेशको अधिक निकट आने से रोकती हुई स्मरण कराती रहतीहै कि वह पत्नीके विश्वास एवं कर्तव्यके अनुरूप आचरण करे। अम्बिका की मृत्युके बाद जब मालिनीको पता चलताहै कि अम्बिकाने मृत्युसे पूर्व ऋषिकेशको शपथ दिला दीथी कि वह विवाह अवश्य करे, पर मालिनीसे नहीं। यह जानकर मालती स्वयं विवाहसे इंकारकर ऋषिकेशको समझातीहै कि चाहे ईर्ष्याग्रस्त होकर ही अम्बिकाने वैसी प्रतिज्ञा करायीहो, पर पत्नीको दिये हुए वचनको हल्केपनसे लेना गलत है। अंतत: जहाँ सबके जीवन को कंटकित बनाकर अम्बिका अपने प्रतिशोधको आकार देतीहै, वहाँ मालिनीका आदर्श चरित्र ऊंचा अनुभव होने लगताहै। चरित्रकी आदर्श ऊंचाईका अनुभव 'कैक्टस' शीर्षक कहानीमें भी दिखायी देता है। आनन्द पत्नीकी मृत्युके बाद सुधाके सम्पर्कमें आते हैं। उधर उनका पुत्र अनुराधाको चाहताहै। वे पुत्रको आगे बढ़नेके लिए उत्साहित करतेहै, तो पुत्र उनका एकाकी जीवन देख उन्हें विवाहके लिए प्रेरित करता है। पिता-पुत्रकी समानांतर चलती दो प्रेम कहानियों में दुर्भाग्यसे अनुराधा अन्यत्र विवाह कर लेतीहैं। पुत्र बबनकी पीड़ा पिता आनन्दसे देखी नहीं जाती। वे जीवनसे जुड़े प्रश्नोंसे जूझकर तय करतेहैं कि ऐसे समय उनका ब्याह करना गलत होगा, जब उनका बेटा झुलसकर राख हो रहाहो। अत: वे पुत्र प्रेमके

आदर्शको त्यागसे जोड़कर स्वयं ब्याह न करनेका निश्चय करतेहैं। इस प्रकार यह कहानीभी प्रेम संदर्भों में संवेदनाकी तरलता लेकर चलीहै।

'अनाथ आत्मा' भावात्मक रिश्तोंको सार्थकताका स्वर देती प्रतीत होतीहैं, किन्तु कहीं न कहीं आत्माओं वाला यह संबंध सांकेतिक रूपमें पुरुषकी हीन प्रवृत्तियों को भी उकेरताहैं। पतिकी मृत्युके बाद दमयंतीका विवाहित कथानायकके प्रति झुकाव तथा कथानायकका प्रच्छन्न रूपमें उसकी अतृप्तियोंको पूरनेकी चेष्टा आदर्शके मुखौटेमें किसी अन्य यथार्थको प्रकट करती हैं। 'महारानी' शीर्षक कहानी भी ऐसीही अतृप्तियों की मुखर कथा हैं, जिसकी नायिका सविता अंधेरोंमें घिरीघिरी अनिश्चयोंके बीच अपने जीवनचक्रको भोगती चलीजा रहीहैं। इन दोनोंही कहानियोंमें प्रच्छन्न रूपसे व्यंग्यका सांकेतिक स्वर भी निहित हैं। अतृप्तियों और महत्त्वाकांक्षाओंकी कशमकशको विसंगत रूपमें जीनेवाली सवितापर लेखकने व्यंग्यात्मक प्रहार कर नारीके एक भिन्न रूपको प्रदर्शित कियाहै। 'कन्यादान' शीर्षक कहानीमें भी परम्परागत सामाजिक मूल्यों को ओढ़नेके ढोंगपर लेखकने प्रबल एवं मुखर व्यंग्यात्मक प्रहार कियेहैं। आधुनिका तिलोत्तमा अपने पति को छोड़ प्रेमीके साथ रह रहीहैं। अपनी बेटीके विवाह के समय कन्यादानकी कुल-रीति निबाहनेके उद्देश्यसे प्रेमी धनंजयको अन्यत्र भेज वह पति जनार्दनको निमंत्रित करतीहैं। एक ओर परम्पराको मान्यता देने का ऐसा ढोंग, तो दूसरी ओर लड़कीके विदा होतेही पुनः प्रेमीसे मिलनेकी आतुरता उसे नयी मूल्य चेतनासे दूर हटा देतेहैं। मूल्यहीनताकी ऐसीही स्थिति 'थ्री-इन-वन' कहानीमें भी परिलक्षित होतीहैं, जहां लेखकने पुरुषकी विलासी प्रवृत्तिपर व्यंग्य-प्रहार कियेहैं।

'भयचक्र', 'कुमारसंभव' तथा 'गांधी और गांधी' सामान्य कथात्मक निबंध हैं, जिनमें संवेदनाकी अपेक्षा विचारात्मकताको अत्यधिक गहराया गयाहैं, इससे कथारसमें बाधा पड़ीहैं। 'भयचक्र' शीर्षक रचनामें बलात्कारकी समस्यापर चिन्तन प्रस्तुत हुआहैं। एक वर्ग कहताहैं कि आधुनिक विज्ञापनोंमें शालीनताका अतिक्रमणकर स्वयं स्त्री समुदायने इस समस्याको उकसायाहै, तो एक वर्ग पुरुषकी प्रवृत्तिको दोष देते हुए नारीकी असहायताको इस समस्याका मूल मानतीहै। 'कुमारसंभव' शीर्षक रचनामें डिम्ब प्रत्यारोपण संबंधी प्रयोगके बदले लावारिस शिशुओंको संरक्षण देनेवाली आदर्श विचारधारा प्रस्तुतकर नयी सामाजिक चेतना जगानेका प्रयास किया गयाहैं। 'गांधी और गांधी' शीर्षक रचना सांप्रदायिक संकीर्णताके बदले प्रेमके विस्तृत उदार धरातलका समर्थन करतीहैं।

इस प्रकार 'अनय' की कहानियोंका आद्यंत परीक्षण करनेपर प्रतीत होताहैं कि लेखकने एक ओर साधारण व्यक्तिकी पीड़ाओंका ब्योरा देते हुए नारीके चरित्रको विशेषतः विविध रूपोंमें प्रस्तुत कियाहैं, तो दूसरी ओर विशिष्ट वर्गकी विसंगत प्रवृत्तियोंपर प्रबल व्यंग्य प्रहार भी किये हैं। 'अनय' की सभी कहानियां भिन्न कथा शिल्पके विविध प्रयोगोंको भी उकेरतीहैं। लेखकने प्रायः प्रत्येक संदर्भको मनोविज्ञानके धरातलसे जोड़नेका प्रयास कियाहैं, तथापि कहीं कहीं यह कुछ अविश्वसनीय भी प्रतीत होताहैं। फिरभी हिन्दीमें प्रकाशित मराठी भाषाके दिग्गज कथाकार श्री अरविन्द गोखलेके प्रस्तुत संग्रहका स्वागत करना यथायोग्य होगा। ☐

कच्चे रेशम-सी लड़की[1]

लेखिका : अमृता प्रीतम

समीक्षक : डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

अमृता प्रीतम मूलतः प्रेमकी लेखिका हैं। यह प्रेम अधिकतर लोकलाज निरपेक्ष, सहज वासनासे उत्प्रेरित आदिम भावके रूपमें उनके अधिकतर लेखनमें व्यक्त हुआहै लोक-जीवनकी सहजता और आवेगको लेकर। इसके फ्लैपपर छपी उनकी घोषणाके अनुसार—"मेरी कहानियोंमें जो भी किरदार हैं वे सभी किरदार जिन्दगीसे लिये हुएहैं, लेकिन वह (वे) लोग जो यथार्थ और यथार्थका फासला तय करना जानतेहैं"। पहले यथार्थसे उनका आशय 'है' से और दूसरे यथार्थ से 'होना चाहिये' से है। इस संकलनकी तैंतीस कहानियां ही हैं जिनमें अधिकतर प्रेमियोंकी बेवफाई और प्रेमिकाओंकी वफा, त्याग और संघर्षको दिखाया गया है। लोकजीवनमें प्राप्त प्रेमके सहज उद्वेगकी कहा-

---

१. प्रका. : किताब घर, शीलाततारा हाउस, २४/४८६६ अंसारी रोड, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १८४; डिमा. ९०; मूल्य : ७०.०० रु।

नियाँ हैं जो मूलतः उठायी तो जीवनसे ही गयीहैं, पर इनके पीछे जो दृष्टि रहीहै, उसमें केवल नारी देह और मनका प्रबल आकर्षण ही रहाहै। लगताहै लेखिकाके यथार्थ संसारमें स्त्री और पुरुषोंके लिए प्रेम और देह सौन्दर्यके इस अदम्य आकर्षणके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। इश्कमें जीने और मरनेके अलावा अधिकतर पुरुषों और स्त्रियोंको और कुछ काम है ही नहीं। जीवन और जगत्की किसी और समस्याका इनके लिए कभी कहीं कोई अस्तित्व ही नहीं है। इन कहानियोंका परिवेश यथार्थ लगते हुएभी यथार्थ नहीं है क्योंकि परम्परागत प्रेमकथाओं जैसा रोमानी वातावरण ही इनमें है। पूरी सृष्टिमें इनमें से अधिकतरको प्रेम और सौन्दर्यके अतिरिक्त कुछ और दिखायी ही नहीं देता। यहाँ जगत् वास्तवमें ऐसा कभी नहीं था और न होगा। जीवन और जगत्की अनेक समस्याओंसे ग्रस्त स्त्री पुरुष हमेशा रहेहैं। अधिकतर प्रेम और सौन्दर्यको ही केन्द्रमें रखकर लिखे गये साहित्यसे क्षणिक और उत्तेजक मनोरंजन अवश्य हो सकताहै पर जीवनकी समग्रताका संकेत न दे पाने के कारण वह विश्वसनीय नहीं बन पाता। अतः उसकी सार्थकतापर गंभीर पाठककी दृष्टिमें प्रश्नचिह्न लगा रहताहै। सूफी कवि जायसीकी भांति अमृता प्रीतमके लिए भी कहाजा सकताहै कि वे प्रमुखतः 'प्रेम की पीर' की गायिका हैं, जबकि औरभी गम है जमाने में मुहब्बतके सिवा। होंगे।

लगभग सभी कहानियाँ प्रेम और देह सौन्दर्यके उद्वेगसे उफनती हुई-सी हैं, कहीं यह बाहर उभड़कर आ गयाहै और कहीं भीतरही घुमड़ता रहताहै। कहीं-कहीं बड़ी तीखी वासनाकी आदिम गंध चुभतीहै जैसे सुन्दर स्त्रीको 'मांसका फूल' कहना। संयमित मर्यादित प्रेमके स्थानपर लोकलाजके कुल-कगारोंको तोड़ते-फोड़ते उच्छृंखल कामसे उद्दीप्त स्त्री पुरुष, लोक जीवनमें व्याप्त अंधविश्वासमें अभिशापोंको झेलती प्रचंड जीवटवाली साहसी स्त्रीकी कहानी है 'उघड़ी हुई कहानियाँ'। 'छमक छल्लो' में टोकरी बेचनेवाली लड़कीका यौन शोषण है। पूर्व प्रेमिका तापोंके लिए त्यागकी कहानी है 'आड़ओं और जामुनोंके रखवाले'। जात-पांतसे अभिशप्त बालोकी करुण कहानी है 'मिट्टी की जात'। 'हीरेकी कनी' पतिकी दूरकी रिश्तेकी बहन से अवैध पुत्र होनेके दुःखसे कुएंमें डूब मरनेवाली मिरदोकी कहानी है। प्रथम संभोगके अश्लील संकेत 'कोकली' में दिये गयेहैं। विवाह किसीसे, सन्तान किसी औरसे चाहनेवाली बेधड़क फिरकी तथा 'चाचा जहां मेरा विवाह करताहै, कर लेने दे कोखमें बस तेरा बेटा पालूंगी" (पृ. ५२) जैसी साहसी प्रेमिका, सुहाग रातके पहले चुम्बनमें ही कच्चे शलजमके स्वाद जैसी 'अमाकड़ी'—आमकी फांक जैसी लड़की और उसके प्रेमीकी वासनासे दहकती कहानी है। प्रेमीके लिए सर्वस्व बलिदान करनेवाली कजलीं, मलकी, निष्ठावान् पत्नीके रहते हुए वासना-पूर्तिके लिए युवा लड़कीको ले आनेवाला धनराज अंतमें सेवानिष्ठ पत्नी के साथ घर छोड़ देताहै। पति द्वारा परित्यक्त और साकार करुणा खोयी हुई बछड़ी जैसे मुंहवाली मुरकी तथा रामजीकी डोलचीकी जिन्दरो जिसका चित्रकार पति जर्मन लड़कीके साथ चला गया, जिसके विषयमें लेखिकाकी जिज्ञासा दर्शनीय है—"इसके दिलका और इसकी जवानीका पानी फिर किसने और कब पिया?" अधिकतर कहानियोंकी नायिकाओंके प्रति यही भाव लेखिकाने व्यक्त कियाहै। प्रेमीसे वंचित होकर कुएंमें डूब मरनेवाली लड़की और प्रेमीके चले जानेपर उसकी चाहमें धूनी रमाये चित्रकार बनी आरती। वासना विष से भरे दुनियांके सर्पोंसे अपनी सुरक्षा करनेके लिए गरुड़-सी लड़कीकी कहानी 'गरुड़ गंगा' में यायावरी शैलीमें लिखी गयीहै। 'अजनबी अंधेरा' की पिताके मित्रके दुराचारसे मुक्त होनेवाली तेजस्वी बचनी, त्याग संयमकी मूर्ति मोरनी, स्वाभिमानी मजदूरनी फुलमती, बॉसकी अपने रूप जालमें फंसानेकी चेष्टा करनेवाली पाँच टाइपिस्ट कुआरियां, सहज भावना वाली युवा बेटी मित्रा। 'मर्दकी दिलचस्पी सिर्फ औरतको छीन लेनेमें है' जैसा अनुभव करनेवाली निर्मला प्रेमिकाको लचकती हुई टहनी, चन्दन और देवदास, चांदकी फांक, लाल मिर्च तथा रेशमके धागे जैसी अनेक रूपोंमें चित्रित किया गयाहै। करमांवाली की शृंगारपुरी नथमें जो मुस्कराहटका मोती चमक रहाथा, उसका रंग झेलना कोई आसान नहीं था, वही, प्रेमिकामें आसक्त पतिको त्यागनेका साहस दिखातीहै। प्रेमीसे विवाहका समर्थन करनेवाली दादी तथा प्रेमीसे विवाह करनेकी चुनौती झेलनेवाली पार्वती तथा कच्चे रेशम-सी समझी जानेवाली दृढ़ प्रतिज्ञ लड़की, दो-एक कहानियोंको छोड़कर शेष कहा-

नियाँ पंजाबके लोक जीवनसे ली गयीहै। लोक संस्कृतिकी सहजता, आवेग, विश्वास, अंधविश्वास इनमें व्यक्त हुआहै। चुस्त दुरुस्त शिल्प कथ्यको प्रभावी और संप्रेषणीय बनाताहै।

अमृताजी मूलतः पंजाबी लेखिका है लेकिन ये कहानियां, लगताहै, हिन्दीमें लिखी गयीहै, क्योंकि अनुवाद जैसा कोई उल्लेख प्रकाशकीय सूचनामें नहीं है, तोभी पंजाबी लोक-जीवनकी जीवन्तता, रागोन्मत्ता, प्रेम और सौन्दर्यके अनगढ़ मुखर रूप इनमें हैं। प्रेम और सौन्दर्यके इन उत्तेजक चित्रणोंमें कहीं भी कुंठा या अपराध-बोध दिखायी नहीं पड़ता। जीवन की इन सहज मनोवृत्तियोंको आदिम रूपमें चित्रित किया गयाहै, बिना किसी सहज या सायास अंकुशके। यही इनकी विशेषता (?) है। □

चर्चित महिला कथाकारोंकी श्रेष्ठ कहानियां[1]

सम्पादिका : मोना अग्रवाल
समीक्षिका : सुमति अय्यर (स्व.)

चर्चित महिला कलाकारोंकी श्रेष्ठ कहानियोंमें भारतीय भाषाओंकी एवं हिन्दीकी बाईस कहानियां प्रस्तुत की गयीहै। 'राष्ट्रीय एकताका चंदोबा तानने' की बात सम्पादिकाने भूमिकामें कही भी है, पर फिल्मी राष्ट्रीय एकताकी भांति विभिन्न वेशभूषावाले पात्रोंको एकत्रित कर देना यह राष्ट्रीय एकताका उदाहरण नहीं बन पाते। हिन्दीमें ही जब तीन-चार को छोड़कर कोई चर्चित नाम नहीं है, तो शेष भाषाओं की क्या बात की जाये। दक्षिणकी किसीभी भाषाका प्रतिनिधित्व है ही नहीं, जबकि दक्षिणकी भाषाओंमें महिला कथाकार प्रतिनिधि कहानियां लिख रहीहैं। उन्हें सम्मिलित न कर पानेके पीछे उनके संबंधमें सूचनाकी कमी रहीहो, संभवत: ! जोभी इतर भाषाओंकी कहानियां सम्मिलित की गयीहैं वे भी उस भाषाके समसामयिक साहित्यकी प्रतिनिधि रचनाएं नहीं हैं।

ये कहानियां एक सीमित संसारकी कहानियां हैं, आलोचककी दृष्टिमें लेखकके रूपमें ये दूसरे स्तरकी हो सकतीहैं, पर ये विशिष्ट हो सकतीहैं और इस लेखनको गहरी संवेदनाके साथ उकेरनेका काम महिला कथाकार करती रहीहैं। कुछेक कहानियां इसमें इस स्तरपर उल्लेखनीय हैं। संवेदनामें भले ही स्त्री-पुरुष का भेद न हो, पर संवेदनाके प्रति प्रतिक्रियामें, या उसके अन्तर्गत होनेवाली अनुभूतिमें अन्तर तो हैही।

'पेंशन' और 'अभी तो' दोनोंही चर्चित कथाकारों की उल्लेखनीय कहानियां हैं। वस्तु, शिल्प और रचाव की दृष्टिसे परिपक्व एवं प्रौढ़ कृतियां हैं। 'एक और एक' भी संवेदना और शिल्पकी दृष्टिसे एक अच्छी कहानी है। ये तीनों ही कहानियां घर संसारके इर्द-गिर्द ही बुनी गयीहैं पर इन कहानियोंमें विषयकी गहरी पकड़ और एक सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि है। आज पब्लिक स्कूलोंके मोहने किस प्रकार समाजके उस वर्गको भी जकड़ रखाहै, जो संभ्रांत और सोचनेका दायित्व ओढ़नेका दावा करताहै। वृन्दाके उस दिशाहीन गुस्से, क्षोभको सहानुभूतिपूर्ण ढंगमें उकेरा है।

'एक और एक' आजके विघटित होतेजा रहे समाज, एक बूढ़ी औरत और उसकी पोतबहूके बीचके उस आंतरिक जुड़ावके रेशेकी कहानी हैं, जोकि स्त्री मानसिकताके प्रतिरोधमें ही एक दूसरेसे जुड़ाहै। स्त्रीके लिए युग ठहर गयाहै। विकासके सारे रास्ते उसने बंद कर लियेहैं, रूढ़ियोंका वल्कल वह कतई छोड़ना नहीं चाहती। पोतबहू और ददियाका दुःख एक दूसरे की ओर प्रवाहित होताहै, पर आपसी संबंधसे ऊपर उठकर एक मानवीय आस्था जगाताहै।

'पेंशन' की कथा चिरपरिचित है। परित्यक्ता नारीका दुःख, उसका चुपचाप तिरस्कारोंको सहना, हंसकर सहना... कुछभी नया नहीं है, पर लछमाका चरित्र पाठकोंके मनमें उतर जाताहै। कहानीको 'कहने' की कलाने उसे महत्त्वपूर्ण बना दियाहै।

'पाप' आजके व्यस्ततम जीवनमें संवेदनशून्य होती जा रही मानसिकतापर चोट है। लोग संवेदनाको भुनातेहैं और उसे प्रदर्शनकी वस्तु मानतेहैं, उनके लिए उसका महत्त्व इससे आगे नहीं है। वह उन्हें छू नहीं पाती। जब कहानीकी 'मैं' उस छोटे-से पुरजेको हवा में उड़ातीहै तो पाठककी आस्था भी तार तार होती है। पर प्रश्न यह है कि क्या पाठकको आस्थाहीन

1. प्रका. : वर्तिका प्रकाशन, डब्ल्यू-१२७ ए, ग्रेटर कैलाश-१, नयी दिल्ली-४८। पृष्ठ : १५०; डिमा. ९२; मूल्य : ८५.०० रु.।

होकर रहना होगा ? लेखक उस संसारसे क्या सामना नहीं करवा सकता जहां करनेकी चाह हो। पाठकके लिए चाहकी उपस्थिति ही महत्त्वपूर्ण है।

'कोल्हूके बैल' फिर एक परिवारकी कहानी है। मध्य वर्गकी धीमी जिन्दगीमें जहाँ गुंजाइशके अभावमें फैसले बार बार स्थगित किये जातेहैं। यह इस वर्गकी त्रासदी है।

'सिर्फ औरत' अमृताजीकी तर्ज़की कहानी है, आत्मानुभवके अंश। शब्दों और तराशी भाषाका जादू यहां है— एहसासोंका पारदर्शीपन।

कुल मिलाकर यह संग्रह महिला लेखनका व्यापक स्वरूप प्रस्तुत नहीं कर पायाहै। हां, सीमित क्षेत्रमें भी कुछ झलकियां जरूर हैं जो आस्था और आश्वस्ति जगातीहैं। □

आखिर वह एक नदी थी[1]

कहानीकार : दामोदर खड़से
समीक्षक : डॉ. तेजपाल चौधरी

'आखिर वह एक नदी थी' दामोदर खड़सेका, 'भटकते कोलम्बस' और 'पार्टनर'के बाद, तीसरा कहानी संग्रह है। दामोदर खड़सेने अनुवाद और मौलिक सृजनके माध्यमसे हिन्दी साहित्यमें अपनी पहचान बनायीहै। उनकी कहानियां मानवीय संवेदनाओं के विभिन्न आयामोंको स्वर देतीहैं। स्वार्थ वृत्तिके पैरों तले कुचले जाते जीवन मूल्य, अहंकारके टकराव से चरमराते पारिवारिक सम्बन्ध, स्थितियोंके आन्दोहन से फलती-फूलती राजनीतिक चालबाजियां, रोजी-रोटी के जोड़तोड़में लगी अन्याय और अनीतिके साथ समझौता करती बेबस-कमजोर जिन्दगी और माता-पिता की व्यस्ततताजन्य उपेक्षाका मारा, कम उम्रमें ही 'समझदार' होता, दयनीय बचपन—इन कहानियोंके कतिपय उल्लेखनीय पहलू हैं।

परन्तु खड़सेजीकी कहानियोंकी सही पहचान मूल्योंके प्रति लेखककी गहरी आस्था है, जो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्राय: सर्वत्र प्रकट हुईहैं। संग्रहकी शीर्षक कथा 'आखिर वह एक नदी थी' में त्याग और समर्पण की उदात्ततताको वाणी मिलीहैं। यह बेटेके कैरियरमें अपने सुखी भविष्यकी तलाश करती एक विधवाकी संघर्षगाथा हैं जिसे वात्सल्यके बदलेमें मिलतीहैं करुण उपेक्षा और अवांछित 'तीसरा आदमी' होनेका दारुण व्यर्थता बोध! कहानी यदि इसी मोड़पर समाप्त हो जाती, तो वह पुरानी पीढ़ीकी उपेक्षाकी एक सामान्य कहानी होती। किन्तु जीवनके इस मोड़पर भी वह विचलित नहीं होती और बाकी उम्र कुष्ठ रोगियोंकी सेवामें अर्पितकर आत्मसन्तोषका चिरवांछित कोश पा जातीहै। और यह मोड़ इसे असामान्य कहानी बना देताहै।

'केकड़ा' की ऋतुका व्यवहार भी इसी स्वरका है। वह भावुक क्षणोंमें अपनी स्वर्गवासी बहनके बच्चों के लिए अपने जीजासे विवाह करना स्वीकार कर लेतीहै, परन्तु अपने ढंगसे जीवन जीनेकी आकांक्षा, पुरानी स्मृतियोंसे मिलकर उसे अपने परिवारसे जुड़ने नहीं देती। अन्ततः जब उसकी आत्मा जागतीहैं तो वह उस अहसासको तोड़कर फेंक देतीहैं, तब उसे अद्भुत शान्ति मिलतीहैं। 'प्यासी मछलियां' की आरतीके प्रति गीता और प्रकाशका सौजन्य भी केवल मित्रताका निर्वाह नहीं, अपितु 'स्व' के विस्तारका एक भव्य रूप हैं जिसकी परिणति उनके वात्सल्यकी सन्तुष्टिमें होतीहैं।

मूल्योंके प्रति आस्था जगानेवाली एक और उल्लेखनीय कहानी हैं, 'बोनस'। लोकल ट्रेनमें भूली हुई बच्चोंके कपड़ोंकी थैली दो दिन बाद मिल जानेके दिव्य आह्लादका चित्रण करनेवाली यह कहानी एक भले आदमीके सौजन्यको रेखांकित करतीहैं, जो उसे थैलीपर छपे दर्जीके पतेपर पहुंचा देताहैं। काश सभी ऐसा करते !

कई कहानियोंमें व्यवस्थाके प्रति आक्रोशभी व्यक्त हुआहै, जैसे 'भूमिगत' में झूठा सच्चा सर्टिफिकेट लेकर आदर, पेनशन और सुविधाएं हड़पनेवाले स्वतंत्रता सेनानियोंपर 'भटकतीं राख' में पुण्याचरणका स्वांग रचाकर वासना तृप्ति करनेवाले बगुलाभक्तोंपर 'मुहानेपर' में अधिकारोंके मदमें दीन-हीन फेरीवालों का संसार उद्ध्वस्त करनेवाले कारपोरेशनके अधिकारियोंपर और अन्य कई लोगोंपर जो अपनी स्थितियों का उपयोग दूसरोंके उत्पीड़नके लिए करतेहैं। इस वर्ग

१. **प्रका. : दिशा प्रकाशन, १३८/१६, त्रिनगर, दिल्ली-११००३५। पृष्ठ : १४०; का. ९०; मूल्य : ४०.०० रु.।**

की कहानियोंमें सर्वोत्तम बन पड़ी हैं, 'ठंडी आग' जो एक महत्वाकांक्षी युवकको जीवनके उस दोराहेपर लाकर खड़ा कर देतीहैं, जहां उसे अपने बॉसकी बदनाम लड़कीसे विवाह करनेकी स्वीकृति देनी पड़तीहैं। क्योंकि वह जानताहैं कि उसकी 'न' का अर्थ हैं, रोज़गारसे हाथ धोना और एक घोटालेमें लिप्त होनेके आरोपमें जेल जाना। 'ठंडी आग' महाराष्ट्र सरकारकी एकाधिकार कपास खरीद योजनाके माध्यमसे सरकारी अधिकारियोंके भ्रष्ट तरीकोंके कई पहलुओंको अनावृत करतीहै।

कुछ कहानियोंमें प्रेम और आकर्षणका चित्रण हुआहैं, तो कुछमें अन्तर्जगत्की उधेड़बुनका। अच्छी कहानियोंके बीच कुछ कमजोर रचनाएं भी खपायी गयीहैं। प्रकाशनकी आकांक्षा!

कुल मिलाकर दामोदर खड़सेकी ये कहानियां उनके व्यापक परिदृश्यके कारण पठनीय बन पड़ीहैं। भाषापर कहीं कहीं मराठीका प्रभाव हैं। परन्तु यदि हिन्दीको राष्ट्रभाषाके रूपमें प्रतिष्ठित होनाहैं, तो ऐसे प्रभावको स्वीकार किया जाना चाहिये—खासकर शब्दावलीको ग्रहण करनेके सन्दर्भमें। □

व्यंग्य : विनोद : हास्य

मार्क्थोकी गरीबी[1]

लेखक : महाबीर चाचान

समीक्षक : डॉ. भानुदेव शुक्ल

श्री महाबीर (इसे 'महावीर' न पड़ा जाये) डिप्लोमाधारी सिविल इंजीनियर हैं जो हिन्दी और बंगला—दो भाषाओंमें व्यंग्य लिखते रहेहैं। हिन्दी कहानियोंका बंगला भाषामें अनुबाद पुस्तक रूपमें 'तुमि केनो बोले छिले आमि सुन्दर' प्रकाशित करा चुकेहैं। मौलिक रचनाओंकी यह पहली प्रकाशित पुस्तक है। राजस्थानमें जन्मे तथा सिलीगुड़ी, बंगालमें कार्यरत हैं। श्री चाचानका कविता-प्रेम निबंधोंमें बार-बार झलकाहै और विद्यापति, रवीन्द्र बाबू, संस्कृत गीतकारों आदिके गीतोंकी पंक्तियोंसे उन्होंने लेखोंको सजायाहै। अनुमान कियाजा सकताहै कि लेखक व्यंग्य के लिए समर्पित नहीं है तथा मनकी तरंगके अनुसार कभी व्यंग्यका हलका प्रयोग करताहै तो कहीं गीतोंके लालित्यमें सहजताका अनुभव करताहै। पुस्तकके फ्लैप पर उनके कवि होनेकी सूचना नहीं है। संक्षेपमें, इन पच्चीस लेखोंमें चाचान अपने बदलते हुए मूडके अनुसार कहीं व्यंग्यकी ओर झुकतेहैं तो कभी जयदेव, विद्यापति आदिके पदोंके संगीत सुनने लगतेहैं। पुस्तकमें संकलित लेखोंमें हमें नौ व्यंग्य प्रधान, आठ व्यंग्य और विनोदभरे तथा शेष आठ मौज-विनाद भरे लगेहैं। व्यंग्य प्रधान लेखोंमें भी वैसी सोद्देश्य प्रतिबद्धता नहीं जिससे परसाई या सफदर हाशमी बना करतेहैं।

समर्पित व्यंग्यकार विद्रूपके विध्वंसके संकल्पके साथ लेखनी उठाताहै। व्यंग्य हमें सोचनेको मजबूर करताहै, मनोरंजन करके समाप्त नहीं हो जाताहै। यह काफी-कुछ निस्संग, बौद्धिक तथा प्रहारात्मक

१. प्रका. : नटराज प्रकाशन, ए-९८ अशोक बिहार, फेज प्रथम, दिल्ली-५२। पृष्ठ : १०३; डिमा. ९३; मूल्य : ६०.०० रु.।

सामाजिक-संकल्प हुआ करताहै। कैनेथ टाइननने सुप्रसिद्ध अंग्रेजी व्यंग्य-नाटककारको 'ध्वंस-विशेषज्ञ' (ए डिमोलीशन एक्सपर्ट) कहाथा। व्यंग्यकार ध्वंस करताहै ताकि उसके स्थानपर समुचितका निर्माण कियाजा सके।

हास्यकी सृष्टिके समय सृष्टा भी मजा लेता चलताहै तथा अन्य लोगभी उसके चटखारे लेतेहैं। हास्य-रचनासे समय तो अच्छा कट जाताहै किन्तु अन्तमें पाठकके पल्लेमें कुछ नहीं होता। अब और थकावटके क्षणोंमें विश्राम देनेका भी महत्त्व हुआ करताहै, इससे हम इन्कार नहीं कर रहेहैं। किन्तु, हास्य रचना हमें कोई नया संकल्प नहीं देती। दूसरे, हास्य-रचनाके पाठकके रूपमें हमारा व्यक्तित्व सामाजिकका नहीं होता। किसी समय, लगभग आधी शताब्दी पहले, हमारा एक गुजराती बालसखा एक हास्य प्रधान गुजराती पत्रिका 'बे घड़ी नूं मौज' से चुटकुले सुनाया करताथा। वह पत्रिका अब निकलतीहै या नहीं, यह तो पता नहीं किन्तु उसका शीर्षक हास्य के दो घड़ीके मौजके सीमित उद्देश्यको प्रकट करने वाला बनकर हमारी स्मृतिमें चिपका हुआहै। अंग्रेजी के सबसे महत्त्वपूर्ण हास्य कथाकार पी. जी. वुड हाउसकी रचनाओंको पढ़नेके तत्काल बादभी उसके कथासारको देना कठिन है, किसी विशेष उद्देश्य या कथ्यको बता पाना तो लगभग असंभव ही हो जाता है। क्योंकि मनोरंजनके अतिरिक्त कोई उद्देश्य होता ही नहीं। हास्यकी यही सीमा है। व्यंग्यकी सीमा यह है कि यह उद्देश्यमें अत्यंत गंभीर होताहै। इससे इसके रचनाकार शिल्पके प्रति उदासीनता भी प्रकट कर सकतेहैं। चाचानने व्यंग्यके अवसरोंपर भी भाषागत वैशिष्ट्यमें कमी नहीं आने दीहै। अधिकतर निबंधोंमें चाचान गंभीर व्यंग्य तथा उद्देश्यहीन मनोरंजनके बीचकी दो धुरियोंके बीच स्थित रहेहैं। किन्तु, इनसे सदैव दूर भी रहेहैं। कहीं भी वे असंगत नहीं हैं।

श्री चाचानके व्यंग्यात्मक लेख विषयगत-वैविध्य रखतेहैं। 'मुनमुनकी टांगें और नयी बहूका पसन्द आना' में होनेवाली पत्नीमें सर्वगुण सम्पन्नताकी कामनापर, 'प्रदूषण' में अंग्रेजी-परस्तीपर, 'रेलका टिकिट' में महंगाई बढानेमें शासनके योगपर, 'समय नहीं है' में मित्रबाको दफ़न कर देनेवाली भतिकवादी वृत्तिपर, 'समाधि' में देशकी राजधानीको कब्रिस्तान बनानेवाली बढ़ती समाधि-संख्यापर (यह विचारणीय है कि ये समाधियां मुख्यत: प्रधानमंत्रियोंकी हैं, राष्ट्रपतियोंकी नहीं तथा इनमें एक नेहरु परिवारके सदस्य की भी है जो अधिकारिक रूपसे कुछ नहीं था), 'नेहरू गोल्ड कप' में विजयके दृढ़ संकल्पकी कमीपर, 'मार्क्स थ्रीकी गरीबी' में भौतिक उपलब्धियोंकी होड़पर तथा 'लघु गुरु' में गुरुडमकी प्रवृत्तिपर सटीक व्यंग्य किये गयेहैं।

जिन निबंधोंमें व्यंग्य-मिश्रित विनोद हैं, वे इस प्रकार हैं—'नौकर', 'पत्नीका आपरेशन', 'आश्रय', 'फूलपैण्ट', 'पथ्यका औषध नहीं मांगता', 'बनिया जीता क्यों है', 'गैस' तथा 'मर्द'। 'खिड़की', 'शव-यात्रा', 'सफेद बाल', मौत आदि शुद्ध विनोदके लिए लिखे गयेहैं।

चाचान भाषागत वैविध्यके परिचय देतेहैं। निबंध में मूडके अनुसार उनकी भाषाका स्वरूप बदल जाता है। कुछ बानगियां प्रस्तुत हैं—

"अर्थी सजाओ, यह लाओ, वह लाओ, झंझट। फिर इस ढाई मनके मालको कंधेपर उठाकर भरी दुपहरीमें नंगे पैर ढोकर ले जाओ। ले जाओ कहां ना नदिया किनारे। 'धीरे समीर यमुना तीरे' क्या रास रचवाना है? कौन-सी प्रस्तर-खण्ड-उपवेष्टिता राधा प्रवाहमान सरितामें पाद-पल्लवसे उर्मिमाला को तोड़ती उसके लिए प्रतीक्षरत हैं कि मृतकी अंतिम इच्छा तो पूरी करदें।" (शव यात्रा)।

"शादी होनेपर ही लोग बिगड़तेहैं। बड़ों-बड़ोंको देखाहै। बहू आते ही बहूरूपिया हो जातेहै। घरकी मुर्गी दाल बराबर लगतीहै, परायी मुर्गी मोटी ताजी।"

"माननीय प्रधानमंत्रीजी, हमें इसी सदीमें छोड़ दों। खाली पेटपर यह कोट-टाई और पिचके गालोसे अंग्रेजी निकलेगा तो तुम्हें शर्म नहीं आयेगी, हमें आयेगी। भूखसे ही मरनाहै, सो इसी सदीमें ही मर लेंगे, अंग्रेजी बुलवाकर, ओढ़वाकर, जोकरीकी मृत्यु तो न दो।" (प्रदूषण)।

'कोई भी राष्ट्राध्यक्ष जब हमारे यहां आताहै, तो हम उसे भगवानके किसी मंदिरमें नहीं ले जाते। हम तो उसे गांधीसे लेकर संजयकी समाधितक चक्कर लगवातेहैं। इन समाधियोंके चक्करमें उससे ताजमहल तक का देखना छूट जाताहै।' (समाधि)।

श्री चाचानने अनेक नये सार्थक मुहावरे भी गढ़े है। कुछ प्रस्तुत हैं—

"मिठाईका मजा कोई ले रहाहै, इन्सुलिनकी सुई मुझे लग रहीहै।"

"साधुकी भक्ति फलके लिए याचना करतीहै, चोर की भक्ति बलात् ग्रहण करतीहै।"

"चटनीका चटखारा तुमने लिया है, उसे पीसने की प्रक्रिया तुमने नहीं देखीहै।"

लेख हास्य-विनोद प्रधान हों या व्यंग्य-प्रधान प्रायः सबमें चाचानने कथात्मक शैलीका सहारा लिया है। इसलिए सब रोचक भी हैं। भाषा-कौशल हमने देखा ही है। इसमें वर्तनीकी अशुद्धियां अवश्य सामान्य से अधिक हैं तथा खटकतीहैं। अधिकतर अशुद्धियां उच्चारण-दोषके कारण दिखायी देतीहैं। कोष्ठकमें शुद्ध रूपोंके साथ अशुद्धियोंमें कुछ प्रस्तुत हैं—बुससर्ट (बुशशर्ट), तस्तरी (तश्तरी), आग्नेय गिरी (आग्नेय गिरि), बाल्मिकी (बाल्मीकि), जिन्स (जीन्स), विन्ड चिटर (विण्ड चीटर), डीनर (डिनर), परकिया (परकीया), ग्रील (ग्रिल), श्लोगन (स्लोगन), कीप फीट (कीप फिट), गस (गश), पीस्टन (पिस्टन), हारा किरी (हाराकीरी), संटिग यार्ड (शण्टिग यार्ड) आदि।

पुस्तकका शीर्षक व्यंग्यात्मक है, शायद 'फूलपेंण्ट' का 'फूल' भी व्यंग्यात्मक है, वर्तनीकी भूल नहीं है। समग्रतः चाचान सीमित प्रतिबद्धताके, अपने मूडके उत्तम निबंध-लेखक हैं। उनके मौलिक लेखोंकी पहली पुस्तकका स्वागत है। □

जिन्दाबाद/मुर्दाबाद[1]

लेखक : शकरलाल मीणा

समीक्षक : भानुदेव शुक्ल

शंकरलाल मीणा एक दशकसे कुछ अधिक समय से विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें छपते रहेहैं। पुस्तक रूपमें व्यंग्य संकलन 'कब्र हमारी मुर्दा आपका' तथा कहानी-संग्रह 'आखिर कबतक' के पश्चात् यह तीसरी पुस्तक है। पुस्तकके फ्लैपकी सूचनाके अनुसार एक उपन्यास तथा एक कविता-संग्रह शीघ्र प्रकाश्य हैं। इस प्रकार नाटकको छोड़कर साहित्यकी सभी विधाओं—व्यंग्य-लेख, कहानी, उपन्यास तथा कवितामें मीणाजीने अपनी रचनात्मक क्षमताके परिचय दियेहैं या शीघ्र ही देनेवाले हैं। लेखोंमें कहानी-कौशलने एकरसताको तोड़कर उनको सरस बना दियाहै। कुशल सम्वाद-योजनाने भी अनेक अवसरोंपर सरसतामें वृद्धि कीहै। आश्चर्य है कि मीणाजी द्वारा किसी नाटककी रचनाकी कोई सूचना नहीं है।

पुस्तकके लेखोंमें मुख्यतः दो प्रकारके लेखोंकी संख्या सर्वाधिक है—एक, जिनमें मुख्य स्वर व्यंग्यके हैं तथा दूसरे, जिनमें व्यंग्यसे अधिक हास्यकी प्रवृत्ति प्रमुख हैं। प्रथम प्रकारके लेखोंमें उल्लेखनीय हैं—'ईमानदारीसे आखिरी मुलाकात', 'पंचनामा : मेरे गरीबखानेकी तलाशीका', 'जिन्दाबाद/मुर्दाबाद', 'मुलाकात : एक इंगलिश मीडिया स्कूलके प्रिंसीपल से', 'नौकरी लगनेसे पहले और नौकरी लगनेके बाद', 'आइये, फंसायें आपको' तथा 'स्थानान्तरण प्रार्थना-पत्रोंसे उजागर होते निष्कर्ष'। दूसरे प्रकारके, विनोद-प्रधान प्रकारके, लेखोंमें हमें 'मैं, यमदूत और रिजर्व आत्माएं' एवं 'गायका खूंटा, बकरीकी मेंगनी और राजाका अपमान' सबसे रोचक लगेहै। इनमें भी व्यंग्य हैं किन्तु मुख्य प्रभाव व्यंग्यके नहीं हैं। इन दोनोंमें पहलेमें आंकड़ों तथा तथ्योंकी प्रशासनिक हेराफेरीपर व्यंग्य है तथा दूसरेमें दैनिक वेतनभोगी पर उच्चाधिकारियों द्वारा अपनी गलतीकी जिम्मेदारी खिसका देनेके साथ उसकी (दैनिक वेतनभोगीकी) वार्षिक वेतन-वृद्धिको रोकनेके निर्णयमें प्रशासनकी कार्य-पद्धतिकी झलक भी दी गयीहै। शेष लेखोंमें व्यंग्य और हास्य किसीके विशेष प्रभाव नहीं पड़तेहैं क्योंकि इनमें न तो सुनिश्चित उद्देश्यपरकता है और न ही वैसी विनोद-कुशलता दिखायी देतीहै। विनोद तथा व्यंग्यसे सम्मिश्रित 'मैं, यमदूत और रिजर्व आत्माएं' में कल्पना-कौशल भी है। इसीलिए यह लेख पुस्तकका सबसे अधिक सरस तथा उद्देश्यपूर्ण लेख बन गयाहै। श्री मीणाको लम्बे शीर्षकोंपर अधिक विश्वास दिखायी देताहै।

एक भविष्य-कल्पनाको वर्तमानपर व्यंग्यके लिए मीणाजीने निर्मित कियाहै। 'इक्कीसवीं सदीके मध्य का भारत : बकलम चीनी यात्री' में इक्कीसवीं शताब्दीके भारतका जो कल्पना-चित्र निर्मित किया गयाहै

१. प्रका. : दिशा प्रकाशन, १३८/१६, त्रिनगर, दिल्ली-११००३५। पृष्ठ : १५८; डिमा. ९३; मूल्य : ५०.०० रु.।

वह भारत-भाग्यविधाताओंकी कुत्ता-खसोटको देखते हुए असंभव है; इस असंभवकी कल्पना द्वारा व्यंग्य-कारने वर्तमानको भ्रष्ट करनेवालोंपर सटीक व्यंग्य कियाहै। लेख इतिवृत्तात्मक होनेसे कुछ सपाट हो गयाहै। यह इसकी कमी है।

मीणाजीने प्रकट कियाहै—"व्यंग्य किसी अवांछित विडम्बनाको पूरी तरह नंगा भले ही न करताहो आवरणकी एकाध परतको पकड़कर कमसे कम उतना तो खींचताही है कि चेहरा यानी असली चेहरा पूरा नहीं तो उसकी एकाध झलक दिखायी दे जाये।'

हमें विश्वास है कि पाठकों द्वारा पुस्तकका स्वागत होगा। □

चलचित्र : भाषा विकास

चलचित्र : कल और आज[1]

लेंखक : सत्यजित राय
अनुवादक : योगेन्द्र चौधरी
समीक्षक : डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

भारतीय सिनेमा जगत्में सत्यजित राय उन बिरले लोगोंमें से थे जो बहुमुखी प्रतिभाके धनी थे। कथा, पटकथा, संवाद, कैमरा, संगीत, पार्श्व संगीत, सम्पादन, निर्देशन आदि फिल्म निर्माणके सभी पक्षोंमें उनकी अबाध गति थी। फिल्म क्षेत्रमें बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कुछ दूसरे लोगभी रहेहैं और उन्होंने फिल्म निर्माणमें अपनी प्रतिभाका उपयोग भी किया, पर इस संबंधमें कुछ लिखा नहीं। सत्यजित राय प्रतिष्ठित लेखकभी थे। उन्होंने अपनी प्रतिभाका उपयोग लेखनमें भी किया। उन्होंने फिल्म कलाके इतिहासके बारेमें भी लिखाहै, और फिल्म निर्माणके लिए अपेक्षित विभिन्न पक्षोंके बारेमें भी।

समीक्ष्य पुस्तकमें फिलमसे सम्बन्धित उनके १८ लेख सम्मिलित किये गयेहैं जो विभिन्न अवसरोंपर विभिन्न प्रयोजनोंसे लिखे गयेथे; फिरभी इनमें एक समानता है, और वह यह कि अपवाद-स्वरूप केवल एक लेखको छोड़कर शेष सभी फिल्मकी भाषासे ही सम्बन्धित हैं। इस भाषाका विकास कैसे हुआ, इसमें किस-किसका प्रमुख योगदान है, क्लोज अप, मिड शाट, लाँग शाट, टाप शाट, ट्रैकलिंग शाट, फास्ट मोशन, सुपर इम्पोजीशन, मोन्ताज, फोकस, डीप फोकस, फ्रीज, आउट डोर/इन डोर शूटिंग, डिजाल्व, फेड, पार्श्व संगीत, शास्त्रीय संगीत, देशी-विदेशी वाद्य यंत्र, संवाद, कैमरा, कैमरेके चमत्कार, उनका उपयोग और गोपन जैसी तमाम चीजें क्या हैं, इनका कब और किस प्रयोजनसे उपयोग किया जाताहै आदि बातोंपर उन्होंने प्रकाश डालाहै। क्रान्तिपूर्व और क्रान्तिपश्चात्के सोवियत रूसमें फिल्मोंकी स्थिति और उनके योगदान की भी समीक्षा एक लेखमें कीहै। अतीतकी बंगला फिल्मों और बंगला फिल्मोंके कला पक्षपर भी एक-एक लेख लिखाहै। दो लेखोंमें उन्होंने अपनी दो फिल्मों 'अपूर संसार' और 'चारुलता' पर समीक्षकों द्वारा कीगयी आपत्तियोंके उत्तर भी दियेहैं। दोनों फिल्में क्रमशः विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय और गुरुदेव रवीन्द्रनाथकी प्रसिद्ध रचनाओंपर आधारित हैं।

1. प्रका राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : १५५; डिमा. ९२; मूल्य : ७५.०० रु.।

आलोचकोंकी मुख्य आपत्तियां मूल रचनाओंमें किये गये परिवर्तनोंको लेकर हैं। लेखकने कुछ प्रसंगोंकी तुलना करते हुए यह स्पष्ट कियाहै कि कहानी या उपन्यासकी भाषामें दिये विवरणको सिनेमाके परदेपर साकार करने और प्रभावी बनानेके लिए अनेक बार परिवर्तन करना आवश्यक हो जाताहै, मूलका हू-ब-हू अनुसरण करना संभव नहीं होता। उदाहरणार्थ, चारुलताकी नायिका बालिका-वधूसे युवती बन चुकी है, पर उसका पति इस ओर ध्यान ही नहीं दे रहाहै। रवीन्द्रनाथने कहानीमें लिखाहै, "युवती पत्नीकी ओर ध्यान आकर्षित करती हुई किसी आत्मीयाने जब उसकी (भूपतिकी) भर्त्सना की…।" सिनेमाके परदे पर 'किसी आत्मीया" जैसी अमूर्त वस्तुके लिए स्थान नहीं हो सकता। अत: फिल्ममें इसके लिए एक नाटकीय दृश्य रचा गया। उस दृश्यका विवरण लेखकने अपने इस लेखमें दियाहै (पृ. ९९)। इसी प्रकार मूल कहानीमें उमापद (चारुके भाई)का केवल तीन बार उल्लेख आयाहै और तीसरे उल्लेखमें यह स्पष्ट होता है कि वह अपने बहनोई भूपतिसे विश्वासघात कर रहाहै। जो चरित्र कहानीमें एक महत्त्वपूर्ण भूमिका ग्रहण करनेजा रहाहै, चलचित्रमें उसे इतना अस्पष्ट और गुप्त नहीं रखाजा सकता। अत: एक ओर तो ऐसे प्रसंगोंका सृजन आवश्यक होगया जिनसे यह पता चले कि भूपति उमापदपर विश्वास करताहै, दूसरी ओर दूसरे पात्रों द्वारा उमापतिकी आलोचना भी आवश्यक होगयी जिससे उसकी दुर्बलताका संकेत मिले और विश्वासघातकी घटना विश्वसनीय लगे ताकि यह विश्वासघात दर्शकोंके मनको छू ले (पृ. १००-१०१)। ऐसे अनेक प्रसंग लेखकने उद्धृत कियेहैं और इस प्रकारके परिवर्तन करनेकी अपनी स्वतंत्रताका औचित्य सिद्ध कियाहै।

सत्यजित रायकी एक विशेषता और थी। उन्होंने पथेर पांचाली, अपराजित जैसी फिल्मोंमें कई ऐसे अभिनेता आदिभी लिये, जो गांवके निवासी थे और जिन्होंने अभिनय करना तो दूर, कभी कोई फिल्म देखी तक नहीं थी, फिरभी उन्होंने उनकी फिल्मोंमें ऐसा सजीव और सहज अभिनय किया कि "उच्च श्रेणीके पेशेवर अभिनेताओंकी श्रेणीमें आगये (पृ. १३४)।" 'दो चरित्र' 'इधर-उधरकी बातें' जैसे लेखों में उन्होंने ऐसे कुछ लोगोंको याद कियाहै। पथेर पांचालीमें ७५ वर्षीया इन्दिर ठकुरानीके पात्रको बिना मेकअपके सजीव करनेवाली चुन्नीबाला देवीने यद्यपि बहुत पहले मूक फिल्मोंमें अभिनय कियाथा, पर इस वृद्धावस्थामें उन्होंने आउटडोर शूटिंगका जो हड्डी तोड़ परिश्रम किया, अपने ही स्वरमें भजन प्रस्तुत किया और मृत्युका दृश्य जिस तल्लीनतासे दिया, उसके प्रति लेखकने 'उर्फ इन्दिर ठकुरानी' (पृ. १२२-१२६) लेखमें अपना सम्मान व्यक्त कियाहैं।

सामान्यतया 'पथेर पांचाली' सत्यजित रायकी सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जातीहैं। उन्होंने स्वयंभी लिखा हैं कि "सच कहूं, केवल हृदयको ही प्रभावी मानकर फिल्मकी उत्कृष्टताका विवेचन किया जाता, तो पथेर पांचाली निश्चय ही मेरे इस पच्चीस वर्षके अरसेकी सर्वश्रेष्ठ फिल्म मानी जाती। लेकिन फिल्मका विवेचन एकमात्र इसी गुणवत्ताके आधारपर नहीं किया जाता हैं। मुझे मालूम हैं कि 'पथेर पांचाली' के अनेक हिस्सों में चलचित्र भाषाकी कमजोरियां हैं और उन कमजोरियोंका एकमात्र कारण हैं मेरी अनुभवहीनता (पृ. १५१)।" उनका माननाहैं कि "चलचित्रकी भाषाकी दृष्टिसे मेरी रायमें 'अरण्येर दिन रात्रि' मेरी श्रेष्ठ फिल्म हैं। हालांकि इस देशमें उसे पर्याप्त ख्याति नहीं मिली (पृ. १५४)।" हिन्दी सिनेमाकी आलोचना उन्होंने अन्यत्र भी कीहैं और पुस्तकके अन्तिम अनुच्छेद में भी लिखाहै कि "हिन्दी फिल्मोंके प्रभावसे दर्शकों की अभिरुचिमें विकृति पैदा (पृ. १५५)" हुईहैं। सुधी पाठक इस टिप्पणीसे सहमत ही होंगे।

इस पुस्तकमें संकलित 'विनोद दा' शीर्षक लेख फिल्मोंसे सीधा सम्बन्धित नहीं हैं। इसमें शान्ति निकेतनके एक चित्रकार श्री विनोदबिहारी मुखोपाध्यायका मार्मिक परिचय और लेखकका उनसे वार्तालाप दियाहैं जिसमें प्रसंगवश कुछ फिल्मकी बात भी हुईहैं। शान्ति निकेतनके हिन्दी भवनकी तीन दीवारोंपर मध्ययुगीन भारतीय साधु सन्तोंके जीवनको केन्द्र मानकर भित्ति-चित्र विनोद दाके ही बनाये हुएहैं। इनपर एक वृत्त चित्र (डाकुमेंटरी फिल्म) बनानेके उद्देश्यसे लेखक उनके पास गयाथा। उस अवसरपर उनसे कुछ बातचीत भी हुई। विनोद दाके परिचयकी विशेष बात यह है कि उनकी एक आंख जन्मसे ही खराब थी, और दूसरी अत्यन्त कमजोर। पिछले पन्द्रह वर्षोंसे वे पूर्णतः दृष्टिहीन हो चुकेथे, पर अंधावस्थामें भी भित्ति चित्र की परिकल्पनाका काम जारी था।

समीक्ष्य पुस्तकमें संकलित लेख मूलतः बंगलामें लिखे गयेथे। इनका हिन्दी अनुवाद करते समय भाषा की दृष्टिसे और अधिक सावधानी बरतनेकी आवश्यकता थी। अनुवाद एक जटिल काम होताहै। भाषा वैज्ञानिकोंने इसे परकाया प्रवेशकी संज्ञा दीहै। अनुवादकी एक कसौटी यहभी है कि उसमें भाषाकी दृष्टि से सहजता हो, पठनीयता हो। उसे पढ़ते समय यह अनुभव न हो कि हम अनुवाद पढ़ रहेहैं। इस दृष्टिसे प्रस्तुत अनुवाद कुछ स्थानोंपर पूरी तरह संतुष्ट नहीं करता। जैसे, "मेरी पति-पुत्रहीना पुत्रवधुएं आलुलायित केशोंमें रणभूमिमें धावित हो रहीहैं (पृ. ६८-६९)।" "चलचित्र निर्माण कार्यको मोटे तौरपर तीन पर्यायोंमें विभक्त किया जाताहै (पृ. ५६)।", "कहानी निर्वाचनका पहला काम चलचित्र नाट्य रचयिताका है (पृ. ५२)", "चलचित्रके यौय शिल्प पक्षको आलोचकोंको हमेशा ध्यानमें रखना होगा (पृ. ८८)", "वे संलापको मुखस्थकर कैमराके सामने बोल पायेंगी (पृ. १२२) ?" आशा है, अनुवादक महोदय आगामी संस्करणमें इस प्रकारकी कमियां दूर करनेका प्रयास करेंगे।

सामान्य फिलम दर्शक और सामान्य फिलम समीक्षकभी फिलम भाषाकी बारीकियोंको नहीं जानते, इसलिए वे उनका रसास्वादन भी नहीं कर पाते। यह पुस्तक फिल्म भाषाकी समझ विकसित करनेमें सहायता देतीहै। अतः इन लेखोंके लिए हम लेखकके, तथा इन्हें हिन्दीमें प्रस्तुत करनेके लिए अनुवादक एवं प्रकाशकके आभारी हैं। □

पत्र-पत्रिकाएं

प्राकृत विद्या[1]

सम्पादक : डॉ. प्रेमसुमन जैन

समीक्षक : डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ

'प्राकृत विद्या' मूलतः प्राकृतभाषाके अध्ययन एवं सांस्कृतिक मूल्योंकी त्रैमासिकी है जिसका आलोच्य अंक पर्यावरण संतुलन एवं शाकाहार (संयुक्तांक १-३: अप्रैल-दिसम्बर ९१) पर आधृत है। राष्ट्र जैन सन्त आचार्यश्री विद्यानंदजी महाराजकी सम्प्रेरणा एवं डॉ. प्रेमसुमन जैनके कुशल सम्पादनमें आलोच्य विशेषांक चार घटकोंमें विभाजित है—काव्यमय प्रस्तुति, पर्यावरण सन्तुलन एवं अहिंसा, बहुआयामी शाकाहार-निरर्थक मांसाहार, शाकाहार एवं जैनचर्या। इसके अतिरिक्त चार प्रेरक कविताएं भी है। प्रथम घटकमें डॉ. नरेन्द्र भानावत, अनंग्द, डॉ. संजीव, डॉ. आदित्य प्रचण्डिया, चंदनमल चांद और कैलाश मड़बैयाकी कविताएं प्रकाशित हुईहैं।

आलोच्य विशेषांकके द्वितीय घटकमें पन्द्रह आलेख हैं। जिनमें पर्यावरण संस्कृति, पर्यावरण: जैन दृष्टिकोण, पर्यावरण संरक्षणका धार्मिक आधार, मानसिक प्रदूषणकी प्रकृतिपर प्रभाव, पर्यावरण प्रदूषण : जिम्मेदार कौन ?, पर्यावरण सन्तुलन: जैन धर्मका नजरिया, आचारांग:पर्यावरणका प्राचीनतम ग्रंथ, पशु-पक्षियोंके प्रति आदरकी परम्परा, पर्यावरण सन्तुलन : सहअस्तित्वसे, 'विकास हो, किन्तु विनाशरहित; पर्यावरणका प्राण शाकाहार पर्यावरण-

१. प्रका. : प्राकृत अध्ययन प्रसार संस्थान, श्री सुधर्म विद्यालय परिसर, रोड नं. १९, अशोकनगर, उदयपुर ३१३००१। पृष्ठ : १९२; डिमा. ९२, मूल्य : ५०.०० रु. (पेपर बैक)।

सन्तुलन : जैन वाङ्मयकी दृष्टि, लोक जीवनमें पर्यावरण-चेतना, वृक्ष साक्षी हैं मानवीय व्यवहारके—आदि है। इन आलेखोंमें पर्यावरण सन्तुलनपर विविध दृष्टियोंसे विचार किया गयाहै। मानव आचरणसे सांघातिक रूपपर सर्वाधिक व्यग्र व्याकुलता मानव सत्ताके विनाशकी चिन्तासे उद्भूत है।

जहां तृतीय और चतुर्थ घटकमें शाकाहारके आधारपर पर्यावरण प्रदूषणसे मुक्तिका मार्ग प्रशस्त कराया गयाहै, वह भी महत्त्वपूर्ण चिन्तन-प्रक्रिया है। 'बहुआयामी शाकाहार : निरर्थक मांसाहार' घटकमें तेरह आलेख हैं जिसमें अहिंसक जीवन पद्धतिके इंगित करनेके साथ पर्यावरण सन्तुलनमें सात्विकाहारकी पोषकता, उसके स्व-परहित चिन्तन, प्राकृतिक संरक्षा आदिकी सार्थक चर्चा करनेवाले दस आलेख हैं तथा शेष तीनमें मांसाहार, अण्डा, आदिपर चर्चा कर उसे मानवके लिए वर्जित किया जानेकी अपेक्षा व्यक्त की गयीहै। जबकि दूसरे घटक 'शाकाहार एवं जैनचर्या' में सत्रह आलेखों शाकाहारकी महत्ताके साथ जैन धर्म की चर्या एवं चिन्तनका संकेत दिया गयाहै जो इस बात का परिचायक है कि आजकी नयी पीढ़ी जहाँ अण्डा एवं मांस भक्षणमें ही विकास एवं उन्नत सामाजिकता देखतीहै, वहां वह पर्यावरण प्रदूषणका कारण है जबकि शाकाहार आजके समग्र विश्वकी चिन्ताका केन्द्र ही नहीं अपितु सारी पश्चिमी सभ्यतामें लोग शाकाहारकी ओर उन्मुखता दिखा रहेहैं तो हमारे देशकी परम्परामें जो वैज्ञानिक आचरण निहित है, उसपर ध्यान दिया जाना चाहियेथा।

'प्राकृत विद्या'के इस विशेषांकका महत्त्व आज प्रदूषण रहित समाजकी स्थापनाकी भूमिकामें बहुत ही विचारणीय है। कम्प्यूटर कम्पोज एवं आफसैट मुद्रण पद्धतिसे सुप्रसिद्ध चित्रकार डॉ. आर. डी. उपाध्याय द्वारा चित्रित आवरण संयुक्त यह विशेषांक पठनीय है। □

खनन भारती[1]

[द्वैमासिक]

सम्पादक : राजेन्द्र पटोरिया
समीक्षक : विपिन सौम्य'

कोल इंडिया लिमिटेड की 'खनन भारती' द्वैमासिक पत्रिका एक जागरूक सामाजिक पत्रिका है। कथा-कहानी, काव्य, हास्य-व्यंग्य तथा साहित्यिक गोष्ठी, पुस्तक समीक्षा और चित्र-समस्या पूर्ति आदि मनोरंजक एवं ज्ञानवर्द्धक सामग्रीसे भरपूर पत्रिका है साथही स्वास्थ्यके प्रति भी सचेत है। यद्यपि संचालक कोयलेके खननसे संबंधित हैं, परन्तु पत्रिका चेतना और मानसिक स्तरपर 'खनन' का कार्य करतीहै।

डॉ. शंकरदयाल शर्माका लेख 'धोंडोंके केशव कर्वे' सरल भाषामें तथा शिक्षाप्रद है। सादगी, सरलता और सद्भाव आदि गुणोंके कारण ही डॉ. शर्माने भारतरत्न कर्वेजीको "महर्षि कर्वे" कहकर सम्मानित कियाहैं। उनका कथन है कि "कर्वेजीके जीवन-चरित्र से परिचित प्रत्येक व्यक्तिको यह लगेगा कि उनका सीधा-साधा मंत्र था—निःस्वार्थ भावसे सेवा कार्य करना।"

आर. के. कौशिक का 'हिन्दीमें तकनीकी व वैज्ञानिक प्रतिवेदनकी प्रस्तुति' तथा अर्जुनसिंहका 'कार्यालयीन हिन्दी : आधुनिक परिवेशमें' तथा हीरालाल गुप्तकी कविता 'हिन्दी अभियान'—भारत मांके भालकी बिन्दी हिन्दी हिन्दुस्तानकी "राष्ट्र भाषाको और अधिक लोकप्रिय बनातीहैं।

कवि और कविता शीर्षकसे सुन्दरलाल सोलंकीके सचित्र परिचयके साथ क्षणिकाएं सभीका स्वस्थ मनोरंजन करतीहैं। पत्रिका बड़े मनोयोगसे हिन्दीकी सेवा कर रहीहैं। □

१. सम्पर्क : वेस्टर्न कोल फील्डस लिमिटेड, कोल इस्टेट, सिविल लाइन्स, नागपुर-४४०००१ (महाराष्ट्र) पृष्ठ : ६४।

आगामी अंकमें

कविताका जनपद

'पूर्वग्रह' (मासिक) के अन्तिम ग्यारह वर्षोंके अंकोंसे चयनकर पच्चीस लेख, एक भूमिका और एक परिशिष्ट सहित अशोक वाजपेयी द्वारा संकलित एवं सम्पादित यह कृति है। समीक्षककी दृष्टिमें यह कृति केवल जनपदके कवियोंकी आत्मरत आलोचनाका एकतंत्र हैं। समीक्षक हैं दिगन्त शास्त्री। [दो अंकोंमें प्रकाश्य]

नया हिन्दी नाटक

साठोत्तर हिन्दी नाटकोंके लिए 'नया नाटक' नाम स्वीकार कर लिया गयाहै। प्रस्तुत कृतिमें इन्हीं नये नाटकों—'कोणार्क', 'अंधायुग', 'आषाढ़का एक दिन' और 'मादा कैक्टस' जैसी प्रयोगकी दृष्टिसे मुखर एवं युगान्तरकारी रचनाओं तथा नाटककारोंका विवेचन परिचय है। लेखक हैं डॉ. भानुदेव शुक्ल और समीक्षक हैं लवकुमार लवलीन।

हिन्दी कन्नड़ साहित्य : दशाएं और दिशाएं

भारतीय साहित्य अन्तःस्फूर्त सांस्कृतिक अन्तश्चेतनासे अनुस्यूत है। विदेशी साहित्यका प्रबल प्रभाव इस मौलिक एवं मूलभूत विरासतसे चाहे विरत न कर पायाहो, पर भारतीय साहित्यको इन प्रभावोंने बदलनेका पर्याप्त प्रयत्न कियाहै। इस प्रभावको दोनों भाषाओंके साहित्यके तुलनात्मक अध्ययनके साथ उजागर कियाहै सम्पादक-द्वय : डॉ. टी. आर. भट्ट, डॉ. नन्दिनीने, समीक्षक हैं प्रो. शलभ।

अब चिट्ठी कभी नहीं आयेगी

कर्तारसिंह दुग्गलकी कहानियां अधिकांशतः भारतीय परिवेशमें भारतीय पाठकोंके लिए लिखी गयी कहानियां हैं, उनकी सबसे बड़ी शक्ति साधारण और सामान्य जीवनको उनके अंकनमें है, कहानियोंमें जीवनका फैलाव है। समीक्षक हैं : प्रो. मधुरेश।

'पुरस्कृत भारतीय साहित्य'

अगस्त'९३ का "पुरस्कृत भारतीय साहित्य" विशेषांक वार्षिक शृंखलाका ग्यारहवां अंक है। इसी शृंखलाका पूरक अंक नवम्बर'९३ है। इससे पूर्व दस विशेषांक प्रकाशित हो चुकेहैं। भारतीय भाषाओंके साहित्यमें इस समय जो प्रवृत्ति दिखायी दे रहीहै, वह इस दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है कि अपनी प्रादेशिक और क्षेत्रीय विशिष्टता होते हुएभी भारतीय साहित्यकी अन्तश्चेतना एक है, उसकी अन्तःस्फूर्तिके स्रोत भी समान हैं। फिरभी उस चेतनाके समग्र रूपको न तो प्रस्तुत किया गयाहै, न उसका, योजनाबद्ध अध्ययन। इस अध्ययनकी सम्भावनाको ध्यानमें रखते हुए 'प्रकर' प्रतिवर्ष ऐसी सामग्री प्रस्तुत कर रहा है जो अध्ययन और शोधकी दृष्टिसे बहुत उपयोगी है।

अबतक इन ग्यारह विशेषांकोंमें विभिन्न भारतीय भाषाओंके ग्रन्थोंपर जो समीक्षा-सामग्री प्रस्तुत हुई है, उनकी संख्या इस प्रकार है :

भाषा	ग्रन्थ संख्या	भाषा	ग्रन्थ संख्या	भाषा	ग्रन्थ संख्या
असमी	९	डोगरी	१०	मराठी	११
उड़िया	१२	तमिल	१२	मलयालम	९
उर्दू	३	तेलुगु	१०	मैथिली	११
कन्नड़	१२	नेपाली	९	राजस्थानी	११
कश्मीरी	५	पंजाबी	११	संस्कृत	८
कोंकणी	१०	बंगला	९	सिन्धी	१०
गुजराती	१३	मणिपुरी	११	हिन्दी	१३

सभी अंकोंकी पृष्ठ संख्या : ११९० कुल समीक्षित ग्रंथ २१०

इन ग्रंथोंकी समीक्षाओंसे न केवल भारतीय भाषाओंकी एकात्मता उभर कर आतीहै, साथमें विदेशी साहित्यके स्पष्ट, प्रबल और गहरे (अनेक बार प्रचारात्मक) प्रभावका भी साक्षात्कार होताहैं। साहित्यिक दृष्टिसे वैज्ञानिक विश्लेषणके लिए यह सामग्री सहायक है।

१९८३ से अबतक प्रकाशित 'पुरस्कृत भारतीय साहित्य' विशेषांकोंका पृथक्-पृथक् मूल्य इस प्रकार है : ८३—२०.०० रु.; ८४—२०.००; ८५—२०.००; ८६—३०.००; ८७—३०.००; ८८—३०.००; ८९—३५.००; ९०—३५.००; ९१—३५.००; ९२—४०.००; ९३—४०.०० रु.; नवम्बर'९३—१०.००।

अध्ययन और शोधकी दृष्टिसे यह सामग्री प्रत्येक पुस्तकालयमें संग्रहणीय है।

सभी ग्यारह अंकोंका डाकव्यय सहित मूल्य : २७५.०० रु.

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार : मुद्रक : संगीता कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा रायसीना प्रिंटरी, चमेलिया रोड, दिल्ली-६।
प्रकाशन स्थान : ए-८/४२ राणा प्रतापबाग, दिल्ली-७ दुरभाष : ७११३७६३

दूरभाष : ७११३७६३

[अनुशीलन-अध्ययन-समीक्षाकी मासिक पत्रिका]

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार
ए-८/४२, राणा प्रताप बाग,
दिल्ली-११०००७.

वर्ष : २६ अंक : २ फाल्गुन : २०५० [विक्रमाब्द] फरवरी : १९९४ [ईस्वी]

स्वर : विसंवादी

भारतीय गणतंत्र दिवस : संविधान, देवानांप्रिय सत्ता

देशके गणतंत्र दिवसकी पूर्व संध्यामें माननीय राष्ट्रपतिने घोषणा की कि 'भारत अपनी 'स्वतंत्रता, संप्रभुता और राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता' की रक्षाके लिए प्रतिबद्ध है। परन्तु दुर्भाग्य यह है कि गत ४४ वर्षों (भारतीय गणतन्त्रकी आयु) की अवधिमें संवैधानिक, राजनीतिक और आर्थिक स्तर पर जो कुछ घटित हुआहै, उससे इस घोषणाकी पुष्टि नहीं होती। देशकी स्वतन्त्रताकी घोषणाके साथ देश खण्डित होगया, घोषणाके बादही कश्मीर खण्डित हो गया जिसे देशकी अखण्डताका प्रतीक बताया जाता था, राष्ट्रीय एकता अंश-अंशमें निरन्तर खण्डित होती रही, संविधानमें घोषित धर्मनिरपेक्षताके होते हुए भी देशके विभिन्न खण्डों और भूभागोंको धार्मिक आधारपर विभाजित करते हुए। अब संप्रभुता भी पर-प्रभुताके अन्यर्गत अपनी प्रताड़ित स्थितिसे क्षुब्ध, परन्तु कातर भावसे आंखें मूंदकर संविधानके प्रावधानमें, अन्य प्रावधानोंकी भांति, चिरनिद्राकी ओर अग्रसर हो रहीहै।

खण्डित भारतकी संप्रभुतापर यह नवीनतम आघात है, जिसे नवीनतावादी चाहें तो 'आधुनिकता' और 'अन्तर्राष्ट्रीयताकी ओर प्रगति' के नामकरणसे किसी 'नव प्रभात' के आगमनकी सूचना दे सकतेहैं और स्वागतमें विजय दुन्दुभि समारोहका आयोजनभी कर सकतेहैं। परन्तु देशके न्यायविदोंका 'नाद-विसंवादी' संभवत: इस आयोजनमें बाधक सिद्ध हो रहाहै। न्यायविदोंकी धारणा है कि 'गैट' प्रारूपपर हस्ताक्षरने देशको बंधक बना दियाहै, इस प्रकार देशकी संप्रभुता बंधक बन गयीहैं। उनका विश्वास है कि इससे संघीय ढांचेके टूटनेकी पूरी आशंका है। २६ जनवरी १९५० को आत्मार्पित संविधान देशको जिस रूपमें प्रस्तुत किया गयाथा, उसकी मूल भावना समाप्त होतीहै। प्रस्तावोंपर हस्ताक्षर करके सत्ताने नागरिकों और राज्योंके वैधानिक और स्वाभाविक अधिकारोंको प्रभावहीन कर दियाहैं। उनका यह निश्चित आग्रह है कि जबतक यह संविधान विद्यमान हैं देशकी स्थिति समाजवादी गणतन्त्रकी ही हैं। फिरभी, राजसत्ता न्यायविदोंकी धारणाओं-आग्रहोंकी जन-आशंकाओंका सीमा तक उपेक्षा करके डंकल प्रस्तावोंपर हस्ताक्षर करनेकी निश्चित स्थिति उत्पन्न कर अब प्रचार कार्यमें जुटीहै।

सामान्यत: देशके संविधानके मूल रूपमें ही अन्तर्विरोध हैं, अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओंके कारण सत्ता दल संशोधनों द्वारा इन अन्तर्विरोधोंमें निरन्तर वृद्धि करता रहाहै, परन्तु इस बार संविधान-संशोधन द्वारा नहीं अपितु बाह्य दबावोंके कारण संवैधानिक समाजवादका स्थान ऐसी मुक्त अर्थ व्यवस्थाको प्रदान किया गयाहै, जिसमें समाजवादको कोई स्थान नहीं है। संविधान द्वारा प्रतिपादित मूल लक्ष्यों और व्यावहारिक स्तरपर इन लक्ष्योंको एक-एक नकारते रहनेके कारण स्वयं शासन व्यवस्थामें द्वैध वृत्ति

उत्पन्न हो गयीहै। यही द्वंध वृत्ति भाषाके क्षेत्रमें इतनी प्रबल हो गयीहै कि इसकी चर्चा किसी पृथक् लेखमें करना उपयुक्त हो गयाहै, वैसे इसी अंकमें "बैंकिंग एवं बीमा शब्दावली" की समीक्षाके प्रथम अंशमें बहुत संतुलित और सुन्दर रूपमें स्थिति प्रस्तुत की गयीहै। मूलत: यह द्वंध-वृत्ति सदियों पहलेसे बाह्य आक्रमणोंके बादसे निरन्तर पनपती रहीहैं। एक ऐसे वर्गका निर्माण होता रहाहै जिसने व्यक्तिगत और अपने वर्गके सीमित लोगोंके साथ सदा आक्रमणकारियों का साथ दियाहै। इसी वर्गके कुछ समुदाय पूर्ण रूपसे आक्रमणकारियोंके वर्गमें विलीन होगये, आक्रमणकारियोंसे एकात्म होगये। आक्रमणकारियों का मात्र साथ देनेवाले दूसरे वर्गकी यह मनोवृत्ति बन गयी कि वह देशके और जन-समुदायके हितोंके विपरीत आत्मलाभके लिए आक्रान्ताओंसे सहयोग करता हुआ शासन सत्तामें बना रहा। इस वर्गकी गतिविधि द्वंध रही, आत्महितके लिए आक्रमणकारियोंके साथ उसका मूल्य चुकाते हुए और आक्रमणकारियोंकी विजय यात्राओं के अग्रणी बनकर। फिरभी, अपने वर्गको नकारता नहीं था, अपितु आक्रमणकारियोंके हित-साधनके लिए अपने वर्गपर दबाव रखताथा। सभ्यता के बाह्य रूपोंकी दृष्टिसे वह आक्रमणकारियोंका अनुगामी रहताथा, सांस्कृतिक और मानसिक स्तरपर समझोतावादी प्रवृत्तिके कारण मिली-जुली संस्कृति, मिली-जुली भाषाका समय-असमय राग अलापना और आवश्यकता होनेपर उसके लिए उग्र रूप धारणकर उग्र चिन्तन और प्रचारको उछालना इस वर्गकी विशिष्टका रहीहै। वस्तुत: वह विशुद्ध नग्न भौतिकता-वादी बन गया, अर्थवादी-अर्थलिप्सु बन गया, अपने समाज और वर्गके सांस्कृतिक मूल्योंकी अवहेलना करके भी। आक्रमणकारियोंके चिन्तन और संस्कृतिके रूपोंमें अपनेको ढाल लेनेकी प्रवृत्ति अपनाकर 'आधुनिक'—अपने समाजसे भिन्न—जीव बन गया। और, इस भिन्नताको एक 'वरदान' के रूपमें अंगीकार कर जन-साधारणसे भिन्न एक उच्च वर्गके रूपमें स्थापित कर लिया। अपनी इस आरोपित श्रेष्ठताके अहंकार के कारण समाजके आक्रमण-विरोधी कार्योंके कारण लज्जासे उसका सिर झुकने लगा, क्योंकि उसकी अंगीकृत श्रेष्ठता उसे आक्रमण-विरोधको 'साम्प्रदायिकता' माननेके कारण अपनेही समाजमें अपनी संगति नहीं बैठा पाताथा।

इस प्रकार पूरा भारतीय समाज दो भागोंमें बंट गयाहै। दीर्घकालीन दासता और उससे उत्पन्न मानसिकताके कारण केवल अर्थलिप्सावश अपने वर्गसे आँखें चुराने लगा। अवसर प्राप्त होतेही इसी मानसिकताकी आधुनिकताको पूरे समाजपर लादकर आधुनिकताके नये संस्करण 'अंधानुकरणी समाज-रचनाके व्याकुल हो उठा और पूरे भारतीय समाजको, दो भागोंमें बांटनेके साथ-साथ उसे क्षुब्ध और रक्त संघर्षके लिए आतुर उपभागोंमें भी विभक्त कर दिया है। इसे हम इस रूपमें भी प्रस्तुत कर सकतेहैं मात्र अनुकरणसे निर्मित—नवनिर्माणमें पूरे समाजके अनुभवों, उसके संस्कारों, जीवन-पद्धतियों, चिन्तन और चिन्तन-पद्धतियोंको अतीतका मात्र कूड़ा मानकर पूरी घृणाके साथ ठुकराते जिस आधुनिक संविधान का निर्माण किया गया, वह संविधान हमें धार्मिक, पंथिक, मजहबी, जाति-उपजाति विभागोंमें बांट कर, लोकतंत्र-समाजवाद-धर्मनिरपेक्षताको झुठलाता हुआ खरबोंके घोटालोंके नये भ्रष्ट अर्थतंत्रको विकसित करता हुआ और उसे साम्राज्यवादी शक्तियोंको और उन्हींके एवं उन्हींके नियंत्रित पूंजीवादको गर्वपूर्वक समर्पित करते हुए राजनीतिक-आर्थिक-सांस्कृतिक स्तरपर सर्वांग दासताको अंगीकार करते हुए धन्य-धन्य हुआ जा रहाहै यहभी कहा जा सकताहै। कि संविधानके लक्ष्यों-प्रावधानों-संशोधनोंने, संविधानके संचालकों-प्रशासकों और सत्ताने प्रचारके जयघोषोंके साथ इस खण्डित राष्ट्रको पुन: खण्ड-खण्डमें विभाजित कर, उसे संस्कृति और-चिन्तन विहीन रूप देकर ऐसे निरासक्त समूहमें परिवर्तित कर दिया जिसका अन्तस् निष्क्रिय हो गयाहै। चेतनाहीन। अब हम केवल किसी चेतना-प्रदायक शक्तिके आवाहनकी कामना ही कर सकतेहैं, देश अपनी आन्तरिक शक्तिको जागृत कर ऐसी मौलिक एवं नूतन 'स्मृति' अथवा आधुनिक सार्थक शब्दावलीका 'संविधान' निर्माण कर सके, उसकी समाज-देश निर्माणकी भावनाको चरितार्थ करनेके लिए 'देवानांप्रिय' सत्तासे मुक्ति प्रदान करे और एक सचेतन एवं उत्कृष्ट कोटिकी अस्मिताकी स्थापनाका दिवस मनानेका अवसर प्रदान करे, बरसों का नहीं। ☐

डॉ. सुमति अय्यर : दुःखद हत्या

श्रीमती सुमति अय्यरकी हत्याका दुःखद समाचार पढ़ाथा ('प्रकर' दिस. ९३)। वे एक आदर्शवादी महिला थीं। सरकारी नौकरीमें वे अपने आदर्शोंपर अडिग रहीं। परिणाम प्रत्यक्ष है। हमारी अत्यन्त कर्त्तव्य-परायणा पुलिसके प्रयासोंके प्रमाण भी सामने हैं। यह आश्चर्यकी बात नहीं होगी यदि पुलिस विभाग इस 'केकारके' मामलेमें अपना मूल्यवान् समय लगाने की अपेक्षा फाइलको दाखिल-दफ्तर करदे। उत्तरप्रदेश की ऐसी समझदारीपर विशेष भरोसा है। तीन-चार दशक पहले उ. प्र. उच्च न्यायालयमें एक केसपर निर्णय देते हुए जस्टिस आनन्दनारायण मुल्लाने 'सर्वाधिक संगठित डाकू दल' कहाथा। यह उपाधि निर्णयमें दर्ज थी। अब पुलिसको अपनी इस स्वीकृत योग्यताकी प्रतिष्ठा तो रखनीही है। एक ईमानदार व्यक्ति, वहभी लेखक, ऐसे अवांछनीय व्यक्तिको किन्हीं व्यक्तियोंने ठिकाने लगाही दिया तो पुलिसको क्या पड़ी है कि महत्त्वपूर्ण कार्योंको छोड़कर उसके लिए शक्ति व्यय करे। हमारे 'महान् देश' में और पुलिस राजनीतिमें लगे लोकतंत्रके महान् प्रतिनिधियों की रक्षा करे, यह उचित भी है। देशका तन-मन-धन जन-प्रतिनिधियोंके लिए। जिस सरकारका शपथ-ग्रहण के पश्चात् पहला कार्य परीक्षाओंमें नकल करनेवालों को अभयदान देनाथा, उसके शासन-कालमें बुद्धिजीवी-वर्ग अधिकाधिक प्रताड़ित होगाही। जनताके वोटको अगुआ करनेवाले नेतागणके दाहिने हाथके रूपमें कार्य-रत पुलिस विभागमें कुछ कर्त्तव्यनिष्ठ शेष हैं। शायद वे कुछ कर पायें। 'प्रकर' परिवारका प्रत्येक सदस्य इस क्रूर हत्यापर विक्षुब्ध है। आपने मेरी तथा हम सबकी भावनाओंको अभिव्यक्ति दी है।

—डॉ. भानुदेव शुक्ल, भोपाल.

सुमति अय्यरकी हत्या दुःखद प्रसंग है। कानपुरके साहित्यजीवी भी पुलिस और प्रशासन दोनोंसे असंतुष्ट हैं। राजनीतिक स्तरपर जिस प्रकार हम अभीतक भ्रष्टतंत्रको नहीं बदल सके, हमारी उसी असमर्थताके कारण तंत्र और प्रशासन दोनों तटस्थ हैं। असमर्थ जन-चेतनाकी अकर्मण्यतापर हम संतोष-असंतोष व्यक्त कर सकतेहैं, परन्तु सामान्य व्यक्ति तो निरन्तर बढ़ती घुटनमें सांस लेनेमें भी कठिनाई अनुभव करने लगाहै। अपराध-जगत्का यह विस्तार अपने आपमें एक पूरा तंत्र बन गयाहै और देशकी समानान्तर सत्ताका स्थान ले लियाहै। अर्थतन्त्रमें अबाध आयातकी जो मुक्त नीति देशकी सत्ताने अपनायीहै, उसके सहयोगी अपराध-तन्त्रका भी अबाध आयात होने लगाहै पूरी विकसित प्रौद्योगिकीके साथ। अन्धानुकरणके जीवनकी यही उपलब्धि है जो अपने कसाव द्वारा व्यक्तिकी अस्थि-मज्जाको पीस देनेकी सीमा तक अधिकाधिक दृढ़ करती जा रहीहै। हम सभी तो केवल विवश मूक दर्शक हैं।

—करुणानिधि त्रिपाठी, कानपुर

'प्रकर' : दिसम्बर ९३—
स्वर : विसंवादी

दिसम्बर अंकका सम्पादकीय सर्वाधिक ज्वलन्त लगा। समकालीन भारतीय समाजमें जिन लोगोंका राजनीतिक प्रभुत्व बनाहै यदि यह बना रहा तो पड़ोसी भारतीय टुकड़ोंकी भांति शीघ्रही देशका इस्लामीकरण हो जायेगा। गत तीन वर्षोंसे देशके नेताओंने भयंकर स्थिति रच दी है। मूल्यों व 'मुद्दों' की राजनीतिके खोखले नारोंके बीच प्रतिभा-हनन, मूर्खता-आरक्षण, भ्रष्ट जातिवादका सरकारीकरण आदि किया गया। मुस्लिम साम्राज्यवादके स्मारक गढ़के जनता द्वारा अचानक ध्वंसके बाद बहुसंख्यक समुदायका जैसा धार्मिक, नैतिक व जातीय दमन देशके अन्दर और बाहर हुआ, वैसा दुनियामें कहीं नहीं हुआ होगा। वोट की राजनीतिने हित-अनहित, अपने-पराये, देशद्रोही-देशप्रेमीका अन्तर मिटा दियाहै। भ्रष्ट दुरभिसन्धिके अन्तर्गत जनमतमें अल्पमतको प्रेरितकर निषेधात्मक या साम्प्रदायिक मतदान कराया गयाहै। यह प्रवृत्ति आत्मघाती और विभाजनोन्मुख है।

पंजाब और कश्मीरके अन्य अल्पसंख्यकोंके लिए दूसरी ओर दूसरी व्याख्या है। पृथकतावादका यही विष बीज हैं। जनप्रसार माध्यम तो औरभी अंग्रेजी-परस्त एवं रागदरबारी हो गयाहै। तीन वर्षोंमें आर्थिक घोटाला, कश्मीरी हिन्दुओंका प्रदेश-निष्कासन, जातीय सामूहिक बम्बई नरसंहार, बिहारमें जातिवादी अपहरण व संहार-युद्ध, उच्चतर शिक्षामें अनुदान अकाल, कार्यालयीय जड़ता एवं चोटीगत भ्रष्टाचार, परिवहन शैथिल्य, विदेशी पूंजीका आधिपत्य, ऋण व भीखपरस्ती, महंगाई आदि इसकी चुनौतीभरी त्रास-दियां है। धर्म सम्प्रदाय एवं सम्प्रदाय राजधर्म व क़ानून बन गयाहै। 'धर्मनिरपेक्षता' जादूकी छड़ी है वैमानिकोंके सत्तासीन होने हेतु। निष्कर्षतः 'कलि वर्णन' का दौर है।

ऐसे ज्वलन्त लेखन हेतु शत-शत साधुवाद।

—डॉ. तपेश्वरनाथ, भागलपुर

कविताका जनपद[1]

सम्पादक : अशोक वाजपेयी
समीक्षक : दिगन्त शास्त्री

"पूर्वग्रह" (मासिक) के सत्रह वर्षीय जीवनकालके अंतिम ग्यारह वर्षोंके अंकोंसे चयनकर पच्चीस लेखों के साथ एक भूमिका और एक परिशिष्ट बांधकर, अशोक वाजपेयीने "कविताका जनपद" शीर्षकसे जिस संकलनका सम्पादन किया, उसमें न कविताका जनपद है, और न सृजनात्मक आलोचनाका प्रजातंत्र। उसमें तो केवल जनपदके कवियोंकी आत्मरत आलोचनाका एकतंत्र है। "पूर्वग्रह" के घोषित उद्देश्य—"साहित्यमें छायी आलोचनात्मक उदासीनताके विरुद्ध एक कारगर हस्तक्षेपकी मंशा" के अनुरूप तो नहीं, हां, अशोक बाजपेयीने अपने "भोपाल घराने" के कृतिकारोंकी तथाकथित "आपद्धर्म मानकर लिखी जानेवाली आलोचना" को सृजनात्मक आलोचनामें अन्तर्निविष्ट कर, आलोचनाकी एकतंत्रताको कारगर अवश्य कर दियाहै। "पूर्वग्रह" का दावा था कि "सक्रिय सजग आलोचना-बुद्धिका मूलाधार" वैचारिक कट्टरता और असहिष्णुता थी, प्रत्याशित सामान्यीकरणों और अर्नजित युयुत्साका परिवेश था, जहां "साहित्य और कलाओंकी स्वाधीनताका अन्य अनुशासनोंसे प्रजातांत्रिक समकक्षता बनाये रखनेकी और उनका प्रभाव लगातार काव्यके परिदृश्यपर डालते रहनेकी आवश्यकता अनुभव की गयीथी।" अपनेही कुनबेके एकदलीय कवियोंकी आत्मरत आलोचनाको "सृजनात्मक आलोचनाके निवेश" की परिधि में रखकर और पूर्वग्रहकी यत्किंचित् भूमिकाकी प्रशंसा कर, अशोक बाजपेयीकी बौद्धिक सक्रियता, यह प्रतिपादित नहीं कर सकी कि उनकी एकतंत्रीय सृजनात्मक आलोचना तत्कालीन परिवेश और बदली परिस्थितिमें हिन्दी आलोचताके स्वाभाविक मंथन-मूल्यांकनको प्रभावित कर सकी। एक वर्गके कवियोंकी आत्मरत आलोचना, परस्पर घनिष्ठ सम्बन्धों और सहअस्तित्व की भावनाके कारण, स्वायत्त अनुशासन रख सकतीहै, उनकी अपनी कृतिगर्भ चेतना मूल्य-सापेक्ष हो सकतीहै, किन्तु समग्र हिन्दी आलोचनाके स्वरूप और मानक लक्षणोंका सामान्यीकरण कर, मूल्यांकन-विशिष्टताकी गुणवत्ताको क्या सत्रह वर्षोंमें भी संघटित कर सकी है? नहीं, क्योंकि इस शिविरके आलोचक सह-अस्तित्व की भावनासे इस प्रकार अन्तर्भुक्त रहते आयेहैं कि उनकी आलोचनामें किंचित् भी मूल्यांकन-भेद नहीं हुआ। अशोक वाजपेयीका यह दावा कि "वह न अकेले कंठकी पुकार रहीहै, न ही किसी एक दृष्टिका अनुकीर्त्तन", उनके अपने शिविर-शोरमें डूबती चीखोंकी ओर संकेत करताहै। और फिर यह दावा कि "हमारी कविताकी समझ और कवियोंके संघर्षकी हमारी पहचान और परख" गहरी होती रहीहै। और, "शब्दके विराट् अवमूल्यनके क्रूर समयमें उनकी आलोचना नयी, ताजगी और विचारोत्तेजकपूर्ण रही है।" उक्त दावेमें प्रस्फुटित भ्रान्ति और निरी पक्षधरतामें उनकी मूल एषणाकी चेतना स्वघोषित है। तीन दशकों पूर्वसे ही शब्दकी बहुआयामी अर्थसृष्टि और बहुरंगी मूल्यवत्ताका वह ऐतिहासिक काल था, जब हिन्दी आलोचना नये और ताजे दृष्टि-मान खोज रहीथी। और जब अशोक वाजपेयी, "हमारी कविता", और "हमारी आलोचना" की चर्चा करते समय किंचित् मात्र भी नहीं अघाते, तब उनके कवि-आलोचकों की आत्म-तुष्ट रचनाधर्मिताके प्रति जो गहरी एकांगी पक्षधरता थी, कितने तेवर नहीं उठेथे। उनकी अपनी

---

१. प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, २/३८ अंसारी मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : ३०२; डिमा. ९२; मूल्य : १७५.०० रु.।

रुचि-प्रबलताके पोषण और मताग्रहके संयोजनके कारण, कितने बाह्य कंठोंने उसे व्यंग्यात्मक स्वरसे 'पूर्वग्रह स्कूल" या "भोपाल घराना" के नामसे अभिहित नहीं कियाथा ? उस व्यंग्यके पीछे पूर्वग्रही काव्य और आलोचनाका कोई उग्रतापूर्वक प्रतिरोध नहीं था वरन् उनके एकतंत्रकी गायकी, जहां आग्रह केवल रिश्तोंकी पहचानका था और उनकी लय व धड़कनोंमें उनकी अस्मिता और अस्तित्वकी टोहका अतिक्रान्त था, के विरुद्ध सत्याश्रित चुनौती थी। आजतक यह विवादास्पद है कि अपनी अस्मितासे बेखबर और भ्रमित 'पूर्वग्रह' ने अपने कालमें सम्पूर्ण हिन्दी कविता को यथार्थसे कितना समीकृत किया और सकारात्मक हिन्दी आलोचनाको विचारात्मक यथार्थसे कितना सम्प्रेरित किया ?

× × ×

इस संकलनका प्रथम लेख श्री कुंवरनारायणका है जिसमें उन्होंने आजकी कविताके परिवेश और तज्जन्य परिवर्तनको गहराईसे रेखांकित कियाहै। वे कहते हैं "आजकी कविता मानवीय मूल्योंकी पक्षधर है", "अमानवीयकरणके खिलाफ तीव्र प्रतिक्रिया है।" वे बुनियादी आवेगोंकी नहीं वरन् अतिबौद्धिकता और वैचारिकताके कारण सहज बोधगम्य नहीं और जो बोधगम्य है वे प्रासंगिक नहीं हैं। आज अनुभूतिकी अभिव्यक्ति पर्याप्त नहीं है, क्योंकि वैचारिकता भी हमारी संवेदनाका अनिवार्य अंग बन गयीहै। इसलिए आजकी कविता राजनीतिक अव्यवस्था, सामाजिक विसंगति और आर्थिक विषमताके प्रति तीव्र प्रतिक्रिया है। साम्प्रतिक कविताके इसी बहुविध कथ्य-शिल्पकी गतिशीलताका विश्लेषण-विवेचन करते-करते, अमानवीयकरणकी प्रासंगिकताको विस्मृत कर, अपने सम्बन्धोंके प्रति प्रतिबद्ध होनेके कारण, वे बड़े मनरोरागपूर्वक कहतेहैं—"स्वीकार करना पड़ेगा कि इधर कविताको चर्चाके केन्द्रमें लानेका बहुत बड़ा श्रेय पूर्वग्रह और अशोक वाजपेयीको है।" उक्त कथन से ऐसा आभास होताहै कि काव्यके विवेचन-मूल्यांकन की प्रासंगिकताके बीचमें "आकाको सलामी देना" पूर्वग्रही परिवारकी व्यापक रागात्मक दृष्टिकी अनिवार्यता है। और, अपने दलगत कवि आलोचकोंकी स्थापनामें यह मुनादी भी कर देना कि "समीक्षाका इतिहास रचनात्मक साहित्यसे जुड़ाहै, और समीक्षा स्वयं कविताका विपक्ष बनकर उतना नहीं स्थापित हुईहै, जितना उसकी सहयोगी चेष्टाके रूपमें।" जब कोई कृतिकार, आलोचक-दृष्टिसे अपनीही कृतिका अन्तरावलोकन करताहै तब उसमें जिज्ञासाकी अपेक्षा आत्मरतिका भाव जागताहै और अपनी आलोचनामें वह सहज गतिसे केवल अभिसार करताहै। फिर भला कविताका विपक्ष कैसे होगा ? और जब वे 'सहयोगी चेष्टा" से अपने स्थायित्वके लिए जी-जानसे जुड़ेहैं।

दूसरा निबन्ध सम्पादक अशोक बाजपेयीका "कविताका गल्प" है। आधुनिक आलोचनाकी दृष्टि में जैसे "उपन्यासमें महाकाव्यत्व" की परिकल्पना, साहित्य तत्त्वके विराट् सत्यका प्रत्ययवादी धरातल पर बोध करातीहै, उसी प्रकार "कविताका गल्प" में अशोक बाजपेयीके मुखर चिन्तनका दृष्टिक्षेप" मात्र साहित्य ही है जो अपनी गल्पताको आत्मचेतस ढंगसे जानता और मानताहै"—एक सार्थक वक्तव्य है। किन्तु गल्पको व्याख्यायित करनेके लिए शब्द, भाषा, कविता और साहित्यके बहुरूपोंको अपनी सूक्तियोंमें बांधकर अपने ही प्रति तर्कोंकी अनिश्चयता और संदेहों में वे उलझते गये। जैसे 'कविताने भी यह समझना शुरु कर दियाहै कि वह गल्प है' (पृ. २२)। उक्त कथनमें कविताका मानवीकरण करके तथा गल्पको, रचनाधर्मिताकी प्रतीतिकी अपेक्षा भाववाचक संज्ञाके रूपमें रख करके, जिस गल्पताकी आधारभूमिका प्रतिपादन किया गया वह भ्रामक है। अशोक बाजपेयी जब यह कहतेहैं कि "अपराजेय शब्द अपनी बुनियादी नैतिक ऊर्जा फिर अर्जित कर सकतीहै तो गल्पकी गोधूलिमें।" (पृ. २४), तब "शब्द" के दीर्घकालान्तरान्त गल्प, विशिष्ट अर्थके रूपमें सम्यक् रूपेण शब्दायित होताहै! एक ओर कविताको गल्प स्वीकारना और दूसरी ओर यह कहना "अगर साहित्य गल्प मात्र रह जाये तो यह आपत्ति की जायेगी उसे इन उदात्त लक्ष्योंसे पथभ्रष्ट कर वाग्विलासमें रिड्यूस किया जा रहाहै" (पृ. २५) और "गल्प अपनेको सुनिश्चिततासे बचाकर विश्वसनीय बनाताहै" (पृ. २५), एक संदेहास्पद स्थितिको स्थापनाकी बौद्धिक अभिव्यक्ति है। कहनेका तात्पर्य है कि साहित्यमें गल्प ऐसा रसबस

जाये कि उसकी न अलग पहचान हो और न असंलक्ष्य-क्रम दृष्टिगत हो। या यों कहें कि गल्प अपने यथार्थको अपने आभाससे समीकृत करताहै। "सिर्फ कविता ही गल्प नहीं, विज्ञान ज्ञानका गल्प है, राजनीति व्यवस्था का और धर्म अध्यात्मका"/ इसमें "गल्प" शब्दका पुनर्संस्कार ही नहीं बल्कि हिन्दी शब्दोंकी गतिशील प्रकृतिके अनुरूप पुनर्व्याख्या भी है। उक्त सूक्ति-वाक्यों में अशोक वाजपेयीने विभिन्न अनुशासनोंके अन्तर्गत "गल्प" के जिस गतिशील स्वरूपको स्वीकार कियाहै, वह वैकल्पिक व्याख्या अप्रासंगिक नहीं है। किन्तु, गल्पकी प्रतिमूर्तिकी स्थापनामें उनका अनावश्यक विस्तार अनुचित है क्योंकि गल्प, कविताका न आश्रय है और न सम्पूक्ति! गल्प अपेक्षत: एक स्वतंत्ररूपेण सत्ता है जिसे निरर्थक ही विषयी-सम्पृक्त स्वरूप प्रदान किया गयाहै और शब्दकी अर्थ सृष्टिमें, काव्य संप्रेरित नयी संरचनाके रूपमें देखा गयाहै। अपनी अप्रतिम विचारधाराकी सम्पुष्टिमें अशोक वाजपेयीने काव्य यथार्थको गल्पमें आविर्भूत करनेका जो प्रयास कियाहै, वह अग्राह्य और अविश्वसनीय है।

तीसरा निबन्ध बहुचर्चित विषय है—"कविता और समाज', जिसके अन्त:सम्बन्धों और परस्पर आश्रित रहस्यकी पड़ताल की गयीहै। श्री रमेशचन्द्र शाहने नयी कविताकी संरचनाके आधारभूत परिवेश, घटना, चरित्रके माध्यमसे उसकी अस्मिताकी पहचान दीहै। छायावादी कविताकी छन्दबद्धता और गीतात्मकताका सूक्ष्म बोध जो प्रगतिवादी कवितामें मिलताहै वह नयी कवितामें नहीं। किन्तु नयी कविताका सार्थक पहलू यह रहा कि वह वास्तविक परिस्थितियोंके वास्तविक समाजको और उसकी रचनात्मक सम्भावनाओंको पहचानता अवश्य है। नयी कवितामें सम्प्रेषित व्यापक संवेदना और अनुभूत बिम्बों के संरचनात्मक संदर्भोंमें ऐसे सन्तुलनकी भूमिका निभायी गयीहै जो पूर्ववर्ती लय गीतात्मकताकी अवधारणासे कहीं अधिक सार्थकता सिद्ध करतीहै।

कुंवरनारायण रचित चौथे निबन्ध—"सामाजिक यथार्थ और कविताका आत्मसंघर्ष : कुछ नोट्स"—में ऐसा प्रतीत होताहै जैसे नयी कविताके सन्दर्भमें सामाजिक यथार्थके रूपकी ही नहीं, बल्कि उसके संवेदनगत रूपकी भी छानबीन हुईहै, जिसमें प्रत्याशित यथार्थकी पूर्ण परिकल्पना और सावयविक व्याख्याका तीव्र आग्रह है। "कविता यथार्थको निकटसे देखती, पर दूर की सोचती" में जिस समीपता और दूरीका समीकरण हुआ, वह वस्तुत: यथार्थकी गतिशीलता और द्वन्द्वात्मकताकी ओर लेखकका संकेत है। लेखककी अवधारणा है कि निराला वस्तुगत यथार्थके न विरोधी हैं और न वे यथार्थका अतिक्रान्त करतेहैं। कविकी कलात्मक आवश्यकता एवं प्रयोजनके कारण "निरालाकी यथार्थपरक कविताओंमें आत्मीयता और निजत्व" दिखायी देताहै। और कविका "बाहर और भीतरके यथार्थको उनकी कविताओं और गीतोंमें मौजूद" मानतेहैं। निरालाकी कविता और सामाजिक यथार्थके प्रयोजननिष्ठ सम्बन्ध विधानको देखनेके पूर्व उनकी जीवनदृष्टि, उनकी विचारधारा और उनकी परिस्थितियोंका अभीष्ट स्वरूप निर्धारित करना कहीं अधिक समुचित था। लेखककी यह धारणा है कि "मुक्तिबोधकी कविताओंमें प्रत्यक्ष यथार्थके चित्रण" से अधिक परोक्ष अर्थविन्यासका महत्त्व है। अर्थात् कविकी प्रयोजनशीलता, यथार्थताकी खोज, कलात्मक अभिव्यक्ति और व्यवस्थित विचार दृष्टिकी विवशताको लेखककी चिन्तनसंवेदना स्वीकार नहीं करती। हिन्दी कविताके बदलते शिल्पके संदर्भमें वे कहतेहै कि "यथार्थ चित्रणको लेकर कविताका शिल्प भी बहुत निश्चित नहीं रहा।" लेखक यह भूल रहेहैं कि यथार्थके कारण तो नहीं, हां, अपने संस्कार, दृष्टि और सामर्थ्यके अनुरूप प्रत्येक मौलिक और सचेष्ट कविका व्यक्तित्व उसके संरचनात्मक शिल्पमें अनुविद्ध रहताहै। और फिर "कुछ नोट्स" के अन्तर्गत 'कविताको छन्दोंकी जेलसे छुटकारा दिलाना', 'समकालीन कविताके सहयात्री गीत-गजल', 'सामाजिक यथार्थके सन्दर्भमें हिन्दी कविताके रूप और कथ्य तथा फार्म और कन्टेन्ट' पर लूकाच, ब्रेख्त, लोख, बेन्जामिन और आडनोंके विचार-विवेचन, 'कवितामें आत्मकेन्द्रण या व्यक्तिवाद', 'कविताका आत्म संघर्ष,' 'कविताकी भाषा', 'कविता-मीडियाके सम्बन्ध' आदि कुछ विचारोत्तेजक एवं तात्त्विक मुद्दों पर उनका तर्कपूर्ण विवेचन-विश्लेषण एक सजग रचनाकारका सार्थक दृष्टिक्षेप ही नहीं वरन् एक चिन्तकका अपेक्षाकृत अधिक स्पष्टीकरण है।

"कविताका जनपद" के सम्पादक अशोक बाजपेयी का यह विचारपरक निबन्ध "कविताका देश" है, जिसमें हिन्दी कविताकी स्थिति, सीमा, संरचना,

आग्रह, नियति, अस्मिता और उसके पाठक-दर्शक, आलोचकसे लेकर कवियोंकी अनुभूति, संवेदना, मानसिकता, जीवन-दृष्टि, हीन भावना आदि सन्दर्भोंमें देश की निन्द्य और कुत्सित दशापर विचार-संवेदन अभिव्यक्त हुआहै। आज साहित्यके सन्दर्भमें जनताका इतना विसंस्कारीकरण हो गयाहै कि हिन्दी अंचलोंमें भी उसकी दुर्दशा परिलक्षित हो रहीहै। इसका ज्वलन्त प्रमाण यह है कि "हिन्दीभाषी अंचलमें राजका प्रभाव बढ़ रहा है, समाज घट रहाहै।" सरकारी अनुदानोंकी बैसाखीपर हिन्दी चल रहीहै। साहित्यकी महाप्राणता समाप्त होगयी और सतहीपन और फूहड़पन अधिक आकर्षित कर रहेहैं। वे कहतेहैं कि "राजनीति हमारे समयमें मनुष्यकी नियतिको निर्धारित करनेवाला सबसे सशक्त और सर्वव्यापी माध्यम है," जिसके साथ, यह मान्यता बन गयी कि "कविताको सम्बन्ध रखना चाहिये" और उसी "सत्ताकी दृष्टिमें कविता एक अकिंचन कर्म है" और कविता-विमुख समाजमें...एक दरिद्र कर्म है। और "कुछ लोग कविताको मनोरंजन का उद्योग बनाकर जनताके बीच ले जाना चाहतेहैं।" कविकी अभिव्यक्ति-स्वतंत्रतापर विचार करते हुए लेखक कहतेहैं कि कविताको न कविके विचारोंका अनुशासन मानाजा सकताहै, न वैयक्तिक अभिव्यक्ति। कविताको परिभाषित करते हुए, वे कहतेहैं—"कविता की अपनी प्रक्रिया ही जिसमें समावेशिता, अन्तर्विरोधी सूक्ष्मताएं, स्वतःस्फूर्त स्पन्दन, छोटे छोटे ठोस ब्योरे आदि अनिवार्य हैं ..कबिता बेमेलको छोड़तीहै, अपनी निरंतर सगुणतामें अपने विलोमको नहीं"। छायावादोत्तर काव्यान्दोलनोंको ये पारिभाषिक मानदण्ड सही और सार्थक रूपसे व्याख्यायित करनेमें सहायक होगा, यह कहना संदिग्ध है क्योंकि नयी कविताके सन्दर्भमें विचार-संवेदनके अपने स्थापित आग्रहके कारण तथा परिवेश या संरचनामें जीवन-यथार्थको पकड़नेके प्रयत्न में वे इतने जूझ जातेहैं कि उनके अपने ही पूर्ववर्ती पारिभाषिक मानदण्डोंकी उपेक्षा होने लगतीहै। कविताकी अन्तःअनुशासनीयताके सन्दर्भमें, आज यथार्थ के बदलते रूपको देखते हुएभी, वे कहतेहैं "आजकी हिन्दी कवितामें ऐन्द्रियताका अभाव, प्रयोगशीलताकी शिथिलता और कविताका सत्ता एवं संस्थानोंसे गठजोड़, हानिकारक है। उनका यह विचारमूलक वक्तव्य प्रासंगिक हो सकताहै, जिसमें कविताके अन्तर्बाह्य सम्बन्धोंकी चर्चा है, किन्तु आज जब सारे सामाजिक सन्दर्भ बदल रहेहैं तब क्या कवितामें समयकी मांगके अनुकूल विचारधारा और पहचानमें बदलाव नहीं आ सकता? यदि आ सकताहै तो उनके उक्त कथनपर संशयके प्रश्नचिह्न लग सकतेहैं। □

[शेष अंश आगामी अंकमें, जिसमें लगभग एक दर्जन कवि-समीक्षकोंके दृष्टिकोणोंपर टिप्पणियां हैं।]

नया हिन्दी नाटक[1]

लेखक : डॉ. भानुदेव शुक्ल

समीक्षक : लवकुमार 'लवलीन'

हिन्दी नाट्यालोचनके क्षेत्रमें भानुदेव शुक्लका व्यक्तित्व परिचित है। समीक्ष्य कृति "नया हिन्दी नाटक" संभवतः उनकी दूसरी कृति है। साठोत्तर हिन्दी नाटकोंके लिए "नया नाटक" नाम अब स्वीकार कर लिया गयाहै। इसलिए इस कृतिमें उन्होंने हिन्दीके ऐसे ही नये नाटकोंका प्रवृत्तिमूलक विवेचन प्रस्तुत करनेका प्रयास कियाहै। इस क्रममें उन्होंने 'अंधायुग' से लेकर आजतकके सभी नये नाटकोंका विस्तृत विवेचन कियाहै। सन् पचाससे साठके बीच चार महत्त्वपूर्ण नाट्यकृतियां सामने आयीं—जगदीशचन्द्र माथुरका 'कोणार्क' (१९५१), धर्मवीर भारतीका 'अंधायुग' (१९५४), मोहन राकेशका 'आषाढ़का एक दिन' (१९५८) और लक्ष्मीनारायण लालका 'मादा कैक्टस' (१९५९)। 'कोणार्क' से नये ऐतिहासिक पौराणिक नाटकोंका प्रारम्भ माना जाता तो 'अंधायुग'से नये काव्य नाटकोंका। 'कोणार्क' की परंपरामें 'आषाढ़का एक दिन' अतीताश्रित पात्रोंके माध्यमसे डाली गयी समकालीन जीवनपर एक दृष्टि है तो 'मादा कैक्टस'से यथार्थवादी सामाजिक नाटकोंका नया प्रारम्भ। निश्चय ही ये चारों नाट्य रचनाएं युगान्तकारी थीं जिनमें ऐसे प्रयोग स्पष्टतया मुखर थे जो हिन्दी नाट्य साहित्यके लिए आकस्मिक थीं। पुस्तकमें इन्हीं चारों नाटकों एवं नाटककारोंपर विशे

---

१. प्रका. : जयभारती प्रकाशन, ४४७ पीली कोठी, नयी बस्ती, कीडगंज, इलाहाबाद-३। पृष्ठ: १६१; क्रा. ९३; मूल्य : ६५.०० रु.।

रूपसे प्रकाश डाला गयाहै।

"नया हिन्दी नाटक: नये आयामोंकी तलाश" के अन्तर्गत लेखकने भारतेन्दुसे लेकर समकालीन नाटककारोंकी नाट्य रचनाओंपर सरसरी दृष्टि डालीहै। इस क्रममें शैली, शिल्प और कथ्यगत प्रवृत्तियोंकी विवेचनाके साथही नवीन प्रयोगात्मक विधाओंका भी गंभीर अध्ययन प्रस्तुत किया गयाहै। नये हिन्दी नाटकों के अन्तर्गत लेखकने 'कोणार्क' को नये नाटकके आगमन का मात्र संकेत भर ही मानाहै (पृ. ६) पर अब यह बात प्रमाणित हो चुकीहै कि 'कोणार्क' ही हिन्दीका पहला "नया नाटक" है। शैली, शिल्प और कथ्यके साथही कालक्रमके अनुसार भी यह हिन्दीकी पहली, परंपरामें विशिष्ट एवं प्रयोगधर्मी नाट्य रचना ठहरती है। धर्मवीर भारती रचित "अंधायुग" कोणार्कके बादकी रचना है परन्तु काव्य-नाटककी नयी संभावनाओंकी पहचान करानेवाला हिन्दीका पहला काव्य-नाटक है। इस बीच नये नाटकोंकी कुछ प्रमुख प्रवृत्तियोंपर भी दृष्टि गयीहै। नये नाटकोंमें प्रयोगात्मक प्रवृत्तिका प्रारम्भ कोणार्कसे ही देखा जा सकताहै जिसका परवर्ती नाट्य रचनाओंमें विकास हुआहै। कोणार्कसे लेकर आजतक के नाटकोंपर लेखकने प्रवृत्ति-मूलक सर्वेक्षण दृष्टि डालते हुए लिखाहै कि नये नाटकों में पशु प्रतीकोंका प्रयोग पहली बार हुआ साथही आधुनिकताके नामपर अश्लीलताकी हदतक पहुंचनेका प्रयास भी। (पृ. १३-१५)। असंगत नाट्य लेखनकी लहरभी इस बीच उठी, पर पर्याप्त रंगमंचीयताके अभावमें ये नाटक अधिक सफल नहीं हो पाये, फिरभी इस अवधिमें कई अच्छी विसंगत नाट्य रचनाएं सामने आयीं जो नाटककारोंकी निष्ठाके परिचायक हैं, (पृ. २०-२२)। मूलत: यह पश्चिमसे आया हुआ एक अस्थायी आंदोलन था। एक भाषासे दूसरी भाषामें: अनूदित नाट्य रचनाएं भी, इस बीच पर्याप्त संख्यामें सामने आयीहैं। इन सभी नये नाटकोंकी रचना-शैली पर्याप्त सरल है और शिल्प विधानमें भी नये प्रयोग मुखर हैं। नाट्यशिल्प और रंगशिल्प विषयक कई नवीन प्रयोग इन नये नाटकोंमें देखेजा सकतेहैं। ऐसे ही कई अन्य विषयोंसे सम्बद्ध यह अध्याय नये नाटकों के बारेमें पूर्ण संतुष्ट करताहै। इस अध्यायकी समाप्तिके बाद नये हिन्दी नाटकोंके संबंधमें एक सामान्य धारणा बन जातीहैं। जो अगले अध्यायोंमें क्रमश: स्पष्टतर और गहरी होती जातीहै।

'अंधायुग' को हिन्दीका पहला नया नाटक मानने पर जोर दिया गयाहै पर लेखकने इस संबंधमें अपेक्षित तर्क उपस्थित नहीं कियेहैं। जो तर्क उपस्थित हैं, वे 'कोणार्क' को नया नाटक माननेके विपक्ष में दिये गयेहैं (पृ. ४२)। जहांतक नयी भूमियोंको तोडने और नयी फसलें उगानेकी बात है, कोणार्क इससे पीछे नहीं हटता। यह अलग बात है कि 'अंधायुग' एक प्रतीक-काव्य नाटक है जिसमें समकालीन प्रश्न पूर्ण रूपमें समाविष्ट हैं और इसलिए इसका कथ्य व्यापक संदर्भसे जुड़ताहै, पर इसी कारण इसे हिन्दीका पहला नया नाटक नहीं मानाजा सकता। इस अध्यायके अन्तर्गत लेखकने अंधायुगकी सभी विशिष्टताओंको समेटते हुए कुछ कहनेके लिए शेष नहीं छोड़ाहै। विभिन्न कोणोंसे नाटककी पड़तालकर ही लेखकने इसे पहला नया नाटक माननेका आग्रह कियाहै, जो निश्चय ही सार्थक प्रयास है। वैसे भी अंधायुगसे कई और संभावनाएं उत्पन्न होतीहै जिसे इस अध्यायमें सूक्ष्मतासे उभारा गयाहै। शैली, शिल्प और कथ्यगत विभिन्न प्रवृत्तियों एवं प्रयोगोंकी संभावनाको देखकर ही यह आग्रह उचित भी लगताहै पर कोणार्कके प्रति यह सरासर अन्याय होगा क्योंकि ऐसे चर्चित सभी गुणोंसे पूर्ण यह नाटक ऐतिहासिक दृष्टिसे नये नाटकोंका उन्नायक बननेका पूर्ण दावेदार है। मोहन राकेशके नाटकों और उनकी नाट्य कलापर अबतक बहुत कुछ लिखाजा चुका है परन्तु पुस्तकका "नाट्यभाषाका शिल्पी: मोहन राकेश" अध्याय इस दृष्टिसे अपनी एक अलग पहचान बनाताहै कि इसमें राकेशकी नाट्यकलाकी सूक्ष्म और एक आधुनिक विषयकी व्याख्या संभव हुईहै। लेखककी दृष्टिमें "आषाढका एक दिन" नाटकमें कुछ ऐसे संकेत मिलतेहैं जो नये नाटकके विकासकी सूचना देतेहैं। यह इसलिए कि इस नाटकसे पूर्वकी नाट्य रचनाएं नये नाटकोंका आधार मजबूत कर चुकीथीं। इस अध्याय का पूरा विवेचन राकेशके नाटकोंके सभी पहलुओंको स्पर्श करताहै। लेखकके विचारसे राकेशके प्रथम दो नाटकोंमें शिल्पगत एकरूपता है और पात्रोंकी संख्या भी अनुपातमें कम है (पृ. ५९)। "आधे अधूरे" का शिल्प विधान वास्तवमें बहुत सशक्त और चुस्त है। राकेशकी सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि उन्होंने रंगमंचको ध्यानमें रखकर अपनी नाट्य रचनाएं कीहैं।

इसलिए इनके नाटक रंगमंचपर अधिक सफल हुएहैं। नाट्यभाषा संबंधी चर्चा इस अध्यायमें कहीं भी नहीं है। यह अध्याय मोहन राकेशके नाटकोंका विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करताहै।

अंधायुगकी विस्तृत चर्चाके उपरान्त लेखक पुन: "नये काव्य नाटक" की ओर उन्मुख होतेहैं। इसमें काव्य नाटकोंके उद्भवसे लेकर उसकी रचना प्रक्रिया, स्वरूप, उसकी प्रतीकात्मकता, उद्देश्य, एवं बिम्ब योजना तक का विश्लेषण किया गयाहै। इसी क्रममें नृत्य नाट्य, गीति नाट्य, आदिकी चर्चा भी की गयी है और सारी चर्चाएं पुनः अंधायुगपर आकर स्थिर हो गयीहैं। इसमें काव्य नाटककारों एवं उनके काव्य नाटकोंकी विस्तृत भूमिका बांधी गयीहैं जिसमें संशय की एक रात (नरेश मेहता), आत्मजयी (कुंवर नारायण), उत्तर प्रियदर्शी (अज्ञेय), एक कंठ विषपायी (दुष्यन्तकुमार) और सूखा सरोवर—(ल. ना. लाल) आदि मुख्य हैं। काव्य नाटकोंकी सृजनात्मकता को लेकर लेखकने इसके दो उद्देश्य मानेहैं—सामान्य जनको रौंद डालनेवाली युद्धकी विनाशकारी स्थितिका निरूपण और नव निर्माण एवं नव चिन्तनमें बाधक मानसिकताका अंकन (पृ. ८४)। इसलिए नये काव्य नाटकोंपर विस्तृत रूपसे प्रकाश पडताहै एवं काव्य नाटकोंके संदर्भमें कई महत्त्वपूर्ण बातें जो अबतक उपेक्षित रह गयीथीं, विश्लेषणके क्रममें खुलती जातीहैं। पांचवें अध्यायमें स्पष्ट किया गयाहै कि असंगत नाटक मूलतः पश्चिमकी देन है जो भारतमें एक आंदोलनके रूपमें आया। इसलिए इसका अस्तित्व अधिक दिनों तक नहीं रहा। हिंदीमें असंगत नाटकका उद्भव यद्यपि भुवनेश्वरके एकांकी संग्रह "कारवां" से ही माना जाताहै किंतु इसके बाद बहुत वर्षोंतक ऐसी नाट्य रचनाएं सामने नहीं आयीं। नये नाटकोंकी सृजनात्मकताके क्रममें अनेक नाटककारोंने इस नाट्य परंपराको विकसित किया। रोशनी एक नदी है, अमृत पुत्र, तीन अपाहिज, लोटन, खोये हुए आदमीकी खोज, घोआस, और मरजीवा जैसी कई नाट्य रचनाएं हैं जो पूर्णतः विसंगति-बोधको उभारतेहैं। नये विसंगत नाटकोंकी विस्तृत व्याख्याके क्रममें ऐसी नाट्य रचनाओं की प्रकृति, नाट्य शैली, शिल्प, चरित्र एवं संवाद आदि कई बिन्दुओंको रेखांकित किया गयाहै और इनकी सीमाओंकी ओर भी संकेत किया गयाहै। डॉ. लक्ष्मीनारायण लालकी नाट्य रचनाओंपर गहरी दृष्टि डाली गयीहै। इनके नाटकोंका यहां सिर्फ विवेचन भर ही प्रस्तुत नहीं हुआहै बल्कि उसके बिभिन्न रंगमंचीय पक्षोंका उद्घाटन भी हुआहै। साथही, इनकी नाट्य रचनाओंकी सीमाओंके निदर्शनके प्रति लेखक काफी सचेष्ट रहेहैं। लेखकने यहां नयी सोचके साथ ल. ना. लालके नाटकोंपर विचार कियाहै। लालके नाटकोंमें रंगमंचीयताकी गहरी अनुभूति है। अन्य नये नाटकों एवं नाटककारोंके विवेचनके क्रममें लेखकने शंकर शेष, सर्वेश्वर, सुरेन्द्र बर्मा, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, आदिके नाटकोंकी चर्चा भी कीहै। हिन्दी एवं हिन्दीतर प्रदेश के प्रमुख नाटककारोंकी चर्चामें लेखक व्यक्तिगत विवरणोंमें अधिक उलझ गयेहैं। उनके कृतित्वपर किंचित् विस्तारसे चर्चा होनीथी।

समीक्ष्य कृतिके सम्पूर्ण बिश्लेषणके बाद यह कहा जा सकताहै कि लेखकका अधिक प्रयास नये काव्य नाटकोंको प्राथमिकता देनेका रहाहै। वैसे प्रवेशकमें उन्होंने स्वीकार भी कियाहै कि काव्य-नाटकों, विशेषकर अंधायुग और मोहन राकेशको, पढ़ाते हुए उनके मनमें नये नाटकोंकी जो रूपरेखा तैयार हो रहीथी, उसीको उन्होंने इस पुस्तकमें प्रस्तुत कियाहैं। इसलिए स्वाभाविक रूपसे काव्य-नाटक मुख्य विषय बन जाता है। कुछ सीमाएं होते हुएभी इस प्रकारके विवेचन विश्लेषणसे पाठकीय संवेदनाएं अधिक सक्रिय बनी रहेंगी क्योंकि इस कृतिमें अंधायुगसे लेकर समकालीन नये नाटकोंकी विस्तृत व्याख्या एवं बिविध कोणोंसे इसकी परीक्षा की गयीहै। इसीलिए इस कृतिसे वास्तवमें पाठकों विशेषकर उच्चतर कक्षाके विद्यार्थियों को विशेष सहायता मिलेगी। हिन्दीके नये नाटककारों और उनके नाटकोंपर केन्द्रित इस पुस्तककी उपयोगिता असंदिग्ध है। हिन्दी नाट्यालोचनकी ऐसी संक्षिप्त पर सारगर्भित कृतियोंका अपना महत्त्व है। ☐

समकालीन हिन्दी कहानियोंमें नारीके विविध रूप[1]

[शोध-प्रबंधका संक्षिप्त रूप]

लेखक : डॉ. घनश्यामदास भुतड़ा
समीक्षक : डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे

भारतीय स्त्रीका व्यक्तित्व पुरुषोंकी तुलनामें अधिक स्थितिशील रहाहै । जितनी तेजीसे पुरुष-चरित्र में यहां परिवर्तन होते आयेहैं, उतनी तेजीसे स्त्रीमें नहीं हो पायेहैं । मध्यकालमें तो दोनोंके व्यक्तित्व स्थितिशील ही थे। परंतु अंग्रेजी सत्ताके बाद पुरुष-चरित्रमें तेजीसे परिवर्तन आया। स्वतंत्रताके बाद स्त्रीको शिक्षाकी सुविधाएं प्राप्त होने लगी, परिणामत: उसके व्यक्तित्वमें भी परिवर्तन होने लगा । उसके इस बदलते व्यक्तित्व और चरित्रसे पुरातनपंथी बौखला गये, तो प्रगतिशीलोंने इस परिवर्तनका स्वागत किया । स्त्रीके पारंपारिक रूपमें, उसके चिन्तन और मूल्यदृष्टि में परिवर्तन हो, यह आग्रह पुरुषोंका ही रहा । इसके लिए विविध प्रकारके आंदोलन उन्होंने चलाये । बहुत बादमें स्त्री भी इस दिशामें गतिशील हुई । "नारी मुक्ति आंदोलन" का प्रारम्भ हुआ । मुक्तिके नामपर कुछ स्त्रियोंने प्रगतिवादी भूमिकाको स्वीकार कियाहै तो कुछ आधुनिकता और परंपरामें संतुलन चाहतीहैं तो कुछ स्त्रीके पारंपारिक रूपको ही आदर्श मान उसीका प्रतिपादन कर रहीहैं। स्त्री-मुक्तिको लेकर आज देशमें उपयुक्त तीन विचारधाराएं कार्यरत हैं ।

आजके परिवेशमें स्त्रीके चिन्तनको, उसकी जीवन-दृष्टिको, उसके जीवन-संघर्षको—संक्षेपमें उसके बदलते रूपको रेखांकित करना आवश्यक हैं। समाजशास्त्रके अध्येता इस दिशामें प्रयत्नशील हैं ही । सर्जनशील साहित्यकार स्त्रीके इन परिवर्तित होते रूपोंको जाने-अनजाने अपनी कृतियोंमें पकड़ता रहताहै । आजका साहित्यकार यथार्थसे जूझ रहाहै, बिना किसी पूर्वाग्रहके या विचारधाराके वह इस यथार्थको पकड़ना चाह रहा है । लेखनकी इसी विशिष्टताके कारण उसकी कृतियों में स्त्री उसी रूपमें आयेगी, जिस रूपमें वह उसे दीख रहीहै । स्त्रीके इन रूपोंको कहानीके माध्यमसे खोजने का प्रयत्न ही प्रस्तुत पुस्तकका विषय है । वास्तवमें यह पुस्तक इसी शीर्षकसे प्रस्तुत शोध प्रबंधका संक्षिप्त रूप है ।

डॉ. घनश्यामदास भुतडा लातूरके दयानंद कला महाविद्यालयमें हिंदी विभागाध्यक्ष है । अपने शोधको पुस्तक रूपमें प्रस्तुत कर उन्होंने अध्येताओंको नयी सामग्री उपलब्ध करा दीहै ।

प्रस्तुत प्रबंध छ: प्रकरणोंमें विभाजित है । प्रकरण एकके अंतर्गत हिंदी कहानियोंमें चरित्र विश्लेषणकी प्रणालियोंका विवरण है । यह विवरण ही है । क्योंकि इसमें किसी प्रकारकी मौलिकता नहीं है । चरित्र विश्लेषणकी प्रणालीपर हिंदीमें जो कुछभी लिखा गया है, उसे संक्षेपमें यहां रखा गयाहै । वास्तवमें चरित्र विश्लेषणकी इन प्रणालियोंको डॉ. भुतड़ा मानदंडके रूपमें प्रस्तुत करतेहैं । इन मानदंडोंके आधारपर वे अगले प्रकरणोमें हिंदी कहानीमें अभिव्यक्त नारीके विविध रूपोंका विश्लेषण करतेहैं।

प्रकरण दो में हिंदीकी आरंभिक कहानियोंमें नारी के चरित्रकी खोज की गयीहै । इस विवेचनमें भी मौलिकता कम और संग्रहकी अधिकता है।

प्रकरण तीन, चार तथा पांचमें समकालीन कहानियोंमें अभिव्यक्त नारीके विविध रूपोंका विश्लेषण किया गयाहै । प्रकरण तीनमें नारीके विविध पारिवारिक रूपोंका विश्लेषण हुआहै । मृदुला गर्ग, राजेंद्र यादव, विष्णु प्रभाकर, मन्नू भंडारी, मेहरुन्निसा परवेज, रामकुमार भ्रमर, कमला संघवी, दीप्ति खंडेलवाल, मालती जोशी और अरुणा सीतेशकी कहानियां विवेचन हेतु ली गयीहैं । इन्हीं कहानीकारोंको तथा इनकी विशिष्ट कहानियोंको ही क्यों चुना गयाहै—इसका स्पष्टीकरण यहां नहीं है । ये कहानियां पारिवारिक जीवनकी प्रातिनिधिक कहानियां हो सकतीहैं । अर्थात्, प्रत्येक कहानीमें "पत्नी" के चरित्रका एक भिन्न पहलू व्यक्त हुआहै, और यही इन कहानियोंकी विशेषता है ।

प्रकरण चारमें नारीके करुण रूपसे संबंधित कहानियों का विश्लेषण है । स्त्रीके विविध रूपोंको तय करने हेतु किसी एक निकषको डॉ. भुतड़ाजीने स्वीकार नहीं कियाहै । प्रकरण तीनमें वे उसके "संबंध रूप"को स्वीकारतेहैं, प्रकरण चारमें उसके "भाव रूप" को, तो

1. प्रका. : अतुल प्रकाशन, १०७/२८५ ब्रह्मनगर, कानपुर-२०८०१२ । पृष्ठ : १९५; डिमा; मूल्य : १४०.०० रु. ।

पांचवे प्रकरणमें उसके "कर्म रूप और सौंदर्य रूप" को। या तो वे पत्नी, बहन, प्रेयसी, मां इन रूपोंकी खोज करते अथवा करुण, शृंगारी, साहसी असहाय, मजबूर आदि भाव रूपोंको। अथवा छात्रा, कामकाजी, व्यवसायी आदि कर्म रूपोंको। शोधमें जिस एकरूपता की मांग होतीहै, उसका यहां अभाव है।

प्रकरण चारके अंतर्गत अर्थात् स्त्रीके करुण रूपके अंतर्गत कुल १७ कहानियोंका विश्लेषण किया गयाहै। कमलेश्वर, राजेंद्र यादवसे लेकर ऋता शुक्ल तक के कहानीकार यहां हैं।

प्रकरण पांचके अंतर्गत कामकाजी और आकर्षक रूपकी नारीसे संबंधित कहानियोंका विश्लेषण है। आकर्षक रूपसे संबंधित ७ तथा कामकाजीसे संबंधित २३ कहानियां यहां ली गयीहैं। आकर्षक नारीके अंतर्गत स्त्रीके जो विविध रूप विश्लेषित किये गयेहैं, उनका संबंध रूप और आकर्षकताकी अपेक्षा "सामाजिक संबंध" से अधिक है।

कामकाजी नारीके अंतर्गत सर्वाधिक २३ कहानियोंका विवेचन प्रस्तुत किया गयाहै। इसके अंतर्गत फिर विभिन्न स्तरोंकी खोज की गयीहैं।

छठे प्रकरणमें संपूर्ण अध्ययनका मूल्यांकन किया गयाहै तथा प्राप्त निष्कर्षोंको प्रस्तुत किया गयाहै।

मूल्यांकनके अंतर्गत भाषा, शिल्प और रचना-प्रक्रियाका ही अधिक विस्तार हुआहै। स्वातंत्र्यपूर्व कहानियोंमें अभिव्यक्त स्त्री तथा स्वातंत्र्योत्तर कहानियोंमें अभिव्यक्त स्त्री—इन दोनोंका तुलनात्मक विश्लेषण "नहीं" किया गया।

संपूर्ण प्रबंधमें ५५ कहानीकारोंकी ५६ कहानियों का विवेचन प्रस्तुत किया गयाहै। इन कहानियोंमें प्रस्तुत स्त्री तथा वर्तमान जीवनमें संघर्षरत स्त्रीकी यदि तुलना की जाती तो इस शोध-कार्यको अधिक गंभीरता प्राप्त हो जाती। प्रबंधके शीर्षकमें "नारी" शब्द खटकताहै। नर और नारीके स्थानपर "स्त्री" और "पुरुष" शब्दका प्रयोग अधिक सार्थक लगता। ठीक इसी प्रकार "समकालीन हिंदी कहानियोंमें नारी" के विविध रूप शीर्षक भी संदिग्ध है। "समकालीन हिंदी कहानियोंमें अभिव्यक्त नारीके विविध रूप" शीर्षक अधिक तर्कसंगत लगता।

पिछले कुछ वर्षोंसे हिंदी कहानीका अध्ययन विभिन्न दृष्टिकोणोंसे हो रहाहै। प्रस्तुत अध्ययन भी उसी क्रममें आताहै। हिंदी कहानियोंमें व्यक्त स्त्री चरित्रका विस्तृत अध्ययन करनेवालोंके लिए यह पुस्तक उपयोगी है। [!]

भारतीय साहित्य : तुलनात्मक अध्ययन

हिन्दी-कन्नड़ साहित्य : दशाएं और दिशाएं[1]

लेखक-द्वय: टी. आर. भट्ट, डॉ. नन्दिनी

समीक्षक : घनश्याम शलभ

भारत एक महादेश है, जिसकी साहित्यिक, सांस्कृतिक और कलात्मक धरोहर विश्वमें एक जीवन्त और अनमोल सच्चाई है। सारा देश भी एक अन्त:स्रवित जीवन चेतनासे आलोकित है, इसीलिए कवि ऋषि बाल्मीकिकी महत् काव्य-सृष्टिसे लेकर आजतक का समग्र भारतीय साहित्य, चाहे फिर वह तमिल, तेलुगु, मलयालम, बंगला, मराठी, गुजराती, पंजाबी, उड़िया या हिन्दी आदि ही हो, सभी अन्त:स्फूर्त सांस्कृतिक अन्तश्चेतनासे अनुस्यूत है। इसीलिए विदेशी साहित्य का अबतक प्रभाव भी उसकी इस मौलिक और मूलभूत विरासतसे विरत नहीं कर पाया। इस देशने सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक झंझावातोंके झटके क्या कम झेलेहैं ? उनकी लहरें कुछ कालावधि तक उठ-उठकर विलुप्त होती रहीहैं या इस देशकी महती जीवनधाराकी आत्मरूप हो जातीहैं। उन प्रभावोंने भारतीय साहित्यको बदलनेका प्रयत्न भी पर्याप्त किया है, यही नहीं उनके पास भी अपनी सभ्यताके जीवन्त परिवेशका सुदृढ़ आधार रहाहै, जिसे प्राय: वैज्ञानिक जीवनबोधसे अभिहित किया जाताहै। फिरभी पश्चिम का मनुष्य भी तो मनुष्य है, उसके अन्तर्मनके भी अपने मनोराग और संस्कार हैं, क्रूस-चिह्नकी भांति उसके सामूहिक मनके भीतर चिपके हुएहैं। आज ही नहीं,

१. **प्रका. : ज्ञानोदय प्रकाशन, प्रज्ञाश्री, कल्याणनगर, धारवाड़ (कर्नाटक)। पृष्ठ : १४४; डिमा. ९३; मूल्य : २५.०० रु. (पेपरबैक)।**

चिरकालसे मनुष्यही सृष्टिका केन्द्र रहाहै, वही सार्वत्रिक सत्य है, और उसके समस्त मूल्य उसके जीवनके आधार बनकर जन्मे हैं, जिन्हें उसकी प्रकृतिने अपनी वास्तविकताके आधारपर, समय-समयपर बदला भी है, यही नहीं, व्यवस्थित भी कियाहै। अतः इन अनेकानेक वादों और विचारोंकी लहरोंके कारण दृष्टिबोध में परिवर्तन आता रहताहै। इसलिए किसी बटखरी दृष्टिसे मनुष्यके अन्तर्मनकी पड़ताल एक अधूरा साक्षात्कार ही होताहै।

वैसे भी संस्कृति कोई मिश्रण या घोल नहीं होती। मिश्रणकी अवस्था भी वास्तवमें उसकी पहलेकी अवस्था है, जो प्रभावोंके आदान-प्रदान और संघातोंसे होतीहै, और जिसके परिणामस्वरूप जो 'स्थिर, आत्मनिर्भर, संकरताबोधकी असहजतासे मुक्त, गतिमान् और सर्जनात्मक सत्तासम्पन्न रूप प्रकट होताहै वही संस्कृति हैं, वही संस्कारवान् स्वरूप है'—'स्मृतिलेखा' के लेखकका यह चिन्तन समीचीन सत्यको शब्दांकित करताहै। यह भी सत्य है कि संस्कृतियाँ परस्पर प्रभाव ग्रहण करतीहैं, वे एक दूसरेके सहारे अपनी अन्तर्दृष्टिका विकास भी करतीहैं, अनुभवोंको समृद्ध बनातीहैं, परन्तु यह प्रक्रिया किसी मिश्रणकी नहीं, संस्कारित होनेकी है, जिसे संस्कार स्वनामसे सार्थकता देतेहैं।

अतः स्पष्ट रूपसे यह देखा, समझा और परखा जा सकता है कि पश्चिमके साहित्यका प्रभाव, विशेषतः अंग्रेजो साहित्यका प्रभाव ग्रहण करनेके बाद हमारे जीवन-मूल्यों और परिस्थितियोंमें जो परिवर्तन आया है, उसका विकास और समृद्धि हमारी अपनी जातीय-प्रकृतिसे संस्कारित होती रहीहै। भारतीय संस्कृति तो सदैव गत्यात्मक रहीहै, जड़वत् नहीं रही। उसके अन्तःअनुशासनकी प्रक्रिया उसे निरन्तर जीवन्त और अर्थवान् बनाये रखतीहै, अतः बाहरी प्रभावोंका अवांछनीय प्रभाव उसे अधिक समय तक प्रभावित नहीं कर पाता।

फिर साहित्य तो मनुष्यकी प्राणवत्ताकी मुखर अभिव्यक्ति होताहै। उसे मनुष्यकी वैश्विक मनुष्यता अपने प्रीतिकर आलोकसे निरन्तर अनुप्राणित करती रहतीहै, फिर प्रेमी इंगलैण्डका कोई एडवर्ड हो या इटलीका रोमियो या फिर भारतका देवदास ही, प्रेम एक वैश्विक जीवन-तत्त्व है, उसी प्रकार मनुष्यके अन्तर्मनके सभी राग-विराग भी सार्वत्रिक सत्य हैं। कन्नड इस देशकी अपनी ही विशिष्ट भाषा है, और उसका समग्र साहित्य भारतीय संस्कृतिसे 'अनुप्रेरित और अनुरंजित हैं, जहां उसमें अभिव्यक्त प्रायः सभी विशिष्ट और सामान्य संस्कार, अपनी सुकृति-विकृतिके साथ रूपायित होते रहेहैं। तब फिर हिन्दी साहित्यसे उसकी दशाएं और दिशाएं भिन्न हो ही कैसे सकती है? डॉ. टी. आर भट्ट और डॉ. नंदिनीने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी कन्नड़ साहित्य : दशाएं और दिशाएं' में इसी सत्यको उपर्युक्त दोनों साहित्योंके तुलनात्मक अध्ययन के साथ उजागर कियाहै। इस ग्रन्थकी 'भूमिका' के अनुसार 'इसमें केवल साहित्यकी प्रमुख विधाओं—काव्य, उपन्यास, कहानी, नाटकको लेकर, उनका आरंभ, विकास तथा प्रवृत्तियों आदिपर प्रकाश डालते हुए, इन विधाओंकी प्रवृत्तियोंमें पाये जानेवाले समान अंश एवं भिन्नताका उद्घाटन किया गयाहै'। इन लेखक-द्वयका पश्चिमी प्रभावके विषयमें यह कथन भी उल्लेखनीय है कि 'इस युगके आरंभमें पूरे भारतीय साहित्यपर पाश्चात्य संस्कृति, रीति रिवाज, विचार पद्धति स्वतंत्रता, प्रज्ञा प्रभुत्व आदिका प्रभाव पड़ा। हिन्दी-कन्नड़ के लेखकोंने इस प्रभावको ग्रहण करनेपर भी भारतीय सांस्कृतिक चेतनाको परखकर, उसे आत्मसात्कर नयी जीवन-दृष्टि अपनायी। अतः दोनों साहित्यमें समान अंशके कई सूत्र देखनेको मिलतेहैं। इन दोनों साहित्यों के विभिन्न युग एवं विधाओंके विकासपर विहंगम दृष्टिसे विचार करते हुए तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गयाहै।'

और इस 'विहंगम दृष्टि' का यह सारा तुलनात्मक अध्ययन केवल एक सौ चवालीस पृष्ठोंमें सिमट गयाहै। इस ग्रन्थके दो और लेखक हैं—डॉ. बी. एन. हेगड़े और डॉ. सुमंगला मुम्मिगट्टि जिन्होंने क्रमशः 'हिन्दी-कन्नड़ उपन्यास' और 'हिन्दी-कन्नड कहानी' पर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कियाहै। कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़के दो और विद्वानों—डॉ. टी. आर. भट्ट और डॉ. नंदिनीने—जो इस ग्रन्थके सम्पादक भी हैं—क्रमशः "आधुनिक हिन्दी कन्नड़ काव्य' और 'हिन्दी कन्नड़ नाटक' पर अपने आलेख लिखेहैं। यह प्रयत्न निश्चय ही स्तुत्य कहा जायेगा। इन लेखकोंने कालावधि के साथ प्रवृत्तिगत और विशिष्ट कृतियों और प्रमुख कृतिकारोंपर अपने संतुलित विवेचनात्मक अध्ययनको यहां

प्रस्तुत कियाहै। कन्नड साहित्यका काल विभाजन—'नवोदयपूर्व', 'नवोदयकालिक', और 'नव्य काव्य' जिसमें प्रगतिशील युग, प्रयोगवाद और नयी कविता, उनकी सामान्य विशेषताएं और हिन्दी कवियोंके साथ उनका तुलनात्मक परिचय दियाहै। नव्य काव्यके प्रमुख कवि, इस काव्य युगके अग्रदूत श्री गोपालकृष्ण अडिग, ए. के. रामानुजम्, चंद्रशेखर कंबार, सिद्धलिंग पट्टण शेट्टी, वज्रमट्टी, के. वी. तिरुमलेश और के. एस. निसार अहमद प्रभृति हैं, जिनमें कुछने काव्य सृजनके साथ कहानी, उपन्यास और नाटक भी लिखेहैं—अज्ञेय और मुक्तिबोधकी भांति।

कन्नड़का एक विशिष्ट काव्य सोपान भी है जिसे 'बंडाय दलित साहित्य' (१९७० से अबतक) कहा जाताहै। यह युग कन्नडके नवोदय (छायावाद) प्रगतिशील (प्रगतिवाद) और नव्य काव्य (प्रयोगवाद और नयी कविता) के बाद आरंभ होताहै। बंडाय साहित्य विद्रोहका साहित्य है, जिसकी मूलधारा है—मानवीयता। 'यह एक मनोधर्म है, जिसका मुख्य लक्षण है—सामाजिक असमानता और अन्यायके विरुद्ध कड़े विरोधकी प्रवृत्ति'। यह कन्नड़की अत्यंत जनप्रिय विधा है, जो इस साहित्यकी प्रमुख प्रकृति है, जिसके प्रमुख कवि हैं—सिद्धलिंगय्य, एम. गोविंदय्य, इंदूधर होन्नापुर, चन्नण्ण बालोकार, चंद्रशेखर पाटिल, अरविन्द मालगति आदि। हिन्दीका जनवादी काव्य, जो धर्मनिरपेक्षता, समानता, साम्प्रदायिकता निषेध, शोषणके प्रति विद्रोह आदि जनतांत्रिक अवधारणासे प्रेरित हैं, उससे न केवल समतुलनीय है, बल्कि कन्नड़के दलित वर्गके सशक्त कवियोंने इस काव्ययुगमें रचनाएं कीहैं। हिन्दीमें इस वर्गके कृतिकार स्वल्प हैं।

डॉ. भट्टका यह कथन भी ध्यातव्य है कि 'कन्नड के कवि कुवेंपु महाकवि ही नहीं, अपितु एक सशक्त उपन्यासकार और नाटककार हैं। मैथिलीशरण गुप्त और 'दिनकर' के साथ इनकी तुलना कीजा सकतीहै। बेंद्रेकी काव्यचेतनासे टक्कर लेनेवाले काव्यर्षि भारतीय भाषाओंमें कम मिलेंगे...कन्नड़के वरकवि बेंद्रे मात्र दृष्टिसे सुमित्रानन्दन पंतके समकक्ष रखेजा सकते हैं, और दूसरी दृष्टिसे वे निरालाके समान लगतेहैं... वे ऋषि कवि हैं, कवियोंके कवि'...कन्नड़के विनायक कृष्ण 'भारत सिन्धु रश्मि' जैसी महत् कृतिके कवि, डॉ. भट्टके अनुसार अज्ञेयके समकक्ष रखेजा सकतेहै, जिन्होंने कन्नड़के समान अंग्रेजीमें भी लेखनी चलाकर भारतीय साहित्यको समृद्ध कियाहै। यही नहीं, कन्नड़के पांच कृतिकार—कुवेंपु, बेंद्रे, शिवराम कारंत, मास्ति वेंकटेश अय्यंगार और विनायक कृष्ण गोकाक ज्ञानपीठ पुरस्कारसे भी सम्मानित हैं। विद्वान् लेखकने प्रत्येक काव्य युगके निष्कर्षोंको भी रेखांकित कियाहै।

दूसरा आलेख 'हिन्दी और कन्नड़ उपन्यास' पर लिखा गयाहै जो आरंभिक काल, विकास काल और आधुनिक कालमें विभक्त है। हिन्दीके प्रायः सभी उपन्यासकारोंकी गुणवत्ता और कलाके विवेचनके साथ कन्नड़के उन्यासकारोंकी कृतियोंका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गयाहै। सर्वश्री मास्ति वेंकटेश अय्यंगार, शिवराम कारंत, अ. न. कृष्णराव, विनायक कृष्ण गोकाक, बसवराज कट्टीमनी, एस. एल. भैरप्पा, जयलक्ष्मी, वाणी त्रिवेणी, कृष्णमूर्ति आदिकी कृतियोंको विशेष रूपसे रेखांकित किया गयाहै। कन्नड़के 'नव्य कादम्बरी युग' की विशेष रूपसे चर्चा की गयीहै। जीवनानुभवकी गहराई, आन्तरिक चिन्तनशीलतासे अभिव्यक्त वैचारिकता और उसे कलात्मक एवं सहज स्वाभाविक रूपसे निरूपित करनेकी सामर्थ्यशाली प्रतिभाने इस युगके उपन्यास साहित्यको समृद्ध बनाया। हिन्दीकी भांति कन्नड़की उपन्यास लेखिकाओंने भी इस समृद्धिमें अपना पूरा योगदान किया। शिल्प और शैली—दोनों दृष्टियोंसे इस युगमें सफल प्रयोग हुएहैं। इसी युगमें दोनोंही साहित्योंमें अनेक उपन्यास लिखे गयेहैं, परन्तु हिन्दीके आंचलिक उपन्यासोंके समान कन्नड़ साहित्यमें ऐसी प्रवृत्ति दिखायी नहीं पड़ती, यद्यपि हिन्दीके ही समान अन्यान्य विविध आयामोंका कलात्मक रूपायन कन्नड़की कादम्बरीकी भी विशेषता रहीहै।

तृतीय आलेख 'हिन्दी कन्नड़ कहानी' की लेखिका हैं डॉ. सुमंगला मुम्मिगट्टि। सभी आलेखोंमें कन्नड साहित्यका काल विभाजन 'नवोदयपूर्व युग', 'नवोदय युग' और 'नव्य युग' में किया गयाहै। नवोदयपूर्व युगके काव्य, उपन्यास, कहानी और नाटक विधाओंके उत्स पर प्राचीन भारतीय साहित्य और पाश्चात्य प्रभावकी चर्चा की गयीहै। कन्नड कहानीके जनक मास्ति वेंकटेश अय्यंगार हैं, जो श्रेष्ठ उपन्यासकार भी हैं। यह 'नवोदय युग' श्रीनिवास युग भी कहा जाता

है, क्योंकि श्रीनिवासकी कहानियाँ एक समग्र दृष्टिकी पर्तोंसे सम्पन्न हैं। जहाँ अन्तर्जातीय विवाह, बाल्य विवाह, अनैतिक सम्बंध, पारिवारिक विघटन, वेश्या जीवन, कामज भावना आदिसे सम्बंधित समस्याओंको अभिव्यक्ति मिलीहै। मास्तिजीकी कहानियोंकी नारी —आदर्शसे आक्रान्त नहीं है, न ही वह प्रतीक या प्रतिनिधि पात्र है, अपितु हाड़मांसकी सजीव मानवी है, वह मनकी शतशत भावनाओं व शत-शत रूपोंमें मुखरित होतीहै। इस लेखनकी गुणवत्तापर डॉ. सुमंगलाने कुछ अधिक विस्तारसे विचार कियाहै, वे लिखतीहैं—'मास्तिने अधिकतर पूर्व स्मृति विश्लेषण शैलीका प्रयोग कियाहै...शैली कहानीकारपर आश्रित नहीं, बल्कि कहानीसे सम्बंधित है। वस्तुनिष्ठ, आडम्बर रहित भावानुभवके गहरानेसे काव्यमयी बन गयीहै।' वैसे प्राय: इन सभी कहानीकारोंने आदर्श जीवनमूल्योंका प्रतिपादन कियाहै। प्रगतिवादी विचारधाराके प्रचार-प्रसारके लिए 'कथांजली' मासिकीके सम्पादक अ. न. कृष्णरावने स्वयं अनेक कहानियां लिखीहैं। इस परम्पराके विशिष्ट रचनाकार हैं सर्वश्री त. रा. सुब्बराय, निरंजन, बसवराज कट्टीमनी, को. चेन्नबसप्प। यही नहीं, हिन्दीकी भांति कन्नडकी लेखिकाओंने भी इस दिशामें महत्त्वपूर्ण कृतियोंकी रचना कीहै, जिनमें वाणी, जयलक्ष्मी, आर. श्रीनिवास, कात्यायनी, त्रिवेणी, उषादेवी आदि हैं। इस वैचारिक परिवर्तनसे कहानीके रचना-शिल्प और कथ्यका पर्याप्त विकास हुआ, तीव्रता और गत्यात्मकता आयी।

नव्ययुगकी नयी कहानीके कृतिकारोंपर कामू, काफ्का, सार्त्र, फ्रायड, जुंग, एडलर आदिके चिन्तनका प्रभाव पड़ा; अस्तित्ववादी चेतनासे प्रेरित हो उन्होंने मनुष्य-मनको झकझोरनेवाली, व्यक्तिकी सुप्त चेतना में स्थित अवांछित भावनाओं एवं मानसिक तहोंको उघाड़नेका प्रयत्न किया। अन्तर्मुखी होनेके कारण इन रचनाओंमें सामाजिक समस्या या बाह्य सत्यकी अपेक्षा व्यक्तिके अन्त:सत्यको ही प्रधानता मिली। परन्तु 'बंडाय दलित युग' जनवादी चेतनाने कन्नड़को अनेक कहानीकार दियेहैं, जिनके लिए 'केवल वर्तमान जीवन महत्त्वपूर्ण है, शेष सब मिथ्या।' सामाजिक परिवर्तन की तीव्र आकांक्षासे आन्दोलित हैं ये रचनाएं। फिरभी हिन्दी कहानीका शिल्प कन्नड़के रचना शिल्पसे अधिक सुगठित है, यद्यपि हिन्दीकी इन मनोविश्लेषणात्मक रचनाओंमें सामाजिक प्रतिबद्धताका अभाव है। लेखिका के अनुसार नयी कहानीमें घोर व्यक्तिवादिता पनपती गयी। कन्नडकी 'नव्योत्तर कहानी' और हिन्दीकी 'साठोत्तरी कहानी' समाज-सापेक्ष होती हुई, सही प्रतिबद्धताको स्वीकारती हुई, सही दिशामें अग्रसर होती दिखायी देतीहै।

इस पुस्तकका अंतिम आलेख डॉ. नंदिनीने लिखा है, जो 'हिन्दी कन्नड नाटक' पर आधृत हैं। हिन्दीके प्रथम नाटक और कन्नडके प्रथम नाटकसे आरंभ कर 'समकालीन कन्नड और हिन्दी नाटक' के विकास-चरणोंका विवेचन करताहै। डॉ. शिवराम कारंतका कन्नड साहित्यके सीमान्तमें अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिन्होंने साहित्यकी प्रत्येक विधामें अपना वर्चस्व स्थापित कियाहै, इसीलिए उन्हें कन्नड साहित्यका भीष्म कहा जाताहै—व्यक्तित्व बहुमुखी, कार्यक्षेत्र वैविध्यपूर्ण। पचास-साठ नाटकोंके लेखक हैं, ये। परन्तु त्यागराज परम शिव कैलासने कन्नड-नाटकके लिए वही काम कियाहै जो भारतेन्दुने हिन्दी-नाटकके लिए कियाथा। कन्नडमें प्रथम बार कैलास, श्रीरंग, कारंत, बेंद्रे जैसे नाटककारोंने सामाजिक समस्याओंको लेकर नाटक लिखे। पर ये नाटककार अधिकांशत: नारी समस्या, परिवार, नारी-पुरुष सम्बन्ध तक ही सीमित रहे, परन्तु हिन्दी नाटककारोंका कैनव्हास अधिक विस्तृत है, जहाँ राजनीति, धर्म, संस्कृति, देशप्रेम, राष्ट्रीयता आदि रूपायित होते रहेहैं।' दोनों भाषाओंमें 'एकांकी' के उदय के साथ रेडियो नाटक, नृत्य-नाटक, गीति-नाटक, प्रतीक-नाटक, असंगत-नाटक प्रहसन आदि नाटकके अनेक रूप विकसित हो गये। श्रीरंग और गिरीश कार्नाडके नाटकोंका हिन्दीमें भी अनुवाद हुआहै। कन्नडमें तो जासूसी नाटक भी लिखे गयेहैं, पर हिन्दी में उनका एकान्त अभाव है। दोनों भाषाओंके नाटकोंका स्वरूप एकदम नया और अपूर्व है।

लेकिन एक बात स्पष्टत: उभरकर आतीहै कि न कन्नडमें ही, न हिन्दीमें ही एकाध लेखिका (मृणाल-पाण्डेयको छोड़) नाटककार नहीं है जो अपने कृतित्व की गुणवत्ता और वैशिष्ट्यके कारण बहुचर्चित रही हों। रंगमंचकी दृष्टिसे दोनों भाषाओंके नाटकोंमें पर्याप्त प्रयोग हुएहैं, और 'मूक नाटक' तक लिखे गये हैं।

एक बात और—इन आलेखोंमें दोहराहट और

पिष्टपेषण भी पर्याप्त है। चारों विद्वान् अपने प्रमुख लेखकोंके रचना-शिल्प, विषय-वस्तु, युगपरिवर्तनका प्रभाव, विदेशी वैचारिक अवधारणा, नवीन प्रयोग आदिको लेकर बार बार प्रकारान्तरसे वे ही बातें दोहराते चलतेहैं जो उनके पूर्व आलेखोंमें कही गयीहैं, और इस प्रकार अन्य ढेर सारे कृतिकारोंके मात्र नामोल्लेखपर ही संतोष करना पड़ता है। यह दोहराहट ऊब पैदा करतीहै।

वैसे उपर्युक्त ग्रन्थ हिन्दी और कन्नडके पाठकोंको अपने देशके इन दो महत्त्वपूर्ण साहित्यके विषयमें बहुत कुछ बतलाताहै, जिसमें समानताही अधिक है, भिन्नता तो नगण्य ही है। □

संस्मरण : रेखाचित्र

सुधियां उस चन्दनके वनकी[1]

[गत अंकका शेषांश]

लेखक : आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री
समीक्षक : डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

[गत अंकमें लेखकके स्वामी अखंडानन्द सरस्वती के 'श्रद्धा और विवेकके ज्योतिवादी और खण्ड-खण्ड फिरभी अखण्ड' शीर्षकसे भावपूर्ण संस्मरण, 'दीप बुझ गया, शिखा अमर है' शीर्षकसे महादेवीजी के लोक-समर्पित मनकी अभिव्यक्तिपरक स्मृतियां और 'आलोक छुआ अपनापन' शब्दावली 'स्मृति मंथन' शैलीमें अज्ञेयजीके संस्मरणोंकी चर्चा हुई थी। इस अंकमें डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पं. गांगेय नरोत्तम शास्त्री, डॉ. नामवर सिंह और उमाशंकर जोशी संबंधी संस्मरणोंकी चर्चा प्रस्तुत हैं।]

'फूलकी पहचान सरस सुवास केवल : हजारीप्रसाद द्विवेदी' संस्मरणमें लेखक द्विवेदीजीके शिष्यों-प्रशिष्यों को नाद परम्परासे और सन्ततिको विन्दु-परम्परासे व्याप्त मानताहै। द्विवेदीजीकी गरिमा जेठकी दुपहरी न होकर कार्तिककी चान्दनी है। आत्मसात् ज्ञानके पक्षधर द्विवेदीजी कहा करतेथे 'ज्ञान जब सचमुच आत्मस्थ हो जाताहै तो उसका प्रकाशन सहज हो जाता हैं। ज्ञानके क्षेत्रमें अन्तिम सत्य तक कोई नहीं पहुंचा है, इसका अर्थ ही है कि सबकी बातोंमें संशोधन हो सकताहै" (पृ. ५८)। परम्परावादी समझे जानेवाले द्विवेदीजी आधुनिक नवीनताके प्रति भी उन्मुख थे— "पुरानेको नया बना लेनेकी कलामें वे मास्टर थे, लेकिन नये को पुराना साबित करनेके मोहसे वे मुक्त थे। जर्मनीवालोंने वेद पढ़कर हवाई जहाज बना लिये, जैसी उक्तियोंको वे रुग्ण मानसका दयनीय प्रलाप समझतेथे।" (पृ. ५९), परम्परा और आधुनिकता का सम्बन्ध उनके अनुसार यह था —"जिस प्रकार डाल भले पुरानी हो किन्तु नये पल्लवोंके आनेपर शोभित होतीहै, उसी प्रकार परम्परा भी सामयिक नवीनताओं को स्वीकार करके ही बलिष्ठ होतीहै" (पृ. ५९)। पोंगापंथी पंडितोंकी देशकाल निरपेक्षताका द्विवेदीजीने खूब मजाक उड़ायाहै। अपनेको लक्ष्य करके भी वे हास्य व्यंग्य किया करतेथे। साहित्य अकादमी द्वारा प्रस्तावित अंग्रेजीमें हिन्दी साहित्यके इतिहास न लिखे जानेका कारण उन्होंने यह बताया—'दूसरोंका किया

---

१. प्रका. : भारतीय साहित्य प्रकाशन, २८६ चाणक्यपुरी, सदर, मेरठ-२५०००१। पृष्ठ : १५६; डिमा. ९२; मूल्य : ८०.०० रु.।

हुआ अंग्रेजी अनुवाद मुझे पसन्द नहीं आता और मेरी लिखी अंग्रेजी दूसरोंको पसन्द नहीं आती। इसीलिए काम अटका हुआहै। और, लगाया एक जोरदार ठहाका अपनेही ऊपर" (पृ. ६२)।

कबीरको द्विवेदीजीने अक्खड़-फक्खड़-मस्तमौला बताया। इसका नामवरसिंहने विरोध किया प्रयागके कुंभमें आयोजित कबीर स्मृति समारोहमें—'चूंकि द्विवेदीजी स्वयं रोमांटिक भाव-बोधके हैं, इसीलिए पंडितजीने कबीरको अक्खड़ फक्खड़ बना दिया, वास्तव में कबीर क्रांतिकारी प्रगतिशील विचारधाराके थे और प्रगतिशील आलोचक ही उन्हें ठीक-ठीक पहचान पाये हैं। इसपर द्विवेदीजीके अगली गोष्ठीमें अपनी विनोदपूर्ण कविता सुनायी—संतो, लगा कुंभका मेला/एक हिलोर इधरसे आयी /एक हिलोर उधरसे आयी/ फंसा भंवरमें चेला' (पृ. ६३)। महामना मालवीयजी द्वारा मंत्र मिला द्विवेदीजीको—'उठो, जागो, व्यथाहीन चित्तसे। सतत् कल्याण कार्योंमें जुटे रहो और मानकर चलो कि वे पूर्ण होंगेही।" शत्रुकी भी हानि क्यों हो, सबकी उन्नतिही वास्तविक नीति हो सकतीहै" (वही पृष्ठ)। लेखकके एम.एल.ए. बननेपर द्विवेदीजी का आशीष मिला—"राजनीतिमें ही गयेहो तो भागने के लिए नहीं कहूंगा। इसका भी स्वाद ले लीजिये। पर याद रखियेगा कि इसमें डूबनेवालेकी मनुष्यता प्रायः डूब जातीहै—यह साहित्य ही है जिसमें डूबकर पार हुआ जाताहै" (पृ. ६१)। लेकिन राजनीतिकी आंधी में लेखक यह भूल गया। किम्वदन्ती है कि मुरलीधर कृष्णको देखकर वृन्दावनमें तुलसीने कहा—

का बरनौ छबि आपकी, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष बान लो हाथ।।

तब कृष्णके धनुर्धारी रूपकी कल्पनाकर द्विवेदीजीने लिखा—

केहिके बेधन हेतु प्रिय यह विशाल धनुबान।
अगजग बंधनमें कुशल कम मुरलीकी तान।।"
(पृ. ६४)।

"श्रीराम पर लिखकर मैं अपनी लेखनीको विराम दूंगा" कहनेवाले द्विवेदीजीकी जीवन यात्रामें पहले ही विराम आगया। आधुनिक साहित्यमें शायद ही दूसरा रचनाकार इतना प्रिय हो, जो जीतेजी मिथक बन गया हो।

'पास रहते हुएभी दूर' संस्मरण पिताश्री गांगेय नरोत्तम शास्त्रीजीका है। मर्यादाबोधसे अधिक आत्मनिर्भरताका एक ऐसा कवच उन्होंने धारण कर रखा था जिससे प्रियसे प्रिय व्यक्तिके साथ भी वे घुलमिल नहीं पातेथे। यह प्रवृत्ति दबंगपनेकी सीमा तक थी, जिसके कारण घरमें भी वे अकेले ही रहतेथे सबके होते हुएभी। वे सनातनके नामपर केवल पुरातनके संरक्षक थे, जबकि लेखक सनातनको एक ऐसी अविच्छिन्न परम्परा मानताहै जो अपनेको नित नूतन करती चलती है" (पृ. ६३)। फिरभी क्षेमेन्द्रके स्वरमें स्वर मिलाकर पिताश्री अतीतको सोचे बिना, भविष्यके संकल्प किये बिना अतर्कित रूपसे आनेजानेवाले भोगोंका अनुभव करनेमें विश्वास करतेथे, जो एक पुरातनपंथी के लिए सहज नहीं है।

'वाग्मी विद्वत्ताकी साकार मूर्ति' संस्मरण डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्माके विषयमें हैं। रणनीतिको वरीयता देनेका संस्मरण डॉ. नामवर सिंहका है जो अनेक मतभेदों के बादभी लेखकके आत्मीय बने रहे। कम्युनिस्ट होते हुएभी स्वामी अखंडानन्दके चरण स्पर्श, प्रवचन श्रवण और साहित्यका पारायण करनेमें लेखकको नामवरसिंह में कहीं द्विधा नहीं दिखायी पड़ी। प्रगतिवादियोंमें डॉ. रामविलास शर्माके बाद वे ही तुलसीको सर्वाधिक पढ़ने समझनेवाले नामवरजीको लेखक धोती-कुर्ता और भारतीय रहन-सहनके कारण सांझी विरासतका पक्षधर मानकर संतुष्ट होताहै, दृष्टिकोणमें पर्याप्त अन्तर होते हुएभी। अध्ययनकी प्रगाढ़ता, छविकी प्रखर पक्षधरता और अभिव्यक्तिकी प्रवाहमयताके धनी नामवरजी लेखकको राजनीतिके कारण यदाकदा श्रोताओंको दृष्टिगत रखकर अपने कथनकी अर्थच्छायाओंको बदल दे सकतेहैं, दिल्लीमें जमनेके बाद। इस अवसरवादिता का यदि कोई उदाहरण दिया जाता तो विश्वसनीयता बढ़ जाती। नयी कविता और नयी कहानीके पक्षधर होने के नाते नामवरजीको रूप या कलावादी कहकर प्रगतिवादियोंने लांछित किया, पर लेखककी इस धारणाका नामवरजीने सर्वाधिक समर्थन किया कि भारतमें आधुनिकता नकलके रूपमें अपनी परम्परासे कटकर नहीं उसके विकासक्रमका अंग बनकर आनी चाहिये। 'हिन्दी साहित्य इतिहास लेखनकी समस्या' गोष्ठीमें नामवरजीसे विषय प्रवर्तन यह कहकर कराया गया कि मार्क्सवादी दृष्टिसे वे हिन्दी साहित्यका इतिहास

लिख रहेहै। उनके विचारोंके अतिरेकोंका खंडन करना चाहिये। गोष्ठीके अध्यक्ष डॉ. नगेन्द्रने स्वीकार किया कि 'वैचारिक रक्तपात होनेकी आशंका थी, ऐसा नहीं हुआ। नामवरजीकी उपलब्धिसे मुझे हार्दिक हर्ष हुआ" (पृ. ८५)।

दिल्लीमें आजीविकाके लिए संघर्षरत नामवरजी की मर्दानगीके अनेक किस्से प्रचलित हुए। व्यक्तित्वके लिए जूझते हुए नामवरजीने तीन नियमोंका दृढ़तासे पालन किया। पहला—वे गांवके आदमी हैं, गांवके ही आदमी बने रहना चाहतेहैं, राजधानीके आदमी नहीं। दूसरा—किसी विदेशी दूतावासमें कोईभी नौकरी नहीं करना और न ही किसी प्रोफेसर या प्रकाशकका पुच्छला बनकर रहना। तीसरा—शराब नहीं पीना। मुल्कराज आनन्दसे असहमति व्यक्त करते हुए नामवरजीने कहा—'यदि आजके लेखक हिन्दी लेखक गोर्कीका प्रभाव ग्रहण नहीं करते, तो कोई गुनाह नहीं करते, उससे अधिक आपत्तिकी बात यह है कि वे तुलसी और प्रेमचन्दका भी प्रभाव ग्रहण नहीं कर रहेहैं। आजके रूसी लेखक भी गोर्कीकी भांति नहीं लिख रहेहैं। लेखन पद्धति या तात्कालिक समस्याओंके प्रति गोर्कीके विचार महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, उनमें परिवर्तन हो सकतेहै। बड़ी चीज उनकी वह दृष्टि है जिसके अनुसार उन्होंने कहाथा—'मेरे लिए अच्छीसे अच्छी पुस्तकसे खराबसे खराब आदमी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। इस मानवतावादको उभारनेकी आवश्यकता आज भी है। पर वह केवल अनुकरणसे सम्भव नहीं है"। (पृ. ९०)।

कम्युनिस्ट चिन्तन-व्यवहारमें रणनीतिको प्रमुख माननेके कारण नामवरजीकी व्यक्तिगत परिस्थितियां और शिविरबद्ध संस्कारके कारण लेखकको लगताहै कि न्याय औचित्यको गौण मान लेनेपर साहित्यिक उठापटकमें तेज अन्तर्दृष्टि और बौद्धिक विश्लेषणके होते हुएभी नामवरजीके निष्कर्ष अभिप्राय प्रेरित हैं। विश्व हिन्दी सम्मेलनोंमें युवा लेखकों और विद्यार्थियों द्वारा व्यक्त क्षोभ प्रदर्शनके मूलमें उपेक्षित नामवरजी माने गयेथे। नामवरजीके अनुसार 'कबीर ऐसे हम दीवानोंकी क्या हस्ती है' लिखनेवाले भगवतीचरण वर्मा जैसे फक्कड़ नहीं थे, वे वास्तवमें क्रांतिकारी विद्रोही कवि थे। पत्थरकी तरह कठोर उनके व्यक्तित्वकी अनदेखा कर द्विवेदीजीने उन्हें दलित द्राक्षाकी तरह अपनेको निचोड़कर समर्पित हो जानेवाले भावुक भक्तकी भांति ही अंकित कियाहै" (पृ. ९१)। लेखक शास्त्रीजीने अनेक उदाहरण देकर कबीरको केवल उग्र विरोधी और विद्रोही नहीं माना। इस प्रकार नामवरजीकी एकांगी धारणाको द्विवेदीजी द्वारा उल्लिखित भावुक भक्तिके उदाहरणोंसे संतुलित किया। लोक चेतनाको केवल श्रमिक-कृषक वर्गकी चेतना तक ही सीमित कर देनेवाले प्रगतिवादियोंके अतिरेकका विरोध करनेवाले लेखककी इस धारणासे नामवरजीने सहमति व्यक्त की कि वर्गोंमें अविभक्त समाज ही लोक है जो साधु और वेदके समानान्तर सामान्य जनका वाचक हैं (द्रष्टव्य ९२)। भारत भवन भोपालमें एक गोष्ठीमें अर्थ विभ्रमके कारण जब लेखक घिर गया तब नामवरजीने सहारा दिया।

अनेक विषयोंपर नामवरजीसे मतभेद होते हुए भी लेखक यदाकदा उनसे सहमत भी हुआहै, पर असहमत होनेपर भी वैयक्तिक स्तरपर स्नेह सम्बन्ध बना रहा। फिरभी लेखकको लगताहै कि नामवरजी दिल्लीके आदमी होतेजा रहेहैं, ज्यों-ज्यों उनका वाणी वर्चस्व बढ़ता जा रहाहै त्यों-त्यों लेखनके प्रति वे उदासीन होतेजा रहेहैं। फिरभी, उनका मानना है "नामवरसे बहस करना, नामवरको पढ़ना, नामवरसे सीखना, नामवरका खंडन-मंडन करना, नामवरको बड़े भाईके रूपमें पाना मेरे जीवनकी विशिष्ट उपलब्धि है" (पृ. ९५)। वैयक्तिक मतभेदोंको व्यक्तिगत स्तरपर न उतरने देनेकी साधनाका निर्वाह दोनों ने ही किया।

'भारतीय साहित्यके प्रज्ञा पुरुष' ज्ञानपीठ पुरस्कृत गुजराती कवि उमाशंकर जोशीके विषयमें हैं। जोशीजीके अनुसार भारतीयता शताब्दियों पूर्व सांस्कृतिक आधारपर निर्मित हुईथी, भारतीय धर्म भावनाने समस्त देशको एक सूत्रमें आबद्ध कर रखाथा (पृ. ९८)। परन्तु ब्राह्मण-बौद्ध, बौद्ध-शैव, जैन-ब्राह्मण संघर्षके ऐतिहासिक उल्लेख क्या सिद्ध करतेहैं? अंग्रेजी की राजनीतिक दासताके विरोधी परन्तु उसके साहित्यिक महत्त्वके प्रशंसक जोशीजीके अनुसार मानवता का अर्थ 'परम कारुण्य सर्वभूतानुकम्पा' हैं और कविता इस प्रक्रियाका प्रधान माध्यम है तथा कामलिप्साको आत्मशोधनके द्वारा आत्माके अमृत अंशमें प्रेमके रूपमें

परिणत करनेके पक्षधर थे। एम. एल. ए. होनेपर लेखक को बहुत कुछ देखना करना पड़ा तथा मानना पड़ा कि अपनोंके गलत काम करवाना तथा दूसरोंके सही कामों में अड़ंगा लगवाने वाला ही विधायक यशका भागी होता है। प्रचारके लिए प्रेसकी चमचागिरी भी करनी पड़ती है, यह सब 'विधायककी यातना' संस्मरणमें हैं। चुटीले हास्य-व्यंग्योक्तियोंसे वाहवाही तथा कवितांशोंसे अपनी विद्वत्ताकी धाक जमायी। विधायक निवासके विषयमें जनसामान्यकी यह धारणा हो कि नटवरलाल (विख्यात धोखेबाज) की साली सब औलादें वहीं बसतीहैं या सब साले एम. एल. ए., एम. पी. चोर हैं या एम. एल. ए. की महालफंगा आवारा व्याख्या लेखककी राजनीतिक अधपतनके विषयमें स्पष्ट-वादिताको व्यक्त करतीहै।

'भागवत भूमि : उत्तर यात्रा' अज्ञेयजी द्वारा आयोजित अनेक सांस्कृतिक आध्यात्मिक यात्राओंमें से एक हैं जिसमें अनेक क्षेत्रोंके प्रसिद्ध व्यक्तियोंकी यात्रा वर्णन है। भागवत यात्राके अनेक अभिप्राय बताये गये हैं, भगवानकी भूमिकी यात्रा, वहांके मूल्यवान्से साक्षात्कार, इसका लक्ष्य विभिन्न धर्म मतावलम्बी धर्मप्राण सन्तों द्वारा प्रतिपादित भागवत भावके साक्षात्कारका माध्यम बनानाथा। अमदाबादसे यात्रारंभ हुई, फिर राजकोट, जामनगर, द्वारका जहांके मान मंदिरकी विषादमयी नीरव रागिनीमें विजड़ित निर्जनता स्तब्ध करनेवाली थी। द्वारकामें समुद्र दर्शनसे अपने यात्रियों में अन्तर्निहित काव्य उच्छलित हो उठा। लेखकने शोक से अतीत, भयसे भविष्य और मोहसे वर्तमानकी विलक्षण अर्थ द्वारा उदघाटित कीहै। नरोत्तमदासके सुदामा चरितको बिना किसी पाठ्यक्रमकी आक्सीजनके जीवित मानना ठीक नहीं है क्योंकि हाईस्कूल-इंटर तक इसके मार्मिक अंश पाठ्यक्रममें रहते ही है। बिना पाठ्यक्रमके तो फिल्मोंमें आयी श्रेष्ठ रचनाएं ही जीवित रहतीहैं। सोमनाथके प्रसिद्ध मंदिरको धर्म साधनाके साथ भारतीय स्वातन्त्र्य और स्वाभिमानका प्रतीक माना है। त्यौहारके रूपमें कालको और तीर्थोंके रूपमें देशको चिह्नित किया गयाहै लेखकके अनुसार। लेखक राम और कृष्णको इतिहास पुरुष मानताहै, जिन्हें मिथकोंसे ढक दिया गयाहै।

अज्ञेयजीकी कविताके सन्दर्भमें ठीक ही कहा गया है कि विकसित समर्थ अहं का उत्सर्ग समष्टिकी मर्यादा को कितना चमका देताहै, इसलिए स्वस्थ अहंके विकास को कुंठित करना प्रकारान्तरसे समष्टि विकासको कुंठित करनाहै यह व्यक्तिवादिताका पक्ष पोषण ही है क्योंकि अहं कितना ही स्वस्थ हो अहंकारसे मुक्त तो नहीं हो सकता! अज्ञेयके शब्दोंमें समुद्रसे याचना की शास्त्रीजीने भी—'मुझको और मुझको, और मुझको कहीं मुझसे जोड़ दो" (चार बार प्रयुक्त मुझे) में क्या भेद है। 'पीढ़ियोंसे बिछूड़े भाइयोंके बीच चन्द रोज' संस्मरण है सूरीनाम यात्राका। लेखकने उनसे कहा—अपनी जड़ोंसे जुड़े रहनेका माध्यम अपनी भाषा हिन्दी को ही भारत मूलके सूरीनाम वासियोंको अपनाना चाहिये तथा शिक्षाका माध्यम भी मानक हिंदी ही होना चाहिये, साहित्य सृजन सूरीनामी हिंदीमें हो सकताहै। यह द्वैत अधिक चलनेवाला नहीं है व्यवसायकी भाषा ही बलवती हो जातीहै। ऊपरसे सूरीनामके भारतीय भले ही पाश्चात्य हो गयेहों पर संस्कारोंसे संरक्षणशील बने हुए है। 'तूफानकी झाड़ियों' में अक्तूबर १९९० में अयोध्यामें रामजन्म भूमि, मस्जिदके नामपर बाबरी चौकी विवाद स्थलपर रामललाके मंदिरके लिए देशभरमें पूजित रामशिलाओं द्वारा शिलान्यास करानेके स्वतन्त्र भारतके सर्वाधिक बिवादग्रस्त प्रकरणका सबसे दुःखद पक्ष उल्लिखित है, जिसमें प्रादेशिक और केन्द्रीय सरकार और विश्व हिन्दू परिषद, भाजपा और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघके कारसेवकों की टक्कर हुई। यह उन्हीं कारसेवकों और सरकार-सेवकोंकी टक्करका संस्मरण है। कारसेवक किसीभी मूल्यपर वहां पहुंचना चाहते थे। इस संघर्षमें अपने योगदानको लेखकने अक्षम अपात्रकी सेवाको आन्दोलन-सिंधुकी बूंदके रूपमें स्वीकार करनेका रामकी महती कृपा मानाहै।

पूरी पुस्तक पठनीय तो हैही अनेक विचार कणोंके कारण विचारणीय भी है। ☐

काव्य

आत्मोपनिषद्[1]

[लम्बी कविता]

कवि : मृत्युञ्जय उपाध्याय
समीक्षक : श्यामसुन्दर घोष

कोई समकालीन कवि कोई उपनिषद् —चाहे वह आत्मोपनिषद् ही क्यों न हो—लिखे, यह अपने आपमें विचित्र लगताहै। आज ऐसे चौंकानेवाले शीर्षक रखे हो जातेहैं, इसलिए यहभी किसी कविका उर्वर कल्पना का स्वाभाविक प्रतिफल है, ऐसा सोचकर मैं रह गया था। पर देखा यह तो चिर परिचित कवि मृत्युंजय उपाध्यायकी कृति है जिनमें 'वैश्वानर'काव्यको मैं पहले देख चुकाहूं, तब लगा कि कोई बात है कि मृत्युंजय को ऐसा नाम रखना पड़ा अपनी कृतिका। कृतिके पारायणसे यह बात स्पष्ट हुई कि यह सचमुच एक आधुनिक कविका आत्मोपनिषद् है।

उपनिषद्का अर्थ, शब्दकोशमें, वेदोंका ज्ञानकांड माने जानेवाले ब्रह्मविद्या प्रतिपादक ग्रंथ विशेषमें अतिरिक्त वेद रहस्य, ब्रह्मज्ञान, निर्जन स्थान, विशेष कर्त्तव्य और संस्कार और समीपस्थर्भी माना गयाहै। अब इस दृष्टिसे यदि उपनिषद्को आधुनिक आवेगोंमें लानेकी चेष्टा करें तो इसका अर्थ आत्मज्ञान, आत्म-रहस्य, आत्म प्रतीति, आत्म संस्कार, आत्म कर्त्तव्य और आत्मस्थ भी माना जा सकताहै। मृत्युंजय संभवतः इसी अर्थमें अपनी कविताको अपना आत्मोप-निषद् मानतेहैं।

आत्मोपनिषद् एक आधुनिक कविकी आत्मगाथा है—विश्वसनीयता और आत्म-सजगताका उदाहरण। काव्यका श्रीगणेश आत्मधिक्कारसे होताहै—"धिक् रे धिक्! क्या सोच रहाहै / कहां गया अभिधेय / शून्यमें भटक रहाहै।" यह आत्मधिक्कार वास्तवमें आत्मालोचन है। कवि अपने जीवनके पचास वर्ष पूरे कर लेनेपर अपने विगत जीवन और वर्तमानका जायजा लेताहै और पाताहै—'ले मनुष्यका जन्म जन्तु-सा / अंधकारसे अंधकारमें विचर रहाहै।' इस प्रकार कवि बड़े निष्कपट रूपमें अपने जीवनको देखता, और दिखाताहै।

कविता एक ही रौ में, पूरीकी पूरी, लिखी गयीहै। कहीं कोई विराम या खंड उपखंड नहीं है। यह उचित ही है। कवितामें जो तारतम्य और वेग है उसे अबाधित रखनेके लिए इसे इस प्रकार एकतान बनाये रखना आवश्यक था। हां, कविताकी पंक्तियों को छोटे-छोटे टुकड़ोंमें बांटकर कविने इसी सीढ़ी दर सीढ़ीके रूपमें जो सजायाहै, या क्रम दियाहै, वहभी आवश्यक इसलिए लगताहै कि इससे थोड़ी नाटकीयता और गतिशीलता आतीहै। यह पूरी कविता गद्य शैली में लिखकर कुछ पृष्ठोंमें आ सकतीहै। पर तब, मुझे लगताहै, इसका प्रभाव वह नहीं होता जो अब है। इसलिए कविताको इस प्रकार छापना पुस्तकको फुलाना नहीं, उसके प्रभावको बनाये रखनेकी चेष्टा है।

कविने इसमें अपनी असफलताकी कथाभी ओजस्वी ढंगसे कहीहै—"औरोंसे अपनेको किंचित् श्रेष्ठ समझकर/ हो जाते संतुष्ट तनय, तनुजा, परिणीता/ नहीं व्यवस्था कर पाया तू ऐसी घरकी (पृ. १६)। यह असफलता केवल कविकी निजी असफलता नहीं है। इसमें अनेक जनोंकी असफलताओंके आभास हैं। इसी अर्थमें यह केवल कविका आत्मोपनिषद् न होकर अनेक विफल जीवनोंका दर्पण भी है।

कविने अपने जीवनके रेशे-रेशेको खूब उभारकर देखाहै—"शक्ति और प्रतिभा है तुझमें/ किन्तु मात्र

---

१. प्रका. : स्वर समवेत, ६ तनसुक लेन, कलकत्ता-७०००७। पृष्ठ : ९९; डिमा. ९१; मूल्य : ३०.०० रु.।

परिवार चलाने/ पेट पालनेमें ही अपनी शक्ति लगाकर/ श्वान सदृश हट तू जीवित है' (पृ. १८)। अब यहां अपने बहाने कवि अनेकोंकी खोज-खबर लेताहै, उनपर फब्तियां और कटूक्तियां कसताहै। जीवनके व्यर्थता-बोधको कविने अच्छे ओलस्वी ढंगसे व्यक्त कियाहै— "शून्य कुटीमें जलकर बुझनेवाला दीपक / निर्जनमें खिलकर झर जानेवाला चम्पक / नहीं किसीका कष्ट हर सके ऐसा साधक,' आज समाजमें ऐसे ही लोगोंकी प्रधानता है! होती जा रहीहै (पृ. १९)। परन्तु इनके विपरीत समाजमें ऐसे लोग भी हैं—"वर्षामें ढह गये पुराने कच्चे घरमें / सांप और बिच्छूके भय से / जगकर रात बितानेवाले/दोपहरीमें गंगाकी तपती बालूपर नंगे पाँवों चलनेवाले ''ऐसे लोगोंकी एक पूरी कतार भी है कवितामें। इसलिए यह कहना गलत होगा कि इसमें केवल कविही कविहै, उसका 'मैं' ही 'मैं' है?

कविने स्थान-स्थानपर प्रकृतिका भी बड़ा सुन्दर वर्णन कियाहैं—'धीरे-धीरे/ धीरे-धीरे/ श्याम गगनसे/ मौन धीर गम्भीर उतरती/संध्याकी तामसी शक्तिसे/ तू अपनेको बचा सकेगा ?…भूवन फलकपर / दिवस रात्रिके दो पासोंसे जुआ खेलते शकुनि-कालको जीत सकेगा ?' (पृ. २६-२७)। यहां स्पष्ट है कि प्रकृति को उसने निरपेक्ष ढंगसे नहीं लिया, अपने कथ्य को प्रभावशाली बनानेके लिए ही वह प्रकृतिका उपयोग करताहै, पर उसमेंभी उसकी कोमल दृष्टिका पता चलताहै।

कवितामें बीती हुई या बीतती हुई सदीके चिह्न तो हैं ही। 'बता मुझे बीसवीं सदीमें कहीं किधर कोई वन ऐसा शेष बचाहै, जो प्रसन्न होकर तेरा आतिथ्य कर सके।(पृ. २८) यहाँ पर्यावरण, विनाश और प्रदूषणकी ओर भी सूक्ष्म संकेत है 'अनल अनिल जलभूमि व्योम ऋतुएं दूषित हैं।…सावधान कृष्णा-कावेरी-सरयू-सतलुज-सोन-विपाशा-यमुना-गंगा/अब माँ नहीं पूतनाएं हैं (पृ. ३५)। यहां पर्यावरण और जल प्रदूषणकी जो भयावहता है उस प्रसंगमें कवि विगत सांस्कृतिक संदर्भ का उल्लेखकर पूछताहै "कौन मत्स्य तेरी नौकाकी रक्षा करके / नयी सभ्यताके विकासका अवसर देगा ? (पृ. ३१) कौन धेनु पयस अपने वसिष्ठ कर देगी।" उल्टे स्थिति यह है कि 'नहीं मिलेगा हरिद्वार ऋषिकेश गया काशी प्रयागमें / बृन्दावन नैमिषारण्यमें बदरीवनमें/ कोई ऐसा श्रेष्ठ सन्त ज्ञानी संन्यासी" (पृ. ३६)…

कविताके आत्मोपनिषद् होनेका रहस्य यहां इन पंक्तियोंमें खुलताहै—'बैठ अभी एकान्त/आत्मके निकट/आज इस महानिशाके/ अंधकारमें पलकें मूंद/ अनावृत कर अंतरकी आंखें' (पृ. ३९)।

कवितामें लोकजीवन और लोक-संस्कृतिके चित्र प्रचुरतासे मिलतेहैं—'दूहीं बकरी, मांजे बर्तन, धोये कपड़े, पाले चित्र-विचित्र कबूतर', और यहां कमेड़ीके आँसू, गोरूवाले बाबाजी, खातीजी और मिस्त्री जी भी हैं और 'मां आंसूकी बूंद, और मुस्कान, किसी गोदीके शिशुकी…और चालियां मधुर पंक्तियां मंडपमें मंडराते पावन सगुन गीतकी…दादी परदादी गरिमा महिमा कुटुम्बकी, चेहरेपर झुर्रियां तरंगें स्नेह सिंधु की …बाबा कुलके पुण्य, गांवके वृद्ध महर्षि… चाचा रहे तानकर सीना, कच्चे चने चबाकर…और भाई? कोई रंक्व उदार गृहस्थीकी गाड़ीका औढर दानी बहन? आया जब दुर्भाग्य नहीं किंचित् घबराई संयोजितकर आत्मशक्ति के सम्मुख आयी।' इस प्रकार कविने जातीय पारिवारिक जीवनको उसके इतिहास और संस्कृतिकी समग्रतामें भी देखा और अंकित किया है। कविने नेतासुर, ज्ञानासुर आदि अनेक आधुनिक असुरोंका उल्लेखकर उनके करतबोंके भी बखान कियेहैं। पर इन असुरोंके जालसे बचे हुए लोगभी हैं— आजभी इसी धरा धाम पर, जिनके प्रति कविकी उक्ति है—'भाग्यवान् तू, नहीं देखना पड़ा तुझे मुख उन असुरोंका।' 'नहीं कभीभी पड़ी ओढ़नी ऐसी चादर जिससे होती गिरा पतित गंगा-सी शतमुख' (पृ. ७१) कवि स्थान स्थानपर मनुष्यकी शक्ति और उसकी सम्भावनाओंका भी पता देता चलताहै -'अबभी तुझमें शक्ति शेष है / कर्तव्योंको यथासमय पूरा करनेकी/ गिरते हुए सम्भल जानेकी (पृ. ७५)…मधुर अम्लमें कटु-कषायमें तिक्त लवणमें क्या अन्तर है तुझे बोधहो जाताहै। (पृ. ७७) ऐसे लोग शेष प्रकृतिसे कैसे जुड़ेहैं उनके राग-बोध-संस्कारकी जड़ें कहां, कितनी गहरी जुड़ी बसीहैं, कवि इसेभी स्पष्ट करता चलता है—तू भी उसी कोखसे जन्मा / जन्मेहैं जिससे पशु-पक्षी वृक्ष लताएँ/पर्वत स्रोत सिंधु सरिताएं/ सूर्य चांद आकाश दिशाएं' (पृ. ८६), ऐसे लोग नहीं कभी स्वीकार करेंगे—'प्रकृतिदत्त जो भी पृथ्वीपर।…'उस पर सत्ता बनी रहे कतिपय लोगोंकी। (पृ. ८६-८७)।

जिस कविताका प्रारम्भ आत्मधिक्कारसे हुआ वही आत्मपरिष्कारके सोपानों चढ़ती आत्मसम्बोधिकी इन स्थितियों तक पहुंचतीहै—'मैं' को 'हम' कर / 'हम' को 'मैं' कर / नागोंको भी आभूषणकर—वाद-मुक्त तू नये पुराने सभी चिन्तकोंकी वाणीका मर्म ग्रहण कर...। ले गंगाको शीश / चन्द्रमाको ललाटपर (पृ. ६१), इस प्रकार कविता निरन्तर ऊंचाईकी ओर जातीहै। यही अंधकारसे प्रकाशकी ओर जाना, मृत्युसे अमृतकी ओर जानाहै [तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय] जो 'आत्मोपनिषद्' शीर्षक पहले सुननेमें बड़ा अटपटा लगा, जिससे कविके बड़बोलेपनका आभास मिलताथा, उसेही कविने अपनी विश्वसनीय प्रतीतिसे इतना सटीक और सार्थक कर दियाहै कि सोचना पड़ताहै कि इसके अतिरिक्त इस कृतिकी संज्ञा और क्या होती। मृत्युंजय इस कृतिमें बहुत सहज, पर शक्तिशाली रूपमें सामने आयेहैं। यह कृति इस दशककी महत्वपूर्ण काव्य कृतियोंमें गिनी जायेगी, ऐसी आशाहै। ☐

आधी दुनियांका उद्वेग[1]

सम्पादक : डॉ. रणजीत
समीक्षक : डॉ. मदनमोहन तरुण

'आधी दुनियांका उद्वेग' में सम्पादकीय टिप्पणीके अनुसार—'नारीं-स्थिति, संघर्ष और संचेतनाकी प्रतिनिधि हिन्दी कविताएं—संकलित हैं। सामान्यतः पूर्व प्रकाशित इन प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध कविताओंका रचनाकाल द्विवेदी युगसे आधुनिक युगतक फैला हुआहै। इस संकलनके ३२ कवियोंकी ३५ कविताओंमें मात्र तीन कवियत्रियोंकी तीन कविताएं सम्मिलित हैं। स्पष्ट है कि नारी-जीवनके विश्लेषणके लिए यहां पुरुष-प्रधान दृष्टिको ही आधार मानकर चला गयाहै।

इस संकलनका आरम्भ द्विवेदी-युगके कवि एवं नाटककार नारायणप्रसाद 'बेताब' की कविता 'बेटीकी विदाई' से किया गयाहै। इस कवितामें जहां नारीके पारम्परिक आदर्शोंकी चर्चा की गयीहै, वहीं पिता, अपनी पुत्रीको उपदेश देता हुआ, उस धर्माज्ञाके प्रति भी उसे निष्ठावान् रहनेको कहताहै, यदि पति सखा-भाव को भूलकर पत्नीको पैरोंकी जूती समझने लगे। कवि लिखताहै—"बचन ब्याहके भूल जाये जो स्वामी/ दुराचार-सेवी हो, पर-नारगामी/अकारन करे रात-दिन बद-कलामी/सखा-भाव रखनेमें रक्खे जो स्वामी/ जो समझे तुझे अपने पांवोंकी जूती/तो उसको मुबारक हो उसकी विभूति/गवारा न यह जुल्म जिनहार करना कि अपकार है ऐसा उपकार करना/सुधारेको सख्तीका व्यवहार करना/नहीं दोष कुछ दोष-परिहार करना/ बुरेसे बुराई, बुराईही क्या है/कि मन्युः असि मन्युः वेदाज्ञा है/" इन पंक्तियोंमें अनावश्यक रुढ़ियों तथा कुप्रथाओंके प्रति द्विवेदी युगके आक्रोशकी तीव्रता तथा ऊष्मा अबतक विद्यमान है। गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने अपनी कविता 'दहेजकी कुप्रथा' में कन्याके जन्मको अभिशाप माननेवाली सामाजिक मनोवृत्तिको प्रस्तुत कियाहै, जो भ्रूण-हत्याके रूपमें आजभी समाजका उतना ही कुरूप सत्य है। ईश्वरसे प्रार्थना करता हुआ कवि कहताहै—"या तो करके कृपा कुलीनोंमें कन्याएं/ दयासिन्धु दुख दलन यहांपर मत जन्मायें/जन्में तो दो-चार वर्ष ही में मर जायें/ सहनेको यों व्यथा जवान न होने पायें/"

इनके अतिरिक्त इस संकलनमें उसे विधवा एवं श्रमजीवी (विधवा, तोड़ती पत्थर-निराला) नीरभरी दुखकी बदली (महादेवी वर्मा) तेजस्वी वीर क्षत्राणी (झांसीकी रानी—सुभद्राकुमारी चौहान) वेश्या (कवि और वेश्या—नीलकंठ तिवारी) एकरस जीवन व्यतीत करती एवं निरन्तर बुढ़ापेकी ओर अग्रसर (सुई और तागेके बीचमें—केदारनाथ सिंह) तथा युगोंसे कपड़े पछीटती, सुखाती, आटा गूंदती, अंधेरेमें खर्राटे भरते हुए पतिके पास सदियोंसे जागती स्त्री (औरत—चन्द्रकान्त देवताले) के रूपमें किया गयाहै।

नागार्जुनकी 'तालाबकी मछलियां' इस संकलनकी सबसे तीक्ष्ण एवं प्रभावशाली कविता है, जिसमें स्त्री की तुलना पाली गयी मछलीसे की गयीहै। कोसीकी बाढ़में उन पोखरोंकी मेड़ टूट गयीहै, जिनमें उपयुक्त अवसरोंपर भोजनार्थ मछलियां सुरक्षापूर्वक पाली-पोसी जातीहैं। आज मछलियां मुक्त होकर बाहर निकल आयीहैं। अधेवयस्क मथुरा पाठककी सद्यःप्रसूता १८ वर्षीया तृतीया पत्नी हल्दी और नमक झिड़ककर सुच्चा कड़ुआ तेलमें मछली तल ही रहीथी कि एक मछलीने कड़ाहीमें से कहा—"हम भी मछली, तुम भी मछली/

---

१. प्रकाशक : सचकमल प्रेस, अतर्रा, अतर्रा (बांदा) २१०२०१। पृष्ठ : ८०; डिमा. ९३।

दोनों ही उपभोग वस्तु हैं/ज्ञाता स्वाद सुधीजन, सजनो हम दोनोंको/अनुपम बतलातेहैं/×× × इसीलिए तो हम-तुम दोनों/युग-युगसे पाती आयीहैं विपुल प्रशंसा/रसिकोंकी गोष्ठीमें बहुश:/इसीलिए तो/हमें उन्होंने कैद कर लिया तालाबोंमें/ ××× तुम्हें इन्होंने कैद कर लिया/सात-सात डेवढ़ियोंवाली हवेलियोंमें/ × × × रसना-रतिके लेलिहान उस अग्नि-कुण्डमें/भून-भूनकर हमें खा गये / और अभी तक खाये जाते/" किन्तु अपने चारों ओरके परिवर्तनोंसे परिचित मछली उसे विश्वास दिलातीहै कि 'औरतदारी' की प्रथा शीघ्रही समाप्त होगी और वहभी अवश्य मुक्त होगी। "शब्दकोशको छोड़ कहींभी/×× × औरतदारी रह न जायेगी।' जमींदारीके अनुपातमेंगढा गया सर्वथा नागार्जुनीय आविष्कार 'औरतदारी' परम्परागत भारतीय समाजमें स्त्रीकी स्थितिपर सर्वथा अचूक टिप्पणी है।

इस सोद्देश्य संकलनमें कविताओंका क्रम-निर्धारण स्त्रीकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओं या उसकी सामाजिक स्थितियोंके आधार पर नहीं, बल्कि कवियोंके वयक्रमके अनुसार किया गयाहै, जिससे कई असंगतियाँ उत्पन्न हो गयीहैं तथा मुख्य कथ्य बिखर-बिखर-सा गयाहै। पूरा संकलन स्त्रीकी स्थितिका कोई ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं बन पाता। क्रम-दोष और पुनरावृत्ति तो सर्वत्रही है,जैसे—बेटीकी विदाई (नारायण प्रसाद बेताब पृ. १) पहले हुईहैं, दहेजका प्रसंग बादमें आयाहैं (दहेजकी कुप्रथा—गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, पृष्ठ ५) तथा स्त्रीका बालिका रूप तो उसके भी बाद (बालिका--गोपालशरण सिंह, पृ.८. जया---नागार्जुन पृ. ३४, स्वस्ति, मेरी बेटी—मदन वात्स्यायन पृ. ६९) प्रस्तुत हो सकाहै। श्रेष्ठ कविताओंकी जगह प्रतिष्ठित नामोंके प्रति आग्रहके कारण सम्पादकको कई समझौते करने पड़ेहैं, जैसे यहां दिनकर, अज्ञेय तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जैसे कवियोंकी यहां सबसे रद्दी कविताएं संकलित हुईहैं। तथा बालस्वरूप राहीकी तो उसे पुत्रसे सम्बद्ध कविता लेनी पड़ीहै, जो इस संकलनका कथ्य नहीं।

पूरे संकलनमें आजकी उस स्त्रीका कहीं अता-पता नहीं है जो पत्नी, विधवा एवं वेश्याकी संज्ञासे अलग अपनी लड़ाई खुद लड़ रहीहै।

इस संकलनमें ऐसी कई कविताएं हैं जो इसके पूर्वभी सैकड़ों संकलनोंमें सैकड़ों बार छप चुकीहैं—सम्पादकीय टिप्पणीमें उनका उल्लेखमात्र कर उनकी जगह आजकी कवयित्रियोंकी ऐसी कविताएं संकलित कीजा सकतीथीं, जो आजकी नयी नारीकी नयी संचेतनाको अधिक विश्वसनीयता पूर्वक प्रस्तुत कर पातीं।

पूरा संकलन कुछ श्रेष्ठ एवं अधिकतम घिसीपिटी कविताओंका जमघट बनकर रह गयाहै तथा कथ्यत: एवं प्रभावत: बासी-बासी लगताहै।

वक्तकी परछाइयां[1]

कवि : सुन्दरलाल कथूरिया

समीक्षक : डॉ. किशोर काबरा

कविता जिनके लिए भोगे हुएकी त्रासदीका दूसरा नाम है, वे वक्तके तीनों आयामोंकी भले हीं बात करें, वर्तमानसे बहुत इधर-उधर नहीं होपाते। लगताहै कि एक छोर अतीतसे जुड़ाहै और दूसरा भरतवाक्यकी तरह भविष्यसे, पर पूरा आक्रोश वर्तमानपर ही केन्द्रित होताहै उनका। वे खुरदरे होतेहैं, क्रुद्ध होतेहैं, सपाट होतेहैं, कविताको फन नहीं उफान मानतेहैं, रसको नखलिस्तान और रेगिस्तानके बीचका बियाबान मानतेहैं। ऐसे कवियोंकी विश्वसनीयतापर अणुमात्र भी शंका नहीं कीजा सकती। उनके बड़बोलेपनको भी अप्रिय सत्यका कथ्य एवं पथ्य ही माना जायेगा। जनवाद या किसी भी वादसे प्रतिबद्ध न रहकर शुद्ध जन एवं उसके समाजसे जुड़ी करारी और कटूक्तियोंवाली कविताएं लिखनेवालोंकी संख्या अधिक नहीं है। उन कम कवियों में एक जीता-जागता तथा भीतर-बाहर धधकता नाम है—सुन्दरलाल कथूरिया। प्रोफेसर सुन्दरलाल या समीक्षक सुन्दरलालसे यह कवि सुन्दरलाल कई अर्थोंमें, बल्कि सभी अर्थोंमें नितान्त भिन्न है। भिन्न इस अर्थ में भी कि न वह यहां वक्तव्य देताहै, न रसकी व्याख्या करताहै और न ही नीरक्षीर विवेचन। हलाहलकी तरह मारक प्रहार करताहै और खड़ा-खड़ा प्रतीक्षा करताहै उसके प्रभावकी।

"वक्तकी परछाइयां" काव्य-संग्रहमें कथूरियाजीने व्यक्ति-चेतना एवं परिस्थितिजन्य द्वन्द्वको अपनी कविता का (उत्स) मानाहै। उन्होंने तनावमुक्तिका साधन

---

१. प्रका.: विक्रम प्रकाशन, दिल्ली। पृष्ठ : ६४; डिमा. ९०; मूल्य : ३०.०० रु.।

मानाहै कविताको, पर पूरे संग्रहमें कहीं भी विरेचनकी विकृति नहीं है। सुरेश गुप्तने इस संग्रहको कविताओंमें संघर्ष, आस्था एवं भविष्य-चिन्तनका त्रिकोणात्मक जीवन-दर्शन देखाहै, जो कई अंशोंमें सत्य है। जैसाकि पहले कहा गयाहै, पौराणिक आख्यान प्रतीक बनकर इस कविकी सहायता करताहै और प्रतीक भी आधुनिक समाज एवं कलके जनको अभिव्यक्ति देनेवाला माध्यम मात्र। इस प्रकार शब्द, विषय एवं शैलीकी परवाह किये बिना सुन्दरलाल कथूरिया आजपर पूरी तरह सवार हैं। वे जब कहतेहैं : "तुम्हारा आग्रह था/ मैंने सत्य कह दिया/ जानताथा/ यह कालकूट तुम पचा न सकोगे/ इसमें दोष तुम्हारा नहीं/यह तो कालकूटका प्रभाव है।" तो पूरे संग्रहकी कविताओंका कथ्य एवं लक्ष्य पकड़में आ जाताहै। इनके हर "नर" में "सिंह" बराबर झांकताहै। कवि एक आख्यानको लेकर फिर कई आख्यानोंसे उसे सही सिद्ध करने या गलत सिद्ध करने के व्यायाममें भी पड़ताहै, पर वहां चमत्कृति या काव्यशैलीका आग्रह नहीं है, वर्तमानको अतीतसे मुक्त न कर पानेकी झुंझलाहट है। शब्दोंकी सामासिक परिभाषाएं कविकी विदग्ध अनुभूतियोंकी परछाइयां हैं।

कथूरियाजीकी कविताओंमें व्यक्तिसे समष्टि तक के विषय वैविध्यका होना आश्चर्य की बात नहीं है। वे कविताएं लिखते नहीं है, उनसे लिखवाई जातीहैं परिस्थितियोंके द्वारा। राजनीतिक व्यंग्य एवं सामाजिक दंश बराबर गति देतेहैं कविताओंको दो किनारों की भांति, उबलते उफानको संभालते हुए। कविताओं का आकस्मिक अन्त या बीचमें ही खत्म होनेका सिलसिला कविकी भावुक बेचैनीको सामने रखताहै, इस अर्थमें जो नहीं कहा गयाहै, वह अधिक मुखर होताहै। कविकी अनुभूति निरन्तर अभिव्यक्तिपर सवार दिखायी देतीहै। वक्तकी परछाइयोंके स्थानपर परछाइयोंका वक्त हस्ताक्षर करता हुआ साफ दिखायी देता है। इस प्रकार बिम्ब कम और व्यंग्य ज्यादा, घटना कम और चिन्तन ज्यादा, स्व कम और सर्व ज्यादा, शिवम्-सुन्दरम् कम और सत्य ज्यादा जैसा समीकरण है कथूरियाजीकी कविताओंमें। कबीर, रहीम, वृंद जैसे फक्कड़, उदार एवं नीतिज्ञ कवियोंके सुभाषितोंका आख्यानिक प्रयोग भी अपने-आपमें एक नयी बात है, प्रयोगके तत्त्वपर भी और पर्यालोचनके स्तरपर भी।

कई कविताएं आपात्कालीन या अनुशासन पर्व की उपज हैं, जिनमें राग दरबारीका विरोध है। वहां भी विरोधी पार्टीके भाषण जैसी नहीं है कविता, बल्कि भय और यथार्थके बीचकी सन्धि-भाषा जैसी है कविता। श्री जीवनप्रकाश जोशीने रसिकोंको निराश करनेवाली बात उठायी है, पर रसिकोंकी वह परिभाषा अब नहीं रही जो काव्यशास्त्र गुनगुनाता रहाहै। अब पाठक सतर्क बौद्धिकता और सहृदय भावुकताके बीचमें संतुलन स्थापित करके कवितामें प्रवेश करताहै। कुछ कविताओंको इस संग्रहसे बचाया जा सकताथा, पर बचना और बचाना कथूरियाजीका स्वभाव नहीं है। वे तो हर छोटे सत्यको ऋतके आइनेमें देखतेहैं :

> पैरोंसे रौंदी जानेवाली घास/ जब आंखोंमें पड़ती है, तब उसकी अहमियत मालूम होतीहै। □

और कितनी दूर[1]

कवयित्री : विद्या गुप्त
समीक्षक : सन्तोषकुमार तिवारी

रागात्मक लगावके साथ पीड़ा-प्रतीतिकी व्याकुल अभिव्यक्ति इस संकलनकी अपनी पहचान बनातीहै, क्योंकि यहां व्यक्ति-संवेदन पूरी तरह समाज-संवेदनसे जुड़ेहै। कवयित्रीने कविताकी दुनियांमें आसपासकी जिन्दगीको कुछ इस प्रकार उकेरा है कि युगीन हलचलें अपने सूक्ष्म अंतःस्पन्दनोंके साथ सहजही रूपायित हो गयीहैं। आलोच्य संग्रहमें निःशब्द पीड़ाको शब्द-शब्द उतारनेकी चेष्टा है, वंचित-उपेक्षितके मनकी खीझ है, परम्परा और प्रगतिका स्वस्थ तालमेल है प्यारभरी ऊष्मा है, वर्ग-संघर्षका वर्णन हैं और जहरीली हवाओं व बारूदी धमाकों द्वारा युगबोधकी अभिव्यक्ति है।

वस्तुतः इन कविताओंमें संवेद्य और अभिव्यक्ति सर्वाधिक सबल, सार्थक और सक्षम है। यहां कवयित्री की मनोवैज्ञानिक पकड़ देखतेही बनतीहै। बरसातमें 'मौत और मौजके बीच अलग-अलग स्वाद' भोगते पूंजीपति और सर्वहाराके फुसफुसाते षडयंत्र अपने आप सारी व्यथा-कथा कहते दिखायी देतेहैं। 'जी-साब

---

१. प्रका : श्री प्रकाशन, १६० आर्यनगर, दुर्ग (म. प्र)। पृष्ठ : ८८; डिमा. ६१; मूल्य : ५०.०० रु.।

और चल बे' में अंतर/ जूतेसे तौलता/ आदमीकी हैसियत' रचना धूमिलके 'मोचीराम' की याद दिला देती है। साहब/ फैल जाते पूरी सड़कपर/ 'जी साब सिमट जाते फुटपाथपर' कहकर कवयित्रीने मानो पूरे समाज का वास्तविक परिदृश्य प्रस्तुत कर दियाहै। इन रचनाओंमें कुर्सीपर बैठा एक निश्चित आदमी है और दूसरी ओर पत्थर तोड़ता मजदूर है, इतनाही नहीं मजदूरोंकी बस्तीमें आग लगानेवाले निरंकुश शासक भी है। यहां बाढ़में बहता आदमी, सूखेमें सूखता सामान्य आदमी/ सामने है। कवयित्रीका व्यंग्य कितना कचोटक है—'राहत योजनाओंमें /आदमीका/फिर हरा हो जाना/ बड़ी बात है।'

इन रचनाओंमें वर्तमान मानो 'आत्महंता' सा खड़ा दुविधाग्रस्त दिखायी दे रहाहै क्योंकि पौर-पौर थकी जिन्दगीमें उदासीके गहरे रंग हैं। फिरभी, कवितामें नयी पीढ़ीकी संभावनाएं भविष्यके प्रति आश्वस्त करतीहैं—''नन्हें पैरोंसे/नापताहै पहाड़की ऊंचाई/ देखते देखते / ज्वालामुखीमें / बदलताहै बच्चा' इस प्रकार ये रचनाएं मंजिलकी तलाश भी बन जातीहैं।

चाहे पृथ्वीपर पेड़ोंकी विकास यात्रा हो या दादा-पोतेका मानवीय संबंध हो, परम्परा और प्रगतिके सुखद तालमेलकी सहज सुन्दर अभिव्यक्ति बड़ी सधी कलमसे दी गयीहै—'पोतेके कंधोंपर'/ दादाकी शव-यात्रासे / पृथ्वीकी/ चिर-आकांक्षाका पूर्ण होजाना/ आरोहसे अवरोह तक/ सरगमका लौट आना/ निश्चित ही/ सुखद दृश्य है।'

संकलनकी श्रेष्ठ रचनाएं औरतकी त्रासदीके विविध (धूमिल-मटमैले) चित्र अंकितकर हमारी संवेदनाओंको उभारनेमें सक्षम हैं। यहां आदर्शोंकी दुहाई नहीं है और न नारीको गरिमामय बनानेकी चेष्टा, बल्कि यथार्थपरक जीवन-दृष्टिका समाहार है। यहां सन्नाटेके पहले घटित हुई अठारह वर्षीय अबला पर अत्याचारकी सत्य-कथा है, काली लड़कीके प्रति विवाह हेतु लोगोंकी नापसंदगी है, पतिके बिना पत्नीका जिन्दा रहकर भी जलने जैसा महाव्रत है, बदजात औरतके पेटका सवाल है, बांझकी पीड़ा है और बिना भावात्मक लगावके पतिके साथ बिस्तरमें पहुंचनेकी विवशता है। यहां तवायफकी जिन्दगीका व्याकरण है, जहां 'तन ढंकनेके लिए/ तनका उधड़ जाना।' आवश्यक है। मांकी ऊष्मा है जो शब्दातीत सत्य-सी है 'प्रथम अक्षर है और पूर्ण ग्रन्थ भी।'' यहां पति-पत्नीका अहम् है जो सामीप्यके सहचर पलोंमें भी छिटककर अंतहीन दूरी ले लेताहै और 'दो देहोंका द्वंभाव' बना रहताहै। इन रचनाओंकी वास्तविकता यह है कि नारीके अनुभूत जीवनके प्रत्येक क्षणको और अनुभुतियोंके बारीक रेशोंको कवयित्रीने इस प्रकार पकड़ाहै कि नर-नारीके अहम् और व्यक्तित्वकी कही अनकही, अनछुई और अनजानी स्थितियोंका सहज ही साक्षात्कार हो जाता है। कवयित्रीने इन सभी बातोंको प्रतीकों द्वारा जितनी सम्प्रेषणीयता प्रदान कीहै, वह स्तुत्य है। यहां नदी-सागर, आकाश-धरतीके सन्दर्भ सारा वृतान्त अनावृत कर देतेहैं। तुम चाहतेहो/ अपने होनेमें मेरा गुम हो जाना/ चाहतीहूं मैं, अपनी होना'/...तुम्हारे सामने होताहै तुम्हारा आकाश/ मेरा 'मैं' छोड़ नहीं पाता अपनी जमीनका खम/...ठहर जाते हम दोनों/ अपने होनेकी/ लक्ष्मण रेखाके आस-पास' समकालीन कविता में ये रचनाएं निश्चित ही रेखांकित की जायेंगी।

नारी-मुक्तिका सुखभी इन रचनाओंमें विद्रोहके साथ उभराहै—'मुझसे / कहतीहै कमला/ अब/ भकोस नहीं पाता 'वह' /भूख-बेभूख/ हरामके मालकी तरह/ देहसुख।' वास्तवमें नारीके अन्तर्मनकी सभी बारीकियोंको शब्दचित्र देते हुए विद्या गुप्तने इन छोटी रचनाओंको भी महाकाव्यात्मकता प्रदान कर दीहै और वहभी इस कौशलके साथ, कि अश्लीलता या शारीरिक सलूकोंवाली कविताके आरोपसे पूर्णतः मुक्त रहकर। शब्द-संयम और प्रतीक बिम्ब इन कविताओंकी जान है। जमीनका बंजर होना सबकी जुबानपर होताहै लेकिन 'बूढे बैल' की अक्षमतापर कोई अंगुली नहीं उठाता। 'उर्वर-कोखमें बंजरके आरोप' को सहन न करनेका निर्णय वस्तु-सत्य और परिवर्तनके साहसिक अभियानको स्वीकार करनाहै। यहां बूढ़े पति और नयी नवेलीकी अनमोल दास्तान साफ-साफ बयां हुई है। 'जन्मांध लड़की' कवितामें यौवनके आनेपर तन और मनके परिवर्तित रूपों और भावोंको कवयित्री ने जिस प्रकार शब्दोंमें बांधाहै, वह अद्वितीय है—'पल्लवित देहपर बसंतके हस्ताक्षर...।'

संकलनकी दो रचनाएं इस दृष्टिसे उल्लेखनाय हैं कि वे कलाकारकी दुर्दशाके साथ कविताकी शक्तिको प्रदर्शित करतीहैं। केनवासपर जीवनके रंग बिखेरने वाला चित्रकार कितना अभावग्रस्त और उपेक्षित होता

है। उसकी पीड़ा और छटपटाहटको कोई नहीं समझ पाता। 'कविता' रचनामें कवयित्रीकी स्पष्ट धारणा है—कविता/ कवि नहीं लिखता / कविको जन्म देतीहै कविता।' यहां घनानंद अनायास याद आ जातेहैं—'लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहि तो मोरे कवित्त बनावत।' वास्तवमें कविता करुणाकी अविरल धारा है। श्रमिकके गुनगुनानेमें, शिशुकी तन्मयतामें, किसानके सपनों और माटी सनी उंगुलियोंमें, देह भरती उम्रमें कविता समायी हुईहै। कवयित्रीने संवेदनाके धरातलपर वस्तुजगत्के दृश्योंको और आसपासके जीवनको अपनी कविताका प्रतिपाद्य बनायाहै। □

क्रान्ति ज्वाला[1]

कवि : श्रीनिवास द्विवेदी
समीक्षक : डॉ. विनोद जायसवाल

प्रस्तुत महाकाव्य रामगढ़की रानी वीरांगना अवन्तीबाई लोधीके यशस्वी व्यक्तित्व एवं उत्कट बलिदानपर केन्द्रित अपने महाकाव्यात्मक औदात्य तथा व्यापक मानवीय उद्देश्यकी दृष्टिसे एक उल्लेखनीय कृति है। द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक शैलीमें प्रस्तुत यह कृति इस रूपमें महत्त्वपूर्ण है कि इसकी कथावस्तु नारी-प्रधान है तथा शौर्य, त्याग, राष्ट्रीय पुनर्जागरणके अपने महत् उद्देश्यके साथ-साथ भारतीय नारीके उत्कृष्ट मानवीय सद्गुणोंको उजागर करनेमें समर्थ है। वीरांगना अवन्तीबाई लोधीके महान त्याग, उत्सर्ग, लोकप्रिय शासन, कुशल नेतृत्व, राष्ट्र प्रेम, मानवीय मूल्योंके प्रति अनुराग, समता, न्याय, साहस और करुणाके ताने-बानेमें रचा-बसा यह महाकाब्य १८५७ के गदरकी स्थिति, तत्कालीन राजनीतिक-सामाजिक पृष्ठभूमि और ऐतिहासिक सत्योंका उद्घाटन तो करताही है, आजके विखंडित जीवन मूल्यों, रुग्ण परिवेश और राष्ट्रीय संकटोंसे जूझनेकी दृष्टिभी प्रदान करताहै। बलिदानी रानीके चरित्र चित्रणके माध्यमसे व्यक्तिकी स्वाधीन चेतना, मानवीय संबंधोंकी रागात्मकता, राष्ट्रनिर्माणमें नारीकी सकारात्मक भूमिका, दूषित परंपराओंकी सड़न और सुधारवादी विचारोंका मनोवैज्ञानिक एवं यथातथ्य निरूपण हुआहै। विदेशी सत्ताके शोषक-षडयंत्रकारी कामनाओं एवं स्वार्थ-लोलुप राजाओंकी उदासीनताके साथ-साथ कविने इस सत्यको भी रेखांकित कियाहै कि शोषित-दमित-निराश जनसमूहोंमें किसी कुशल नेतृत्वके मिलतेही एकाएक अन्यायके प्रतिकारमें उठ खड़े होनेकी अदम्य इच्छा-शक्ति होतीहै।

अवन्तीबाईके चरित्रको केन्द्रमें रखकर स्वाधीनता-आंदोलनकी शौर्यगाथा इस महाकाव्यात्मक रचना का विषय है हम अपनी राष्ट्रीय और सांस्कृतिक भावधाराको अक्षुण्ण रखनेके लिए 'बलिपंथी'के सच्चे स्वरूप को अपनानेमें बिल्कुल न हिचकिचायें क्योंकि स्वतन्त्रता पानेसे जटिलतर समस्या स्वतन्त्रताको प्रतिष्ठित किये रखनेका होताहै।" ऐसे समय जब हम लोकतांत्रिक व्यवस्थासे मोहभंगकी त्रासदी झेल रहेहैं अपनी स्वतन्त्रताके प्रति गहरी रागात्मकता और दृढ़ इच्छाशक्ति महत्त्वपूर्ण हो जातीहैं। लोकतांत्रिक मूल्योंके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण तभी संभव है जब हमें स्वतन्त्रता प्राप्तिके लिए किये गये बलिदानोंको ध्यानमें रखें। रानी अवन्तीबाईकी शौर्यगाथा हमें अपनी स्वतन्त्रताके वास्तविक मूल्यसे अवगत करातीहै और कृतिकारकी यह उल्लेखनीय उपलब्धि है।

विदेशी-सत्ताकी शक्तिसे पराभूत राजाओं और श्रेष्ठि वर्गकी उदासीन एवं हताश मन:स्थितिका बड़ा ही सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इन पंक्तियोंमें देखने को मिलताहै :—"बोले 'इनका कुछ काम नहीं,/शस्त्रों का लो अब नाम नहीं।/ गोरोंसे कौन करेगा रण, / नाहक कर जीवनका अर्पण।/ कर सकताहै विद्रोह कौन ?। लगताहै सारा देश मौन।—(षष्ठ सर्ग, पृष्ठ—८१) रानीके प्रखर राष्ट्रीय विचारोंकी झलक प्रस्तुत करते हुए कविने जाति और धर्मसे बढ़कर राष्ट्र की महत्ता प्रतिपादित कीहै। अपने दुधमुंहे बच्चोंका मोह छोड़कर स्वतंत्रताकी बलिबेदीपर प्राणोत्सर्गको तत्पर वीरांगना रानीके चरित्रकी दृढ़ता और त्यागका मार्मिक चित्रण कविने इन पंक्तियोंमें किया है :—साक्षी है इतिहास विम्वका, था अवसर यह पहली बार/ छोड़ दुधमुंहे बच्चे घरमें, रणमें जानेको तैयार/जननीको होनाथा, उनका छोड़ सेविकापर सब भार/ आया कैसा बिकट समय था, / लख सहमा होगा करतार।—

1. प्रका. : सुविधा प्रकाशन, नया बाजार नं. १, घंटाघर, दमोह (म. प्र.)। पृष्ठ। २९०; क्रा. ६२; मूल्य : ३०.०० रु. (अजिल्द)।

चौदह सर्गोंके इस महाकाव्यकी कथावस्तुका आधार कविने इकबाल बहादुर देवसरेके उपन्यास 'रक्त गंगा', वृन्दावनलाल वर्माके उपन्यास 'रामगढ़की रानी' और श्रवणकुमार त्रिपाठीके उपन्यास 'क्रांति पथ' को बनायाहै फिरभी अनेक स्थलोंपर लेखककी मौलिक उद्भावनाएं भी ध्यान खींचतीहैं। बोलचाल की भाषा, सरल छन्द विधान, लोक विश्रुत, कथावस्तु और सहज-सरल शैली इस महाकाव्यको स्मरणीय बनाते हैं। महाकाव्यमें चित्रित मार्मिक स्थल, सूक्तियां और मुहावरे रचनाकारकी भाषा और भाव-सामर्थ्यका परिचय देतेहैं। हर्ष, विषाद और कौतुक आदिको व्यक्त करनेवाली ओह!, अहा! अहो! इत्यादिकी परंपरागत शब्दावलीका बहुलतामें प्रयोग और कहीं-कहीं काव्य-नाटकों जैसी छन्दबद्धता खटकतीहै फिरभी भाषा और शैलीकी साधारणता ही इस महाकाव्यको असाधारण बनातीहै। □

पोयट्री वर्कशाप[1]

[सन् १८६२ से १९६२]

सम्पादक : डॉ. एटुकूरि प्रसाद

समीक्षक : डॉ. भीमसेन निर्मल

सन् १८६२ से (यह गुरजाड अप्पारावजीका जन्म संवत्सर है) लेकर सन् १९६२ की मध्यावधिमें जन्मे १११ कवियोंके हस्तलेखोंका (एक ओर हस्तलेख तो दूसरी ओर उस अंशका मुद्रित रूप) संकलन है। यह सचमुच पोयट्री (कविता) से संबंधित वर्कशाप है, इसलिए संपादकने 'पोयट्री वर्कशाप' ही कहाहै। सौ से अधिक कवियोंकी लिखावटोंका (काट-कूट, संशोधन-परिवर्तन-परिवर्द्धन आदिसे युक्त) संकलन कर, उनकी फोटो-स्टेट प्रतियाँ बनाकर, उन्हें कविके जन्म वर्षके क्रममें संपादित कर, प्रकाशित कर, डा. प्रसादने इस क्षेत्रमें एक अपूर्व प्रयोग कियाहै।

अंग्रेजीमें इन्हें 'हैलोग्राफ मैन्युस्क्रिप्ट' कहतेहैं। अंग्रेजीमें मिली डिकेनसन् नामक कवयित्रीके हस्तलेखों का एक संकलन आर. डब्ल्यू फ्रेंकलिनने सन् १९१४ में प्रकाशित कियाथा। यह इस प्रकारका प्रथम प्रयास था। एड्गार एलेन पो की कुछ हस्तलिखित कविताओंको थॉमस आलिव मॉबटने १९६९ में और एडवर्ड टेलर की हस्तलिखित कविताओंको डोनाल्ड इ. स्टाफर्डने १९६० में प्रकाशित कियाथा। पाश्चात्य देशोंमें मूल कविके हस्तलेखको यथातथ्य रूपमें प्रकाशित करनेकी परंपरा है। 'हैलोग्राफ मैन्युस्क्रिप्ट' का अध्ययन कर, कविके विचारोंमें और अभिव्यक्तिमें आये परिवर्तनों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया।

हिन्दीमें सुश्री महादेवी वर्मा कृत 'दीपशिखा' का उन्हींकी हस्तलिखित प्रतिके आधारपर हुआ। किन्तु महादेवी वर्मा जीके लेखनमें काट-कूट या संशोधन-परिवर्द्धन परिलक्षित नहीं होते।

हिन्दी साहित्य सम्मेलनने 'आधुनिक कवि' के शीर्षकसे प्रकाशित लगभग तीस पुस्तकोंमें मूल कविकी एक कविताका फोटो-स्टेट पृष्ठ दियाहै। किन्तु इनमें भी काट-कूट, संशोधन-परिवर्द्धन नहीं है।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रासने दक्षिण के हिन्दी विद्यार्थियोंके लिए 'लिखावटके नमूने' नामक पुस्तकका लगभग ४०-४५ वर्ष पूर्व प्रकाशन कियाथा।

लगभग दस वर्ष पूर्व स्व. जयशंकर प्रसादके सुपुत्र श्रीरत्नशंकरने 'कामायनी' को (संपूर्ण) हस्त-लिखित रूपमें काट-कूट, संशोधन-परिवर्द्धन आदिके साथ प्रकाशित कियाहै। प्रसादजीके अन्तस्-मंथनको समझनेके लिए यह प्रकाशन उपादेय सिद्ध हुआहै। हिन्दीभाषी क्षेत्रमें ऐसा कोई अन्य प्रयास हुआहै, इसकी जानकारी मुझे नहीं है।

डॉ एटुकूरि प्रसाद द्वारा संपादित इस पुस्तककी उल्लेखनीय बात यह है कि यह एक कविका न होकर, १११ कवियोंके हस्तलेखोंका संकलन है। हस्तलेखोंके संपादनमें तथा उनके फोटोस्टेट प्रति बनानेमें प्रसाद जीको अथक परिश्रम करना पड़ा। स्याही अलग, लिखे गये कागज अलग—इन सब कठिनाइयोंको पार कर, प्रसादजीने सराहनीय कार्य कियाहै।

किसीभी कविके हस्तलेखमें किये गये परिवर्तनों-काटकूट आदि-द्वारा, कविकी सामाजिक-सांस्कृतिक संवेदनाओंको समझनेमें सहायता मिलतीहै। एक बार लिखनेके बाद कविको उसमें परिवर्द्धन-संशोधन करने

---

१. प्रका. : श्री श्री स्मारक संस्था तथा आन्ध्रप्रदेश अभ्युदय रचयितल संघं, हैदराबाद। एकमात्र वितरक : विशालान्ध्र प्रचुरणालय, बैंक स्ट्रीट, हैदराबाद-५००००२। पृष्ठ : ४८०+२+१३; डिमा. ९२; मूल्य : १००.०० रु.।

की आवश्यकता क्यों पड़ी ? इस विषयको लेकर गहराईसे विश्लेषण करनेवालोंको कविके मनकी गहराइयोमें पैठनेका अवसर प्राप्त होताहै। इस प्रकार साहित्यके मनोविश्लेषण प्रधान अध्ययनमें, कविकी मानसिकताको समझनेमें, ऐसी पुस्तकें सराहनीय योगदान प्रस्तुत करतीहैं।

पुस्तकका विषय तेलुगुके कतिपय कवियोंसे संबद्ध है, पुस्तकके विषयके बारेमें अधिक न कहकर, संपादक के कार्यके महत्वका प्रतिपादन करनेके उद्देश्यसे ही 'पोयट्री वर्कशॉप'का परिचय, हिन्दीभाषी विद्वानोंको करना ही इस समीक्षाका उद्देश्य है। यदि हिन्दीमें भी ऐसा प्रयास होजाये तो राष्ट्रभाषाका गौरव बढ़ेगा। ☐

उपन्यास

बन्नी[1]

लेखिका : शकुन्तला दुबे
समीक्षक : डॉ. शत्रुघ्नप्रसाद

हिन्दीका उपन्यास-लेखन प्रौढ़त्वको प्राप्तकर बहुमुखी हो गयाहै। संस्कृतके कथा साहित्यमें मनुष्यके साथ पशु-पंछी सहचरके रूपमें दिखतेहैं। हिन्दी साहित्यमें सहचरका भाव कम हो गयाहै। आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य मनुष्यको ही समझनेमें सारी शक्ति लगा रहाहै। यह उचित भीहै। परन्तु पशु-पंछी तो मानव जीवनसे अलग नहीं है। वैसे रामचरित मानस में जटायु नामक गीध जानकीकी रक्षाके लिए अपनेको अर्पित कर देताहै। पद्मावतमें हीरामन सुआ (सुग्गा) पथप्रदर्शक बन जाताहै। श्यामनारायण पाण्डेय रचित 'हल्दीघाटी' में चेतक नामक घोड़ा अपनी स्वामिभक्ति एवं गतिके लिए चर्चित है। प्रेमचन्दने दो बैलोंकी कथा लिखीहै। तथापि मानव एवं पशुका निकटतम सम्बन्ध लेखकोंसे उपेक्षित रहाहै। इस दृष्टिसे डॉ. शकुन्तला दुबेका उपन्यास "बन्नी" उल्लेखनीय है। प्रभाकर माचवेने दो शब्दमें लिखाहैं—"एक प्रिय पालतू प्राणी पर शायद यह हिन्दीमें पहली औपन्यासिक कृति है।' निस्संदेह यह पहली औपन्यासिक रचना है। मनुष्य एवं कुत्तेके संवेदनात्मक-स्नेहपूर्ण संबंधपर पहली कलाकृति है।

डॉ. शकुन्तला दुबेके इस विशिष्ट लेखनके मूल में कुछ बातें हैं। इन्होंने एकाध स्थलमें स्पष्ट कियाहै। पृष्ठ १२० पर लिखाहै—"हिन्दू-धर्मके अनुसार बन्नी कुत्तेकी योनिमें होनेके कारण मंदिरमें घुसनेका अधिकारी न था, परन्तु धर्मराज स्वयं कुत्तेका रूप धारणकर युधिष्ठिरके साथ स्वर्गद्वार पहुंच गये। हिन्दू-धर्ममें अनेक जटिल परस्पर-विरोधी बातें हैं जिनका समाधान व्यक्ति अपनी चेतनाकी विसंगतियोंसे मुक्त होकर कर पाता है।' संभवतः इस कथनमें लेखिकाकी एक प्रकारसे दार्शनिक दृष्टि और उपन्यासकी पृष्ठभूमि है। पृष्ठ ५ पर ही मूल भावको स्पष्ट कर दियाहै—"बन्नीकी चेतना केवल प्यारभरा दुलार पानेके लिए मेरी ओर बढ़ती, जैसे समुद्रसे उत्पन्न लहर तटकी ओर आगे-आगे बढ़ती हुई एक बार ऊंचे उठती और तटपर आ आश्वस्त हुई बिखर जाती, लुप्त होजाती, अस्तित्वहीन हो जातीहै। ऐसी ईगोलेस स्टेट बड़े सहजतावश मैंने बन्नीके साथ गत तेरह सालोंमें देखीहै, उसका अभिनन्दन कियाहै और उसके सच्चे प्रेमसे ओतप्रोत होनेके कारण ही इस प्राणीकी सच्ची कथा आपको सुनाने बैठ गयीहूं।'

१. प्रका. : ज्ञान भारती, ४/१४ रूपनगर, दिल्ली-११०००७। पृष्ठ : १२८; क्रा. ९२; मूल्य : ५०.०० रु.।

तात्पर्य यह है कि एक पालतू पशुके प्रति चैतन्य स्नेहके कारण यह सच्ची कथा उपन्यास शैलीमें प्रस्तुत है। लेखिकाने मनोविज्ञान एवं प्राणीविज्ञानकी विशेषज्ञा होनेके कारण मानव एवं पशुकी प्रेमभावनाके अन्तर एवं वैशिष्ट्यको समझकर पृष्ठ २२ पर लिखा है—"प्रेम मानवजातिकी उदार भावनाओंकी सहज प्रक्रिया रहीहै। उस प्रेममें मनुष्यने कितनी बार हिंसा की लड़ाई लड़ी, मर्यादाओंका उल्लंघन किया⋯किन्तु जानवरने मनुष्यसे जबभी प्रेम किया केवल प्रेम किया।" संभवतः इसीलिए व्यासने महाभारतमें कुत्ते को युधिष्ठिरसे अधिक शुद्ध, निश्छल तथा धर्म रूप मानाहै। डॉ. दुबेने इसी चिन्तन एवं भावसे अनुप्राणित होकर आदि मानवके सच्चे सहयोगी कुत्तेपर गंभीर और रोचक उपन्यास लिखनेका प्रयत्न कियाहै। यदि मानव और श्वानके संवेदनात्मक संबंधमें दर्शन, मनोविज्ञान एवं संस्कृति क्रियाशील होजायें तो पारिवारिक-सामाजिक जीवनका अर्द्धज्ञात पृष्ठ खुल जाये और 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की चिन्तनासे संवलित नया पृष्ठ सामने आ जाये। इस उपन्यासमें वही अर्द्धज्ञात पृष्ठ खुल गयाहै। नया पृष्ठ सामने आगयाहै।

लेखिकाने छोटी-सी भूमिकाके साथ बन्नी—पोमेरियन जातिके सुन्दर कुत्तेका अनुभूतिपरक वर्णन आरम्भ कियाहै। कुत्तेकी मूकभाषाको उसकी आँखों, स्पर्श और व्यवहारसे समझनेका प्रयत्न कियाहै। शैशवसे बुढ़ापे तकके जीवनको पारिवारिक-सामाजिक सन्दर्भमें अंकित कियाहै। यह ठीक है कि बन्नी पोमेरियन जातिका अभिजातवर्गीय है। उच्च शिक्षित परिवारमें पालित होकर मनोवैज्ञानिक एवं धार्मिक दृष्टिकोणसे प्रशिक्षित हुआहै। फलतः बन्नी केवल स्वामीभक्त ही नहीं है। उस मूक प्राणीने अपनी अभिभाविका और इनके परिवारको पहचानकर आत्यन्तिक प्यार दियाहै। सम्पूर्ण प्रशिक्षणको ग्रहण कियाहै। उसने शिक्षित एवं धर्मनिष्ठ परिवारकी मर्यादाओंको हृदयसे स्वीकार कियाहै। अभिभावकको अटूट विश्वास हो गयाहै कि वह मर्यादाको नहीं तोड़ेगा। बचपनके प्रशिक्षणके अनुसार निर्देशों और आदतोंका पालन करेगा। जैसे मालिकके साथ घूमने जाना-आना, घर आकर हाथ-पैर धुलवाना, चौकेमें नहीं जाना, परिवारके सदस्योंको प्यार करना, घरकी चौकीदारी करना, पूजाके समय शांत बैठना, आरती लेना, टीका लगवाना आदि। सर्वोपरि, बन्नी कुत्तेकी सहज प्रवृत्ति माँस खाने, हड्डी चूसनेका परिवर्तन हुआ। निरन्तर निरामिष भोजन मिलने और हड्डी आदि लानेपर दंड, क्षमा और इनामकी प्रक्रियासे सहजवृत्तिमें उन्नयन अद्भुत है! फलतः उपन्यासकी रोचकता बनी रहीहै।

डॉ. दुबेने उपन्यासके कथानकमें बन्नीके जीवनको पारिवारिक-सामाजिक सन्दर्भमें प्रस्तुत कियाहै। बचपनसे मृत्यु पर्यन्त जीवन रोचक एवं मार्मिक प्रसंगोंसे रचित होनेके कारण कथामें रोचकता बनी रहतीहै। पर घटनाओंका वर्णन क्रमिक नहीं है। बचपनका जीवन मध्यमें प्रसंगवश आयाहै। मध्यका जीवन आरंभमें, जिससे औत्सुक्य एवं सरसता समाहित होसके। कुत्ते से सम्बद्ध कथानक उपन्यास-कलाके बंधे-बंधाये रूपमें नहीं आ सकता। यह तो लेखिकाकी विशेषता है कि इन्होंने बन्नीकी कमनीयता, निष्ठा, क्रीड़ाप्रियता, घर-परिवारकी चौकीदारी, अभिभाविकाके साथ आत्यन्तिक अदम्य प्रेमके कारण रेलयात्राके चार उल्लेखनीय प्रसंग, घर और पड़ौसके बच्चोंके साथ स्नेहपूर्ण, विनोदप्रियता, गलती होनेपर क्षमा माँगनेकी मुद्रा, स्नेह-सम्मानकी भूख, कमीकी अनुभूति होनेपर विद्रोह, सहज-संयमित कामप्रसंग और बुढ़ापेके करुण अध्यायको कथानकमें पिरो दियेहैं। सवा सौ पृष्ठोंसे अधिकके इस उपन्यासमें अध्याय नहीं हैं। वर्णन-चित्रणका प्रवाह टूटता नहीं है। बीच-बीचमें चिन्तन एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी आ गयेहैं जो प्रवाहमें बाधक नहीं बनते। कभी-कभी कुत्तेके जीवनके वर्णनमें चिन्तन—मानव सभ्यता सापेक्ष चिन्तन अजीब लगताहै। पर मानव एवं कुत्तेके संदर्भ में चिन्तन कुछ सोचनेको बाध्यकर देताहै। और यह सारा कथानक पारिवारिक-सामाजिक सन्दर्भसे जुड़ा हुआहै। अतः जब तब चिन्तन अस्वाभाविक नहीं है।

कथानकमें अध्याय या सर्ग न होना मानो कुत्तेके जीवनका क्रमविभाजन न होनाहै। कुछ प्रसंग तो अवश्यही उल्लेखनीय एवं सरस हैं। रेलयात्राके अनेक प्रसंग हैं। एक बार रेलयात्रामें अदम्य प्रेमवश बन्नी उछलकर डब्बेमें पहुंच गया। ट्रेन चल पड़ी। उसे बाहर हटाना असंभव होगया। टी. टी. ने कुत्तेको देखकर आपत्ति कर दी। अभिभाविकाने अनुरोध किया। सहयात्रियोंने कुत्तेका स्वभाव और व्यवहार देखकर आपत्तिसे इन्कार किया। पर टी. टी. अभि-

भाविकाको कुत्तेके साथ उतर जानेको सगर्व बाध्य करने लगा। इस चरम बिन्दुपर आकर बन्नी रौद्र रूप में आ गया। टी. टी. को भागना पड़ा। यात्रा सकुशल पूरी होगयी। दूसरी बारकी रेलयात्रामें बन्नीको नियमानुसार बाक्सके भीतर बन्द करनेका प्रयत्न हुआ पर बाक्सके भीतर जानेको तैयार न हुआ। दयालु गार्डने अपने डब्बेमें पड़ी बेंचसे चेन द्वारा बांध देनेकी अनुमति दे दी। अभिभाविकाको भी साथ-साथ बैठना पड़ा। तीसरी बार इन्होंने लेडीज कम्पार्टमेंटके स्लीपर में अपने साथ सुला लिया। पहले तो वृद्ध महिला कुत्ते को देखकर परेशान हुई। गंदगीकी संभावनासे परेशान हुई। पर बन्नीके व्यवहारको देख सभी प्रसन्न हुईं। पर चौथी बारकी यात्रा दुखद रही। इस बार पार्सल वाले डब्बेमें रखे डाग कोचमें बन्नी बन्द रहा। बक्सा खुलतेही बन्नी अपनी अभिभाविकाकी खोजमें निकल पड़ा। इनके पहुंचनेसे पहलेही वह दूर निकल गया। पटरियोंसे होकर दूर तक खोज की। बन्नी नहीं मिला। पुन: व्यथित होकर अभिभाविकाने अपने संबंधीके साथ सुदूर रामनगरमें ढूंढना शुरू किया। नौजवान सरदार ने कुछ बताया। फिर सूचना पाकर पुलिसकी सहायता से एक नि:संतान महिलाके पाससे प्राप्त किया। सरदार बलविन्दरकी अपनी समस्या थी निसंतान महिला की अपनी समस्या थी। इन दोनों प्रसंगोंसे कथानकका सामाजिक सन्दर्भ विस्तृत होताहै।

लेखिकाने सहज संयमित ढंगसे बन्नीके कामभाव और कामतृप्तिका वर्णन कियाहै। जूली और जैनी नामक कुतियोंसे उसका काम व्यवहार मर्यादित ढंगसे सरस होगयाहै। और उसकी सम्मान भावनाका चित्रण कम रोचक नहीं है। पड़ोसके जन्मदिवसके समारोहमें खुद पहुंचकर सम्मान पानेकी इच्छा अद्भुत है। अभिभाविका नहीं ले गयीथी। इसलिए उसका क्रोध होना और फिर ग्लानि होना कितना मानवीय और संवेदनात्मक है। घरमें आये सम्बन्धियोंके बच्चोंसे अपनापन और विनोदप्रियता बन्नीकी अपनी विशेषता है। अतिथियोंके सत्कारके लिए आगे आना और अवांछनीय अतिथियोंको दुत्कार देना—जैसे दाई जानकीके बच्चेके जन्मपर हिजड़ोंको भगा देना कितनी अच्छी परख और समझ है। और बुढ़ापा आनेपर जीवनके मोहसे मुक्त होना और अन्नजल छोड़कर संथाराके समान आध्यात्मिक मृत्युका आवाहन अभिभाविकामेंअथाह दर्द पैदाकर देताहै। और इस पीड़ामें लेखिका कह उठतीहै—जो प्राणी उससे (मृत्यु) भयभीत नहीं होता, वह पारगामी होताहै।

आदि मानवके अन्यतम सहयोगी कुत्तेके प्रति आधुनिक युगमें ऐसी संवेदना तथा चिन्तना मानवीय सहज वृत्ति तथा सहज बुद्धिको समझना और उसे संस्कारितकर एक गरिमा प्रदान करना—इस उपन्यासका लक्ष्य है। इसमें डॉ. दुबे सफल हुईहैं। ☐

खूंटे[1]

लेखक : डॉ. कश्मीरीलाल
समीक्षक : डॉ. भगीरथ बड़ोले

'खूंटे' लेखककी तीसरी औपन्यासिक कृति है। 'सत्यके गांव' तथा 'चक्रव्यूह' के उपरांत प्रकाशित इस तीसरी कृतिसे प्रतीत होताहै कि डॉ. कश्मीरीलाल पेशे से प्राध्यापक होकर भी मूलत: एक स्वाभाविक रचनाधर्मी हैं। वस्तुत: रचनाधर्मी होनेकी पहली शर्त यही है कि किसी सहज चेतनासे प्रेरित होकर युगीन चुनौतियोंका निर्भीकतासे साक्षात्कार किया जाये तथा दूसरी यह कि सत्यको अनावृत्त करना एवं दूसरोंको उसका साक्षात्कार कराना लेखनका मूल लक्ष्य हो। प्रसन्नताकी बात है कि डॉ. कश्मीरीलालके लेखनमें ये दोनों ही बातें हैं, जो उनकी लेखन-क्षमता तथा भविष्यकी संभावनाओंको व्यक्त करतीहैं।

डॉ. कश्मीरीलालकी दृष्टि मूलत: प्रगतिशील चेतनाको लेकर चलीहै। इसीलिए उन्होंने आधुनिक जीवन स्थितियोंपर सामाजिक दृष्टिसे प्रबल प्रहार कियेहैं। यह सत्य है कि उपन्यासोंकी विषय वस्तुका संबंध सामाजिकतासे अधिकाधिक संबद्ध होनाहै, अत: उसका फलक सामान्यसे अधिक स्वीकृत किया गयाहै। डॉ. कश्मीरीलालने अपने मनमें समाई इस सामाजिक चेतनाको ही वर्ण्य विषयका आधार बनायाहै और उपन्यासोंकी सफल संरचना कीहै। प्रगतिशील चेतनासे युक्त इस सामाजिक दृष्टिका परिणाम उनके प्रत्येक उपन्यासमें स्पष्ट देखाजा सकताहै।

प्रस्तुत उपन्यास 'खूंटे' इसी सामाजिक चेतनाको

---

१. प्रका. : दिनमान प्रकाशन, ३०१४, चर्खेवालान, दिल्ली-११०००६। मूल्य : ५०.०० रु.।

लेकर संरचित एक ऐसा उपन्यास है, जिसमें 'ढाबा-संस्कृति' को प्रत्यक्ष विषय बनाकर परोक्षतः आधुनिक सामाजिक जीवनमें समर्थ तथा सर्वहारा वर्गके संघर्ष की स्थिति-गतियोंको चित्रित किया गयाहै। यद्यपि इसमें वर्ग मनोवृत्तिका चित्रण है; तथापि यह कृति कहीं भी नारेबाजीके ढकोसलोंको ढोये बिना जीवनके कटु यथार्थको जीवंततासे अभिव्यक्त करतीहै। यथार्थ का ऐसा वस्तु और भाषाशिल्पमें एक नयी ताजगी लेकर आद्यंत मुखरित है।

प्रस्तुत वस्तुके अनुसार पितृहीन बालक सत्तू उर्फ सत्यपाल अपनी मां की बदचलनीसे दुखी होकर घरसे भागकर नत्थूके ढाबेमें शरण लेताहै। किन्तु यहां नित्य प्रति अपमानजनक फटकार तथा असह्य मार सहकर उसके भीतर विद्रोह पनपने लगताहै। वह जानताहै कि नत्थू दुश्चरित्र एवं राक्षसी व्यक्तित्व है, इसीलिए वह अनेक बार उस घेरेसे छूटनेकी कोशिश करताहै और हर बार असफल होकर अधिक अत्याचार सहने को विवश होताहै। किन्तु एक दिन जब नत्थू मर जाताहै, तो शोषण चक्रमें निरंतर अपमानके घूंट पीता हुआ सत्तू अंततः 'सत्तेशाह' बनकर 'नत्थू-संस्कृति' को ही अपना लेताहै।

इस प्रकार लेखकने अत्यंत रोचक रीतिसे सत्तूके जीवनकी कथा प्रस्तुत कर युगके यथार्थ तथा सामंती संस्कृतिके चलनको उद्घाटित कियाहै। जीवनके वस्तुतः यथार्थपर आधारित यह वस्तु इस सत्यको भी उद्घाटित करतीहै कि जो मनुष्य सर्वहाराके रूपमें पशुकी जिंदगी जीनेको विवश है, वही समर्थ बनकर धूर्तताकी ऊंचाइयोंको छूने लगताहै। अर्थात् जबतक वर्गोंकी स्थिति है, शोषणका चक्र अनवरत जारी रहेगा, जिसके द्वारा नत्थू और उसके बाद सत्तू जैसे लोग दूसरोंके दुःखमें अपना सुख खोजते रहेंगे तथा सर्वहारा वर्गका मनुष्य किसी निरीह पशुकी तरह शोषणके खूंटेसे निरंतर बंधा रहेगा। इस खूंटेसे वह जबभी खुलेगा तब सिर्फ जुतनेके लिए। अन्यथा खूंटा तोड़कर भागना तो उसके लिए असंभव है। बाल मजदूरों तथा नारी जीवनकी दुर्दशाके साथही मूल्य-हीन समर्थ लोगोंके शोषणके यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता हुआ प्रस्तुत उपन्यासका शीर्षक 'खूंटे' इसी अर्थमें सार्थक है।

इसका अर्थ यह नहीं कि यह उपन्यास समर्थ वर्गके शोषणको वकालत करताहै, बल्कि उनके दुष्कर्मोंका यथार्थ जीवंत चित्र खींचकर विरोधमें किसी संघर्ष चेतना को जगानेके लिए प्रयासरत है। इसीलिए उपन्यासमें स्थान-स्थानपर इस प्रकारकी उक्तियां हैं जो स्थितियों का सही विश्लेषण कर प्रतिक्रिया ही उत्पन्न नहीं करतीं, अपितु विशाल जनचेतनाको उसके वास्तविक रूपमें जगानेमें समर्थ हैं। इसके अतिरिक्त कतिपय पात्र ऐसे भी हैं जो वर्गीय चेतनाके संघर्षको अपने कर्मों द्वारा मुखर करतेहैं। सत्तूको संरक्षण देते हुए गोगाका नत्थूसे टकराना तथा अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कराना, संघर्ष एवं विजयकी इसी साधनासे संबद्ध प्रकरण है। इसी प्रकार अंजूका विद्रोह तथा स्वतंत्रताके लिए कीगयी उसकी उद्घोषणा-शोषण-संस्कृतिके विरोधमें नया जन्म लेती जनचेतनाका ही रूप है।

समर्थ वस्तु-पक्षकी भांति इस उपन्यासका शिल्प पक्ष भी अत्यंत सशक्त है। सबसे प्रभावी है इसकी भाषा। चूंकि 'ढाबा संस्कृति' को प्रतीकात्मक आधार बनाकर वस्तुको प्रभावी तरीकेसे अभिव्यक्त किया गया है, अतः तदनुकूल पंजाबीके प्रचलित रूपको अपनाकर जहां वस्तु तथा पात्रोंको वास्तविकताके करीब खींचा गयाहै, वहीं वातावरणकी जीवंततामें भाषाका यह रूप अत्यंत कारगर सिद्ध हुआहै। करुण विवश जीवनके साथ बर्बर विलासी जीवनके चित्र उकेरते हुए लेखकने ही प्रयुक्त भाषाको समर्थ व्यंग्यात्मक तेवरसे संयुक्त कियाहै। पंजाबी भाषाके उच्चरित रूपको व्यंग्यात्मक लहजेमें प्रस्तुत कर लेखकने वस्तुतः अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें भाषाका संपूर्णतः सहयोग लियाहै। कथनकी इस अनूठी शैलीके कारण प्रस्तुत उपन्यास 'खूंटे' विशिष्ट आकार ग्रहण कर अपनी रचनात्मक सत्ता और शक्तिको प्रमाणित करताहै। ☐

पूर्णताकी खोज[१]

लेखक : श्यामनारायण विजयवर्गीय
समीक्षक : सुरेन्द्र तिवारी

नारी पुरुष संबंधोंको प्रत्येक लेखक अपनी-अपनी दृष्टिसे विश्लेषित करता रहताहै, उसमें नये नये आयाम खोजताहै। 'पूर्णताकी खोज' में श्यामनारायण विजयवर्गीयने भी ऐसाही प्रयास कियाहै। फिरभी उनके उपन्यासके कथ्यमें कोई नवीनता नहीं है परन्तु शिल्पकी नवीनताके कारण उपन्यास पढ़नेमें रोचक बन पड़ाहै।

उपन्यासमें कहानीका जो तानाबाना है, वह चिरपरिचित है। दीपक कवि है और कविताको ही अपने जीवनका ध्येय और उद्देश्य मानताहै, इस कारण न तो नौकरी करताहै न घरके कामोंमें ही उसका मन लगताहै। उसकी पत्नी निशा एक साधारण घरेलू औरत है जो जीवनकी सच्चाइयोंसे जूझतीहै, आर्थिक तंगी को दूर करनेके लिए खुद नौकरी करतीहै। दीपक भावनाओंमें बहनेवाला भावुक और अव्यावहारिक व्यक्ति है जबकि निशा अत्यधिक व्यावहारिक, जीवनके ऊंच-नीचपर ध्यान रखकर जीनेवाली। दीपक अपनी पत्नी की एक प्रकारसे उपेक्षा ही करता रहताहै क्योंकि वह उसके साहित्यिक रुचियोंके अनुकूल नहीं है। साहित्यिक कार्यक्रमोंमें कभी भाग नहीं लेती। दीपकका झुकाव ज्योतिकी ओर है जो एक धनी महिला होनेके साथ-साथ कविताएं भी लिखतीहै, दोनोंके बीच गहरी मित्रता है। समय-असमय कभी भी दोनों एक-दूसरेके पास आते जातेहैं। निशा यह सब देखतीहै और ईर्ष्या में घुलती रहतीहै। पति-पत्नीके बीच दूरियां बढ़ती जातीहैं, यद्यपि दीपक इस बातको स्वीकार नहीं करता। एकबार ज्योतिको किसी कामसे दिल्ली जाना पड़ताहै तो वह दीपकको भी अपने साथ ले जातीहै। इस बातको निशा सह नहीं पाती और आग लगाकर आत्मदाह कर लेतीहै। दीपक इससे कुछ अस्तव्यस्त अवश्य होताहै किन्तु ज्योतिका साथ नहीं छोड़ता और कुछ समय बाद दोनों एक हो जातेहैं।

बहुत ही साधारण कथ्यको लेखकने अपने उपन्यासका आधार बनायाहै और इसमें स्थान-स्थानपर सूक्तियों और उपदेशोंका सहारा लेकर नारी-पुरुष या पति-पत्नी संबंधोंके सही-गलत पक्षको व्याख्यायित भी कियाहै। किन्तु इन बातोंसे भी उपन्यासका कोई स्थायी प्रभाव नहीं बन पाता। चूंकि उपन्यासमें एक कविकी कथा है और उसके संपर्कमें आनेवाले भी अधिकतर कवि ही हैं, निशाको छोड़कर इस कारण काव्यात्मक वातावरणका निर्माण खूब किया गयाहै। छोटी-बड़ी प्रत्येक बातपर कोई न कोई कविता सुनाता हुआ दिखायी देताहै। लेखकने प्रेमचंद विजयवर्गीयकी कविताओंका उपयोग अपने गद्यके साथ कियाहै और इसे एक प्रयोग मानाहै। दूसरे कवियोंकी कविताओंका उपयोग पहले भी उपन्यासकार करते रहेहैं, किन्तु एक-दो कविताओंका ही, यहां लेखकने एक ही कविकी लगभग दो दर्जन कविताओंका उपयोग कर डालाहै। प्रेमचंद विजयवर्गीयकी कुछ कविताएं बहुत अच्छी हैं, अलगसे पढ़नेपर उनका प्रभाव भी बनताहै परन्तु उपन्यासमें जिस प्रकारकी स्थितियां गढ़कर उनका उपयोग किया गयाहै उससे उनका प्रभाव घटा ही है। यहांतक कि दीपक जब बलात् अपनी पत्नीको भी अपनी कविताएं सुनाने लगताहै तो बहुत हास्यास्पद हो उठताहै। एक स्थानपर वह कहताहै—"निशा क्या तुम मुझे पहचानती हो? मैं कौन हूं? मेरा क्या अस्तित्व है? मेरे साथ तुम्हें कैसा व्यवहार करना चाहिये? निशा, तुम समझती क्यों नहीं, मैं कवि हूं।" और पत्नीकी भावनाओंको समझे बिना वह उसे एक कविता सुनाने लगताहै—'अंबर रस बरसे'। अब ऐसी स्थितिमें अच्छी से अच्छी कविताकी क्या गति हो सकतीहै, विचारणीय है।

जहां दीपक अपनी कविता और काव्य-प्रतिभाको लेकर आसमानमें उड़ता हुआ दिखायी देताहै, वहीं निशा बहुत ही व्यावहारिक ढंगसे सोचती-विचारती दिखतीहै—"समझमें नहीं आता कि सारी जिंदगी कैसे कटेगी। आज तो मैं नौकरी करतीहूं इसलिए घरका खर्चा भी किसी-न-किसी प्रकार चल जाताहै। कल बच्चे होंगे, परिवार बढ़ेगा, तब कैसे काम चलेगा। समझमें नहीं आता। इनसे कमानेको कहो तो सुनते नहीं हैं, झगड़ेपर उतारू हो जातेहैं। कवि-कवि-कवि होनेसे कोई आर्थिक समस्या तो हल होनेवाली नहीं है,

---

१. प्रका. : प्रकाशन संस्थान, ४७१५/२१, दयानन्द मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १५९; डिमा. ९१; मूल्य : ७५.०० रु.।

रोटीकी समस्या तो सदैव मुंह बाए खड़ी ही रहेगी।' (पृ. ३६)।

पति-पत्नीके बीच जो विषमता है, वैचारिक भिन्नता है, मानसिक अलगाव है, उसकी परिणति बहुत भयानक होतीहै, निशाके आत्मदाहके साथ। उपन्यास को एक वैचारिक धरातलपर छोड़नेका अवसर यहां उपन्यासकारके हाथमें था, किन्तु यह अन्त शायद उसकी दृष्टिमें अपूर्ण होता, इस कारण फिल्मी अंदाजमें अंतमें दीपक और ज्योतिका मिलन उसे जरूरी लगा। इस बिन्दुपर आकर उपन्यास बहुत ही हल्का पड़ जाता है।

उपन्यासके पच्चीसवें परिच्छेदमें लेखकने साहित्य, समाज, प्रकाशन और लेखक सहकारी संगठनोंकी चर्चा करते हुए कहाहै, "गरीबों और अमीरोंमें जिस प्रकार अन्तर है, ठीक उसी प्रकार साहित्य जगत्में भी जिसके पास पूंजी है—जिसके पास पैसा है, जमीन-जायदाद है और जिसके पास अनेक प्रकारके पैसेके स्रोत हैं, ऐसे साहित्यकार ही भारतमें अपना साहित्य दम-खम से छपा सकतेहैं। भारतमें कुछ समयसे एक ऐसा साहित्य आ रहाहै जो निर्माणात्मक नहीं है, जो अच्छा नहीं है, जिसे हम सत्यं, शिवं, सुंदरंकी साधना नहीं कह सकते, वह निरा सेक्सपर आधारित है, औद्योगीकरणकी उपज है, भोगवादी है, विनाशक है।" (पृ. १४७)।

उपन्यासके प्रारंभमें स्व. प्रभाकर माचवेकी भूमिका है जिसमें संक्षेपमें ही, उपन्यासका उन्होंने बहुत ही सही मूल्यांकन कियाहै, कहतेहैं, "इश्ककी तालाबेली या सच्चे प्रेमके संकटका और उससे उत्पन्न पीड़ाकी इस पुस्तकमें झलक तो है, पर झुलसन नहीं है। समस्या उठायी गयीहै, उसकी परिणति नहीं होती। आदर्श और यथार्थकी टकराहट 'प्रेम' के मामले में इस पुस्तकमें नहीं होती, अर्थके मामलेमें प्रकाशक प्रसंगमें अवश्य है। ××× पुस्तकमें उस करुणाकी उत्पत्ति होती हुई मुझे नहीं दिखी जो मानवताके लिए प्रेरित करे।"

आशा है अपने अगले उपन्यासमें विजयवर्गीयजी इन बातोंपर भी अवश्य ध्यान रखेंगे। □

कहानी : रेखाचित्र

अब चिट्ठी कभी नहीं आयेगी[1]

कहानीकार : कर्तारसिंह दुग्गल
समीक्षक : मधुरेश

कर्तारसिंह दुग्गलकी कहानियां अपने उन समकालीन लेखकों, मुल्कराज आनंद और खुशवंत सिंह, की कहानियोंसे भिन्न हैं जो पंजाबी होते हुएभी अंग्रेजी में लिखतेहैं। दुग्गलकी कहानियां पश्चिमी पाठकों वर्ग को दृष्टिमें रखकर भारतीय समाजशास्त्रीय ब्योरोंसे बोझिल नहीं हैं। उनकी कहानियां एक लंबे काल-खण्ड में अधिकांशत: 'भारतीय परिवेशमें 'भारतीय पाठकोंके लिए लिखी गयी कहानियां हैं। परन्तु उनकी कहानियां अपने उन समकालीन लेखकोंकी कहानियोंसे भी भिन्न और अलग है जो पंजाबी और उर्दू में लिखते रहे हैं। दुग्गलकी कहानियां न तो राजेंद्रसिंह बेदीकी कहानियोंकी भांति असाधारण कला-सजगता और कहानीकी नितान्त संश्लिष्ट बुनावटको अपनानेके प्रयत्नोंका परिणाम है, और न ही इस्मत चुगताई और मंटोकी कहानियोंकी भांति तीखी राजनीतिक चेतना

१. प्रका. : भारतीय ज्ञानपीठ, १८ इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११०००३। पृष्ठ : २८३; डिमा. ९२; मूल्य : ८०.०० रु.।

और शारीरिक उत्तापकी कहानियां हैं। यद्यपि, विभाजन की पृष्ठभूमि और शारीरिक संदर्भोंको लेकर अपने इन समकालीनोंके समान ही दुग्गलने भी लिखाहै। दुग्गल की कहानियां प्रायः असाधारणता और असामान्यता के सहारे विकसित होती कहानियां नहीं है। उनकी सबसे बड़ी शक्ति साधारण और सामान्य जीवनके अंकनमें हैं—यद्यपि साधारणका आकर्षण ही जब-तब उनकी एक प्रबल सीमा भी बन जाताहै। इन कहानियोंका रचना-काल पर्याप्त लंबा है। उनकी पांच दशकोंकी रचनात्मक सक्रियताका साक्ष्य इन कहानियोंमें विद्यमान है। साझा पंजाब, विभाजन, पाकिस्तानसे हुए युद्ध और बांग्लादेशके निर्माणकी पृष्ठभूमिपर उनकी बहुत-सी कहानियां हैं। वैसे पश्चिमी समाजकी पृष्ठ-भूमि और हवाई-यात्राओंके बीच उपलब्ध अनुभवों और पात्रोंपर भी उन्होंने कुछ अच्छी कहानियां लिखी हैं। सामाजिक-राजनीतिक संदर्भोंको आक्रोश और आक्रामकताके साथ अंकित करनेमें उनकी अधिक रुचि नहीं है। वर्जित और विवादास्पद प्रसंगोंसे वे अपनेको बचातेहैं इसलिए उनकी कहानियां एकाएक ध्यान नहीं खींचती। वे हल्की और धीमी आगपर सिकी रोटियां हैं जो आगकी झुलस और लपटकी तेजीसे पड़े काले चकत्तोंसे प्रायः मुक्त हैं।

दुग्गलकी कहानियोंमें जीवनका फैलाव उनकी सबसे बड़ी शक्ति है। निम्न मध्यवर्गीय जीवन, पढ़ी-लिखी नौकरीपेशा स्त्रियां, आदिवासी और जरायम पेशा समाजके संदर्भ, विस्थापनका दर्द, पर्यावरण और मानवीय शांतिका द्वन्द्व और भारतीय समाजमें स्त्रीकी स्थिति आदिसे दुग्गलकी कहानियोंकी मुख्य अन्तर्वस्तु का संकेत मिलताहैं। पशुओंको लेकर भी उन्होंने मान-वीय संदर्भोंको रेखांकित करनेवाली कहानियां लिखीहैं। 'लेजीकी एक सुबह' और 'शहरजाद' उनकी ऐसी ही कहानियां हैं।

अपनी शीर्षक कहानी 'अब चिट्ठी कभी नहीं आयेगी' में दुग्गलने कलाके प्रति लेखकके दायित्वका प्रश्न कहानीके ही संदर्भमें उठायाहै। लेखककी दहेज पर लिखी एक कहानी पढ़कर एक पाठिका उससे अपना तादात्म्य अनुभव करके उसे सराहनापूर्ण पत्र लिखती है। उसके पत्रमें उसके वर्तमानके साथ ही उसके भविष्य पर भी काली छाया-सी मंडराती दिखायी देतीहै। इस पाठिकाकी प्रतिक्रिया और उससे होनेवाले पत्रा-चारसे, एक लेखकके रूपमें से, उसे अपना दायित्व और गंभीर लगने लगताहै क्योंकि उससे यह विश्वास पैदा होताहै कि लेखक जो लिखताहै उसकी एक सामा-जिक भूमिका होतीहै और उसका अच्छा-बुरा प्रभाव समाजपर पड़ता ही है...'बार-बार मेरा मन कहता—कितनी भारी जिम्मेदारी होतीहै एक लेखककी। और कभी-कभी हम लोग, जिनके हाथमें कलम होतीहै, किस प्रकार दायित्वोंकी उपेक्षा कर जो मनमें आताहै लिख देतेहै..' (अब चिट्ठी कभी नहीं आयेगी, पृ. २२) उसी की भांति उसकी भाभीको भी जब-तब मायके जाना होताहै। मायका जैसे पतिकी मांगपर मांग पूरी करने का एक प्रतीक बन जाताहै और वह इस दुष्चक्रको तोड़नेके लिए एक बहुत ही कठोर कदम उठातीहैं, क्योंकि मुक्ति पानेके लिए किसीको तो आगे आनाही है। उसकी अपनी मां और भाई जब उसकी भाभीको मायके भेजकर इस दुष्चक्रको बनाये रखना चाहतेहैं, इसीलिए उसे स्वयं भी मायके भेजा गयाहै, तो वह अपने जीवनकी बलि देकर इस दुष्चक्रको तोड़नेका निर्णय लेतीहै। शुरुमें थोड़े समय तक लेखकको आशा बंधी रहतीहै कि हो सकताहै कि समय आनेपर उसने अपना निर्णय बदल दियाहो, कोई ऐसा कारण पैदा हो गयाहो जिससे उसका निर्णय प्रभावित हुआहो, परन्तु ऐसा कुछ नहीं होता। धीरे-धीरे उसे विश्वास कर लेना होताहै कि अब वह नहीं है, अपने निर्णयको उसने पूरा कर लियाहै और उसकी चिट्ठी अब कभी नहीं आयेगी।

कर्त्तारसिंह दुग्गलकी कहानियां स्त्रीकी नियति को उसके सामाजिक-संदर्भोंमें परिभाषित करतीहैं। इसके साथही वे स्त्रीकी कोमलता और संवेदनशीलता को बहुत सहज और प्रभावी ढंगसे अभिव्यक्त करतेहैं। मूल रूपसे वे मानतेहैं, स्त्री बुरी नहीं होती। ऊपरी तौर पर बुरी समझी जानेवाली स्त्रीके हृदयमें भी प्रेम, कोमलता और अपनत्वकी स्रोतस्वनी छिपी रहतीहै। परन्तु कहीं भी वे स्त्रीके स्त्री होनेको नकारनेका अवैज्ञा-निक प्रयत्न नहीं करते। इस दृष्टिसे उनकी अच्छी और महत्त्वपूर्ण कहानियोंमें 'भगड़ो खसमपीटी', 'सोयी हुई हीर', 'गोमा भाभी', कुलसुम', 'करवा चौथ', 'सिगरेट पी रही अकेली उदास औरत', 'इन्दु सोच रहीथी' और इनसे थोड़ा अलग हटकर किंचित् रोमानी रंगमें लिखी गयी 'चांदनी रातका दुःखान्त' आदिका उल्लेख

कियाजा सकताहै । नाटकमें पहले बच्ची, फिर प्रेमिका और अंतमें मांकी भूमिका करनेवाली इन्दुको यह समझा लेनेमें कोई कठिनाई नहीं होती कि अपने घरमें उसकी मां भी पूरे जीवन नाटकही करती रहीहै । 'सोई हुई हीर' की बाल-विधवा देवकी भलेही डाक्टरके डार्क रूममें उसके स्पर्शकी प्रतिक्रियामें, उसे चांटा मार देती हो, लेकिन फिर इसी घटनासे जैसे उसके जीवनकी पूरी दिशा बदल जातीहै। उसके अंदर वर्षोंसे प्रसुप्त एक औरत जाग जातीहै और फिर वह उन वर्जित क्षेत्रोंकी यात्रापर निकल जातीहै, उससे पहले जिनके बारेमें वह सोचभी नहीं सकतीथी । 'सड़कके किनारे उसका घर होने' की व्यंजना वस्तुत: उसके उस प्रसुप्त यौवनका ही संकेत है जो हल्केसे स्पर्शसे जाग जाताहै और तब किसी शहगुजरकी घोड़ीपर बैठकर वह निकल पड़तीहै, जैसाकि देवकी करतीहै ।. .'गोमा भाभी' को लेकर कही गयी बस्तीवालोंकी बातें और बहुत कम बोलनेके अपने स्वभावके कारण उनका कभी कोई प्रतिवाद न किया जाना, उसके बारेमें अनेक प्रकारके भ्रमोंको जन्म देता है । उस सबके पीछे कहीं गहरे छिपी उसकी सन्तान-लालसाको लोग जैसे देख ही नहीं पाते जिसके कारण ही छूनेसे मैला ढोनेवाला अपना रूप लेकर वह किशूथोरीके साथ भाग आयीहै। कहानीके वाचक 'मैं' के प्रति उसका लगाव एक संतान जैसा ही है, जो कहीं उसके अंदरके शून्यको भरताहै । नम्बरदारके बेटेकी उसके द्वारा की गयी पिटाई अपनी आंखोंसे देखकर उसे थोड़ा आश्चर्य होताहै, पर गोमा भाभी उसे जिस प्रकार समझातीहै, उससे बहुत गहरे छिपी उसकी पीड़ा ही जैसे बाहर आ जातीहै. .'यदि घरवाला घर हो और न बेटा आंगनमें खेलता हो तो फिर औरत उस बेरीकी तरह होतीहै जिसके सायेमें लोग बैठतेहैं और जिसके बेर भी तोड़ ले जातेहैं ..' (पृष्ठ २२३) ।

'सिगरेट पी रही अकेली उदास औरत' तेहरानसे उसके —'मैं'— साथ हवाईजहाजमें बैठतीहै । उसके हाथमें पहना गया कड़ा देखकर वह उत्सुकतापूर्वक अनेक प्रश्न पूछतीहै । उसके द्वारा उसे एक सुरक्षा चिह्न बताया जाना उसे आश्चर्यसे भर देताहै । एथेंस पहुंचनेपर उतरते समय, उसके इसरार (आग्रह) पर भी वह अपना बैग उसे उठाने नहीं देती । बादमें विमान-परिचारिकासे उसे पता चलताहै कि वह एक बदनाम औरत है जो तस्करी तकमें लिप्त समझी जातीहै । सुरक्षा और आत्मीयताका संस्पर्श जैसे उसके अंदरकी बुरी औरतको दबाकर सतहपर एक अच्छी, नेक और स्नेहपगी औरतको खड़ी कर देताहै । 'चांदनी रातका दुःखान्त' इस सत्यको रेखांकित करतीहै कि एक बारका प्रेम कभी मरता नहीं है । बीस वर्ष बाद, जब उसकी अपनी बेटीका विवाह होनेको है, बेटीके द्वारा काम करते हुए उसके कंधेपर रखदी गयी मुक्केश की चुन्नी और बेध्यानीमें टूटनेसे बचानेके लिए उसके सिरहाने उतारकर रखी गयी लाल चूड़ियां वह अपने हाथमें डाल लेतीहै । हर पूनोकी रात सदाकी भांति 'उसके' आनेकी खटखटाहटपर वह जैसे नींदमें चलकर 'उसके पास पहुंच जातीहै—जो पिछले बीस वर्षोंमें उसने उसके आग्रहके बावजूद कभी नहीं कियाथा । जैसे एक नशेकी हालतमें वह रात भर खेतोंमें उसके साथ रहतीहै । सुबह पड़ोसी और चौकीदार मुक्केशकी चुन्नी के कारणसे सारी तोहमत उसकी बेटीके सर मढ़ देते हैं । रत्ना तो टूटी हुई लाल चूड़ीका टुकड़ा भी, खेतसे उठाया हुआ, दिखा देताहै । सोकर उठनेपर फिर सिर-हाने रखी चूड़ियोंको मिन्नीने पहन लियाथा और सब गिननेपर वे सचमुच बारह की जगह ग्यारह ही निकलतीहैं । सारी बातें सुनकर बेटीके ससुरालवाले भी पहुंच जातेहैं—वह एक शब्दभी मुंहसे निकाले बिना गुमसुम-सी पासके कुंएमें छलांग लगा लेतीहै । लेकिन चुन्नी और चूड़ियोंके संयोगके साथ ही, बीस वर्ष तक प्रेमीको 'न' कहनेवाली मालिन, बेटीके विवाहसे सिर्फ दो दिन पहले यह सब जो करतीहै वह बहुत विश्वसनीय नहीं लगता ।

अपने अनेक समकालीनोंकी भांति दुग्गल किसी विशेष क्षेत्रके कहानीकार नहीं हैं । उनकी कहानियोंमें जीवनका फैलाव और मनुष्यकी मूल अच्छाईमें उनका विश्वास उन्हें काफी कुछ प्रेमचंदके निकट खड़ा करता है । इस फैलावकी दृष्टिसे उनकी कुछ उल्लेखनीय कहानियोंमें से 'नया-घर', 'मंजीरा कहां जाये ?', 'मोतियों वाले' और 'म्हाजा नहीं मरा' आदि कहानियों की चर्चा कीजा सकतीहै । जैसाकि इस संग्रहकी भूमिका लेखिका श्रीमती विजय चौहानने संकेत कियाहै दुग्गल के मंजीरा और म्हाजा दोनों ही शहरी अप-संस्कृतिके हमलेके शिकार हैं जो उनकी मूल आस्था और जीवन-दृष्टिमें एक भयंकर तनाव पैदा करतीहै । अपने घोड़ेसे बतियाना मंजीरा जमानेके इस बदलावको बहुत

बारीकीसे रेखांकित करताहै । जिन रायसाहब किशोरीलालकी बेटी लिलीको वह अपने तांगेपर बिठाकर वर्षों स्कूल पहुंचाता रहा, एक संरक्षकके गर्वसे उसीको आज पूरी रातके लिए तांगा मांगते देख म्हाज के अंदर कुछ चटखने लगताहै । अपनी और अपने घोड़ेकी दुर्दशासे अधिक दुःख उसे इस बदलावका है और वह लिलीको तांगेसे उतार देताहै । इस घटित होते परिवर्तनपर उसका कोई वश नहीं है, उसके लिए यह संतोष ही काफी है कि उसमें वह किसी रूपमें स्वयं सहायक नहीं है । मंजीरा बिरहोर आदिवासी है जो एक ओर यदि इस शहरी संस्कृतिके हमलेंसे त्रस्त है तो दूसरी ओर अपने जंगल, अपनी जड़ोंसे कट जानेका दर्द उसकी आत्माको गहरे सालताहै । उसके कबीलेने पहली गलती तब कीथी जब उसके आदि-पुरुषने घोड़े की टांगसे बेलेंके गुच्छे अटकनेपर उन्हें निकालनेके लिए अपना घोड़ा रोकाथा और फलस्वरूप तीन भाईयोंसे भटककर आजतक उसकी संतान उस दर्दसे उबर नहीं सकीहै । उस कबीलेकी दूसरी गलती अपने जंगल छोड़कर सरकार द्वारा दिये खपरैलके मकान स्वीकार करना थी । अपने कुंभमें एक बूंद पानी चले जानेपर उसने तीस दिन प्रायश्चित कियाथा —लेकिन इन सरकारी मकानोंका क्या किया जाये जो बारिशमें अंदर-बाहर एकसे रहतेहैं । सरकार और उसके तंत्रके लिए कहीं कोई प्रायश्चित नहीं है । भीगती, ठिठुरती और पीठपर बच्चे बांधे बाहर बारिश में खड़ी औरतें उनके विस्थापनकी त्रासदीको गहरी मार्मिकतासे अंकित करतीहैं । 'नया-घर' विभाजनकी पृष्ठभूमिपर है जिसे पढ़कर यूरोपके संदर्भमें नात्सी आक्रमणकी बर्बरतापर लिखा गया निर्मल वर्माका रिपोर्ताज 'लिदित्से की एक शाम' याद आताहै । रावलपिण्डीमें अपना मकान छोड़कर उनके परिवारको 'भारतमें अलाटमेंटका जो घर मिलताहै, उसके खोले जानेपर जिन्दगीकी थरथराहटके संकेत बहुत गहरे जाकर छूतेहैं. . इस नये घरमें रहनेवाला मुस्लिम परिवार भी संभवत: वैसे ही एकाएक सब कुछ छोड़कर भागाहै जैसे वे लोग रावलपिण्डीसे भागेथे । काममें लायी गयी चीजोंकी तफसील, खानेकी मेजपर चुना हुआ खाना, बच्चेकी छोटी-सी कुर्सीके सामने प्लेटमें पड़ें चावल, दही और चम्मच, अंगीठीपर रखी बारह बजकर दस मिनटपर रुकी पड़ी घड़ी, मुसल्ला और करीनेसे सजी कुरान शरीफकी सुनहरी जिल्दें —और इस सबको देखकर बूढ़ी मांजी की रह-रहकर ली जानेवाली ठंडी सांसोंकी आवाज उस घरके सन्नाटेमें साफ सुनी जा सकतीहैं ।...

कर्त्तारसिंह दुग्गलकी ये कहानियां जहां उनकी अपनी लंबी रचना-यात्राका साक्ष्य बनकर सामने आती हैं, वहीं इनसे पंजाबी और किसी हदतक समूची भारतीय कहानी-यात्राके भी विभिन्न पड़ावोंको देखा.पहचाना जा सकताहै । जीवनके सीमाहीन फैलाव और यथार्थवादी विश्व-दृष्टिसे शक्ति पाकर ही कहानी अपनेको सार्थक करतीहै । दुग्गलकी कहानियोंका प्रभाव ऐसाही है । □

धाराके विरुद्ध[1]

लेखिका : प्रभा सक्सेना

समीक्षक : डॉ. सुमति अय्यर (स्वर्गीय)

'धाराके विरुद्ध' कुल पांच कहानियोंका संकलन है । एक लंबी कहानी 'अपने धरातल तक' को छोड़कर, शेष चारों कहानियां औसत महिला लेखनके चौखटसे अलग उठतीहैं । देश, समाजकी वर्तमान चिन्ताओं और प्रश्नोंसे जूझती ये कहानियां लेखिकाकी चिन्तन दिशाकी ओर संकेत करतीहैं । पर जाने क्यों, पूरा संग्रह पढ़ जानेके बाद, जो प्रभावान्विति रचनात्मक वैशिष्ट्यको लेकर उपजनी चाहियेथी, वह उपज नहीं पायी, पर आश्वस्ति अवश्य मिलतीहै । इस दृष्टि से यह संकलन महत्त्वपूर्ण हो सकताहै ।

संग्रहको पढ़नेके बाद लगा कि कहानियां चाहे आंतरिक संसारकी हों, या बाहरी विघटनकी, कथ्यको संप्रेषित करती भाषा, शिल्प और रचावका बहुत महत्त्व होताहै । लेखिकाके पास विषयकी अच्छी पकड़ है, चिन्तनकी गहराई है, भाषाकी संवेदना भी, पर कहीं कुछ है, जिसे शायद कसाव कह सकतेहै । उसके बिना प्रभाव अधूरा या इकहरा रह जाताहै, कहानीमें एक तारतम्य, एक लय होनी चाहिये जो रेशेकी भांति पूरी कहानीमें विद्यमान होताहै, और अंततक पहुंचते-

---

१. प्रका : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२ । पृष्ठ : ८२; क्रा. ९२; मूल्य : [illegible] रु. ।

पहुंचते पाठकके हाथमें वह रेशा होतीहै, यही एक बिखराव है, जिसे यदि खूबसूरतीके साथ गढ़ा जाता तो निश्चित रूपसे ये महत्त्वपूर्ण कहानियां होतीं।

'अपने धरातल तक' एक सुन्दर कहानी है। नारी के भीतरी द्वन्द्व, शंकाओं, आशंकाओं, नैतिक सामाजिक स्वीकृति और इन सबके बीच झूलते मानसिक सत्यकी कहानी है। प्रतिमाका आत्मविश्वास, अभिभूत करताहै। क्षितिजको लेकर बुना गया सपना सहज था, पर कहां बुन पातीहै वह, अपनी ही शंकाओं-सोचोंमें कैद वह छिटकती जातीहै। सह-अस्तित्वसे लेकर हाथ पकड़नेकी संवेदना तकको जीती प्रतिमा, प्रेम, वासना, विश्वास, स्वीकृति, आश्वस्ति जैसे शब्दों की तहसे निकलती प्रतिमा, क्षितिज और प्रतीक, आसपासके जीवन्त पात्र लगतेहैं। पर सोचका भटकाव प्रतिमामें ही नहीं, बल्कि पूरी कहानीमें है। भटकती कहानी कुछ नहीं छोड़ पाती, पाठकोंके लिए कि वह थाह लेकर किसी निष्कर्षपर पहुंच सके। एक बात जो बीचमें खटकतीहै, वह है चिन्तनकी अंतर्दृष्टिको उबाऊ ढंगमें बीचबीचमें डायरीके अंशके रूपमें कह देना। कथाके प्रवाहमें यदि ये सहायक होते तो उपयुक्त होता। इस कारण इनका प्रभाव उतना नहीं पड़ पाया है, जो वांछित था।

'आमने-सामने' 'खंडित प्रतिमाओंके सायेमें' और 'धाराके विरुद्ध' तीनों ही कहानियां स्वप्न और स्वप्नदंश, मोह और मोहभंगकी कहानियां है। पीढ़ियां अलग हैं। 'आमने सामने' की श्यामा दी 'खंडित प्रतिमाओंके सायेमें' का विशाल, और 'धाराके विरुद्ध' का 'बाबू'—तीनोंही आस्था और विश्वासको लेकर चलतेहैं। उनके पास आदर्श हैं, सपने हैं। पर राजनीति-प्रधान होताजा रहा समाज एक एक कर उनके सपनेको संवेदनशून्य होकर तोड़ताजा रहाहै। वे मुखर विद्रोह नहीं कर पाते क्योंकि उनके आसपास कोई ऐसा नहीं जो उनके साथ उठकर खड़ा होसके। एक हाथमें सपना और एक हाथमें नारे लेकर चलनेको विवश हैं। यहां आदमी पूरे रूपमें मरकर जीनेको विवश है। या कि 'घरमें होताहै पर घरमें नहीं है, या देशमें होताहै, तो देशमें नहीं है।' एक दिशाहीन जहां केवल समझौते, व्यावहारिकता, और संवेदनशून्यताके बलपर ही जिया जा सकताहै।

'आमने सामने' की चंचला दी और 'साये...' का प्रशांत, और 'धाराके विरुद्ध' का रमन, ये तीनों ही, इसी मानसिकताकी उपज है। जो केवल आगे बढ़ना चाहतेहैं, 'स्व' के घेरेमें पूरा सपना टूट जाताहै, और इस प्रक्रियामें पूरी आस्था खंडित होतीहै। जन प्रतिनिधि जनको नहीं, अपनेको लेकर चलताहै। स्वतन्त्रताके बादकी यही स्थिति है। संपूर्ण मोहभंगकी इस स्थितिको आकर्षक ढंगसे पकड़ाहै 'धाराके विरुद्ध' में, धाराके विरुद्ध जीनेका निर्णय आश्वस्ति देताहै। यह आश्वस्ति शेष कहानियोंमें नहीं हैं।

भाषाका सामर्थ्य होते हुएभी शिल्पका कसाव न होनेके कारण अच्छी रचना भी प्रभावहीन हो जाती है।

कथ्यके स्तरपर आश्वस्त करती ये कहानियां कहानीकी सम्पूर्णताके स्तरपर भी आश्वस्त कर सकतीं तो उपयुक्त होता। □

इस आदमीको पढो[1]

लेखक : डॉ. सत्यनारायण

समीक्षक : डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ

डॉ. सत्यनारायण उन कतिपय लेखकोंमें से हैं जो आत्मश्लाघाके लिए न लिखतेहैं और न छपतेहैं। जीवनकी संघर्षशीलताके बीच निरन्तर सर्जना जगाये रखना, कोई उनसे सीख सकताहै। उनकी कुछ कहानियोंके अनुवाद दक्षिणी भारतीय भाषाओं—कन्नड़ एवं तेलुगु—में हो चुकेहैं। 'फटी जेबसे एक दिन' (कहानी-संग्रह शीर्षक भी) कहानीपर टेलीफिल्म बन चुकीहै। अपने लेखनसे साहित्यकी विविध विधाओं—रिपोर्ताज, शब्दचित्र, कहानी, लेख आदि —में अपना योगदान करनेवाले सैंतीस वर्षीय सत्यनारायण मौन-साधकके रूपमें अपने समवयस्कोंमें जाने जातेहैं।

आलोच्य कृतिमें उनके बाइस रेखाचित्र हैं। जिसका प्रथक रेखाचित्र—इस मिनखाजूणमें (इस मानव योनिमें) से आरम्भ होताहै जो राजस्थान

---

१. प्रका. : रचना प्रकाशन, ३१६ खूटेंटोंका रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर-३०२००१। पृष्ठ : १००+८; डिमा; मूल्य : ५०.०० रु.।

की माटीकी गंधसे सुवासित उस आम आदमीकी जिन्दगीका रेखायन कियाहै जो विवशताके जालमें फंसे हुए खानाबदोश जिन्दगी जीते हुए कस्बई लोग हैं, जो अपनी बेटियोंसे धन्धा करातेहैं। पेंशनके सहारे जीनेवाले मौतके निकटतर होतेजा रहे अपने पिता द्वारा पुत्रको दिया गया मंत्र—'बेटे जिन्दगीमें हारना मत कभी' (पृ. ९) निश्चित ही आम आदमीके जीवन संघर्षसे उभरता हुआ दर्शन है जो शास्त्रीय विवेचना वाली पुस्तकोंमें नहीं मिलेगा। इसी प्रकार विविध क्षेत्रोंसे चयनित चेहरे भीड़में वीरानगी और महीनों बाद ढंगसे बात करने वालेसे कहा गया यह कथन—क्या बताऊं…दस बारह वर्षकी उमरमें ही भाग आया था गांवसे। फिर यहीं श्मशानमें लकड़ीवालेकी नौकरी कर ली (पृ. ११)।

डॉ. सत्यनारायणकी शब्द चित्रमयता कई बार रिपोर्ताजका रूप धारण कर लेंतीहै, चाहे कफन बेचने वाला हो या फूल मालिन, ट्रक ड्राइवर, गाड़ोलिया, चमार, या कोई अन्य, सबके अन्दर कुछ न कुछ सीझ रहा (उबल रहा) है। इन रेखाचित्रोंमें डॉ. सत्यनारायण ने उस वर्गके लोगोंके चरित्रांकनका सफल प्रयास कियाहै जो समाजमें गलित, दमघोंट, संत्रास और कुण्ठारहित जीवनको ऐसी परम्परासे जी रहेहैं जिन्हें आज कोई पहचाननेके लिए तत्पर नहीं है। लेंकिन गहरी मानवीय सम्वेदनासे घुमड़ाते कथ्य जीवनके अंतरंग चित्रोंको साकार बनातेहैं।

डॉ. सत्यनारायणकी सशक्त लेखनी दर्द, वेदना, पीड़ा, कुण्ठित व्यक्तित्वके सर्वव्यापी सम्वेदनशील क्षणों की समर्थ अभिव्यक्ति देतीहै तथा लेखकीय निरीक्षण-परक सूक्ष्मचेतना बिन्दुके स्तरपर भारी-सी हृदय धड़कनकी झलक भी देतीहै। इन बाईस रेखाचित्रोंका हर पृष्ठ लेखककी भाषा, शब्द चयन, शब्द और उसके अर्थकी खोज, वाक्योंमें सहज एवं सटीक एवं परम्परा विहीन शब्द संस्कारिताका बेजोड़ उदाहरण प्रस्तुत करतीहै। निश्चित ही लेखकीय सम्वेदनाके जीवन्त दस्तावेजके रूपमें यह कृति सराहनीय है। डॉ. सत्यनारायणसे भविष्यमें श्रेष्ठतम कृतित्वकी प्रतीक्षा है। □

जैन रामायणकी कहानियां[1]

लेखक : डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'
समीक्षक : डॉ. रामस्वरूप आर्य

आठवीं शताब्दीमें महाकवि स्वयंभूने अपभ्रंश भाषा में 'पउम चरिउ' महाकाव्यकी रचना कीथी। भगवान् रामकी कथापर आधारित होनेके कारण कालान्तरमें यह 'जैन रामायण' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसमें कविने राम-कथाके आधारपर जैन-धर्मके सत्य, अहिंसा, क्षमा, मैत्री, त्याग, सत्संगति आदि महान् आदर्शोंको सरल रूपमें समझायाहैं। समीक्ष्य पुस्तकमें लेखकने इन्हें जैन रामायणकी चुनी हुई दस कथाओंके माध्यम से प्रस्तुत कियाहै।

संग्रहकी प्रथम कहानी 'शरणागतकी रक्षा' में श्रीराम रुद्रभूतिको समझातेहैं, "राजन्! मित्रता सबसे बड़ा धन है। जिसे मित्र नहीं मिलता, वह संसारमें सबसे बड़ा निर्धन होताहै।" वे आगे कहतेहैं—"प्राणियोंको हिंसासे पीड़ा पहुंचाना पाप है। हमेशा याद रखो, अहिंसाही प्राणीमात्रका मूल धन है।" इसी कहानीमें श्रीराम क्षमाका महत्त्व बताते हुए लक्ष्मणसे कहतेहैं—"क्या तुम धर्मके दस लक्षणोंके मूल 'उत्तम क्षमा' को भूल गयेहो? क्षमा तो वीरताकी कसौटी होतीहैं क्षमासे अन्यायको जीताजा सकताहै, वीर लक्ष्मण!"

'सबसे बड़ी सच्चाई' कहानीमें समयके सदुपयोग का उपदेश है। राजा दशरथ वृद्धावस्थाके निकट आनेपर इस निष्कर्षपर पहुंचतेहैं—"जीवन अनमोल है। समय निरन्तर भाग रहाहै। बुद्धिमान् वही है जो इस उड़ते हुए समयको पकड़ सके। समयका सदुपयोग करके जीवन सफल बनाना ही बुद्धिमानी है।"

सत्संगतिका प्रभाव सर्वविदित है। इसी शीर्षक की कहानीमें राम कहतेहैं—"सचमुच सत्संगतिका प्रभाव अमिट है। सत्संगतिसे पत्थर भी हीरा बन जाताहै।" 'असली और नकली सुग्रीव युद्ध' शीर्षक कहानीमें भगवान् राम सुग्रीवके प्रति मैत्री-धर्मका

१. प्रका. : परमेश्वरी प्रकाशन, बी-१०९, प्रीत विहार, दिल्ली-११००९२। पृष्ठ : १००; डिमा. ९२; मूल्य : ४०.०० रु.।

निर्वाह करते हुए कहतेहैं—"वह मित्र भला कैसा, जो मित्रके लिए प्राणोंका मोह करे।" इस कहानीके अंत में श्रीराम लक्ष्मणको समझातेहैं कि अहिंसामें कायरता को स्थान नहीं है। कहतेहैं—"भाई लक्ष्मण! कायर और दुष्टको क्षमा करना क्षमाका अपमान होताहै। अहिंसा रत्न है। कायरताका मैल उसे कलंकित कर देताहै। जैसे जर्जर और तार-तार हुए वस्त्र को त्यागकर ही नया वस्त्र मिलताहै, वैसेही दुष्टको मार कर ही पुण्यकी सृष्टि होतीहै।"

इन कहानियोंमें जैन-धर्मको प्रमुखता दी गयीहै तथा राम-कथाके प्रमुख पात्रोंको जैन-धर्मके प्रति श्रद्धावान् एवं जैन-धर्ममें दीक्षित दिखाया गयाहै, यथा— "अयोध्याके प्रतापी राजा दशरथने भी आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभ जिनका अभिषेक किया।" (पृ. १८), "कौशल्यानंदन रामने पत्नी सीताके साथ आषाढ़की अष्टमीके दिन जिनेन्द्रका श्रद्धापूर्वक अभिषेक किया।" (पृ. १८), सीताको जिन-मन्दिरमें छोडकर राम-लक्ष्मण सहित सब नगरमें पहुंच गये।" (पृ. ८६), "बाली तो जिन-शासनकी दीक्षा लेकर संन्यासी हो गयेहैं।" (पृ. ६३)। जटायुने पूर्व जन्ममें "महावीर वर्धमानका बताया जैन धर्म स्वीकार कर लिया" (पृ. ३७) आदि।

जैन-रामायणकी कहानियोंकी भाषा सरल तथा शैली आकर्षक है। आजके पतनशील भौतिकतावादी युगमें उच्च मानव-मूल्योंकी स्थापनाकी दृष्टिसे ये कहानियां निश्चय ही परमोपयोगी हैं। जैन-रामायणके अमृत-तत्त्वको इन कहानियोंके माध्यमसे प्रस्तुत करके डॉ. अरुणने एक महत् कार्य कियाहै। □

नोंदोननु[1]

[मणिपुरीसे अनूदित]

लेखक : सो. एच. नितम्बा, डॉ. देवराज

समीक्षक : डॉ. तेजपाल चौधरी

'नोंदोननु' पन्द्रह मणिपुरी लोक कथाओंका संग्रह है, जिसका नामकरण इसी नामकी एक कथाके आधार पर किया गयाहै। 'नोंदोननु' सौतेली मांके अत्याचारोंसे पीड़ित-प्रताडित लड़कीकी कहानी है जो मनुष्य जन्मसे निराश होकर चिड़िया बन जातीहै। इन कथाओंके पढ़नेसे एक बात फिर सामने आतीहै कि सभी देशों और जातियोंकी लोककथाएं एक सरीखी होतीहैं। ये कथाएं मानवके विश्वासों और परम्पराओंको स्वर देती हैं। इनमें पाप-पुण्य, स्वार्थ-परोपकार और प्रेम-घृणाकी सुन्दर व्यंजना होतीहै।

कहीं इनमें छल, कपट और विश्वासघातके दुष्परिणामके दर्शन होतेहैं, तो कहीं विश्वास, सरलता और सद्भावके सुपरिणामके; कुछ लोककथाओंमें मूर्खताकी हानियोंको रेखांकित किया जाताहै तो कुछमें बुद्धिके वरदानको; कहीं कायरताकी निन्दा होतीहै, तो कहीं वीरताकी प्रशंसा; तात्पर्य यह है कि ये जीवनके सत्पक्षकी ओर पाठकको सीधे प्रेरित करतीहैं।

इन लोककथाओंमें कुछ कथा-रूढ़ियां भी दृष्टिगोचर होतीहैं, जैसे अतिमानवीय कार्योंको करनेके लिए जादू-टोनेका प्रयोग, परियों और फरिश्तों द्वारा कथानायककी सहायता, पशु-पक्षियोंका मानव-भाषा बोलना, दिव्य शक्तिके वरदानसे समृद्धि और शापसे महाविनाश अपना आदि।

मणिपुरकी इन लोककथाओंमें भी ये सब बातें हैं। ये कथाएं मणिपुरी संस्कृति और लोक जीवनके विभिन्न पक्षोंको उद्घाटित करतीहैं। वहांके रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा और रीतिरिवाजसे सम्बद्ध शब्दावलीका लेखक द्वयने पाद-टिप्पणियोंमें जो परिचय दियाहै वह इस संग्रहको औरभी मूल्यवान् बना देताहै। कुल मिलाकर ये कथाएं केवल बच्चोंके लिए ही नहीं, प्रौढ़ पाठकोंके लिए भी पठनीय हैं। □

---

1. प्रका. : नुमितचोई प्रकाशन, क्वाकैथेल, टिड्डीम रोड ग्राउण्डके पास, इम्फाल (मणिपुर)-७९५-००१। पृष्ठ : ६५; क्राउन बुगना, ९१; मूल्य : ३०. रु.।

निवेदन

१. पाठकोंसे निवेदन है कि पत्र व्यवहारमें अपनी ग्राहक-संख्याका उल्लेख अवश्य करें।

२. यदि कभी अंक न मिले तो अगले मासका अंक मिलते ही तत्काल सूचना दें।

युवा संन्यासी[1]

लेखक : कैलाश वाजपेयी

समीक्षक : डॉ. भानुदेव शुक्ल

पुस्तककी रचनाका उद्देश्य बताते हुए लेखकने 'प्राक्कथन' में प्रकट कियाहै कि दक्षिणेश्वरमें निवासके समय उसने विवेकानन्दपर कुछ लिखनेका मन बनाया था। उसने दिल्ली दूरदर्शनके लिए सूर, कबीर, रामकृष्ण परमहंस, बुद्ध आदि महापुरुषोंपर टैली-फिल्में बनायीहैं। मानाजा सकताहै कि विवेकानन्दपर भी टैली-फिल्मका विचार उसके मनमें रहा होगा तथा उसके लिए उसने जो कच्ची सामग्री जुटायी वही आलोच्य पुस्तकमें प्रस्तुत कर दी गयीहै। पुस्तकको 'नाटक' कहा गयाहै जो अंशत: सही है और अधिकतर भ्रामक बन गयाहै। फ्लैपके अनुसार "दरअसल यह कृति एक नाटक भीहै, जीवन-वृत्तभी है और कुछ अर्थों में कहानी भी। एक रूपरेखा जिसका प्रारूप कुछ ऐसा है जो पाठकोंसे एक विशिष्ट मनोभूमिकी अपेक्षा करताहै। इसके रचना-शिल्पमें एक अच्छी फिल्मके सूत्र निहित हैं। संभवत: यह कृति लिखीभी इसी उद्देश्यसे गयीहै।" यह सूचना काफी कुछ पुस्तकके स्वरूपकी जानकारी दे देतीहैं। तबभी, अंतके, पृ ६६ से आगेके, सात-आठ पृष्ठ केवल दार्शनिक व्याख्या हैं जो न नाटक, न कहानी, न टैलीफिल्म और न ही फिलम। किसीभी दृश्य माध्यम अथवा कथात्मक विधामें इनका कोई स्थान नहीं होगा। दृश्य माध्यममें सूच्यांशके रूपमें भी यह अंश प्रस्तुतिका दम घोट देगा।

नाटक तथा फिल्म या टैली-फिल्ममें प्रमुख अंतर यह होताहै कि नाटकमें दृश्यमें एक ही चौखटा (फ्रेम) हुआ करताहै जबकि फिल्मों एवं टैली-फिल्मों में दृश्यमें भी अनेक चौखटे होतेहैं—अलग-अलग कोणों के, निकट या दूर आने-जानेवाले दृश्योंके। डॉ. वाजपेयीने अपनी रूपरेखाको तैयार करते हुए विभिन्न रूपोंको स्वीकार कियाहै। हो सकताहै कि कच्ची सामग्रीमें जब जैसा ठीक लगा उसने तत्काल अपनी जानकारी अंकित कर लीहै। व्यवस्थित शिल्प, सूचनाओंकी उचित काट-छांट (एडिटिंग) आदिकी स्थिति अभी नहीं आयीहै। तब, इस कच्ची सामग्री को इस अव्यवस्थित रूपमें ही पाठकके हाथों क्यों सौंप दिया गयाहै? क्या लेखकको यह विश्वास नहीं रह गया कि इस सामग्रीको टैलीफिलमके लिए काममें ले सकेंगे?

पुस्तकके प्रारंभके छ: दृश्योंको संख्याके साथ प्रस्तुत किया गयाहै, शेष केवल 'दृश्य' हैं, कोई संख्या नहीं दी गयीहै। अंतके 'दृश्य' केवल दार्शनिक-विवेचन-व्याख्या भर हैं; उनको दृश्यात्मक बनानेके लिए लेखक ने क्या विधि सोची होगी, इसका अनुमान भी संभव नहीं है। "आशा है हिन्दीके सहृदय पाठकों एवं नाट्यकर्मियोंको यह अधिक उपयोगी 'सिद्ध होगी" — फ्लैपकी यह आशा रंगकर्मियोंको इस अंशमें दुराशा ही दिखायी देगी।

यदि नाटक या फिलम अथवा टैलीफिल्मके अथवा कहानी आदिके दावोंसे ध्यान हटाकर हम कृतिको देखें तो यह स्वामी विवेकानन्दकी जीवनीका परिश्रमपूर्ण आकलन तथा एक प्रयोग जो विधाओंके शिकंजेसे मुक्त हैं, के रूपमें यह उल्लेखनीय रचना है। इसमें शैलीगत वैविध्य ही नहीं है बल्कि विधागत सीमाएं तोड़कर स्वतंत्र अभिव्यक्तिको प्राथमिकता दी गयीहै। तथापि, इसके अनिश्चित स्वरूपके कारण संपूर्णको किसीके लिएभी स्वीकार करनेमें कठिनाई होगी। रंगकर्मी अपनी सामाओंके अन्तर्गत इसके कुछ भागोंको लेंगे। "काशीवास। इस दृश्यमें विवेकानन्दको द्वारकादासके आश्रममें रहते हुए दिखाया जायेगा। जप,

१. प्रका. : भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली-३। पृष्ठ : ७८; डिमा. ९३; मूल्य : ६०.०० रु.।

मंत्रोच्चार, गंगाके घाट, मणिकर्णिकाके घाटमें जलते हुए शव...विश्वनाथके मंन्दिरमें शिवलिंगके समक्ष शिव-स्तोत्र-महिमाका पाठ भी उन्हींके मुखसे कराना उचित होगा—उनका परिचय भूदेव मुखोपाध्यायसे करवाया जायेगा। कोई उन्हें तैलंग स्वामीसे मिलवायेगा। किसी न किसी रूपमें विवेकानन्दके बाबा श्री दुर्गाचरणजीका जिक्र आवश्यक है—जैसे निर्देश-संकेत केवल फिल्मांकनके लिए ही हैं, रंगकर्मियोंके लिए ये सर्वथा निरर्थक हैं। इसी प्रकार विवेकानन्दके बाल्यकालसे परम-ज्योतिमें विसर्जन तककी जीवनीमें रुचि रखने वालोंमें अनेकको, शायद अधिकको, दर्शनकी गहन विवेचनावाले अधिकांश भारी अनुभव होंगे। दूसरे शब्दोंमें, डॉ. कैलाश वाजपेयीने 'युवा संन्यासी' में विभिन्न रुचियोंवालोंके लिए इतना कुछ समेटना चाहा है कि सब कुछ बहुत कमके लिए उपादेय सिद्ध होगा। उपयोग अंशकी भी कच्ची सामग्रीके रूपमें मान कर उसे सजाना संवारना होगा। क्योंकि आलेख केवल रूपरेखा है, इससे अधिक कहीं कुछ प्रतीत नहीं होता। लेखककी दृष्टि अधिकतर रंग-कर्मियोंके स्थानपर फिल्म या दूरदर्शन माध्यमोंपर दिखायी देतीहै। साथही, दर्शन-विवेचनमें अपने श्रमके प्रति लगावको (मोहको) वह त्याग नहीं पायाहै। इस प्रकार पुस्तक दो विपरीतोंका सम्मिलन है, समन्वयकी गुंजाइश अवश्य नहीं बन पायीहै। स्वामी विवेकानन्द के भक्तों एवं प्रेमियोंके लिए पठनीय कृतिके रूपमें इसका अधिक महत्त्व सिद्ध होगा।

अठत्तर पृष्ठोंकी पुस्तकका मूल्य साठ रु. उचित प्रतीत नहीं होता। हिन्दी प्रकाशनोंके अनुचित महंगे होनेके आरोप लगतेही हैं, प्रस्तुत पुस्तकका मूल्य तो पूरी तरह दुर्भाग्यपूर्ण है। ☐

बिजेता[1]

लेखक : ब्रजभूषण

समीक्षक : लवकुमार लवलीन

समकालीन नाट्य साहित्यके संदर्भमें यह कहना कुछ अनुपयुक्त नहीं होगा कि आजका हिन्दी नाटक उस ऊंचाईपर पहुंच गयाहै जहां पहुंचकर कोई भी साहित्य 'विशेष' हो जाताहै। साठोत्तर एकांकी लेखन के स्वरूप और संरचनाका इतना विकास हुआहै कि पूर्वकी रचनाओंसे उसकी कोई तुलना नहीं कीजा सकती। फिरभी प्रसाद युगसे चली आरही एकांकी परम्परा एकदम समाप्त नहीं हो गयीहै, ब्रजभूषणके इस एकांकी संग्रह "विजेता" को देखकर कोई भी समझ सकताहै।

इस संग्रहका प्रतिनिधि एकांकी विजेता है, शेष एकांकी क्रमश: दूरदर्शी, सावधान, संकल्प, सम्राट्, संपत्ति और किस लिए हैं। इन सातों एकांकियोंमें विजेता और दूरदर्शी-एकांकी महाभारतकालीन प्रसंगों पर आधारित है, सम्राट् रामायणकी एक प्रासंगिक घटनापर आधारित है। शेष अन्यभी ऐसेही किसी प्रासंगिक घटनाओंपर आश्रित एकांकी हैं। 'विजेता एकांकीका कथ्य अर्जुनके विश्व विजेता होनेसे संबंधित है। अर्जुन स्वर्गलोकमें जाकर तपस्या करतेहैं और इन्द्र, वरुण, बृहस्पति जैसे देवताओंसे अस्त्रशस्त्रकी शिक्षा एवं विश्व विजेता होनेका आशीर्वाद पातेहैं। अर्जनकी दृष्टिमें दुर्बलों और असहायोंकी रक्षा करना ही उनका सबसे बड़ा धर्म है जिसके लिए उसने तपस्या कर ऐसी दिव्य शक्तियां अर्जित कीहै। अर्जुनके ऐसे विराट् भाव जाननेके पश्चात् देवताओंका भ्रम दूर हो जाताहै और यहीं एकांकी समाप्त हो जाताहै। वास्तव में विश्व विजेता तो वही है जो अपनी सामर्थ्य एवं शक्तिके अनुरूप निर्बलोंकी सहायताकर उसके हृदयपर अपनी विजय पताका फहराये। दूसरे एकांकीकी घटना भी महाभारतकालीन ही है जिसमें दुर्योधनकी कुबुद्धि और युधिष्ठिरकी दूरदर्शिता प्रदर्शित की गयीहै। शकुनि के उद्बोधनसे दुर्योधन अपनी माता गांधारीसे युद्धमें विजय प्राप्ति हेतु आशीर्वाद मांगताहै परन्तु दोनोंके साथ विवशता यह है कि गांधारी आशीर्वाद देनेमें असमर्थ है और दुर्योधन आशीर्वाद ग्रहण करनेवाला एक अयोग्य पात्र। ममताके वशीभूत होकर माता गांधारी दुर्योधनको युधिष्ठिरके पास जानेकी सलाह देतीहै और युधिष्ठिर उसे आशीर्वाद प्राप्त करनेका उपाय बतातेहै। यही एकांकीकी कथावस्तु है किन्तु संदेश भी द्रष्टव्य है कि जो अपने दुर्गुणोंपर विजय नहीं पा सकता, वह संसारकी कोई भी लड़ाई नहीं

१. प्रका. : पीतांबर पब्लिशिंग कं, ८८८ ईस्ट पार्क रोड, करौलबाग, नई दिल्ली-११०००५। पृष्ठ : ९६; डिमा. ९३; मूल्य : २५.०० रु.।

जीत सकता। 'सावधान' में आत्म-ज्ञानकी खोजमें भटकते एक किशोर युवककी निष्ठा, लगन एवं धैर्य-पूर्वक अपने गुरुसे शिक्षा प्राप्त करनेकी कथा है। सच्ची बात तो यह है कि अपनेसे बड़ोंके प्रति सद् व्यवहार और विनम्रता बरतनाही आत्म-ज्ञान है, जिसे कोई भी व्यक्ति क्रोध एवं अहंकार जैसे दुर्गुणोंको समाप्त कर, प्राप्त कर सकताहै। उचित और अनुचित का विवेक हो जाना ही सच्चा आत्म-ज्ञान है जिसे इस एकांकीका पात्र गोपाल विभिन्न परीक्षाओंसे गुजरनेके बाद प्राप्त करताहै। संसारमें फैली हिंसा, युद्ध एवं अमानवीयताके मूलमें इसी आत्म-ज्ञानका अभाव है। 'संकल्प' एकांकीमें एक निष्ठावान् आदिवासी युवक एक-लव्यकी गुरुके प्रति अगाध श्रद्धा, भक्ति एवं अपने कर्मोंके प्रति सजग, संकल्पित भावनाओंका वर्णन है। द्रोणा-चार्यका एकलव्यके प्रति शुरुसे अंत तक किया गया अन्याय भी इस एकांकीका विषय है जिसमें एकलव्य को अपना शिष्य स्वीकार न करना और गुरु दक्षिणामें दायें हाथका अंगूठा मांगना मुख्य है। दूसरी ओर एकलव्य जैसा शिष्य भी है जिसने इतने अन्यायोंके बावजूद द्रोणाचार्यकी मूर्तिको ही गुरु मानकर अपने संकल्पको पूरा किया। 'सम्राट्' में रामके वनगमनका प्रसंग है। पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिए राम चौदह वर्षोंके वनवासके लिए प्रस्थान करतेहैं किन्तु सम्पूर्ण प्रजामें विषादका भाव व्याप्त है। गुरु वसिष्ठ के समझानेपर भी राम नहीं रुकते। इस एकांकीमें रामके वनगमनका छोटा-सा अंश उपस्थित किया गया है, संभवतः पिताकी आज्ञा पालन हेतु रामको कर्तव्य पथपर अग्रसर दिखानेके लिए 'संपत्ति' एकांकीका कथ्य कच और देवयानीके प्रेम प्रसंगके स्वीकार-अस्वीकारके भावको प्रकट करताहै। देवयानी द्वारा कचको अपना पति मानने और कच द्वारा देवयानीको अपनी बहन माननेके कारण देवयानी उसे शापित करतीहै। कच इसे सहर्ष स्वीकार करताहै क्योंकि वह अपना चरित्र हनन नहीं कर सकता।। उसके भाव एवं विचार व्यापक और लोकोपकारी हैं जिस कारण वह संसारके सारे प्राणियोंके प्रेमका पात्र बनताहै। 'किसलिए' में रसायनशास्त्री नागार्जुन द्वारा एक योग्य सहयोगीकी तलाश की जातीहै। आवेदकोंमें कोई सीधे धन प्राप्ति के लिए लालायित होताहै तो कोई यशके माध्यमसे धन चाहताहै। एक अन्य आवेदक अनिरुद्ध भी असफल होताहै क्योंकि औषधि तैयार करनेके क्रममें वह अन्य व्यक्तियोंके साथ न्याय नहीं कर पाता। अन्तमें निरं-जन नामका युवक सफल होता है जो अपनी सच्ची निष्ठासे समाजकी सेवा करना चाहताहै और लोगोंके दुखदर्दको मिटानेका प्रयत्न करताहै।

— शैली और शिल्पकी दृष्टिसे संग्रहके सातों एकांकी सफल हैं। नाटकोंकी सही परख रंगमंचपर ही संभव है। रंगमंचीय प्रस्तुतिकी दृष्टिसे प्रथम दो एकांकी सफलतापूर्वक मंचित हो सकतेहैं। शेष अन्य एका-कियोंमें भी रंग संकेत, ध्वनि एवं संगीत योजना आदि के निर्देश दिये गयेहैं परन्तु अभिनय संकेत, रंगोपकरणों की कमी और रंगशिल्प विषयक कमजोरियोंके कारण वे कुछ शिथिल हो जातेहैं। अन्तिम एकांकी इस दृष्टि से और कठिन हो जाताहै क्योंकि मध्ययुगीन कक्ष एवं प्रयोगशालाके दृश्य सफलतासे दृश्यमान नहीं हो सकते। इसी प्रकार एकांकीके आकारकी रचना होने की दृष्टिसे आश्रमके वातावरण निर्माणमें भी कठिना-ईयां उत्पन्न हो सकतीहै। पार्श्व ध्वनिके रूपमें 'आवाज' का प्रयोग किया गयाहै जिससे दृश्यमान घटनाओंके संकेत मिलतेहैं। यत्र-तत्र वर्तनीकी अशु-द्धियां हैं। संग्रहके सभी एकांकी समकालीन संदर्भमें कुछ न कुछ संदेश देतेहैं किन्तु कुछ एकांकियोंमें रंगमंची-यताके अभावसे उनका प्रभाव कम हुआहै। फिरभी रंगमंचीय सीमाओंके बावजूद ये एकांकी अन्य एकां-कियोंकी तुलनामें अधिक सरलतासे मंचित हो सकतेहैं क्योंकि ये एकांकी आकारमें लघु हैं और इनकी घटनाएं संक्षिप्त तथा सीमित अवधिकी हैं। एकांकी लेखनमें ऐसा प्रयास प्रशंसनीय कहा जायेगा। एकांकी की रचना शैली और शिल्पको देखकर ऐसा लगताहै कि इस संग्रहके एकांकी मणि मधुकर, हमीदुल्ला आदि समकालीन हिन्दी नाटककारोंकी नाट्य रचनाओंसे एकदम भिन्न धरातलकी रचनाएं हैं जिसमें सम-साम-यिकताका लेश भी नहीं है। एकांकी गौरवमय अतीत की स्मृतियां ताजा कर जातेहैं, बस। □

पारिभाषिक शब्दावली और विविध

बैंकिंग एवं बीमा शब्दावली[1]

सम्पादक : डॉ. सुरेन्द्र
समीक्षक : डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

अपने संविधान और उसके निर्माताओंके प्रति पूरी श्रद्धा रखते हुएभी विवेकशील लोगोंको यह बात कचोटती रहतीहै कि उन्होंने हिन्दीके साथ न्याय नहीं किया। सांस्कृतिक जागरणकालके मनीषियोंने जिसे देशकी एकताके लिए अनिवार्य मानकर 'राष्ट्रभाषा' कहाथा और स्वतंत्रता संग्रामके सेनानियोंने जिसे अपने आंदोलनका अस्त्र बनायाथा, उसे संविधान निर्माताओं ने पहले तो "राजभाषाकी संज्ञा दी, और फिर यह भूलकर कि नवोदित राष्ट्रको ऊर्जा जनभाषाओंसे ही मिलतीहै, और फिर इस ऊर्जाके अभावमें देश मानसिक गुलामीमें जकड़ जायेगा, उन्होंने राजभाषाके रूप में हिन्दीका प्रयोग १५ वर्षके लिए प्रतिबन्धित कर दिया। इतना ही नहीं, इस अवधिको बढ़ानेका अधिकार भी भावी सरकारको दे दिया। संविधान निर्माताओंने राजभाषा सम्बन्धी आधा-अधूरा, लंगड़ा-लूला जैसा भी नियुक्ति पत्र हिन्दीको दियाथा, स्वार्थी लोगों ने उसमें एक ऐसी शर्त जोड़ दी जिसने नियुक्ति-पत्रकी सारी मर्यादाओंको नेस्तनाबूद कर दिया। सामान्य व्यक्ति भी जानताहै कि किसी पदपर नियुक्ति करनेसे पहले योग्यताएं तय कर दी जातीहैं और जो उस कसौटीपर खरा उतरे, उसे नियुक्ति-पत्र दिया जाता है; पर राजभाषाके सन्दर्भमें यह प्रक्रिया पूरी हो जाने के बाद उलटी गंगा बहाते हुए उसमें यह शर्त जोड़ दी कि हर राज्यसे अपनी योग्यताका प्रमाण-पत्र लेकर आओ, लोग तुम्हें जानतेहैं इसका प्रमाण-पत्र लेकर आओ, लोग तुम्हें चाहतेहै, इसका प्रमाण-पत्र लेकर आओ और उन लोगोंसे भी लेकर आओ जो "अपनी रुचियोंमें, दृष्टिकोणमें, नैतिकतामें और बुद्धिमें अंग्रेज" यानी मनसे गुलाम बन चुकेहों। प्रमाण-पत्र केवल जनतासे नहीं, राजनीतिके खिलाड़ियोंसे, सरकारसे, सरकारी नौकरशाहीसे लेकर आओ। ऐसे प्रमाण-पत्र इकट्ठे करनेके लिए हिन्दी सरकारी और गैर-सरकारी दफ्तरोंके आज तक चक्कर लगा रहीहै पर वहां 'नो एन्ट्री' का बोर्ड लगा हुआहै। साधारण जनताको दिखानेके लिए सरकारने सरकारी कार्यालयोंमें एक ऐसा राजभाषा विभाग बना दियाहै जैसा संसारके किसी दूसरे देशमें नहीं मिलेगा। कार्यालयी संरचना में सबसे कनिष्ठ स्तरका हिन्दी अधिकारी नियुक्तकर दियाहै जो नख-दन्त विहीन है। इसलिए प्रशासनिक दृष्टिसे कुछ कर तो सकता नहीं, बेचारा इसी आशामें जी रहाहै कि "वह सुबह कभी तो आयेगी।"

संविधान सभामें हिन्दीको १५ वर्षका वनवास देते समय एक तर्क यहभी दिया गयाथा कि हिन्दीमें पारिभाषिक शब्दोंकी कमी है। तब अनेक विद्वानों/संस्थाओंने विभिन्न प्रकारकी शब्दावलियां प्रस्तुत की थीं जिनमें विविध प्रयासोंसे बनाये गये शब्द सम्मिलित किये गयेथे। आवश्यकतानुसार नये शब्द भी बनाये गये थे। एकरूपताकी कमीकी आड़ लेकर सरकारने वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग जैसे अभिकरणोंकी स्थापना भी की। विधि शब्दावलीके लिए विधि मंत्रालयमें पृथक् व्यवस्था की। बैंकोंके लिए भारतीय रिजर्व बैंकने मानक शब्दावली विकसित की। इन सभी शब्दावलियोंके कई संस्करण निकल चुकेहैं और कईयोंका पुनर्मुद्रण हो चुकाहै, पर सर-

१. प्रका. : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, २/३८, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : २१३; डिमा. ९३; मूल्य : १५०.०० रु.।

कारी कार्यालयोंमें हिन्दीका प्रयोग कहीं दिखायी नहीं देता, फिरभी कुछ लोगोंको, विशेष रूपसे हिन्दी अधिकारियोंको यह विश्वास है कि यदि शब्दावलियां और बन जायें तो हिन्दीमें सरकारी काम होने लगेगा। इसी विश्वासका परिणाम है समीक्ष्य पुस्तक। पुस्तकके नाममें यद्यपि "बैंकिंग एवं बीमा शब्दावली" ही लिखा है, पर इसमें कार्यालयी कामकाजके सामान्य शब्द एवं अभिव्यक्तियां भी दी गयीहैं। इसका संकलन बैंकिंग आदिकी शब्दावलियोंसे किया गयाहै, यद्यपि सम्पादक ने इस स्रोतका उल्लेख स्पष्ट रूपसे नहीं कियाहै, उसने प्राक्कथनमें 'संदर्भ साहित्य' जैसे शब्दका प्रयोग किया है। यों तो आखिर शब्दावलियां भी सन्दर्भ साहित्य ही है न।

पुस्तकके फ्लैपपर प्रकाशकने लिखाहै कि हिन्दी को जबतक "कार्य व्यवहारके विभिन्न पक्षोंके अनुसार समृद्ध नहीं किया जायेगा तबतक उसे वास्तविक अर्थोंमें राजभाषा नहीं कहाजा सकता। इसीलिए पिछले कुछ वर्षोंके दौरान इस दिशामें सोचने और काम करनेमें तेजी आयीहै। डॉ. सुरेन्द्रका यह कार्य इस दृष्टिसे निश्चय ही प्रयोजननिष्ठ कहा जायेगा।" यह तो ठीक है कि राजभाषाकी दृष्टिसे हिन्दीको समृद्ध बनानेकी आवश्यकता है, पर इस प्रकारके संकलनोंसे वह कितनी समृद्ध होगी, यह विचारणीय है। अच्छा होता यदि सम्पादक उन शब्दों/अभिव्यक्तियोंको अपनी शब्दावलीमें शामिल करता जो पिछले लगभग दस वर्षोंसे बैंकिंग एवं अन्य वित्तीय क्षेत्रोंमें प्रयुक्त होने लगेहै, पत्र-पत्रिकाओंमें आ रहेहैं, पर सरकार, रिजर्व बैंक या अन्य संस्थाओं द्वारा तैयार कीगयी शब्दावलियोंमें अभी शामिल नहीं किये गयेहैं, या फिर अपनी भूमिकामें कमसे कम उन शब्दोंकी समीक्षात्मक विवेचना ही करता जो यद्यपि शब्दावलियोंमें दिये गयेहैं, पर कठिन माने जा रहेहैं या अर्थकी दृष्टिसे बहुत सटीक नहीं हैं, इसलिए जिनके विकल्प खोजनेकी आवश्यकता है। कुछ विकल्प प्रस्तावित करता। पर उसने 'संकलनकर्ता' ही बनना पसन्द कियाहै, 'शब्दावली निर्माता' नहीं।

शब्दकोश या पारिभाषिक शब्दावलीका काम बहुत उत्तरदायित्वका होताहै। इसमें थोड़ी-सी भी असावधानीसे कठिनाई उत्पन्न हो जातीहै। इस संकलनमें सम्पादकने सावधानी बरतीहै, पर संभवतः प्रूफ पढ़नेमें उतनी सावधानी नहीं बरती जासकी। इसलिए कुछ अशुद्धियां हो गयीं। उदाहरणके लिए 'इन्टरेस्ट सस्पेंस अकाउण्ट' के लिए 'समायोजन अधीन खाता' (पृष्ठ ९७) में 'ब्याज' शब्द ही गायब है। सस्पेंसके लिए 'समायोजनाधीन' शब्दको सन्धि विच्छेद करके लिखाहै जो उचित नहीं, क्योंकि यह खातेका नाम है। 'सस्पेंस अकाउण्ट' के लिए एक अन्य बहुप्रचलित नाम 'उचन्त खाता' यहां नहीं दिया गयाहै। संभवतः प्रूफ की ही असावधानीका एक नमूना यहभी है कि पुस्तक के मुखपृष्ठपर तो 'बैंकिंग एवं बीमा शब्दावली' लिखा है, पर अन्दर सभी जगह 'बैंक एवं बीमा शब्दावली' लिखाहै। यह बीमा और बैंकिंगसे सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दावलीका संकलन है। इसमें 'होमेज—श्रद्धांजलि' (पृष्ठ ८५) 'क्वस्चन आवर—प्रश्न काल' (पृष्ठ १६३) जैसे शब्दोंको सम्मिलित करना उचित नहीं था।

पुस्तकका मुद्रण साज-सज्जा ठीक है, पर मूल्य अधिक है। इस तथ्यके परिप्रेक्ष्यमें मूल्य औरभी अधिक लगने लगताहै कि भारतीय रिजर्व बैंककी बैंकिंग शब्दावली आकारमें इससे लगभग पाच गुनी बड़ी है, पर चौथाईसे भी कम मूल्यमें उपलब्ध है। और कार्यालयी कामकाजके लिए समेकित प्रशासन शब्दावली सरकार निःशुल्क देतीहै। □

शराब छोड़ो अभियान

विषसे विकट शराब[1]

लेखक : विराज

समीक्षक : नीरव

जैसाकि नामसे ही प्रकट है, यह पुस्तक शराबके दुष्परिणामोंको उजागर करनेके लिए लिखी गयीहै। शराबकी बुराइयां शताब्दियोंसे लोगोंको मालूम हैं। अपने अनुभवसे लोग जानतेहैं कि शराबसे बुरा व्यसन संसारमें कोई नहीं है, परन्तु एक बार लग जानेके

१. प्रका. : सूर्य भारती प्रकाशन, २५९६, नई सड़क दिल्ली-६। पृष्ठ : ११० क्रा. ९४; मूल्य : ३५.०० सजिल्द; अजिल्द : १५.०० रु.।

बाद वे इसे छोड़ नहीं सकते। यह व्यसन लोगोंको लग जाये, इसके लिए शराबका व्यवसाय करनेवाले बड़े-बड़े उद्योगपति प्रयत्नशील हैं। अरबों रुपये शराब के विज्ञापनपर व्यय होतेहैं। अखबारोंमें, सिनेमामें, टी. वी. में, कविता पुस्तकोंमें प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से शराबका प्रचार रहताहै। सरकार इन उद्योग-पतियोंके हाथोंमें नाचतीहै। मोरारजी भाईकी जनता पार्टीकी सरकारको शराबके निर्माताओंने ही गिराया था, क्योंकि मोरारजी भाई मद्य-निषेध करना चाहते थे।

सरकारें शराबके ठेके नीलाम करके करोड़ों रुपये कमातीहैं। शराबकी बिक्रीसे प्राप्त होनेवाला पैसा पाप का पैसा है। वह शराब पीनेवाले लोगोंके स्वास्थ्य तथा परिवारको नष्ट करके प्राप्त होताहै। उससे देश का कोई कल्याण नहीं हो सकता।

लेखकने इस पुस्तकको लिखकर समाज सेवाका काम कियाहै। कहाजा सकताहै कि जिन्हें शराब पीने की लत पड़ गयीहै, वे इसे पढ़कर पीना छोड़ थोड़ेही देंगे। संभवत: यह ठीक है कि वे नहीं छोड़ेंगे। परन्तु जिन्होंने अभीतक पीनी शुरू नहीं कीहै, वे यदि इस पुस्तकको पढ़ लेंगे, तो वे अवश्य ही शराब पीनेसे पहले सौ बार सोचेंगे और अधिक सम्भावना यही है कि वे नहीं पियेंगे।

परन्तु इसके लिए आवश्यक है कि यह पुस्तक अधिकसे अधिक पाठकोंके हाथोंमें जाये। कागज और छपाईके अत्यधिक महंगा हो जानेसे व्यक्तिगत पाठक पुस्तकें बहुत कम खरीदतेहैं। ऐसी दशामें उचित है कि यह पुस्तक पुस्तकालयोंमें और पंचायत केन्द्रोंमें रखी जाये। राज्य सरकारोंके मद्य-निषेध विभाग इस पुस्तकका उपयोग अपने प्रचारके लिए कर सकतेहैं।

पुस्तकमें शराबकी हानियोंके सभी पक्षोंपर प्रकाश डाला गयाहै: शराबका स्वास्थ्यपर बुरा प्रभाव, आर्थिक हानि; नैतिक पतन; अपराध वृत्ति आदि। मदिराका पान कैसे छोड़ाजा सकताहै, इस विषयमें भी उपयोगी सुझाव दिये गयेहैं।

पुस्तक सरल भाषामें लिखी गयीहै और कम पढ़े लोग भी इसका लाभ उठा सकतेहैं। समाजसेवी संस्थाओंको इस प्रचारमें योग देना उचित होगा। □

पत्र-पत्रिकाएं

हरिगन्धा[1]

[भारत छोड़ो आन्दोलन विशेषांक]

सम्पादक : शकुन्तला जाखू
डॉ. सोमदत्त बंसल

समीक्षक : डॉ. बजरंगराव बांगरे

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलनका एक लम्बा इतिहास है और हिन्दी पत्रकारिता इस अभियानमें कदम से कदम मिलाकर चलती रहीथी। सन् १८५७ का पहला प्रयास हो या कांग्रेसकी स्थापना, तिलक-गोखले का युग हो अथवा गांधीजीका राजनीतिमें प्रवेश, सभी घटनाओंका इस संघर्षमें अपूर्व योगदान रहाहै, पर सन् १९४२ का 'भारत छोड़ो आन्दोलन' इस संघर्षमें नया मोड़ ले आया, जब कांग्रेसने गांधीजीके नेतृत्वमें 'भारत छोड़ो' और अंग्रेजो वापस जाओ' के नारे बुलन्द किये। 'करो या मरो' के नारेको व्यावहारिक रूप दिया। १९४२ की यही वह घटना थी, जिसने भारतवासियोंकी आंखें खोलदी कि किसीभी मूल्यपर हमें स्वतन्त्रता प्राप्त करनीहै। दूसरी ओर अंग्रेजोंकी भी आंखें खोल दी कि अब और अधिक दिन भारतको गुलाम नहीं रखाजा सकता। इस अनूठे आन्दोलनकी

१. संपर्क : निदेशक, हरियाणा साहित्य अकादमी, १५६३, सेक्टर-१८ डी, चण्डीगढ़-१६००१८। वार्षिक मूल्य : ३०.०० रु.।

स्वर्णजयन्ती हमने पिछले वर्ष मनायी, जिसमें सभी स्वतंत्रता सेनानियोंने भाग लिया जिनका उस समय प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे योगदान था [बड़ा तथ्य विश्व-युद्धके कारण ब्रिटेनका शक्तिहीन हो जाना, आजाद हिन्द फौजका देशको मुक्त करानेका सशस्त्र युद्ध और भारतीय नौ-सेनामें विद्रोह था ।—सम्पादक]

१९४२ से पचास वर्ष बाद और स्वतंत्रता प्राप्तिके बाद आज दूसरी पीढ़ी बढ़ रहीहै । संभवत: यह पीढ़ी उन संघर्ष गाथाओंसे अपरिचित है और प्रत्यक्षदर्शी पीढ़ी अंतके कगार पर खड़ीहै । तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओंने तब स्वतंत्रताके ध्येयको अपनाया, लक्ष्य बनाया, सरकारी दमननीतिकी यातनाएं झेलीं, प्रेरक बनीं, प्रोत्साहित किया, दिशा-दर्शन दिया और लोगोंका मार्ग प्रशस्त किया । आजकी पत्रकारिताने उन वीरों को श्रद्धांजलि अर्पित की और स्वतंत्रता सेनानियोंकी प्रशस्तिमें विशेषांक प्रकाशित किये ।

आलोच्य पत्रिका 'हरिगंधा' हरियाणा साहित्य अकादमीकी द्विमासिक साहित्यिक पत्रिकाका जुलाई-अगस्त १९९३ का 'भारत छोड़ो आन्दोलन' विशेषांक है । पत्रिकाके इस अंकमें प्रकाशित लेख स्वतंत्रता सेनानियोंकी कलमसे प्रसूत होनेके कारण उनके प्रत्यक्ष व निजी अनुभवोंके आलेख हैं । साहित्यकार विष्णु प्रभाकर, हरियाणाके चर्चित व्यक्तित्व ओमानन्द सरस्वती, यती भाई, रामसिंह जाखड़ और भुजतरजीके बयान और स्वतन्त्रता आंदोलनमें हरियाणाकी भूमिकाका इतिहास आजकी पीढ़ीके लिए केवल इतिहास ही नहीं अपितु धरोहरकी रक्षा हेतु संदेश भी है ।

'हरिगंधा' का यह अंक साहित्य-पत्रिकाके पूरे कलेवरके साथ सजाहै, जिसमें दस कवियोंकी रचनाएं हैं । कविताओंमें हरियाणाके राजकवि श्री उदयभानु हंस की 'चेतावनी' इस अंककी गरिमाको बढ़ाती है, जिसे हंसजीने उस समय लिखाथा । हैदराबादके डॉ. शीलमकी कविताका प्रकाशन निसंदेह उत्तर-दक्षिणको समीप लानेका सराहनीय प्रयास हैं । साहित्यिक/सांस्कृतिक गतिविधियाँ और पुस्तक समीक्षा पत्रिकाको पूर्णता प्रदान करतेहैं । दो कहानियां, चार लघुकथाएं और एक व्यंग्य लेख विशेषांकको सरस और मधुर बनातेहैं ।

हिन्दी-उर्दू साहित्य दर्पण

[त्रैमासिक पत्रिका]

सम्पादक : डॉ. रमेशप्रसाद गर्ग

समीक्षक : डॉ. महेशचन्द्र शर्मा

प्रस्तुत त्रैमासिक पत्रिकाको सम्पादकने भाषायी-एकताका प्रतिनिधि प्रतिमान कहाहै । यह पत्रिका प्रवेशांक है । 'कहानी', 'आलेख', 'लघुकथा', 'कविता', 'गजल' तथा 'पुस्तक-समीक्षा'—इन शीर्षकोंके अन्तर्गत पत्रिकामें रचनाओंका प्रकाशन हुआहै ।

'सम्पादकीय' में डॉ. रमेशप्रसाद गर्गका कहनाहै कि "×××× 'हिन्दी उर्दू साहित्य दर्पण' का प्रकाशन भी एक खास मुहिमके तहत है । आज जबकि देशमें भाषाके नामपर अलगाव-बोध और कुण्ठा व्याप्त है, हमने 'भाषायी सद्भाव' की स्थापनाका संकल्प लेते हुए इस पत्रिकाके प्रकाशनका निर्णय लिया । × × × × हमारी तो एकही भाषा है—मानवताकी भाषा। भाषाके नामपर द्वेष कैसा ? "कैसा मनमुटाव ? 'साहित्य दर्पण' उर्दू-हिन्दीके झगड़ेंसे अलग है, इसमें उर्दू भी है और हिन्दी भी है । हमारी कोशिश रहेगी कि दोनों भाषाओंमें जो भी सोद्देश्य और स्वस्थ सृजन हो रहाहै, यह पत्रिका उसका 'दर्पण' साबित हो ।" यह सम्पादकीयके अन्तर्गत पत्रिकाके प्रकाशनके मूलमें निहित उद्देश्य का निर्देश है ।

'समकालीन कविताकी लोकप्रियताका प्रश्न' (नर्मदेश्वर चतुर्वेदी) आलेखके अन्तर्गत समकालीन कविताकी लोकप्रियताके प्रश्नपर प्रकाश डाला गयाहै । 'नशा अंग्रेजी बोलनेका' (डॉ मधु सूदन) व्यंग्य विधाकी अच्छी रचना है । 'चाणक्य गुफा इतिहासकारोंको चुनौती' (डॉ. दीनानाथ शरण) शोधपरक आलेख है । इसके अतिरिक्त 'हिन्दी : आत्मघाती राजनीतिक चाल' (गुरुदास बनर्जी), 'समकालीन हिन्दी कवितामें लय' (नचिकेता) तथा 'हिन्दी कविता: कई प्रश्न अनुत्तरित' (वज्रघोष) शीर्षक आलेख भी पठनीय हैं ।

'लघु कथा' आजके युगमें बड़ी चर्चित एवं लोक-

१. सम्पर्क : ए-२५/४२, सलेमपुरा, वाराणसी-२२१००१ । पृष्ठ : ७७; डिमा. ९२; सहयोग राशि : १०.०० रु ।

प्रिय विधा है। इस विधाकी रचनाएं हैं—'प्रतिध्वनि' (अशोक गुजराती), 'परोपकार' (नीर शबनम), 'स्वाभिमान' (रवीन्द्र कंचन), 'कुत्ते' (डॉ. प्रमोद कुमार सिंह), 'दुःख' (हसन जमाल), 'छः इंच छोटा' (मुहम्मद अहमद), 'धरती और मैं' (डॉ. इन्दु बाली) तथा 'मुकद्दरके अंधेरोंमें मेहनतका सफर' (इमरान हुसूद खां)। लघु कथाकी ये रचनाएं पाठकोंको कम-से-कम समयमें अधिक-से-अधिक मानसिक सामग्री देनेकी दृष्टिसे अच्छी रचनाएं हैं।

'कविता' विधाके अन्तर्गत तेईस रचनाकारोंकी कविताएं हैं। इनमें 'पुरुषार्थ' (जितेन्द्र राठौर), 'मैंने लोहेसे प्यार किया' (रामेश्वर), 'बेतुके प्रश्न' (रमेश नीलकमल), 'मुखौटेवाली मां' (प्रेम गुप्ता 'मानी'), 'संकल्प' (डॉ. विनोदकुमार रस्तोगी) आदि कविताएं अपने कथ्यके कारण प्रभावित करनेमें सक्षम कही जायेंगी।

पत्रिकामें इक्कीस गजलकारोंकी गजलें भी प्रकाशित हुईहैं जिनमें डॉ. उर्मिलेश, कमलेश भट्ट 'कमल', कृष्ण तिवारी, ब्रजेन्द्र गर्ग, डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी तथा डॉ. रामसनेही लाल शर्मा आदिकी गजलें प्रभावित करतीहै।

श्यामलाल यादव 'राजेश' के कविता-संग्रह 'तुमसे रेखांकित हैं' की डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ द्वारा लिखी पुस्तक-समीक्षा 'पुस्तक-समीक्षा' की विधाका उत्कृष्ट उदाहरण है।

'अनुक्रम' में विधाओंका जो क्रम निर्दिष्ट किया गयाहै, आगे पत्रिकामें उसका निर्वाह लक्षित नहीं होता। पत्रिका उन पाठकोंके लिए निश्चय ही उपयोगी कही जायेगी जो कम-से-कम समयमें अधिक-से-अधिक सामग्री चाहतेहैं। □

ग्रामीण विकास-समीक्षा एवं 'ग्रामीण विकास प्रबन्ध'[1]

सम्पादक : डॉ. दंगल झाल्टे
समीक्षक : बजरंगराव बागरे

देशकी प्रगतिका मूल्यांकन विज्ञान और तकनीकी क्षेत्रमें प्रगति एवं प्राप्त उपलब्धियोंसे किया जाताहै। भारत वैज्ञानिक और तकनीकी दृष्टिसे विश्वके विकसित राष्ट्रोंके समकक्ष होनेके लिए प्रयासरत है, पर भारत आजभी कृषि प्रधान देश है और गांवोंमें बसता है। आधुनिक वैज्ञानिक और तकनीकी परिप्रेक्ष्यमें ग्रामीण विकास आजकी आवश्यकता है। सन् १९५८ से ही भारत सरकारने समुदाय विकास अध्ययन और इस क्षेत्रमें प्रशिक्षणकी आवश्यकताको पहचाना, फलस्वरूप हैदराबादमें राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान ग्राम्य-विकास, पंचायती राज और ऐसी समधर्मी संस्थाओं (देशी-विदेशी) के साथ ग्रामीण विकासके कार्यक्रमोंकी योजना और कार्यान्वियन तथा इनमें उद्भूत समस्याओंके विश्लेषण और अनुसंधानके माध्यम से समाधान प्रस्तुत करनेमें संलग्न है। संस्था पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकोंके माध्यमसे इन उद्देश्योंका प्रचार व प्रसार करती है।

हिन्दी हमारी राजभाषा है। विविध कार्यक्षेत्रों और सेवा माध्यमोंके रूपमें साहित्य, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, शिक्षण-प्रशिक्षण, संचार, उद्योग, प्रशासन आदि क्षेत्रोंमें हिन्दीका प्रयोग हो रहाहै, परन्तु बहुत धीमी चालसे। केन्द्र सरकारके कार्यालयोंका राजभाषा कार्यान्वतनके प्रति दायित्व है। ग्रामीण विकास और पंचायत राजकी दृष्टिसे तो देशकी अंग्रेजी न जाननेवाली जनतासे ही सम्बन्ध होताहै, अतः अनुवाद या विकल्प रूपमें मूल हिन्दीका होना अनिवार्य है। 'राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान' हैदराबाद इस दायित्वका सफलतापूर्वक निर्वाहकर रहाहै। इस दिशामें संस्थान सभी प्रकाशनोंको नियमित रूपसे हिन्दीमें निकालनेका प्रयास करताहै। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए प्रतिवर्ष ४००० से भी अधिक पृष्ठोंकी वैज्ञानिक-तकनीकी तथा शोध सामग्रीका अनुवाद प्रस्तुत करताहै। यह बात उल्लेखनीय है कि ग्रामीण विकाससे संबंधित आलेख मूलरूपसे हिन्दीमें प्रकाशित करने हेतु 'ग्रामीण विकास समीक्षा' अर्धवार्षिक पत्रिका प्रकाशित करता है। आलोच्य अंक 'ग्रामीण विकास समीक्षा' (जुलाई-दिसम्बर १९९३) का १५वां समग्रांक है। डॉ. दंगल झाल्टे इसके संपादक हैं, जो संस्थाके राजभाषा प्रभाग के प्रमुख हैं। संस्थानके महानिदेशक भारतीय प्रशासनिक सेवा अधिकारी तथा बहुभाषाविद् डॉ. टी. सी. ए. श्रीनिवास रामानुजम् हैं, जिनके भाषा-प्रेमके

१. सम्पर्क : राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान, राजेन्द्र नगर, हैदराबाद-५०००३०।

कारण संस्थान हिन्दीमें भी प्रकाशनोंको प्रस्तुत करने के लिए कृतसंकल्प है।

पत्रिकाके आवरण-पृष्ठपर छपी उद्घोषणा द्रष्टव्य है—"भारतीय सभ्यता और संस्कृतिको उजागरकर राष्ट्रीय एकात्मताको मजबूत करनेवाली हिन्दी, हमारे राष्ट्रकी गौरवशाली परम्पराका प्रतीक है। अच्छा हो यदि राष्ट्रीय ग्रामीण विकासमें निरन्तर सेवारत विद्वान् अपना चिन्तन, मनन और लेखन मूलत: हिन्दीमें कर अपने कार्य और ज्ञानसे करोड़ों भारतीय जनसाधारण को लाभान्वित करें।" इसी आशयकी पूर्तिमें इस पत्रिकाके समय-समयपर विशेषांक भी निकलतेहैं जैसे कि वर्ष १९९० का "गरीबी निवारण विशेषांक"।

पत्रिकाके विभिन्न अंकोंमें ग्रामीण विकासके विविध पहलुओंपर गहन अध्ययन, निष्पादन-कार्य तथा अनुसंधान और प्रशिक्षणके अनुभवके आधारपर विद्वानों द्वारा तथ्यात्मक आंकड़ों सहित आलेख प्रस्तुत किये जातेहैं। प्रस्तुत अंकमें ग्यारह आलेख हैं। इनके विषय हैं—ग्रामीण स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, पोषण, कृषि और उद्योगके अतिरिक्त ग्रामीण सामाजिक-सांस्कृतिक विषय लेख—बाल श्रमिकोंकी समस्या, पशु मेलेका महत्त्व, गांवोंमें प्राचीन वैदिक जल-संसाधन प्रबन्ध भी है तो ग्राम्यविकासकी आधुनिक विचार-धारापर आधारित देशके विकासमें विकल्पकी दिशा और ग्रामीण पुनर्निर्माणपर लेख हैं। इस अंकका उल्लेखनीय लेख श्री राजेन्द्रप्रसाद सिंह, भागलपुरका है, जिन्होंने "भारतीय पंचायतीराज संस्थाओंमें हिन्दी की भूमिका" को वैदिककालसे अद्यतनकाल तक उजागर कियाहै।

"ग्रामीण विकास प्रबन्ध" संस्थानकी पुस्तक है, जिसमें ग्रामीण विकास प्रबन्धनपर १५ आलेख संकलित किये गयेहै। ग्रामीण विकास प्रबन्ध अर्थात् ग्रामोदय, ग्रामीण अभ्युदय हेतु योजना, संगठन, निदेशन, सहयोग, नियंत्रण और क्रियान्वयन जैसे विविध पहलुओंकी विशेषज्ञों द्वारा उद्घाटित किया गयाहै। लगभग १५० पृष्ठोंकी सामग्रीका संपादन डॉ. दंगल झाल्टे और उनके सहयोगी श्री मोहन पिल्लैने बड़ी कुशलतासे कियाहै। पुस्तकके सभी आलेखोंमें समुचित राष्ट्रकी ग्राम-श्रीकी पुरातन व अधुनातन परिस्थितियों का सम्पूर्ण आकलन प्रस्तुत किया गयाहै।

आलोच्य पत्रिका तथा पुस्तक दोनों एकही विषय क्षेत्र, एकही संस्थासे सम्बद्ध होनेके कारण प्रस्तुति साज-सज्जा व मुद्रण एकरूप, सुन्दर और आकर्षक है। जहांतक आलेखोंकी भाषाका सम्बन्ध है, विभिन्न विद्वानोंकी लेखनीसे प्रसूत होते हुएभी विषय-साम्यके कारण पारिभाषिक शब्दावलीके प्रयोगसे सपाट गद्य-शैलीमें तर्कपूर्ण विवरण मिलताहै। सम्पादकीयमें कहा गयाहै, "ग्रामीण विकास जैसे कथ्येतर तथा तकनीकी विषयपर शोधलेख मूलरूपसे हिन्दीमें लिखना अत्यन्त कष्टदायक बात है।" मेरे विचारसे यह मानसिकता का प्रश्न है और हिन्दीमें लिखनेका अभ्यास सतत हो तो लेखन सहज हो जाताहै। आवश्यकता है पारिभाषिक शब्दावलीका सहजतासे बेझिझक प्रयोग। ग्रामीण विकास जैसे विषयपर तो देशज शब्दोंकी कोई कमी नहीं है, जिनका प्रयोग किया जाना चाहिये। इससे भारतीय संविधानके अनुच्छेद ३५१ में उल्लिखित हिन्दीके स्वरूपको निखारा जा सकेगा। लेखोंमें पारिभाषिक शब्दोंके अंग्रेजी पर्याय देवनागरीमें कोष्ठकोंमें दिये जा सकतेहै या फिर पत्रिका / पुस्तकके अन्तमें शब्दोंकी सन्दर्भसूची दीजा सकतीहै, जो निश्चित रूप से पाठकोंको विषयके समझनेमें सहायक होगी। पारिभाषिक शब्दावलीमें एकरूपता हो तो भाषाका मानक रूप निर्मित होगा। लेखोंमें इसका अभाव यदा-कदा दिखायी देताहै। सम्भवत: इसका कारण विभिन्न राज्योंमें एक ही भावके लिए अलग-अलग शब्दोंका प्रयोग हो। शब्दावलीके मानकीकरणमें सम्पादकोंका प्रयास श्रेयस्कर होगा।

राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान ऐसे प्रकाशनोंसे साहित्येतर विषयोंसे हिन्दीको समृद्ध कर रहाहै, सभी सम्बन्धित सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाएं विशेषकर सभी मंत्रालय, योजना विभाग, बैंक, शिक्षण संस्थाएं आदि लाभान्वित होंगे। □

इस देशका नव वर्ष चैत्र शुक्ल
प्रतिपदासे आरम्भ होगा।
इस नव वर्षके आयोजनों
के लिए आपका स्वागत है।

आगामी अंकमें

ऐतिहासिक भाषा विज्ञान और भारतका भूगोल

यह लेखमाला डॉ. रामनिवास शर्माकी "भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी" (तीन खण्डोंमें प्रकाशित) कृतियोंपर विवेचनात्मक परिचय है। उनकी मान्यता है कि हमारा भाषाई रिक्थ है और अपने भाषा-परिवारके संबंधोंको समझे बिना यूरोपीय भाषाओंके विकासको नहीं समझा जा सकता। भारतीय भाषा परिवार आपस में जुड़े हुए हैं और हिन्दी भाषाका विकास उस रूपमें विकास नहीं हुआ जैसी कि धारणा प्रचलित है। प्रथम दो लेखों में कृतिके प्रथम खण्ड "आर्यभाषा केन्द्र और हिन्दी जनपदका विवेचन" परिचय है। प्रस्तुत कर रहे हैं डॉ. **राजमल बोरा**।

मुक्तिबोध : ज्ञान और संवेदना

इस बृहदाकार ग्रन्थमें मुक्तिबोध और उनके साहित्यके सम्बन्धमें अनेक नयी अथवा अल्पज्ञात सूचनाएं प्रस्तुत की गयीहैं और इन सूचनाओंके प्रकाशमें उनके साहित्यको समझनेका प्रयास हुआहै। पुस्तकमें मुक्तिबोधकी कविता और गद्य-साहित्य दोनोंका अध्ययन पांच-पांच अध्यायोंमें विभाजित कर किया गयाहै। परिशिष्टमें 'अंधेरेमें' कविताका विश्लेषण प्रस्तुत हैं। लेखक हैं : **नन्दकिशोर नवल**, समीक्षक हैं : डॉ. **हरदयाल**।

हिन्दी साहित्यकी भ्रान्तियां और उनका निराकरण

सामग्रीके अभाव, प्राचीन पाण्डुलिपियोंमें पाठकके स्खलन तथा पूर्वापर तुलनात्मक दृष्टिमें चूकके कारण भ्रान्त धारणाएं बन जातीहैं और उनकी पुनरावृत्ति होती रहतीहै। इस प्रकारकी भ्रान्तियों तथा त्रुटियोंकी ओर विद्वान् लेखक श्री **वेदप्रकाश गर्ग** समय-समयपर लेखोंके माध्यमसे इंगित करते हुए उनके निराकरणके लिए प्रयत्नशील रहेहैं। निर्दिष्ट त्रुटियोंको विद्वान् लेखकोंने प्राय: स्वीकार कियाहै। साहित्येतिहासके इन्हीं संशोधनपरक लेखोंका सकलन इस कृतिमें हैं। समीक्षक हैं : डॉ. **रामस्वरूप आर्य**।

'पुरस्कृत भारतीय साहित्य'

अगस्त'९३ का "पुरस्कृत भारतीय साहित्य" विशेषांक वार्षिक शृंखलाका ग्यारहवां अंक है। इसी शृंखलाका पूरक अंक नवम्बर'९३ है। इससे पूर्व दस विशेषांक प्रकाशित हो चुकेहैं। भारतीय भाषाओंके साहित्यमें इस समय जो प्रवृत्ति दिखायी दे रहीहै, वह इस दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है कि अपनी प्रादेशिक और क्षेत्रीय विशिष्टता होते हुएभी भारतीय साहित्यकी अन्तश्चेतना एक है, उसकी अन्तःस्फूर्तिके स्रोत भी समान हैं। फिरभी उस चेतनाके समग्र रूपको न तो प्रस्तुत किया गयाहै, न उसका, योजनाबद्ध अध्ययन। इस अध्ययनकी सम्भावनाको ध्यानमें रखते हुए 'प्रकर' प्रतिवर्ष ऐसी सामग्री प्रस्तुत कर रहाहै जो अध्ययन और शोधकी दृष्टिसे बहुत उपयोगी हैं।

अबतक इन ग्यारह विशेषांकोंमें विभिन्न भारतीय भाषाओंके ग्रन्थोंपर जो समीक्षा-सामग्री प्रस्तुत हुई है, उनकी संख्या इस प्रकार है :

भाषा	ग्रन्थ संख्या	भाषा	ग्रन्थ संख्या	भाषा	ग्रन्थ संख्या
असमी	९	डोगरी	१०	मराठी	११
उड़िया	१२	तमिल	१२	मलयालम	६
उर्दू	३	तेलुगु	१०	मैथिली	११
कन्नड़	१२	नेपाली	९	राजस्थानी	११
कश्मीरी	५	पंजाबी	११	संस्कृत	८
कोंकणी	१०	बंगला	६	सिन्धी	१०
गुजराती	१३	मणिपुरी	११	हिन्दी	१३

सभी अंकोंकी पृष्ठ संख्या : ११६०   कुल समीक्षित ग्रंथ २१०

इन ग्रंथोंकी समीक्षाओंसे न केवल भारतीय भाषाओंकी एकात्मता उभर कर आतीहै, साथमें विदेशी साहित्यके स्पष्ट, प्रबल और गहरे (अनेक बार प्रचारात्मक) प्रभावका भी साक्षात्कार होताहैं। साहित्यिक दृष्टिसे वैज्ञानिक विश्लेषणके लिए यह सामग्री सहायक है।

१९८३ से अबतक प्रकाशित 'पुरस्कृत भारतीय साहित्य' विशेषांकोंका पृथक्-पृथक् मूल्य इस प्रकार है : ८३—२०.०० रु.; ८४—२०.००; ८५—२०.००; ८६—३०.००; ८७—३०.००; ८८—३०.००; ८९—३५.००; ९०—३५.००; ९१—३५.००; ९२—४०.००; ९३—४०.०० रु.; नवम्बर'९३—१०.००।

अध्ययन और शोधकी दृष्टिसे यह सामग्री प्रत्येक पुस्तकालयमें संग्रहणीय है।

सभी ग्यारह अंकोंका डाकव्यय सहित मूल्य : २७५.०० रु.

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार : मुद्रक : संगीता कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा रायसीना प्रिंटरी, चमेलिया रोड, दिल्ली-६।
प्रकाशन स्थान : ए-८/४२ राणा प्रतापबाग, दिल्ली-७   दूरभाष : ७११३७६३

दूरभाष : ७११३७६३

प्रकर [अनुशीलन-अध्ययन-समीक्षा की मासिक पत्रिका]

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार
ए-८/४२, राणा प्रताप बाग
दिल्ली-११०००७

वर्ष : २६ अंक : ३ चैत्र : २०५१ [विक्रमाब्द] मार्च : १९९४ [ईस्वी]

स्वर : विसंवादी

नव वर्ष विक्रमाब्दका शुभ आगमन-एक पर्व : ऋतंभर वर्ष : ऋतुपतिसे प्रतिसम्बद्ध

मध्ये रात्रिके अन्धकारमें इतिहाससे कलंकित ईस्वी वर्ष छिपे-छिपे अपनी मुख-मुद्रा लेकर आनेके लिए अभिशप्त है। ऋतुकालकी प्रशीतक नियतिसे बंधा, ब्रिटिश राजके दम्भपूर्ण पदक्षेपोंके साथ उनकी अन्तरंगताका वहन करता हुआ, उनके इतिहास-संस्कृति-धर्म-सामाजिकता-जीवनपद्धतिके अनिवार्य अंगके रूपमें यह वर्ष उसी रूपमें प्रतिष्ठित हो गयाहै जिस प्रकार उन्हींका चिन्तन, जीवनप्रणाली-वैधानिक पद्धति-प्रशासनतंत्र-पूंजीवाद अपने स्वतंत्र और समाजवादी होनेकी घोषणा करनेवाले इस देशमें स्थापित होगयेहैं। इस देशका निवासी अपने जीवन, चरित्र और चिन्तनमें उनका प्रतिमूर्ति बननेके लिए प्रयत्नशील है। वह सदेह अपने इस कल्पितस्वर्गमें ही स्थापित होनेके लिए तपश्चर्या कर रहाहै; मन-बुद्धि तो वह पहले इस काम्य देश और उसकी संस्कृतिको अर्पित कर चुकाहै। यह केवल धर्म, मन, बुद्धि परिवर्तन तक सीमित नहीं है, अपितु आत्मसमर्पण और आत्म-संस्कारमें आत्मरत है। यह प्रक्रिया इस सीमा तक जा पहुंचीहै कि अपने आराध्यदेवोंके प्रशिक्षण, उनके चिन्तन-मूलके आलेखनोंसे प्रेरणा लेकर और उन्हें आधार बनाकर स्वतन्त्रताकी घोषणाके साथ आलेखों-प्रलेखोंका निर्माण कियाथा, उन्हीं आलेखों-प्रलेखोंके अन्तर्गत जिन समितियोंसे प्रतिवेदन मांगेथे, उन्हें प्राप्त-स्वीकारकर भी प्रशासन-तन्त्रके प्रशीतक भण्डारोंमें रख दिया। अब आत्मरतिके चक्रव्यूहमें फंसे इस नूतन स्वर्गकी अभीप्साके कारण उन्हें 'चिर-शवों' में परिवर्तित कर दियाहै।

उन्हींमें से एक 'चिर-शव' बना प्रतिवेदन ईस्वी सन्‌के स्थानपर भारतीय काल-गणनाको लागू करनेके संबंधमें था जिसमें मध्यरात्रिके अन्धकारमें प्रवर्तित होनेवाले ईस्वी सन् और काल गणनाके मासोंके स्थान पर भारतीय काल गणनामें थोड़ा संशोधन कर, सात दिनके अन्तर को मिटाकर, (वर्तमान ग्रैगेरियन काल गणनामें इक्कीस दिनका अन्तर है) ईस्वी सन् की २१ मार्चसे चैत्र माससे वर्ष प्रारम्भ करनेका सुझाव दिया गयाथा। वह वैज्ञानिक सुझाव भी 'चिर-शव'की श्रेणीमें चला गयाहै, क्योंकि सात समुद्र पारके स्वर्ग-वासियोंने छी-छी कर दीहै। इस देशके आत्मरत स्वर्ग-कामी तो ऐसा कोई कलंक स्वीकार करनेको तत्पर नहीं हैं जो इस स्वर्ग-आकांक्षामें थोड़ा भी बाधक हो। यह आकांक्षा उन्हें देश-विरति, लोक-विरति, जन-विरतिसे मंडित होनेमें भी धरती-तलसे कुछ उंगली ऊपर उठा देतीहै।

इस देशके आख्यानों और पुरावृत्तोंमें दानवोंको

अंधकारप्रिय (निशाचर) बताया गयाहै। दानवी वृत्तियोंको प्रायश: अंधकारमें सम्पन्न किया जाताहै। हमारी सत्ता और प्रशासनतंत्रने भी देशकी स्वतंत्रता की घोषणा अंधकारभरी मध्यरात्रिमें की, सत्ता और प्रशासन तंत्रसे बाहरका प्रत्येक नागरिक जानताहै कि गत सैंतालीस वर्षोंमें देशकी स्थिति गहनसे गहन तिमिराच्छन्न होती चली गयीहै। सांस्कृतिक-सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक सभी स्तरोंपर। इस तिमिर-भेदनकी क्षीण-सी आशा भी तो नहीं दिखायी देती। जीवनकी इस अवसन्नता और विच्छिन्नतासे मुक्तिके लिए सदा ज्योतिकी कामना की गयीहै और उसमें संतुलन बनाये रखनेके लिए न केवल आन्तरिक ज्योति की क्रियाशीलताकी प्रार्थनाएं की गयीहैं अपितु प्राकृतिक स्तरपर प्रत्येक आयोजन ऋतु-काल-समयको ध्यानमें रखकर किया गयाहै। यह जीवनकी मृदुता और उष्णताको जागृत करताहै।

इसी कारण हमारी मंगल कामना है कि नव ज्योति, देह-मन-बुद्धिको उष्णता प्रदान करने, प्रकृतिसे सामंजस्य बैठाने, प्रकृति प्रदत्त धन-धान्य, शक्ति-ऊर्जा-आह्लादके वातारणमें नवजीवन की ओर गतिशील होने, देशकी गौरवशाली परम्परा, पराजयको विजयमें परिवर्तित कर देनेवाले, शकारिकी स्मृतिमें परावर्तित कर देने वाले नववर्षके उत्साहपूर्ण स्वागतकी मानसिकता जागृत कर ऋतु परिवर्तनके साथ प्रभात बेलामें नवोदित सूर्य-ज्योतिमें उसका अभिनन्दन करें।

यह नववर्ष पूरे देशमें विक्रम-संवत्के नामसे प्रचलित है जिसका प्रवर्त्तन ईस्वी सन् से भी ५७ (सत्तावन) वर्ष पूर्व विक्रमादित्यने शकोंको पराजित कियाथा। ये शक पार्श्वकुल (फारस) से अपनी सत्ता स्थापनाके लिए इस देशमें आयेथे। अपने ऐतिहासिक अस्तित्व कालमें देशवासियोंसे निरन्तर और कदाचित् क्रूर संघर्षोंके बाद ही इनपर विजय पायी जा सकी। समरभूमिकी जटिल गतिविधियोंसे वर्षोंके सतत प्रयत्नोंसे ही यह विजय प्राप्त कीजा सकीथी। इस विजयकी उपलब्धि थी कि सुदूर देशसे आकर ये आक्रमणकारी इस देशके अंग बन गये, इसीमें विलीन होगये, कहना चाहिये कि यहींके जीवनमें आत्मसात् हो गये। विक्रमादित्यकी विजयने देशके सांस्कृतिक जीवनकी अखण्डताकी स्थापना की। इस सांस्कृतिक अखण्डताका जो देश हमें उत्तराधिकारमें मिला, उसे ब्रिटिश सत्ताने भौगोलिक-सांस्कृतिक-मानसिक-बौद्धिक रूपमें खण्ड-खण्ड कर ही लौटाया। साथही इस देश की सत्ता-प्रशासन अपने उन उत्तराधिकारियोंको सौंपी जो राजनीतिक-शैक्षणिक-बौद्धिक स्तरपर मात्र उनके ही पथानुगामी थे। इन पथानुगामियोंने अपने पूर्व स्वामियोंके प्रति दैहिक, मानसिक और बौद्धिक निष्ठाका निर्वाह कर उन्हींके कृत्योंको युग-सत्य स्वीकार कर देशको पुन: खण्डित और विभाजित करनेका जो मार्ग अपनायाहै, उसके कारण देश-संस्कृति-जनमें विश्वास रखनेवालोंका उस महिमामंडित 'शकारि' का स्मरण हो आना स्वाभाविक है, उस संघर्षकी भारतीय परम्पराको पुन: जागृत करनेका संकल्प लेने का आह्वान करनेका औचित्य भी प्रमाणित करताहै।

प्राय: पीड़ाके साथ यह अनुभव होताहै कि 'अन्धकारमें ही हर्षोन्मत' रहनेवाले सत्ता और प्रशासन तन्त्रके लिए 'वसन्तका उन्मेष' असह्य है, 'प्रकाश-दीप्तिका स्फुरण' चोंधानेवाला और नदी तीरपर 'संवत्-पर्व' उन्माद-प्रलापजनक। ▢

भाषा भी मानवाधिकार है

भारतीय भाषाओंकी उपेक्षा मानवाधिकार-हनन है

कश्मीरमें मानवाधिकारके प्रश्नपर संयुक्त राष्ट्र संघ मानवाधिकार आयोगके जिनेवा सम्मेलन में राजनीतिक स्तरपर जो भी लम्बा विवाद हुआ, वह पाकिस्तानसे कश्मीरमें घुसपैठकर आये आतंकवादियों, मात्र सार्वजनिक जीवनमें भीतरी घातों द्वारा हत्या करनेवाले आतंकवादियोंकी सुरक्षा एवं संरक्षण केलिए था। आतंकवादसे पीड़ित होकर अपनी सम्पत्ति एवं भूमिकाको त्याग कर बलात् निर्वासित, अनिश्चित भविष्यका सामना करनेवाले निरस्त्र लोगों के संरक्षण या पुनर्वासके लिए नहीं था। जवाब नेहरू

साहबकी क्रूरतापूर्ण नीतियोंके परिणामस्वरूप कश्मीरका विशाल खण्ड पाकिस्तानके अधिकारमें चला गया, उन्हीं नीतियोंने कांग्रेसी कल्चरमें पोषित-पल्लवित होकर उस क्षेत्रके निवासियोंको एक ओर शरणार्थी बना दिया और मात्र साम्प्रदायिक आधार पर देशको पुनः विभाजित करनेकी सक्रिय भूमिका प्रदान की। यह ऐसी वास्तविकता है जिस ओर से सदा आंखें मूंदे रखनेके लिए देशको विवश किया जाता रहा, विरोध करनेवालोंको या तो उस क्षेत्र से निष्कासित कर दिया गया अथवा उनकी हत्या कर दी गयी।

देशमें विक्षोभ और असंतोषका वातावरण उत्पन्न करके, उस ओरसे ध्यान बंटानेके प्रयत्नोंने देशके राजनीतिक जीवनमें यह अस्थिरता निरन्तर व्याप्त होती चली गयी, परिणामतः देशके विखण्डनकी संभावनाएं गहराती गयीं, और अब ये उसी दिशामें गतिशील हो गयीहैं जिनका आस्वादन और प्रत्यक्ष दर्शन हम सन् सैंतालीससे पूर्व कर चुकेहैं, परन्तु इसके उपचारका कोई गंभीर प्रयत्न कियाजा रहाहो, ऐसा संकेत भी उपलब्ध नहीं है। व्यापक चर्चा, व्यापक प्रतिक्रियाओंके कारण इस व्यापक संकटकी ओर ध्यान तो सभीका रहताहै, परन्तु आभ्यन्तर रूपमें मानवाधिकारके रूपमें भाषाका संकट पनप रहाहै, बल्कि कहना चाहिये कि भाषावादकी विभीषिकाके आवरणमें जिसे छिपाकर रखाजा रहाहै और मौन साधनेका नाटक रचा जाता है, वह भी भावी विस्फोट का संकेत है। क्या भाषा मानवका स्वाभाविक और प्राथमिक अधिकार नहीं? क्या उसके प्रयोगसे देश, राज्य, जनपद या व्यक्तिको वंचित रखाजा सकताहै? क्या विदेशी भाषाके आधिपत्य या वर्चस्वको बलात् लादे रखनेसे भाषाकी 'अस्मिता' का कोई दावा कियाजा सकताहै? भाषाके विकासकी किसीभी रूपमें किसी भी प्रकारकी चर्चा कीजा सकतीहै? क्या भाषाका विकास मानवीय विकाससे जुड़ा नहीं है? अपने चयनके विकल्पोंसे वंचित व्यक्ति, समाज, देशको यह अधिकार नहीं है कि वह अपने उन मानवीय अधिकारों की मांग करे जो उसे संविधान और अन्य विधि-विधानों द्वारा उपलब्ध कराये गयेथे! अपने इन मानवीय अधिकारोंके लिए वह सत्ता, प्रशासन, अर्थतंत्र द्वारा खड़ी कीगयी बाधाओंका उल्लंघन कर उन्हें पुनः स्थापित करनेके लिए प्रयत्नशील होनेके अधिकार से वंचित है? भाषाके प्रश्नको लेकर ऐसे अनेक प्रश्न अब सामूहिक रूपसे पूछे जाने लगेहैं। जब इस देशकी सत्ता देश के बाहरके लोगों द्वारा राजनीतिक मानवाधिकारोंके हननके भ्रमको भंग करनेके लिए अकूत प्रयत्न कर सकतीहै, तो क्या इस आन्तरिक, वहभी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति एवं बौद्धिक-मानसिक विकाससे जुड़ी समस्याको सुलझानेके स्थानपर उसे और अधिक उलझाकर भाषाओंकी प्रगति और विकासको अवरूद्ध करने और भाषाई साम्राज्यवादी नीतिसे चिपके रहकर जनसाधारणकी रोजी-रोटी समस्याको और अधिक जटिल बनानेपर तुली रहतीहै और विदेशी भाषा देशपर लादे रखनेके समर्थकोंको प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रोत्साहन क्यों देतीहैं। अब वह देशमें भाषाई गृह युद्धको, उसके आयोजकोंको मौन प्रोत्साहन प्रदान करतीहै और उसी प्रकार विखण्डनका आधार तैयार कर रहीहै जिस प्रकार साम्प्रदायिक शक्तियोंको प्रोत्साहन और संरक्षण प्रदानकर देशको खण्डित करायाथा।

विदेशी भाषा देशपर लादे रखनेके पक्षपाती अपने व्यक्तिगत हितोंकी रक्षाके लिए इस सम्पूर्ण धारणाको वितण्डावाद कहेंगे। पर यदि फ्रांस अपनी संसद्में यह विधेयक प्रस्तुत करताहै कि: 'यदि विज्ञापन, प्रशासनिक पत्र-व्यवहार अथवा प्रसारणमें अंग्रेजी का प्रयोग किया जाताहै तो भाषा-पुलिसको अधिकार होगा कि वह बननेवाले इस कानूनके उल्लंघनके विरुद्ध कार्यवाही करे। यह भाषा-पुलिसभी इसी विधेयकके अन्तर्गत बनेगी। अबतकके समाचारोंके अनुसार इस विधेयकको वहांके सभी राजनीतिक दलों और बुद्धिजीवी प्रवर जनोंका समर्थन प्राप्त है। पर देशका अंग्रेजी बुद्धिजीवी इस समाचारसे स्तब्ध है कि एक 'विश्व-भाषा' के प्रभुत्वको इस प्रकार चुनौती दी गयी है। इस देशके इंडिशजीवी इस बातसे भी हतप्रभ हैं कि इस विधेयकको फ्रांसकी संसद्में प्रस्तुत करते हुए वहांके सांस्कृतिक मन्त्रीने कहा: "विदेशी भाषा प्रायः आधिपत्य और अपरिवर्तनशीलताका साधन और प्रतीक बन जातीहै सामाजिक बहिष्कारका कारण बन जातीहै और जब अहंकारके साथ प्रयुक्त की जातीहै तो अपमानित करनेकी भाषा बन जाती

है।" फ्रांसके संस्कृति-मन्त्रीके इस कथनपर देशके अंग्रेजीके नामपर इंडिशका प्रयोग करनेवाले स्तब्ध । इसलिए इस अपमानजनक प्रयोगको इस समाचारको प्रकाशित करनेवाले अंग्रेजी दैनिकके स्तंभकारने इस देशके अंग्रेजी विरोधी लोगों परही उछालनेका प्रयत्न कियाहै । कोईभी इंडिश-भाषी अपने अहंके कारण भाषाको मानवाधिकारका क्षेत्र स्वीकार करनेको तत्पर नहीं है ।

हमारे देशमें रोचक स्थिति यह है तमिलनाडुके कुछ लोग, विशेषतः द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गमसे जुड़े लोग, इंडिशसे अपनी संलग्नताका प्रदर्शन इतना अधिक करतेहैं कि जैसे वही उनकी पितृभाषा है । उनका क्षेत्र इसलिए उनका है कि वह प्रशासनिक स्तरपर देशकी संवैधानिक राजभाषा हिन्दीको, उसके राजभाषा रूपमें प्रशासनिक प्रयोगको रोके हुएहै । वे अपने क्षेत्रसे संलग्नता इसलिए विज्ञापित नहीं करते कि वह तमिलभाषी क्षेत्र है और तमिल एक समृद्ध भाषा है, बल्कि इसलिए कि कि वे पूरे अहंकारके साथ कह सकें कि "तमिलनाडु अभी भारतमें ही है !" क्योंकि देशकी सत्ताकी भाषा इंडिश (अर्थात् इंडियन इंग्लिश) है। रेखांकित वाक्य भारतीय संसद्में श्रीमती नटराजनने जिस अहंकारके साथ प्रयुक्त किया, उससे तो इस देशके ही नहीं, अमरीका-ब्रिटेनको छोड़कर किसी देशका नागरिक इस प्रकारके शब्दों-वाक्योंका प्रयोग करनेके लिए आगे नहीं आयेगा । यह भारतीय संसद्में ही संभव है कि अपनी निम्न स्तरकी दास-वृत्तिको एक प्रतिष्ठित संस्थानमें व्यक्त कर सके और पूरी संसद् उसे मूक भाव से सुन ले । तमिलनाडुके औरभी संसद् सदस्य इस प्रकारके हिन्दी विरोधी अपमानजनक शब्दोंका प्रयोग करके अपनेको गौरवान्वित करतेहैं । परन्तु देशके लोगों को अहंकारके साथ वह सन्देश देतेहैं कि देशको दास और गुलाम बनाकर रखनेवाली भाषाका हम प्रतिनिधित्व करतेहैं, हम जब जैसा चाहें व्यवहार कर सकतेहैं; तुम्हारा अधिकार क्या है ? गुलामों-दासोंका कोई अधिकार होताहै ? भाषा मानवाधिकार नहीं है ! गुलाम और दास 'मानव' होता ही कहां है !

हम ठीकसे जानतेहैं कि तमिलनाडुके बुद्धिजीवियोंका विशाल वर्ग इस प्रकारके विस्फोटकात्मक उद्गारोंका समर्थन नहीं करेगा, पर समस्या यह है कि अंग्रेजोंके राज और अंग्रेजीके राजको समानार्थक माननेवालोंको, देशकी प्रतिष्ठाके प्रश्नको, भाषाको मानवाधिकारका अंग स्वीकार करनेके लिए किस प्रकार तैयार किया जाये ।

इस प्रसंगमें यह स्मरणकर पीड़ा होतीहै कि स्वतन्त्रतापूर्व कालमें यह कल्पना भी नहीं की गयीथी कि अंग्रेजोंके देश छोड़कर चले जानेके बाद उनका प्रतिनिधित्व करनेवाली भाषा और उससे जुड़ी अंग्रेजियतकी मानसिकताका इस देशपर राज बना रहेगा । इसके विपरीत यह भावना और उत्साह कार्य कर रहा था कि स्वतन्त्रताके बाद हम अपने मूल अधिकारों का प्रयोग करते हुए अपनी परम्परा, सभ्यता, संस्कृति और भाषाओंका उद्धारकर देशका नवनिर्माण कर सकेंगे । उसके अनुरूप उसी युगमें यह भावना जन्म ले चुकीथी कि उस स्वातन्त्र्य-युगकी मानसिकताके रचनात्मक निर्माणके लिए ऐसी संस्थाओंके संचालनका आयोजन किया गयाथा जो स्व-देश, स्व-भाषा-स्व-निर्माणकी चेतना ही जागृत नहीं करेंगी, अपितु प्रयोगशालाओंकी भूमिकाका कार्य भी करेंगी । उस कालमें यह एक कठोर तपस्या थी, भावी-निर्माणकी पीड़ा थी, उसे उत्साह, विश्वास और निष्ठाके साथ पूर्ण करने का संकल्प था । विडम्बना यह हुई कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के साथ इस आयोजनको पूर्ण हुआ मान लिया गया, यह धारणा विकसित कर ली गयी कि जिस सांस्कृतिक भावनामें पगे निर्माणको एक रूप देकर प्रयोगशालाओंमें साकार और मूर्त किया गयाहै उसे देशकी स्वतन्त्र सत्ता राष्ट्रव्यापी स्तरपर लागू करेगी, इसलिए वे प्रयोगशालाएं भी आर्थिक-अनुदानोंके चक्रव्यूहमें फंसकर उसी अंग्रेजियत और अंग्रेजीका प्रतिनिधित्व करनेवाली सत्ताकी योजनाओंमें समा गयी । उपमहाद्वीपकी संज्ञासे अभिहित होनेवाला स्व-देश विखण्डनकी प्रक्रियामें फंस गया, स्व-भाषाओंका गर्वपूर्ण अधिकार का अहंकार दासताके अधिकारमें परिवर्तित हो गया, स्व-निर्माणका अभियान बहुराष्ट्रीय कम्पनियोंको अर्पित कर दिया गया । देश और समाज अब दासों और गुलामोंके समूहमें परिवर्तित हो गयाहै जो स्वयं अपने अधिकार दूसरोंको अर्पित कर चुकाहै । ☐

ऐतिहासिक भाषा विज्ञान और भारतका भाषा भूगोल [१]

[डॉ. रामविलास शर्माका भाषा-चिन्तन]

—डॉ. राजमल बोरा

उपक्रम

'भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी' तीन खण्डोंमें क्रमशः १६७६ ई., १६८० ई. और १६८१ ई. में प्रकाशित हुएहैं। तीनों खण्डोंके अलग-अलग शीर्षक हैं—

१. आर्यभाषा केन्द्र और हिन्दी जनपद

२ इंडोयूरोपियन परिवारकी भारतीय पृष्ठ-भूमि, और

३. नाग-द्रविड़-कोल और हिन्दी प्रदेश।

तीनों पुस्तकोंके आरम्भमें डॉ. रामविलास शर्माने 'भूमिकाएं' लिखीहैं। इन भूमिकाओंमें लेखक ने अपना दृष्टिकोण व्यक्त कियाहै।

ये तीनोंही खण्ड 'ऐतिहासिक भाषा विज्ञान' से सम्बन्धित हैं और उक्त विषयपर पारम्परिक लीकसे हटकर लिखनेका प्रयत्न किया गयाहै। इस लीकसे हटकर लिखनेके लिए 'भारतका भाषा भूगोल' प्रस्तुत करनेका प्रयत्न हुआहै।

'भाषा और समाज' तथा प्रस्तुत तीनों खण्ड

डॉ. रामविलास शर्माने इन तीन पुस्तकोंसे पहले —लगभग बीस वर्ष पहले—'भाषा और समाज' पुस्तक लिखीथी। इसका प्रकाशन १६६१ ई. में हुआ। इस पुस्तकको पढ जायें तो प्रतीत होगा कि डॉ. रामविलास शर्मा कई वर्षोंसे 'भाषा-विज्ञान' के प्रश्नोंसे जूझते रहे हैं। 'भाषा और समाज' पुस्तकमें ही ऐसे कई प्रश्न उपस्थित किये गयेहैं, जिनका उत्तर खोजना वे आवश्यक समझते रहेहैं। ऐसे कुछ प्रश्न उन्हींके शब्दोंमें इस प्रकार हैं—

(१) 'भाषाओंके परिवारका निर्माण कैसे होता है? भाषा-विज्ञानियोंकी धारणा है कि प्रत्येक भाषा-परिवारका जन्म किसी आद्य भाषासे हुआहै। इस प्रकार आदि-आर्य, आदि-द्रविड़, आदि-शमी भाषाओंकी कल्पना की गयीहै। किन्तु जिसे हम 'भाषा' कहतेहैं, वह स्वयं सामाजिक विकासकी एक निश्चित मंजिलमें ही सुलभ होतीहै।...**जैसे किसी आदि पुरुषसे मानव परिवारकी उत्पत्ति नहीं हुई, वैसे ही किसी आदि भाषासे कोई भाषा-परिवार नहीं बना।** किसीभी भाषा-परिवारकी भाषाओंकी परीक्षा कीजिये। आपको अनेक भाषाओंमें ही नहीं, एक भाषाके अन्तर्गत ही ध्वनि-प्रकृति, भाव-प्रकृति और मूल शब्द भण्डारके महत्त्वपूर्ण भेद दिखायी देंगे। **इसका अर्थ यह नहीं कि भाषाओंके परिवार होते नहीं है, किन्तु उनके निर्माणकी प्रक्रिया यह नहीं है कि आदि भाषासे विकृत या परिवर्तित होनेसे नयी-नयी भाषाएं पैदा हो गयीहै।**"[१]

(२) 'आदि भाषावाला सिद्धान्त संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश-आधुनिक भारतीय भाषाओंके विकासपर लागू किया जाताहै। संस्कृत क्यों विकृत हुई? अनार्य

---

१. भाषा और समाज, डॉ. रामविलास शर्मा, प्रथम संस्करण १६६१ ई., पृ. 'नौ' [भूमिका से]

प्रभावसे। यूरोपमें आदि-भारोपीय भाषा... भारतके पूर्वमें ध्वनि-क्षय हुआ, उत्तरमें नहीं हुआ। क्यों नहीं हुआ? जो विद्वान् संस्कृतसे प्राकृतोंकी उत्पत्ति मानतेहैं, वे यहभी कहते जातेहैं कि प्राकृतें कृत्रिम हैं। फिर कृत्रिम भाषाओंसे सहज आधुनिक भाषाओंकी उत्पत्ति कैसे हुई? यदि मूल शब्द-भंडार और भाव-प्रकृतिकी दृष्टिसे विचार किया जाये तो प्राकृतें संस्कृतसे मूलत: भिन्न भाषाएं सिद्ध नहीं होतीं। **संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंशकी नसेनी छोड़ देनेपर आधुनिक भाषाओंके मूल तत्व काफी प्राचीन सिद्ध होतेहैं।** आधुनिक उत्तर-भारती भाषाएं किस सीमा तक स्वतंत्र हैं, इनके मूल तत्त्वोंको संस्कृतसे उत्पन्न सिद्ध करनेके प्रयासमें किस प्रकार की भ्रान्तियां फैलती हैं, संस्कृत परिनिष्ठित भाषा क्यों बनी, प्राकृतोंकी अपेक्षा उसने हमारी वर्तमान भाषाओंको क्यों अधिक प्रभावित किया, अपभ्रंशकी ध्वनि-प्रकृति हिन्दीसे भिन्न है या उसके समान, अपभ्रंशसे हिन्दीके मुख्य रूप निकलेहैं या वे अपभ्रंशसे पुराने हैं?"२

(३) "इस पुस्तकका विशेष व्यवहार-पक्ष यह है कि तथाकथित भारत-यूरोपीय परिवारकी संस्कृत-लैटिन-ग्रीक-स्लाव आदि भाषाएं स्वतंत्र कुलोंकी भाषाएं हैं। इनमें जो सामान्य तत्त्व मिलते हैं, उनका आधार इन भाषाओं या इनसे मिलती-जुलती भाषाओं के बोलनेवालोंका परस्पर सम्पर्क है, न कि एक आदि भाषासे उनका जन्म। इस प्रकार **संस्कृत आदि-भारत-यूरोपीय भाषाका उच्छिष्ट और विकृत रूप न होकर स्वतंत्र भारतीय भाषा सिद्ध होतीहै।** यूरोपकी भाषाओंपर संस्कृत और उसके समानान्तर बोली जाने वाली भाषाओंका प्रभाव पड़ाहै, न कि किसी कल्पित आद्य आर्यभाषासे अनार्य सम्पर्कके कारण संस्कृतकी उत्पत्ति हुई। आधुनिक उत्तर भारतीय भाषाएं संस्कृतके समानान्तर बोली जानेवाली भाषाओंसे उत्पन्न हुईहैं, न कि वे संस्कृतका विकृत रूप हैं।"३

(४) पुस्तकमें अनेक भाषाओं, भाषा परिवारों, सामाजिक विकासकी अनेक समस्याओंकी चर्चा है। पुस्तककी विषयवस्तुका क्षेत्र इतना व्यापक है कि भ्रान्तियां अनिवार्य हैं। पुस्तककी आलोचना हो, ये भ्रान्तियां दूर हों, इसके लिए विद्वानोंसे सहयोगकी प्रार्थना है।"४

डॉ रामविलास शर्माकी पुस्तक 'भाषा और समाज' पुस्तककी भूमिकासे [१५-११-१९६० ई. को लिखी भूमिकासे] ऊपरके चारों उद्धरण दिये गये हैं। इस प्रकारके औरभी प्रश्न हैं। प्रश्न पूछना और फिर उनका उत्तर देना या ऐसे तथ्य प्रस्तुत करना जिससे उत्तर न भी मिले तो कम-से-कम प्रश्नकी सार्थकता प्रमाणित हो—इसी क्रममें डॉ. रामविलास शर्मा लिखते रहतेहैं। 'भाषा और समाज'—पुस्तकमें भाषा-सम्बन्धी मूल प्रश्न उभरकर आयेहैं। हिन्दीमें इस प्रकारके प्रश्नोंपर गंभीरतापूर्वक विचार करनेका प्रयत्न उन्होंने कियाहै। डॉ. रामविलास शर्मा भाषा-तत्त्वोंको समाज-निरपेक्ष नहीं मानते। उनका कहनाहै कि भाषा-विज्ञानकी पुस्तकोंमें भाषा-तत्त्वोंपर अधिक बल दिया जाताहै और सामाजिक तत्त्वोंकी उपेक्षा की जातीहै। भाषा समाज-निरपेक्ष नहीं होती। भाषा का इतिहास—एक अर्थमें समाजका इतिहास भी है। ऐसी संगति बैठानेका प्रयत्न करते हुए 'भाषा और समाज' पुस्तक लिखी गयीहै। इस लेखनमें कई चौंकाने-वाले प्रश्न उभरकर आयेहैं जिनका समाधान हमें आजभी खोजनाहै।

'भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी'—पुस्तकके तीनों खण्डोंमें 'भाषा और समाज'—पुस्तक में प्रस्तुत विचारोंका संवर्धन और विस्तार है। इस बातको स्वीकार करते हुए लेखकने लिखाहै—

"मेरी पुस्तक **भाषा और समाज**में जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन है, उनका यहां संवर्धन और विस्तार है; उनमें कहीं मौलिक परिवर्तन करना आवश्यक प्रतीत नहीं हुआ कुछ शब्दोंकी व्युत्पतिमें फेर-बदल संभव है। जहां उस पुरानी पुस्तकको देखते किसी शब्दकी व्युत्पति के बारेमें यहां भिन्न मत प्रकट किया गयाहो, वहां इस पुस्तकमें व्यक्त मतको मेरी वर्तमान धारणाका सूचक मानना चाहिये।"५

---

२. भाषा और समाज, डॉ. रामविलास शर्मा, प्रथम संस्करण १९६१, पृ. 'नौ तथा दस' (भूमिकासे)।

३. वही, पृ. 'बारह' (भूमिकासे)

४. भाषा और समाज, डॉ. रामविलास शर्मा, प्रथम संस्करण, १९६१ ई., पृ. 'बारह' (भूमिकासे)

५. 'भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी', खण्ड १, डॉ. रामविलास शर्मा, प्रथम संस्करण १९७९ ई. (भूमिका)—पृ. २४।

यद्यपि **भाषा और समाज** पुस्तकमें व्यक्त विचारों का संवर्धन और विस्तार 'भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी'—के तीनों खण्डोंमें है, तथापि मूल अन्तर भी दृष्टिगोचर होगा। मूल अन्तर यह है कि इन पुस्तकोंमें 'ऐतिहासिक भाषा विज्ञान' पर लेखकने अपना ध्यान केन्द्रित कियाहै। दूसरी बात यह कि 'भाषा और समाज' पुस्तकमें सामाजिक विकासके संदर्भमें हिन्दी और भारतकी आधुनिक भाषाओंपर विचार किया गयाहै ? इस तुलनामें ये तीनों खण्ड भारतके भाषा परिवारोंपर विस्तारसे विचार करते हैं। यही नहीं भाषा परिवारोंका यह विवेचन **ऐतिहासिक भाषा विज्ञान**के संदर्भमें प्रस्तुत किया गयाहै। भाषा विज्ञानकी मान्य पुस्तकोंमें प्रस्तुत ऐतिहासिक भाषा विज्ञानसे भिन्न यह विवेचन है। तीनों ही खण्ड ऐतिहासिक भाषाविज्ञानके मान्य और स्वीकृत सिद्धान्तोंको व्यावहारिक स्तरपर परखतेहैं। यह परख अनेक रूपोंमें हैं। इस परखमें बहुत-से मान्य सिद्धान्त अपने आप प्रश्नसूचक बन जातेहैं और तब लेखक इस प्रकारके प्रश्नोंको उभारकर प्रस्तुत करताभी है। यों तीनों ही खण्ड ऐतिहासिक भाषाविज्ञानके लिए काफी समृद्ध और पुष्ट सामग्री प्रस्तुत करतेहैं। तीनों खण्डोंकी कुल पृष्ठ संख्या ११८३ है।

ऐतिहासिक भाषा विज्ञान

ऐतिहासिक भाषा विज्ञानको व्यावहारिक रूपमें परखनेका आधार 'भाषा भूगोल' है। ऐतिहासिक भाषा विज्ञानपर लिखनेवाले विद्वानोंने न तो सामाजिक विकासका ठीकसे विश्लेषण किया और न 'भाषा भूगोल' को समझने-समझानेका प्रयत्न कियाहै। भाषा विज्ञानके और विशेष रूपसे ऐतिहासिक भाषा विज्ञान के प्रश्नोंका उत्तर 'भाषा भूगोल' के आधार पर ही दियाजा सकताहै। ऐसा प्रयत्न इन तीन खण्डोंमें हुआ है।

तीनों खण्डोंमें विस्तृत भूमिका प्रथम खण्डमें ही (पृ. ९ से २६ तक) है भूमिकाके आरम्भकी पंक्तियाँ कहतीहैं—

"यह पुस्तक आर्य, द्रविड़ आदि भारतके प्राचीन भाषा परिवारोंके आपसी सम्बन्धोंको ध्यानमें रखते हुए, ऐतिहासिक भाषा विज्ञानकी लीकसे अलग हटकर हिन्दीका विवेचन करतीहैं।"६

ऐतिहासिक भाषा विज्ञानके सम्बन्धमें डॉ. रामविलास शर्माकी मान्यताएं संक्षेपमें इस प्रकार हैं—

(१) भाषा-परिवार स्थिर और जड़ इकाई नहीं है, उसका विकास दूसरे परिवारोंके साथ रहकर होता है, इस मान्यताके आड़े आतीहै अन्य धारणा कि दूसरों के सम्पर्कमें आनेसे पहलेही भाषा परिवारका निर्माण हो चुकाहै। भाषाई क्षेत्रके सिद्धान्तमें यह अन्तर्विरोध है; जबतक इसे दूर नहीं किया जायेगा, तबतक भाषाई विवेचनके लिए उसमें निहित संभावनाओंसे लाभ नहीं उठाया जा सकेगा।"७

(२) 'भारतको एक भाषाई क्षेत्र माना गयाहै। इन परिवारोंके मूल तत्त्वोंकी छानबीन करते हुए यदि यह सिद्ध हो जाये कि ये परिवार अपने मूल तत्त्व रच लेनेके बाद ही एक दूसरेसे मिले, तो क्षेत्रीयताके सिद्धान्तके बारेमें प्रचलित धारणाको सत्य मान लेना चाहिये, यह स्वीकार करना चाहिये कि भाषा परिवार नामका प्रपंच एकांत शून्यमें ही विकसित होताहै। किन्तु यदि इस प्रकारकी छानबीनसे यह सिद्ध हो कि इन परिवारोंके मूल तत्त्व परस्पर सम्पर्कसे विकसित हुएहैं, विकासकी प्राचीनतम मंजिलोंमें परस्पर संपर्कके प्रमाण मिलतेहैं, तो उक्त पूर्वाग्रह छोड़ देना चाहिये, तब यह मानना चाहिये कि जैसे निर्मित हो जानेपर भाषा परिवार एक दूसरेको प्रभावित करतेहैं, वैसे ही निर्माण कालमें वे एक दूसरेको प्रभावित करते हैं। किसी भाषा-परिवारका निर्माण सुदीर्घ प्रक्रिया है।"८

(३) "भाषा परिवारके निर्माण-कालमें उस परिवारकी भाषाएं बोलनेवाले मानव-समुदाय गण समाजों में संगठित होतेहैं। ये गण, कबीले, ट्राइब्स हजारों वर्षों तक घुमन्तू जीवन बितातेहैं; सामाजिक विकास-क्रममें कृषि सभ्यताकी मंजिल काफी देरसे आतीहै। कृषि सभ्यताका आरम्भ होनेसे पहले अपने घुमन्तू जीवनके कारण विभिन्न गण समाज एक दूसरेके संपर्क में आतेहैं। भाषा-परिवारोंके मूल तत्त्वोंका निर्माण गणव्यवस्थाकी इस पहली मंजिलमें होताहै जब कबीले

६. भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी, खण्ड १, प्रथम संस्करण, १९७९, पृ. ९ (भूमिकासे)
७. वही पृ. १० (भूमिकासे)
८. भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी, खण्ड १, सं. १९७९ ई. [भूमिका] पृ. १०।

अधिकतर घुमन्तू जीवन बिताते हैं। स्वभावतः ये 'मूल' तत्त्व किसी एक कबीलेके नहीं होते, अनेक कबीलोंके होतेहैं, उन्हें ये कबीले अनेक स्रोतोंसे प्राप्त करतेहैं।"९

डॉ. रामविलास शर्मा भाषा-विज्ञानीकी भाषा-परिवारकी अवधारणाओंका खंडन करतेहैं। और अपनी मान्यताको यों प्रस्तुत करतेहैं—

(४) "भाषा विज्ञानी गण समाजोंके घूमन्तू जीवन, उनकी भाषाई विविधता, उनके आपसी संपर्कको भाषाई विवेचनसे बाहर रखतेहैं। इसके बदले वे मानते हैं कि एक आदिम मानव समुदाय कोई स्वतःविकसित भाषा बोलताथा; वह मानव समुदाय अनेक शाखाओंमें विभाजित हुआ; आदिम मानव समुदायकी जननी भाषा से इन शाखा-समुदायोंकी पुत्री-भाषाओंकी उत्पत्ति हुई। वे मानतेहैं कि भाषा-परिवारका निर्माण विभिन्न गण-भाषाओंके मिलनेसे नहीं होता; उसका निर्माण होताहै किसी आदिम जननी भाषाके शाखाओंमें विभाजित हो जानेसे। **ऐतिहासिक भाषा विज्ञानके गतिरोध का यह प्रबल कारण है, किसी आदि जननी भाषासे पुत्री-भाषाओंकी उत्पत्तिका सिद्धांत।** आप भाषाई क्षेत्रकी बात करते रहिये किन्तु **जननी भाषा स्वयंभू** है; वह जिस क्षेत्रमें अवतरित होतीहै, उसमें या उसके आसपास कोई दूसरी जननीभाषा नहीं होती।"१०

ऐतिहासिक भाषाविज्ञानके नामकरणोंको स्वीकार करतेहैं और उनका बिवेचन अपने ढंगसे करतेहैं। हमारे देशकी भाषाओंका तथा भाषा-परिवारोंका विवेचन प्रायः विदेशी विद्वानोंने कियाहै। उन्होंने यह मान लियाहै कि भारत प्राचीनकालसे अबतक भाषा-तत्त्वों का आयात केन्द्र रहाहै; भाषा तत्त्वोंका निर्यात-केन्द्र कभी नहीं रहा। भारतका अपना भाषाई रिक्थ कुछ भी नहीं है; केवल आर्य नहीं, द्रविड-कोल-नाग भी अपने भाषा-तत्त्व बाहरसे लाये। संसारके सभी भाषा-परिवारोंका निर्माण भारतसे बाहर हुआहै, यहां किसी भाषा-परिवारका निर्माण नहीं हुआ। इन बातोंको डॉ. रामविलास शर्मा मानते नहीं।

डॉ. रामविलास शर्मा, आचार्य किशोरीदास वाजपेयीके विचारोंका समर्थन करतेहैं। वाजपेयीजी मानते हैं कि वैदिक भाषाका आधार एक जनभाषा थी। उसमें बहुत-सा साहित्य रचा गया जो नष्ट होगया। वेदोंकी रचनासे पहले 'छोटा-मोटा' और हलका-भारी न जाने कितना साहित्य बना होगा, इसी क्रममें वेद आये। वह सब काल-कवलित होगया। उस जनभाषा के अनेक प्रादेशिक भेद थे, उन प्रादेशिक भेदोंमें से जो कुछ साहित्यिक रूप प्राप्त कर चुका होगा, उसीमें वेदोंकी रचना हुई होगी; परन्तु अन्य प्रादेशिक रूपोंके भी शब्द प्रयोग गृहीत हुए होंगे। [भारतीय भाषा-विज्ञान, किशोरीदास वाजपेयी, पृ. ११३, ११४, १२६]

डॉ. रामविलास शर्मा प्रादेशिक भाषाओंको गण भाषाएं कहतेहैं। प्राचीन भाषाओंका विवेचन वे गण भाषाएं कहकर करतेहैं। ऐसा कहकर वे इंडोयूरोपियन (भारोपीय) परिवारका विवेचन करतेहैं।

तीनों खण्डोंमें भारतको भाषाई क्षेत्र मानकर भाषा-परिवारोंका विवेचन प्रस्तुत किया गयाहै। भारत से तात्पर्य वर्तमान भौगोलिक सीमाओंवाला भारत नहीं है। वह बृहत्तर भारत है जिसमें पाकिस्तान, बंगला देश और बर्मा भी सम्मिलित है। उनका कहना है कि एशिया और यूरोपका कोई भाषा परिवार नहीं है जिसका विवेचन इस बृहत्तर भारतको ध्यानमें रखे बिना किया जासके।

ऐतिहासिक भाषा विज्ञानका अध्ययन बहुत आवश्यक है। इस महत्ताको ज्ञापित करते हुए वे कहतेहैं कि भारतके बारेमें बहुत-सी ऐसी बातें हैं जिनका ज्ञान भाषा-समुदायोंके तुलनात्मक और ऐतिहासिक विवेचन से ही हो सकताहै। जो लोग मानतेहैं कि सामाजिक विकासका वैज्ञानिक दर्शन ऐतिहासिक भौतिकवाद है, उन्हें यहभी मानना चाहिये कि ऐतिहासिक भाषा-विज्ञानके बिना मानव-समाजके इतिहासका ज्ञान अधूरा है, ऐतिहासिक भौतिकवादका ज्ञान अधूरा है।

प्रस्तुत तीनों खण्डोंमें प्रथम खण्ड

तीनों खण्ड ऐतिहासिक भाषा विज्ञानके क्षेत्रमें अनुसन्धानकी सामग्री प्रस्तुत करतेहैं। प्रधान रूपसे ध्यान हिन्दीभाषापर केन्द्रित है। तदर्थ उन्होंने चार गणभाषा समुदायोंकी भूमिकाको निर्णायक मानाहै। ये चारों गण भाषा समुदाय हैं—१. कोसल २ शूरसेन ३. मगध और ४. कुरु।

उनका कहनाहै कि वैदिक भाषाका विकास मध्यदेशीय भाषा या भाषाओंके आधारपर हुआहै। वैदिक भाषाका ध्वनितंत्र प्राचीन मध्यदेशीय भाषाके

९. भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी, खण्ड १, १९७९ ई. पृ. १०-१२

१०. वही पृ. ११ (भूमिका)।

ध्वनितंत्रसे बहुत भिन्न है; बांगरुको छोड़कर ब्रजसे लेकर मैथिली तक--हिन्दी जनपदीय भाषाओंका ध्वनितंत्र वैदिक भाषा—और संस्कृत—के ध्वनितंत्रकी अपेक्षा प्राचीन मध्यदेशीय भाषाके ध्वनितंत्रसे अधिक मिलता-जुलताहै।

तीनों खण्डोंमें, प्रथम खण्डके अन्तर्गत आर्यभाषा केन्द्र और हिन्दी जनपदपर विचार हुआहै। इसके अन्तर्गत ध्वनितंत्र, शब्दतंत्र और रूपतंत्रपर विस्तारसे लिखा गयाहै। इसके बाद मगध, मिथिला, भोजपुरी क्षेत्र, कोसल, ब्रज, कुरु जनपद, पुरानी साहित्यिक हिन्दी और जनपदीय भाषाएं, पंजाब और हिन्दी, राजस्थान और हिन्दी और आर्यभाषा केन्द्र और हिन्दीपर अलग-अलग शीर्षकोंमें लिखा गयाहै। आर्य-भाषा केन्द्रकी सीमान्त भाषाएं सिन्धी और कश्मीरी पर स्वतंत्र अध्याय लिखाहै। 'आर्यभाषा केन्द्र और पुराण-परम्पराएं नवीन और प्राचीन'—पर भी स्वतंत्र अध्याय है। परिशिष्टके अन्तर्गत दो शीर्षक हैं—१. बलाघात और वर्ण संयोजन पद्धति और २. अतिरिक्त महाप्राणताकी समस्या।

□ प्रथम खण्ड : आर्यभाषा केन्द्र और हिन्दी जनपद

प्रथम खण्ड एक प्रकारसे आर्यभाषाको केन्द्रमें रखकर लिखा गयाहै। इसी केन्द्रमें हिन्दीका रूप बना है और उसका भौगोलिक प्रसार हुआहै। सीमान्तकी भाषाओंमें सिन्धी और कश्मीरीको लिया गयाहै।

ध्वनितंत्र

प्रथम खण्डके प्रथम अध्यायका शीर्षक—'आर्य-भाषा केन्द्र और हिन्दी ध्वनितंत्र' है। इसमें ५ शीर्षक हैं—१. प्रस्तावना २. मूर्द्धन्य ध्वनियोंके केन्द्र ३. तालव्य ध्वनियोंके केन्द्र ४. सघोष महाप्राण ध्वनियोंके केन्द्र और ५. विशिष्ट ध्वनि केन्द्र और हिन्दी जनपद।

□ [अ] प्रस्तावना

प्रस्तावनाके अन्तर्गत संस्कृतकी तीन विशिष्ट ध्वनियां /ष/, /ऋ/, तथा /क्ष/—पर विचार किया गयाहै। [इनमें /क्ष/को ध्वनि कहा गया है—वास्तव में वह संयुक्त व्यंजन है।] ये तीनों ध्वनियां संस्कृत की मूल ध्वनियां हैं क्या? ये हिन्दीमें नहीं मिलती और संस्कृतमें मिलतीहैं। इसीलिए इनपर स्वतंत्र रूप से विचार करनेकी आवश्यकता है। ये सभी (तीनों) ध्वनियां मूर्द्धन्य हैं और इनका एक विशाल प्रदेशमें एक साथ एकही समयमें लुप्त हो जाना आश्चर्यका विषय माना गयाहै। तालव्य शकार /श/ के सम्बन्धमें कहनाहै कि बांगरु समेत हिन्दी प्रदेशकी सभी बोलियों में दन्त्य सकारका व्यवहार होताहै। पूर्वी समुदायकी आर्यभाषाओंमें केवल बंगला अपने परिनिष्ठित रूपमें, तालव्य /श/ का व्यवहार करतीहै और इतना करती है कि तत्सम रूपोंके दन्त्य सकारको भी वह तालव्य बना देतीहै। इस स्थितिको देखकर प्रश्न उपस्थित करते हुए कहतेहैं कि क्या अधिकांश आर्यभाषा क्षेत्र में ध्वनि-प्रकृति-सम्बन्धी ऐसा मौलिक परिवर्तन हुआ कि तालव्य /श/ का लोप होगया? या इस संभावना को स्वीकार करें कि आर्यभाषाओंके एक समुदायमें तालव्य/श/ का व्यवहार होता ही न था? /क्ष/ और /ण/ के समान /ज्ञ/ सुसंस्कृत उच्चारणकी विशेषता माना जाताहै। यदि लोग /श/ नहीं बोल पाते तो यह उनके अशिक्षित और असंस्कृत होनेका प्रमाण है।

[आ] मूर्द्धन्य ध्वनियोंके केन्द्र

मूर्द्धन्य ध्वनियोंके सम्बन्धमें कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निम्नलिखित माने जा सकतेहैं। उनका कहना है—

० मेरी मान्यता भी है कि संस्कृतके मूल रूपमें ये ध्वनियां नहीं थीं।

० मेरी मान्यता यह भी है कि मूर्द्धन्य ध्वनियोंके विकास केन्द्र भारतमें ही थे।

० संस्कृतके मूल रूपमें मूर्द्धन्य ध्वनियां नहीं थी। संस्कृतके विकासकी अवस्थामें जब इन ध्वनियोंका व्यवहार होने लगा, तब यूरोपकी अनेक भाषाओंने ऐसे भारतीय भाषा तत्त्व ग्रहण किये जो मूर्द्धन्यीकरण वृत्तिके साक्षी हैं। आर्य और द्रविड़ दोनों भाषा परि-वारोंको किसी ट वर्ग प्रेमी भाषा परिवारने प्रभावित किया। यह असंभव नहीं कि यह ट वर्ग प्रेमी परिवार भी भारतीय आर्य परिवारके अन्तर्गत हो, उसकी एक शाखा हो। शाखा कहनेसे यह आशय नहीं है कि उसका उद्भव किसी आर्यभाषासे हुआ। आशय यह है कि यहां भिन्न प्रकारकी ध्वनियोंके अनेक विकास-केन्द्र रहेहैं। उनके परस्पर सम्पर्क और भाषा-तत्त्वोंके परस्पर आदान-प्रदानसे आर्य भाषा-परिवारके ध्वनि-तंत्रका निर्माण हुआ। किसी भाषा-परिवारका ध्वनि-तंत्र स्थिर इकाई नहीं होता आधुनिक आर्यभाषाओं का ध्वनितंत्र एक-सा नहीं है; यह सहज अनुमेय है कि

प्राचीन कालमें विभिन्न आर्य गण-भाषाओंका ध्वनि-तंत्र भी एक-सा नहीं था। संस्कृतमें मूर्द्धन्यीकरणकी कुछ प्रवृत्तियां व्यापक हैं, किन्तु आधुनिक आर्यभाषाओं में उनका अभाव है। यह बिल्कुल संभव है कि मध्य-देशकी आर्यभाषामें पहले ट वर्गीय ध्वनियोंका व्यवहार बिल्कुल न होताहो, उसके पूर्व और पश्चिमकी कुछ आर्य गण-भाषाओंमें इनका व्यवहार यथेष्ट रूपमें होता हो। आर्य गण-भाषाओंमें जो भाषा संस्कृत नामसे विख्यात हुई, वह मूलतः मध्यदेशकी भाषा थी। अपने मूल रूपमें वह मूर्द्धन्य ध्वनियोंका व्यवहार नहीं करती थी। 'संस्कृत' रूपमें इन ध्वनियोंका व्यवहार बहुत पर्याप्त रूपमें करने लगी। इसका कारण अन्य आर्य गण-भाषाओंका प्रभाव हो सकताहै।

☐ द्रविड़ परिवारमें एक भाषा अबभी ऐसी है, जिसमें तीनों सकार बोले जातेहैं और वे अर्थ-विच्छेदक भी हैं। यह नीलगिरि पर्वतमालामें रहनेवाली तोद नामकी अल्पसंख्यक द्रविड़ जाति है। इसका अध्ययन और विवेचन संस्कृत तथा द्रविड़ भाषाओंके विशेषज्ञ एमेनोने कियाहै। उनका कथन प्रामाणिक माना जायेगा।

☐ संस्कृत उस क्षेत्रकी मूल भाषा है जिसमें '/र्/ की प्रधानता थी। इसका एक प्रमाण यह है कि संस्कृत धातुओंमें अन्य व्यंजनोंके साथ जितना /र्/ का संयोग होताहै, उतना /ल्/ का नहीं। जहां /र्/ के स्थानपर /ऋ/ का व्यवहार होताहै, वहाँ वर्ण-संकोचकी वृत्ति काम करतीहै।......मध्यदेशमें /र्/ ध्वनि की प्रधानता थी और वह स्थिति बहुत कुछ अबभी बनी हुईहै।

(इ) तालव्य ध्वनियोंके केन्द्र

तालव्य ध्वनियोंके केन्द्रोंका विश्लेषण प्रधान रूप से 'शकार' को लेकर किया गयाहै। इस सम्बन्धमें कहाहै—

पालि ध्वनि तंत्रकी एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसमें केवल दन्त्य /स्/ का व्यवहार होताहै... यह पालि भाषा मगधकी भाषा नहीं हो सकती क्योंकि इसमें शकारकी बहुलता नहीं है, बहुलताकी जगह उसका अभाव है। अशोकके शिलालेखोंकी भाषा पालि नहीं है, यह तथ्य उल्लेखनीय है। अशोक मगध के थे। उन्होंने जिस सांस्कृतिक भाषाका व्यवहार किया, उसकी विशेषताएं पालिके लक्षणोंसे भिन्न है। गौतम बुद्ध पालि बोलतेथे, इसका कोई प्रमाण नहीं है, पर वे कोसलके थे, इसलिए उनकी भाषामें दन्त्य /स्/ की प्रधानता अवश्य रही होगी। यह विशेषता पालि को गौतमबुद्धसे अवश्य जोड़तीहै।

☐ संस्कृत और आधुनिक आर्यभाषाओंके ध्वनितंत्रोंकी तुलना कीजाये तो एक तथ्य यह सामने आताहै कि /च्/ और /ज्/ की तुलनामें /झ्/ का व्यवहार संस्कृतमें बहुत कम होताहै जबकि आधुनिक आर्यभाषाओंमें /च्/ और /ज्/ के साथ /झ्/ का व्यवहार भी बहुत होताहै, विशेषतः हिन्दी और मराठीमें। इसका कारण यह हो सकताहै कि /च्/, /ज्/, /झ्/ के केन्द्र मूलतः मध्यदेशमें नहीं थे वरन् पश्चिममें या उत्तर पश्चिममें थे। जिस समय इन केन्द्रोंने संस्कृतके विकासको प्रभावित करना शुरु किया, उस समय संस्कृतपर, अल्पप्राण ध्वनि प्रकृतिवाली भाषाओंका प्रभाव भी बढ़ रहाथा। इसलिए संस्कृतमें /च्/, /ज्/ का व्यवहार अधिक हुआ, /झ्/ का कम। आधुनिक आर्यभाषाओंपर जहाँ यह अल्पप्राणता वाला प्रभाव कम था, वहां संस्कृत की अपेक्षा /झ्/ का व्यवहार अधिक हुआ।

आर्यभाषाओंके ध्वनितंत्रपर विचार करते समय प्रधान रूपसे संस्कृतकी ध्वनियों और आर्यभाषाओंकी ध्वनियोंका तुलनात्मक भौगोलिक विवरण दिया गया है। संस्कृतके साथ अन्य भाषाओंके—प्रधान रूपसे आर्यभाषाओंके—ध्वनितंत्रोंको समझने-समझानेका प्रयत्न इनमें है। जो प्रवृत्तियां प्रधान रूपसे इतिहासमें मिलतीहैं, उन्हींको निर्देशित कियाहै। संस्कृत भाषा के निर्माणमें अलग-अलग भाषाओंका योगदान है। इस योगदानको समझनेमें ध्वनियोंका वह विश्लेषण उपयोगी है।

लौकिक संस्कृत—का भाषावैज्ञानिक अध्ययन कैसे किया जाये? उसको स्थिर (न बदलनेवाली) और शाश्वत तथा सनातन रूपमें समझानेका प्रयत्न हुआहै। और उसीको आर्यभाषाओंकी जननी मानकर बादकी भाषाओंका—प्राकृत, अपभ्रंश, आधुनिक आर्यभाषाओंका—इतिहास लिखा जाताहै। ऐसा लिखते समय बादकी सभी भाषाओंको एक प्रकारसे विकृत रूप मान लेनेकी (ध्वनि-परिवर्तन सम्बन्धी) परम्परा-सी **ऐतिहासिक भाषा विज्ञान** अन्तर्गत मान ली गयीहै। डॉ. रामविलास शर्माका ध्वनितंत्रों

का विश्लेषण इस अवधारणाका खण्डन करताहै। उनका विश्लेषण संस्कृत और आधुनिक भाषाओंका सम्बन्ध समझनेमें उपयोगी है।

(ई) सघोष महाप्राण ध्वनियोंके केन्द्र

ध्वनि-तंत्रोंका सम्बन्ध वास्तवमें भूगोलसे है। संस्कृतका भाषा-भूगोल समझनेके लिए आर्यभाषाओं के ध्वनि-केन्द्रोंकी पहचान आवश्यक है। संस्कृत भाषा की ध्वनियां भारतके अलग-अलग ध्वनि-केन्द्रोंसे प्रभावित हैं। वस्तुत: संस्कृत भाषाके निर्माणमें इन सब ध्वनि-केन्द्रोंका योगदान है। संस्कृतको डॉ. रामविलास शर्मा भौगोलिक रूपमें मध्यदेशसे जोड़तेहैं। उनका निष्कर्ष इस प्रकार है—

"सघोष महाप्राण /घ/ /ध/, /भ/ ध्वनियोंके स्वतंत्र केन्द्र थे, इसी प्रकार /च/, /ज/ आदि तालव्य ध्वनियोंके /ट/ /ड/ आदि मूर्द्धन्य ध्वनियोंके स्वतंत्र केन्द्र थे। इन केन्द्रोंको आर्यभाषा केन्द्र कहना उचित है। **इन विभिन्न केन्द्रोंके घनिष्ट और सुदीर्घ संपर्कके फलस्वरूप संस्कृतके ध्वनि तंत्रका निर्माण हुआ।** मध्यदेशीय आर्यभाषा अपने मूल रूपमें तालव्य और मूर्द्धन्य केन्द्रोंके प्रभावसे मुक्त थी। बाँगरू, ब्रज, अवधी आदि जनपदीय भाषाओंके ध्वनितंत्रोंके विवेचनसे जो तथ्य सामने आतेहैं, उनकी पुष्टि स्वयं संस्कृतके ध्वनितंत्रके विकास-विश्लेषणसे होतीहै। इस विकास-विश्लेषणकी पद्धति यह है कि संस्कृत शब्द भंडारके मूल तत्त्वोंको हम एक ओर रखें, इन तत्त्वोंके आधार पर बने हुए शब्द-रूपोंको दूसरी ओर रखें, फिर दोनों की तुलना करके मूल और गौणका भेद पहचानें, भाषाकी मूल ध्वनि प्रकृति और बादकी अर्जित ध्वनि प्रकृतिका भेद जानें। वह मूल ध्वनि प्रकृति हिन्दी तथा जनपदीय भाषाओंकी प्रकृतिके अनुकूल है। यह निष्कर्ष प्राकृत-अपभ्रंशके साथ हिन्दीका सम्बन्ध जोड़नेसे हिन्दीको उनके विकास-क्रमकी एक कड़ी माननेसे नहीं निकलता; यह निष्कर्ष संस्कृतके मूल रूपको पहचाननेसे निकलताहै।" ११

शब्दतंत्र

२७. ध्वनितंत्रके बादका दूसरा अध्याय 'शब्दतंत्र' का है। इस अध्यायमें तत्सम, तद्भव रूपोंपर विचार हुआहै। संस्कृतके शब्द तत्सम और हिन्दीके शब्द तद्भव - यह प्रचलित मान्यता है। इस मान्यता पर आपत्ति की गयीहै। कहाहै यदि संस्कृतके अनेक शब्द अपने पूर्व रूपोंका विकास है, तो उन पूर्व रूपों को देखते हुए 'संस्कृत' रूप भी तद्भव हुए। और फिर जब संस्कृतके शब्द तद्भव हुए तो फिर क्या हिन्दीके शब्दोंको तद्भवोंके तद्भव कहना चाहिये ? तद्भवीकरणको ठीकसे समझने-समझानेकी आवश्यकता पर बल दिया गयाहै।

शब्दतंत्रके अंतर्गत ५ उपशीर्षक हैं —१. प्रस्तावना, २. हिन्दी शब्द रूपोंकी प्राचीनता, ३. तद्भवीकरणकी प्रक्रिया ४. जनपदीय आदान-प्रदान और ५. शब्द निर्माण प्रक्रिया।

ऐसे अनेक शब्दोंके उदाहरण बतलाये गयेहैं, जो हिन्दीमें मिलतेहैं और संस्कृतमें नहीं मिलते। पालि तथा प्राकृत भाषाके ऐसे बहुतसे शब्द हैं। ये शब्द हिन्दीमें मिलतेहैं किन्तु स्वयं संस्कृतमें नहीं मिलते। इसलिए यह मानना चाहिये कि संस्कृतका शब्द समूह अपने निर्माण कालमें अनेक जनपदीय भाषाओंसे प्रभावित रहाहै।

तद्भवीकरणकी प्रक्रियाको किसी युग विशेषकी घटनासे जोड़ना ठीक नहीं है। वह भाषामें परिवर्तन की निरंतर प्रक्रिया है। पहले कोई शुद्ध रूप थे और फिर वे युग विशेषमें तद्भव बन गये—ऐसी धारणा को मिथ्या कहा गयाहै। पुराने शब्द रूपोंमें परिवर्तन सब भाषाओंमें हुएहैं। संस्कृतमें हुए हैं और आधुनिक आर्यभाषाओंमें हुएहैं। तद्भवीकरणकी प्रक्रिया वास्तवमें व्यापक है।

सघोष महाप्राण /घ/, /ध/, /भ/—को बहुत महत्त्वपूर्ण माना गयाहै। इस सम्बन्धमें कहाहै कि इण्डोयूरोपियन भाषाओंके विवेचनमें यह धारणा पुष्ट होतीहै कि संस्कृत शब्दोंमें सघोष महाप्राण ध्वनि हो और बाहरकी भाषाओंके प्रतिरूपमें न हो तो संस्कृत रूप प्राचीन होगा। इसी प्रकार सामान्य रूपमें यहभी मानना ठीक होगा कि आधुनिक आर्यभाषाओंमें जहां सघोष महाप्राण ध्वनि हो और संस्कृतमें न हो वहां आधुनिक रूप प्राचीन ध्वनि सुरक्षित किये होगा।

जनपदीय आदान-प्रदानके अनेक उदाहरण मिलते हैं। इससे यह धारणा पुष्ट होतीहै कि प्रत्येक शब्द का सम्बन्ध संस्कृतसे बतलाना उचित नहीं है। तद्-

---

११. भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी, खण्ड १, १९७९ ई., पृ. ६२।

भवीकरण आधुनिक आर्यभाषाओंके बीचमें भी मिलता है। तद्भव मानेजाने वाले शब्दोंका अध्ययन इस संदर्भ में उपयोगी होगा। मराठी-हिन्दी, बंगला-हिन्दीके शब्द-समूहोंके आदान-प्रदानपर विचार करते हुए इस बात की पुष्टि की गयीहै कि इन आर्यभाषाओंमें आपसमें सीधे आदान-प्रदान हुआहै। संस्कृतको आधार मानकर समाधान खोजना उचित नहीं है।

रूपतंत्र

तीसरा अध्याय 'आर्यभाषा केन्द्र और हिन्दी रूप तन्त्र है'। क्या हिन्दीका रूप तन्त्र संस्कृतके आधार पर बनाहै ? संस्कृत संश्लिष्ट भाषा है और हिन्दी ही नहीं आधुनिक अन्य आर्यभाषाएं विश्लिष्ट हैं। संस्कृत के रूपोंकी तरह आधुनिक आर्यभाषाओंके रूप नहीं बनते।

विश्लिष्ट हो जानेसे कोई भाषा कमजोर नहीं हो जाती। अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन आदि भाषाएं ग्रीक तथा लैटिनकी भांति संश्लिष्ट नहीं है। और इसी प्रकार आधुनिक आर्यभाषाएं भी संस्कृतकी भांति संश्लिष्ट नहीं है। भाषाओंका विश्लिष्ट होना, उनकी प्रगति का लक्षण मानना चाहिये। विश्लिष्ट होकर भाषा और सरल हो जातीहै और अधिक शक्तिशाली भी। अंग्रेजी, जर्मन भाषाके शक्तिशाली हो जानेके कारणों पर इस दृष्टिसे विचार करना चाहिये।

डॉ. रामविलास शर्माने इस बातपर आश्चर्य व्यक्त किया कि संस्कृत और प्राकृत दोनोंके रूपतत्र में समानता बनी रहतीहै जबकि ध्वनितंत्रमें भारी परिवर्तन दिखायी देताहै। ऐसा क्यों हुआ ? डॉ. रामविलास शर्मा जिस प्रकार संस्कृत शब्द-समूह तथा हिन्दी शब्द-समूहके सम्बन्ध-सूत्रोंका विश्लेषण करनेका प्रयत्न करतेहैं, वैसा प्रयत्न प्राकृतके शब्द-समूह और आधुनिक भाषाओंके शब्द-समूहके साथ नहीं करते। जैसे प्राकृतके रूपतंत्र तथा ध्वनितंत्रपर आश्चर्य व्यक्त किया, वैसेही अपभ्रंशोंके सम्बन्धमें भी लिखा। अपभ्रंशोंके सम्बन्धमें बतालाया कि अपभ्रंशमें कारक-चिह्न बहुत हैं; कारकोंकी संख्यामें भले ही कमी हुई हो; उनके चिह्नोंमें वृद्धि ही हुई। संस्कृतमें शब्दोंके अनेक वर्ग होतेथे, किसीके अन्तमें ह्रस्व /अ/, किसीके अन्तमें दीर्घ /आ/, कोई इकारान्त, कोई उकारान्त और कोई मात्र हलन्त। इन विभिन्न वर्गोंके शब्दोंके साथ अलग-अलग प्रकारके कारक-चिह्न लगतेथे। अपभ्रंशमें शब्दोंके वर्ग कम होगये किन्तु कारक-चिह्नों की संख्या बढ़ गयी। यह आश्चर्यकी बात है।

हिन्दीके कारक चिह्नोंके सम्बन्धमें डॉ. रामविलास शर्मा, आचार्य किशोरीदास वाजपेयीके विचारोंका समर्थन करतेहैं। वे लिखतेहैं—

"वाजपेयीजीकी यह स्थापना अत्यन्त सारगर्भित है: 'विभक्तिका रूप बदलता नहीं है। हिन्दीकी /ने/, /को/, /में/, /से/ आदि विभक्तियां सदा एकरूप रहती हैं' (हिन्दी शब्दानुशासन, पृ. १२८)। क्रियाका सार-तत्त्व जैसे लिंग-वचन-भेदसे मुक्त है, वैसे ही क्रियाके साथ कारकका सीधा सम्बन्ध न होनेसे वहभी लिंग-वचन-भेदसे मुक्त होगा। "शुद्ध क्रियामें लिंग, वचन आदि कुछ है ही नहीं (उप. पृ. १३८)। औरभी—"क्रियाके साथ जिसका सीधा सम्बन्ध हो, उसे 'कारक' कहतेहैं—'क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्'। (उप. पृ. १३९)। वैदिक भाषा सुदीर्घ विकासका परिणाम है... ...वाजपेयीने मूल भाषा तथा वैदिक-संस्कृतकी चर्चा कीहै। वैदिक संस्कृत एकमात्र मूल भाषा नहीं है। वैदिक भाषाके समानान्तर कौनसी भाषाएं बोली थीं, उनका कुछ ज्ञान तुलनात्मक भाषा-विज्ञानसे हो सकताहै। इस पुस्तकमें मध्यदेशकी आर्यभाषा अथवा आर्य गणभाषाओंके बारेमें जो कुछ कहा गयाहै, वह 'हिन्दी शब्दानुशासन' के इस मूल भाषावाले सूत्रका विस्तार है।"[१२]

हिन्दीके सर्वनामोंपर विचार करते समय उसके संयोजक और वियोजक रूपोंका विश्लेषण किया गया है। अलग-अलग केन्द्रोंमें उसके प्रचलित रूपोंको बतलाकर उनकी प्रवृत्तियोंका विवेचन भी कियाहै। यह सब हिन्दीभाषाके रूपतंत्रको समझनेमें सहायक है। लिखाहै—

"अपभ्रंश-कालमें जो कारक-रचना सम्बन्धी 'अराजकता' दिखायी देतीहै, वह अंशतः संस्कृतमें भी है, संस्कृतकी अपेक्षा वैदिक-भाषामें अधिक है। इस 'अराजकता' का कारण यह है कि वैदिक भाषाके

---

१२. भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी, खण्ड १, उपर्युक्त, पृ. १०२।

निर्माण कालमें विभिन्न आर्य गण-भाषाओंकी प्रवृत्तियां एक दूसरेसे टकरा रहीहैं। संस्कृतमें ऐसी टक्करको सीमित करनेका प्रयास किया गया पर बोलचालके स्तरपर वैदिक कालकी भिन्न प्रवृत्तियां निरंतर सक्रिय बनी रहीं। सर्वनाम-संयोजक पद्धतिके मुख्य केन्द्र मध्य देश और पूर्वी प्रदेशमें थे; सर्वनाम-वियोजक पद्धतिका मुख्य केन्द्र कुरुगणका क्षेत्र था। उदीच्य जन कृदन्त-प्रिय थे; कृदन्त क्रियाएं सर्वनामी बन्धनोंसे मुक्त थीं। यहीं उदीच्य जन कारक रचनाको सर्वनाम-चिह्नोंसे मुक्त कर रहेथे।...हिन्दीके 'परसर्ग' मूलतः विशेषक हैं जिनका एक अंश सर्वनाम हैं या वे 'विशेषक' का कार्य करनेवाले सर्वनाम हैं। उनकी रचना प्रक्रिया वही है जो संस्कृतकी विभक्तियोंकी है। हिन्दी तथा अन्य आर्यभाषाओंमें सर्वनामोंकी वह प्राचीन भूमिका कभी समाप्त नहीं हुई; इसलिए यह स्वाभाविक है कि ये भाषाएं पूर्णतः विश्लिष्ट नहीं हुईं।"[१३]

क्रियाओंके तिङन्त और कृदन्त दोनों रूपोंपर विचार करते हुए कहा गयाहै कि दोनोंही रूप भारतीय भाषाओंमें मिलतेहैं। तिङन्त रूप उदीच्य है, यह बात प्रसिद्ध है। दूसरा रूप कृदन्त वाला मध्यदेशसे सम्बन्ध रखनेवाला होना चाहिये। किन्तु डॉ. रामविलास शर्माकी शिकायत यह है कि मध्यदेशीय समुदायका उल्लेख नहीं किया जाता। कारण यह है कि वैदिक भाषा बोलनेवाले आर्य मध्यदेशीय थे, यह कोई नहीं कहता। वैदिक आर्य उदीच्य हैं और कृदन्त प्रिय आर्य भी उदीच्य हैं। इसलिए यह माना जाताहै कि संस्कृत एक ही प्रदेश और एक ही समाजकी भाषा है; परिवर्तन होता ही है, यहां भी कुछ परिवर्तन होगया।

'हिन्दीके क्रिया रूपोंके विकासके सम्बन्धमें डॉ. रामविलास शर्मा आचार्य किशोरीदास वाजपेयीके विचारोंका समर्थन करतेहैं। लिखाहै—

"वाजपेयीजीका यह कथन संस्कृत और हिन्दीका अन्तर समझनेके लिए महत्त्वपूर्ण है—"संस्कृत से हिन्दीमें यहां एक मौलिक प्रयोगभेद है। संस्कृतमें सकर्मक क्रियाओंके—कर्मकी उपस्थितिमें—भाववाच्य प्रयोग नहीं होते। वहां कृदन्त सकर्मक क्रियाएं (भूतकाल की) कभी भी भाव-वाच्य न होंगी। उपस्थित कर्मके अनुसारही उनके लिंगवचन होंगे। परन्तु हिन्दीमें स्थिति भिन्न है ..'हमने लड़की देखी' और 'हमने लड़कीको देखा' यों उसी क्रियाके कर्मवाच्य और भाववाच्य दोनों प्रकारके प्रयोग होतेहैं। और हमने तुमको देखा या तुमने हमको देखा केवल भाववाच्य। तुम और हम—कर्त्ता और कर्म दोनों ही—बहुवचन हैं; परन्तु क्रिया एकवचन है—देखा। यह भाव वाच्य क्रिया कभी भी कर्मवाच्य नहीं बनायी जा सकती।' (हिन्दी शब्दानुशासन, पृ. ४२४)। जैसे कारक रचनामें अनेक पद्धतियोंका मिश्रण है, वैसे ही क्रियापद रचनामें अनेक पद्धतियां कार्य करती दिखायी देतीहैं।"[१४]

हिन्दीकी रूप रचनाको समझने-समझानेमें केवल अपभ्रंशको आधार मानकर चलना ठीक नहीं है। तदर्थ आधुनिक आर्यभाषाओंकी रूप रचनाको समझना आवश्यक है। जनपदीय भाषाओंमें वे सब रूप सुरक्षित हैं जिनके आधारपर हिन्दीके रूपतंत्र बनेहैं।

(आगामी अंक : वर्तमान लेख (१) का उत्तरांश)

---

१३. भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी, खण्ड १, (१९७९) पृ. ११६-११७।

१४. भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी, खण्ड १, (१९७९) ई. पृ. १२४-१२५।

'प्रकर'का प्रकाशन-विवरण

फार्म ४ (नियम ८)

प्रकाशन स्थान : ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७

प्रकाशन अवधि : मासिक

मुद्रक/प्रकाशक/सम्पादक : विद्यासागर विद्यालंकार

नागरिक : भारतीय

पता : ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७

स्वामित्व : विद्यासागर विद्यालंकार

मैं विद्यासागर विद्यालंकार घोषित करताहूं कि मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार उपर्युक्त विवरण सत्य है।

२८.२.९४ —विद्यासागर विद्यालंकार

अज्ञेय काव्यकी भाषा संरचनाका अध्ययन[1]

लेखिका : डॉ निर्मला शर्मा

समीक्षक : प्रो. शलभ

अज्ञेय आत्मनेपदी और अभिजात संस्कारोंके कवि हैं, जिनपर पाश्चात्य कला-दृष्टि और जीवन-बोधका भी पर्याप्त प्रभाव है—नयी अनुभूति, नये विचार और नये शिल्पके आकांक्षी रहेहैं वे। एक 'फ्लोटिंग इन्डिविजुअल' हैं—अज्ञेय। एम. एन. रायकी चिन्तन ऊष्माके साथ, अस्तित्ववादी अवधारणाको भी उनके विस्तृत साहित्य-सृजनमें स्थान मिलाहै, जिसके उनके उपन्यास, कहानियां, 'उत्तरप्रियदर्शी' जैसी काव्य-नाट्यकृति और 'असाध्य वीणा' जैसी लम्बी किन्तु महत्त्वपूर्ण कविता प्रमाण हैं। यह ठीक है कि ऐसी लम्बी और श्रेष्ठ कृति इस कलमसे और नहीं लिखी गयीं।

वैसे यह 'नयी कविता' वास्तवमें नव्य रोमेन्टिक अनुभूतिकी उपज है—अपने मिजाजसे वह यही तो है। नियो रोमेन्टिसिज्मकी लहरने यूरोपको कई कवि दियेहैं। 'नया' और 'नवल' लिखने और कहलानेकी फैशन-लहर इस शताब्दीके शुरुसे आरम्भ हो गयीथी। 'स्पीअर हैड' की तर्जपर 'तारसप्तक' का क्या प्रकाशन नहीं हुआ? सृजन, चिन्तन और आलोचनाकी ऊष्मा ने नये युगके रागबोधसे रचनाकारको उद्वेलित ही नहीं, उसे रचनाओंमें उत्सर्जित करनेकी ओर भी प्रवृत्त किया।

और नया रागबोध? वह तो हर युगके अपने अन्तस्तलसे ही पैदा होताहै और उसकी संवेदना निरन्तर बदलावकी प्रक्रियासे स्वत: गुजरतीहै। हम उसे रोक नहीं सकते बदलाव तो अवश्यंभावी है चाहे हम चाहें या नहीं भी चाहें। परन्तु 'इस परिवर्तनकी पहचान' जितनी सही, जितनी गहरी, स्पष्ट और शीघ्र होतीहै, साथही सृजनात्मक क्षमताका समीचीन विकास जो रचनाकार कर पाताहै, उसकी रचनाएं युगके बदलावको उतनेही संतुलित और सम्यक् रूपसे रूपायित करतीहै। नये युगके रागबोधको आत्मसात् कर लेनेपर भी रचनाकारकी मानसिक स्थितियों, अन्तश्चेतनामें उपजे मनोवेगों और अन्तर्विरोधोंके तनावों, अपने परिवेशके लगाव और उससे साक्षात्कार से रचनाका रचाव होताहै। अंतत: इसी कारण रचनाकारोंकी रचनाओंमें भी निसर्गत: भिन्नता आतीहै। वैसे प्रत्येक रचनाकारका अपना ही एक 'फैन्टासमागोरिक चैम्बर'या संकल्पना कक्ष होताहै, जहां अनेकानेक स्मृतियां, जीवन मूल्य, विम्बवती अवधारणाएं, वांछित मनोरथ और इच्छाएं, अपनी अभीप्सित छाया-छवियों को आकार देती रहतीहै। यही नहीं, यहीं दृश्यमिश्रण का कार्यभी अनायास ही चलता रहताहै, अज्ञेयके शब्दों में कहें तो—'किरण अप्सराएं भारहीन पैरोंसे थिरकती हैं'—और 'रसास्वादन : मेरी स्मृति अभिभूत है… ओ आस्वाद / मेरी ले गयीहै प्रत्यभिज्ञा मुझे उस डार तक' (कितनी नावोंपर कितनी बार) या फिर वहां—'तुम्हारी देह/ मुझको चमक चम्पेकी कली है / दूरसे ही/ स्मरणमें भी गन्ध देतीहै' (बावरा अहेरी)। जहां जैसे अनुभूति ही मानो भीतरसे भीतरकी ओर जाती रहतीहै। यही रोमानी प्रकृति अपना रागात्मक ऐश्वर्य, जिजीविषाके साथ व्यक्तित्वको खोजती, उसे अभिव्यक्ति देतीहै। और यही सच उस रचनाकारको 'राहोंका अन्वेषी'—प्रकारान्तरसे 'सत्यका अन्वेषी' बनाताहै।

पर यहभी तो सच है कि ऐसी अतीन्द्रिय रोमा-

---

१. प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, २७१३ कूचा चेलान, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : ३३२; डिमा. ९१; मूल्य : २००,०० रु.।

नियत कभी-कभी अपने सृजेताको 'आत्ममुग्ध' कर 'आत्मरति' तक पहुंचा देतीहैं। तब वह अपने भीतर ही भीतर, अपने ही 'व्यक्ति' रूपको खोजने लगता है—'मनुष्य' या साधारण आदमीके स्वरूपको नहीं। और तभी इस नयी कविताके पुरोधाको 'दो महायुद्धोंके बीचके सारे साहित्यको आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक प्रश्नोंके थोथे जंजालमें फंसा हुआ' लगताहै; जैसे वह अपने ही जीवन्त यथार्थ परिवेशकी छूतसे, अपने अन्त-र्जगत्को बचाते हुए, अपनी अन्तर्मुखताको महिमा-मण्डित करना चाहताहै। उसे वास्तविकता अपने ही भीतरके स्तरमें ही लगतीहै, बाहर नहीं। तो क्या रचनाकारकी ऐसी आत्ममुग्धता अपनेही सजीव यथार्थकी अनदेखी नहीं करती ?

नयी कविताके इस प्रयोगधर्मी युगके जन्मका समय विश्वका द्वितीय महायुद्ध ही है; यह वह समय है जब भारत अपनी स्वाधीनताके लिए जी तोड़ संघर्ष कर रहाथा—हजारों भारतीयोंने उस संघर्षके भीषण हवनकुण्डमें अपनी आहुतियां दीथीं। सन् १९४३ में ही तो प्रकाशित हुआथा—'तारसप्तक', जिसका औसत मिजाज था—संशय, अस्वीकृति और अश्रद्धा। परन्तु क्या उस समयके रचनाकारके लिए ये 'सारे सामाजिक—आर्थिक-राजनीतिक प्रश्न थोथे 'जंजाल मात्र' ही थे ? नहीं, ऐसे भी थे जिन्हें खतरा साफ-साफ दीख रहाथा कि 'आज जीतकी रात पहरुए सावधान रहना'। उसे यहभी भलीभांति मालूम है कि 'शिवजीका वरदान' 'रावणके बेटोंको' ही मिलता रहताहै। मुक्ति-बोध, रामविलास शर्मा, भारतभूषण अग्रवाल, गिरिजा-कुमार माथुर जैसे कवि भी 'तारसप्तक' में प्रकाशित हैं। उसके सम्पादककी यही तो विशेषता है कि राम-विलास शर्मा जैसे कविको भी इस संकलनमें सम्मिलित होनेके लिए सहमत कर लिया। डॉ. शर्माने तो इसके लिए अपनी पार्टीसे अनुमति भी ले ली। क्योंकि सत्य की राहोंका अन्वेषी है यह प्रकाशन तारसप्तक। और इस प्रकार इस काव्य-युगके दो शिखर—मुक्तिबोध और अज्ञेय अपना रचना संसार लिये प्रस्तुत हुए।

यह आलोच्य शोध-प्रबन्ध 'अज्ञेय काव्यकी भाषा-संरचनाका अध्ययन' लगभग तीन सौ पच्चास पृष्ठ घेरे हुएहै। सारा अध्ययन सात अध्यायोंमें विभक्त है। 'पुरोवाक्' के बाद प्रथम अध्याय—'प्रयोगवाद और नयी कविताका स्वरूप विकास तथा अज्ञेयके काव्य-भाषादर्श पर निहित है, तो दूसरा और तीसरा अध्याय क्रमशः 'अज्ञेय काव्यकी भाषा, स्वरूप और प्रक्रिया' तथा 'अज्ञेयके काव्यमें सौन्दर्य-विधान' की विवेचना है। चौथा अध्याय इस काव्यकी बिम्ब योजना और पांचवां उसके काव्यमें प्रतीक एवं पुरावृत्त (मिथक) का वर्गीकरण-विश्लेषण प्रस्तुत करताहै। छटवां इस कविके काव्यमें लय, छन्द एवं अलंकारोंका विवेचन है, और अंतिम सातवां 'उपसंहार' के रूपमें इस प्रबन्धकी संक्षिप्त समीक्षा लिये हुएहै।

इस प्रकार कविके काव्य-भाषादर्श, उसका स्वरूप और प्रक्रिया, सौन्दर्य विधान, शब्द विन्यास और बिम्ब योजना, बिविध प्रकारके प्रतीक और मिथक, लय, छंद, तुक-ताल और अलंकार आदिका समीक्षात्मक अध्ययन—अन्यान्य कई लेखकों-आलोचकोंके आलेखों-ग्रन्थोंसे उद्धरित विविध उद्धरणों, संदर्भों, समर्थन या वैमत्यके साथ यहां प्रस्तुत किया गयाहै। साथही इसी कविके द्वारा भाषा और संस्कृति, रचनाधर्मिता, सृजन प्रक्रिया, प्रतीक बिम्ब और मिथक, आधुनिकता-भाव-बोध, सौन्दर्य-बोध, और उसकी स्थिति-सापेक्षता, सांकेतिक अर्थ छायाएं, काव्य-संवेदना और जीवना-नुभूति, प्रयोगधर्मिता आदि महत्त्वपूर्ण बिन्दुओंपर व्यक्त सुचिन्तित विचार-बिवेचनको उपयुक्त स्थानों पर उद्धृत किया गयाहै, यथा—'रचनाके लिए दो चीजें चाहियें : एक तो कलात्मक अनुभूति या संवेदना, दूसरे उसके प्रति तटस्थ भाव जो उसे संप्रेष्य बना सके। और यह एकके पूरा हो जानेके बाद दूसरी होती हो, ऐसा भी नहीं है, संवेदनशील निरन्तर अपनी अनुभूतिसे अपनेको अलग करता चलताहै, तभी तो वह देख पाताहै कि वह अनुभूति देय भी है या नहीं, साधारणभी हो सकतीहै या नहीं, इसी प्रकार तो वह द्रष्टा है (आत्मनेपद); अथवा 'कोईभी रचना रचनाकारके व्यक्तिगत संस्कारोंसे अस्पृश्य नहीं रह पाती, उसकी प्रतिभा रचनापर अपनी विशिष्ट छाप छोड़तीहै (रचना और प्रक्रिया निबन्ध : अज्ञेय), या भाषा कोई सिर्फ आज छप रहे या चलते साहित्यसे जोड़कर देखनेसे कुछ लाभ नहीं होगा। भाषाका सार्थक विचार करनेके लिए समूची संस्कृति/ सभ्यता के साथ उसके समय-सम्बन्धका विचार करना होगा—भाषाको जीवन्तता प्रदान करनेके लिए संस्कृतिमें जीवन होना चाहिये। सृजनात्मकता समाजसे ही सृजनात्मक

भाषा मिलेगी (शाश्वती : अज्ञेय)।

अज्ञेय स्वयंने सौन्दर्य बोध, बिम्ब, प्रतीक और मिथक, छंद और लय आदिपर जो विशद विवेचन कियाहै, उसकी पृष्ठभूमिमें, उनकी सुदीर्घ आयुका जीवनानुभव और गहरा अध्ययन विद्यमान है। तभी तो 'त्रिशंकु' के इस लेखकका विचार है कि 'कलाके भाव व्यक्तित्वसे परे होतेहैं, निर्वैयक्तिक होतेहैं और कवि इन निर्वैयक्तिक भावोंका ग्रहण और आयासहीन अभिव्यंजना तभी करताहै जब वह व्यक्तित्व की परिधिसे बाहर निकलकर एक बृहत्तर अस्तित्वके प्रति अपनेको समर्पित कर सके, अर्थात् उसका जीवन वर्तमान जीवनमें ही परिमित न रहकर अतीतकी परम्पराके वर्तमान क्षणमें भी स्पंदित हो, जब उसकी अभिव्यक्ति न हो जो जी रहाहै, बल्कि उसकी भी हो जो पहलेसे जीवित है।'—उपर्युक्त चिन्तनपरक दृष्टि अपने आपमें स्पष्ट है। क्या इसपर 'ट्रेडिशन एण्ड पॉयट्री' की छाया अंकित नहीं है? 'डिटेच्ड-फीलिंग' या 'आर्ट इज एन एस्केप फ्रॉम लाइव, इन्टू लाइव' या 'एस्केप फ्रॉम पर्सनेलिटी' जैसे फिकरे साहित्य जगत्में लहराते रहेहैं। उसी प्रकार 'उपार्जित क्षण' 'क्षणका महत्त्व' 'अहंका विसर्जन', 'अहंका रूपांतरण' 'अहं का उदात्तीकरण' जैसे विचार-बिन्दुओं पर हिन्दी साहित्यके क्षेत्रमें, नयी कविताके संदर्भमें पिछले दशकोंमें, विचार नहीं होता रहा? आज तो आधुनिकता बोध ही नहीं, अपितु 'उत्तर आधुनिकता' पर विचार करना विद्वत्ताका प्रतीक माना जा रहा है। अपनी जड़ोंसे फिर जुड़नेके लिए कभी 'जय जानकी यात्रा' या 'जय भागवत यात्रा' के प्रयत्न भी हुएथे, क्योंकि टी. एस. इलियट किसी भारतीय दर्शनकी विराट् दृष्टिको छोड़कर, पहले ही अपनी 'कैथोलिक चर्च' लौट चुकेथे।

'कुछ नया लिखने, सोचने और नया करनेकी ललक' रचनाकारमें होना स्वाभाविक नहीं है, क्या?

डॉ. निर्मला शर्माने शोध-प्रबन्ध लिखनेकी प्राय: सारी पारंपरिक प्रक्रियाका निर्वाह करते हुए, इस सौन्दर्यान्वेषी कविकी काव्य-भाषा-संरचनाका यह विस्तृत अध्यन प्रस्तुत कियाहै। जिसमें उपयुक्त स्थलों पर उनकी विवेचनात्मक प्रतिभा अवश्य उजागर हुई है। अज्ञेय तो स्वयं विख्यात यायावर रहेहैं, उनकी इस यायावरीके विस्तृत और गहरे जीवनानुभवोंको अन्तर्मुक्त किये जिस संवेदनाने, नयी कविताके रचाव में जो मूल्यवान् योगदान कियाहै, वह हिन्दी साहित्य के क्षेत्रमें 'महत्त्वपूर्ण' है। 'हाइकू' रचना-शिल्पका रचाव उनकी लघु-लघु कविताओंपर हैही, यथा—

> ज्योतिके/भीतर ज्योतिके/ भीतर ज्योति।/ प्यार है वह—वह सत्/ और तत्/तदसि त्वं एतत्।

'प्रेमोपनिषद्' लिखनेवाली यह कलम प्रणय संवेदनाकी सूक्ष्म, सरल-तरल भाव-गहराईको सहज सांकेतिक शब्द-संयमके साथ रूपायित करती रही। यही नहीं, कि यहां भाव-स्फीति अलभ्य हो, पर वह होते हुएभी पाठकको उसका आभास सहजतासे नहीं हो पाता—रचनाओंके तन्मयकारी प्रभावके कारण। सौन्दर्यमय ऐन्द्रिय-बोध कविके अन्तर्मनकी गहरी रागात्मकता भी किस प्रकार उजागर करताहै, द्रष्टव्य है—

> देह/ वल्ली/ रूपकी/ एक बार बेझिझक देख लो/ पिंजरा है? पर इसीमें से उपजा/ जिसकी उन्नीत शक्ति आत्मा है।/ देखो देह/ वल्ली भव्य बीज रूपाकारोंका/ निर्गन्धा इव किंशुका:/ गन्ध के उपभोक्ता किन्तु कुछ कहें तो/ कब हम बसंत के उन्मेषको/ नहीं उस एक संकेतसे पहचान सके ?/ .....व्रीड़ाहीन कान्तिको/ आंखोंमें समेट लो/ देखो! (सुनहले शैवाल)

लेखिकाका यह मत कि 'सौन्दर्य दर्शन द्रष्टाको रसार्द्र करनेवाला तत्त्व है। यह आनन्दानुभूतिकी एकता और ऊंचे प्रकारका सुख देनेवाली वस्तु है। आचार्य अभिनवगुप्तने इसे 'वीर्य विक्षोभात्मा' माना है। प्रयोग वाद और नयी कवितामें यह सचेतन ऐन्द्रिय सन्निकर्ष का व्यंजक है। वस्तुसे भाव तत्त्वकी ओर चलनेवाला सूक्ष्म और प्रतीयमान सौन्दर्य नयी कवितामें गृहीत हुआहै।' और यह सच है कि कभी-कभी इस कविका सौन्दर्य बोध अध्यात्म दृष्टिसे निष्पन्न वस्तु जगत्को अपने ऐन्द्रिय अनुभवसे सम्पृक्त करताहै, जहां नारीकी देह यष्टिका यौवन-वैभव भी सूक्ष्म और कलात्मक बन पड़ाहै—'वसंतका उन्मेष', 'व्रीड़ाहीन कांति 'निर्गन्धा-इव किंशुक', 'गन्धके उपभोक्ता' आदि बिम्ब उसके सौन्दर्य-रहस्यको उजागर करतेहैं। 'आंगिक सौन्दर्यका स्थूल चित्रण इसीलिए यहां नहीं मिलता'—लेखिकाका यह मत ठीक ही है कि 'यहां सौन्दर्यके प्रभावका चित्रण अधिक सूक्ष्मता और कलात्मकताके साथ व्यक्त; आ

है।" अत: इस कविकी रचनाओंमें प्राय: सभी प्रकारके बिम्ब प्रतीक सहज सुलभ हैं, चाहे फिर वे यौन-प्रतीक ही क्यों न हो। जिस कविकी स्मृति गंधा इतनी प्रफुल्लित हो, महकती रहे, वहां बिम्बों और प्रतीकोंका अभाव असम्भव है। उनकी सभी विशेषताओंकी अभिव्यक्ति इस लेखिकाने अनेक स्थानोंपर, उनके उद्धरणों के साथ इस ग्रन्थमें की है, जो इस कविके अध्येताओं और रसग्राही पाठकोंके लिए महत्त्वपूर्ण हैं। देखिये 'आकाश' और 'दीप' का प्रभाव-स्पर्श—

मेरे विचार हैं दीप/ मेरा प्यार—यह आकाश है।

औरभी यह पुरावृत्त या मिथकीय रूपांकन कितना सहज और सार्थक बन पड़ाहै—'ओ मेरी अतृप्त/ दुःशक्य धधक / मेरी होता/ ओ मेरी हविष्यान्न/ आ तू मुझे खा/ जैसे मैंने तुझे खायाहै, प्रसादवत् ।/ हम परस्पराशी है/ क्योंकि परस्पर पोषी हैं/ परस्पर जीवी हैं ।/ ओ सहजन्या / सहसुभगा/ नित्योढ़ा/ सहभोक्ता/ सहजीवा/ कल्याणी ।' (सुनहले शैवाल)—यहां मनु, पितर, प्रजापति, विष, दितिकन्या, असुरका सार्थक सांकेतिक प्रयोग है।

इस कविकी एक विशेषता यहभी है कि वह अपने सहकर्मी कवि और पाठकको नयी रचनाकी अनुभूति और शिल्पके लिए दीक्षित करता रहाहै, यथा—'सुनो कवि ! भावनाएं नहीं है सोता/ भावनाएं खाद हैं केवल ।'—जैसी रचनाएं भी यहां विद्यमान हैं। साथ ही अपने युगके सृजन-विन्यास और अभिव्यक्ति प्रकार पर भी विस्तारसे चिन्तन कियाहै—इस कविने। यही तो है वह अभिव्यक्ति छंदकी—

छंद है फूल, पत्ती प्रास ।/ सभी कुछमें है नियम की सांस/ कौन सा वह अर्थ जिसकी अलंकृति कर नहीं सकती/ यही पैरों तलेकी घास ?

'पॉयम इज एज नेचुरल्स एज फ्लावर्स टू ए ट्री'-पी. बी. शेलीकी भी यही तो दृष्टि है रचनाकृतिके विषयमें ? इसलिए तो कहा गयाहै कि 'यदि कविता में लय नहीं, तंत्र-कौशल नहीं और वह केवल कथन मात्र है तो वह कविता नहीं।' अत: 'कविताकी लयके लिए तुक-तालका बन्धन अनात्यन्तिक है, अनुभूतिके खरेपन तथा उक्तिकी प्रभावशीलता कविके आन्तरिक अनुशासनसे बंधकर काव्य-लयका निर्माण करतेहैं। कविताका सर्वांग सौन्दर्य मात्रा, वर्ण, गुरु, लघुके बंधनोंमें गठे हुए छन्दोंकी नींवपर नहीं, वरन् लयके आधारपर टिकताहै। कविताकी बुनियादी मांग लय है।' (शाश्वती)। यही नहीं, वह यहभी कहताहै—'आजकी कविता बोलचालकी अन्विति मांगतीहै, पर गद्यकी लय नहीं मांगती।' (नयी कविता, अंक दो) वह संगीतके महत्त्वको अस्वीकार नहीं करता, पर उसका मत है कि 'मेरे लिए यह मानना कठिन है कि नयी कवितामें ताल या लयका महत्त्व नहीं रहा ×× ×× मैं तो यहभी कह सकताहूं कि तुकको भी कविताने छोड़ा नहीं है, या यों कहिये कि तुकसे भी उसने मुक्ति नहीं पायीहै। अन्त्यानुप्रास को छोड़ देना ही तुकसे मुक्ति पा लेना नहीं ··· वास्तवमें वैसा करना काव्यसे मुक्त हो जानाहै, काव्यको मुक्त करना नहीं। और ताल तो काव्यकी पंक्तिका प्रमाणहै—नयी कविता में जो अच्छी कविता है, उसमें इस बोध और तालका उपयोग हम पाते भी हैं।' (आल बाल प्र. सं.)।

वैसे इस कविके काव्यपर काफी कुछ लिखा गया है, और स्वयं कविने भी उसकी संरचनाके विषयमें पाठकको अवगत करायाहै, और इस ग्रन्थकी लेखिका ने उसका प्रभूत रूपसे उपयोग भी कियाहै। कवि तो स्वयं घोषित करताही है—'पर कवि हूं, स्रष्टा, द्रष्टा, दाता/ जो पाता/ हूं अपनेको भट्टी कर उसका अंकुर पनपाताहूं/ पुष्प-सा, सलिल-सा, प्रसाद-सा / अनिवार्य आह्लाद-सा लुटाताहूं/ क्योंकि तुम हो।' (इन्द्रधनु रौंदे हुए ये)। पुष्प,' 'सलिल' 'प्रसाद', 'आह्लाद' और 'तुम' जैसे प्रतीयमान अज्ञेयके रचना-संसारमें बहुलतासे मिलतेहैं। वे निश्चय ही प्रतीकवादी हैं, चाहे अपनेको 'राहोंका अन्वेषी' घोषित करते रहें। इस सुनिश्चित 'पथ' और 'मत'के संधाता हैं, वे। उनकी कृतियों तकके शीर्षक यथा 'इत्यलम्' छायावादी रचनाओंकी समाप्तिकी प्रतीक है 'बावर अहेरी' सूर्य का, 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये'—टूटी हुई रंगीन कल्पनाओं का; 'हरी घासपर क्षण भर'—आजकी रोमानी प्रवृत्ति का प्रतीक है। उनकी रोमानी प्रवृत्ति और रहस्यवादी रुझानके कारण कुछ विद्वान् उन्हें 'नव्य छायावादी' कवि मानते ही हैं। उनका काव्यावतरण भी छायावादी शब्द विन्यास और सौन्दर्य दृष्टि रहीहै, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

और क्या वे 'प्रतीक' के सम्पादक भी नहीं रहे ? प्रतीकवादका यह तिलस्म ही उनकी रचनाधर्मिता

और सृजनकी सीमा है, क्या यह सच नहीं ? प्रतीक अनेक प्रकारकी संकेतार्थी गोपनता लिये होतेहैं, वे इस प्रकार व्यंजनाको बांधतेभी हैं, उसे विस्तरित नहीं करते। यही कारण है कि कविकी अधिकांश कविताएं समग्रताको नहीं, एकाग्रताको व्यक्त करतीहैं। लगता हैं। 'असाध्य वीणा' का 'प्रियंवद' कहीं उसकी अन्तश्चेतनामें गहरे स्तरपर विद्यमान है। उसीका प्रीतिकर गहरा रागबोध बारंबार इन रचनाओंके अनेक बिम्बों, प्रतीकों और कुछ मिथकोंमें रूपावृत्त हो रहा है। 'असाध्य वीणा' निश्चय ही अज्ञेयके रचना-संसार की ऐसी कृति है जो उसकी समग्र उत्कृष्टताका प्रतिनिधित्व करतीहै। यह दूसरी बात है कि 'शाश्वती' के तुक्तक-व्यंग्य इससे भिन्न हैं, जहां 'पोंगा' और 'चोंगा 'घोंघा' में परिणति पातेहैं तो वहीं 'वर्मा', 'शर्मा' 'विश्वकर्मा' में। फिरभी 'शाश्वती' के ये तुक्तक-व्यंग्य भी कविकी मनःस्थितिको उजागर करतेही हैं।

लेखिका डॉ. निर्मला शर्माके ही शब्दोंमें उसे 'पहला बिन्दु तो इस कविमनीषीसे जोड़ताहै, जिनकी रचनाओं ने उसे चिन्तनके लिए बाध्य किया', फलतः यह ग्रन्थ लिखा गया। लेखिकाने उस सारे छाया-प्रकाशका जो कविके सृजन-संसारके क्षेत्रोंमें आताहै, आकलन करने का अच्छा प्रयत्न कियाहै। 'नयी कविता' के निर्माणमें शलाका-पुरुषकी भूमिका निभानेवाले इस कविके काव्यकी भाषा-संरचनापर लेखिकाने जमकर लिखा है। □

मुक्तिबोध : ज्ञान और संवेदना[1]

लेखक : नन्दकिशोर नवल
समीक्षक : हरदयाल

इसे मुक्तिबोधका दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि जबतक वे जीवित रहे, उपेक्षित रहे और जब मर गये तो मसीहा होगये। उनके जीवनकालमें उनका एक भी कविता-संग्रह प्रकाशित नहीं होपाया और उनके मरने के बाद उनकी ग्रन्थावली प्रकाशित होगयी। उनके जीते-जी उनपर किसी आलोचकने कोई ठीक-ठिकाने का लेख भी नहीं लिखा; लेकिन उनके दिवंगत होजाने के बाद उनके जीवन और साहित्यको लेकर मोटे-मोटे ग्रन्थ लिखेजा रहेहैं। उनके साहित्यको लेकर जो अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुएहैं, उनमें से नवीनतम है शीर्षकका आलोचना-ग्रन्थ।

'मुक्तिबोध : ज्ञान और संवेदना' में शोध और आलोचना दोनोंका मिश्रण है। नवलने अपने इस बृहदाकार ग्रन्थमें मुक्तिबोध और उनके साहित्यके सम्बन्धमें कई नयी एवं अल्पज्ञात सूचनाएं प्रस्तुत की हैं और इन सूचनाओंके प्रकाशमें उनके साहित्यको समझनेका प्रयत्न कियाहै। उदाहरणके लिए मुक्तिबोध की बहुचर्चित कविता 'अंधेरेमें' को एम्प्रेस मिलके मजदूरोंकी हड़ताल और गोलीकाण्ड एवं १९६२ में मुक्तिबोधकी पुस्तक 'भारत : इतिहास और संस्कृति' पर लगाये गये प्रतिबन्धके सन्दर्भमें समझनेका प्रयत्न कियाहै और इस प्रयत्नमें नवल पर्याप्त सीमातक सफल रहेहैं। अध्ययनकी इस पद्धतिको अपनानेके कारण वे अपने पूर्ववर्ती आलोचकोंकी अनेक त्रुटियोंको भी पकड़ सकेहैं। इन आलोचकोंमें डॉ. रामविलास शर्मा और डॉ. नामवर सिंह जैसे आलोचक भी सम्मिलित हैं। त्रुटिदर्शनमें अनेक स्थानोंपर नवलने अति कर दीहै। जैसे, पूरी पुस्तकको पढ़नेपर पाठक यह अनुभव करेगा कि नवलने रामविलास शर्माका खण्डन और मुक्तिबोध का मण्डन करनेकी जैसे प्रतिज्ञा कर लीहै। इस दृष्टि से 'अस्तित्ववादकी छाया' और 'रहस्यवादका आलोक' अध्याय विशेष रूपसे द्रष्टव्य हैं।

नवलने अपनी पुस्तकमें मुक्तिबोधकी कविता और गद्य-साहित्य दोनोंका अध्ययन पांच-पांच अध्यायोंमें विभाजित करके कियाहै। परिशिष्टके रूपमें 'अंधेरेमें' कविताका 'एक विश्लेषण' प्रस्तुत कियाहै। पुस्तकका परिचय हम अपने शब्दोंमें देनेकी अपेक्षा भूमिकासे स्वयं लेखकका कथन उद्धृत करना उचित समझते हैं — "मुक्तिबोधपर लिखी गयी यह पुस्तक दो खण्डोंमें विभक्त है। पहले खण्डमें मुख्यतः उनके 'ज्ञान' का विश्लेषण है और दूसरे खण्डमें मुख्यतः उनकी 'संवेदना' का। 'ज्ञान' और 'संवेदना' उनमें अलग-अलग नहीं हैं, प्रायः वागर्थकी तरह सम्पृक्त हैं, उनके शब्द भी हैं — 'संवेदनात्मक ज्ञान' और 'ज्ञानात्मक संवेदना'। फिरभी अध्ययनकी सुविधाके लिए यह विभाजन करना

---

१. प्रका. : राजकमल प्रकाशन, १-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : ४६२; डिमा. ९३; मूल्य : २००.०० रु.।

पड़ाहै । अधिक सही यह कहना होगा कि अध्ययनके क्रममें यह स्वयं हो गयाहै । अपनी ओरसे हम यही आश्वासन दे सकतेहैं कि हमने मुक्तिबोधको यथासम्भव अविभाज्य रूपमें देखने और दिखानेका प्रयत्न किया है । अध्ययन कवितापर केन्द्रित है, पर प्रसंगवश उसमें उनके आलोचना-साहित्य, कथा-साहित्य और उनकी राजनीतिक टिप्पणियोंकी छानबीन की गयीहै ।' (पृष्ठ ७) । लेखकके इस कथनसे पुस्तकका कथ्य स्पष्ट है ।

लेखकने अपने उपर्युक्त कथनमें मुक्तिबोधके ज्ञान और संवेदनाके 'विश्लेषण' की बात कहीहै । सामान्यत: उसका यह कथन सच है । उसकी आलोचना-शैली विश्लेषणात्मक है; यद्यपि उसमें बीच-बीचमें प्रभाववादी आलोचनाके उदाहरण भी मिल जातेहैं । यहाँ प्रश्न यह है कि लेखकने विश्लेषण किस दृष्टिसे किया है ? हमें इस प्रश्नका उत्तर खोजनेमें अधिक कठिनाई नहीं होती । लेखकने भूमिकामें अपने मार्क्सवादी होने की घोषणा स्पष्ट शब्दोंमें कर दीहै ।···उनके अनुसार "मार्क्सवादका दार्शनिक और ऐतिहासिक चिन्तन सही है, उसके आर्थिक और राजनीतिक चिन्तनका सार तत्त्व भी सही है, अपने आशयमें सर्वाधिक मानवीय, बशर्ते कि मार्क्सवादको हम जड़ रूपमें ग्रहण न कर बदलती हुई परिस्थितियोंमें, जिनमें पूंजीवादमें होने वाले परिवर्तनोंसे लेकर विज्ञान और तकनीकी विद्या तक के क्षेत्रमें होनेवाले परिवर्तन शामिल हैं, विकासमान रूपमें ग्रहण करें।" (पृष्ठ ८) । लेखकके अनुसार मुक्तिबोध भी मार्क्सवादी है—"उनके सम्बन्धमें दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे कबीर जैसे विद्रोही कवियोंकी परम्पराके कवि थे । उनका विद्रोह उनकी मार्क्सवादी विश्वदृष्टिकी देन था । इसमें निश्चयही किसी प्रकारका सन्देह न होना चाहिये कि वे बहुत ही दृढ़ और सुसंगत मार्क्सवादी थे। (पृष्ठ ७) । स्पष्ट है कि आलोचक स्वयं मार्क्सवादी हैं और मुक्तिबोध को 'दृढ़ और सुसंगत मार्क्सवादी' मानकर चल रहा है । अत: उसने विश्लेषण मार्क्सवादी दृष्टिसे किया है । मार्क्सवादके प्रति उसकी प्रतिबद्धता बहुत दृढ़ है, 'सुसंगत' भी है, इसपर विवादकी पूरी गुंजाइश है । हम कह सकतेहैं कि उसकी आलोचना प्रतिबद्ध आलोचना है ।

समीक्ष्य पुस्तकमें नवलकी प्रतिबद्धता मार्क्सवाद के प्रति भी है और मुक्तिबोधके प्रति भी । इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआहै कि उन्होंने प्रत्येक स्थितिमें मार्क्सवाद और मुक्तिबोधकी श्रेष्ठता सिद्ध कीहै । मार्क्सवादको श्रेष्ठ सिद्ध करनेके लिए वे अन्य विचारधाराओं या जीवनदृष्टियोंके प्रति अन्याय कर बैठेहैं । अपनी पुस्तकमें एक स्थानपर उन्होंने लिखा है कि "मार्क्सवादी विचारकोंने अस्तित्ववादको अबुद्धिवाद कहाहै ।" (पृष्ठ १६४) इन मार्क्सवादी विचारकों में मुक्तिबोधभी हैं । 'कामायनी : एक पुनर्विचार' से उन्होंने मुक्तिबोधका एक कथन उद्धृत कियाहै, जिसमें उन्होंने अस्तित्ववादको अबुद्धिवाद सिद्ध कियाहै । मुक्तिबोधका कथन इस प्रकार है—"यूरोपमें हेगेल के अनन्तर उसका विशुद्ध द्वन्द्वात्मक-भौतिकवादी रूप मार्क्स-एंगेलसने प्रतिष्ठापित किया । किन्तु व्यक्तिवादी-आत्मवादी विचारोंने सत्यके ज्ञानकी प्रक्रियामें बुद्धिको मार गिराया । बुद्धिसे हम अन्तिम सत्य नहीं जान सकते, यह निश्चित किया गया और दार्शनिक धरातल पर अबुद्धिवादको स्थापित किया गया । इस अबुद्धिवाद (इरेशनलिज्म) का सर्वप्रथम समर्थक-प्रचारक शॉपहॉर था । यह आकस्मिक बात नहीं है कि हाइडेगर से लगाकार आधुनिक अस्तित्ववादी फ्रेंच विचारक उपन्यासकार ज्यां पाल सार्त्र तक अबुद्धिवादी 'अनुभूति' के प्रचारक रहे ।" (पृष्ठ १६५) इन दोनों उद्धरणों से स्पष्ट है कि मार्क्सवादी विचारक (?) यह मानते हैं कि बुद्धिके द्वारा अन्तिम सत्यको जानना सम्भव है । अभीतक तो यह सम्भव नहीं हुआहै, भविष्यमें भी इसकी सम्भावना नगण्य है । वस्तुत: यह मान्यता कि बुद्धिसे अन्तिम सत्य ज्ञेय है और कि अस्तित्ववाद अबुद्धिवाद है, मार्क्सवादियोंका बौद्धिक अहंवाद ही है; क्योंकि अस्तित्ववादी दर्शनमें बुद्धि या तर्ककी भूमिका मार्क्सवादसे कुछ अधिक ही है । अस्तित्ववाद अत्यन्त तीक्ष्ण और निर्मम बुद्धिका परिणाम है । किन्तु यदि कोई किसी विचारधारा विशेषसे प्रतिबद्ध होकर अपनी आँखें बन्द कर ले तो उसे इस सत्यका साक्षात्कार कैसे होगा ? आंखें बन्द कर लेनेकी या हो जानेकी दुर्घटना वामपन्थी और दक्षिणपन्थी दोनोंके साथ घटतीहै ।

नवलजी ने अपनी पुस्तकमें जैसे मार्क्सवादको किसी भी रूपमें श्रेष्ठ सिद्ध कियाहै वैसे हीं मुक्तिबोधको भी । सबसे पहले तो उन्होंने मुक्तिबोधको मार्क्सवादी

सिद्ध कियाहै। और यदि मुक्तिबोध हैं तो उनमें कोई दुर्बलता नहीं हो सकती। परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि मुक्तिबोध भी मनुष्य ही थे, देवता नहीं; और उनकी भी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाएं और कुण्ठाएं थीं। दूसरे कवि-लेखकोंके प्रति उनका यह आक्रोश उनकी इन्हीं दुर्बलताओंकी ओर संकेत कर रहाहै—

यश:लोलुप व्यक्तिकी तेजोमयी सत्ता
आधुनिक आदमखोर रावणके घरपर
भिश्तीगीरी करतीहै,
पूंजीवादी उल्लूके साहित्यिक पट्ठे
राजनीतिक रातमें ऊंचे किसी छप्परका आसरा
लिये हुए
चीखा करतेहैं··· (उद्धृत; पृष्ठ २५२)

प्रसिद्ध आलोचनाकी सबसे बड़ी विवशता अपने खूंटेकी प्रशंसा करनाहै। मुक्तिबोधकी जिस कविताने अच्छे-अच्छे पाठकोंके दांत खट्टे किये हुएहैं, नवलको उसकी भाषा सरल मालूम पड़तीहै। 'अंधेरेमें' कविता से एक उद्धरण देनेके बाद उन्होंने लिखाहै—"यह भाषा जितनी सरल है, उतनी ही सशक्त और सौन्दर्य-युक्त।" (पृष्ठ ४६१)। इसी कविताके एक अन्य उद्धरणसे पहले और बादमें उन्होंने टिप्पणी कीहै—"जनक्रान्तिका यह दृश्य भी सरल भाषाका एक नया स्तर सामने लाताहै।···यह भाषा वाकई नयी कविता की भाषाको नष्ट कर डालतीहै। अन्तिम पंक्ति (गगन में नाच रही कक्काकी लाठी) के छायावादी 'गगन'का तो दिवाला निकल गयाहै।" (पृष्ठ ४६१)। नवलने 'सरल भाषा' को कहीं स्पष्ट नहीं कियाहै, किन्तु उनके प्रयोगसे लगताहै कि वे सरल भाषाका अर्थ शब्दोंके अभिधात्मक रूपको समझतेहैं। वे यह भूल गयेहैं कि अपने अभिधार्थमें सुपरिचित सरल शब्द अपने लाक्षणिक-व्यंजनात्मक उपयोगमें अत्यन्त दुरूह हो जाताहै। मुक्तिबोधकी कविताकी भाषा ऊपरसे सरल दिखनेपर भी सरल नहीं है। यदि वह सरल होती तो 'अंधेरेमें' कविताको समझने-समझानेमें इतनी माथा-पच्ची क्यों करनी पड़ती। ऐसी माथापच्ची हिन्दीकी शायदही किसी कविताके साथ आलोचकोंको करनी पड़ीहो। नवलके उपर्युक्त उद्धरणसे यहभी विचित्र बात सामने आतीहै कि 'गगन' छायावादी शब्द है। किसी विशेष शब्दको किसी विशेष काव्यान्दोलन तक सीमित करके देखना भी अबुद्धिवाद ही है।

'मुक्तिबोध : ज्ञान और संवेदना' में प्रतिबद्ध आलोचनाकी कुछ और विशेषताएं भी विद्यमान हैं। एक विशेषता है उद्धरणोंकी भरमार। पुस्तकका बृहद् आकार उद्धरणोंके कारण है। दूसरी विशेषता है वाद-विवाद। पुस्तकमें नवल एक पक्षधर शास्त्रार्थीके रूपमें उभरकर सामने आयेहैं। अपनी इन विशेषताओंके कारण यह पुस्तक ऐसी बन पड़ीहै कि पाठक प्रगतिवाद से लेकर नयी कविता तक को और मुक्तिबोधके काव्य और गद्यको बिना मूलमें पढ़े उद्धरणोंसे ही अच्छी प्रकारसे जाने जायेंगे। इस दृष्टिसे यह महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। □

कविताका जनपद[1]

सम्पादक : अशोक वाजपेयी

समीक्षक : दिगन्त शास्त्री

उपर्युक्त ग्रन्थका छठा निबन्ध "समकालीन कविताकी मध्यवर्गीय चेतना" प्रभात त्रिपाठीका है जिसमें मुक्तिबोधकी एक कविताका अंश—"सब चुप/ साहित्यिक चुप और कविजन निर्वाक्/ चिन्तक, शिल्पकार, नर्तक चुप है", उद्धृत कर अत्यधिक चेष्टाके साथ यह सिद्ध करनेका प्रयास किया गयाहै कि यह चुप्पी समकालीन कविताकी मध्यवर्गीय चुप्पी है। प्रभात त्रिपाठीका यह दुराग्रह नहीं है बल्कि कविताकी आधुनिक प्रवृत्तिको

गतांकका शेष अंश

उपयुक्त होगा पूर्व अंकमें प्रकाशित इसी समीक्षाके पूर्वांशको पढ़ लिया जाये।

सत्यापित करताहै कि समग्र काव्य परम्पराके अनुरूप आधुनिक कविताभी राजनीतिके साथ एक सजग मुठभेड़ है, किन्तु समकालीन कविता राजनीतिक मुठभेड़के प्रति संदेहग्रस्त है। गत वर्षोंमें हिन्दी कविताके अनेक दल और गुटोंने राजनीतिक प्रतिबद्धता घोषित की, किन्तु 'समकालीन कवितामें उस प्रकारका अनुभव,

१. प्रका. : राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : ३०२; डिमा. ९२; मूल्य : १७५.०० रु.।

'सघनता और सान्द्रताके साथ' विन्यस्त नहीं दीखता जबकि "राजनीतिकी वास्तविकता राजनीतिमें निहित मूल्यभ्रष्टता", "मध्यवर्गका ही वरण है ।" लेखककी सचेतन घोषणा विचारणीय है कि "वास्तवमें सारी दुनियामें समकालीन कविताकी जो और जैसी हैसियत है, वहाँ वह मध्यवर्गके एक बेहद सिकुड़े संसारकी गतिविधि होनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं है ।" और इसे मध्यवर्गकी कविता कहनेका आशय यही है कि यह वर्ग सीमित बन रहाहै ।" स्वतंत्रताके बाद सत्तासे आश्वस्त समकालीन कवि, जीनेकी प्रक्रियामें अपनी आवश्यकताओंकी सम्पूर्तिके निमित्त भौतिक परिवेशका आत्म-अनुकूलन करताहै और उसकी सृजनधर्मिता, परिवेश एवं आवश्यकताओं तक सीमित नहीं रहतीहै, बल्कि उसकी व्याप्ति, मानसिक एवं वैचारिक सीमाओं तक विस्तारित हो जाती है। द्वितीय विश्व युद्धके उपरान्त विश्वभरकी कविता में विचारधारात्मक पक्षका विवेकहीन आग्रह, विखंडन और सपाटताको बेमतलब समझकर ही प्रभात त्रिपाठी ने कहा कि "न केवल हिन्दीकी बल्कि सारी दुनियां की कविता आज मध्यवर्गकी चौहद्दीमें सिकुड़े रहने को बाध्य है ।" 'भारतीय स्वतंत्रताके बाद एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीकाके अनेक उपनिवेशोंके युगोंसे शोषित और अकर्मण्य मध्यवर्गोंने ही क्रान्तिका शंख फूंकाथा क्योंकि उनकी स्वतंत्रताकी योजनाओं और अस्तित्वके सुनहरे सपनोंको, सब ओरसे, विच्छिन्न होनेका खतरा दीखताथा। राष्ट्रीय कर्णधारोंके आश्वासनोंमें उनका अविश्वास स्पष्ट था ।

शहरी मध्यवर्गीय चेतनाके समान "समकालीन कविताका प्रकृतिके साथ कामचलाऊ, नाम-बढ़ाऊ और आत्म-रिझाऊ रिश्ता", "कवितामें ऐन्द्रिकता प्रेमानुभूतिकी अभिव्यक्ति', "भाषाके साथ दुराव" और "राजनीतिक उदासीनता" आदिका सूक्ष्म अवलोकनसे उसकी सृजन-सार्थकतापर सन्देह प्रगट किया गयाहै कि समकालीन कविताके "ये सब अशुभ लक्षण ही नहीं" अपितु 'सृजनात्मक कल्पनाकी संकीर्णता" मालूम होतीहै । स्वातंत्र्योत्तर राष्ट्रीय जीवनके योजनाबद्ध विकास क्रमके परिणामस्वरूप मध्यवर्ग और निम्नवर्ग अपेक्षित सुखी होनेके युद्धजनित संत्रास, मृत्युबोध, कुंठा, विवशता निरर्थकताके बोधमें, जहां सामाजिक, पारिवारिक और व्यक्तिगत [illegible] अनुभूतिकी उपेक्षा अनिवार्य है, वियुक्तिका अनुभव करने लगा और उसे विघटनकी विवशता दिखायी देने लगी । अत: समकालीन कवि उन बदली परिस्थितिमें, आत्मिक स्तरपर उन उपेक्षित रिश्तोंके कारण मूल्य-सापेक्ष गरिमासे संयुक्त नहीं रह सका ।

इस संकलनका सातवां निबन्ध है "आजकी कविता" इसमें स्व. विपिनकुमार अग्रवालने हिन्दी काव्यके कालगत स्थिति-गतिपर सप्रमाण आलोक डालाहै । किसीभी काव्य-विशेषकी धारामें दीर्घकालिक कथ्य और सम्प्रेष्य भावोंकी निर्मितिसे प्रत्येक काव्यांगकी पुनरावृत्तिका खतरा ही नहीं रहता, वरन् काव्यान्दोलनमें परिवर्तन अपरिहार्य हो जाताहै । "छायावादी भी आगे पीछे अपनेको दुहराने लग गया । इससे बचनेके लिए वे कुछ नीचे उतरे ।" लेखकका यह विश्वास था कि "महानतासे जब वे यथार्थके धरातलपर उतरे तब "उनका स्वर अविश्वसनीय लगने लग गया" और, "ऊपरसे नीचे उतरना कभी वांछनीय नहीं होता", नयी कविताकी भी यही नियति थी । वे कहतेहैं कि नयी कविता भी कहीं जाकर अपनेको दुहराने लगी—तब नया कवि घबराकर आत्मीयताके क्षेत्रसे बाहर झांकने लगा। कहनेका तात्पर्य यह है कि कविता हो या कला, लम्बे दौर तक अपने वैशिष्ट्यको लेकर चल नहीं सकती, उसके लिए परिवर्तन ऐतिहासिक दृष्टिसे अनिवार्य है ।

बंगलाकी सुप्रसिद्ध लेखिका (सम्प्रति जाधवपुर विश्वविद्यालयमें प्राध्यापिका) श्रीमती नवनीता देवसेन का एक नितान्त अछूते विषयपर यह विचार-गर्भित अंग्रेजी आलेख भारत-भवन(भोपाल)में मार्च, १९८८ एशिया कवितापर केन्द्रित आयोजनमें प्रस्तुत किया गयाथा । श्री मदन सोनीका हिन्दी रूपान्तरण 'पूर्वग्रह' और फिर इस संग्रहमें संकलित किया गया ।

लेखिका, एशियाके प्रति, व्यापक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यमें, सर्वांगतः प्रतिबद्ध दिखायी देतीहै । वे कहतीहै कि एशिया कहतेही, हमारे सामने ऐसा कोई मानचित्र उपस्थित नहीं होता जैसा अफ्रीका, यूरोप और अमरीका कहनेपर होताहै । बल्कि एशिया निवासियोंके मनमें भी "एशिया" कहतेही "एक तिमिराच्छन्न महाद्वीपकी" कल्पना आविर्भूत होतीहै जहां पौर्वत्यका एक बिम्ब है, आकर्षक जलरंगी भूदृश्य है, [illegible] जूडो कराटे, योग है, जन-

संख्याका विस्फोट है, साधु-संन्यासी, मसाले, टापू, उपनिवेश, युद्ध-शरणार्थी हैं।" लेखिकाकी प्रखर दृष्टि ने, जहां पूर्वमें हिन्दू, बौद्ध एवं कन्फूशियस और पश्चिम में ईसाई, यहूदी, इस्लामके आविर्भावके दर्शन और आध्यात्म चिंतन, अद्वैत और रहस्यवाद, प्रज्ञा और कलाको देखा, वहीं गरीबी और भुखमरीको संक्रमित भी देखा। संस्कृति और साहित्यके सन्दर्भमें, उनकी यथार्थपरक दृष्टिकी यह खोज अर्थपूर्ण लगतीहै कि मसीहाओंकी यह भूमि (एशिया) कविताकी भी भूमि है, जहां ये कविता आन्तरिक शान्तिके साथ एशियाई अस्मिताको प्रतिभासित कर रहीहै।

अगले कुछ निबन्धोंमें पूर्वग्रहके कृतिकारों और उनकी कृतियोंके समर्थनमें विभिन्न पहलुओंपर जो संरचनात्मक आलोचना हुईहै, उसमें दृष्टि-भेदकी सम्भावना हो सकतीहै, सह-अस्तित्व एवं बान्धव-भाव प्रवृत्त विचार-विवेचनभी स्वस्थ परम्पराके सायास प्रयासमें पूर्वग्रहका योगदान ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

कुंवर नारायणने अपने "मुक्तिबोधकी कविताकी बनावट" नामक निबन्धमें यह देखनेका यत्न कियाहै कि उनकी कवितामें "यथार्थके तत्त्व परस्पर गुंफित होतेहैं, साथही पूरा यथार्थ गतिशील होताहै।" मुक्तिबोधके उक्त कथनमें उनके संघर्षमय जीवन तत्त्वोंकी गतिशीलता असंदिग्ध रहीहै।

मदन सोनी "भाषा, काव्य भाषा, और अज्ञेयकी भाषा दृष्टि" नामक निबन्धमें अज्ञेयकी अवधारणाको यथावत् उद्धृत करतेहैं—"शब्द और सत्य दो सत्ताएं हैं...सत्यको अज्ञेय शब्दसे भिन्न और तनावरत मानते हैं...यहांतक "सत्य" शब्दसे इतर कोई जगह उनकी कवितामें नहीं है।" इसीलिए वे भाषाको संरचनात्मक शक्तिसे अभिमंत्रित करनेमें समर्थ हुएहैं।

मदन सोनीका दूसरा निबन्ध शमशेरकी कवितामें, "एक स्वरलिपिको पढ़ते हुए" में आवाज और रागके अन्त:सम्बन्धोंको आलोकित किया गयाहै।

उदयन वाजपेयीने अत्यन्त संवेदनशील शैलीमें "त्रिलोचनका जनपद" का भावनात्मक परिचय दिया है। जिसमें त्रिलोचनका काव्यांश उद्धृत है— "उस जनपदका कवि हूं जो भूखा-दूखा है नंगा है/अनजान है, कला—नहीं जानता"। लेखककी स्वीकारोक्ति है कि "वह (त्रिलोचनके जनपदका कवि)

हैं और उनको पढ़नेकी कुंजी आजभी पुराने ग्रन्थोंसे पाताहै।" फिरभी उनके आधुनिक न होनेका आरोपण इससे सिद्ध नहीं होता। उनको समझनेके लिए एक भारतीय मानसिकताकी आवश्यकता है।

श्री रमेशचन्द्र शाहने अपने "भूलनेके विरुद्ध" निबन्धमें श्री रघुवीर सहायको कवितामें जीवन-दर्शन, रचना-प्रक्रिया, कलामें आत्मसजगता और रचना-सम्भव संवेदनशीलता और जीवन संघर्षपर स्मरणात्मक चित्रण प्रस्तुत करनेका सार्थक प्रयास कियाहै।

"बीच बहसमें कविता: कुछ नोट्स" शीर्षक निबन्धमें बहस-उत्सुक अशोक वाजपेयी कोई बहस नहीं करते। स्व. विजयदेव नारायण साहीकी "हिन्दी आलोचना और विचारके क्षेत्रमें" जो महत्त्वपूर्ण "उपस्थिति और सक्रियता" रही और उनकी दृष्टियों, अनुभवों और विचारोंके बीच तथा समकालीन कविता से उनकी 'बहस करती हुई कविता' की लेखकने बड़ी वफादारीसे पड़ताल कीहै।

वागीश शुक्लका "श्रीकान्त वर्माकी इबारतें" (लेखन) और उदयन वाजपेयीका "श्रीकान्त वर्माका मगध: आख्यान बिन्दुका निरंतर विस्थापन" जैसे दोनों निबंध धरातलपर सार्थक परिचर्चाका संयोजन हुआहै। दोनों लेखक प्रकृत भौतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक परिवेशमें संवेद्य, एकमें वर्माकी शिल्प योजना और दूसरेमें स्मृति-विन्यासकी प्रस्तुतिमें प्रतिश्रुत दिखायी देतेहैं।

रमेशचन्द्र शाहका "व्यर्थ रंगोंकी एक साहसिक योजना" शीर्षक निबन्धमें श्री कुंवरनारायणकी सद्य:जात कृति "अपने सामने" जो तीन खंडोंमें विभाजित है, "कवि अस्तित्वके तीन रंगीन आयामोंको झलकाती है। एक असन्तुष्ट चेतना जैसे तीन स्थितियोंसे अनुभव कर रहीहै।" इसमे रंगोंसे रंजित उनकी जीवन घटताओंकी क्रम संगति है। उनकी कवितामें वैचारिक प्रतिरोधका चित्रण वस्तुपरक है किन्तु अर्थान्विति आत्मपरक है।

"फर्क पड़ताहै" शीर्षकके अन्तर्गत श्री विष्णु खरे ने केदारनाथ सिंहकी बीस वर्षोंमें रचित पैंतालीस उल्लेखनीय कविताओंका संकलन "जमीन पक रही है" पर अपना बेलाग मंथन-मन्तव्य दे दिया कि "उनकी कविताएं "बहुत छोटे-छोटे हर्ष-विषाद और जद्दोजहद को कविताएं हैं, थोड़ा लिखा, बहुत समझनाका

सन्देश है"। उसमें आदमीकी आदमियतकी खोज, नहीं है। उसमें गहरी आस्था, उसके प्रति अदम्य प्रतिबद्धताकी कविताएं हैं।

वागीश शुक्लके निबन्ध "एक और तहका अहसास' में कमलेशकी कविता "इस समय" में देशकाल-बद्धताकी तलाश है, जिसपर एक बृहत्, तर्कपूर्ण बहस प्रस्तुत है। वे कविके जन्मकालकी पार्श्वभूमि और संस्कारस्थितिका सन्दर्भ देकर कहतेहैं कि "उनकी कविता सत्ताओंकी नहीं, सत्ताओंके बीचके सम्बन्धों की कविता है।" "कमलेशकी कविता" शब्दके घरमें अर्थकी रिहाइशकी कविता हैं। वागीश शुक्लकी वैचारिकता, तार्किक संगतिसे निबद्ध है।

द्वन्द्वात्मक, मनःस्थितिके अवबोधमें गतिशील धूमिलके लिए प्रभातकुमार त्रिपाठीने अपने निबन्ध "सड़कपर खड़ा कवि" के जिस सार्थक शीर्षककी परिकल्पना की, उसके पीछे कविका पार्लियामेंटको सड़क पर खींच लानेका संकल्प देखा और व्यवस्थाके प्रतिरोधमें उनका "आत्मविश्वासका स्वर देखा/ और देखा एक सामूहिक संकल्पके रूपमें शब्द ग्रहण करनेवाला युवा कवि" देशकी अमानवीय हालतके ब्योरोंसे अपनी कविता भर दें और इस अमानवीयकरणके लिए जिम्मेदार "व्यवस्था" के प्रति अपना क्षोभ प्रकट करे। कवितामें बन्द रहकर भी, बार-बार कवितासे बाहरकी भाषामें, ऐसे हथियारके द्वारा व्यवस्थाको ध्वस्तकर देनेकी बात करें, कि हथियार और जिस लड़ाईसे दूर बने रहनेका अभिशाप उसकी नियति है या उसका चुनाव।" धूमिल अपनी कवितामें आत्म-प्रक्षेपकी मसीहाई मुद्रामें धूमिल नहीं है, अपितु पूर्णतः आलोकित है।

"सूखी झीलपर बसे हुए शहरकी तरह था' में मदन सोनीने रायपुर-बिलासपुर समभाग" के कवि श्री विनोदकुमार शुक्लकी काव्यदृष्टिकी परिचर्चा की जिसमें केवल क्रान्तिकारी दृष्टि थी। उनकी कविता का प्रमुख लक्षण है निरुपमाकरण। मदन सोनीने तत्प्रयुक्त शब्द, जो उनकी कवितासे पूर्णतः बद्ध होती है, की व्याख्या की, कि "जहां उपमानोंकी विदाई हो" ४कविकी अभिव्यक्तिके लिए जो सहायक उपकरण अभीष्ट है, वह सिर्फ काव्य सत्य नहीं है। उसे तो काव्य सत्य और भाषिक सत्यके बीच अन्तरकी पहचान है। यह पहचान तो सन्दर्भोत्पन्न है, सन्दर्भबद्ध

"कविताका होना" शीर्षक निबन्धमें श्री अशोक केलकरकी बहुत ही विचारोत्तेजक काव्य दृष्टिकी निर्मिति है जिसमें काव्यकी प्रक्रियागत एवं व्याप्तिगत पक्षोंका, व्यक्ति-सापेक्ष मूल्यपरक दृष्टियोंका, संवेगात्मक कार्य व्यापारका और आन्तरिक तर्क संगतिका विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत है। आर्चीबाल मक्लीशका उद्धरण" ए पोयम शुड नाट मीन, बट बी" देकर, उन्होंने काव्यके विभिन्न आयामों "कविता प्रतीतिकी घटना", "मानवीय भूमिका", "कविताका वाहन", "अवगुंठन कविताकी भाषा", "अवगुंठन साहित्य विषयक धारणा", "काल और परिवर्तनका परिमाण", "तीन पहेलियोंका अंशिक उत्तर" कविता संज्ञाकी परिभाषा और "कविताके आंगोपांग" पर वैचारिक निस्सृति और उसके समाहारकी सांगोपांग बहस कीहै।

"कवितामें शब्दका इस्तेमाल" शीर्षक निबन्धके अन्तर्गत विपिनकुमार अग्रवालने काव्यगत शब्दकी तथ्यता सिद्ध करनेके लिए, उसकी कसौटी और व्याप्तिको सत्यापित करनेका प्रयास किया। टी. एस. इलियटकी उक्ति "द वर्ड इस बोर्न" सुनाकर, "शब्द की प्रकृति, स्वरूप और गति-स्थितिपर तार्किक दृष्टि की तथ्यता प्रस्तुत कीहै—"शब्द तस्वीर है, प्रतीक है, ध्वनि है, अर्थवाहक है, और उसका कोई रंग भी है।"

उन्हींका दूसरा निबन्ध है—"बिम्बकी बात"। इस बहुचर्चित और महत्त्वपूर्ण काव्यांगका जिसमें कवि अपने अतीत और संस्कृतिसे सम्बद्ध और समन्वित होताहै, तात्विक-विवेचन है।

और अन्ततः परिशिष्ट में "कहां समय, कहां पड़ाव" में अशोक वाजपेयीने तथाकथित समापनका कार्य-निर्वाह किया। सारी सफलताओं और असफलताओंका दर्पणी ब्योरा देकर, उसी स्वरमें अपने पूर्वग्रह अपने कृतिकारों, कृतियों और आलोचकोंके प्रति प्रक्षेपित अन्यान्य आरोपणोंके समाधानों एवं स्पष्टीकरणोंकी एक अनथक बहसको जारी रखा। परयशतापसे संत्रस्त साहित्यिक समाजमें एक स्वस्थ, सहयोगी एवं समर्पित रचनाकारोंके साथ सत्तरह वर्षीय सारस्वत यज्ञका नेतृत्व कोई साधारण उपलब्धि नहीं है। समग्रतः अशोक बाजपेयी द्वारा सम्पादित यह ग्रन्थ "किसी समय-कहीं पड़ाव" का एक विशद विवेकपूर्ण, आस्थापूर्ण दस्तावेज है। ☐

हिन्दी-साहित्यकी भ्रान्तियां और उनका निराकरण[1]

लेखक : वेदप्रकाश गर्ग
समीक्षक : डॉ. रामस्वरूप आर्य

साहित्यका इतिहास-लेखन एक श्रम-साध्य कार्य है। इसके लिए गहन अध्ययनके साथ अपार धैर्यकी भी आवश्यकता है। फिरभी सामग्रीके अभाव, प्राचीन पाण्डुलिपियोंमें पाठके स्खलन तथा पूर्वापर तुलनात्मक दृष्टिमें चूकके कारण कई बार भ्रांत धारणाएं बन जातीहैं तथा उनकी पुनरावृत्ति होती रहतीहै। कई बार शीघ्रता, शोध-वृत्तिके अभाव तथा पूर्व निर्धारित भ्रांत धारणाओंके पिष्टपेषणके कारण भी साहित्यके इतिहास-लेखनमें त्रुटियां रह जातीहैं। समय-समयपर इस प्रकारकी भ्रांतियों तथा त्रुटियोंकी ओर विद्वान् अपने लेखोंके माध्यमसे इंगित करते हुए उनके निराकरणका प्रयास करते रहेहैं। इनमें श्री वेदप्रकाश गर्ग का स्थान अन्यतम है। विगत लगभग पैंतीस वर्षसे वे इस कार्यमें दत्तचित्त हैं और उनके शताधिक लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुकेहैं। जहां तक मेरी जानकारी है, उनके द्वारा निर्दिष्ट त्रुटियोंको विद्वान् लेखकोंने प्रायः स्वीकार कियाहै तथा इसके लिए उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त कीहै। उनके शोध-कार्यकी यह एक बड़ी सफलता है।

समीक्ष्य-ग्रंथ 'हिन्दी साहित्यकी भ्रान्तियां और उनका निराकरण' श्री गर्गके पूर्व प्रकाशित साहित्येतिहासके संशोधनपरक लेखोंका संकलन है। उन्हें साहित्यके इतिहासके काल-विभाजनके आधारपर क्रमबद्ध रूपमें प्रस्तुत किया गयाहै। इनमें आदि-कालपर ४, भक्ति-कालपर २५, रीतिकालपर ३२ तथा आधुनिक कालपर ११ लेख, संशोधनात्मक टिप्पणियां हैं। ग्रंथके अंतमें परिशिष्ट-१ में हिन्दीके हस्तलिखित ग्रंथों के खोज-विवरणोंपर ३ संशोधनात्मक टिप्पणियां तथा परिशिष्ट-२ में अन्य ३ टिप्पणियां दी गयीहैं।

आदिकाल खंडमें सर्वप्रथम हिन्दीके तथाकथित प्रथम कवि पूषके शुद्ध नाम, वंश तथा स्थिति-कालपर प्रकाश डाला गयाहै। द्वितीय लेखमें ग्रियर्सन कृत 'हिन्दी साहित्यका प्रथम इतिहास' ग्रंथके चारण-काल पर छह संशोधनात्मक टिप्पणियां दी गयीहैं। तृतीय लेखमें हिन्दी साहित्यके प्रसिद्ध इतिहास-ग्रंथ 'मिश्रबंधु विनोद' के आदि प्रकरणपर संशोधनात्मक टिप्पणियां प्रस्तुत की गयीहैं। अनेक वर्षों तक विद्वान् 'मिश्रबंधु विनोद' को आधार मानकर कार्य करते रहे हैं। श्री गर्गकी संशोधनात्मक टिप्पणियोंने वास्तवमें 'विनोद'के कार्यको आगे बढ़ायाहै। यह लेख अपने आपमें एक शोध-प्रबंधकी रूपरेखाही समाहित किये हुएहै। चतुर्थ लेखमें 'कल्प केदार' नामक ग्रंथको केदार कवि रचित माननेमें संदेह व्यक्त किया गयाहै।

'भक्ति-काल' खंडमें २५ संशोधनात्मक टिप्पणियां हैं। इनमें भक्ति-कालके स्वामी रामानंद, संत रैदास, मलिक मुहम्मद जायसी, श्री वल्लभाचार्य, मीरांबाई, स्वामी हरिदासजी, भक्त-कवि हरिराम व्यास, महामति प्राणनाथ आदिके नाम, काल तथा रचनाओं आदिपर विशेष लेख एवं टिप्पणियां हैं जिनमें 'शिवसिंह सरोज', ग्रियर्सनकृत 'हिन्दी साहित्यका प्रथम इतिहास' तथा 'मिश्रबंधु विनोद' में उक्त कवियों एवं संतोंके विषयमें उल्लिखित तथ्योंको समीक्षाकी कसौटी पर कसकर त्रुटियोंका परिहार किया गयाहै, साथही कुछ शोध-ग्रंथों यथा —रामानंद सम्प्रदाय तथा हिन्दी-साहित्यपर उसका प्रभाव, संत रैदास और उनका पंथ, पंजाब प्रांतीय हिन्दी-साहित्यका इतिहास, अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय और कृष्णभक्त हिन्दी कवि, प्राणनाथ : सम्प्रदाय एवं साहित्यमें निरूपित स्थापनाओंको नवीन परिप्रेक्ष्यमें देखनेका प्रयास कियाहै। इस खंडमें उल्लिखित कुछ प्रमुख निष्कर्ष इस प्रकार है—१. संत रैदासका जन्म संवत् १४१५ के आसपास हुआथा। २. गुरु नानकदेवजी की वास्तविक जन्म-तिथि वैशाख शुक्ल तृतीया हैं। ३. जायसीकृत 'कन्हावत' की रचना-तिथि ९३७ हि. है न कि ९४७ हि.। ४. आशुधीर जी स्वामी हरिदासजीके आत्मज नहीं थे। वास्तविकता यह है कि हरि-

---

१. प्रका. : कुसुम प्रकाशन, नवेन्दु सदन, आदर्श कालोनी, मुजफ्फरनगर (उ. प्र.)। पृष्ठ : २६४; डिमा. ९३; मूल्य १७०.०० रु.।

दासजी ही आशुधीरजीके पुत्र एवं शिष्य दोनों माने जातेहैं। ५. भक्त कवि हरिराय व्यासका जन्म १५४९ वि. में हुआथा तथा १६५५ बि. के लगभग उनका निकुंज गमन हुआथा। ६. संत प्राणनाथजीकी जन्म तिथि ६ सितम्बर १६१८ ई. है। इसी प्रकार रामानंदजीके द्वादश शिष्यों, बाबा साईंदास और उनकी गुरु परंपरा, श्री वल्लभाचार्यका आविर्भाव काल, कायस्थ चतुर्भुजदास कृत 'भक्त मालती', कवि नयन सुख कृत 'वैद्य मदनोत्सव', चैतन्य सम्प्रदायके कवि नाथ भट्ट, 'पिंगल अकबरी' के रचयिता चतुर्भुज आदिके संबंधमें भी भ्रांतियोंका निराकरण करते हुए नवीन जानकारी दी गयीहै।

ग्रंथके तृतीय खंड 'रीतिकाल'के अन्तर्गत संशोधनपरक लेखों तथा टिप्पणियोंकी कुछ प्रमुख स्थापनाएं इस प्रकार हैं... १. 'पद्मिनी चरित' का आरंभ सं. १७०२ में न होकर सं. १७०६ में हुआ और समाप्ति सं. १७०७ ई. में हुई। २. घनानंदका वध (हत्या) सन् १७५७ ई. में १ मार्चसे ६ मार्च (फाल्गुन शुक्ल दशमीसे चैत्र कृष्ण-प्रतिपदा सं. १८१३ वि.) के मध्य हुआथा। विशेष रूपसे ६ मार्च (चैत्र कृष्ण-प्रतिपदा) ही उनकी वध-तिथि निश्चित होतीहै, क्योंकि वृन्दावनमें लूटमार और कत्लेआम ६ मार्चको हुआ था। ३. 'गोकुल चरित्र' प्रसिद्ध कवि घनानंन्दजीकी ही रचना है, चैतन्य सम्प्रदायी आनन्दघनजीकी नहीं। ४. चन्द्रसखी न तो किसी स्त्रीका नाम था और न वह सखी सम्प्रदायकी ही थी। चन्द्रसखी पुरुषका नाम था और वह राधावल्लभीय सम्प्रदायके थे। चन्द्रसखीका जन्म सुप्रसिद्ध भक्त-कवि हरिराम व्यास के वंशमें सं. १७०० के लगभग ओड़छामें हुआथा। ५. जोधराज कृत 'हम्मीर रासो' का सही रचना-काल सं. १८५५ माघ शुक्ल तृतीया बृहस्पतिवार हैं। ६. कविवर लाल बलवीर चैतन्य चैतन्य मतानुयायी (राधा रमणी) थे, निम्बार्क, मतानुयायी नहीं थे। ७. निश्चयपूर्वक कहाजा सकताहै कि कवि, ('माधुर्य लहरी' के कर्त्ता कृष्णदास) ने अपने वासस्थानका उल्लेख 'मिरिजापुर' और 'मिरिजापत्तन' दोनों नामोंसे ही कियाथा किंतु प्रतिलिपिकारकी असावधानीसे वे क्रमशः 'गिरिजापुर' एवं 'गिरिजापत्तन' होगये। वास्तवमें विंध्याचल (विंध्यवासिनी) के निकट गंगाके किनारेपर स्थित 'मिरजापुर' ही कविका वासस्थान है। इनके अतिरिक्त कवि जानकी कृतियां, हिन्दी साहित्यका बृहत् इतिहास षष्ठ भाग और उसके पिंगल निरूपक आचार्य, भगवत् मुदित कृत ग्रंथ, आचार्य सूरति मिश्रका अज्ञात साहित्य, शिवनारायणी सम्प्रदाय संबंधी आधारभूत सामग्री तथा ग्वाल रचित ग्रन्थ शीर्षक लेखोंमें भी महत्त्वपूर्ण शोध-सामग्री दी गयीहै।

'आधुनिक काल'के अन्तगत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र शीर्षक लेखमें श्री मदनगोपाल द्वारा लिखित 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' पुस्तकपर संशोधनात्मक टिप्पणियां दी गयीहैं। हिन्दीका सर्वप्रथम शोध-प्रबंध शीर्षक लेखमें पुष्ट प्रमाणोंके आधार पर सिद्ध किया गयाहै कि हिन्दी का उपाधिपरक प्रथम शोध-प्रबंध 'तुलसीदास कृत रामचरित मानस और वाल्मीकि रामायणका तुलनात्मक अध्ययन' है, जिसपर श्री एल. पी. टैसीटोरीको १९१० ई. में फ्लोरेन्स विश्वविद्यालय द्वारा 'डाक्टरेट' की उपाधिसे विभूषित किया गयाथा। इस खंडके तृतीय लेखमें बताया गयाहै कि हिन्दीके तीसरे डाक्टर एफ. ई. के थे, जिन्हें १९२२ ई. में 'कबीर एंड हिज फालोअर्स' नामक शोध-प्रबन्धपर लंदन विश्वविद्यालय से डी. लिट्. की उपाधि प्रदान की गयीथी। 'प्रेमचंद : जीवन और साहित्य' लेखमें कालक्रमानुसार ४३ टिप्पणियां दी गयीहैं तथा इसकी संदर्भिकामें १५२ संदर्भोंका उल्लेख हुआहै। इसी प्रकार 'आचार्य शुक्लकी जीवन-झांकी' लेखमें आचार्य रामचंद्र शुक्लकी जीवन विषयक अनेक भ्रांतियोंका निराकरण किया गयाहै। 'मुंशी अजमेरी' तथा 'राहुल सांकृत्यायन' लेख भी इसी दिशामें अच्छे प्रयास हैं।

परिशिष्ट १ तथा २ में भी महत्त्वपूर्ण संशोधनात्मक टिप्पणियां तथा शोध-पत्रिकाओंके सम्पादकोंके पत्र संकलित किये गयेहैं।

कुल मिलाकर 'हिन्दी साहित्यकी भ्रान्तियां और उनका निराकरण' ग्रंथ शोध-कार्योंपर किया गया शोध-कार्य है। हिन्दी-साहित्यके इतिहास लेखकों तथा शोध-कर्त्ताओंको इसे अवश्य देखना चाहिये तथा इससे लाभ उठाना चाहिये। लेखकका प्रयास सर्वथा अभिनन्दनीय है। □

प्राचीन भारतीय मनीषाके अवतरण परमाचार्य श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वतीके प्रवचन

—गंगाप्रसाद श्रीवास्तव

आदि शंकराचार्यके उत्तराधिकारी जगद्गुरु परमाचार्य चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वतीका देहावसान अभी गत मास ही हुआहै। परमाचार्य दैवांश संभूत ज्ञानी तथा प्रकाण्ड विद्वान् थे। पुराणों उपनिषदों आदिका आधुनिक प्रसंगोंमें व्याख्यान उन्होंने लगभग प्रत्येक अवसरपर कियाहै। उन्होंने चार बार पूरे देशका पर्यटन किया। उनकी दृष्टि साधना-सम्पन्न अध्यात्म से परिपुष्ट तो थीही साथहीं विज्ञान सम्पन्न इतिहासपरक और आधुनिक बोधसे युक्तभी थी। सौ वर्ष से ऊपरकी आयु, साधना और तपकी तेजस्विता, प्रकाण्ड विद्वत्ता और चिन्तन मननकी गहनता सभी कुछ उनमें था। उनके प्रवचन इन सबसे बोझिल नहीं बल्कि प्रांजल और प्रसाद गुण पूत हैं। धर्म पालनके आग्रहके साथ लोक-कल्याण तथा सर्वभूतहितकी भावना उनकी प्रेरक शक्ति है।

परमाचार्यने अध्यात्म और संस्कृति सम्बन्धी अंगों-उपांगों एवं तत्त्वोंके विषयमें परमसिद्ध गुरुके रूप में बहुत-ही थोड़े और सटीक शब्दोंमें विवेचनाएं दी हैं। ब्रह्म-ईश्वर-जगत्-आत्मा-माया-भक्ति-मोक्ष आदि पर वेदांतवादीके अनुरूप अद्वैत सिद्धांतोंके आधारपर व्याख्याएं तथा मान्यताएं उद्भावित कीहैं जो किसीके भी लिए सहजगम्य और मान्य हैं। उन्होंने जो कुछ भी कहा प्रामाणिक और साधिकार है। इसके अतिरिक्त इन सत्तर प्रवचनोंमें उपयुक्त विषयों तथा अनुष्ठानोंसे सम्बंधित अनेक पक्षोंपर अपने विचार व्यक्त कियेहैं। ये प्रवचन सामान्यतः आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक कोटिके हैं। सांस्कृतिक क्षेत्रमें सामाजिक आर्थिक ऐतिहासिक आदि सभी पक्ष आ जातेहैं। इन प्रवचनोंमें एक दर्जनसे अधिक भगवान् विष्णु और शिवके अभेदपर आधे दर्जनसे अधिक भक्ति सम्बन्धी और शेष ध्यान कर्म, योग, योगी अद्वैत देवी पूजा, शंकराचार्य श्रीकृष्ण, श्रीराम शिक्षा आनंद मूर्तिपूजा धर्मकी एकता, क्रोध, संगीत विज्ञान आत्मतृप्ति आदिसे सम्बंधित है। इनका पठन चिन्तन इनमें निहित ज्ञान और अनुभूतिकी गहराईका प्रमाण हो सकताहै।

प्रवचनोंमें परमाचार्यने उपर्युक्त विषयोंपर साधिकार विवक्षाके साथ कुछ अनुषंगी स्थापनाएं तथा मान्यताएं भी प्रस्तुत कीहै जो चिन्तनशीलोंके लिए महत्त्वपूर्ण हैं। उनका कहना है कि हमारा धर्म आदि-

---

कृति : 'परमहंस सन्देश' : [दो खण्डमें], अनुवाद : आर. जयश्री कासीकर; आदोनी; जिला कुर्नूल (आ. प्र.)। प्रथम खण्ड प्रकाशक : प्रकाशन विभाग मयंक प्रिंटिंग एवं पैकेजिंग, डाकघर : सराय माली खां, लखनऊ। पृष्ठ : ११२; क्रा. ८७; मूल्य : २५.०० रु.। द्वितीय खण्ड प्रकाशक : हिन्दी साहित्य भंडार, ५५ चौपटिया रोड चौक, लखनऊ। पृष्ठ : १०८; क्रा. ६०; मूल्य : २५.०० रु.।

कालसे चला आ रहाहैं और उस समय एकमात्र अकेला धर्म था जो सारी पृथ्वीपर फैला हुआथा। उस समय यह अकेला धर्म था इसलिए इसे अपने आधार ग्रंथोंमें कोई नाम भी नहीं दिया गया, इस धर्मको वैदिक अथवा सनातन धर्म नाम देना भी उप-युक्त नहीं है। हिन्दू धर्म तो इसे विदेशियोंने कहा और हमभी इसे इसी नामसे अभिहित करने लगे। वे सप्रमाण कहतेहैं कि यह धारणा ठीक नहीं है कि प्राचीनकालमें भारतीय ही इस धर्मको लेकर संसारके विभिन्न देशोंमें गये बल्कि मिस्र, मेक्सिको, पेरु, केलिफोर्निया, आस्ट्रेलिया, मेडागास्कर आदिमें वैदिक देवताओं और इस धर्मके जो लक्षण या चिह्न पाये जातेहैं वे यही बताते हैं कि यह धर्म समान रूपसे पूरे विश्वमें उस समय प्रचलित था और समयके अंतराल तथा मानवीय प्रवृत्तियोंके कारण उनमें अंतर आ गये।

विज्ञानको मान्यता देते हुए आजके वैज्ञानिकोंकी भांति वे मानतेहैं कि सृष्टिके रचक १०२ मूल तत्त्व (एलीमेंट्स) परस्पर पृथक् नहीं बल्कि एक ही परम-शक्तिके विभिन्न रूप हैं। वे कहतेहैं कि ऊर्जा (शक्ति) और वस्तुको वस्तुतः एक मानते हुए जगत्का चलन परस्पर सम्बन्द्ध (रिलेटिव) मानकर आइं-स्टीन जेम्स जीन्स आदि वैज्ञानिक अपने अद्वैतकी ही बात तो कर रहेहैं। इसका स्पष्टीकरण करते हुए वे कहतेहैं कि यदि वैज्ञानिकोंने बाह्य वस्तुओंके संदर्भमें 'समस्त जीवराशि एक समान है' अद्वैतकी इस धारणा को जानकर लागू किया होता तो आत्मक्षयकारी परमाणु बमका निर्माण न करते बल्कि आत्मक्षेत्रकी ओर प्रवृत्त होते। एक अन्य स्थानपर वे कहतेहैं भारत देशमें सभी प्रकारकी कलाओं, शास्त्रों और विज्ञानकी वृद्धि उत्तम ढंगसे होती रहीहै। परन्तु वर्तमान वैज्ञानिक आविष्कारोंके अणुबम जैसे अनर्थोंको रोकनेके लिए ही हमारे देशमें केवल उन्हीं लोगोंको विज्ञानकी सूक्ष्म-ताओंको समझाया जाताथा जो परिपक्व ज्ञानी होते थे। किसी प्रकारका अनर्थ न हो इसी उद्देश्यसे इन शास्त्रोंको साधारण जनताकी समझमें न आनेवाली भाषामें बनाया जाताथा।

वे प्रत्येक परिवारके लिए कमसे कम संक्षिप्त 'पंचायतन पूजा' आवश्यक बतातेहैं। इसमें दस मिनट ही लगतेहैं। इसमें ईश्वर; अम्बिका, विष्णु, गणेश तथा सूर्य इन पांच देवताओंकी पूजाका विधान है। इसके लिए वे बतातेहैं कि नर्मदाके ओंकार कुंडमें ईश्वर प्रतीक 'बाणलिंग' प्राप्त होतेहैं, अम्बिका स्वरूप 'स्वर्णमुखी' शिवा आन्ध्रकी स्वर्णमुखी नदीमें, विष्णु स्वरूप समझें जानेवाले शालिग्राम नेपालकी गण्डकी नदीमें, सूर्यका स्फटिक तमिलनाडुके तंजावूरके कोल्लम के समीप और गणेशस्वरूप 'शोणभद्र शिला' गंगा नदीके संगमके रूपमें सोणभद्र नदीमें प्राप्त होतीहै। इन पांच वस्तुओंको एक ही स्थानपर लाकर रखना समस्त देशको एक स्थानपर लाकर रखनेके समान है। पूजाकी सामग्रीमें कुछ न हो तो सूखे हुए बिल्व और तुलसीसे ईश्वर और विष्णुकी अर्चना कर सकतेहैं और अन्यके लिए अक्षतका ही उपयोग किया जाना चाहिये।

'वाक् का प्रयोजन' के संदर्भ में वे बतातेहैं कि पशु संसारमें वाक् और तत्परिणामी विद्यालय, पुस्त-कालय मुद्रणालय आदि नहीं हैं तो वे मानवके समान दुःखी नहीं हैं। उनमें न इतने रोग हैं न संपत्तिके लिए छटपटाहट है। उन्हें भूत भविष्यकी चिन्ता भी नही होती, आहार किसी-न-किसी प्रकार मिल ही जाताहै एक दूसरेको मारकर खा जानेपर भी उनकी वृद्धि ही हो रहीहै। जन्मसे लेकर मरण तक पशु अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तिके अनुसार काम करतेहैं इसलिए उनके कार्योंके लिए उन्हें कोई पाप नहीं लगता। जीव-जंतुके कारण चित्रगुप्तको कोई काम नहीं रहता। मानवही पढ़ लिखकर अधिक सभ्य और छल कपट असत्य आदिमें निपुण बन चित्रगुप्तके लिए काम बढ़ाते जातेहैं। इसके विरुद्ध पशुओंको यह भय तो रहताही है कि कोई उन्हें मार डालेगा, उनके लिए इस भयसे मुक्तिका कोई मार्ग नहीं है। पर अपनी सभी प्रकारकी भीतियोंसे मानव ही मुक्त हो सकताहै और जन्मरहित होनेपर ही इन भयोंसे मुक्ति हो सकतीहै। "हम ही सब कुछ हैं" इस प्रकारका ज्ञान होनेपर किसीसे भय नहीं होता। इस ज्ञानके होनेसे हम इस शरीरके अंतके बाद-दूसरा शरीर धारण नहीं करेंगे।

जीवन स्तर ऊंचा उठानेकी आज जो अधाधुंध होड़ है उसके विषयमें उन्होंने कहाहै कि यह तो आव-श्यक है कि सबको पेट भर अन्न, शरीर भर वस्त्र और निवासके लिए कुछ स्थान प्राप्त हो, सरकारी योज-नाएं इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए होनी चाहिये। इन

आवश्यक मांगोंके अतिरिक्त और अधिक वस्तुओंकी खोजमें जानेसे व्यक्तिका जीवन स्तर ऊपर नहीं उठ सकेगा। जीवन स्तर बाहरी वस्तुओंकी संख्या बढ़ानेसे नहीं बल्कि मनकी तृप्तिसे ऊपर उठतांहैं। इसलिए प्रत्येक स्तर ऊंचा उठानेका नहीं बल्कि गुणवत्ता बढ़ाने का किया जाना चाहिये। आज बाहरी वस्तुओंसे सज्जित, आडम्बरपूर्ण जीवन बितानेवाले व्यक्तिको देखकर अन्य लोग वैसीही आशा करतेहैं और आशा भंगसे द्वेष होताहै। समाजमें स्पर्धा, ईर्ष्या बढ़तीहै। पुराने युगमें जागीरदार तथा धनवान् लोग आडम्बर-पूर्ण जीवन नहीं बितातेथे। शास्त्रोंका आदेश था कि धन सम्पत्तिकी इच्छा न रखें। उस स्थितिमें साधारण लोग उनसे द्वेष नहीं रखतेथे। जबसे वे वेद अथवा धर्मरक्षणके कार्यको त्यागकर ग्रामोंसे नगरोंमें जाकर धनके पीछे पड़ने लगे तबसे समाजका सौम्य तथा सौजन्य नष्ट होने लगा।

वर्तमानके प्रसंगको लेते हुए कहाहै कि आज भारतीय जन एक द्वन्द्वमें फंसाहै। सनातन धर्मकी शांति तथा तृप्तिवाले जीवनकी गंध एक ओर और आधुनिक शिक्षाकी गंध दूसरी ओर है। आजका जन यह चाहताहै कि शास्त्रसम्मत आचार अनुष्ठानोंको अपनाकर शांतिसे जीवन बिताये परन्तु बाह्य रूपसे उसमें इतना धैर्य नहीं है कि वह इस आधुनिक उपभोक्ता संस्कृति वाली नागरिकताको छोड़ दे और जो सुधार या परिवर्तनका आग्रह अथवा गरिमा दिख रहीहै उसकी उपेक्षा करे। आजका जन इन दो मार्गोंमें से किसीभी मार्गको पूरे रूपमें न अपनाकर संकटमें पड़ाहै।

हम लोग विष्णुको पालनकर्ता और शिवको संहार-कर्त्ता इस प्रकार दोनोंकी ही पूजा करतेहैं परन्तु यहां आदि शंकराचार्यके संदर्भसे दोनोंको भिन्न नहीं, एक ही कहा गयाहै: 'शंकरनारायणात्मा एकः'। अर्थात् यहां शिवको परब्रह्म और विष्णुको पराशक्ति माना जा सकताहै। शंकरनारायण मूर्ति और अर्द्धनारीश्वर मूर्तिको देखनेपर इस सत्यका आभास होताहै। इन दो मूर्तियोंमें से एकमें शिवके साथ बाईं ओर अम्बिका और दूसरीमें विष्णु दिखाये गयेहैं। आदि शंकराचार्य शिव और विष्णुमें लेशमात्र भेद नहीं मानतेथे। उनके इसी मनोभावके कारण ही उनके सम्प्रदायके अनुयायी-स्मार्त (शैव) लोग प्रत्येक अनुष्ठानके आरंभमें 'परमेश्वर प्रीति हेतु' कहकर प्रारम्भ करतेहैं और 'कृष्णार्पणम्' कहकर कार्य पूर्ण करतेहैं। किसी कार्यको एक की प्रीतिके लिए आरम्भ कर दूसरेकी प्रीतिके लिए तभी पूरा कियाजा सकताहै जब वे दोनों एक ही हैं, केवल नाम अलग है। गणेशजीके गाणपत्यके निदर्शनके साथ उनके समक्ष किये जानेवाले तोपिकर्णका विवरण दियाहैं।' तोपिकर्णम्में तोपिका अर्थ है हाथोंसे कर्णम् = कर्ण पकड़ना।

ईश्वर-प्राप्तिके लिए संगीतकी उपादेयता परमाचार्यने स्वीकार कीहै। सुसंगीत—विशेषत: भारतीय संगीतमें वीणागान तो हमें ईश्वरके पद कमलोंमें पहुंचानेवाला ही होताहै। हमारे पूर्वजोंने संगीतको ईश्वरके चरणारविंदमें लय होने दियाहै। धर्मशास्त्रके प्रदाता महर्षि याज्ञवल्क्यका कथन है—सुस्वर सहित वीणा बजाते हुए राग शुद्धतासे लयके साथ नादोपासना करना ही पर्याप्त है—वही मोक्ष मार्गको बतायेगा—ध्यानकी आवश्यकता नहीं, पूजा तथा कष्टतर साधनाकी आवश्यकता नहीं।' इसमें एक और विशेषता यह है कि स्वयं संगीतज्ञको ही नहीं उसके संगीत के श्रोताको भी उस संगीतज्ञकी साधनाका पूर्ण फल-दिव्य आनंद प्राप्त हो जाताहै।

श्री आदिशंकराचार्यने बतायाहै कि सम्पूर्ण संगीत अम्बिकासे ही उत्पन्न होताहै। कण्ठमें तीन रेखाओंका रहना उत्तम स्त्री लक्षण कहा जाताहै। कंठमें उभरे गोलाकार भागको उत्तम पुरुष लक्षण कहते हैं। परमेश्वरने हलाहलको कंठमें एक गोलीके रूपमें रख लिया था। सभी पुरुष उस परमेश्वरके स्वरूप ही हैं इसी प्रकार सभी स्त्रियां देवी स्वरूप होनेके कारण कंठकी तीन रेखाएं श्रेष्ठ स्त्रियोंमें विद्यमान हैं।

चिन्तन, अनुष्ठानों तथा विश्वासोंसे सम्बंधित प्रचुर सामग्री इन प्रवचनोंमें फैली हुईहै। कुमारी कासीकरने हिन्दीमें इन्हें उपलब्ध कराकर आध्यात्मिकके साथ लौकिक कल्याणके हितमें स्तुत्य कार्य कियाहै। मुद्रकसे जरूर यह शिकायत है कि तमाम भोंडी गलतियां इसमें छूट गयीहैं और डिजाइन तथा प्रकाशन सम्बन्धी अन्य तकनीकी बातोंमें भी कोताही रह गयीहै। फिरभी हम इन प्रवचनोंकी गरिमा एवं गम्भीरतापर किसी प्रकारकी आंच नहीं आ सकीहै। ☐

अपना आदर्श मैं हूं[1]

लेखक : डॉ. बसप्पा दानप्पा (बी. डी.) जत्ती
अनुवादक : डॉ. चंदूलाल दूबे
समीक्षक : प्रो. कैलाशनाथ तिवारी

भारतीय साहित्यमें सृजनधर्मी साहित्यकारोंकी आत्मकथा राजनयिकोंकी अपेक्षा अनुपाततः न्यून है। कारण यह है कि धूर्जटि शब्दकर्मियोंका वैशिष्ट्य आत्म-गोपन रहाहै और वे प्रकृत्या आत्म-विवृतिसे परहेज रखतेहैं। किन्तु राजनीतिज्ञ स्वभावतः अभिव्यक्तिशील और बहिर्मुखी होतेहैं। राजनीतिक आत्मकथाकी शृंखलामें राष्ट्रपिता गांधीजी और दिवंगत राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसादकी 'आत्मकथा', जवाहरलाल नेहरूकी 'मेरी कहानी', तीन खण्डोंमें प्रणीत कन्हैयालाल मणिकलाल मुंशीकी आत्मकथा, विजयालक्ष्मी पंडितकी 'द स्कोप ऑव हैपइनैस' तथा मोरारजी देसाईकी 'द स्टोरी ऑव माइ लाइफ' प्रभृति कृतियां चर्चित और उल्लेखनीय रहीहैं। इस अनुक्रमकी नवीनतम लड़ी है 'अपना आदर्श मैं हूं'।

बयासी अध्यायोंमें सन्नद्ध भूतपूर्व उपराष्ट्रपति डॉ. बसप्पा दानप्पा जत्तीकी समीक्ष्य आत्मकथा पंचायतसे राष्ट्रपति भवन तक की दुष्कर यात्राको रेखांकित करतीहै। सम्पूर्ण कृतिका मूल स्वर उसके शीर्षकमें अभिव्यंजित है। जत्तीजीने अपने जीवनका सांचा स्वयं गढ़ाहै और इस गढ़तमें सर्वथा निजताका अंकन है। महात्मा बसण्णाजीके जीवन-दर्शनका अमिट प्रभाव तथा कर्मनिष्ठ एवं धर्मनिष्ठ पितासे दायागत उदात्त संस्कार उनकी लोक-यात्राके पार्श्वमें आद्यन्त वर्तमान रहेहैं। फलतः आदर्शकी लीकपर अविश्रांत चलते रहना उनका अविरत शरण्य बना रहा। लगभग चवालीस वर्षोंका विवेच्य दस्तावेज इस कथ्यको यथेष्ठ सत्यापित करताहै। जत्तीजीका सार्वजनिक जीवन मात्र २४ वर्ष की आयुसे आरंभ हुआ। पिताश्रीके आकस्मिक निधन से विश्वविद्यालयी शिक्षाका क्रम बाधित होगया और वे पारिवारिक दायित्वका बोझ वहन करते हुए सावलगी ग्राम पंचायतके कार्योंमें संलग्न होगये। ग्रामीण समस्याओंसे रु-ब-रु होनेका यह प्रथम अवसर तो थाही, जन-सम्पर्कके द्वार भी क्रमशः इसी रूपमें खुलते गये।

जमखंडी तहसीलमें वकालतकी व्यस्तताके अतिरिक्त जत्तीजी प्रजा परिषद्‌से जुड़े और सन् १९४५ में निर्वाचित प्रजा परिषद्‌की सरकारमें मंत्री बने। राजनीतिक आरोहणका यह प्रथम सोपान रहा। द्विदल राज्य पद्धतिका अवसान होतेही मुख्यमंत्रीके रूपमें एक हरिजन (श्री कांबिल) को मंत्रीमंडलमें सम्मिलित कर ऐसी परिपाटीकी नींव रखी जो आगे चलकर मंत्रीमंडलके गठनकी अनिवार्य इकाई बनी। तत्कालीन रियासतके राजाकी अनिच्छाके बावजूद उन्होंने घटप्रभा नहर तथा कृष्णा नदीपर पुल-निर्माण जैसी जनकल्याणकारी योजनाओंको कार्यान्वित किया और उनके जुझारू प्रयाससे ही सन् १९५६ में कन्नड़ बहुल पुराने बंबईके चार, निजामकी रियासतके तीन, पुराने मद्रासके दो और कुर्गको मिलाकर नव मैसूर राज्य, सम्प्रति कर्नाटक, की स्थापना हुई। भू-सुधार समितिके अध्यक्षपदसे जत्तीजीने पहली बार मालिकोंकी निजी जमीनका स्वामित्व जमीन जोतनेवाले हलवाहेको हस्तान्तरित किया जो आजभी कई प्रदेशोंमें आन्दोलनका रूप ले रहीहै।

नव-कर्नाटकके औद्योगिक विकासके नये अध्याय जत्तीजीके मुख्यमंत्रित्वकालमें ही आरंभ हुए। शरावती

---

१. प्रका. : पीताम्बर पब्लिशिंग कम्पनी प्रा. लि., ८८८, ईस्ट पार्क रोड, करोल बाग, नयी दिल्ली-११०००५। पृष्ठ : १५१; डिमा. ९३; मूल्य : १५०.०० रु.।

बिजली योजना एच. एम. टी. वाच फैक्ट्री, मंगलूर बंदरगाह, मैसूरमें कागज कारखाना, कुछेक सूती मिल, भद्रावती एवं गुलबर्गा आकाशवाणी केन्द्र इत्यादि अनेक परियोजनाओंके कार्यान्वयनसे प्रदेशकी आर्थिक समृद्धि सुनिश्चित हुई। पुन: श्री कंठीके मंत्रीमंडलमें वित्तमंत्री तथा खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति मंत्रीके रूपमें भी उनकी प्रदेश-सेवा चिरस्मरणीय रही। तदन्तर पांडिचेरी के उपराज्यपाल और उड़ीसाके राज्यपालके दायित्व-निर्वहनमें उन्होंने पैनी सूझ-बूझ, कर्तव्य-निष्ठा और प्रशासनिक कुशलता प्रदर्शित कर पर्याप्त विरुदावली अर्जित की। अकूत श्रम, मृदुल स्वभाव, सहज सरलता, वीतराग व्यक्तित्व तथा प्रशासनिक क्षमताके बलपर उपराष्ट्रपति एवं कार्यवाही राष्ट्रपति के पदपर शिखरस्थ होकर जत्तीजीकी राजनीतिक यात्रा सन् १९७९ में समाप्त हुई, किन्तु प्रसन्नताका विषय है कि वे जीवनकी सांध्य बेलामें बसव समिति, कित्तूर राणी चन्नम्मा मेमोरियल कमेटी लोक शिक्षण ट्रस्ट, भारत कल्चरल इंटिग्रेशन कमेटी तथा दक्षिण भारत हिन्दी सभा इत्यादि संस्थाओंके अध्यक्ष-पदपर कार्यरत हैं।

समीक्ष्य आत्मकथाका अधिकांश भाग लेखककी राजनीतिक अन्तर्ग्रस्तता एवं उपलब्धियोंका प्रलेख है, विशेषत: कर्नाटक और महाराष्ट्रके संदर्भमें। राजनीतिक आत्मकथामें घटनात्मक विवरणका प्राधान्य अवश्य रहताहै, किन्तु कृतिकारके अंतरंगकी प्रतिच्छवि भी वांछनीय है। इस संतुलनके अभावमें प्रस्तुत आत्मकथा सपाटबयानी प्रतीत होतीहै, हालांकि जत्तीजीके शब्दोंमें—'कॉलेजकी मासिक पत्रिका 'राजारामियन' के लिए मैं कथा-कविता लिखकर देताथा। अन्य बाहरी मासिक पत्रिकाओंके लिए भी कहानियाँ, कविताएं मैं लिखा करताथा। (पृ. ६), कदाचित् इसका किंचित् आभास होपाता। शैलिपक दृष्टिसे आत्मकथा स्वयंमें एक ऐसी सशक्त विधा है जिसमें संस्मरण, कहानी, काव्य और उपन्यासके तत्त्व परोक्षत: गुम्फित रहतेहैं। आत्मकथा चाहे राजनीतिज्ञकी हो या साहित्यकार अथवा समाज-सेवीकी, साहित्यकता उसकी अनिवार्यता है, अन्यथा पाठकीय रोचकता सहज ही आहत होतीहै।

कन्नड़ भाषामें लिखित मूल ग्रंथके श्रमसाध्य अनुवादमें डॉ. चंद्रलाल दूबेकी सतर्कता श्लाघनीय है। अंग्रेजी पत्रों तथा अन्य अभिलेखोंके हिन्दी अनुवाद देकर उन्होंने हिन्दीभाषी पाठकोंको अनावश्यक श्रमसे बचायाहै। एतदर्थ वे बधाईके पात्र हैं। संपादक द्वय अक्षयकुमार जैन और जयप्रकाश भारतीकी संपादन-मनीषा भी स्तुत्य है, किन्तु अभिनन्दन-पत्र, कर्नाटक और महाराष्ट्रकी सीमा समस्या तथा बसव समिति का इतिहास आदि कतिपय सामग्रीकी विन्यासकी दृष्टि से परिशिष्टमें रखना श्रेयस्कर होता। मुद्रण संतोषप्रद है, पर 'सिफिरशी पत्र' (पृ. १०४) 'साम्पूर्ण' (पृ. ८४) 'प्रचाय कार्य' (पृ. ६८) प्रभृति मुद्रण-दोषका परिमार्जन अगले संस्करणमें अभीष्ट है। निष्कर्षत: कृतिके अनुशीलनसे एक ऐसे व्यक्तित्वका बिम्ब उभरताहै जो खरीद-फरोख्तकी साम्प्रत तिजारती राजनीतिसे हटकर पृथक् पहचान बनातीहैं। प्रचंड विरोधके क्षणोंमें संयत और शालीन, मातृभाषा कन्नड़ की प्रतिष्ठा एवं अभिवर्धनके लिए अहर्निश प्रयत्नशील, प्रशासकीय नियमोंके पालनमें आद्यता और अप्रतिहत निष्ठा, दलित वर्गके प्रति अजस्र करुणा, विनयशील एवं निरभिमानी तथा गांधेय मार्गके अश्रान्त पथिककी यह आत्मकथा सर्वथा प्रेरक, पठनीय और संग्राह्य है। □

शिखर और सेतु[1]

संस्मरणकार : श्यामसुन्दर घोष
समीक्षक : डॉ. मूलचन्द सेठिया

"शिखर और सेतु" श्यामसुन्दर घोष लिखित तैंतीस 'स्मरणाकलनों' का संकलन है। यह विधापरक शब्द स्वयं लेखका गढ़ा हुआहै। उन्हींके शब्दोंमें "इन निबन्धोंको ठीक-ठीक न तो संस्मरण कहा जा सकताहै और न आलोचना या विवेचना। विवेचनाकी वस्तुनिष्ठता तो इनमें शायद ही स्वीकारी जाये।" इन निबन्धोंमे जिन साहित्य सेवियोंको स्मरणके ब्याजसे श्रद्धा-सुमन अर्पित किये गयेहैं, वे सभी दिवंगत हो चुकेहैं और प्राय: निबन्ध उनकी मृत्युके बाद भाव-तारल्य और श्रद्धातिरेककी स्थितिमें लिखे गयेहैं। दूसरोंकी मरणोत्तर

---

१. प्रका. : साहित्य भण्डार, ५० चाहचंद, इलाहाबाद-२११००३। पृष्ठ ; १६०; डिमा.; मूल्य : ६५.०० रु.।

शल्यक्रिया करनेके स्थानपर यह आत्मिक स्वस्थ प्रवृत्ति कही जा सकतीहै। ये स्मरणात्मक भी एक सीमित अर्थमें ही कहे जा सकतेहैं क्योंकि अधिकांश व्यक्तियोंके सम्बन्धमें स्मरण करनेके लिए भी कुछ विशेष नहीं है। लेखकने स्वयं स्वीकार कियाहै "कुछको अपने निकट पायाहै, तो कुछको केवल देखा-सुना भर है, और कुछको तो केवल पढ़ाहै।" सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मासे उनकी एक-दो मुलाकातें ही हुईथीं। बिहारके कुछ प्रमुख साहित्यकारोंके अतिरिक्त अन्य व्यक्तियोंसे उनका बहुत निकट प्रगाढ़ और अंतरंग सम्बन्ध नहीं रहा, फिरभी श्री घोषने उनके जीवन और लेखनकी मूल प्रेरणाओं और सारभूत विशेषताओंका हृदयग्राही चित्रण करनेमें कई स्थलोंपर सराहनीय सफलता प्राप्त कीहै।

श्यामसुन्दर घोषने आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, बनारसीदास चतुर्वेदी, रामधारी सिंह 'दिनकर', फणीश्वरनाथ रेणु, श्रीकान्त वर्मा आदि अनेक साहित्यकारों के सम्बन्धमें किंचित् विस्तारके साथ लिखाहै और उनके व्यक्तित्वके कई आयामोंको उद्घाटित करनेका सफल प्रयास कियाहै। आचार्य द्विवेदीकी कृति 'बाणभट्टकी आत्मकथा' के आधारपर वे इस निष्कर्षपर पहुंचेहै कि "बाण और द्विवेदीजीके जीवनमें कुछ साम्य भी है। दोनोंका जीवन एक-सा घुमन्तू, यायावर, संघर्षशील और विविधवर्णी रहाहै।" पर असंभव नहीं है कि 'बाणभट्टकी आत्मकथा' में द्विवेदीजीकी अपनी जीवन-कथा घटना रूपसे नहीं तो भावरूपसे प्रक्षेपित हो गयोहो। वे कितनेही प्रकाण्ड पण्डित क्यों न रहेहों, पण्डिताऊपन उनमें लेशमात्र भी नहीं था। बनारसीदास चतुर्वेदीको एक पत्रमें उन्होंने लिखाथा "पण्डित मैं जरूर बनना चाहताहूं पर ठूंठ पण्डित नहीं; जीवन्त, सरस और गतिशील।" द्विवेदीजीके व्यक्तित्वकी जीवन्तता, सरसता और गतिशीलतामें कौन सन्देह करेगा? उनके पत्रोंसे जो उद्धरण दिये गयेहैं वे उनके व्यक्तित्वके अन्तःप्रकोष्ठमें झांकनेके लिए हमें उन्मुक्त वातायन प्रदान करतेहैं। 'दिनकर' की प्रख्याति प्रबल पौरुषके एक गर्जन तर्जनवाले कविके रूपमें है; परन्तु श्री घोषने उनके व्यक्तित्वका वह पक्षभी प्रस्तुत कियाहै जो पारिवारिक दायित्वके गुरु भार और चिरकालिक गृह-विग्रहके कारण अपनेको हारा हुआ और टूटा हुआ अनुभव कर रहाथा। इसी मनःस्थितिमें 'हारेको हरि-नाम' की कविताओंका प्रणयन किया गयाथा। लेखक ने दिनभरके पत्रोंके माध्यमसे उनके व्यक्तित्वके इस अंतरंग पक्षका उद्घाटन कियाहै। बड़े परिवारका "बोझ ढोते-ढोते पीठ घिस गयी, फिरभी बोझ मौजूद है और रहेगा। फिर रोना किस बातका? यही तो जीवन है।" अपनी अन्तस्थ ऊर्जाके बलपर वे निराशाको बार-बार ठेलनेका प्रयास करतेथे; फिरभी उससे सर्वथा मुक्त नहीं हो पातेथे। तीव्र मोहभंगके क्षणमें उन्होंने लिखाथा "दोस्ती भी भ्रम है, सम्बन्ध भी भ्रम है। गर्मी पैदा होनेसे ये सब पिघल जातेहैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपनी दोस्तीके बीज मैंने पत्थरपर बोये थे।" इसी मनःस्थितिमें कभी-कभी वे सोचतेथे "कहीं एक खपरैल खड़ी करके अपनी जिन्दगीको जीरो परसे फिर शुरु करूंगा।" इस प्रकार, लेखकने हमें कवि-जीवनके एक अत्यंत संवेदनशील स्वरूपका साक्षात्कार करायाहै।

कथाकार फणीश्वरनाथ रेणुने अपने उपन्यासों और कहानियोंमें ही हमें ग्रामीण जीवनके 'धूल भरे मैला आंचल' की झांकी नहीं दिखलायी, उनके मन का वह कोना कभी रिक्त नहीं हुआ, जिसमें गांव समाया हुआथा। प्रेमचन्दके उपन्यासोंमें चित्रित गांवसे रेणुका गांव इस अर्थमें भिन्न है कि उसमें केवल अभाव अभियोग और दुःख-दारिद्र्य ही नहीं है, 'उसके साथ साथ एक संगीत, एक थरथराहट, एक लय और एक छन्द भी है। वह गीत और नृत्यके पंखोंपर उड़ता हुआ गांव है। "रेणु, एक जलती मशाल थे..वे सिर्फ लेखनी नहीं थे। 'आनन्दीलालसे जैनेन्द्र' तक की इस कथाकार की जीवन-यात्राका विश्लेषण करते हुए श्री घोषने लिखा है वे 'जड़की पहली बात' से शुरुआत करतेहैं और धीरे-धीरे विचारोंकी शाखा-प्रशाखाएं इस प्रकार फूटती चलतीहैं कि उनका चिन्तन एक छतवार वृत्तका आकार-प्रकार ले लेताहै।" अमृतलाल नागरपर लिखते हुए उनकी दृष्टि मुख्यतः 'गदरके फूल' पर केन्द्रित रही है, जो "यात्रा, डायरी, इंटरव्यू, शब्द-चित्र और संस्मरणकी शैलीमें लिखा एक ऐसा इतिहास है, जिसका जोड़ हिन्दीमें तो नहीं ही है, किसी औरभी भारतीय भाषामें है या नहीं, कहा नहीं जा सकता।' मोहन राकेशको एक ऐसे सृजनधर्मी रचनाकारके रूपमें स्मरण किया गयाहै, जिनकी प्रथम और अन्तिम प्रतिबद्धता अपने लेखनके प्रति ही रही। सृजनके प्रति ऐसा अनन्य समर्पण भाव बहुत कम देखनेमें आताहै।

डॉ. प्रभाकर माचवेने अनेक विधाओंमें [illegible] कियेथे, परन्तु 'शिखर और सेतु' में उन्हें एक ऐसे व्यंग्यकारके रूपमें स्मरण किया गयाहै जिनके व्यंग्यमें आक्रोश और आक्रामकताका अभाव था। वे मूलगत विसंगतिको पहचानकर केवल हलकी चुटकी लेतेथे।

सुमित्रानन्दन पंतके साथ अपनी भेंटके बाद लेखक को यह आभास हुआ "उनको देखना कुछ वैसाही था मानो पहले पहल आगरा जाकर ताजमहल देखा हो। उनकी सम्मोहक छविके अतिरिक्त उनके चारों ओर व्याप्त मौन, गम्भीर और प्रशान्त वातावरणको भी लक्षित किया गयाहै। महादेवी वर्माके मुक्त अट्टहास पर उनका ध्यान विशेष रूपसे गयाहै। परन्तु, महादेवी केवल हंसतीही नहीं, "जब वे बोलतीहैं तो लगताहै कि हिन्दीका स्वाभिमान बोल रहाहै, साहित्यकी अस्मिता बोलतीहै, साहित्यकारका गौरव बोलताहै। 'महादेवी जितना अधिक हंसती-बोलतीथीं, अज्ञेय उतनेही चुप्पे रहतेथे। परन्तु, उनके अभिजात कोमल कलेवरके भीतर कहीं इस्पाती दृढ़ता और अभेद्यता भी छिपी हुईथी, जिसके कारण "उनपर कुल्हाड़ियां, हंसिये, हथौड़े तो बहुत बरसे, पर उनसे छूटी चिनगारियोंसे उनके विरोधियोंके हौसले ही पस्त हुए।" बालकृष्ण राव हिन्दीके प्रमुख कवि होनेके साथ ही एक उच्च पदस्थ प्रशासक भी थे। फिरभी, वे बहुतही आत्मीय और अनौपचारिक व्यक्तित्वके धनी थे। वे उच्च पदों पर आरुढ़ रहे, पर पद उनपर हावी नहीं हो सके। इस चर्चामें उनका पत्रकार रूप तो उभराहै, पर कवि रूप अलक्ष्य ही रह गया। कवि गोपालसिंह नेपालीने प्रणय और प्रकृति-सौन्दर्यके मधुर गायकके रूपमें प्रथम प्रवेश किया; परन्तु बादमें उनके गीतोंमें समयका स्वर बोलने लगा। चीनी आक्रमणके संकट-कालमें उन्होंने देशको जगानेके लिए सबसे अधिक कविताएं लिखी थी। उनका मूल मन्त्र था "उड़ने को उड़ जाये नभमें, पर छोड़े नहीं जमीन कलम।" हंसकुमार तिवारीकी प्रतिभाभी मूलतः प्रतीकात्मक थी। उन्होंने अनेक मर्म मधुर गीत लिखेथे, "उनके कुछ गीतोंमें नव-गीतके बीज आसानीसे ढूंढे जा सकतेहैं।" परन्तु अर्थ-चक्रकी प्रबल प्रताड़नाके कारण उन्हें गीतकारसे अनुवादक बन जाना पड़ा। गीतकार उमाकान्त मालवीयका जीवन करुण-मधुर अनुभूतियोंका एक अविराम संकीर्तन' रहा था। जीवन और लेखनमें आत्मीयता और हार्दिकता [illegible] का यह उपासक 'आजके विसंवादी युगमें निरन्तर संवादकी खोज' करता रहा। श्रीकान्त वर्मा नयी कविताके प्रमुख हस्ताक्षरोंमें थे। बादमें, वे राजनीतिमें दिशान्तरित हुए, राज्यसत्ताके सदस्य बने और सत्ता-शीर्षसे जुड़े। आपात्‌कालका खुला समर्थन करनेके कारण वे आलोचना और निन्दाके पात्रभी बने। उनके बारेमें श्री घोषका मन्तव्य है "श्रीकान्तने अपने व्यक्तित्वको भले ही कुछ कारणोंसे सत्ताके हाथ बेच दियाहो, परन्तु अपने कविको कभी नहीं बेचा। "राजनीतिने उनकी प्रतिभाका दोहन किया, पर अन्ततः वे यह सोचनेको विवश हुए 'पर, तुम्हें मिला क्या?" मंत्रीपद एक छल-छायाकी तरह उनसे दूर ही भागता रहा। राज-नीतिमें रहकर श्रीकान्तको जिस तीव्र मोहभंगका अनुभव हुआ, उसकी त्रासद छाया 'मगध'की कविताओं पर देखीजा सकतीहै। मगध, मथुरा और वैशालीके वक्तव्योंसे उन्होंने अपने युग और अन्तसकी व्यथा, विसंगति और 'विडम्बनाको ही मुखरित कियाहै। राजनीतिसे टूटनेके बाद श्रीकान्तने कवितासे फिर जुड़ना चाहा, पर तबतक उनके सांसोंकी डोर ही टूट चुकीथी।

'शिखर और सेतु' के लेखकने राहुल सांकृत्यायन, बनारसीदास चतुर्वेदी, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु', फादर कामिल बुल्के, शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी, शरद जोशी, राधाकृष्ण, राजकमल चौधरी जैसे अनेक नये-पुराने साहित्यकारोंकी स्मृतिको नमस्य मान अपनी श्रद्धा का अर्घ्य अर्पित कियाहै, जिन्होंने हिन्दी साहित्यकी निष्ठापूर्वक सेवा करनेमें अपना सारा जीवन ही समर्पित कर दियाथा। राहुलजी अपने आपमें एक संस्था थे, उनके जीवन और साहित्यकी अनेकमुखी प्रवृत्तियों को एक लघु निबन्धमें समाहित करना गागरमें सागर भरने जैसी असाध्य साधना है। 'शास्त्र लिखनेवाला लेखक शास्त्रीयतासे इस सीमातक बचा रह सकताहै, यह अपने आपमें आश्चर्य तो हैही आदर्श भी है।" बनारसीदास चतुर्वेदी मूलतः साहित्यिक पत्रकार थे, जिन्होंने 'विशाल भारत' के सम्पादकके रूपमें अनेक साहित्यिक आन्दोलन चलाये, अनेक शहीदोंका साहित्यिक श्राद्ध किया, रेखाचित्र और संस्मरणके मानक प्रस्तुत किये और इन सब कार्योंके अतिरिक्त विभिन्न साहित्य-कारों और राजनेताओंको साठ-सत्तर हजारके लगभग

व्यक्तिगत पत्र भी लिखे । राजा साहब शैली सम्राट थे । उनके अपनेही शब्दोंमें "···अलग अलग शैलियों में खुल खेलनेका हमारा एक खास मर्ज है । 'राम रहीम की शैली और थी, पुरुष और नारीकी शैली और ।" गांधीजीकी 'हिन्दुस्तानी' का साहित्यिक सौन्दर्य जैसा राजा साहबकी कथाकृतियोंमें प्रकट हुआहै, वैसा और कहीं नहीं । रामवृक्ष बेनीपुरी भी अपने ढंगके एक ही शैलीकार थे । 'दिनकर' ने 'सामधेनी' का समर्पण करते हुए उन्हें आत्माका शिल्पी कहाथा, पर वे शब्दके शिल्पी भी थे । उनका जीवनानुराग उनके साहित्यानुरागसे कम नहीं था । लक्ष्मीनारायण सुधांशुने साहित्यालोचनके क्षेत्रमें महत्त्वपूर्ण कार्य कियाथा परन्तु बादमें उनकी साहित्यिक राजनीतिसे आक्रान्त होगयी । फिरभी, वे अपनी अन्तिम सांस तक हिन्दीकी अलख जगाये रहे । फादर कामिल बुल्केने रामभक्ति साहित्यके उद्भव और विकासपर जैसा प्रामाणिक शोध कार्य कियाथा, वैसा और कोई नहीं कर सका । शिवपूजन सहाय, प्रेमचन्द, प्रसाद, निराला और उग्र जैसे साहित्य-महारथियोंके चिर सहचर रहेथे । हिन्दी गद्य शैलीके निखार और परिष्कारमें उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा । परन्तु, अर्थाभावके कारण उन्हें 'कलमके सिपाही' से अधिक 'कलमका मजदूर' बना दिया । नलिन विलोचन शर्मा प्राचीनोंमें प्राचीन और आधुनिकोंमें आधुनिक थे । कवितामें 'नकेन' सम्प्रदायके प्रवर्तकके रूपमें उन्हें याद किया जायेगा । श्यामसुन्दर घोषने गुजराती-मराठीके महान् साहित्यकार काका कालेलकर, बांग्ला उपन्यासकार वनफूल, हिन्दीको राष्ट्रीयताका पर्याय मानकर आजीवन हिन्दीकी समर्पित भावनासे सेवा करनेवाले बाबू गंगाशरण सिंह और प्रसिद्ध व्यंग्यकार शरद जोशी के कृतित्वको भी श्रद्धा सुमन अर्पित कियेहैं ।

श्यामसुन्दर घोषके इन 'स्मरणाकलनोंमें' जहां कहीं लेखकका व्यक्तिगत संस्पर्श है, वहां वर्ण्य व्यक्ति के साथ उनका भावात्मक तादात्म्य हो गयाहै । वे एक तटस्थ द्रष्टाकी भांति उसका वस्तुपरक मूल्यांकन नहीं कर सकेहैं । यह उनका अभीष्ट नहीं था । इस कोटिकी व्यक्तिपरक संस्मरणात्मक रचनाओंमें ऐसी असम्पृक्तता और निर्वैयक्तिकताके निर्वाहकी अपेक्षा भी नहीं की जाती । निश्चय ही उनकी भाषा प्रांजल और प्रासादिक है और कहीं-कहीं उनके वाक्योंने सारगर्भित सूक्तियोंका [illegible] कर [illegible] वो एक उदाहरण अप्रासंगिक नहीं होंगे ।"

"रेणु अपना वेणु बजाकर चले गये, पर उसकी गूंज अबभी दिशाओंमें बाकी है और बाकी रहेगी ।"

"वास्तवमें हंसकुमारजी मोमकी मूरत थे जिन्हें आजीवन आग पीनेकी विवशता झेलनी पड़ी ।"

इस प्रकारके सजीव चित्रांकनके लिए श्री घोषने शब्दोंसे अधिक बिम्बों और प्रतीकोंसे काम लियाहै । उनकी मान्यता रहीहै : "श्रेष्ठ लेखकोंके जीवन और लेखन अभिन्न होतेहैं ।" इन निबन्धोंमें लेखकने कहीं जीवनमें लेखनके प्रेरणा-स्रोतोंका सन्धान कियाहै तो कहीं लेखनमें जीवनके प्रक्षेपणका साक्षात्कार कियाहै । निश्चयही, इन 'स्मरणाकलनोंमें उस गहन और तलस्पर्शी विवेचन-विश्लेषणका अभाव है, जो महादेवी और अज्ञेयकी 'स्मृतिलेखाओंमें पाया जाताहै, परन्तु लेखककी निश्छल सहानुभूति, हार्दिकता और आत्मीयता इसकी अंशतः पूर्ति कर देतीहै । □

हाय, तुम्हारी यही कहानी![1]

उपन्यासकार : ताऊ शेखावाटी
समीक्षक : कन्हैयालाल ओझा

प्रस्तुत उपन्यास राजस्थानमें शेखावाटी अंचलके राजपूत ठाकुर सामन्तोंकी ठसक, प्रजाजनोंपर निरंकुश अत्याचार और बेबात अपनी बातपर अड़े रहकर मर मिटनेकी, बरबाद हो जानेकी कहानी है। पुरुष वर्ग ही नहीं, सामन्त घरानेकी ठकुरानियों, दासियों या गोलियोंकी भी ऐसी ही आन-शान-बान है। लेखक श्री ताऊ शेखावाटीका उपन्यासमें कोई परिचय नहीं है, किन्तु उनके नामसे ही इतना तो मानही लेना चाहिये कि वे शेखावाटीके रीति-रिवाजों, संस्कृति-प्रकृति और इतिहास-भूगोलमें पूरे रूपमें रचे-पचे हैं। यों, उपन्यास की घटनाओंको ऐतिहासिक मान लेनेका कोई कारण नहीं है। रामपुर, लखामीपुर, मोजासर या केशरगढ़के लिए आवश्यक नहीं कि वे शेखावाटीके मानचित्रमें कहीं दिखायी दें। इसी प्रकार न ही ठाकुर रामसिंह, श्यामसिंह, उदयसिंह, दुर्जनसिंह, जोधासिंह, सज्जनसिंह आदि पुरुष पात्र और मुन्नीबाई, अणची दासी, उसकी बेटी बादामी, चमेली जान अथवा ठकुरानी फूल कुंवर, रूपकुंवर या पदमावल आदि स्त्री-पात्रोंका इतिहाससे कोई लेना-देना है। ये और कमोबेश घटनाएं भी लेखककी कल्पना-प्रसूत ही हैं, यद्यपि वे तत्कालीन ठाकुरोंकी हरकतों, सनकों और आदतोंसे मेल अवश्य खातीहैं।

इसी प्रसंगमें ऐसे ही वातावरणको चित्रित करने वाला स्व. आचार्य चतुरसेन शास्त्रीके प्रसिद्ध उपन्यास 'गोली' का सहज ही स्मरण हो आताहै, किन्तु वह केवल एक विशिष्ट नारीको केन्द्र करके गोली-समाज की पीड़ा और उसके संघर्षकी कथा है। प्रस्तुत उपन्यास राजपूतोंकी प्रस्तरीभूत, जड़ होगयी आनकी आत्म-हिंसाकी कहानी है। रामपुरके ठाकुर रामसिंहके छोटे भाई श्यामसिंहकी शान है कि उनकी मूंछ कभी झुकेगी नहीं। इसलिए बेटीके जन्मपर वे उसे मार डालने के लिए भी तत्पर हो उठतेहैं। नर्तकी चमेली जानकी आन है कि वह उनकी मूछें झुकाकर रहेगी। चमेली जानको अपनी इसी हठमें निरंकुश श्यामसिंहसे अपने स्तनही कटवा लेने पड़े। और श्यरामसिंहको भी आखिर अपनी पुत्री रूपकुंवरके विवाहमें अपने दामाद सज्जन-सिंहकी हठके आगे विवश होकर अपनी मूछें झुकाकर उसका स्वागत करना पड़ा। अपने पिताके इस अपमान का बदला लेनेके लिए रूपकुंवरने आन ठान ली कि उसके पिताकी भांति ही उसकी ठकुरानी सास खुले मुंह बीच बाजारमें पैदल चलकर अपनी बहूकी अग-वानी करे और इस आनपर वह जीवन-भर लखामीपुर की कांकड़पर सधवा होकर भी विधवाका जीवन बितानेको विवश हुई। उधर श्यामसिंहके साले दुर्जन-सिंहकी इस आनपर कि सब कोई उसके सामनेसे गुजरनेवाला उसको मुजरा अर्ज करें, जहां ब्रजकिशोर जैसे निरीह नागरिकको खोलती हुई खीरकी कढ़ाईमें मुंह डालकर अपने प्राण गंवाने पड़े, वहीं दुर्जनसिंहको बादामीजानको बचपनमें भ्रष्ट करने और उसे मातृत्व से वंचित करनेके अपराधमें बादामीजानकी प्रतिहिंसा में तिल-तिलकर मौतकी घड़ियां गिननी पड़ीं।

प्रश्न उठता है कि, 'हाय, तुम्हारी यही कहानी' स्त्रियोंके उत्पीड़नकी कहानी है या पुरुषोंके उत्पीड़न की? ठाकुरोंने यदि अत्याचार किये तो महिलाओंने उनका भरपूर बदला भी लिया और इस प्रक्रियामें बरबाद दोनों हुए। सचमुच तो यह कहानी उस मिथ्या

---

[1] प्रका. : विवेक पब्लिशिंग हाउस, धमानी मार्केट, चौड़ा रास्ता, जयपुर (राजस्थान)। पृष्ठ : १५०; डिमा. ९१; मूल्य : ८५.०० रु.।

सामन्ती प्रस्तरित शान की है जो समय और प्रसंगकी मांगपर न झुकनेसे टूट जानेके लिए अभिशप्त है।

कथाका काल बहुत पुराना भी नहीं है। ठाकुर कल्यानसिंहका शासनकाल सन् १९२२ से १९४७ ई. का है। यों लेखकने उसके पूर्वके शासक माधोसिंहको बड़ा कामुक और अलोकप्रिय तथा कल्यानसिंहको बड़ा नेक और लोकप्रिय प्रशासक बतायाहै, जिसका इतिहास से समर्थन नहीं होता। कल्यानसिंहकी अयोग्यताके कारण शासनको कोर्ट्स आफ वार्डसके अन्तर्गत लेकर उसे आबू निर्वासित कर दिया गयाथा, जहांसे वह पुन: वाइसरायके आदेशसे सन् १९४२ में ही सीकर लौट सका।

उपन्यासमें मौलवी शम्सुद्दीन ओ पंडित श्रीधरके ब्याजसे लेखकने उस समयके जन-सामान्यकी प्रतिक्रियाओंका परिचय दियाहै। शीर्षक, प्रस्तुत उपन्यास का कोई खास मूल्य नहीं स्थापित करता। उसका कथ्य सामन्ती-व्यवस्थामें स्त्री और पुरुषके संबंधों तक ही सीमित है, सामान्य जन-जीवन या सामन्ती-प्रशासन के अन्य मुद्दोंसे उसका कोई संबंध नहीं है। किन्तु अपने कथानककी मौलिकतासे पाठकको अन्ततक बांधे रखने में समर्थ है। सामन्ती अन्त:पुरोंमें और राजस्थानके रीति-रिवाजों तथा विश्वासोंका एकांगी किन्तु समग्र परिचय तो देताही है। इतनी सफलता ही कम नहीं है। □

कुन्तो[1]

उपन्यासकार : भीष्म साहनी
समीक्षक : कृष्णचन्द्र गुप्त

तमस जैसे धारदार कथ्य और शिल्पके धनी भीष्म साहनीका यह उपन्यास कुन्तो नितान्त सामान्य क्या ऊबकी सीमा तक पहुंची हुई कृति है। भीष्मजीकी जो महिमामंडित छबि अनुवादक, रचनाकार इप्टा प्रगतिशील लेखक संघ, अफ्रो-एशियाई लेखक संघसे सम्बद्ध होनेके कारण पाठकोंके मनमें बनो हुईथी वह इसे पढ़कर धूमिल ही नहीं ध्वस्त होने लगतीहै। एक ढीलाढाला कथानक सुस्त चालसे रेंगता हुआ, अनावश्यक विवरणों से भरा हुआ नितान्त सामान्य और कहीं-कहीं अस्वाभाविक लगनेवाले पात्र और उनके क्रियाकलाप ऊब पैदा करतेहैं। एक 'प्रोफेसाब' है मध्य मार्ग, संतुलन के पक्षधर, कक्षाके अन्दर आधुनिक पर बाहर रूढ़िवादी, समझौतापरस्त। एक उनका भाई है विदेशपलट धनराज, जिसकी पत्नी थलथल (नाम काम ही दर्शनीय है) उसे रिझानेमें असमर्थ रहतीहै, उसकी विदेशी प्रेमिकाओंके कारण, अंतमें मर जातीहै, देशी प्रेमिकाके आगमनका रास्ता साफ करनेके लिए। इन्हीं प्रोफेस्साब की एक बहन कुंतोका विवाह उनके छात्र जयदेवसे कराया जाताहै, जो अपनी मौसेरी बहन सुषमामें आसक्त है। सुषमाका अनमेल विवाह तुड़वानेमें इसी जयदेवका हाथ है, चमत्कारिक ढंगसे। सुषमाका विवाह इसी जयदेवके द्वारा सनकी गिरीशसे करवा दिया गयाहै, जिसकी उपेक्षासे दुखी होकर सुषमा उसे छोड़कर शांतिनिकेतन चली गयी। प्रोफेस्साबका एक बड़ा भाई है जो विदेशमें ही बस गयाहै अपनी भारतीय पत्नीको छोड़कर।

एक हीरालाल है जो क्रांति-जुलूस-जलसोंकी मुनादी करताहै और पेट भरनेके लिए चूरन चटनीकी मुनादी भी। उसकी निष्ठा, त्याग, बलिदानके सामने सब बौने और स्वार्थी लगतेहैं—"चूरन बेचतेहैं तभी थोड़ा देशका काम भी कर पातेहै। जलसे-जुलूसकी मुनादी घंटों करते रहो, गला नहीं बैठता पर यहां दो जगह चूरनकी हेंक लगाओ तो सुसरी गलेमें खर्र-खर्र होने लगतीहै"। इसी हीरालालकी प्राथमिकता दर्शनीय है—"आजादीके बाद सुसरी इस खांसीका भी इलाज करवानाहै। बहुत काम तो लटके हुएहैं। पढ़ाई भी करूंगा, अब तीसरी जमात भी कोई पढ़ाई है।" जाने कितने हीरालाल आजादीके इस भवनकी नींवमें दफन होगये और इसपर झंडा फहरानेवाले कहां कहांसे आ गये। आजादीके बाद ऐसा हाल होगा इन हीरालालोंका, यह क्या किसीने भी सोचाथा ?

पुरुष प्रधान समाजमें अभिशाप झेलती स्त्रियां उपेक्षा, अवहेलना, तिरस्कार, मारपीट तक। और पुरुष अधिकारी पुरुषोंपर कोई बन्धन नहीं। चूमा, चाटा, चूसा और फेंक दिया घरके किसी कोनेमें या कभी-कभी घरसे बाहर। ऐसी ही कुन्तो है, जो जयदेव जैसे आदर्श युवकको ब्याहनेके लिए अभिशप्त है—

१. प्रका. : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : ३२७; डिमा. ९३; मूल्य : १२५.०० रु.।

"अगर मेरा प्रेम इसके दिलको नहीं छूता तो क्या बन संवरकर आनेपर छूने लगेगा। ऐसे तो वेश्याएं ग्राहकके पास जातीहैं।" यही कुन्तो विवशतामें यहांतकके लिए तैयार हो जातीहै—"उसे सुषमा (पतिकी प्रेमिका) ले आओ। मैं कहीं चली जाऊंगी।" बेचारी बेमौत मरतीहै।

उपन्यासके अंतमें 'स्वतन्त्रता पूर्व साम्प्रदायिक दंगोंकी झलक है। भाईचारेको बनाये रखनेकी असफल चेष्टा है। यही अंश पठनीय है, अन्यथा शेष सब नितान्त सामान्य है। सेक्सकी उच्छृंखलता पाठकों सुरुचिको आहत करती रहतीहै। पंजाबी शब्दों और मुहावरोंका प्रयोग काफी है जो कहीं-कहीं हिन्दी पाठकों को खटकताहै।

आयु और अनुभवके इस सोपानपर पहुंचकर क्यों इतना अपरिपक्व और प्रारंभिक लगनेवाला उपन्यास भीष्म साहनीने लिख मारा? ☐

कहानी

अनुगूंज[1]

लेखिका : गीतांजलिश्री

समीक्षक : डॉ. केदार मिश्र

मानव मनकी सही समझ, परिवेशकी सही परख के साथ लेखकीय ईमानदारी सही कथ्य प्रस्तुत करती है। पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका, नारी-परिवार, स्वतंत्रता उच्छृंखलता, स्वत्व-भटकाव, अधिकार दुराग्रह, स्वाभाविकता-कुंठा आदिकी वास्तविक पहचानके अभाव में स्वस्थ निरुपण सम्भव नहीं। 'नारी स्वातंत्र्य' एक लुभावना कथन है, किन्तु यह नारीको किस प्रकारका जीवन प्रदान करता है? सार्थक या निरर्थक? रूप या अरूप या कुरूप। इसी प्रकार सामाजिक वर्जनाएं अमानवीय प्रवृत्तियां मानव जीवनको कौन-सा रूप प्रदान करतीहैं। मन पुरुषका हो या स्त्रीका—मन है। उसे प्राप्त करने जब स्त्री-पुरुष 'एक मन' होतेहैं तब जीवनमें भी संगति होतीहैं। 'एक मन' के अभाव में बिखराव। बिखराव प्राप्तिका द्योतक नहीं, प्राप्य का बिखरना होताहै। सार्थकताके लिए सही समझ भी आवश्यक है 'अनुगूंज' कहानी संग्रहकी दस कहानियां, इन्हीं सन्दर्भोंकी कहानियां हैं, जिनमें लेखिका गीतांजलीश्रीने नारीकी महानगरीय सभ्यता प्रदत्त विभिन्न मानसिक स्थितियोंको कथा रूप प्रदान किया है। जहां, लेखिकाने कथाके पात्रोंको परिवेशकी संज्ञा दी है, उससे उत्पन्न स्वर 'मन' का है और जहां पात्र पात्रसे कुछ कहता है, वह स्वर एक प्रकारके विशिष्ट सोचका है।

संग्रहकी प्रथम कहानी 'प्राइवेट लाइफ' एक ऐसी नारी पात्रकी कहानी है जो स्वैच्छिक जीवन जीनेके लिए सभी सामाजिक मान्यताओंको नकारतीहै— "उसका भी तो अधिकार है जीनेका। जीवनको समझनेका।" और रूढ़ मान्यताएं उससे कहतीं 'हमारे समाजमें लड़की हमेशा किसीकी निगरानीमें रहतीहैं।' वह प्रतिरोध व्यक्त करतीहै "मैं अपनी देख-रेख स्वयं करूंगी।" (पृष्ठ १३)। 'बेलपत्र' कहानी अन्तःधार्मिक विवाहकी एक स्थिति विशेषसे उत्पन्न पात्रोंकी मनःस्थितिको व्यक्त करतीहै। फातिमा और ओम् 'दोनोंने मिलकर सबका सामना कियाथा', किन्तु सभी सफलताएं प्राप्त करनेके उपरान्त भी सामाजिक एवं तिक्ताकी विषमताएं फातिमाको विगतकी ओर, जिससे वह विद्रोह कर चुकीथी, पुनः जुड़नेकी विवशता देतीहै—"बड़ी लड़ाई लड़ना आसान है। उन्हें सबसे लड़तेहैं ××× पर ये छोटी लड़ाइयां

---

[1]. प्रका. : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली। पृष्ठ : १६०; क्रा. ६१; मूल्य : ५०.०० रु.।

इयां', 'इतनी छोटी होतीहैं कि बड़ी-बड़ी स्वाभिमानी रोबदार लड़ाइयोंसे जोड़कर देखना मुश्किल हो जाता है।' (पृष्ठ ३२)।

'पीला सूरज' कहानी उस मानवीय संवेदनाको व्यक्त करतीहै जो परिचयके अभावमें भी एक-सी होती है—"मैं सोच रहीहूं कब सूरज उगेगा। जिनेवाकी अन्तर्राष्ट्रीय इमारतोंपर, देशके मेरे पुश्तैनी मकानपर इन झोपडोंपर, 'इस तूफानी बरसातके बाद क्या बड़ा-सा पीला सूरज होगा।' (पृष्ठ ४५)।

'सफेद गुड़हल' नारी मनकी स्मृतियोंकी कहानी है जिसमें "एक वृत्तसे दूसरा वृत्त निकलताहै, उसमें से तीसरा निकलताहैं, लगातार, मुग्ध लयमें', 'मुझे इंतजार है, आह, भरते पत्तों-सा...सीने पे सरकती मेरी माला-सा...।' 'तुम अभी याद नहीं आ रहे। गुलाबी धूप अंतर्मनके किसी कोनेमें दुबक गयी होगी। ऊपर इस नवंबरकी रातके शीतकी पर्त है।" (पृष्ठ ५२)। 'तिनके' कहानी पात्र एवं परिवेशकी असंगतियोंकी कहानी है। हेमन्त, चंदा, दीदी, शानू और किश्शू—भरापूरा घर जिसमें कोई समस्या नहीं थी, तबभी समस्या थी—"न तो लड़ पानेका कारण बन रहाथा, न इलजाम ठोकनेका। न चीख सकतेथे, न रो सकते थे। बस जरा-सी फांसकी ररक भुलाई नहीं जा रही थी।' (पृष्ठ ६१)। 'कसक' कहानीके दो स्त्री पात्र—'एक जीवनमें हैं, एक जीवनसे बाहर।' जो जीवन में थी, वह जीवनसे बाहर स्त्री पात्रकी गाथा सुनाती है—"वह तो बाहर ही बाहर थी, महकते, खुले-खुले, हवादार बाहरमें। मानों हर चीजमें थी,' 'तुम कहीं ठहरना ही नहीं चाहतीहो। अस्थिर, चंचल।" (पृष्ठ ६३)।

'दरार' कहानी पात्रके मनकी दरार, जिसमें से होकर वह बूंदकी तरह रिस जाताहै, को व्यक्त करतीहै—"दिन तो कामकाजमें कट जातेहैं, पर वे शामें? न जाने क्या ढूंढने लग जातीहैं?' (पृष्ठ ९५-९६)। 'दूसरा' शीर्षक कहानी उस मानसिकताको व्यक्त करतीहै जो 'स्वत्व' एवं स्वातंत्र्यके नामपर पति-पत्नीको अलगाव और बिखरावकी स्थितिमें कुण्ठित करतीहैं, "यह आदमी लोग समझतेहैं जरा कड़ककर बोलो, भरी सभामें जलील करनेकी धमकी दो, और औरत सहम जायेगी। पर नीलम ऐसी नहीं।" (पृष्ठ १०७)। 'इनकी पत्नी' होनेसे अलग भी मेरा कोई अहम् और अस्तित्व है।' और इस सोचकी परिणति—"भगीरथ तुम्हें कुछ हो रहाहै। तुम्हें मुझसे सदा शिकायत है,' 'मैं तो सोचने लगतीहूं कि आखिर तुम मेरे संग हो ही क्यों?' (पृष्ठ ११६)।

'हाशिएपर' शीर्षक कहानीभी मानवीय मनकी विभिन्न स्थितियोंको व्यक्त करतीहै। 'हर रिश्तेके अपने अलग नियम खुद-ब-खुद बन जातेहैं। इससे, जिनका रिश्ताहै, उनके स्वभावके बारेमें परिणाम निकालना सही नहीं होता।' (पृष्ठ सं. १२२) 'सच तो यह है कि हमें कहीं भी अपना एक कोना बना लेना जरूरी है, बस', हमारे तुम्हारे जैसे लोग चाहे यहां, चाहे देशमें, एक अपने जरासे दायरेमें ही तो घूमतेहैं।" कौन हम देशके लोग, समाज, परम्पराओंसे ही जुड़ेहैं।' (पृ. १२९)। मैं सोच रहीथी, क्या होता है? जगह? कि लोग? कि वक्त?' (पृ. १४१)।

'अनुगूंज' कहानी सुखमय जीवनमें भी मानसिक दुर्बलता अनुचितको उचित समझ अनावश्यक हताशा', 'पूर्व प्राप्त समस्त सार्थकताको स्वयं झूठमें परिणत कर आदम मूल्यकी स्थिति व्यक्त करतीहै—'इस घरपर मुनियां पहले दिन ही मोहित हो गयीथी।' 'इतना सधा-सँभला सलोना जीवन।'(पृ. १४५)। पर मुनियां ने सुन रखाहै—एक और दुनियांके बारेमें, जिसमें लोग कोढ़ेभी बनतेहैं, राक्षस भी।' राहुल वहां जीता है।' 'मुनियां पढ़तीहै, घरका काम करतीहै। लिखती है, घरका काम करतीहै। फ्रिजसे मक्खन रोटी-चीज खा लेतीहै, घरका काम करतीहै। खिड़कीसे झांककर मौसमका मुआइना करतीहै। (पृष्ठ १४६)। राहुल आकर, उसकी गोदमें सिर रखकर लेट गया। अपनत्व-प्रदत्त वह सुख भी मुनियांको अपने तक नहीं रोक पाया, 'जी चाहता है कि बस बाहर निकल जाये, खुली सड़कपर चली जाये, चलती जाये, चलती जाये।' 'पता नहीं क्या-क्या बटोरना चाहतीहै मुनियां, हाथ फैलाकर जो आये उसेही समेट लेना चाहतीहै, इस कदर भर लेना चाहतीहै और भरती चली जाना चाहतीहै। कि आगे का बटोरे तो पीछेका फिसल जाये।" और उसकी यह अनावश्यक चलती जानेकी मन:स्थिति आदम मूल्योंकी ओर ले जातीहै—'अचानक दूधवालेका तूफान में पला रूप याद आया। एक गुदगुदाती गंध-सी उठी।' राहुलका सम्बोधन उसे पुन: मुनियाके रूपमें ले आया।' (पृष्ठ १५०)।

आलोच्य कथा संग्रहकी कहानियोंमें सामाजिक रूढ़ियों परिवेशकी विषमताओं एवं मानव मनकी दुरुहताओंसे उपजे विशिष्ट सोच और उससे उत्पन्न मुक्त प्रेम सम्बन्धोंका खोखलापन दाम्पत्य जीवनके तनाव और मानवीय मनकी रागात्मकता व्यक्त हुई है। सुगठ कथा-शिल्प, सहज अभिव्यक्ति, कथ्यको आकार देता हुआ भाषा-शिल्प लेखनकी निजताको व्यक्त करताहै ☐

मुखरित मौन[1]

कहानीकार : कमला गोकलानी
समीक्षक : डॉ. उत्तम एल. पटेल

'मुखरित मौन' सिंधी लेखिका कमला गोकलानी का सोलह कहानियोंका संग्रह है। जिसमें सामाजिक समस्याओं एवं व्यक्तिके अंतर्संघर्षको प्रस्तुत करनेका प्रयत्न कियाहै।

संग्रहकी पहली कहानी 'फैसला होने तक' में ईमानदारीके कारण नौकरीसे निलम्बित व्यक्तिकी मनःस्थितिका तो 'अंधेरोंमें पलता उजाला' में आदर्शवादी व्यक्ति कैसे भ्रष्ट नेताओंके आगे समझौता कर लेताहै, बताया गयाहै। 'बेचारे अभिशप्त' में निर्दोष बालकोंपर मानसिक व शारीरिक अत्याचार करनेसे कैसे उनका मन कुंठित होकर प्रतिशोधकी भावनासे भर जाताहै, चित्रित किया गयाहै। 'छोटे दिलके दर्द बड़े' भी 'बेचारे अभिशप्त' के समान बाल-मनोविज्ञानपर आधारित है।

अपनेही मामने किसीपर अत्याचार व अन्याय होते देखकर भी लोग कैसे मात्र दर्शक बनकर रह जातेहैं—'रूप बदलती चट्टानें' अभिव्यक्त करतीहै। तो 'डायरीका सत्य' में ऐसे पतिका चित्रण है, जो अपनी पत्नीकी इस कारण हत्या करनेको विवश हो जाताहै कि अपनी मृत्युके बाद उसका क्या होगा ?

उपर्युक्त कहानियोंके अतिरिक्त शेष सभी कहानियां नारी-जीवनसे जुड़ीहैं। 'दफनाये हुए सम्बन्ध' में पुरुष-प्रधान समाजमें अपना व्यक्तित्व बनाये रखनेके लिए बच्चोंको भी पिताके साथके सम्बन्ध दफनानेके लिए मजबूर करनेवाली मां है तो 'खुली हुई आंखें' मां के उलाहने, प्रतीक्षा और वेदनाकी परिचायक है। 'आखिर क्यों ?' में एक ऐसी मां है, जो स्वयं तो आगे बढ़ गयीहै, किन्तु बेटा पीछे रह गयाहै। 'वो आयेंगे' में दहेजके कारण परित्यक्ता नारीका मानसिक रोगसे ग्रस्त होनेका चित्रण है। 'ढूंढी हुई खुशियां' में टैक्सी ड्राइवर सरदारजीके वात्सल्य-भावकी सुंदर अभिव्यक्ति हुईहैं। 'जिंदगी एक अभिशाप' में पत्नीके संदेहके कारण शापित दाम्पत्य-जीवनकी कथा है। 'अलग-अलग धारणाएं' में बताया गयाहै कि पुरुष-प्रधान समाजमें नारीका कोई महत्त्व नहीं है। यहभी 'वो आयेंगे' के समान दहेज-प्रथाकी ओर संकेत करती है। 'सर्द सुबहका सूरज' में नारी ही नारीकी भावनाको समझ सकतीहै, को तथा 'मुखरित मौन' में पुरुषकी एकाधिकार और निरंकुशताके सामने नारीकी अधिकार-भावना मुखरित की गयीहै। संग्रहकी अंतिम कहानी 'हादसा जो टल गया' में अपने साथ जो दुःखद घटित हुआहै, वैसा अन्यके साथ कभी न हो, की मानवीय-भावना दीप्तिके द्वारा व्यक्त की गयीहै।

विवेच्य संग्रहकी अधिकतर कहानियोंका प्रारंभ कथानकके अंतसे होताहै। कहानियोंके अंतको लेखिकाने बंद कर दियाहै। कहानीका उद्देश्य सांकेतिक रूपमें व्यक्त होना चाहिये, जबकि अधिकांश कहानियोंमें नेरेटर या कहानीका मुख्य पात्र इसके बारे बयान कर देताहै। ऐसा अधिकतर आत्मकथात्मक ढंगसे लिखी गयी कहानियोंमें हुआहै। परिणाम, कहानियोंके प्रारंभ व अंत नीरस, अरोचक व प्रभावहीन बन गयेहैं। 'ढूंढी हुई खुशियां' और 'डायरीका सत्य' इसके अपवाद हैं। संवाद व भाव पात्रानुकूल नहीं है। भाषा सरल है किन्तु शैली अरोचक। कहीं-कहीं मुद्रण दोष भी हैं। ☐

---

१. प्रका. : सत्य किशन पब्लिकेशन प्लाट नं. २, हनुमान-नगर, फाई सागर रोड, अजमेर-३०५-००१। पृष्ठ : ८६; डिमा. ९२; मूल्य : ४०.०० रु.।

तीसरा मचान[1]

नाटककार : डॉ. राघव प्रकाश
समीक्षक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह

डॉ. राघव प्रकाश मूलत: एक ऐसे आलोचक हैं जो यथार्थको उसके अनेक आयामोंमें देखतेहैं और ऐसे नये संदर्भोंको उठानेका प्रयत्न करतेहैं जो यथार्थ को संवेदना और विचारके धरातलपर प्रतिष्ठित कर सकें। यही दृष्टि उनके नाटकोंमें भी प्राप्त होतीहैं। आजका नाटक "नयी शुरुआत' तथा 'बोल जमूरे बोल' (जनता नाटक) उनकी पूर्व प्रकाशित नाट्य कृतियां हैं और इसी क्रममें, उनका नया नाटक "तीसरा मचान" एक नये संदर्भ और कथ्यको नाट्य संरचनामें रूपांतरित करताहै। नाटकका यह कथ्य या विषय प्रागैतिहासिक है जो गुफा मानवसे आरंभ होकर अंतिम दृश्यतक आते आते नर-नारीके संघर्ष एवं समानान्तरताको आजके संदर्भसे परोक्षत: जोड़ देताहै। वस्तुत: यह नाटक नृतत्त्वशास्त्र और मानवीय मनोविज्ञानके गठबंधनके द्वारा संस्कृतिके दो पूर्वापर पक्षोंकी ओर संकेत करताहै, आशय मातृ-सत्तात्मक युगों एवं पितृसत्तात्मकसे है जो मानव संस्कृतिके विकासमें दो सापेक्ष स्थितियां हैं। इस विकासमें दो सापेक्ष स्थितियां हैं। इस विकास-क्रममें मातृसत्तात्मक युग प्रथम अवस्था है जब कबीलेमें नारीका वर्चस्व था और क्रमश: यह वर्चस्व पितृसत्ता (पुरुष) में स्थानान्तरित होने लगता है। मातृसत्तासे पितृसत्ता तक की यह यात्रा एक द्वन्द्व की यात्रा है और इस द्वन्द्वमें बल और पौरुषका क्रमश: संक्रमण पुरुषमें केंद्रित होता जाताहै। राघव प्रकाशका यह नाटक इसी संक्रमणको, भिन्न स्थितियों और प्राकृतार्किक विचारों और संवेदनाओंके प्रकाशमें प्रस्तुत करताहै। मातृसत्तात्मक युगमें नारी उत्पादनके केंद्र में थी और कृषि व्यवस्थाको जन्म देनेवाली नारी है यह नृतत्त्वशास्त्रीय है जिसे लेखकने गुफा मानवके संदर्भमें प्रस्तुत कियाहै जो घूमंतू व्यवस्थाके आगेकी स्थिति है। यह व्यवस्था भी धीरे-धीरे पुरूषमें हस्तान्तरित होती गयी, पर यह भी सत्य है कि इस अवस्था में भी 'नारी' का अपना विशिष्ट सहयोग रहाहै। डॉ. राघव प्रकाशने इस व्यवस्थाका सुंदर विकास तो दिखाया ही है, पर साथ-साथ उन्होंने मानवीय संवेदना और विचारके इस रूपको प्रस्तुत करनेका प्रयत्न भी कियाहै जो प्रागैतिहासिक भावभूमिको ध्यानमें रखकर की गयीहै। इस नाटककी सफलता इसी तथ्यके कारण मानी जानी चाहिये।

इसीसे जुड़ा एक प्रश्न जो लेखक भी उठाताहै, वह है इसका मंचन जो ड्राइंग रूमके मंचनसे कहीं अधिक व्यापक एवं अर्थवान् मंचकी अपेक्षा रखताहै, अर्थात् यह नाटक अपने स्वयंके नये रंगमंचकी अपेक्षा रखताहै जो गुफा-परिवेशको मंचीय आकार दे सके। यह कार्य 'कल्पना' की सृजनात्मकतापर केन्द्रित है और कोईभी नाट्य प्रस्तुति और लेखन इस 'कल्पना' के बगैर नाट्य संरचनाको शायद 'जन्म' ही न दे सके। कल्पना और बोधका यह संघात रूप किसीभी "कृति" के लिए आवश्यक है और यही बात नाट्य प्रस्तुति एवं लेखन दोनोंके लिए सत्य है। डॉ. राघव प्रकाशने इन दोनों घटकोंका आवश्यकतानुसार अपने नाटकमें संयोजन कियाहै। लेखकने जो रंग-संकेत दिये हैं वे एक सीमा तक नाट्य प्रस्तुतिमें सहायक होतेहैं जो हजारों वर्ष 'पूर्व गुफा-मानवके परिवेशको (यथा अग्निका जलना, टहनियोंकी पेड़से घिरा हुआ आंगन, जानवरोंकी खाल, पत्थरोंके हथियार तथा कपास, पटसनके वस्त्र आदि) साकार कर देतेहैं। ये रंग-संकेत

---

१. प्रका.: किताब घर, २४/४८६६ शीलतारा हाउस, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। मूल्य: २५.०० रु.।

ऐसे "विवरण" हैं जो नाट्य-प्रस्तुतिमें सहायक है और आवश्यक भी। इस प्रकारके रंग-संकेत स्थान-स्थानपर दिये गयेहैं जो लेखकके अध्ययनको समक्ष रखतेहैं। नाट्य-संरचनामें जहां पात्रों तथा संवादोंका महत्त्व है, वहीं इन रंग-संकेतोंका भी। इसीके साथ पात्रोंका मनोवैज्ञानिक एवं परिस्थितिजन्य संघर्ष पूरे नाटकको द्वन्द्वात्मक बना देताहै और अंतमें, यह द्वंद्व जो चीतू और घर्षाके मध्य तीव्रतम स्थितिमें होताहै, उसी समय 'शेरकी दहाड़' सुनकर ये दोनों पात्र टूटी हुई गुफाको ठीक करने लगतेहैं। यहांपर लेखक सांकेतिक रूपसे भय (शेरकी दहाड़) की भूमिकाको दर्शाताहै जो संघर्षरत चीतू-घर्षाको एकजुट होकर कार्य करनेको प्रेरित करताहैं। यहांपर परोक्षत: नाटककार मातृ एवं पितृबिम्बको सापेक्ष अर्थवत्ता देताहै और दोनोंके सहयोगको संस्कृतिके विकासका अभिन्न अंग मानताहै। यदि गहराईसे देखा जाये तो जंगल एवं गुफा-मानवकी यह 'कथा' एक संभावनाको संकेतित करतीहैं कि स्त्री और पुरुषकी दो धुरियां सापेक्ष हैं जो क्रमश: 'अर्धनारीश्वर' की धारणाको प्रतीकीकृत करतीहैं।

इस नाटककी संरचनामें पात्रोंके नाम इतनी सूझ-बूझके हैं जो जांगल और गुफा-मानव-संस्कृतिको भी साकार करतेहैं, जो आदिम होते हुएभी 'प्रतीकात्मक' भी हैं। जरठा (वृद्धा) घर्षा (जो संघर्ष करतीहै) पुराचा (जो आदिम श्रमकी प्रतीक है) तथा चीतू (जो चैतन्य है—पुरुषका प्रतीक) ऐसे ही नाम हैं जो प्रागैतिहासिक परिदृश्यको साकार करनेमें सहायक हैं। ये नाम कबीलाई सभ्यताका अर्थ देतेहैं और सम्पूर्ण नाटक उन्हीं पात्रोंके संवादोंके द्वारा कथावस्तुको गति देताहै और यदाकदा संवेदनात्मक एवं वैचारिक द्वन्द्व को भी संकेतित करताहै। नाटककार कथ्य एवं विचार-संवेदनको इस प्रकार संयोजित करताहै कि नाटकको पूरी संरचना उस युगकी भावभूमिको प्रक्षेपित करनेका सीमा तक सफल है। नाट्य-संरचनाकी दृष्टिसे यह तत्त्व महत्त्वपूर्ण है।

नाटकका परिदृश्य प्रागैतिहासिक है, अत: घर्षा और पुराचाका व्यक्तित्व संघर्षमूलक है जो पितृसत्ता (जमीरा, चीतू) को चुनौती देतीहै और साथही एक संवेदनात्मक सहयोगके लिए तत्पर रहतीहै। घर्षाका का यह कथन—'गीदड़-सा वह जमीरा मर्द अपने आपको 'हुंकार' समझने लगाहै। पिछली बार ही जब वह हमारी लकड़ी चुरा ले गयाथा तो हमने उसकी मूँछोंपर उसीके सुअरोंका गोबर लीप दियाथा, अबकी बार उसकी मूँछोंका एक-एक बाल उखाड़ लेंगी।" (पृ. १४)—मातृ बिम्बके भयावह रूपको प्रस्तुत करताहै। इसके विलोम में वह मातृबिम्ब है जो पुराचा और चीतूके द्वंद्वसे उत्पन्न होताहै। चीतूका मचान बनाना और पुराचाका उसमें केन्द्रित होना, उस पारिवारिक रूपको प्रकट करताहै जो गुफासे घर (मचान) की ओर संक्रमण है जहां सुरक्षा अधिक है। दूसरी ओर इन दोनोंके संवादका सौंदर्य यह है कि पुराचा क्रमश: अपने हाथोंको बेल न समझकर, देवदारूसे "लिपट जाने वाली बेलकी तरह कोमल" तथा "नागरमोथा" की तरह महकनेवाला शरीर (पृ. ३०-३१) समझने लगतीहै जिसकी उत्तेजना धीरे-धीरे चीतू जगाताहै और अंतमें वह एक प्रकारकी 'आत्मरति" में आ जातीहै जहां उसकी कठोरता वक्रता तथा श्रम सौंदर्य क्रमश: कोमलता एवं आरोपण प्रक्रियासे युक्त होकर, उस नारी बिम्बको प्रक्षेपित करताहै जो पुरुष चाहता है, और नारी उसके प्रति सम्मोहित होतीहै। पुराचा का यह कथन सांकेतिक रूपसे इस पूरी स्थितिको व्यक्त करताहै—'चीतू, मुझे क्या पता......मेरी हंसी में झरना भी फूटताहै। चीतू, और चीतू, बता न क्या है यह सब—ये बेले, ये फूल, यह झरना और नागर-मोथा-सी महकनेवाली यह देह।" (पृ. ३१)। यह नारीका संक्रमण (भावना-संवेदनाके स्तरपर), यदि गहराईसे देखा जाये तो मातृसत्ताका पितृसत्तामें क्रमिक रूपान्तरण है जो एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। यह वस्तुत: काम और रतिका आरम्भ बिंदु है जो आगे चलकर मानव इतिहासमें एक क्रियात्मक शक्ति के रूपमें अवतरित होताहै। इसीके साथ, नाटकमें वे भी प्रसंग हैं जो मानवकी आदिम सृजन क्षमताकी ओर संकेत करतेहैं जब वह दिवास्वप्नों और फंतासियों का सृजन करताहै। नाटककारने भिन्न पात्रोंके द्वारा इस आदिम प्राकृतिक स्थितिको अत्यंत सांकेतिक रूपसे व्यक्त कियाहै। एक प्रसंग है जिज्ञा और पुराचाके संवादका जो आदिम फन्तासीका रूप है जिसकी जड़ें पुराकथाओं, आद्यरूपों और परी कथाओं में सांकेतिक रूपसे अन्तर्व्याप्त रहतीहै। पुराचाका यह

अतिकल्पनात्मक कथन लें—'जो झरनेमें वह जाताहै, वह बादलोंमें चला जाताहै। और जब पानी बरसता है, तो वहभी पानीके साथ नीचे आ जाताहै और जब औरत पानीमें भीगतीहै तो वह औरतके पेटमें चला जाताहै। बच्चा बन जाताहै।" (पृ. ३२)। यहांपर युगीय रूपान्तरणका संकेत प्राप्त होताहै जहां एक वस्तु अपना भिन्न 'रूपान्तरण' करतीहै। मिथक सृजन में यह 'रूपान्तरण' एक प्रमुख तत्त्व है जिसे नाटककारने अत्यंत सांकेतिक रूपसे व्यक्त कियाहै। यहांपर गुप्ताधान या 'इन्सेस्ट' का भी हल्का संकेत है।

इस नाटकसे एक नृतत्त्वशास्त्रीय तथ्य यह प्रकट होताहै कि प्रकृतिसे द्वंद्व है और इसी द्वंद्वसे सौन्दर्य, प्रेम, संघर्ष तथा मानवी संवेगोंके प्रतीकात्मक संकेतनका स्रोत है प्रकृति। प्रकृतिसे मानवका द्वंद्वात्मक एवं संवेदनात्मक रिश्ता जहां एक ओर उसे यातु (मंत्रिक) की ओर ले जाताहै, तो दूसरी ओर उससे एक रागात्मक सम्बंध स्थापितकर, उससे एकात्म होना चाहताहै। इसी एकात्मका फल है बिम्ब और प्रतीकका सृजन जो आदिम अवस्थामें एक महत्त्वपूर्ण मानसिक क्रिया है जो आदिम मानवके 'चित्त' को उसकी 'साइकी' को संकेतित करतीहै। यह नाटक इस पूरी नृतत्त्वशास्त्रीय-मनोवैज्ञानिक स्थितिको व्यक्त करताहै। हुंकार, मचान, बादल, बेले, झरना, नागरमोथा, बालक और पहाड़ आदि जितनी भी वस्तुएं इस नाटकमें आयी हैं, वे मात्र वस्तु न होकर आदिम मानवकी 'साइकी' को प्राकृतार्किकताकी ओर अग्रसर करतीहै जो अंधविश्वास होकर भी अपने तरीकेसे प्रकृति और मानव को समझनेका एक ऐसा उपक्रम है जो मानव विकास से गहरा सम्बंधित है। डॉ. राघव प्रकाश इस आदिम विकासको नाट्य संरचनामें इस प्रकार रूपांतरित करते हैं कि आदिम रंगमंचका चित्र हमारे सामने, चाहे धूमिल ही सही, उजागर होने लगताहै। यदि इस नाटकमें टोटम-टेबूकी कल्पनाओंको भी संयोजित किया जाताहै तो फलक ज्यादा अर्थवान् एवं व्यापक होता।

हिन्दी साहित्यमें इस प्रागैतिहासिक नाटकको एक नया प्रारम्भ समझना चाहिये। ☐

जादूका कालीन[१]

नाटककार : मृदुला गर्ग
समीक्षक : नरनारायण राय

'एक और अजनबी' के बाद मृदुला गर्गका लिखा यह दूसरा नाटक है। नाटकका केन्द्रीय विषय है बाल-मजदूरी। उन प्रेरक घटकोंका संधान भी इस नाटकमें किया गयाहै जिससे बाल मजदूरोंकी विवशताको समझा जा सकताहै। तभी उनका निदान भी संभव है। ऐसे गरीब और लाचार होगये माता पिता जिनके लिए संतान पालनका दायित्व बोझ बन गयाहो, अगर उसी संतानसे किसी प्रकार जीवनकी संभावना पातेहैं तो किस प्रकार निःसंकोच भावसे उस संभावनाका उपयोग कर लेतेहैं, नाटकमें यह देखनेकी बात है। गरीब मजदूर वर्गके लोगोंकी मानसिकताका एक कड़वा सच भी। एक बार सोचना पड़ताहै कि भौतिक जीवनकी अभावग्रस्तता किस प्रकार मानवीय और आत्म-संबंधों को भी निगल जातीहै। परिस्थितिके दास बने लोग किस प्रकार इतने बेबस और लाचार हो जा सकतेहैं, ये सारी बातें स्पष्ट होतीहैं, नाटकके छोटे-छोटे दृश्यों से। भयानक सूखेकी चपेटमें पड़े गांवकी अभावग्रस्तता दादी अपनी पोतीको सपनेभरी कहानियां सुनाकर भरना चाहतीहै। पर आकर्षक और लुभावने स्वप्न, परी और राजकुमारीकी कथाके बीचभी संतो भूखकी भयंकर टीससे छटपटा उठतीहै। अवसर का फायदा उठानेवाला व्यवसायी वर्ग ऐसेही अवसरों की खोजमें रहताहै। उसके गुर्गे आकर्षक सपने दिखाकर, माता-पिताको नोटोंकी चमकसे मुग्धकर इन बाल-मजदूरोंकी टोलीको कालीन बुननेके लिए छोटे कारीगरके रूपमें काममें लातेहैं। पिताके लिए एक प्राणीका बोझ हल्का हुआ और कुछ दिनोंके लिए सुविधा प्रदान करनेवाले करारे नोट मिले। पर यह सब अधिक दिनों तक चल नहीं पाता। बेटे-बेटियोंको मजदूरीमें लगा देनेपर भी कुछ ही दिनों बाद पेटकी समस्या ज्योंकी त्यों मुंह बाए खड़ी दिखायी लगतीहै। कहीं कोई काम नहीं मिलता---रोजी-रोटीकी समस्याके

---

१. प्रका. : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली। पृष्ठ : ७१; का. ६३; मूल्य : ४५.०० रु.।

साथ भयानक सूखेसे उत्पन्न होनेवाली अन्य दैनिक समस्याएं, जो उनके दैनिक जीवनका अंग बन चुकी हैं।

संतो (रमईकी बेटी) केशो, कम्मो, लखी, लाखन, बरसू आदि कई, इसी पृष्ठभूमिमें कालीन बुननेके काममें लगा दिये जातेहैं। उनकी जीनेकी सुविधाएं न्यूनतम हैं और कामका भार मशीनसे भी अधिक। शोषणकी सीमाके पार, अनाहार और ऊपरसे पड़ने वाली मार। नर्कमें जीते बच्चे, सपनोंके सहारे जीते बच्चे। कोई राजकुमार आयेगा और परी राजकुमारीको इस राक्षसके चंगुलसे मुक्त करायेगा। वे सब उस जादूके कालीनपर सवार होकर अपने-अपने गांव चले जायेंगे। गांव जो हरा भरा है। रंग-बिरंगे खेत और खलिहान। जंगल और झाड। भाँति-भांतिके कन्दमूल और फलफूल। झरने और तालाबोंका ठंडा और मीठा पानी। पर एक लेबर आफिसर और समाज सेविकाके सत्प्रयासोंसे उनका उद्धार होताहै और उन्हें अपने गाँव, अपने माताके पास, पहुंचा दिया जाता है। फिर शुरु होताहै उनके पुनर्वास और रिलीफका चोंचला। सरकारी नीतियों, समाजसेविकाकी भीतरी कमजोरियों और अधिकारियोंकी धांधलीकी पोल एक-एक कर खुलती जातीहै। सूखेसे पीडित गांवमें रिलीफ और रिहैबिलिटेशनके नामपर गायें दी जातीहैं जिन्हें अंततः चारेके अभावमें भूखे ही मरनाहै। जंग लगी पुरानी सिलाई मशीनोंको खपानेके असफल प्रयास भी किये जातेहैं। पूराका पूरा समाज-सेवा एक मखौल बनकर रह जाताहै।

इन गरीब बच्चोंकी नियति स्पष्ट है। फिरसे, कालीन बनानेवाले व्यवसायियोंके गुर्गे बेजार माता पिता और कोमल पतली उंगलियोंवाले बच्चोंकी खोज में गांवोंमें घूमने लगतेहैं। ब्याहके नामपर मासूम और भोलीभाली बच्चियोंको खरीदलेवाले सौदागरभी इन भूखे गांवोंका चक्कर लगाने लगतेहैं। उन्हें दो चार सौ रुपयोंमें कानूनी तौरपर बंधुवा मजदूर मिल जायेगा। संतों भी अंततः एक दुहेजूको बेच दी जाती है। ब्याहकी औपचारिक रसमके साथ उसके लिए कुछ भी नहीं बदलता, एक नर्कसे निकलाकर वह दूसरे नर्कमें आ गिरतीहै। यह नियति है देशके हजारों परिवारोंकी जो या तो गरीब है या आर्थिक दृष्टिसे गरीबी रेखाके भी नीचे। यह सब कुछ एक कालचक्र के रूपमें फिर फिर घटित होता रहताहै। बदलाव और मददकी चर्चाएं होतीहैं पर कही कोई बदलाव नहीं आता कोई सहायता नहीं मिलती। इसके विपरीत बदलाव और सहायताके नामपर फिरसे एक नये प्रकारका शोषण आरम्भ हो जाताहै। बदलाव आ सकताहै तो केवल इन्हीके लानेसे। बाहरका कोई दूसरा इनके जीवनकी दिशा नहीं बदल सकता। जिनका जीवन है, अपने जीवनके लिए परिवर्तन भी वही ला सकतेहै। नाटकके अंतमें केशो और लाखन बदलाव लानेके लिए आगे बढ़तेहैं पर गांववाले उनकी बातोंपर कान नहीं देते। उनकी बातोंपर ध्यान देतीहै तो बस केवल बूढ़ी दादी। पर इसी प्रकार लोग जगेंगे। इकट्ठे होंगे। और तब हो सकताहै शोषणका यह चक्रव्यूह टूट सके। अभी तो नाटक सपनों की उसी दुनियांमें खत्म होताहै। सपनों, जादुई कालीन बुननाही जिनकी या जिनके लिए संजीविनी है।

दो राय नहीं होंगी कि लेखिकाने हमारी सोचके लिए एक बड़ाही नाजुकपर गंभीर मामला उठायाहैं। बाल मजदूरी किन मजबूरियोंका परिणाम है इसे समझकर ही उसके निदानकी बात सोची जा सकती है। साथही आवश्यकता इस बातकी भी है कि कमसे कम उनके शोषणपर अंकुश तो जरूर लगाया जाये। किसी मजबूरीमें बच्चे काम करनेके लिए विवश होते हैं पर उनकी विवशताका अनुचित लाभ उठाना, उनका और उनके परिवारका शोषण करना, किसीभी समाज या सामाजिक व्यवस्थाके लिए कलंक है। नाटककी घटनाएँ केवल नाटककी घटनाएं नहीं हैं, आजके जीवनका सत्य भी हैं। नाटकमें वर्णित घटनाओंको तो एक उदाहरणके रूपमें लिया जाना चाहिये, जो कठोर सत्य होनेपर कलात्मक स्पर्श और साहित्यिक सोचके कारण एक सौंदर्य बोधके साथ प्रस्तुत हुआहै। फिरभी यह नाटक मात्र मनोरंजन करनेवाला नाटक नहीं है। नाटकके दर्शक एक नयी सामाजिक चिन्ताके अस्तित्वसे परिचित होंगे। यह चिंता भलेही नाट्य युक्तियों, रंग संस्कारों और अभिनटन या अभिनय मुद्राओंके सहारे प्रस्तुत हुईहो, पर इसे वास्तविकताकी कठोरता कम नहीं हो जाती। □

सब कुछ होना बचा रहेगा[1]

कवि : विनोदकुमार शुक्ल
समीक्षक : डॉ. श्यामसुन्दर घोष

आज जबकि तनाव आदमीकी जिन्दगीका सबसे प्रमुख लक्षण है, तो किसीभी कला-रूप या साहित्य-रूप संबंधमें यह कहना कि उसमें तनाव बिल्कुल नहीं है एक असम्भव-कथन है। विशेष रूपसे समसामयिक कविताके बारेमें यह दावा करना कि उसमें तनाव, द्वन्द्व, आवेग या आवेश नहीं है, वस्तु-सत्यके विपरीत है। परन्तु प्रत्येक स्थितिके अपने अपवाद भी होते ही है। विनोदकुमारकी कविता एक ऐसा ही सुखद अपवाद है। हिन्दीकी बहुसंख्यक कविताओंके बीच विनोद कुमारका कविताओंका अपना मिजाज है। इसको 'ठहरा हुआ मिजाज' न मानकर अपेक्षाकृत शान्त और वयस्क स्वरकी संज्ञा दीजा सकतीहै।

विनोदकुमार शुक्लका यह तीसरा संग्रह उनके पहलेके दो संग्रहों 'लगभग जयहिन्द' और 'वह आदमी चला गया नया गरमकोट पहनकर विचारकी तरह' के क्रममें ही है। यह इससे भी स्पष्ट है कि कविने अपनी 'लगभग जयहिन्द' कविता इस संग्रहके आखिर में देना उचित समझाहै। इस तीसरे संग्रहमें भूमिका अशोक वाजपेयीकी है जिसे उन्होंने शीर्षक दियाहै— 'पृथ्वीकी तरफ' 'घरकी तरफ' अर्थात् अशोक वाजपेयी मानतेहैं कि ये कविताएं पृथ्वी और घरकी ओर वापसीकी कविताएं हैं।

यह ठीक है कि विनोदकुमार शुक्ल इन कविताओं में पृथ्वीकी चर्चा कई स्थानोंपर करतेहैं—जैसे 'घरमें अन्न जल होगा कि नहीं की चिन्ता / पृथ्वीमें अन्न जलकी चिन्ता होगी/ पृथ्वीमें कोई भूखा / घरमें भूखा जैसा होगा/और पृथ्वीकी तरफ लौटना/घरकी तरफ लौटने जैसा।' (पृ. २४) या 'पृथ्वीके पड़ोसमें कोई नहीं/समय पड़नेपर पृथ्वीका कौन साथ देगा ?/ पृथ्वी के सुख दुःख/उसके नष्ट होने और समृद्ध होनेका कौन साक्षी होगा ?' (पृ. २५)। इन पंक्तियोंसे यह स्पष्ट है कि कविकी प्रमुख चिन्ताओंमें से एक पृथ्वी भी है पर वह पृथ्वीसे कविके लगावका सूचक है, उससे उसके अलगाव और फिर वापसीका सूचक नहीं। अशोक वाजपेयी वापसीकी बात बहुत करतेहैं। एक जमानेमें उन्होंने कविताकी वापसीकी घोषणा कीथी। पर जीवन और समाजमें चीजें और बातें इस प्रकार खत्म नहीं होतीं कि उनकी वापसीकी बात कीजाये।

विनोदकुमार शुक्ल मेरी दृष्टिमें गहरी चिन्ताओं के वयस्क कवि हैं जो अपनी बात बहुत निरुद्वेग ढंगसे, बिना अपना मानसिक क्षोभ या तनाव व्यक्त किये, बहुत शांत और ठंडे, पर प्रभावशाली ढंगसे कहतेहैं। उनकी यह कथन शैली ही उनकी विशेषता है। जहां वे बहुत संगीन स्थितियोंकी ओर इशारा करतेहैं वहां भी अपना संतुलन और संयम बनाये रखतेहैं। जब वे मजदूरोंसे कहतेहैं—'उस तरफ चलो/चलते रहो निहत्थे/रोक देनेके लिए जिस तरफ/हथियारबन्द पुलिस खड़ीहै रस्तेपर' (पृ. ११८)। वहांभी कविताका समापन इस प्रकार करतेहैं—'बढ़ो उघारी छाती लेकर एक साथ सब/ऐसे ही निहत्थे खाली पेट उसी तरफ/ जिस तरफ हथियारबन्द पुलिस खड़ीहै रस्तेपर/ तुम पर तबभी गोली चलेगी। (पृ. ११९)। यहां जिस स्थितिका चित्रण या वर्णन है उसका कोई दूसरा कवि ऐसे चित्रण या वर्णन कर ही नहीं सकताथा। यही विनोदकी विशेषता है। ऐसी कविताएं, पृथ्वी या घर की ओर लौटनेकी कविताएं नहीं होती।

विनोदकुमार शुक्ल स्थितियोंको विशेष ढंगसे रेखांकित करतेहैं। पर यह केवल रेखांकन नहीं है। यदि केवल रेखांकन भर होता, तो फिर उसका विशेष महत्त्व नहीं था। रेखांकनोंके पीछे उनके आशय भी बोलतेहेतेहैं। शमशेरकी उक्ति 'बात

---

1. प्रका. : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली। पृष्ठ : १२८; डिमा. ९२; मूल्य : ६०.०० रु.।

बोलेगी, हम नहीं' विनोदकुमार शुक्लपर बहुत दूरतक लागू है। कुछ थोड़े-से उदाहरणोंसे अपनी बात स्पष्ट करें—जैसे 'एक अकेली आदिवासी लड़कीको/ घने जंगल जाते हुए डर नहीं लगता / बाघ-शेरसे डर नहीं लगता / पर महुवा लेकर गोदमके बाजार जानेसे डर लगताहै। (पृ. २२)। यहां केवल एक विवरण, या बयान है पर इसमें आदिवासी जीवनका जो डर, आशंका और चिन्ता व्यक्त है—वह कितना सूक्ष्म, अलंकृत और प्रभावी है। इसी प्रकार जब कवि कहता है—'धुंधली शामके अन्दर/औरभी ज्यादा धुंधला/ कोई आदमी हो गयाहै' (पृ. ६३) तो यह भी निरा वर्णन नहीं है, मनुष्य के विलोपकी कथा है।

विनोदकुमार शुक्लके जीवनके प्रति बहुमुखी चिन्ताओंका पता इससे चलताहै कि कहनेका लहजा एक जैसा होते हुएभी उनमें जीवनकी विविधता कितनी और कैसी है? कवितामें लोग-बाग भी हैं, या केवल कविके विवरण, रेखांकन और आशय ही है? इस दृष्टिसे छानबीन करनेपर एक अंधा है—जो 'संसारसे सबसे अधिक प्रेम करताहै/वह कुछ संसार स्पर्श करना चाहताहै/और बहुत संसार स्पर्श करना चाहताहै, (पृ. २६)। 'सबसे सस्ता डॉक्टर भी है/जो सबसे गरीब आदमीके लिए बहुत मंहगा है' (पृ. ३६)। रायपुरके पास सेलुद गांवकी बच्ची है जो 'स्लेट पट्टी के गलत लिखेको पानीसे मिटाकर/पट्टीको हवामें झुलाते हुए गातीहै—'समुद्रका पानी समुद्रमें जाये/मोर पट्टी सुखा जाये। (पृ. ५४)।' अपने दुःखसे फफक पड़ा एक बूढ़ा है। 'हवा हरियाली, उड़ता पक्षी, औरत और नवजात बच्चा' भी है, कथरीपर लेटा, जागा हुआ चार माहका धोबिनका बच्चा है जो अपने ऊपर फड़फड़ होते कपड़ोंको देख हंसने लगताहै (पृ. ६४)। फड़फड़ाता तौलिया और फड़फड़ाता रूमाल भी/मिहनत करती धोबिन हैं जिसका 'बेटा मांके पुष्ट स्तनोंके ऊपर/रिस आये पसीनेके स्वादको/चखता होगा दूध पीनेके पहले' (पृ. ६८)। गहरी नींदमें खटियामें सिकुड़ी सोयी मां है, तालाबके पानीकी ओर झुकी हिलती टहनी है और बर्तन 'मांजते-मांजते' रोती जाती छोटी-सी एक लड़की है। कोई कह सकताहै कि ये नमूने बहुत मिहनतसे बीनकर इकट्ठे किये गयेहैं। पर इतना भी बहुत-से कवियोंमें कहां होताहै।

सबसे अधिक आश्चर्य यह देखकर होताहै कि आज के जीवनका डर-भय, आतंक-असुरक्षाका वैसा घटाटोप नहीं है जैसाकि प्रायः आजकी हिन्दी कवितामें है। वह बिल्कुल ही नहीं हैं, ऐसा भी नहीं है। कुछ पंक्तियां है—'बचाओ! बचाओ / चिल्ला सकनेवाले लोग/बचाओभी नहीं चिल्लाते।' कविका विचार है कोई बचाहै /यह पूछनेवाला भी नहीं बचेगा।' पर यहां 'ऐसी पंक्तियांभी हैं—'हो सकताहै जिन्दगीको नष्ट करनेके धमाकेके पहले/जिन्दगीका बड़ा धमाका हो।' (पृ ३३)। कविको 'एक हरे पेड़को देखनेमें डर लगताहै डर पूरा/दस हरे पेड़ोंको देखूं तो दस गुना/ डर एक एक पेड़के कट जानेका (पृ. ४४) या 'अंतिम चीता मरा/और चीताकी जाति समाप्त होगयी मनुष्य से / पृथ्वीसे क्या कुछ नष्ट नहीं हो गया होगा/और वह सब कुछ है जिससे नष्ट हो जायेगी पृथ्वी (पृ. ८२)। पर इनकी तुलनामें जीवनकी सम्भावनाओं, शक्तियों और चिह्नोंकी इतनी बहुतायत है—कि ये उसके सामने दब-से जातेहैं। 'एक छोटा बच्चा है, चार फूल खिलेहैं खुशीहैं और घड़ेमें भरा हुआ पानी पीनेके लायक है / हवामें सांस ली जा सकतीहै/दुनियां है, बची दुनियामें बचा हुआ मैं है (पृ. ३१), 'यहां कोई नहीं होगा की जगह भी कोई है (पृ. ३२), जाते जाते ही मिलेंगे लोग उधरके/जाते जाते जाया जा सकेगा उस पार/जाकर ही वहां पहुंचा जा सकेगा/जो बहुत दूर सम्भव है/पहुंचकर सम्भव होगा/...और कुछ भी नहीं में सबकुछ होता बचा रहेगा (पृ. ३४), इस उजालेको वहां जाना ही है/जहां उसे आखिर चला गया होना ही है (पृ. ४५)। कवि कहीं कहीं अपनी आस्था, अपने संकल्प और अपनी जिजीविषाको भी दुहराताहै—'मैं यहीं रहूंगा/लड़ता-भिड़ता/कोई दूसरा लोक नहीं/नहीं परलोक/मरकर या बचकर मैं अपनी ही दुनियांमें जाऊंगा। (४६)। कभी वह अन्दरकी दुनियामें जानेका रास्ता ढूंढताहै और कभी उसे बाहरकी दुनिया में लौटकर वापस आना अच्छा लगता है (पृ. ५३)। दुनियांके लिए वह अपनी खाली जगह बचाये रखना चाहताहैं। कहीं 'बहुत-से परिचित सुख और थोड़े-से दुःख अपरिचित/का सामान लेकर...कहीं एक पता बननेके पहले तक रहकर/रहते रहनेका' उसका मन होताहै (पृ. ६) या फिर 'किसी टिपरिया होटलका/बुझी भट्टीको कुरेदनेका होता मन' या 'फिर आधी रातको दौड़ लगानेकी होती इच्छा (पृ.

८८) कहीं 'किसी उभरी जड़को तकिया बनाकर/लेट जाऊंगा मूंद लूंगा आंखें/बहुत प्रेम जिनसे/रह लूंगा साथ उनके (पृ. १०७) ऐसे स्थलोंपर कविकी गहरी मानवीय चिन्ताओं और स्थितियोंसे उसके रिश्ते बिलकुल स्पष्ट हैं।

अन्तर्वस्तुके अतिरिक्त कथन-भंगिमा है और भाषा का ऐसा सधा प्रयोग, जो आजकी हिन्दी कवितासे कुछ अलग हटकर है, विनोदकुमार शुक्लकी अपनी विशेषताएं हैं। उसीसे उनकी पृथक् पहचान बनतीहै—जैसे 'मैं नौकरीकी तरह सड़कमें बाएं चलते हुए/नौकरीकी तरह बाएं चलता रहा/नौकरीकी तरह पांच घंटे सो लिये/नौकरीकी तरह चार अखबार पढ़ लिये' यहां एक 'नौकरी' शब्द लेकर जीवनकी जिस एकरसताका व्यंजन हुआहै वह अपने ढंगका है। विनोदकी कवितामें बिचार कमीज और पतलून पहन कर खड़ा हो जाताहै, क्या! सौम्य भुखभरी है कि खान-सामा अच्छा खाना बनाताहै। दिमागके पिछवाड़ेकी दीवाल भांदकर / कचहरीके पिछवाड़ेके घूरेमें उतर कर/ जिन्दगी दफ्तरी उपस्थिति हो जातीहै (पृ. १२६), रौबदार आदमी दो सोनेके दांतोंकी जम्हाई लेताहै, आलीशान आश्चर्यकी चर्चा होताहै। (पृ. १२४)। ऐसे स्थलोंपर भाषा वही चिर परिचित है। शब्द भी वही जाने-पहचाने हैं, कहीं कोई असाधारणतः नहीं है, पर विन्याससे थोड़ा-सा हट फेर-बदलकर बिनोद उसे बिल्कुल अपनी भाषा अपनी कथन-शैली बना लेतेहैं। यही है किसी कविकी निजता जिसका छाप उसकी कवितापर जरूरी होतीहै। ☐

चैत[1]

कवि : अनन्तकुमार पाषाण
समीक्षक : मान्धाता राय

'चैत' समर्थ रचनाकार अनन्तकुमार पाषाणकी तिरानबे कविताओंका संग्रह है। हिन्दी और अंग्रेजी कविताओंके प्रतिष्ठित रचनाकार श्री पाषाणकी प्रकाशित कृतियोंमें प्रस्तुत संग्रह दसवां पुष्प है। चैतका महीना अनेक दृष्टियोंसे भारतीय जीवनमें महत्त्वपूर्ण माना गयाहै। कविने इसे केन्द्रमें रखकर अपने जीवन के बिविध अनुभवोंको भिन्न शीर्षकोंमें प्रस्तुत किया है। बचपनसे लेकर तरुणाईके बीच अनेक बार चैत कविके जीवनमें आया। बचपनमें जहां दोपहरीके समय चैती गाकर अलहड़पनमें दिन बीता, वहीं अवस्था के साथ उन दिनोंके बीत जानेका कविको दुःख है। 'चैत मुझे भाता है' कवितामें 'सेमल सरीखे लड़कपनके दिन उड़ गये' (पृष्ठ १३) में यही उदासी व्यक्त हुई है। इस उदासीके बावजूद आमकी महक, मैनाकी चहक, चटकती कलियां और धूपकी चटकके कारण कविको चैत फागुनकी तुलनामें अच्छा लगताहै। प्रौढ़ावस्थामें कविको फागुनका रंगीलापन रास नहीं आता है। 'मुझे चैत चाहिये' शीर्षक कविता उसकी इसी मनोवृत्तिका उद्घोष है। इन कविताओंमें कविका लोक-मन गंवई जीवनके साथ रसा-बसाहै। यही कारण है कि 'चैतकी एक रातमें' घटित प्रसंगको कवि भूल नहीं पायाहै। मम्मटके 'काव्य प्रकाश'के एक अंश को उद्धृत कर कवि हाथके कंगनकी अदला बदलीको प्रेमका स्मृति चिह्न बताताहै। चार दिनकी चांदनी मुहावरेकी सार्थकता चैतकी रातमें कवि मानताहै।

आरंभकी 'चैत' कवितामें आजकी आपाधापी भरी जिन्दगीपर व्यंग्य है जिसमें प्रिया प्रियका हाथ पकड़े खेतोंसे निकल जातीहै किन्तु उसे गेहूंके स्वर्णिम खेत न गड़तेहैं और न दाने झड़तेहैं। ऐसी जिन्दगीसे कवि और चैत दोनों निराश हो जातेहैं। चैतसे इतर की कविताओंमें जीवनके यथार्थ और दुःख दर्दकी बात प्रस्तुतकर वर्णनको प्राणवान् और मर्मस्पर्शी बनाया गयाहै। 'प्यार' (पृष्ठ २८) कवितामें उसके रोमानी स्वरूपकी जंजीर, शराब, राजा सिपाही, खजाना आदि से तुलना की गयीहै। कविने उसके दोनों पक्षोंको रखाहै—मन या गुलाब-सा फूला फूला/ कुण्ठाके कांटे ...मोरकी तरह सीधा/।

पाषाणजीकी कवितामें 'नयी कविता' का स्वर है। उसमें प्रयोग अधिक है। शिल्प, प्रतीक, उपमानके नये-नये उदाहरण कविने प्रस्तुत कियेहैं। पिघले हुए मोतियों-सी नदी (श्वेत रंगके लिए), तीसरे पहरके पानीके रंगको ताबियानी (पृष्ठ १७), दृश्यके आनंद लेनेको 'धंसकर' नहाते हुए राह करो तय जैसे वाक्य प्रत्येक कवितामें भरे पड़ेहैं। अकविताकी अनगढ़ता

[1] प्रका. : जीवन प्रभात प्रकाशन, गोरेगांव-पूर्व, मुम्बई-४०००६३। पृष्ठ : १०३; डिमा. ९२; मूल्य : ४५.०० रु.।

और भद्देसपन भी है। परंपरित प्रतीकोंको तोड़ाभी गयाहै—जिस कुटियामें हमने साथ तप कियाथा, शब्दों की मालापर प्यारका जप कियाथा (पृष्ठ १९)। यह प्रयोग नवीन होकर भी वातावरण और प्रसंगसे हटकर है। पूजा और मालाकी पवित्रताको शृंगार रसमें घसीटना कहांतक उचित है?

प्रयोग और नवीनताकी ओर दृष्टि रहते हुएभी इन कविताओंमें साधारण आदमीके दुःख-दर्दकी अभिव्यक्ति हुईहैं। दर्द (पृष्ठ २३) कवितामें दर्द और खुशीके वायवीय मिलनका मानवीकरण करके दर्दकी कारुणिक दशाका भावपूर्ण अंकन किया गयाहै। यही भाव 'आप लोगोंसे' कवितामें भी व्यक्त हुआहै। पर स्वर विरोधी भावों एवं दृश्योंके चित्रण द्वारा कविने कथ्यको प्रभावशाली बनायाहै। अभावग्रस्त और संपन्न जीवनकी तुलना करके साधारण जनके प्रति आत्मीयता दिखायी गयीहै: "भगवान् राजपथोंपर' जुलूसमें नहीं निकलते/ वह तो मिल जातेहैं अनायास अप्रयास/ ऐसे ही अचानक चलते, चलते चलते। (पृष्ठ ३७)।

आजके जीवनकी व्यस्तता, धूर्तता, लूट खसोटभरी जिन्दगीकी विद्रूपताको कैदीकी खबर, कानोंका देश, शहीद, कानून तथा जिन्दगी और मौत कवितामें प्रस्तुत किया गयाहै। किन्तु सघन प्रतीकात्मकताके कारण कविताएं दुरुह हो गयीहैं और उनका भाव-बोध उलझ गयाहै। 'नीली नदी नहाये' कवितामें अतृप्त वासना के जामनी जामे/ बदरंग कामनाके दुशाले/ बालूपर फेंककर। पंजोंपर खड़ा हूं/ नीली नदीमें छलांग लगाने को। (पृष्ठ ४९) जैसे चित्रण पाठकके लिए सहज बोधगम्य नहीं हैं।

अपनी उपर्युक्त सीमाएं होते हुएभी 'नवीन' उपमानों और प्रतीकोंसे पूरा संग्रह भरा पड़ाहै। कुछ प्रयोग इस प्रकारहैं—जीवनकी गलियोंकी आवारा छोकरी/ईर्ष्याने खिड़कियोंके शीशे चूर किये...स्वार्थकी सरकार जिसका निजाम जीवनपर है / उसके सिपाही सदा सपन महल तोड़तेहैं / सिर्फ फर्श बचाहै जिसपर/ उपहासके चूहे दौड़तेहै। एक घरकी कहानी पृ. १८)। छूट गयीं गलियां जिनमें अंधेरेकी/ नदियां बाढ़पर थीं / गिर-गिरकर टूट गयी लालटेने मद्धम जो लटकी थीं/ दरारको फाड़कर आती रोशनीकी सख्त किरन (अनुभूतिकी खोज पृ. ८९)। ऐसे प्रयोगोंसे पूरी पुस्तक भरी पड़ीहै। ☐

वन-विहार

वनशाला[1]

लेखक : विराज

समीक्षक : सुनीति

मनुष्य जन्मके समय पशु पैदा होताहै, शिक्षा उसे मनुष्य बनातीहै। शिक्षा जितनी अच्छी होगी, उतना ही अच्छा मनुष्य तैयार होगा। शिक्षामें शिक्षा देनेवाले (गुरु) और शिक्षा पानेवाले (शिष्य) का स्थान तो निर्विवाद है ही, परन्तु आसपासके वातावरणका भी शिक्षापर बहुत प्रभाव पड़ताहै।

प्राचीन कालमें शिक्षाके केन्द्र गुरुकुल होतेथे, जो शहरसे दूर पहाड़ोंके निकट, नदियोंके आसपास होते थे। वहां छात्रोंके चरित्रको गढ़नेमें गुरुओंके साथ-साथ प्रकृतिका, वनका, वनस्पतियों और वन-जीवोंका, ऊंचे पर्वतों, नदियों और खुले आकाशका भी बहुत

---

१. प्रका. : आत्माराम एंड संस, कश्मीरी दरवाजा दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : १४४; क्राउन : ९४; मूल्य : ५०.०० रु.।

योग रहताथा।

मुगलों और अंग्रेजोंके शासनकालमें शिक्षाकी कोटि बहुत गिर गयी। अंग्रेजोंको तो सरकारी क्लर्क तैयार करनेथे; चरित्र-गठनसे उन्हें विशेष लगाव नहीं थी। उस समय पढ़ लिखकर जो लोग तैयार हुए उनकी चरित्रहीनताका फल आज देशको भुगतना पड़ रहाहै। बीसवीं शताब्दीके शुरूमें महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने हरिद्वारके निकट जंगलमें गुरुकुल कांगड़ीकी स्थापना करके भारतीय शिक्षाके क्षेत्र में एक नया प्रयोग किया। यह प्रयोग बहुत सफल रहा। परन्तु विडम्बना यह है कि देशके स्वाधीन होनेके बाद सरकारी आश्रय और अनुदानके प्रलोभनमें फंसकर वह संस्था अपना स्वरूप खो बैठी।

शिक्षाशास्त्री यह अनुभव करतेहैं कि शहरोंके तंग और प्रदूषित वातावरणमें रहनेवाले छात्रोंको यदि पूरे समय न भी सही, तोभी कुछ समयके लिए प्रकृति के घनिष्ठ सम्पर्कमें लाना उनके चरित्र गठनमें सहायक होगा। इसी उद्देश्यको सामने रखकर दिल्लीके रामजस विद्यालयोंकी ओरसे कोटद्वारके निकट कण्वाश्रम में प्रतिवर्ष 'वनशाला शिविर' लगाये जाते रहेहैं। इस पुस्तकमें उन्हींमें से कुछका रोचक विवरण है।

शहरसे दूर जंगलमें जाकर लगभग अस्सी छात्र, छात्राओं, अध्यापकों तथा कर्मचारियोंका फूसके झोंपड़ों में दस दिन रहना, जंगली हाथी, बाघ और तेंदुओंकी उपस्थितिसे आतंकका वातावरण; रातमें वन-पशुओंको देखनेके लिए उदपानों (वाटरहोल) के पास मचानों या पहाड़ी टीलोंपर बैठना, चट्टानोंपर चढ़ने और पत्थरोंपर गांव टिकाकर उथली जलधाराओंको पार करनेके अभ्यास, दो-दो दिनकी पैदल पर्वत-यात्राएं, वनस्पतियों और आदिवासियोंके जन-जीवनका अध्ययन आदि गतिविधियां वनशाला कार्यक्रमका अंग थीं। इनसे एक ओर शहरमें रहनेवाले छात्रोंको असुरक्षाकी अनुभूतिके कारण अपनी असमर्थता अनुभव होतीथी, वहां कुछ आस्तिकताकी भावना भी जागतीथी; एक दूसरेकी सहायता करने और पानेकी प्रवृत्ति बढ़तीथी; क्रमशः निर्भीकता बढ़तीथी और आत्मविश्वास पुष्ट होताथा। शहरकी अपेक्षा जंगलमें अनुशासन कहीं अधिक अच्छा रहताथा।

प्रायः प्रतिदिन विभिन्न विषयोंपर दो तीन भाषण होतेथे। शामके भोजनके बाद प्रतिदिन आठ बजे अलाव गोष्ठी होतीथी, जिसमें छात्र और अध्यापक सभी लोग उत्साहसे भाग लेतेथे—इतने उत्साहसे कि दिसम्बर-जनवरीकी कड़ाकेकी सर्दीमें सभी लोग खुले आकाशके नीचे रातमें घंटों बैठे रहतेथे। इन्हीं गतिविधियोंका रोचक वर्णन इस पुस्तकमें है, जिसे पढ़कर कुछ देरके लिए वनशाला शिविरमें रह आनेकी-सी अनुभूति तो होतीही है। इन कार्यक्रमोंसे अन्य शिक्षा संस्थाएं भी मार्गदर्शन प्राप्तकर सकतीहैं।

पुस्तकका दाम कुछ अधिक जान पड़ताहै। यदि इसका पेपर बैक संस्करण निकालकर दाम कम किया जा सके, तो वह अधिक उपयोगी हो सकताहै। ◻

पत्र-पत्रिकाएं

दीपशिखा[1]

[हिन्दी गजलकी त्रैमासिक पत्रिका]

सम्पादक : बनवारीलाल अग्रवाल 'स्नेही'

समीक्षक : डॉ. बजरंगराव बांगरे

गजल एक सहज हृदयस्पर्शी, प्राणवान् और लोकप्रिय काव्य रूप है। यह हिन्दीमें उर्दू माध्यमसे अरबी-फारसीसे आयाहै। उर्दूमें इसकी लोकप्रियता सर्वविदित है और हिन्दीमें भी यह अपना स्थान बना रही है। यह काव्यरूप हिन्दीके अनेकानेक हस्ताक्षरोंको बहुत पहलेसे ही प्रिय रहाहै। यही कारण है कि आज हिन्दी गजलोंके कई संग्रह देखनेमें आते रहेहैं। साहित्यिक पत्रकारिता हिन्दी पत्रकारिताके उद्भव और विकास के साथ ही जुड़ी रहीहै और साहित्यकी विभिन्न

१. सम्पर्क : दीप्ति प्रकाशन, १६-११-२४७/ए/४/३ मूसाराम बाग, हैदराबाद-५०००३६।

विधाओंपर पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित होती रहीहैं, विशेषकर कहानी या कविता पत्रिकाएं। केवल कविता के एक विशेष रूप गजलपर ही 'दीपशिखा' पत्रिका का प्रकाशन एक नवीन और विशिष्ट प्रयोग है। आलोच्य अंक पत्रिकाका प्रवेशांक है।

'दीपशिखा' के सम्पादक श्री बनवारीलाल अग्रवाल 'स्नेही' स्वयं एक युवा गजलकार हैं। गजल कहने-सुनने की उनकी रुचिका साकार रूप 'दीपशिखा' का प्रकाशन है। निस्संदेह स्नेहीजीने एक साहसी कदम उठायाहै, जो कविताके एक रूप गजलको लेकर पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया और वहभी हिन्दीतर क्षेत्र हैदराबादसे। पत्रिकाका दावा है कि यह विश्वकी प्रथम हिन्दी गजल त्रैमासिक हैं। स्नेहीजी प्रवेशांक (अक्तूबर-दिसम्बर १९९३) को 'प्रत्येक गजल पाठक के नाम समर्पित करते हुए कहतेहैं कि यह "२१वीं सदीमें पदार्पण करता विश्वका समकालीन हिन्दी गजलोंका वसीयतनामा है।

वस्तुतः गजलका अरबी फारसी भाषामें अर्थ है—औरत या माशूकासे वार्तालाप करना। आलोचकोंने इसका एक और अर्थ भी प्रस्तुत कियाहै--'जीवनके हालका बयान करना।' दोनोंही अर्थोंमें गजलकी आत्माका सम्बन्ध मर्मस्पर्शी दर्द, तड़प, कसक व कराह से और वर्तमानके संघर्ष, कष्ट, यातनाएं, टूटन, शोषणके साथ प्रेरणा, उत्साह, आशा और विश्वाससे है। प्राचीन और अर्वाचीन गजलके इन्हीं रूपोंको विविध हस्ताक्षरोंकी कलमसे प्रसूत गजलोंका संकलन 'दीपशिखा' के प्रवेशांकमें स्नेहीजीने बड़ी मेहनत, लगन और निष्ठासे कियाहै। हिन्दीमें आज गजल संघर्षकी राहपर है अतः इस दौरमें केवल गजलपर पत्रिकाका प्रकाशन दुष्कर प्रयास ही होगा। पत्रिकाके रूपमें दीपशिखाका प्रवेशांक अपनेमें सभी पहलुओंको संजोये हुए हैं, जिसे सम्पादकने बड़ी सूझ-बूझसे विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत दियाहै। 'धरोहर' में पुरानी गजलें हैं तो 'आपके हस्ताक्षर' की नयी गजलोंके साथ 'हस्ताक्षर आपके भी' में आज लिखी जा रही गजलोंका संकलन है। जहां इस अंककी गजलोंमें शिल्प और संरचनामें विचलन दिखायी देताहै वहीं वे एक भावधाराके सूत्र में भी बंधे नहीं हैं। गजलके इतिहास और विकास-यात्रामें उसकी बदलती हुई प्रवृत्तियोंपर रचनाकारोंके लेख गजलकी रचनाधर्मिताके आयामोंको उजागर करते हैं। गजलपर आयोजित गोष्ठीके समाचार और गजल पर शोधकार्यकी जानकारी, गजलपर लिखे गये आलोचनात्मक ग्रन्थों और गजल संग्रहकी समीक्षा पत्रकारिताके ध्येयको पूरा करनेका उत्तम प्रयास है।

'दीपशिखा' को यूं तो हिन्दी गजलकी पत्रिका कहा गयाहै, पर इसमें अन्य भारतीय भाषाओंकी गजलोंका प्रकाशन उल्लेखनीय है। यह तुलनात्मक अध्ययन और भारतीय भाषाओंमें अन्तःसम्बन्ध स्थापित करनेमें सहायक होगा। यदि मूल गजलको देवनागरी लिपिमें अनुवादके साथ मुद्रित किया जाता तो उपयुक्त होता।

हिन्दीके पाठकोंको अंग्रेजीमें विज्ञापन परोसना संभवतः विवशता होगी। पुस्तकाकार पत्रिकाके १०८ पृष्ठोंमें भरपूर सामग्री है और आजके गजलकारोंद्वारा प्रेषित शुभकामनाओंसे प्रतीत होताहै कि पत्रिकाको उनका पूरा-पूरा सहयोग मिलेगा। पत्रिकाकी एक प्रतिका मूल्य ५०.०० रु. सामान्य पाठककी पहुंचसे दूर है ☐

आगामी अंकमें

नाटक : एकांकी

मोहन राकेशके सम्पूर्ण नाटक—कृतिमें राकेशके 'आषाढ़का एक दिन' (१९५८), 'लहरोंके राजहंस' (१९६३), 'आधे अधूरे' (१९६९) और 'पैर तलेकी जमीन' (१९७५) चार नाटक संकलित हैं। चारों नाटकोंका समीक्षात्मक परिचय दिया गयाहै तो समीक्षकने 'लहरोंके राजहंस' के बादमें नये रूप संबंधी विवरण और 'पैर तले जमीन' संबंधी विवादकी भी चर्चा कीहै। कृतिके सम्पादक हैं : **नेमिचन्द्र जैन** और समीक्षक हैं : **डॉ नरनारायण राय।**

साहित्य-मनोविज्ञान और हिन्दी एकांकी—हिन्दी एकांकी साहित्यको दृष्टिमें रखकर साहित्य और मनोविज्ञानके पारस्परिक संबंधोंपर कृतिमें विवेचना है। साथही दोनोंके व्यावहारिक समन्वयपर प्रकाश डालकर उनके आन्तरिक संबंधोंका उल्लेख किया गयाहै। लेखक हैं : **डॉ. गुरुदयाल बजाज**—और समीक्षक हैं : **डॉ. भानुदेव शुक्ल।**

समीक्षात्मक अध्ययन

कश्मीरी कवयित्रियाँ और रचनात्मक संसार—कश्मीरकी चर्चित तीन कवयित्रियों : लालद्यद—अरणिमाल. हब्बा खातून : का विवेचनात्मक अध्ययन है। कालावधि, रुचि एवं वैचारिकताकी दृष्टिसे तीनोंके क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं, फिरभी तीनोंमें एक समानता है कि तीनों ही पारिवारिक जीवनकी विफलता एवं उसके उत्पीड़नकी देन हैं। कृतिकार हैं **डॉ. शिब्बन कृष्ण रैणा** और समीक्षक : **डॉ. मदनमोहन तरुण।**

कहानी-संग्रह

देवकी' प्रतिभा रायकी उड़िया कहानियोंका संकलन हैं। कहानीके संबंधमें स्वयं लेखिकाकी दृष्टि हैं कहानीका जीवन है यथार्थ। जीवनके सत्यको प्रकट करते समय जीवनकी निष्ठुरता, वीभत्सता और पापको भी प्रकट कर देतीहै। इसी दृष्टिके कारण लेखिकाने सत्यको भी शिवसे मण्डितकर सुन्दर बना दियाहै। लेखिका हैं : **प्रतिभा राय** समीक्षक हैं : **डॉ. हरदयाल।**

[साथमें लेखमाला "**ऐतिहासिक भाषा विज्ञान और भारतका भाषा-भूगोल**" **के प्रथम अंशका उत्तरांश**]

'पुरस्कृत भारतीय साहित्य'

अगस्त'९३ का "पुरस्कृत भारतीय साहित्य" विशेषांक वार्षिक शृंखलाका ग्यारहवां अंक है। इसी शृंखलाका पूरक अंक नवम्बर'९३ है। इससे पूर्व दस विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं। भारतीय भाषाओंके साहित्यमें इस समय जो प्रवृत्ति दिखायी दे रही है, वह इस दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है कि अपनी प्रादेशिक और क्षेत्रीय विशिष्टता होते हुए भी भारतीय साहित्यकी अन्तश्चेतना एक है, उसकी अन्तःस्फूर्तिके स्रोत भी समान हैं। फिर भी उस चेतनाके समग्र रूपको न तो प्रस्तुत किया गया है, न उसका, योजनाबद्ध अध्ययन। इस अध्ययनकी सम्भावनाको ध्यानमें रखते हुए 'प्रकर' प्रतिवर्ष ऐसी सामग्री प्रस्तुत कर रहा है जो अध्ययन और शोधकी दृष्टिसे बहुत उपयोगी है।

अबतक इन ग्यारह विशेषांकोंमें विभिन्न भारतीय भाषाओंके ग्रन्थोंपर जो समीक्षा-सामग्री प्रस्तुत हुई है, उनकी संख्या इस प्रकार है :

भाषा	ग्रन्थ संख्या	भाषा	ग्रन्थ संख्या	भाषा	ग्रन्थ संख्या
असमी	९	डोगरी	१०	मराठी	११
उड़िया	१२	तमिल	१२	मलयालम	९
उर्दू	३	तेलुगु	१०	मैथिली	११
कन्नड़	१२	नेपाली	९	राजस्थानी	११
कश्मीरी	५	पंजाबी	११	संस्कृत	८
कोंकणी	१०	बंगला	९	सिन्धी	१०
गुजराती	१३	मणिपुरी	११	हिन्दी	१३

सभी अंकोंकी कुल पृष्ठ संख्या : ११९० कुल समीक्षित ग्रंथ २१०

इन ग्रंथोंकी समीक्षाओंसे न केवल भारतीय भाषाओंकी एकात्मता उभर कर आती है, साथमें विदेशी साहित्यके स्पष्ट, प्रबल और गहरे (अनेक बार प्रचारात्मक) प्रभावका भी साक्षात्कार होता है। साहित्यिक दृष्टिसे वैज्ञानिक विश्लेषणके लिए यह सामग्री सहायक है।

१९८३ से अबतक प्रकाशित 'पुरस्कृत भारतीय साहित्य' विशेषांकोंका पृथक्-पृथक् मूल्य इस प्रकार है : ८३—२०.०० रु.; ८४—२०.००; ८५—२०.००; ८६—३०.००; ८७—३०.००; ८८—३०.००; ८९—३५.००; ९०—३५.००; ९१—३५.००; ९२—४०.००; ९३—४०.०० रु.; नवम्बर'९३—१०.००।

अध्ययन और शोधकी दृष्टिसे यह सामग्री प्रत्येक पुस्तकालयमें संग्रहणीय है।

सभी ग्यारह अंकोंका डाकव्यय सहित मूल्य : २७५.०० रु.

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार : मुद्रक : संगीता कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा रायसीना प्रिंटरी, चमेलिया रोड, दिल्ली-६।
प्रकाशन स्थान : ए-८/४२ राणा प्रतापबाग, दिल्ली-७ दूरभाष : ७११३७६३

दूरभाष : ७११३७६३

प्रकर [अनुशीलन-अध्ययन-समीक्षाकी मासिक पत्रिका]

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार
ए-८/४२, राणा प्रताप बाग
दिल्ली-११०००७

वर्ष : २६ अंक : ४ वैशाख : २०५१ [विक्रमाब्द] अप्रैल : १९९४ [ईस्वी]

स्वर : विसंवादी

सैक्युलरवाद, धर्मनिरपेक्षता, पंथनिरपेक्षता

[उच्चतम न्यायालयके निर्णयके प्रसंगमें]

उच्चतम न्यायालयके नौ सदस्योंकी पीठने 'सैक्युलर' शब्दके आधारपर एक 'युगान्तर-कारी' निर्णय दियाहै, उसके राजनीतिक पक्षकी चर्चाके स्थानपर हम अपने विचार इसी शब्दपर केन्द्रित रखेंगे, प्रसंगवश राजनीतिक घटनाओंकी ओर संकेत भर करेंगे और उस शब्दके प्रासंगिक प्रभावोंकी चर्चा करेंगे। प्रारंभमें ही यहभी जाननेकी इच्छा होतीहै कि 'सैक्यूलर' शब्दके संबंधमें न्यायपालिका की धारणा क्या है, क्या उसने 'सैक्युलर' शब्दकी कोई परिभाषा निर्धारित कीहै अथवा उसकी कोई व्याख्या प्रस्तुत की है ? इस शब्दको लेकर केवल कोशार्थोंपर निर्भर नहीं रहाजा सकता, न उससे किसी न्यायिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक प्रसंगोंमें उप-स्थित होनेवाली व्यावहारिक जटिलताओं, कठिनाईयों और विवादोंको सुलझानेमें सहायता मिलतीहै। स्वयं न्यायपालिका द्वारा परिभाषा और व्याख्या न देनेसे और संविधानमें भी इसका अभाव होनेसे यह अनु-मान किया जा सकताहै कि यूरोपीय चिन्तन और पृष्ठ-भूमिके आधारपर निर्णयके स्थानपर अपनी इच्छा या विचार व्यक्त कियाहै, जिसपर संभव है व्यापक रूपसे विचार और चिन्तनके आधारपर देशकी राजनीतिक सांस्कृतिक और धार्मिक स्थितियोंको ध्यानमें रखकर समयानुसार कोई निश्चित धारणा या निर्णय प्रस्तुत किया जाये।

भारतीय प्रसंगमें 'सैक्युलर' शब्दका व्यापक और प्रभावी प्रयोग संविधान-निर्माणमें और उसके बाद हुआ है। इसी कारण भारतीय भाषाओंमें इसका भारतीय रूपान्तर 'धर्मनिरपेक्ष शब्दके रूपमें किया गया, बादमें संविधानके हिन्दी संस्करणमें यह शब्द 'पंथ-निरपेक्ष' हो गया। धर्म और पंथ दोनों ही शब्दोंकी दृष्टिसे इस देशमें राज्य और सत्ता न धर्मके प्रति निरपेक्ष रह सकतीहै, न पंथके प्रति। वस्तुतः 'सैक्युलर' शब्दकी अपनी विशिष्टता यूरोपीय इतिहाससे जुड़ी हुईहै उसी के आधारपर यूरोपीय चिन्तन और व्यवहार राजनी-तिक दृष्टिसे निर्धारित हुआहै। परन्तु भारतीय इति-हाससे इस चिन्तनकी संगति नहीं बैठती, यद्यपि मध्य कालके कटु धार्मिक अनुभवोंके आधारपर इस प्रकारके चिन्तनकी संभावना हो सकतीथी। भारतीय चिन्तन 'धर्म' के आधारपर उससे संबद्ध होकर विक-सित हुआहै जिसमें राजनीतिको प्राथमिकता न देकर धर्म को प्रमुखता दी गयी। मध्यकालसे पूर्व धर्मकी प्रमुखता होनेके कारण देशका सांस्कृतिक आधार भी उसी रूप

नये प्रकाशन

दिल्ली दूर है / शिवप्रसाद सिंह मूल्य : 300/-

यह उपन्यास लेखक के पूर्व-प्रकाशित और बहुचर्चित उपन्यास 'कुहरे में युद्ध' के बाद की अगली कड़ी है। पठान युग से सम्बद्ध ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में वही कथा इसमें रोचक ढंग से आगे बढ़ती और विकास पाती है। यह उपन्यास दरअसल इतिहास के एक काल विशेष की कलात्मक पुनर्रचना है।

मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक

संपादक : नेमिचन्द्र जैन मूल्य : 300/-

हिन्दी में पहली बार मोहन राकेश के सभी नाटकों के पूरे स्क्रिप्ट, सभी संस्करणों की लेखकीय भूमिका, निर्देशकों, समीक्षकों एवं कलाकारों के आलेख और विस्तृत संपादकीय भूमिका एक साथ प्रस्तुत हैं। युगांतरकारी नाटककार की रचनात्मक प्रतिभा को समझने की दिशा में अभिनव और अनूठा प्रयास अनेक चित्रों सहित।

अज्ञातवास / श्रीलाल शुक्ल मूल्य : 35/-

इस उपन्यास में मनुष्य की अपने-आपको खोजने की कहानी प्रतीकात्मक रूप में कही गई है। उत्तर प्रदेश के एक आंचलिक जीवन का इसमें मोहक चित्रण हुआ है। इसके प्रत्येक पात्र का अपना अलग व्यक्तित्व है और कथानक तथा शैली विलक्षण हैं 'उपन्यास पाठक को बांधे रखेगा, यह निर्विवाद हैं।

जादू की सरकार / शरद जोशी मूल्य : 70/-

अविस्मरणीय व्यंग्यकार के अप्रकाशित व्यंग्य लेखों का संकलन। रोजमर्रा के जीवन को आधार बनाकर लिखे गए इन व्यंग्य लेखों में चुभन भी है और गुदगुदाहट भी। इनमें निहित व्यंग्य सीधे चोट नहीं करते बल्कि अंतर्मन को झकझोरते हैं।

पीताम्बरा / भगवतीशरण मिश्र मूल्य : 200/-

मीरा के जीवन को आधार बनाकर लिखा गया यह उपन्यास इस मायने में विशिष्ट है कि इसमें काल्पनिक अतिरंजना से बचने का पूरा प्रयास किया गया है ऐतिहासिक यथार्थ को बरकरार रखने के लिए अपनी रोचक शैली में लेखक ने मीरा के जीवन की यह प्रामाणिक तस्वीर प्रस्तुत की है जो पाठक को चकित करती है और मुग्ध भी। उपन्यास इतिहास और साहित्य दोनों दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

शब्दार्थ-विचार कोश मूल्य : 350/-

आचार्य रामचन्द्र वर्मा

महान भाषा तत्वज्ञ आचार्य रामचन्द्र वर्मा ने इसमें समर्थक शब्दों का विवेचन अत्यन्त वैज्ञानिक ढंग से किया है समर्थक शब्दों के अर्थों में मूलतः समानता रहने पर भी उनकी विवक्षाओं या आशयों में जो कम अधिक भिन्नताएं होती हैं उन्हीं को ध्यान में रखते हुए समूहों को इस प्रकार विवेचित किया है कि अर्थों के अन्तर स्वतः स्पष्ट होते जाते हैं।

शब्द-परिवार कोश मूल्य 150/-

डा० बदरीनाथ कपूर

शब्द-परिवार कोश अपने ही ढंग का विशिष्ट कोश है इसमें हिन्दी के मूल शब्द को लेकर उससे जितने अन्य अनेकानेक शब्द बनते हैं उनका अर्थसहित विवरण दिया गया है। प्रविष्टियों के तौर पर उन्हीं शब्दों को मुख्य इकाई के रूप में शामिल किया गया है जो अन्य शब्दों के मूल में हैं जो उन अन्य शब्दों की रचना के आधार हैं और उनके अर्थ के नियामक भी। जिज्ञासु पाठक सहज ही एक शब्द से अन्ततः शब्द का एक पूरा परिवार ज्ञात कर लेता है।

प्रमुख उद्योगपति जे.आर.डी. टाटा

आर. एम. लाला मूल्य : 150/-

भारतीय उद्योग क्षेत्र के शिखर पुरुष जे. आर. डी. टाटा की यह अधिकृत जीवनी उनकी असाधारण सफलताओं और उपलब्धियों का दस्तावेज है। औद्योगिक क्षेत्र के इस्पात पुरुष के रूप में विश्व भर में चर्चित उनके व्यक्तित्व की जो जीवन झांकियां इसमें प्रस्तुत की गई हैं वे न केवल रोचक और रोमांचक हैं बल्कि प्रेरणादायक भी है।

यश का मूल्य / बिमल मित्र मूल्य : 50/-

बेहद लोकप्रिय और चर्चित बंगला कथाकार बिमल मित्र के अन्तिम उपन्यास का हिन्दी रूपान्तर आदमी अपने कार्यों से यशस्वी होता है लेकिन जीवन में जो जो यश मिलता है वह एकतरफा नहीं होता। यश की कीमत चुकानी होती है।

राजपाल एण्ड सन्ज़ कश्मीरी गेट, दिल्ली-6

में विकसित हुआ। इसी कारण जिन विधि-विधानोंका विकास हुआ, उन्हें स्मृतिकारोंने लिपिबद्ध कर दिया और विधि और धर्मके क्षेत्र, उनके पारस्परिक संबंधों का भी निर्धारण किया। उससे पूरे देशमें एक विशिष्ट व्यवस्थात्मक संगठन और राजनीतिक-सांस्कृतिक-धार्मिक विकासकी प्रक्रिया चलती रही। मध्य-कालके अवरोधक व्यवधानके बाद ब्रिटिश सत्तामें यह सम्पूर्ण परम्परा नष्ट ही नहीं कर दी गयी, अपितु नयी शिक्षा पद्धतिमें उसके उन्मूलनकी यथासंभव सभी व्यवस्थाएं की गयीं, वे व्यवस्थाएं केवल पुस्तकों तक सीमित होगयीं और सम्पूर्ण शिक्षाका माध्यम परिवर्तित होजानेसे उन व्यवस्थाओं पर और उन्हें कालानुसार और उपयोगिता के आधारपर नया रूप प्रदान करने, संशोधन-परिवर्द्धन करनेकी संभावनाएं समाप्त होगयीं, क्योंकि शिक्षाका माध्यम बदल जानेसे नव-दासोंके लिए उनका पठन-पाठन ही नहीं, व्यावहारिक स्तरपर भी उसका उपयोगिता नहीं रही। फिरभी, ध्यान देनेकी स्थिति यह है धर्म और राजनीतिकके संबंध निर्धारित करते हुए धर्मकी व्याख्याएं हुई, परिभाषाएं प्रस्तुत की गयी, दोनोंके संबंधोंका भी विस्तारसे निरूपण किया गया।

आजकी सेक्युलर व्यवस्थामें धर्मको व्यक्तिगत आचरण तक सीमित कर दिया गयाहै, उसके वर्तमान विधि-प्रवर्तनपर प्रभाव डालनेके अधिकार या प्रवृत्ति पर प्रतिबंध लगा दियाहै, धर्मसे संवद्ध कर्मकाण्ड और उसके प्रतीकोंको मान्यता नहीं दी गयी, (यद्यपि कृपाण धारणको सिख धर्मका अंग मान लिया गयाहै।) वस्तुतः विधि-प्रवर्तनको धर्मसे पूर्ण रूपसे मुक्त रखने का यह प्रावधान संविधानको पूर्णतः धर्मसे निरपेक्ष रखनेका है, और पूर्णतः यूरोपीय चिन्तन और यूरोपीय इतिहासकी शब्दशः अनुकृति है। भारतीय परम्परा और विधि-विधानमें धर्मकी विशिष्ट धारणा है, (कर्मकाण्डकी नहीं), धर्मकी परिभाषा है—व्याख्या है, जिसके अन्तर्गत धर्मके नामपर राजनीतिक-आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक अनाचारों और दुष्प्रवृत्तियोंपर नियंत्रण रखा जाता रहाहै। परन्तु वर्तमान संविधानको लौकिक स्तर पर इतना सीमित कर दिया गयाहै कि वह इस प्रकार की राजनीतिक-आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक अनियमितताओंको रोकनेमें असमर्थ है एवं उनके विरुद्ध विधि-विधान प्रवर्तनमें भी संवैधानिक स्तरपर पंगु है। संविधान सत्ता और न्यायपालिकाकी यह पंगु स्थिति उसकी उसी धारणासे उत्पन्न हुई है, जो धारणा देशके अपने अनुभवों-चिन्तनों-उपचारोंसे संगति नहीं बैठा पाती। उससे भी अधिक यह धारणा बाधक है कि ये पुराणपंथी मार्ग आधुनिक जीवनसे नितान्त असंगत हैं।

इस सम्पूर्ण पृष्ठभूमिके भीतर उतरनेका यद्यपि अवसर नहीं हैं, यह केवल उस मनोवृत्तिकी ओर ध्यान खींचनेका प्रयत्न है कि अनुकरण मात्रसे निर्मित संविधान द्वारा वर्तमान समस्याओंका समाधान भिन्न मानसिकताके देशोंकी समस्याओंसे समाधान ढूंढ पाना संभव नहीं है। उनका मूल आधार संविधान निर्माणसे भी पूर्व उस मानसिकताका है जो अंश-अंशमें निर्मित होती गयीहै और जिसे मध्ययुगीन-ब्रिटिशयुगीन अतिरेकी क्रूरताओं और अनाचारोंने तो प्रभावित किया ही है, साथही ब्रिटिश शासनके उत्तराधिकारी सत्तासीनोंने अपने ब्रिटिश अभ्यासों और प्रभावके कारण आंशिक पुराणपंथी अवशेषों और उनके सुधारवादी आन्दोलनोंकी प्रवृत्तियोंको निष्प्रभावी बनाने एवं उन आन्दोलनोंको शव-साधनकी प्रक्रियामें रूपान्तरित करनेमें पूरी शक्ति लगा दी। जिस शक्तिका उपयोग उन्होंने सुधारवादी आन्दोलनोंको शव-साधनामें परिवर्तित कियाथा, वही शक्ति अब अनुकरण रूपमें प्रस्तुत संविधानके सकारात्मक और सार्थक रूपको भी साकार करनेमें बाधक सिद्ध हो रहीहै। आजके संकट से निपटनेमें वैदेशिक अनुकरण सहायता नहीं दे रहा, धर्मकी उदात्तता और मानवीय संस्कारों और उनसे निर्मित सांस्कृतिक पृष्ठभूमि उनकी अवधारणाओंके प्रतिकूल है। प्रत्युपायों की दिशाओंका लोक, उनके जीवन, संस्कार, आचार और अभ्यासोंसे विसंगति होने से गत आधी शतीमें हमारी सत्ताने देशकी स्थितिको विकट रूप दे दियाहै। जो स्थितियां मध्य युग और उत्तर मध्य युगमें उत्पन्न हुई, उनका प्रत्युपाय हम जिन अनुकरणी आधुनिक चिन्तनोंसे नाम-विपर्यय द्वारा (उदाहरणार्थ बाबर आक्रमणके स्मारकको गिराने नाम 'घोर साम्प्रदायिकता') करना चाहतेहैं, उनसे स्थिति सुधरनेके स्थानपर उसे और विकटतर कर लेतेहैं। नाम-विपर्यय चिन्तन-विपर्ययका एक अंग और प्रतीक है।

इस प्रकार जब एक दृष्टि आक्रमणके स्मारकको नष्ट कर पूर्व 'यथास्थिति' बनाये रखनेके लिए प्रयत्नशील होतीहै तो दूसरा पक्ष उसे साम्प्रदायिक घोषित कर सेक्युलरबादका विरोधी, और इस रूपमें सेक्युलर शब्दकी व्याख्या किये बिना, सेक्युलरवादको संवैधानिक विशिष्टताको नष्ट करना मान लेताहै। तो क्या यह स्वीकार कर लिया जाये कि ऐतिहासिक प्रसंगोंमें काल विशिष्टकी 'यथास्थिति' के भंग होनेपर कालपरिवर्तनके बाद उस यथास्थितिके भंग एवं यथा-स्थिति के परिवर्तनके प्रयत्नको वर्तमान भारतीय संविधानकी मूल विशिष्टताको नष्ट करनाहै और पूर्व 'यथा स्थिति' को स्थापित करना अपराध है ? क्या इस तर्क-प्रणालीके आधारपर ब्रिटिश कालमें स्थापित पूंजीवाद के स्थानपर प्रतिष्ठित 'समाजवाद'की स्थितिको अघोषित रूपमें विस्थापित कर 'बहुराष्ट्रवाद' के नाम पर जिस पूंजीवादकी पुन:प्रतिष्ठा की गयीहै क्या उसे भारतीय संविधानकी मूल विशिष्टता समाजवाद का 'निरसन' उसी भारतीय संविधानकी मूल विशिष्टताको नष्ट करना है या नहीं ? इस स्थितिको यदि 'यथातथ्य' स्वीकार कियाजा सकता है तो आक्रमणकी स्थितिको स्थानीय अथवा क्षेत्रीय रूपमें समाप्त करने के तथ्यको 'यथातथ्य' रूपमें ग्रहण करने अथवा स्वीकार करनेमें क्या आपत्ति है ? किसी तथ्यात्मक स्थिति का नाम परिवर्तन करके उसे भारतीय संविधानके प्रतिकूल अथवा अनुकूल कैसे स्थापित कियाजा सकता है।

एक समस्या कालकी गतिशीलताको स्वीकार न करना भी है। गतिशीलता, और आक्रमणकी शक्तिमत्ता किसी भी कालखण्डमें एक पक्षके अनुकूल जो स्थिति उत्पन्न करतेहैं, काल-क्रमके चक्रमें यह गतिशीलता और शक्तिमयता पक्ष परिवर्तन भी करतेहैं, यह क्रम-परिवर्तन और क्रमभंग भौतिक प्रकृतिका ही अंग नहीं है, मानवीय प्रकृतिका भी अंग है और उस स्थितिमें शक्ति-प्रयोग, चाहे भौतिक हो अथवा संवैधानिक, जिस असन्तोषको जन्म देताहै, उस असन्तोषका तात्कालिक दमन तो किसीभी आधारपर कियाजा सकताहै परन्तु असन्तोषकी व्यापकता जिस गतिशीलता और शक्तिमत्ताको जन्म देतीहै, वह विस्फोटक हो जातीहै। दुर्भाग्यसे हम इसी विस्फोटकी ओर गति कर रहेहैं। ऐसा प्रतीत अवश्य होताहै कि यह विस्फोट सन् ४७ के विखण्डन जैसा भले ही न हो, परन्तु आन्तरिक जन-विद्रोह और रक्तपातकी ओर गतिशील हो सकताहै। तब, हमें भय है संविधान की वर्तमान शक्ति हमारी रक्षा नहीं कर पायेगी, क्योंकि संविधानके पारिभाषिक शब्दोंकी न तो 'व्याख्याएं' उपलब्ध हैं, न उन्हें न्यायिक स्तरपर परिभाषित किया जा रहाहै। संविधानके जिन प्रावधानोंका लाभ जनसाधारणको मिलना चाहिये, उन्हें मृत मान लिया गया है। संविधानकी प्रतिष्ठाको सर्वाधिक आघात तो वे तत्त्व पहुंचातेहैं जो अनाचार, दुष्कृत्योंमें लिप्त परन्तु संविधानकी माला जपनेवाले कार्यपालिकाके पदोंपर आसीन हो जातेहैं और संविधानकी व्यवस्थाओंको अपने हितों-लाभों के लिए सामने ला खड़ा करतेहैं। यह स्थिति इसलिए दुर्लक्ष्य, दुर्वह है क्योंकि न्यायपालिका इनपर किसी याचिकाके अभावमें विचार करनेकी स्थितिमें नहीं होती। फिरभी, संविधानमें लोकहितके जो प्रावधान हैं, जिन्हें प्रदान करनेमें कार्यपालिका प्राय: विफल रहतीहै, अनेक बार जिनकी वह स्वयं उपेक्षा करतीहै। उनके पुनरीक्षण और उन्हें विचारार्थ अपने समक्ष प्रस्तुत करनेके लिए एक पूर्ण पीठका स्थायी संगठन होना चाहिये, जिसकी भाषा संविधान द्वारा निर्धारित जनभाषा होनी चाहिये। संविधान द्वारा निर्धारित जनभाषा तो इस समय स्वयं उच्चतम न्यायालयमें अस्पृश्य है, इसलिए वह जनभावनाओंसे भी अस्पृष्ट है।

न्यायिक क्षेत्रोंमें संविधानकी मूल विशिष्टताओंकी चर्चा बिना परिभाषा और व्याख्याके इतने प्रबल रूपसे कीजा सकतीहै यह जानकर सामान्य जीवनकी अनुभूतियोंके साकार न हो पानेकी स्तब्धताने जन साधारणको मूक बना दियाहै। संविधानकी भाषा पुराने शासकोंकी भाषा है जिसे देशके शासकों और न्यायपालिकाने सगर्व इस देशपर लादा हुआहै। संविधान, न्यायापालिका और कार्यपालिकामें भले ही पारस्परिक संवाद हो, परन्तु इस संवादमें जन-साधारणकी स्थिति नगण्य है। संभवत: यह देश विश्वका एक ऐसा अन्यतम देश है जो इस दृष्टिसे भी विशिष्ट अद्भुतालय है जिसमें लोकभाषाओं, लोक जीवन, लोक-संस्कृति, लोक कला जैसी किसी भी जन-जीवनके रूपका आभास नहीं मिलता। यह वैसा ही आज भी एक शासित देश है जिसके स्वरूपको लोकतंत्रात्मक प्रदर्शित करनेके लिए, जो अर्थ और शक्तिके आधार पर टिका हुआहै, वैदेशिक मूल्यों और चिन्तनोंका अनुकरण द्वारा बाह्य रूपको संवारा जाताहै। लगभग आधी शताब्दीके बाद अब वह समय आ गयाहै कि इस देशकी अन्तरात्मा, मूल चिन्तन-परम्पराओंको आधार बनाकर संविधानके पूर्ण नये रूपका निर्माण किया जाये और इसे संविधान निर्माता 'आत्मार्पित' न कर 'लोकार्पित' करें। □

मोहन राकेशके सम्पूर्ण नाटक[1]

सम्पादक : नेमिचन्द्र जैन
समीक्षक : डॉ नरनारायण राय

प्रस्तुत पुस्तकमें राकेशके 'आषाढ़का एक दिन (१९५८), 'लहरोंके राजहंस' (१९६३), 'आधे अधूरे' (१९६९), और 'पैर तलेकी जमीन' (१९७५) चार नाटक संकलित हैं। इसलिए 'संपूर्ण' का आशय यहाँ मोहन राकेशके सारे नाटकोंसे न होकर (जिसमें 'रात बीतने तक' ध्वनि नाटक संग्रह और 'अंडेके छिलके एवं अन्य बीज नाटक' एकांकी-संग्रह भी आ जातेहैं) उनके पूर्णांगी अथवा पूर्णकालिक नाटकसे है। इस पुस्तकमें 'लहरोंके राजहंस'का १९६३ वाला प्रथम रूप संकलित किया गयाहै, १९६८ वाला संशोधित, परिवर्द्धित और परिवर्तित रूप नहीं, जिसे राकेशने कई बार लिखने-काटनेके बाद अंतिम रूप दियाथा। नाटकका पुराना रूप संकलित करनेके पीछे संभवतः कारण यह रहाहो कि आजभी अनेक लोग नाटकके पुराने रूपको ही अधिक स्वाभाविक और आकर्षक पातेहैं। ऐसे लोगोंको नये रूपवाले नाटकमें 'नंद सुंदरीके अंतिम संवाद अधिक आधुनिक होगये' और 'नाटकके मूल परिवेशसे दूर पड़ गये' प्रतीत होते हैं। उन्हें नाटक अधिक बौद्धिक होगया और तर्क-वितर्क-प्रधान होगया प्रतीत होताहै। चौथे नाटक 'पैर तलेकी जमीन' के पूर्वार्द्धको राकेशने अंतिम रूप दे दियाथा, पर उत्तरार्द्ध अधूरा रह गयाथा जिसके केवल 'नोट्स' उपलब्ध थे जिसके आधारपर कमलेश्वरने उसे पूरा कियाथा। इसलिए नाटककी मौलिकताको लेकर उसी समयसे एक विवाद-सा चलता रहाहै कि नाटकके वर्तमान स्वरूपको राकेशका माना भी जाये या नहीं। इस नाटकने निर्देशकों और रंगकर्मियोंको भी अपनी ओर आकर्षित नहीं किया, इसलिए नाटकके प्रदर्शनोंकी संख्या भी अत्यल्प है। नाटकके अध्येता विद्वानोंने भी नाटकको गंभीरतासे नहीं लिया। लेकिन संपादक श्री जैनने इस नाटकको राकेशके पूर्व प्रकाशित नाटकोंके साथ जगह दीहै, यद्यपि संपादकीयमें उन्होंने स्पष्ट स्वीकार कियाहै कि "अपने वर्तमान रूपमें यह अपर्याप्त है और एक दो केन्द्रोंमें उसके प्रस्तुत किये जानेके बावजूद उसकी कोई खास पहचान नहीं बन सकीहै। नाटककारके रूपमें राकेशकी प्रतिष्ठा पहले तीन नाटकोंके कारण ही है।" (पृ. १८)।

हिन्दी नाटक और रंगमंचसे जुड़े प्रायः सभी लोग यह मानतेहैं कि राकेश हिन्दीके इने-गिने नाटककारोंमें एक है। जिस समय हिन्दी नाटक और रंगमंच अपने अस्तित्व और पहचानके लिए संघर्ष कर रहाथा, माथुर, लाल और राकेशका आविर्भाव उसी समय हुआथा। ऐतिहासिक दृष्टिसे इस दिशामें पहल माथुर जीने की। 'अंधायुग' से काव्य नाटकोंकी एक नयी परंपरा शुरु हुई तो लालके मादा कैक्टस' से हिन्दीके सामाजिक नाटकोंकी। यह मानना संभवतः असंगत नहीं होगा कि कोणार्कसे हिन्दीके अतीताश्रित नाटकोंकी एक ऐसी परंपरा प्रारंभ हुई जिसने आगे 'आषाढ़का एक दिन' और 'लहरोंके राजहंस' के माध्यमसे न केवल पूर्णता पायी अपितु अमित संभावनाओंके संकेत भी दिये। इसी प्रकार लालके नाटक 'मादा कैक्टस' से हिन्दीके नये प्रयोगधर्मी नाटकोंकी परंपरा शुरु होतीहै जिसका विस्तार और चरम उत्कर्ष 'आधे अधूरे' में देखाजा सकताहै।

---

१. प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : ४७०; डिमा. ९३; मूल्य : ३००.०० रु.।

'आषाढ़का एक दिन' राकेशका पहला नाटक है जिसे १९५८ का संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार मिला। समीक्ष्य पुस्तकके पृ. १०६ पर प्रस्तुत राकेश की डायरीके अंशसे विदित होताहै कि इस नाटकके बारेमें कुछ साहित्यकारों द्वारा यह प्रचारित किया गयाथा कि इसमें कालिदासको हीन किया गयाहै। संभवत: इसीलिए संपूर्णानन्दजीने इसकी लखनऊ प्रस्तुतिका उद्घाटन करना स्वीकार नहीं किया। इस जानकारीपर राकेश चकित हुएथे। पुस्तकके अपने संपादकीयमें श्री नेमिचन्द्र जैनने भी यही बात कहीहै: "कालिदासही इस नाटकका सबसे कमजोर अंश है क्योंकि नाटकमें उसका व्यक्तित्व सार्थक और मूल्यवान् स्तरपर स्थापित नहीं होता और उसकी सर्जनात्मक प्रतिभाको विश्वसनीय आधार नहीं मिलता (पृ. ६-७)। कालिदासकी तुलनामें श्री जैनको राकेश के गौण पात्र अधिक सार्थक लगेहैं। नाटकके दूसरे संस्करणकी भूमिकामें राकेशने यह स्पष्ट कर दियाहै कि : "नाटकमें लेखकका राज्याश्रय प्राप्त करनेका संकेत मुख्य है और उसके बिना नाटककी मूल संवेदना कालिदास और मल्लिकाके जीवनकी करुण विडंबना ठीकसे व्यक्त नहीं हो सकती (पृ. १०५)। यहीं राकेशने यहभी स्वीकार कियाहै कि इस संबंधमें वे आलोचकोंकी भिन्न-भिन्न सम्मतियोंसे अवगत हैं फिरभी उन्होंने नाटकमें कोई सुधार करना जरूरी नहीं समझा अर्थात् कालिदास जो है जैसा है, उनकी दृष्टिमें एकदम ठीक है; और फिर कालिदास एकदम कमजोर भी तो नहीं है, उसने उज्जयिनी जानेके पहले ही सभीके सामने यह स्पष्ट कर दियाथा कि : "मुझे ग्राम प्रांतर छोडकर उज्जयिनी जानेका तनिक भी मोह नहीं है।...प्रश्न सम्मान और राज-सम्मान प्राप्त करनेका नहीं है। उससे कहीं बड़ा एक प्रश्न मेरे सामने है (अर्थात् मल्लिका)......यहांसे जाकर मैं अपनी भूमिसे उखड़ जाऊंगा...नयी भूमि सुखा भी सकतीहै.. और उस (नये) जीवनकी अपनी अपेक्षाएं भी होंगी" (पृ. ५३-५६)। उसके उज्जयिनी जानेके बादके खतरों, संभावनाओं और इस प्रकार नाटकके अंतके प्रति, वह पहलेसे ही सबको सावधान नहीं कर देता क्या ? यह किसी कमजोर चरित्रका लक्षण नहीं होसकता। राकेशने पूरे नाटकमें कालिदासको स्थान भी कितना दियाहै, और इतने कम समयमें उससे अपेक्षाएं भी कितनी कीजा सकतीहैं। पूरे नाटकपर मल्लिका छायीहै। फिरभी, दूसरे अंकमें कालिदासका मल्लिकाके पास न आना एक मर्यादाके निर्वाहके लिए है, पत्नीकी उपस्थितिमें प्रेमिकासे मिलना बहुत सर्जनात्मक अनुभव नहीं हैं। अंतमें उसका वापस चला जाना उसकी नासमझी हो सकतीहै पर कायरता नहीं। भ्रमवश उसने मल्लिकाको विलोमकी पत्नी बन गया समझाहो और तब किसी दूसरेकी पत्नीके पाससे उसका जल्दीसे हट जाना ही मर्यादित होता। जैसा राकेशने मानाहै कालिदास और मल्लिकाकी भूमिका निभानेके लिए बहुत ही कुशल अभिनेता चाहिये। नाटकके मूल्यांकनके लिए उसी प्रकार नाटककारकी दृष्टि।

इस पुस्तकमें 'लहरोंके राजहंस' नाटकका पुराना रूप प्रकाशित है। नाटकके साथ प्रथम संस्करणकी भूमिका भी है और नाटकके परिवर्द्धित, परिवर्तित संस्करण अर्थात् तृतीय संस्करणका कुछ अर्थ है, पर जब नाटकका परिवर्तित-परिवर्द्धित संस्करण भी साथ साथ प्रकाशित नहीं है तो फिर उस संस्करणकी भूमिकाका कोई अर्थ नहीं निकलता। यदि यह नयी भूमिका ली गयीहै तो नाटकका नया रूप भी लिया जानाथा। दोनों आलेख—नया और पुराना, दोनों भूमिका, नयी और पुरानी, और तब उसीके अनुसार निर्देशक/अभिनेता/ समीक्षककी टिप्पणी। मूल्य तब कुछ बढ़ जा सकताथा पर पुस्तककी उपयोगिता भी काफी बढ़ जाती। फिरभी, संकलित पुराने आलेखको आधार बनाकर संपादक श्री जैनजीने जो टिप्पणी दीहै उसके अनुसार 'लहरोंके राजहंस' नाटककी अनेक कमजोरियां रहीहैं :

१. तीसरा अंक अधिक दुर्बल है और पर्याप्त स्पष्टता और तीव्रतासे व्यंजित नहीं होता।

२. नंद बड़ी विचित्र-सी कायरताके साथ चुपचाप घर छोड़कर चला जाताहै। उसके इस पलायनकी अनिवार्यता नाटकमें नहीं है।

३. राजहंसका प्रसंग नाटकीय एकाग्रताको तोडताहै।

४. श्यामांगका प्रसंग अतिरंजित और व्याघातकारी है। (दे. पृ. ९)।

बादमें श्री जैन यह स्वीकार करतेहैं कि : "बादमें मोहन राकेशने इस नाटकको फिरसे संशोधित करके

लिखा जिसमें रूपबंध संबंधी कुछ [illegible] दूर हो गयीं फिरभी तीसरे अंकको परिणतिको पूरे रूपमें अनिवार्य और नाटकीय नहीं बनायाजा सका।" (पृ. १०)। चर्चित दुर्बलताओं और नये आलेखमें हुए सुधारोंका मिलान करनेके लिए आलेखका दूसरा रूप भी साथ होता तो अधिक सुविधाजनक होता। दूसरी ओर ध्यान देनेवाली एक और बात यहभी है कि जिस आलेखको स्वयं नाटककारने निकालकर दूसरा रूप तैयार किया, नाटकका वह पुराना रूप संपादक, निर्देशक, रंगकर्मी और रंग प्रयोक्ताओंको किन कारणोंसे बडा उपयुक्त जंचा, पुस्तकमें संकलित किसी सामग्रीसे यह बात स्पष्ट नहीं होपाती। नाटक के समीक्षक सुरेश अवस्थीका यह विचार अधिक उपयुक्त प्रतीत होताहै कि : "लहरोंके राजहंस' में एक ऐसे कथानकका पुनराख्यान है जिसमें सांसारिक सुखों और आध्यात्मिक शांतिके पारस्परिक विरोध तथा उनके बीच खडे हुए व्यक्तिके द्वारा निर्णय लिये जाने का अनिवार्य द्वंद्व निहित है। इस द्वंद्वका एक दूसरा पक्ष स्त्री और पुरुषके पारस्परिक संबंधोंका अंतर्विरोध है" (पृ. २२३)। निर्णयके क्षणमें आदमी अकेला होताहै और निर्णय उसका एकाकी होताहै इसलिए कोई आलोचक या संपादक अपने निर्णय नंद या सुंदरीपर नहीं थोप सकता। न संभव है और न उचित। ऐसी स्थितिमें नाटककी दिखायी गयी सीमाएं स्वतः व्यर्थ हो जातीहै। यह नाटक नंद और सुंदरीके निर्णयके द्वंद्व और आपसी अंतर्विरोधका नाटक है। इसलिए नंदको ऐसा करना चाहिये और नाटकका अंत ऐसा या वैसा होता तो अच्छा या बुरा होता, जैसी, टिप्पणियां बहुत सार्थक नहीं हैं। जहां तक कमजोरियां दिखानेका प्रश्न है, इस संपादित संकलनकी भी अनेक कमजोरियां दिखायी जा सकतीहै और संकलनपर प्रस्तुत इस समीक्षाकी भी। मुख्य बात यह है कि सीमाओं और उपलब्धियोंकी तुलनाके बाद निष्कर्ष क्या आताहै। श्री नेमिचन्द्र जैनके संपादकीय और संकलित संदर्भ सामग्रीका निष्कर्ष एक ही ओर ले जाताहै : निस्संदेह, मोहन राकेश हिन्दीके समर्थ नाटककारोंमें से एक हैं। भारतके निर्देशक नाटककारोंको गंभीरतासे नही लेते, इस दृष्टिसे इस नाटककी संकलित दूसरी भूमिकाके उस अंशकी ओर ध्यान दिलाया उचित लगताहैं जहां राकेशने निर्देशक श्यामानन्द जालानका उल्लेख करते हुए लिखाहै कि लंदन जानेके बाद जालानने पहली बार यह अनुभव किया कि 'थियेटरमें नाटककार ही केन्द्रीय व्यक्ति हैं" और तबसे उन्होंने नाटककारके अनुसार नाटकका मंचीय स्वरूप तैयार किये जानेको प्राथमिकता दी।

आजके अनेक नाटककारोंके लिए राकेश एक शिक्षा हैं और जालान एक आदर्श। "जालानने और उनके सहकर्मी रंगकर्मियोंने थोड़ी देरके लिए राकेशको बांधा हो, प्रभावित कियाहो, या यह अनुभव करानेका प्रयत्न कियाहो कि उनके सहारेके बिना वे बड़े नाटककार नहीं होसकते, परअंततः (जालानके लिए संशोधित किये गये तीसरे अंक, दे. पृ. २१२, २१३) उस आलेखको स्वयं राकेश द्वारा रद्द कर दिया जाना वस्तुतः निर्देशकके वर्चस्व या प्रभावको व्यर्थ बना देता है" राकेशने नाटकके प्रदर्शनको मंचकी एक स्थितिसे अधिक महत्त्व कभी नहीं दिया, पर निर्देशक और रंगकर्मी आजभी राकेशके नाटकको एक चुनौतीके रूपमें लेतेहैं। 'लहरोंके राजहंस'का मानसिक अंतर्द्वंद्व निर्देशकोंको अपनी ओर खींचताहै। घटनाएं अल्प हैं। जो हैंभी वे दर्शकोंको लुभानेके लिए न होकर चरित्रों की प्रतिक्रिया रेखांकित करनेके लिए हैं। इसलिए नाटकमें बाह्यकी अपेक्षा अंतःसंघर्ष प्रधान है। इस इस अर्थमें यह नाटक पहले नाटकसे बहुत आगे बढा हुआहै। बंधनको जाने बिना मुक्ति संभव नहीं है। सुंदरी बंधन है तो बुद्ध मुक्ति। दोनोंके अपने आकर्षण है इसलिए संघर्षभी उन्हीं दोनोंके बीच है। नंद शक्ति-परीक्षणका एक उपकरण बन जाताहै और इन दोनोंके संघर्षकी तुलनामें उसका अपना संघर्ष महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाता। अंत द्विधाग्रस्त और संशयात्मक है। क्या होगा, कोई अंतिम रूपसे नहीं कह सकता। मानव मनकी गति किसीको विदित भी नहीं। इसीलिए नाटकके अंतमें एक अनिश्चय, द्विधाग्रस्तता, संशय, हताशा, थकान और दर्द है जो अस्थिरताकी सहज परिणति है। पुस्तकमें संकलित आलेखके साथ इस नाटकपर निर्देशक, अभिनेता और समीक्षकों की जो टिप्पणियां संकलित की गयीहैं, अंतिम टिप्पणी को छोड कर ऐसी प्रायः सभी टिप्पणियां नाटकके अर्थ को खोलने और समझनेमें सहायक होतीहैं।

संकलनका तीसरा नाटक 'आधे अधूरे' है। अपनी टिप्पणीमें सुधा शिवपुरी सूचित करतीहैं कि अकेले

उन्होंने और उनकी संस्था 'दिशान्तर' ने राकेशके इस नाटकके लगभग चार सौ प्रदर्शन कियेहैं। (दे. पृ. ३३६)। इस लोकप्रियताका अन्य कारणोंके साथ एक मुख्य कारण उनकी दृष्टिमें यह रहाहै कि : "नाटककी भाषा इतनी सरल और बोलचालकी होनेसे दर्शकोंका प्रत्येक वर्ग इस नाटकका आनन्द उठा सकताहै। और यही कारण था कि यह नाटक जहाँभी खेला गया, बहुत सफल रहा।" श्री सत्यदेव दुबेकी दृष्टिमें भारत में हिन्दीमें प्रस्तुत सबसे सफल नाटक 'आधे अधूरे' रहाहै क्योंकि : "यह नाटक टूटते हुए मध्यवर्गीय परिवारके बारेमें है। इसके केन्द्रमें है सावित्री, तीन बच्चोंकी मां और एक असफल पुरुषकी पत्नी। परिवारको बचानेके लिए सारे उतार-चढावका सामना करनेके साथ साथ वह संपूर्ण पुरुषकी खोजमें भी है। उसका संपूर्ण मोहभंग और उससे पैदा होनेवाली मध्यवर्गीय अस्तित्वपर हताशा एक सुगठित स्थितिमें उजागर हुईहै जिसमें सावित्रीके जीवनमें आनेवाले चार पुरुषोंका अभिनय एक ही अभिनेतासे करानेकी प्रभावी रंगयुक्तिका प्रयोग किया गयाहै"। (पृ. ३३७)। पर श्री नेमिचन्द्र जैनको इस नाटकमें अनेक कमजोरियाँ दिखीहैं :

१. 'आधे अधूरे' कोई विक्षोभका सर्जनात्मकरी अनुभव नहीं देता। सावित्री और महेन्द्रनाथके माध्यमसे नाटककार स्त्री-पुरुष मात्रके बीच उठनेवाली समस्याओं की गहराईमें नहीं जा पाते।

२. अन्य नाटकोंकी भांति राकेशके इस नाटकमें भी केन्द्रीय पात्र स्त्री है, गलत हमेशा स्त्री होतीहै, पुरुष हमेशा उसे छोड जाताहै। ऐसा प्रतीत होताहै जैसे एकही अनुभव तीनों नाटकमें हल्के अंतरसे दुहराया गयाहो।

३. काले सूटवालेसे चार भूमिकाएं करवाना एक अनोखी नाट्य युक्ति हो सकतीहै पर वह अनावश्यक आडंबर लगताहै। यथार्थवादी नाटकके लिए यह कोई अच्छी रंगयुक्ति नहीं है।

४. आखिरी दृश्यमें जुनेजाका महेन्द्रनाथ बनकर लौटना बनावटी और हास्यास्पद लगताहै।

५. निर्देशक और अभिनेताका काम अपने हाथमें लेनेका प्रयत्न इस नाटकमें अधिक है।

६. चरित्रोंकी परिकल्पनामें सूक्ष्मता या सर्जनात्मक कल्पनाशीलता कम है।

(संपादकके इन विचारोंके लिए द्रष्टव्य, पृ. ११-१४)।

राकेशके अन्य आलोचकोंने इन्हीं बिन्दुओंको सर्वथा भिन्न रीतिसे देखाहै। इन सभी बिन्दुओंके अलग अलग निदानका संकेत भी संभव है पर इस समीक्षाकी सीमाओंको ध्यानमें रखते हुए इतनाही कहाजा सकताहै कि उल्लिखित सीमाओंके होते हुएभी केवल एक संस्था, केवल एक अभिनेत्री, ने इस नाटक के अबतक चार सौ प्रदर्शन कर लियेहैं। और बात जाने भी दें। केवल एक यह बात नाटककी बतायी गयी सीमाओं, कमजोरियोंको लांघकर उन्हें व्यर्थ कर जातीहै। आशय यह नहीं है कि राकेशका नाट्य-लेखन एकदम निष्कलंक निर्दोष हैं, आशय केवल इस बातकी ओर संकेत करनाहै कि चंद्रमाका कलंक भी उसका सौंदर्य बढ़ानेवाला ही होताहै। श्री जैनने इस नाटकको समझनेके लिए आलेखके साथ जो निर्देशक अभिनेता/ समीक्षकीय टिप्पणियां संकलित कीहै, उनसे भी बात राकेश के पक्षमें ही जातीहै और इस समीक्षणकी धारणा पुष्ट होतीहै।

अंतमें राकेशके अंतिम और आधे अधूरे नाटक 'पैर तलेकी जमीन' के संदर्भमें कुछ बातें और। अनीताजीके अनुसार राकेशने इस नाटकका पूर्वार्द्ध ही पूरा कियाथा। उत्तरार्द्धपर उनके केवल 'नोट्स' थे जिसके आधारपर कमलेश्वरने इसे पूरा किया। यदि राकेश पूरे नाटकको स्वयं अंतिम रूप देते तो उस अधूरे आलेखका कितना क्या आता और क्या नहीं आपाता, यह निश्चयसे नहीं कहाजा सकता। अतः राकेशका जो यह नाटक पूरा छपाहै वस्तुतः अधूरा है और राकेशके पूर्ण नाटकके रूपमें प्रकाशित किये जाने का औचित्य विचारणीय है। संपादक श्री जैनने राकेश द्वारा स्वयं निरस्त किया गया नाटकका पहला रूप प्रकाशनयोग्य समझा और नाटककार द्वारा परिवर्तित-परिवर्द्धित रूप संकलन योग्य नहीं समझा। संभवतः उसमें उन्हें संभावना नहीं दिखी। लेकिन राकेशका अधूरा नाटक उन्हें संभावनापूर्ण लगा (इस अधूरेपनके होते हुए भी पहला अंक एक अत्यंत संभावनापूर्ण नाटकीय स्थितिको प्रस्तुत करताहै, दे. सं. पृ. १५)।

४७० पृष्ठोंकी इस पुस्तकमें चार प्रकारकी सामग्री है। आरंभमें १८ पृष्ठोंका संपादकीय है जिसके दस पृष्ठोंमें राकेशके नाटकोंपर और शेष ८ पृष्ठोंमें

पुस्तकमें संकलित अन्य सामग्री[illegible] है। राकेशपर कुल १० पृष्ठोंके संपादकीयमें से आधी सामग्री राकेशकी आधार-भूमिका आकलन करनेवाली और नाटककी विशेषताओंपर है। संपादकने यहां एक प्रकारका संतुलन बरताहै। दूसरी सामग्री है राकेशके चार नाटकोंके आलेख जिनपर कुछ चर्चा इस समीक्षाके क्रममें हो चुकीहै। तीसरी सामग्री है प्रत्येक नाटक पर राकेशकी डायरीसे दिये गये संबद्ध अंश, नाटकपर निदेशक, अभिनेता और समीक्षकोंकी टिप्पणी। अधिकांश टिप्पणियां पत्र पत्रिकाओंसे ली गयींहै पर प्रतिभा अग्रवाल, गिरीश रस्तोगी और जगदीश शर्माकी सामग्री उनकी पुस्तकोंसे भी ली गयींहैं। पुस्तकके साथ कुछ चमकते हुए नामोंको जोड़े रहनेके लिए सत्यदेव दुबे (पृ. १०८), जॉय माइकेल (पृ. ११७) सत्यदेव दुबे (पृ. २२२) सुधा शिवपुरी (पृ. २३८) और रंजीत कपूर (पृ. ४४६) की पांच दस पंक्तियोंकी टिप्पणियोंको पूरा पृष्ठ दिया गयाहै जिसके बिनाभी पुस्तकके महत्त्वमें थोड़ी भी कमी नहीं आती। राकेशके नाटकोंपर अलग अलग कोणोंसे दृष्टि डालनेके लिए शेष टिप्पणियां सहायक हैं। पुस्तककी चौथी प्रकारकी सामग्री है १६ पृष्ठोंमें प्रकाशित राकेशके नाटकोंकी प्रस्तुतियों के २८ चित्र। इन चित्रोंसे नाटक को समझनेमें तो नहीं, पर नाटककी प्रस्तुतियोंके बारे में कुछ समझनेका प्रयत्न कियाजा सकताहै। इसका लाभ सबसे अधिक उन संस्थाओं, निर्देशकों और कलाकारोंको मिलेगा जिनके नाम चित्रोंके साथ प्रचारित हैं। संपादकने नाटकोंके साथ जो संदर्भ सामग्री देनेका प्रयास कियाहै उसकी प्रशंसा की जायेगी कुछ पृष्ठ जो अनावश्यक रूपसे व्यर्थ हो गयेहैं, उनके स्थानपर राकेशपर प्रकाशित पुस्तकों, लेखों और समीक्षाओंकी कमसे कम सूची तो दी ही जा सकतीथी।

हिन्दी नाटकके इतिहासमें 'प्रसाद' के बाद संभवतः 'राकेश' के नाट्य-लेखनने ही साहित्य जगत्‌को सबसे अधिक आंदोलित किया। नाटककार प्रसादपर ४२ से अधिक और प्रसादके तुलनात्मक अध्ययनपर १८ से भी अधिक शोधकार्य हो चुकेहैं तो राकेश भी उनसे कम प्रतीत नहीं होते। राकेशके नाटककार व्यक्तित्व पर ३५ से अधिक और राकेशके नाटकोंके तुलनात्मक अध्ययनपर भी ३-४ शोध कार्य हो चुकेहैं। राकेश और [illegible] बीस समीक्षा-पुस्तकें प्रकाशित हो चुकीहै। राकेश और प्रसाद दोनोंके ही मामलोंमें दी गयी संख्याएं बढ़ सकतीहैं, कम होनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं है। इस उल्लेखका प्रयोजन केवल इस बातकी ओर संकेत करनाथा कि राकेश और प्रसादने हिन्दी साहित्यको समान रूपसे प्रभावित कियाथा। समीक्ष्य पुस्तकसे भी उसी महत्त्वका संकेत मिलताहै। □

साहित्य-मनोविज्ञान और हिन्दी एकांकी[1]

लेखक : डॉ. गुरुदयाल बजाज
समीक्षक : डॉ. भानुदेव शुक्ल

ज्ञानके क्षेत्रोंमें सर्वाधिक जटिल शास्त्रोंमें मनोविज्ञान भी है। बाह्य विराट् जगत्‌से कहीं अधिक वैविध्य भरा तथा रहस्यमय जगत् मानव मनमें छिपा रहताहै। मानव-चरित्रको भली प्रकार समझ पाना दुष्कर कार्य रहाहै इसीलिए मानव-मनकी विधिवत् छानबीनका शास्त्र — मनोविज्ञान — बहुत बादमें विकसित हुआ।

मनोविज्ञानको शास्त्रका रूप देनेवालोंमें सिगमन फ्रायड सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथा विवादास्पद मनोचिकित्सक रहेहैं। नव्य फ्रायडवादियोंमें फ्रायडके सहयोगी एवं शिष्य एडलर एवं युंग प्रमुखतम माने जातेहैं। फ्रायडकी मान्यताओंमें जहां अतिवाद थे उनको दूर करने तथा रिक्त क्षेत्रोंकी खोजों द्वारा शास्त्रको अधिक व्यापक एवं वैज्ञानिक बनानेवालोंमें एडलर तथा युंग सबसे महत्त्वके है। प्रायः हिन्दीमें 'युंग' को 'जुंग' लिख दिया जाताहै क्योंकि यह लैटिन अक्षर जिसे अंग्रेजीमें 'जे' कहा जाताहै, से प्रारंभ होताहै। आस्ट्रियामें, जहांके युंग थे, इसका उच्चारण 'य' से होताहै। विभिन्न यूरोपीय भाषाओंमें ऐसे अनेक उच्चारण-भेद मिलतेहैं जिनमें सबकी जानकारी हमें नहीं हो पाती।

तीनों मनोविदाचार्योंमें फ्रायड एवं एडलर व्यक्ति के मनोविज्ञान तक सीमित रहेहैं जबकि युंगने सामूहिक

---

१. प्रका. : राधाकृष्ण प्रकाशन, २/३८ अंसारी मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : २६३; डिमा. ९६; मूल्य : १६५.०० रु.।

अचेतनको मान्यता दी जो पुराकथाओंके महत्त्वकी उत्तम व्याख्या करतीहै। डॉ. गुरुदयालने अपनी पुस्तक में इन तीन महान् मनो-चिकित्सकोंके प्रतिपाद्यको ही मुख्यत: स्वीकारकर हिन्दी एकांकीके विवेचन-परीक्षण कियेहैं। आलोच्य पुस्तक मनोविज्ञानके सिद्धान्त निरूपण तथा मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन—दो खण्डोंमें है। प्रथम खण्ड सतहत्तर पृष्ठोंका है तथा दूसरा इससे दुगनेसे भी बड़ा है। मूल विवेच्य अधिक विस्तारका उचित अधिकारी बनाहै। यदि प्रथम अध्याय कुछ संक्षिप्त होता तो मूल विषय आनुपातिक दृष्टिसे अधिक महत्त्वपूर्ण दिखायी देता। मनोविश्लेषकों द्वारा प्रतिपाद्य सभी कुछ प्रस्तुत करनेके स्थानपर उतना-कुछ ही पर्याप्त था जोकि हिन्दी एकांकीकी दृष्टिसे प्रासंगिक है। हमारे विचारमें इसमें डॉ. बजाजको युंगके पुरा-कथा संबंधी विचार (जो 'द इन्टीग्रेशन आफ पर्सनेलिटी' शीर्षक अंग्रेजी अनुवादमें प्रस्तुत हैं) अधिक विस्तार पाते।

प्रथम अध्याय 'साहित्य-मनोविज्ञान : सिद्धान्त-निरूपण' मनोविज्ञानके स्नातक-स्तरके छात्रोंके लिए उपयोगी पाठ्य-पुस्तिका-सा है। प्रारंभमें मनोविज्ञान के अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप दिये गयेहैं। ये विवेच्य विषयके विचारसे अनावश्यक हैं। प्रारंभके लगभग-तेरह पृष्ठ पर्याप्त भरतीकी सामग्री होकर रह गयेहैं। सही अर्थोंमें पृ. तीससे ही विषय-सम्बद्ध विवेचन प्रारंभ हुआहै। यहांसे फ्रायडके मनोविश्लेषणके विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत किया गयाहै।

व्यक्तित्वकी संरचनाके फ्रायडने मुख्यत: दो पहलू मानेथे—गत्यात्मक जिसमें इड, ईगो तथा सुपर ईगो तीन भाग हैं तथा स्थल रूपरेखीय (टोपोग्राफिकल) जिसमें चेतन, अवचेतन तथा अचेतन मनके तीन स्तरों की उसने खोज की। इनके संबंधित स्वप्न-सिद्धान्तका भी उसने प्रतिपादन किया। इनके संदर्भमें ही फ्रायडने रक्षा-युक्तियोंकी बात भी कही। ये युक्तियां भी, उसके अनुसार, प्रमुख गौण प्रकारकी मानी गयीहैं। प्रमुखमें दमन, शमन तथा उदात्तीकरण विशेष हैं।

एडलरने हीन-भावना ग्रन्थिकी खोज की। श्रेष्ठताकी भावनाकी ग्रन्थि भी मूलत: हीन भावना ग्रन्थिका ही भिन्न रूप है। एडलरका आग्रह व्यक्तिके रचनात्मक स्वरूपकी प्रतिष्ठाका अवश्य रहाहै, किन्तु किन्हीं दृष्टियोंमें एडलरने मनोविज्ञानको समूहसे जोड़नेका भी प्रयास कियाहै जो अपने आपमें उल्लेखनीय एवं महत्त्वपूर्ण है।

युंगने लिबिडो (मानवकी जिजीविषा) की अवधारणाको फ्रायडकी यौनिक-प्रवृत्तिके स्थानपर प्रतिष्ठित कर सामाजिक दृष्टिसे इसकी प्रतिष्ठा की। हमारे यहां 'काम' शब्द भी मानवकी जिजीविषाका पर्याय है जिसे भ्रमवश 'सेक्स' का पर्याय माना जाने की प्रवृत्ति मिलतीहै। फ्रायडने भी 'इड' को इतना संकुचित नहीं कियाथा जितना कि कभी-कभी समझ लिया जाताहै। तथापि, हमारे विचारमें, काम और लिबिडोमें मूलभूत अन्तर भारतीय एवं पश्चिमी जीवन-दृष्टिका है। कामको सामाजिक स्थिति मिली हुईहै; यह धर्म, अर्थ तथा मोक्षके समकक्ष है। लिबिडो विशुद्ध आदिम प्रवृत्ति है। युंगकी सबसे महत्त्वपूर्ण देन सामूहिक अचेतन अवधारण है। इसके साथ जुड़ीहै आर्केटाइपकी कल्पना जो सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकासका बीज प्रदान करतीहै। युंग (डॉ. बजाजने भी सर्वत्र 'जुंग' कहा है) ने स्वप्न-सिद्धान्तको व्यक्ति की तात्कालिक उलझनोंके अचेतनके कुण्ठाओंके विवरण के उपचारकी अपेक्षा पीढ़ी-दर-पीढ़ी विकसित मानव-स्वप्नोंसे जोड़ाहै। पौराणिक आख्यानोंके प्रति विशेष आकर्षणका कारण अनादि कालसे प्राप्त अपनी स्वप्न-विरासतके प्रति लगावके कारण ही होताहै। इस प्रकार युंगने पुराणों एवं महाकाव्यात्मक औदात्य संपन्न कलाओंमें सामूहिक अचेतनकी चेतन अभिव्यक्ति का विचार प्रस्तुत किया। सामूहिक अचेतनके इस विस्तारका परिचय डॉ. बजाज नहीं दे पायेहैं। यों भी एकांकियोंके विचारमें यह बहुत आवश्यक हैभी नहीं।

अन्य नव्य फ्रायडवादी मनोविश्लेषकों आटो रांक, सैण्डर फरेंजी, कैरेन हार्नी, अक्जैण्डर आदिमें ऐरिक फ्रायका प्रदेय सबसे महत्त्वपूर्ण माना जा सकताहै। उसने स्वपीड़न, परपीड़न-रति आदि पलायन प्रक्रियाओं के अतिरिक्त समाज तथा संस्कृतिके साथ व्यक्तिके संबंध-स्थापनपर विचार किया जो व्यक्तित्वको समझनेके अन्य आयाम प्रस्तुत करताहै। अध्यायके अंतिम तीस पृष्ठोंमें साहित्य और मनोविज्ञान संबंधी विचार ही विषयानुरूप हैं, शेषकी उपयोगिता कम है। साहित्य (तथा अन्य कला प्रकार) और मनोविज्ञान के संबंधमें 'माडर्न मैन इन सर्च ऑफ ए सोल', 'द इन्टीग्रेशन आफ पर्सनेलिटी' आदिमें प्रस्तुत युंगके

विचार तथा 'द पाएटिक इमेज' में इनकी सी. डी. लेविल द्वारा अधिक स्पष्ट व्याख्या भी उपयोगी होती। युंगने आग्रह किया कि आद्य-बिम्ब सामूहिक, सार्वभौम, सार्वकालिक एवं निर्वैयक्तिक अवश्य होतेहैं किन्तु समकालीन जीवनसे जुड़नेमें सक्षम होतेहैं। भारतीय, यूनानी तथा अन्य पौराणिक कथाओंकी गहरी पकड़ का कारण यही सार्वभौमिकताके साथ समकालीनता है। जब अतिरिक्त जानकारी दी ही गयीहै तब इस जानकारीका प्रदान असंगत नहीं होता।

साहित्य और मनोविज्ञानके संबंधोंपर विचार करते हुए डॉ. बजाजने विशेष कौशलका परिचय दिया हैं। आ. शुक्लकी सामासिक भाषाके प्रयोगमें अभिव्यक्ति क्षमताके भी वे परिचय दे सकेहैं। "साहित्य यदि हमारी मानसिक प्रवृत्तियों, भावों, विचारोंकी सहज कलात्मक अभिव्यक्ति है तो उसके वैज्ञानिक विश्लेषणको 'मनोविज्ञान' नामसे अभिहित किया जायेगा। इस प्रकार साहित्य और मनोविज्ञानकी आधारभूत सामग्री एक है। मनोविज्ञान और साहित्य —दोनोंही व्यक्तिको समझनेकी चेष्टामें लीन हैं। मनोविज्ञानका सीधा सम्बन्ध वास्तविक जीवनसे है और साहित्य उस अनुभूत जीवनकी सहज कलात्मक अभिव्यक्ति है।" "अन्तर है तो केवल इतना कि मनोविज्ञान जहां व्यक्ति-मनका स्थूल प्रवृत्यात्मक अध्ययन करता है तो साहित्य व्यक्ति-मनके अनुभूत्यात्मक पक्षसे सम्बद्ध है।" विश्लेषण क्षमता तथा उसके अनुरूप अभिव्यक्ति का एक और उदाहरण प्रस्तुत है—"फ्रायड और एडलर जहां 'वैयक्तिक' स्तर पर प्रश्नोंके उत्तर देनेका प्रयास करतेहैं वहां युंगने उपयुंक्त उठाये गये प्रश्नोंके उत्तर में 'सामूहिक अचेतन' का विचार प्रतिपादित कियाहै, जिसमें एक ओर व्यक्ति तथा दूसरी ओर समाजकी सामूहिकताके आलोकमें विवेचन किया गयाहै।"

खण्ड-२ 'हिन्दी एकांकी : मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन' में मनोविश्लेषकों द्वारा प्रतिपादित विभिन्न अन्तःक्रियाओंके चौखटेमें एकांकियोंके अंशोंको 'फिट' करनेके उपक्रम हैं जो अनेक अवसरोंपर अनावश्यक तथा बलात् भी लगतेहैं। शोध-कार्यकी यह बड़ी सीमा हुआ करतीहै कि अध्ययन पूरे रूपमें यांत्रिक हो जाता है। हिन्दी शोधमें तो तथ्योंके अम्बारकी विशेष पद्धति बन गयी है। ये तथ्य सदव आवश्यक नहीं होते। इसके लिए शोध-पद्धति ही उत्तरदायी है जिसमें शोध-कर्त्ता धारमें वह निकलतीहै। मुझे अब अपने स्वयंके शोध-प्रवंधमें यह भरतीकी सामग्री भरपूर दिखायी देने लगी है। डॉ. बजाजने मनोविज्ञानके सभी छोटे-बड़े खाने (पिजन-होल्स) भरनेकी चेष्टा कीहै। दमन-शमन-बर्जना, क्षतिपूर्ति, तादात्म्यीकरण, प्रतीकीकरण, स्थानान्तर, द्वन्द्व-कुण्ठा, प्रक्षेपण, रूपान्तरण, स्वपीड़न, परपीड़न, आत्मरति, मातृ पितृ रति ग्रन्थि, मनोग्रस्तता, उन्माद, मनस्ताप तथा दर्जन भर से अधिक और व्यक्ति-चेतनाके नकारात्मक विक्षेपों तथा सामूहिक अचेतनके सकारात्मक तथा नकारात्मक विभिन्न पक्षोंको लियाहै। एकांकियोंकी संख्याभी भरपूर है। इसमें एकांकियोंको स्पर्श कर दूसरे एकांकीको स्पर्श करनेके लिए बढ़ जानेकी चेष्टा ही प्रधान रहीहै। साथ ही यदा-कदा डॉ. बजाज अभिनयके क्षेत्रमें भी चले गयेहैं : आलोच्य विषयको आलेखों तक ही विश्लेषण की अपेक्षा है। "नाटकका सम्बन्ध पहले रंगमंचसे है बादमें साहित्यसे" (पृ. ९६) लिखते समय वे कदाचित् यह भूल गयेहैं कि बे आलेखोंकी समीक्षा कर रहेहैं प्रस्तुतियोंकी नहीं। प्रस्तुतिकी परीक्षामें आलेख पीछे रह जाताहै, रंगकर्मियोंकी कला ही प्रमुख हो जातीहै। डॉ. बजाजका अध्ययन क्षेत्र न तो नाट्य-प्रस्तुति है और न ही नाट्य प्रस्तुतियोंपर विचार करना संभव ही है क्योंकि प्रस्तुतियां अब उपलब्ध ही कहाँ है? हां, आलेखके पात्रोंको सजीव मानवके रूपमें देखते हुए आलेखमें निर्मित उनकी मानसिक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं की अभिनयात्मक संभावनापर अवश्य बिचार किया जा सकताहै। किन्तु यह विचार विचारकका अधिक हो सकताहै, पूरी तरह आलेखका अंग हो यह आवश्यक नहीं है।

पृ. १७४ पर प्रकट किया गयाहै—"सिकन्दर और ब्राह्मणोंका सामूहिक अचेतनमें दो कालोंका विवाद है।" यह निर्णय भुवनेश्वरके एकांकी 'सिकन्दर' पर विचारके समय है। वस्तुतः सिकन्दर या ब्राह्मणोंके बीचका विवाद एकांकीकारकी कल्पना है, ऐतिहासिक कदाचित् ही है। ऐसेमें यह भुवनेश्वर द्वारा कल्पित दो संस्कृतियोंकी टकराहट तो हो सकतीहै, दो जातियों के सामूहिक अचेतन कैसे हो सकतीहैं? डॉ. रामकुमार वर्माने अपने एकांकी 'तैमूरकी हार' में वीरताका सम्मान करनेवाले तैमूरके चरित्रकी जो सृष्टि कीहै उसको ऐतिहासिक तैमूरके चरित्रका आधार कैसे माना

जा सकताहै ? साहित्यकारकी कल्पनाको इतिहास या पुरा-कालका सत्य समझ बैठनेमें ऐसी भूलें स्वाभाविक हैं। जहां डॉ. बजाज रचनाके इस भ्रमसे मुक्त हैं वहां उनके निर्णय बहुत सटीक तथा सही हैं : "भुवनेश्वर मानवीय अन्तश्चेतनाके व्यावहारिक मनोवैज्ञानिक रहे हैं", "अश्कका प्रत्येक पात्र उनके अहंका ही प्रतिनिधित्व करताहै" तथा "अश्कके जीवनकी जितनी झलक इनके एकांकियोंमें मिलतीहै वह अन्य किसी एकांकीकारके साहित्यमें उसी अनुपातमें नहीं मिलती"; "लक्ष्मीनारायण लालके पात्रोंकी व्यक्ति-चेतनाका सकारात्मक रूप उनके कार्योंमें नहीं बल्कि उनके उद्देश्योंमें निहित है। ऊपरी तौरपर देखनेपर उनके पात्रोंके कार्य एवं घटनाएं या प्रतिक्रियाएं नकारात्मक ही प्रतीत होतीहैं परन्तु उनका साध्य सकारात्मक है" अथवा "इन प्रवृत्तियोंकी प्रक्रियामें हम देख चुकेहैं कि कतिपय पात्र नकारात्मकताकी ओर झुकावका संकेत देते हुएभी नैतिकाहम्का स्पर्श पातेही पूर्णतया सकारात्मक बन पड़ेहैं। यह मनोविज्ञानका वह जीवन-सापेक्ष यथार्थ रूप है जहां नकारात्मकता और सकारात्मकता के बीच बहुत पतली रेखा रह जातीहै। पात्र ऐसे कगारपर खड़ा होताहै कि एक ही झटका उसके जीवन की दिशा बदल देताहै। साहित्यकारकी यही पकड़ एक श्रेष्ठ मनोविश्लेषणकी पकड़ होतीहै। "तथ्योंके दमघोट अम्बारके बीच ऐसे सुलझे हुए निर्णय पुस्तकको पढ़ते जानेकी प्रेरणा ही नहीं देते बल्कि कभी-कभी रोककर बहुत कुछ सोचने और समझनेको भी प्रेरित करतेहैं। यदि इस पुस्तकको हम सामान्यसे उच्चतर स्तरकी पायेंगे तो श्रमपूर्ण तथ्य जोड़नेके कारण नहीं बल्कि उन तथ्योंसे सही निष्कर्ष निकालने तथा समुचित अभिव्यक्ति क्षमताके कारण ही मानेंगे।

पुस्तकमें कुछ भूलें भी दिखायी देतीहैं जो निष्कर्ष की नहीं बल्कि तथ्य प्रस्तुतिकी हैं। पृ. ११८ पर उद्धरण क्र. ७१ विनोद रस्तोगीका प्रकट किया गयाहै किन्तु सन्दर्भ-सूचीमें इसको 'धर्मवीर भारती, संगमरमर पर एक रात' का दर्शाया गयाहै। कुछ ऐसीही स्थिति पृ. ११९ पर देवेन्द्रनाथ शर्माके नामसे दिये गये उद्धरण क्र. ७२ की है जो सन्दर्भ-सूचीमें पृथ्वीनाथ शर्माके एकांकी 'दृष्टिका दोष, दृष्टिको दोष' का बताया गया है।

डॉ. रामकुमार वर्माके लेखनके समय डॉ. बजाजने एक फतवा दियाहै जो गंभीर चिन्तन-विश्लेषण एवं विवेचनकी पद्धतिके विपरीत है—"वर्माजी यदि साहित्यकार न होते तो निःसंदेह ही वे नेहरूकी टक्कर के इतिहासकार हो सकतेथे। उन्होंने इतिहासको संस्कारोंके धरातलपर जिस खूबीसे समझाहै, उसके उदाहरण विभिन्न कालोंकी पृष्ठभूमिपर लिखे गये एकांकियोंमें मिलतेहैं।" (पृ. १७८)। अब यह प्रश्न न उठायें कि यदि वर्माजी एकांकी न रचते तो उनका इतिहासकार रूप डॉ. बजाज कहांसे देख पाते। इसी प्रकार पृ. १५५ पर प्रकट किया गयाहै डॉ. वर्माकी चारुमित्रा मातृभूमि-प्रेम और स्वामिभक्तिके बीच घिर कर स्व-पीड़नमें रत है। दो आदर्शोंके बीच द्वन्द्व हो सकताहै किन्तु वह चेष्टा जिसे मनोविश्लेषक फ्रॉयड 'पलायनकी प्रक्रिया' बतायाहै, क्या चारुमित्रामें वह पलायन भावना है ? हमको तो ऐसा तनिक भी नहीं लगाहै। संभव है कि स्व-पीड़नके मनोविश्लेषकों द्वारा प्रतिपाद्यका अर्थ हम समझ न पायेहों। अगलेही पृष्ठपर शिवाजी अपने सहयोगीके कार्यके लिए प्रायश्चित करते हुए स्वपीड़नका शिकार होतेहैं। क्या स्वपीड़न तथा परपीड़न किसी गहरी अन्तर्धाराके अंग न होकर केवल सामान्य पीड़ा मात्र हैं—अपनी या दूसरेको दी गयी पीड़ाके ? क्या मनोविश्लेषकोंने पीड़नके ऊपरी और सतहके पीड़नकी बात कही थी ?

डॉ. गुरुदयाल बजाज शोधकी यांत्रिकतासे ऊपर उठकर तथा चौखटेमें बलात् चस्पाँ करनेकी कमीको दूरकर जब लिखना प्रारंभ करेंगे तभी वे अपनी क्षमता का पूरा परिचय दे सकेंगे, उसके साथ न्याय कर सकेंगे। आलोच्य पुस्तक कतिपय हलके अंशोंके बावजूद महत्त्वपूर्ण अध्ययन है। भविष्यके कार्योंमें वे, हम चाहेंगे, संख्यामें कम कृतियोंको लें तथा प्रत्येकपर कुछ अधिक रुककर, अधिक गहरे अवगाहनके पश्चात् निर्णय दें। यदि वे इसको अधिक स्पष्टतासे समझना चाहें तो डॉ. गंगाधर झाकी पुस्तक 'आधुनिक मनोविज्ञान और हिन्दी साहित्य' में भुवनेश्वरके एकांकी 'ऊसर' की व्याख्याको पुनः देख लें। डॉ. बजाजने मनोविज्ञानके सिद्धान्तोंको भली प्रकार समझाहै। अब अधिक परिपक्व दृष्टिसे इन सिद्धान्तोंके व्यवहारको विकसित करें। इस क्षेत्रमें अच्छे कार्योंका क्षेत्र विस्तृत है। हमें विश्वास है कि डॉ. गुरुदयाल बजाज अपने अध्ययनका क्षेत्र अन्य विधाओं तक फैलाकर महत्त्वपूर्ण कार्य करेंगे। ☐

कश्मीरी कवयित्रियां और उनका रचनात्मक-संसार[1]

लेखक : डॉ. शिबनकृष्ण रैणा
समीक्षक : डॉ. मदनमोहन तरुण

प्रस्तुत कृति स्वागत योग्य एवं महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है। महत्त्वपूर्ण समीक्षात्मक अध्ययनके अतिरिक्त पुस्तकके द्वितीय खण्डमें संकलित क्रमश: ललद्यद, हब्बाखातून तथा अरणिमालकी कविताओंका फारसी लिपिमें मूल पाठ, तत्पश्चात् उसका देवनागरीमें लिप्यन्तरण तथा अंतमें उसका अनुवाद। लेखकने इसी खंडके प्रारम्भमें कश्मीरी भाषाकी विशिष्ट ध्वनियों, उच्चारणगत वैशिष्ट्यके लिए निर्धारित मात्रा-चिह्नोंका भी सोदाहरण विवरण दियाहै, जिससे इन कविताओं के मूल-पाठकी ध्वनिगत विशेषताओंको समझनेमें सहायता मिलतीहै जिसे अनुवादमें प्रस्तुत करना सरल नहीं।

पुस्तकके प्रथम खण्ड 'अध्ययन' के अन्तर्गत लेखक ने इन तीनों कवयित्रियोंकी समकालीन राजनीतिक तथा सांस्कृतिक स्थितियोंका विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कियाहै तथा उनकी उन सामाजिक एवं पारिवारिक स्थितियोंका भी विश्लेषण कियाहै, जिनसे इन कवयित्रियोंकी कविताएं प्रभावित एवं प्रसूत है। कवयित्रियोंका रचना-काल १४ वीं शताब्दीके पूर्वार्ध (ललद्यद-१३३५ से १३७९) से लेकर १८ वीं शताब्दीके उत्तरार्ध (अरणिमाल १७३७ से १७७८) तक फैला हुआहै। हब्बाखातून १५४१-१५९२) दोनोंके बीचकी कड़ी हैं।

ललद्यद कश्मीरी साहित्यके आदिकालकी प्रमुखतम कवयित्री हैं, जिन्होंने कश्मीरी साहित्यको कोरे अध्यात्मवाद तथा आचारवाद तथा आचारवादकी प्रचारवादी भूमिकासे निकालकर, अभिव्यक्तिको पहली बार मानवीय संवेदनशीलता और आत्मिक ऊष्मा प्रदान की। उनके पूर्व १०-११ वीं शताब्दी तक कश्मीरमें संस्कृतका वर्चस्व था, जिसमें कालजयी कृतियां प्रस्तुत कीगयीं, किन्तु कश्मीरीमें साहित्य-रचनाकी सुस्पष्ट परंपरा १४ वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें आरम्भ हुई, जब ललद्यद और शेख नुरुद्दीनके काव्यमें प्रवाहित भक्ति और ज्ञानकी रस-धाराने कश्मीरी जन-जीवनको रस-प्लावित कर दिया।

योगिनी ललद्यदका युग कश्मीरमें हिन्दू राजसत्ता के अवसान एवं मुस्लिम शासनके उन्नयनका युग था। इस कालमें हिन्दू एवं मुस्लिम संस्कृतिके बीच आदान-प्रदानसे जहां कश्मीरीमें एक नयी संस्कृति विकसित हुई, वहीं इस्लाम और वेदांतके मेलसे सूफी विचार धाराके विस्तारकी भूमि तैयार हुई। यह एक प्रकारसे कश्मीरी जन-जीवनमें सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक उथल-पुथलका युग था। ललद्यदके 'वाखों' में अपने समयकी छाप सर्वत्र दिखायी पड़तीहै। वह कहतीहै—"शिव छुय थलि-थलि रोजान/ मो जान ह्योद त मुसलमान/ त्रुक अय छुख त पान परजनाव/ सोय छय साहिबस सत्य जान/ (३९) (थल-थलमें शिव व्याप्त है/ तू हिन्दू और मुसलमानमें भेद न जान। इन्हींमें अपने आपको पहचान/ यह आत्मज्ञान ही साहबसे तेरी पहचान है।) अन्यत्र कवयित्री कहती है कि जबतक मनुष्य बाह्य-विधानोंमें जकड़ा हुआहैं, तभीतक संसारमें भेद-भाव दिखायी देतेहैं। जो बाहरी आवरणोंको त्याग देताहै, वही, अंत:ज्योतिका साक्षात्कार कर पाताहै—"गोरन वोनम कुनुय वचुन/न्यबर दोपनम अन्दर अचुन/ सुय म ललि गोम वाख त वचुन/ तवयह योतुम नंगय नचुन/' (१२) (गुरुजीने कहा तू भीतर क्यों न गयी/ बस बात हृदयको छू गयी और मैं निर्वस्त्र घूमने लगी')।

कवयित्रीने स्थान-स्थानपर कबीरकी भांति परमात्माकी प्राप्तिके नामपर समाजमें प्रचलित बाह्याडम्बरोंपर तीखे आक्रमण कियेहैं। बकरेकी बलि देने वाले पंडितको फटकारती हुई वह कहतीहै—"लज कासी शीत निवारी/ तण जल करी आहार/ यि कम्य वापदीश कोरुय बटा/ अचीतन वटस सचीतन द्युन आहार/' (रे पंडित! जो बकरा तेरी लज्जा ढंकता है, शीतसे तेरी रक्षा करताहै, स्वयं बेचारा मात्र तृण-जलका आहार करताहै, उस चेतन प्राणीको तू अचेतन पत्थरके लिए बलि चढ़ाताहै?") कवयित्रीने स्थान-स्थान पर ऐसे लोगोंको धिक्कारा है जो भूख-प्याससे अपनी देह तो गला देतेहैं, किन्तु दूसरोंके कष्टमें सहायता

---

१. प्रका. : हिन्दी बुक सेंटर, ४/५ बी, आसफअली रोड, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : १५१; डिमा. ९३; मूल्य : १२५.०० रु.।

नहीं करते; जिनकी मुखाकृति लुभावनी, परन्तु हृदय कठोर है। उसके अनुसार ऐसे कार्य बालूकी रस्सी बटने जैसा प्रयास है, जिससे जैसे नाव नहीं बांधी जा सकती, उसी प्रकार परमात्माका साक्षात्कार भी नहीं हो सकता")

योगिनी ललद्यद मौखिक परम्पराकी कवयित्री हैं, जिनके 'वाखों'के सर्वप्रथम संकलनके गंभीर प्रयासका श्रेय ग्रियर्सनको प्राप्त है।

डॉ. रैणाने 'योगिनी ललद्यद' शीर्षकसे अपने संक्षिप्त, किन्तु सारगर्भित तथा तथ्य समर्पित अध्ययन में कवयित्रीके वैयक्तिक जीवन, उसकी पारिवारिक स्थिति, शिक्षा-दीक्षा, प्रचलित किंवदन्तियों आदिके साथ तत्कालीन कश्मीरकी राजनीतिक, सांस्कृतिक स्थितियोंका भी विवरण दियाहै, जो प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्षत: कवयित्रीकी अभिव्यक्त एवं उसके जीवन-दर्शनको प्रभावित करती रहीहैं। ये प्रसंग कवयित्रीके व्यक्तित्व एवं साहित्यको समझनेमें सहायक हैं।

योगिनी ललद्यदके काव्य-संसारमें पहुंचकर कहीं अपरिचयका बोध नहीं होता, ऐसा लगताहै जैसे हम कबीर, नानक और मीराके संसारसे होते हुए गुजर रहेहैं।

योगिनी ललद्यदके पश्चात् लेखकने जिस कवयित्री के काव्यका विवेचन कियाहै, वे हैं—'गीतोंकी रानी हब्बाखातून, जो १६ वीं शताब्दीकी सबसे महत्त्वपूर्ण कवयित्री हैं। लेखकके अनुसार—"यदि धर्म-दर्शन, सदाचारका युग-उपकारी संदेश लेकर ललद्यद हब्बा-खातूनसे पूर्वके युगपर छायी रही, सोलहवीं शतीका सम्पूर्ण कश्मीरी काव्य हब्बाखातूनको सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठापित करताहै।" (२०)। वह ऐसे युगकी कवयित्री है जब कश्मीरके प्रतिष्ठित सुलतान वंशों (शिहाबुद्दीन तथा जैनुलाबद्दीन) का प्रभाव क्षीण हो रहाथा और उनके सामंत सत्तापर हावी होना चाहतेथे। जन-जीवन आर्थिक एवं धार्मिक विश्वासोंके संघर्षोंसे गुजर रहाथा। कला माध्यमोंको तबभी राज्याश्रय प्राप्त था किन्तु विलासी राजाओंके संरक्षण में रहनेके कारण अध्यात्म एवं अलौकिकको साधना पृष्ठभूमिका विषय बन चुकीथी। कश्मीरी गीत-विधा का जन्म ऐसी ही परिस्थितियोंमें हुआ तथा हब्बा खातूनका कवि व्यक्तित्व भी ऐसीही परिस्थितियोंकी देन था। स्वयं उनका वैयक्तिक-जीवन भी असाधारण उतार-चढ़ावसे भरा हुआथा। इस कवयित्रीने अलौकिक जीवनकी उलझनोंमें उलझे बिना प्रेम और विरह की भावनाओंकी मार्मिक अभिव्यक्तिके साथही दैहिक एवं मांसल पिपासाकी भी अभिव्यक्ति प्रदान की। अभिव्यक्तिमें अकृत्रिमता एवं सहजता इस कवयित्री की प्रमुख विशेषता है। इसके कुछ गीतोंके अनुवाद ध्यातव्य हैं—"आ इन अनार-पुष्पोंका आनन्द लेले/ जमीन हूं मैं तेरी/ आवरण तू/ मेरे रहस्योंका। मैं इक व्यंजन/ अतिथि तू मेरा/ प्यारा-सा/ आ, इन अनार पुष्पोंका आनन्द ले ले/" (१) "तीसों सिपा (सिपारा कुरानका एक परिच्छेद) मैंने पढ़ लिये/ लगातार/ शब्दोंमें कहीं मैं अटकी नहीं/ मगर गीत प्रेमका/ कौन पढ़ सका एक बारमें/" (३) "यह यौवन मेरा/ ढलने लगाहै/ टीलोंपर चढ़ाई अब नहीं होती/ ठीकरियां एकत्र करते पैरोंमें छाले पड़े/ नमक छिड़कतेहैं सभी, मुझे संभालो/ मायकेवालो मेरा कष्ट निवारो/" (५)

पुस्तकमें संकलित अंतिम कवयित्री हैं अरणिमाल, जिनका रचना-काल १८ वीं शताब्दीका उत्तरार्ध है। है। कवयित्रीके नामका तात्पर्य है पीले फूलोंकी माला। इनका गीति-संसार भी बिरह-व्यथाकी ऐसी ही उदासीभरी पीताभासे व्याप्त है। हब्बाखातून और अरणिमालके गीतोंपर लेखककी तुलनात्मक टिप्पणी उनकी अभिव्यक्तिकी आत्माको समझनेमें सहायता करतीहै:—"हब्बाखातूनकी कविताका स्वर भी यद्यपि एक प्रकारसे 'पीड़ाजन्य' ही है, किन्तु वह 'पीड़ा' सम्भवत: राजरानीके लुटे वैभवकी पीड़ा है, आनंद भोगके अवसानके बादकी पीड़ा (खलिश) है। अरणिमालकी कविताका स्वर इसके विपरीत, उस कश्मीरी भारतीय नारीकी पीड़ाका स्वर है, जिसमें लुटे वैभव अथवा ऐश्वर्यके प्रति कोई गिला नहीं, गिला है तो अपने प्रियतम, अपने और पति परमेश्वर के हरजाई होनेका है। कवयित्रीकी इस तड़पने और कसकने हब्बाखातूनकी तुलनामें अरणिमालकी कविता को संवेदनाके स्तरपर अधिक मानवीय, संप्रेषणीय तथा विश्वसनीय बनायाहै।" (३०)। कश्मीरी साहित्यके इतिहासकार डॉ. शशि शेखर तोषखानीने अरणिमाल की कविताको—"एक रिसते घावका शाब्दिक रूपांतर" कहा हैं। इस कवयित्रीकी कुछ पंक्तियां ध्यातव्य हैं—"दिल चीरकर उसे दिखाऊंगी/ सूख रहीहूं पत्तेकी ताईं/यह बताऊंगी/बाजूबंद ढीला पड़ रहाहै/ इस

सुन्दरीको भला चैन कहां ?" खिली मैं चमेली ज्यों श्रावणकी / श्रीहत भई अब ज्यों पाली कली-सी /" चरखा विरहिणी स्त्रियोंकी एकांत प्रतीक्षाका सहारा रहाहै। कवयित्रीका एक मार्मिक चरखा-गीत देखिये —"घर्र-घर्र मतकर/यों चरखे मेरे फुलेल मैं मलूंगी/ कीलकोंपर तेरे/नरगिस प्याला लेकर खड़ीहैं/चमेली, मैं दुबारा/खिलूंगी नहीं प्यारे /"

कालावधि, रुचि एवं वैचारिकताकी दृष्टिसे इन तीनों कवयित्रियोंके क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं, किन्तु जो बात इन तीनोंमें समान दीखतीहै वह यह कि ये तीनोंही अपने पारिवारिक जीवनकी विफलता एवं उसके उत्पीड़नकी देन हैं। हां, हब्बाखातूनके जीवनमें उतार-चढ़ाव और विविधता सर्वाधिक है। इस व्यथाका योगिनी ललद्यदमें आध्यात्मिक उदात्तीकरण हुआहै, तो हब्बाखातूनमें उसने लोक-जीवनके उस मधुर संगीतका रूप धारण कियाहै जो जीवनका सत्य अलौकिक अनुभवों में नहीं, इसी जीवनकी उन मांगोंमें देखताहै, जिसकी पिपासाने देह और आत्मा दोनोंके ही पांवोंमें जंजीर डाल दीहै। अरणिमालमें वही उत्पीड़न अनंत प्रतीक्षाके खंडहरोंमें गूंजती दर्दभरी पुकार बनकर व्यक्त हुईहै।

आज हिन्दीको ऐसी कृतियोंकी बहुत आवश्यकता है, जो उसके क्षितिजको अधिकसे अधिक रंग और ऐश्वर्य प्रदान कर सकें। लेखककी यह कृति सराहनीय एवं स्वागत योग्य है।

एक बात : पुस्तकका नामकरण भ्रामक है। 'कश्मीरकी कवयित्रियां' पढ़कर लगताहै कि यहां कश्मीरी साहित्यकी समस्त या अधिकतम कवयित्रियों की कविताओंका विवेचन होगा, किन्तु यहां मात्र तीन ही कवयित्रियोंकी रचनाओंका विवेचन एवं संकलन किया गयाहै। इससे एक धारणा यह भी बनतीहै कि इन तीनोंको छोड़कर कश्मीरी साहित्यमें कोई अन्य कवयित्री ही नहीं—जो गलत है। यहभी अनुमान कियाजा सकताहै कि लेखककी कश्मीरी कवयित्रियों पर पुस्तकमालाका यह पहला पुष्प है। □

निबन्ध

मानवीयता और स्वयंकी पहचान[1]

लेखिका : डॉ. श्रीमती अजरा 'नूर
समीक्षक : डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ

कवयित्री, शायरा, समीक्षक, आंग्लभाषाध्यापिका तथा आंग्ल एवं हिन्दी निबन्धकारके रूपमें डॉ. अजरा नूरने अपना चर्चित स्थान जिस अल्पकालमें बनायाहै, वह वस्तुत: ईर्ष्याकी वस्तु है। सन् १९८६ से १९९३ की सात वर्षीय अल्पावधिमें तड़प (काव्यकृति ८६), द पोयट्री आफ टामस हार्डी (शोध ८८), कसक (काव्यकृति ८९), तबस्सुम-ए-मोनालिसा (ग़जल ९०) दिलकी गहराइयोंसे (काव्यकृति ९२) के बाद यह निबन्धात्मक कृति जो उनके मुक्त चिन्तनपरक बाल मनोविज्ञानसे सम्बन्धित लेखोंका संचयन है।

डॉ. अज़रा नूरने इस निबन्ध संकलनमें अपने सत्ताईस लेख सम्मिलित करते हुए बालक बालिकाओं में चिन्तनपरक विवेकके विकासपर बल दियाहै तथा आजके बदलते जीवन-मूल्योंको ध्यानमें रखकर बालक की बुद्धिके साथ-साथ उसकी भावनाओंके विकास तथा अपने कार्यानुभवकी प्राप्ति (अपनी बात पृष्ठ ६) को सकारात्मक माना है। यही कारण है कि बालक-बालिकाओंकी औपचारिक शिक्षणके रूपमें अपने सिद्धान्त प्रतिपादनके स्थानपर जीवनपर्यन्त काम आनेवाले प्रेरक तत्त्वों एवं आन्तरिक मानवीय भावनाओंपर बल देकर बालक-बालिकाओंके सर्वांगीण विकास हेतु इस कृतिका प्रणयन सार्थक कहा जा सकताहै। लीकसे हटकर, नितान्त प्राध्यापकीय अनुचिन्तनसे मुक्त बाल मनोविज्ञानके संस्पर्शोंसे गृहीत संवेदनशील हार्दिकता एवं प्रबुद्ध चिन्तनशीलताका समाहार अत्यन्त उत्साह-वर्द्धक है।

वर्तमान वैज्ञानिक एवं औद्योगीकृत विकाससे

---

१ प्रका. : जिरो प्रकाशन, सी-१७७ महावीर मार्ग, मालवीय नगर, जयपुर ३०२०१७। पृष्ठ : ८४; डिमा. ९३; मूल्य : ६५.०० रु.।

समन्वित जीवन पद्धतिमें परिवर्तित जीवन मूल्यों एवं दृष्टियोंका जो विस्तार हो गयाहै, उनके सन्दर्भमें आज यह कृति ऐसे संवेदनशील चिन्तकके वैचारिक परन्तु व्यावहारिक तथा सोद्देशीय उद्गारोंके सार्थक अनुशीलन करनेकी प्रेरणा जगातीहै जो बालक-बालिकाओं के निरुद्देश्य शिक्षा और तज्जन्य हताशाके स्थानपर उनमें शिक्षाकी सोद्देश्यता, कर्मकी पूजा, समयोचित स्वाध्याय पुस्तकोंके प्रति अभिरुचि, वाणीकी उपादेय भूमिकाके साथ संयम, सच्चरित्रता, स्नेहयुक्त सद्भाव के वातावरणमें स्वाभिमान तथा अहंकारयुक्त अभिमानका अन्तर समझाकर 'मानवीयता' तक अपनी पहचानका संकेत लिये हुएहै।

डॉ. अंजरा नूरका प्रयास स्तुत्य है तथा प्रारंभिक एवं माध्यमिक शिक्षा (किशोरोंके निमित्त भी) के क्षेत्रमें कार्यरत प्रबुद्ध साथियोंके मनन योग्य सामग्रीसे युक्त यह कृति अपनी पहचान बनाये जानेके लिए स्वशिक्षा, स्वानुशासन, स्वाभिमान, अहिंसावृत्ति युक्त विभिन्न पड़ावों (निबन्धों)से मार्ग तय करती हुई मानवीयताकी उस मंजिल (लक्ष्य) तक ले जातीहै जहां प्रेम, दया, क्षमा, दान एवं परोपकार जैसे गुणों या जीवनमूल्योंकी संस्कारशीलता व्यक्ति हृदयमें सम्यक् व्यवहारका अनुशीलन करनेके लिए अंतश्चेतना जगानेका कार्य करतीहै। आलोच्य कृतिका समारम्भ जीवनकी प्रथम आवश्यकता—शिक्षासे होताहै और निबन्धात्मक पड़ावोंके विभिन्न विश्रामस्थलों कर्महीपूजा (पृ. १२) स्वाभिमान और अभिमान (पृ, ३३), स्वयंकी पहचान (पृष्ठ ४२) सच्चरित्रता (पृ. ४७) अभ्यास की आदत (पृ. ५०) ढाई आखर प्रेमका (पृ. ६२) स्वतन्त्रताका उपयोग (पृ. ६७) जैसे साहसिक कदम बढ़ाते हुए मानवीयताके चिन्तनसे जुड़ी ऐसी सफल कृति है जो बाल मनोविज्ञानसे संस्पर्श पाकर आजके इस शैक्षिक संक्रान्तिकालीन चिन्तन दिशाको नया मोड़ दे सकतीहै। आजका वैज्ञानिक युग तर्क और प्रयोगपर बल देताहै पर यहां लेखिका जिस तर्ककी सृष्टि करतीहै, वह है बालक बालिकाओं में मातापिताके परिवेशमें सरक्षित संस्कारशीलताकी वह शीतल शमनकारी चेतना जो अनुशासनहीनको आत्मानुशासन (पृ. ३६) का पाठ सिखातीहै।

आधुनिक वैज्ञानिक विकासके साथ मनोविज्ञान जिस पाश्चात्य वैचारिकताकी देन है, उसे सहजही स्वीकार कर उनके साथ भारतीय मनीषामें उसके आधुनिक सन्दर्भका अभाव लक्षित किया जा सकताहै, परन्तु जिस चित्तका अनुशीलन हमें (भारतीयोंको) मनसा-वाचा-कर्मणा अपने कर्त्तव्य कर्मके लिए सदैव प्रेरणा एवं दिशा दिग्दर्शन कराता रहाहै, वही जीवन मूल्योंका निर्धारक है और आजके परिवर्तित समयमें परिवर्तित जीवन मूल्योंकी चिन्ता करते हुए अजरा नूर मात्र प्राध्यापकीय भूमिका ग्रहण नहीं करती और न सिद्धान्त प्रवर्त्तक ही बनतीहै, पर जीवनानुभवोंकी निकषपर व्यावहारिकतामें गृहीत स्वहित रहित, निस्वार्थ, परमार्थिक, स्वाध्यायशील, चाटुकारिता मुक्त आत्मप्रशंसारहित, कर्मयुक्त जीवनशैलीमें ईमानदारीसे अर्जित धन एवं यशके उपभोगको स्वाभिमान बतलाकर युवाचेतनाको बार-बार इंगित करतीहैं कि भारतीय चिन्तन सर्वोपरि अहिंसात्मक चेतनाका परिष्कृत रूप है। इसलिए तो स्वनियन्त्रणके लिए किसी आयु विशेषका निर्धारण नहीं कियाजा सकता और न उसके लिए पाठशालाएं खोली जानीहै अपितु सदाशयतासे अपनी पहचानसे ही स्वनियन्त्रित होकर अपने दायित्व पूर्ण करनेकी प्रवृत्तिही आत्मानुशासन है तो जीवनमें नवचेतनाका विस्तार हो सकताहै।

डॉ. अजरा नूरकी सर्वाधिक सम्प्रेषणीय वृत्ति यही है कि वे अपनी बात बड़ी सहजतासे कहतीहैं, सिद्धान्त प्रतिपादनकर आचार्यत्व प्राप्त नहीं करना चाहती। इन सत्ताईस लेखोंमें वे अपने विचारोंका आरोपण न करके प्रस्तुत विषयके अन्तर्गत ही अपने वैचारिक चिन्तनका प्रस्फुटन इस प्रकार करतीहै कि सभी कुछ व्यावहारिक स्पर्शसे मण्डित हो जाताहै। यह कृति एक दिशादर्शकका कार्य करतीहै जिससे बालकोंको उनकी अभिरुचिके अनुसार कुछ हद तक स्वतन्त्रतापूर्वक, स्वानुशासित होकर, अपनी पहचान बनानेके निमित्त घूमने-फिरने, विचार करने एवं सक्रिय रहनेके अवसर प्रदान करनेकी प्रेरणा देतीहै।

पुस्तक द्विरंगी आवरणसे युक्त एवं सुन्दर मुद्रण लिये हुए है। कहीं-कहीं प्रूफकी अशुद्धियां हैं।□

राम बिना सूनी मोरी अयोध्या?

लेखक : डॉ. भगवानशरण भारद्वाज
समीक्षक : डॉ. रामानन्द शर्मा

'राम बिना सूनी मोरी अयोध्या' स्फुट निबन्धोंका संग्रह है। पुस्तकके शीर्षकसे यह भ्रान्ति हो सकतीहै कि यह किसी रामभक्तका धार्मिक प्रयास है, पर ये हैं निबन्ध। कुल पन्द्रह निबन्ध संगृहीत हैं जिनमें पहले आठ भक्तिकाल काव्य, विशेषत: सूर और तुलसी तथा उनके काव्यपर केन्द्रित हैं और अन्तिम सात पुस्तक-समीक्षाएँ हैं।

भक्तिकाव्यसे 'राम बिना सूनी मोरी अयोध्या', 'देख लो साकेत नगरी है यहां', 'भारतीय अस्मिताके वैतालिक तुलसीदास' और 'रामचरितमानसमें विवेक और साम्ययोगका सम्बन्ध गोस्वामी तुलसीदास और उनकी महनीय कृति 'रामचरितमानस' से है तो 'सूर काव्यमें रास' का सूरदाससे। 'ब्रजरज तज छिन अनत न जाऊं' तथा वैष्णव वार्ता साहित्यकी अन्तभूमि' का सम्बन्ध भी वैष्णव-साहित्यसे है। निबन्धोंसे यह स्पष्ट है कि लेखकका अभिव्यक्ति विधानपर सशक्त अधिकार है, अपने विषयपर अधिकार है। फिरभी धार्मिक या साहित्यिक दृष्टिसे वह विषयके तलस्पर्शी विवेचनमें नहीं उतरा है। उदाहरणार्थ 'भारतीय अस्मिताके वैतालिक तुलसीदास' निबन्धमें गोस्वामीजी की सांस्कृतिक गरिमाकी अभिव्यक्तिकी तुलनामें विभिन्न संस्कृत-हिन्दी कवियोंसे सामान्य तुलना-सी है जो गोस्वामीजीके सांस्कृतिक महत्त्वको स्पष्ट करने उनकी गौरवगाथाको व्यक्त करने और उन्हें असाधारण या विश्वकवि सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं है। जिन कवियोंको तुलनाके लिए चुना गयाहै उनमें बाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, प्रसन्नराघवकार जयदेव ही नहीं, सन्तकवि, रीतिकवि, छायावादी कवि, प्रगतिवादी, रहस्यवादी सभी इसमें सम्मिलित है। तुलनाका स्वरूप है : "तुलसी छायावादी कवियोंकी तरह निजी मर्मोच्छ्वासोंमें डूबकर नहीं रह गये और न द्विवेदीयुगीन कवियोंके समान नीरस इतिवृत्तात्मक तुकबंदियोंका अम्बार ही लगाते रह गये। × × प्रगतिवादी कविके समान तुलसी मानवके प्रति कोरी बौद्धिक सहानुभूति नहीं दिखाते वरन् उनके जीवनके संघर्षको अपना संघर्ष बनाकर जूझतेहैं। × × रहस्यवादी कविकी भांति अध्यात्मकी ओट लेकर उन्होंने लोकसे पलायन नहीं कियाहै और प्रगतिवादीकी भांति उन्होंने आर्थिक तथा भौतिक संकल्पनाओं और प्रत्ययोंको ही सम्पूर्ण जीवन मानकर अध्यात्मका अन्तर्विरोध, वक्तव्यवादिता और नारेबाजी नहीं कीहै।" (पृ. २०)। इस तुलनामें लेखक गोस्वामीजीके उदात्त पक्षोंको उद्घाटित नहीं कर रहाहै, बल्कि अन्य कवियोंके अनुदात्त पक्षोंपर प्रकाश डाल रहाहै, जिससे गोस्वामीजीकी गरिमामय छवि नहीं उभर पाती। कहीं-कहीं उनके निष्कर्ष अत्यन्त सटीक और सराहनीय हैं : "हमारे साम्प्रतिक जीवनके क्षणजीवी होनेका कारण यह है कि उसकी जड़ संस्कृतिमें नहीं, मनुष्य-जातिकी अबतक की जीवन-साधनाको वह निरर्थक मानताहै और हठपूर्वक उससे अपनी विच्छिन्नताकी दम्भभरी घोषणा करताहै।" (पृ. २०)।

पुस्तकके अन्तिम छ: निबन्ध बनारसीदास कृत 'अर्धकथा', रामप्रसाद बिस्मिल कृत 'आत्मकथा', प्रेमचन्द कृत 'आत्मकथा' भगवतीचरण वर्मा कृत 'अपनी कहानी' तथा चतुरसेन शास्त्री कृत 'यादोंकी परछाइयां' पर लिखे गये समीक्षात्मक निबन्ध हैं। अन्तिम निबन्ध 'स्वयं युगधर्मकी हुंकार हूं मैं' स्वर्गीय रामधारी सिंह 'दिनकर' की राष्ट्रीयतापर लिखा गया है। पुस्तकके दीर्घतम निबन्ध 'हिन्दी संस्मरणकी विकास-यात्रा' का विषय शीर्षकसे ही स्पष्ट है।

ऐसा प्रतीत होताहै कि लेखक शक्ति सम्पन्न होकर भी तल्लीनता और तलस्पर्शी विवेचनामें नहीं उतरा है। 'आमुख' में अपने कृतित्वकी भव्य झांकी प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट कियाहै : "किसीको यह शिकायत हो कि लेखकके कुटीरमें फरमाइशी नगोंके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है तो उससे सहमत होनेके अलावा कोई चारा नहीं। यदि इस भावभवचक्रमें भोले आग्रहकर्ता न मिले होते तो आप कह सकतेहैं कि यह कुटिया नितान्त सूनेपनसे सजी होती।" यही कहना पर्याप्त है कि 'सामन्तोंकी मुख-भंगिमा, झूठी प्रसन्नता और पीड़ा' का गान करनेवाले रीति कवियोंके कटु आलोचक स्वयं भी उसीमें उलझ गयेहैं। इस क्षमताशील लेखकसे यही निवेदन है कि आग्रहपर लिखे गये निबन्धोंसे नहीं, अध्ययन-चिन्तन-मननसे सम्पन्न स्वान्त:सुखाय लिखे गये निबन्धोंसे ही साहित्यको गति मिलेगी। □

सर्जक-समीक्षक डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया[1]

सम्पादक : डॉ. देवराज पथिक

समीक्षक : डॉ. चन्द्रप्रकाश आर्य

डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार हैं। उन्होंने समीक्षाके क्षेत्रमें नवीन मान-दण्डोंकी स्थापनाकीहै, साथही वे एक संवेदनशील कवि तथा कुशल सम्पादक भी है। समीक्ष्य कृति उनकी पचासवीं वर्षगांठपर प्रकाशित हुईहै। इसमें उनके व्यक्तित्व और कृतित्वपर विभिन्न विद्वानोंके लेख संकलित हैं। पुस्तककी सामग्री तीन खंडोंमें विभक्त है—१. व्यक्तित्वकी छवियाँ, २. काव्यसर्जनाके आयाम तथा ३. शोध समीक्षा एवं सम्पादन।

प्रथम खंड 'व्यक्तित्वकी छवियां' में नौ लेख है, जिनमें डा. कथूरियाके बहुआयामी व्यक्तित्वपर प्रकाश डाला गयाहै। इस खंडके लेखकोंमें कथूरियाजीके गुरुजनोंसे लेकर शिष्य वर्ग तक सम्मिलित है। इन लेखोंसे पता लगताहै कि कथूरियाजी अत्यधिक अध्यवसायी, परिश्रमी, निष्ठावान् तथा जुझारु व्यक्तित्व के धनी हैं। अपने गुरुजनोंके प्रति सम्मान रखते हुएभी वे अपने स्वतन्त्र विचार प्रकट करते रहेहैं।

सर्जकके रूपमें कथूरियाजीकी दो काव्य कृतियां हैं —'व्यूहसे जूझता अभिमन्यु' तथा 'वक्तकी परछाइयां। पुस्तकके द्वितीय खंडमें नौ लेखोंके माध्यमसे इनका मूल्यांकन विवेचन किया गयाहै।' व्यूहसे जूझता अभिमन्यु'के सम्बन्धमें डॉ. पुष्पपाल सिंह का कथन है—"यद्यपि शीर्षक देखकर लगताहै कि यह कविता पुस्तक भी संघर्षरत सामान्य आदमीकी जिन्दगीकी तस्वीर पेश करती होगी, जिसमें अभिमन्यु (सामान्य जन) व्यवस्थासे लड़ते-लड़ते शेषहो जाता होगा किन्तु इस काव्य-संग्रहका मूल स्वर इससे हटकर बड़ा आस्थावान् एवं सामान्य मानवके लिए नवजीवनका संदेश लेकर आताहै।"

डॉ. कथूरियाके 'वक्तकी परछाइयां' काव्य-संग्रह पर डा. दयाकृष्ण बिजयका मन्तव्य इस प्रकार है "वक्त की परछाइयां" एक ऐसा दस्तावेज है, जिसमें हमें डा. कथूरियाकी राजनीतिक सोचको समझनेका अवसर मिलताहैं। × × उनकी कविताएं कोरी राज-नीतिक न होकर स्वस्थ समाजके निर्माणकी भावपूर्ण राजनीतिको संजोयेहैं।"

तृतीय खंड 'शोध-समीक्षा एवं सम्पादन' में तेरह लेख हैं। डॉ. कथूरियाके शोध तथा समीक्षा कार्यका मूल्यांकन किया गयाहै। शोध एवं समीक्षाके क्षेत्रमें डॉ. कथूरियाकी विशिष्ट देन रसविषयक विवेचन है। इस विषयसे सम्बद्ध उनकी सात कृतियां प्रकाशित हो चुकीहैं—१. रस-सिद्धान्त : आक्षेप और समाधान २. नई कविता और रस-सिद्धान्त ३. रस संख्या : काव्यशास्त्रीय विश्लेषण ४. आधुनिक युगमें नवीन रसोंकी परिकल्पना ५. प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक : आस्वादके धरातल ६. प्रसादोत्तर स्वातन्त्र्य-पूर्व हिन्दी नाटक ७. रस-सिद्धान्त और नाटक साहित्य शास्त्रके मान्य विद्वानोंने इनपर गम्भीरतापूर्वक विचार कियाहै।

'रस संख्या : काव्यशास्त्रीय विश्लेषण' डॉ. कथूरिया का पी-एच.डी. हेतु स्वीकृत शोध-प्रबन्ध है। इसमें उन्होंने भरत मुनि द्वारा निर्दिष्ट आठ रसोंके स्वरूप एवं रसत्वको प्रकट करते हुए शान्त, प्रेयान्, वत्सल, भक्ति कार्पण्य, प्रकृति और देश-भक्ति जैसे रसोंकी स्थापना कीहै। साथही हिन्दी-काव्यशास्त्रियों द्वारा विवेचित

---

१. प्रका. : एकता प्रकाशन, बी-२/बी-३४, जनकपुरी, नयी दिल्ली-५८। पृष्ठ : ११६; डिमा. ९२; मूल्य : ५०.०० रु.।

श्रद्धा, स्नेह, लौल्य, मृगया, अक्ष, उद्धत, व्यसन, व्रीडनक, माया, कार्पण्य, चित्त आदिके रसत्वपर विचार करके उन्हें अस्वीकार करनेवाले मतोंको प्रमाणोंसे पुष्ट करते हुए कार्पण्यको स्वतन्त्र रस-रूपमें प्रतिष्ठित कियाहै। इसी प्रकार उनका विचार है कि "नयी कविताका मूल्यांकन करते समय प्रथित नव रसोंके साथ वत्सल, भक्ति, प्रेयान् (सख्य) प्रकृति, देशभक्ति और कार्पण्य रसोंको भी ध्यानमें रखना चाहिये।" प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक : आस्वादके धरातलमें जहां शताधिक नाट्य कृतियोंका अध्ययन, परीक्षण तथा मूल्यांकन किया गयाहै, वहां समकालीन चिन्तकोंके चिन्तन-मननके परिप्रेक्ष्यमे रसकी पुनर्स्थापनाका भी उल्लेखनीय प्रयास किया गयाहै। 'हिन्दी कविता : अद्यतन भूमिका'में 'अन्धायुग' तथा 'संशयकी एक रात' आदि चर्चित कृतियोंके साथ साठोत्तर ऐसे कवियोंकी चर्चा है जो लगभग गुमनाम थे या शिविरबद्धताके कारण अन्धेरे कोनेमें पटक दिये गयेथे।

डॉ. कथूरिया द्वारा सम्पादित समीक्षात्मक कृतियोंमें 'आधुनिक साहित्य : विविध परिदृश्य' तथा 'नाटककार मोहन राकेश' उल्लेखनीय हैं। उन्होंने 'समवेत' तथा 'टेढ़ी मेड़ी सीढ़ियाँ' (कविता-संग्रह) का भी सम्पादन कियाहै। पुस्तकके अन्तमें 'बहुविध सम्पादन-सामर्थ्य' (डॉ. ओम्प्रकाश शर्मा) लेखमें इन पर प्रकाश डाला गयाहै।

समीक्ष्य पुस्तकमें डॉ. सुन्दरलाल कथूरियाके बहुविध कृतित्वपर सविस्तार प्रकाश डाला गयाहै। उनके महत् कार्यको देखते हुए यह प्रयास प्रशंसाई है। प्रतिभाशाली लेखकोंको इस प्रकारका सम्मान मिलना ही चाहिये।

तिलकराज गोस्वामीका साहित्यिक परिदृश्य[1]

सम्पादक : कृष्णेश्वर डींगर
समीक्षक : डॉ. मान्धाता राय

पांच भाषाओंके ज्ञाता एवं बाईस पुस्तकोंके प्रणेता कवि-कथाकार तिलकराज गोस्वामीकी सम्पूर्ण रचनाओंपर यशस्वी आलोचकोंकी टिप्पणियों एवं समीक्षाओंका संकलन इस पुस्तकमें किया गयाहै। पुस्तकके चार भाग किये गयेहैं—काव्यजगत्, उपन्यास जगत्, कहानी जगत् तथा निबन्ध संस्मरण आदि। इनमें से अनेक आलेख 'प्रकर' एवं अन्य पत्रिकाओंमें प्रकाशित समीक्षाओंके रूपमें हैं। कुछ लघु टिप्पणियां एवं पत्र हैं, शेष स्वतन्त्र मूल्यांकन।

तिलकराज गोस्वामीके तीन काव्य संग्रहों—सूरज की शहादत, आह्वान आगका और इतिहास रचते हाथका मूल्यांकन किया गयाहै। आलोचकोंका विचार है कि किसी वादसे न जुड़नेके कारण श्री गोस्वामीकी कविताएं अपनी धरती, समाज और मानवीय चिन्ताओं से अनुप्राणित हैं। विषयवस्तु, सौन्दर्यबोध, शब्दों और भावनाओंके सन्तुलनके कारण कविताएं पाठकोंको उल्लास व आशापूर्ण पथकी ओर बढ़नेकी प्रेरणा देती हैं। 'सूरजकी शहादत' संग्रहकी कविताओंमें देश प्रेम मानवीयता, सांस्कृतिक व सामाजिक मूल्योंकी रक्षा और उनकी प्रतिष्ठाका भाव है। प्रकृतिके मोहक दृश्यों का वर्णन भी कविने यथास्थान कियाहै। सहजता और सादगी इनकी उपलब्धि है। सरल हिन्दीमें लिखी होनेके कारण इनमें कहीं उलझाव नहीं है। दूसरे संग्रह 'आह्वान आगका' की कविताएं मानवीयता, मानवकल्याण और देशप्रेमपर आधारित हैं—

> जो मानव कल्याण हेतु अनेक रूप धारण करतीहै
> मैं आवाहन करताहूं उसी आगका।

'इतिहास रचते हाथ' शीर्षक तीसरे संग्रहकी कविताएं निष्क्रियतापर सक्रियता, भाग्यवादपर कर्मठता और निष्क्रियतापर जीवन्तताका अभिषेक करतीहै। कविने कर्म करनेका आवाहन कियाहैं।

डॉ. कृपाशंकर पाण्डेयने श्री गोस्वामीकी कविताओं में नयी कविताके तत्वोंकी छानबीन कीहै। उनका कहनाहै कि उनका रचनात्मक व्यक्तित्व एक ओर राष्ट्रीय भावधारासे अनुप्राणित है तो उसका दूसरा पक्ष मेहनतकश लोगोंके प्रति आस्थावान् है (पृ. २५)। प्रकारान्तरसे उन्हें प्रगतिशील चेतनाका कवि बताया गयाहै। नगरीय संस्कृतिकी विसंगतियोंके साथ साथ उदार मानवतावादी दृष्टिकोण उनकी कविताकी उपलब्धियां है। आलोचकने उन्हें आठवें और नवें दशक का प्रमुख कवि बतायाहै। इस सम्बन्धमें स्वयं श्री

[1] प्रका. : साहित्य संगम, लूकरगंज, इलाहाबाद। पृष्ठ : १३१; डिमा. ९०; मूल्य : ६०.०० रु.।

गोस्वामीका अभिमत है कि 'वर्तमान कविता अपनी पुरानी लीकको छोड़कर सामग्रिक संदर्भों व आजके कटु यथार्थसे पूरी तरह जुड़कर प्रस्तुत हो रहीहै··· समकालीन हालात व मानसिकताको दर्शानेमें कविता और वह भी विशेष रूपसे नयी कविता अपेक्षाकृत अधिक समर्थ सिद्ध हो रहीहै।' (पृष्ठ ४०)।

दूसरे खण्डमें गोस्वामीजीके आठ उपन्यासों—चन्दन माटी, जहां रोशनी है, महाराज रणजीतसिंह, उजली पीली धूप, अपना अपना आकाश, मर्यादा, समयान्तर, कुहरा और सूरजमुखीका मूल्यांकन किया गयाहै। गोस्वामीजी मूलत: पंजाबकी मिट्टीसे जुड़े रचनाकार हैं अत: इनके उपन्यासोंमें उसकी झलक किसी न किसी रूपमें आयीहै। 'चन्दन माटी' हिन्दू-सिख एकतापर आधारित उपन्यास है। स्वतंत्रताके पश्चात् एक गांव के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवनको अनेक युवाओं के प्रेम प्रसंगोंके सहारे प्रस्तुत किया गयाहै। इसमें परम्पराओंका निर्वाह और रूढ़ियोंपर प्रहारका समानान्तर चित्रण प्रस्तुतकर उपन्यासको समकालीन बनाया गयाहै।

नवीनतम उपन्यास 'जहां रोशनी है' में स्वतंत्रता आंदोलनसे लेकर, आतंक, अलगाववाद तकके अंतराल को समेटा गयाहै। स्वतंत्रता आन्दोलनको हिन्दू-सिख दोनोंने मिलकर चलायाथा। आजादीके बाद आये इस अंतरके बारेमें लेखकने अपना दृष्टिकोण कथानायक कुलदीपके माध्यमसे प्रस्तुत कियाहै 'मैं तो सिख धर्मको हिन्दू धर्मका ही एक अंग मानताहूं। ··गुरुवाणी और गीता-रामायणमें मुझे कोई अंतर नजर नहीं आता?' उपन्यासके अंतमें हिन्दू युवक और सिख युवतीका विवाह सम्पन्न कराकर इस एकताको व्यावहारिक रूप दिया गयाहै। कथाकारका मन्तव्य है कि धार्मिक एवं जातिगत रूढ़ियोंकी जकड़बंदीको शिक्षित युवा पीढ़ी तोड़कर देशके समक्ष मुंह बाये हिंसा और नफरतके माहौलको समाप्त करके सबको एकताके सूत्रमें बांध सकतीहै। किन्तु इस अन्तर्जातीय विवाहसे समाजको कोई नयी दिशा कथाकार नहीं दे पायाहै। उन्हें प्रेमिका को पानेके लिए कुलजीतको मजबूरीमें सिख धर्ममें दीक्षित होना पड़ताहै जिसे उसके क्रान्तिकारी पिता न चाहते हुए भी असहाय होकर देखतेहैं। वस्तुत: यह कठमुल्लापनके सामने समर्पण है। कथाकारने उसे महान् नायक बनानेकी अपेक्षा हीर-रांझा बनायाहै। 'मर्यादा' उपन्यास इसी चटक प्रेमकी गलियोंसे निकलकर अचानक नैतिक मूल्योंकी ओर मुड़ गयाहै।

'महाराज रणजीतसिंह' एक चरित्र प्रधान उपन्यास है जिसके माध्यमसे देशवासियों विशेष रूपसे युवकोंको अपनी सांस्कृतिक थातीका स्मरण दिलाकर आदर्शके लिए प्रेरित किया गयाहै। रोमांसका चित्रण भारतीय उपन्यासकारोंका एक कमजोर बिन्दु है। तिलकराज गोस्वामीके उपन्यास तो इससे भरे हैं। यहांतक कि महाराज रणजीत वीर पुरुषके जीवनका चित्रण करते समय भी स्थान निकालकर नर्तकी मेहरा से उनके प्रेम प्रसंगोंका चित्रण है। पता नहीं, इससे किस महत् उद्देश्यकी पूर्ति हुईहै?

'अपना-अपना आकाश' में स्वतंत्रताके पूर्व स्थापित मूल्यों और आदर्शोंके साथ-साथ स्वतंत्रताके बादके दूषित वातावरण, मूल्यहीनता और मोहभंगकी स्थिति को बेबाक ढंगसे प्रस्तुत किया गयाहै। (पृ. ५६)। 'उजली पीली धूप' को डॉ. निजामुद्दीनने प्रगतिशील विचारोंका प्रेरक उपन्यास बतायाहै। (पृष्ठ ५१)। किन्तु वेश्या हो जानेपर भी अपनी प्रेमिकासे विवाह करने प्रगतिशील बने प्रेमनाथ अपनी कन्याका विवाह प्रेमी राकेशसे न करके धनके लोभमें बूढ़े सेठ बांकेमल से करके किस प्रगतिशीलता और संघर्षका परिचय देते हैं! यही नहीं राकेश इंजीनियर होनेपर भी अपनी क्षय रोग ग्रस्त विधवा प्रेयसी रजनीके लिए क्वांरा बैठा रहताहै और उसे इलाज तथा घुमानेके नामपर अपनी गाढ़ी कमाई खर्च करताहै। यह इसी उपन्यास में संभव है। उसकी बहन निशि सूबेदारकी विधवा होकर भी पढ़ते समय स्कूलके सेक्रेटरीके लड़के प्रदीप का हाथ पकड़कर फिल्म जगत्में पहुंच जातीहै। कथाकारने इसमें यह स्थापित करनेकी चेष्टा कीहै 'नसीब या भाग्य कोई कहींसे लेकर नहीं पैदा होता। आदमी स्वयं अपने भाग्यका निर्माता है। वह अपने परिश्रमसे अपने जीवनके प्रति दृष्टिकोणसे भाग्यको बदल सकता है।' (पृष्ठ ६१)। निशिके रूपमें यह सफलता मिलती भी है किन्तु अतिशय रूमानियत और घटनाओंकी उड़न छू विश्वसनीयतापर प्रश्न चिह्न लगातेहैं।

पुस्तकका तीसरा भाग कहानियोंसे सम्बन्धित है। हिन्दीमें उनके तीन कहानी संग्रह हैं—नया सवेरा, अपना घर अपने लोग तथा अन्तरालके बाद। अन्धेरा उजाला (उर्दू) तथा कौण चंगा कौण मंदा (पंजाबी)

दो अन्य संग्रह हैं। 'नया सवेरा' में बाईस कहानियां संगृहीत हैं। अधिकांश कहानियां मध्यवर्गीय जीवनके विविध आयामोंको आधार बनाकर लिखी गयीहैं। उनके पात्र समाजसेबी एवं आदर्श विचारोंके हैं। 'अपना घर अपने लोग' में हिन्दीके अतिरिक्त पंजाबी और उर्दूकी भी कहानियां हैं। इन कहानियोंमें लेखकके गहरे जीवनानुभवकी अभिव्यक्ति हुईहै। उनके पात्र घुटन, त्रास और बेचारगीमें जीनेकी अपेक्षा भावनात्मक संतुलनका रास्ता ढूंढ़ लेतेहैं। पात्रोंका नैतिक विवेक, दाम्पत्य जीवनमें भावनात्मक संबंधोंकी नित्य-प्रति उठनेवाली दरारको स्वयंही पाट देताहै। अठारह कहानियोंके इस संग्रहकी कहानियोंमें आधुनिक जीवन की विसंगतियोंसे बाहर निकलनेका वैयक्तिक प्रयास स्पष्ट दिखायी देताहै। 'कौण चंगा कौण मंदा' पंजाबी में लिखित तेरह कहानियोंका संग्रह है। इसमें चरित्र प्रधान कहानियां संकलित की गयीहैं। पारिवारिक जीवनसे जुड़ी इन कहानियोंमें स्थितिके अनुरूप पात्रों और घटनाओंका संयोजन किया गयाहै। 'अंधेरा उजाला' शीर्षक उर्दू कहानी संग्रहमें आजकी सामाजिक समस्याओंको अभिव्यक्ति मिलीहै।

चौथे भागमें निबन्ध संग्रह है—'इतिहास गवाह है,' पाश्च संस्मरण—'दिन यहां रात वहां', आलोचना—'महान साहित्यकार भाई वीरसिंह', बाल साहित्य-'वतनकी राहमें' व देशरत्न तथा 'डोगरीके महान् साहित्य-साधक देवीदत्त भडवाल' का अंग्रेजीमें अनुवाद की समीक्षाके साथही एक पत्र और साक्षात्कार भी दिया गयाहै। श्री उपेन्द्रनाथ अश्कके सात पत्रोंको भी प्रकाशित किया गयाहै। 'दिन यहां रात वहां' के बारे में श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदीने लिखाहै 'लोक मानसको धरतीसे आकाश तक जोड़ाहै। (पृष्ठ १०७)। शेष लेखोंका संबंध भी प्रशंसासे अधिक है तटस्थ मूल्यांकन नहीं के बराबर है। मूल्यांकनकी दृष्टिसे दो-एक निबन्धोंको निकाल दिया जाये तो इस भागको संकलित करनेका कोई औचित्य नहीं है। चौथे भागका संग्रहमें जुड़ना इस बातका संकेत है कि इस संग्रहको तैयार करानेमें परोक्ष रूपसे लेखककी भूमिका है। पुस्तकका कापी राइट 'पंकज गोस्वामी' के नाम है।

पुस्तक रचनांकनके बहुआयामी कृतित्वसे पाठकों का समग्र परिचय करातीहै किन्तु एकही कृतिपर दो-तीन समीक्षाओंको देनेसे पुनरावृत्ति हुईहै। यही पुस्तक की उपलब्धि और सीमा है। कुछ समीक्षाएं उत्कृष्ट हैं, कुछमें यशोगान मात्र हुआहैं। काव्य संग्रहोंपर प्रकाशित समीक्षाएं अधिक मूल्यवान् हैं। □

भाषा विज्ञान : चिन्तन एवं दिशाएं

ऐतिहासिक भाषा विज्ञान और भारतका भूगोल [१–उत्तरांश]

[डॉ. रामविलास शर्माका भाषा-चिन्तन]

आर्यभाषा केन्द्र और हिन्दी जनपद

हिन्दी भाषाका इतिहास आर्यभाषाओंके इतिहाससे सम्बद्ध है। उसके निर्माणमें बांगरू, ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मगही तथा मैथिली ही नहीं अपितु पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, बंगला आदि आधुनिक भाषाओंका भी योगदान है। सिंधी तथा काश्मीरी भाषाओंको भी इसी परिप्रेक्ष्यमें समझने की आवश्यकता है। इन अलग अलग जनपदीय

भाषाओंके ध्वनितंत्र, शब्दतंत्र तथा रूपतंत्रका स्वतंत्र रूपसे विचार किया गयाहै और उनके आपसी सम्बन्धों को बताया गयाहै ।

हिन्दीकी बोलियोंका इतिहास अलग-अलग रूपमें तो मिलताहै किन्तु उन सबको जोड़कर एक-दूसरेके परिप्रेक्ष्यमें ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करनेका काम डॉ. रामविलास शर्माने ही इस पुस्तकमें प्रथमतः कियाहै ।

भाषाविज्ञानके विद्वानोंसे और विशेष रूपसे विश्वविद्यालयोंमें प्रशिक्षित विद्वानोंसे डॉ. रामविलास शर्मा सहमत नहीं हैं । वे उनके सिद्धान्तोंसे सहमत नहीं है, किन्तु उन्होंने जो कार्य कियाहै, उसका उपयोग उन्होंने अपने लेखनमें कियाहै । उन्हींके उद्धरण देकर, और उनके द्वारा प्रस्तुत तथ्योंके विवरणको देते हुए डॉ. रामविलास शर्मा अपनी बात कहतेहैं । मूल बात यह है कि चिन्तनमें अन्तर है । अन्य विद्वानोंकी सामग्रीका उपयोग अपने चिन्तनके अनुरूप कियाहै ।

जैसेकि पहले ही कहाहै और इसे फिर दोहरा रहाहूं । आचार्य किशोरीदास वाजपेयीका स्थान-स्थान पर समर्थन कियाहै । उन्हींके बलपर कहा गयाहै कि वेदोंसे पहले बहुत साहित्य रचा गया होगा, जो अब नष्ट हो गयाहै किशोरीदास वाजपेयीकी विश्लेषण-पद्धतिको वे स्वीकार करतेहैं । इस आधारपर अलग-अलग गणसमाजोंकी भाषाओंको परखतेहैं । वे मानते हैं कि वैदिक भाषा सुदीर्घ विकास-परम्पराका परिणाम है । वे प्रश्न पूछतेहैं—

"मागधी समुदायकी कुछ विशेषताएं परम्परागत उल्लेखोंसे प्राप्त हैं, उनकी पुष्टि पूर्वी आर्य-भाषाओंकी वर्तमान स्थितिसे होतीहै । मान लीजिये, वैदिक भाषाका विकास एक हजार साल में हुआ । तब क्या एक क्षेत्रका गणसमाज इतने समय तक उसीमें बन्द रहा और अन्य गण-समाजोंसे उसका सम्पर्कही नहीं हुआ ? मगध गण पहले पूर्वमें रहता हो चाहे उत्तर पश्चिममें, उसकी भाषासे कुरु गण समाजका सम्पर्क हुआ, इसमें असम्भव कुछ नहीं है । जो लोग यह मानते हैं कि भारत ईरानी शाखासे टूटकर संस्कृतका विकास हुआ, वे कहीं इस 'विकास' का तर्क-सम्मत विवेचन प्रस्तुत नहीं करते ।"१५

'आकार' तथा 'ओकार' के भेदको वैज्ञानिक आधारपर स्पष्ट करनेकी आवश्यकता है । इसे कोल परिवार, द्रविड़ परिवार तथा नाग परिवारका प्रभाव भी नहीं कह सकते । इसलिए मानना होगा कि पूर्वमें दो आर्यभाषा समुदाय ऐसे थे जिसमें अकार ओकार का उच्चारण भेद रहाहै । इस आधारपर प्रश्न पूछा गया है—

"जो लोग यह मानतेहैं कि समस्त आधुनिक आर्य भाषाएं संस्कृतसे उत्पन्न हुईहैं, उन्हें इस प्रश्न का उत्तर देना चाहिये कि प्राच्य भाषाओंमें आकारका उच्चारण वृत्ताकार कैसे हो गया है ।१६

डॉ. विश्वनाथप्रसादने **"मगही संस्कार गीत'** पुस्तक लिखीहै । प्रादेशिक बोलियोंके विकास क्रमको समझनेमें उनकी इस पुस्तकसे सहायता मिलतीहै । उनके विचारोंका समर्थन करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा कहतेहैं कि साहित्यिक प्राकृतोंसे आधुनिक प्रादेशिक तथा जनपदीय बोलियोंके विकासको समझनेके बजाय हिन्दीकी बोलियोंका सूक्ष्म अध्ययन अधिक उपयोगी होगा । इससे प्राचीन प्राकृतोंके रूपको भी समझनेमें सहायता मिलेगी ।

मैथिलीके ध्वनितंत्रोंका विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए कहाहै कि किसी आदि भाषाके विकसित और पूर्ण प्रतिष्ठित ध्वनितंत्रसे उसकी शाखाओं प्रशाखाओंके ध्वनितंत्रोंका निर्माण नहीं हुआ । ध्वनियोंके स्वच्छंद संचरणका तथ्य भाषाओंकी विकास प्रक्रिया समझनेमें सहायक होताहै । अनेक केन्द्रोंमें विकसित होनेवाली ध्वनियां, विभिन्न गण समाजोंके परस्पर सम्पर्कमें आने पर मिलेजुले ध्वनितंत्रका निर्माण करतीहैं । कहनाहै कि ध्वनितंत्रोंके विकासकी उस आदिम अवस्थाकी झलक मैथिलीमें मिलतीहै ।

चौदहवीं शतीकी रचना 'वर्णरत्नाकर' (ज्योतिरीश्वर ठाकुर द्वारा लिखी) मिलतीहै । यह गद्यकी पुस्तक है । इस रचनाकी मैथिली भाषाका विस्तृत अध्यन प्रस्तुत करते हुए कहा गयाहै कि **वर्णरत्नाकरकी भाषाका निर्माण चौदहवीं सदीसे पहले हुआहै ।** उस समय तक मिथिला और पश्चिमी जनपदोंके बीच आदान-प्रदान बढ़ गयाथा और उसका प्रभाव यह हुआ

---

१५. भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी, खण्ड १, १९७९ ई., पृ. १४८ ।

१६. वही पृ. १४१ ।

कि पश्चिमी जनपदोंके प्रभावके कारण व्याकरणगत लिंग-भेद मैथिलीमें प्रतिष्ठित होगया।

वर्णरत्नाकरके आधारपर यह भी निष्कर्ष निकाला गया कि मैथिलीका अस्तित्व चौदहवीं सदीसे बहुत पहले है। अपभ्रंशमें तो जनपदीय भाषाओंकी झलक भर मिलतीहै। वास्तवमें जिसे अपभ्रंश काल कहा जाताहै, वह आधुनिक जनपदीय भाषाओंका अभ्युदय काल है।

बोलियोंका अध्ययन प्रस्तुत करते हुए 'रह'—भोजपुरीकी क्रियापर विचार कियाहै। यह क्रिया हिन्दीमें है, अन्य भाषाओंमें है। मराठीमें है, बंगलामें है। किन्तु इसका व्यवहार संस्कृतमें नहीं है। इस धातुकी व्युत्पत्ति अज्ञात है। इससे यह निष्कर्ष निकला कि जबतक इस क्रियाकी व्युत्पत्तिका पता न चले तबतक यह मान लेना चाहिये कि यह आर्यभाषाकी पुरानी क्रियाका रूप है, जिसका व्यवहार संस्कृतमें नहीं हुआहै।

अपभ्रंशोंको आधुनिक भाषाओंकी जननी मानना उचित नहीं है। कहा गयाहै कि जैसे प्राकृतोंके अनेक रूप हैं, वैसेही अपभ्रंशोंके भी अनेक रूप हैं। इन सबमें तात्त्विक भेद बहुत कम है। देशी भाषाएं—अपभ्रंशोंसे अलग हैं। जिस समयमें अपभ्रंशका व्यवहार होताथा, ठीक उसी समयमें देशी भाषाओंका अस्तित्व था। कहतेहै कि तीसरी सदीसे पहले अपभ्रंशोंका व्यवहार कहीं नहीं होताथा।

प्राकृत तथा अपभ्रंशकी रूढ़िवादिताके सम्बन्धमें डॉ. रामविलास शर्मा लिखतेहैं—

"प्राकृतोंमें रुढ़िवादिताके कारण वास्तविक भाषाओंकी विशेषताएं प्रतिबिम्बित नहीं हुईथीं। अपभ्रंशोंमें यह रूढ़िवादिता थोड़ी-सी खण्डित हुई, पूरी तरह नहीं। इसलिए जो विशेषता आधुनिक आर्यभाषाओंमें है, वह तीसरी सदीकी खरोष्ठी प्राकृतमें तो है, अपभ्रंशमें नहीं है। ... ...पूर्ववर्ती और परवर्ती अपभ्रंशके भेदसे यह दिखाया जाताहै कि **अपभ्रंश बोलचालकी भाषा थी और पूर्ववर्ती मंजिलसे चलते हुए परवर्ती मंजिल तक पहुंची। उसके बाद आधुनिक भाषाओंका युग आ गया। क्रमिक विकासकी ऐसी कल्पना मिथ्या है।**"१७

प्रमाणमें पुनः कहा—

"पंद्रहवीं सदीमें विद्यापति परवर्ती अपभ्रंश लिख रहेथे। उसी समय वे मैथिलीमें भी पदावली रच रहेथे। उनसे पहले चौदहवीं सदीमें ज्योतिरीश्वर ठाकुर, मैथिलीमें गद्य लिख रहेथे। उस समयभी अपभ्रंश, अवहट्ट अथवा अवहठमें काव्य रचना होतीथी। ... ...इससे पहले बारहवीं सदीमें दामोदर पंडित **'उक्ति-व्यक्ति प्रकरण'**में अवधीके रूप दे रहेथे। इसलिए परवर्ती अपभ्रंश बारहवीं सदीसे और पहलेकी होनी चाहिये। अपभ्रंश और प्राकृत—परवर्ती या पूर्ववर्ती—किसीमें आधुनिक भाषाओंकी वह विशेषता नहीं है जो भारतसे बाहर राजकीय खरोष्ठी प्राकृतमें है। इसलिए कहा कि भाषाओंका क्रमिक विकास जाननेके लिए वह परवर्ती-पूर्ववर्ती भेद निरर्थक है।"१८

दामोदर पंडितकी बारहवीं सदीकी रचना 'उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण' के आधारपर यह माना गया कि अवधी भाषा चौथी शती तक पहुंच सकतीहै। आधुनिक मानक भाषाएं बादमें विकसित हुईहैं किन्तु उनके बोलीगत रूप प्राचीन हैं और उनका समय प्राकृतों और अपभ्रंशोंके बतलाये जानेवाले कालके समानान्तर हैं।

'उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण' को डॉ. रामविलास शर्मा बहुत महत्त्वपूर्ण मानतेहैं। इस रचनाको अपने अध्ययनका [हिन्दी भाषाके अध्ययनका] केन्द्र बिन्दु मानतेहैं। 'प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी' पुस्तक उन्हींको समर्पित है। समर्पणकी पंक्तियां इस प्रकार हैं—

"बारहवीं सदीमें अवधीका व्याकरण लिखकर आधुनिक आर्यभाषाओंका विवेचन आरम्भ करने वाले उक्ति-व्यक्ति-प्रकरणकार दामोदर पंडितकी स्मृतिको 'भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी' पुस्तक समर्पित है।"१९

संस्कृतके साथ आधुनिक भाषाओंका सम्बन्ध समझनेमें उक्तिव्यक्ति प्रकरण (व्याकरणग्रंथ) से बहुत

१७. भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी, खण्ड १, १९७९, पृ. १९९।

१८. वही पृ. १९९।

१९. भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी, खंड १, १९७९, आरम्भमें समर्पण पृष्ठसे।

सहायता मिलतीहै। उक्त पुस्तकको भूमिका डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने लिखीहै। उनके अध्ययनका उपयोग डॉ. रामविलास शर्माने अपने ढंगसे कियाहै। तथ्योंका प्रस्तुतीकरण डॉ. चाटुर्ज्याके आधारपर दिया गयाहै किन्तु निष्कर्ष डॉ. रामविलास शर्माके अपने हैं। चाटुर्ज्याके बहुतसे विचारोंसे सहमति भी व्यक्त कीहै। जैसे—यह माना गया कि संस्कृतके और उससे पहले वैदिक भाषाके समानान्तर अन्य आर्यभाषाएँ बोली जातीथीं और उन आर्यभाषाओंके सभी रूप संस्कृत तथा प्राकृतोंमें नहीं आ सकेहैं। इस तथ्यको स्वीकार करलें तो भाषाओंके विकासका अध्ययन और भी ठीक होगा। डा. चाटुर्ज्या भी इस बातको मानतेहैं।

अवधी भाषाकी कुछ प्राचीन रचनाओंकी भाषाओं का विश्लेषण डॉ. रामविलास शर्माने विस्तारसे प्रस्तुत कियाहै। **चांदायन** (रायबरेली जिलेके डलमऊ गांवके दाऊद कविकी १३७९ ई. की रचना) अवधीमें लिखी गयीहै। इसका सम्पादन डॉ. माताप्रसाद गुप्तने किया है। इसकी भाषाके साथ उक्ति-व्यक्ति-प्रकरणके भाषा रूपोंकी तुलना की गयीहै। चाँदायनकी भाषा जायसी से पहलेकी है और तुलसीकी भाषा जायसीके बादकी है। तीनोंकी भाषाओंके क्रमिक विकासको सोदाहरण बतलाया गयाहै।

'उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण'के तीन सौ वर्ष पूर्व भवभूति कवि हुआ। वह कन्नौजके दरबारमें था और उस समय अवधी बोली जातीथी। उसी बोलीको आधार मानकर बादमें दामोदर पंडितने बारहवीं सदीमें उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण लिखाहै।

कहा गया कि कोसलकी अवधी ब्रजसे पहले उत्तर भारतमें लगभग डेढ़ हजार साल तक सम्पर्क भाषा रहीहै। गौतम बुद्ध और श्रावस्तीके वैभवकालसे लेकर बारहवीं सदीमें गोविन्दचन्द्र और गाहड़वार और दामोदर पंडित तक अवधी (अथवा प्राचीन कोसली) सम्पर्क भाषाके रूपमें व्यवहारमें रहीहै।

कान्यकुब्ज साम्राज्यके विघटनके बाद संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंशका भी विघटन हुआ। इसके बाद अवधी का स्थान ब्रजभाषाने लिया।

ब्रजभाषा तथा अन्य भाषा समुदायोंका आपसमें सम्बन्ध बतलाते हुए डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं—

"कोसलके पूर्वमें भोजपुरी, मगही, मैथिली, बंगला, असमिया और उड़ियाका एक मागधी भाषा समुदाय है, वैसे ही कोसलके पश्चिममें ब्रज, राजस्थानी, गुजराती और सिन्धीका एक शूरसेनी भाषा-समुदाय है, और कोसलके उत्तरमें हरियाणा, पंजाब, जम्मू और हिमाचल प्रदेशकी भाषाओंका एक कौरवी समुदाय है मगही और मैथिलीमें महत्त्वपूर्ण भेद है, वैसे ही ब्रज भाषा और राजस्थानीमें महत्त्व-पूर्ण भेद है, बागरू और पंजाबीमें भेद है। पूर्वी बंगालकी बंगला, पश्चिमी बंगालकी बंगलाकी अपेक्षा, अवधीसे अधिक दूर है। वैसे ही राजस्थानी की अपेक्षा सिन्धी ब्रजभाषासे अधिक दूर है और पूर्वी पश्चिमी पंजाबकी भाषाकी अपेक्षा पंजाबकी भाषा बांगरूसे अधिक दूर है। बांगरूका क्षेत्र आधुनिक हिन्दीका आधार क्षेत्र है, यह बात पंजाबीके बारेमें नहीं कही जा सकती। ब्रजभाषा और अवधीका जैसा घनिष्ठ सम्बन्ध है, वैसा सम्बन्ध गुजराती और अवधीका नहीं है। बंगलाका क्षेत्र अलग बन गयाहै; **मगही, मैथिली और भोजपुरी के क्षेत्र साहित्यिक हिन्दीके प्रधान क्षेत्र रहेहैं। हिन्दी प्रदेशकी जनपदीय भाषाओंको एक दूसरेके निकट लानेमें, अवधिके बाद ब्रजभाषाकी महत्त्वपूर्ण भूमिकी रहीहै, और इन दोनोंके सहयोगसे बांगरूने आधुनिक हिन्दीके रूपमें एक व्यापक जातीय भाषाकी भूमिका निबाहीहै। वास्तविक या कल्पित अपभ्रंशोंसे ब्रज या भोजपुरीका सम्बन्ध जोड़कर हिन्दी प्रदेशके भाषायी विकासकी व्याख्या नहीं कीजा सकती। उसके लिए जनपदीय भाषाओंके विकासमान पारस्परिक सम्बन्धोंको ध्यानमें रखना होगा।**"[२०]

हिन्दीको सीधे किसी जनपदीय भाषाका विकास नहीं कह सकते। आधुनिक हिन्दी पटना, दिल्ली और उज्जैनके विशाल त्रिकोणमें बसनेवाली जातिकी भाषा है। मानक हिन्दीमें अन्य जनपदीय भाषा-तत्त्व घुलमिल गयेहैं। और उन तत्त्वोंने मूल आधार भाषा बांगरूको काफी बदल दियाहै। हिन्दी कृत्रिम भाषा नहीं है। वह विशाल क्षेत्रकी जातीय भाषा है। वाराणसीकी हिन्दी भोजपुरीसे प्रभावित है। इलाहाबाद, लखनऊ, कानपुर की हिन्दी अवधीसे प्रभावित है। आगराकी हिन्दी

२०. भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी, खंड १, १९७९ ई. पृ. २३१।

ब्रजसे प्रभावित है और दिल्लीकी हिन्दी पंजाबीसे प्रभावित है। यही नहीं बम्बईकी हिन्दी, कलकत्ताकी हिन्दी, नागपुरकी हिन्दी, हैदराबादकी हिन्दी और मद्रासकी हिन्दीके भी अपने-अपने रूप हैं। इन सब रूपोंपर क्षेत्रीय प्रभाव है। जातीय भाषाका भौगोलिक प्रसार होताहै और मानक हिन्दी इस रूपमें जिस क्षेत्र में पहुंचीहै, उसमें उस क्षेत्रके भाषा तत्त्वोंका मिश्रण हुआहै—यह सब होनेपर हिन्दीकी आधार जनपदीय भाषा बांगरू है और वह कुरु जनपदकी भाषा है। इस बातको डा. रामविलास शर्मा स्वीकार करतेहैं।

ग्रियर्सनके आर्यभाषाओंके (आधुनिक) वर्गीकरण से डॉ. रामविलास शर्मा सहमत नहीं हैं। वे लिखते हैं—

"ग्रियर्सनके विवेचनसे बाहरी और भीतरी शाखाओं का भेद सिद्ध नहीं होता। भारतकी प्राचीन आर्य-गण-भाषाओंके जो अनेक गण समुदाय हैं, ये समुदाय जो एक दूसरेको प्रभावित करके विभिन्न आर्यभाषाओंके विकासमें सहायक हुए, इसकी कल्पना ग्रियर्सनके विवेचनमें नहीं है।" २१

डॉ. चाटुर्ज्या यद्यपि ग्रियर्सनसे पूर्णतः सहमत नहीं है तथापि वे दो आर्य समुदायों वाला सिद्धान्त अप्रत्यक्ष रूपमें मानतेहैं। उनके विचारोंका विश्लेषण करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा लिखतेहैं—

"डा. चाटुर्ज्या मध्यप्रदेशकी आर्यभाषाको आदर्श शुद्ध भाषा मानतेहैं, उसका सम्बन्ध शुद्ध आर्य रक्तसे जोड़तेहैं, साथही यहभी कहना चाहतेहैं कि मध्यदेशकी भाषाका विशेष सम्बन्ध संस्कृतसे नहीं है? वे मागधी भाषाओंको मध्यदेशीय भाषा केन्द्रसे स्वतन्त्र दिखाना चाहतेहैं, साथही इस इस केन्द्रकी भूमिका स्वीकार करनेमें कठिनाई अनुभव करतेहैं। बंगला, असमिया और उड़ियाको तो इस केन्द्रसे अलग रखतेही हैं, वे भरसक भोजपुरी, मगही और मैथिलीको भी यथासम्भव मध्यदेशीय प्रभावसे मुक्त दिखाना चाहतेहैं। किन्तु मध्यदेशीय भाषा केन्द्रके बिना भोजपुरी और मैथिलीकी तो बात ही क्या, बंगलाका विकासभी समझमें नहीं आ सकता। डॉ. चाटुर्ज्याने भाषाकी शुद्धता और आर्यरक्तकी शुद्धताके जो सिद्धान्त प्रतिपादित कियेहैं, उनका भाषाई यथार्थसे कोई कोई सम्बन्ध नहीं है।" २२

डॉ. रामविलास शर्माके लेखनमें कहींपर भी एक आदिभाषाका स्वीकार नहीं किया गयाहै। इसके बदले वे अनेक आर्यभाषा केन्द्रोंके सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हैं। उनका कहनाहै कि इससे संस्कृतके विकासको समझनेमें भी सहायता मिलतीहै।

आर्यभाषा केन्द्र और सीमान्त भाषाएं

इस अध्यायमें सिन्धी और कश्मीरी दो भाषाओं को सीमान्तकी भाषाएं मानकर उनकर उनका विस्तृत विवेचन किया गयाहै। ग्रियर्सनने इन दोनों भाषाओंको दरद परिवारके अन्तर्गत रखा। आर्य परिवारमें रखते तो अलगसे विचार करनेकी आवश्यकता न होती। ये दोनों ही भाषाएं आर्यभाषा केन्द्रकी सीमान्त भाषाएं हैं।

आर्यभाषाओंसे इन दोनों भाषाओंके अलगावका कारण ईरानी प्रभाव माना गयाहै। सिन्धी भाषाके विवेचनसे भारत और ईरानके भाषाई सम्बन्धोंको समझनेमें सहायता मिलतीहै।

ईरानकी समस्त प्राचीन और नवीन भाषाओंमें सघोष महाप्राण ध्वनियां नहीं है। सिन्धीमें संस्कृत और हिन्दीके समान इन ध्वनियोंका व्यवहार होताहै। इस दृष्टिसे सिन्धी मध्यदेशीय भाषाओंके समीप है।

सिन्धी भाषामें मूर्द्धन्य ध्वनियां मिलतीहैं। ये ध्वनियां अवेस्ताकी भाषा पहलवी और फारसीमें भी नहीं है। यह भी मौलिक अन्तर है।

सिन्धी भाषाने प्राचीन ध्वनितंत्रोंकी सुरक्षा कीहै। ईरान और अरबकी भाषाओंसे प्रभावित होनेपर भी मूल ध्वनितंत्रोंमें परिवर्तन नहीं दिखायी देता। सिंधी भाषाका अध्ययन आर्य परिवारकी सीमाओंको समझने में सहायक है। वह दरद परिवारकी अपेक्षा आर्य परिवारकी विशेषताओंसे अधिक सम्बद्ध है। इस रूप में सिन्धी भाषाके विवेचन और विश्लेषण करनेकी आवश्यकता है। सिन्धी भाषाका अध्ययन ऐतिहासिक भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे बहुत आवश्यक है। इसके कारणोंका विवेचन करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा

---

२१. वही पृ. २८०।

२२. भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी, खंड १, १९७९ ई., पृ. २८३।

लिखतेहैं—

"पंजाबसे वैदिक भाषा और साहित्यका सम्बन्ध होनेके कारण सिन्धके भाषाई महत्त्वकी अनदेखी की गयीहै। वैदिक भाषाकी पूर्व परम्परापर विचार नहीं किया गया। अतः मध्यदेशकी भाषा-परम्परा और उससे सिन्धीके सम्बन्धपर सोचने-विचारनेका प्रश्न ही नहीं था। बहुत-से-बहुत किसी काल्पनिक प्राकृत या अपभ्रंशसे सिन्धीका सम्बन्ध जोड़कर पुराने प्राकृत-अपभ्रंश रूपोंकी रक्षाका श्रेय सिन्धीको दिया गया, बस! सांस्कृतिक दृष्टि से सिन्धु घाटीका मूल क्षेत्र सिन्ध है, किन्तु इसका सम्बन्ध सिन्धकी आर्यभाषाई जनतासे जोड़ा ही क्या जाता जब यह सभ्यता आर्येतर मान ली गयीथी! किन्तु **सिन्धी भाषामें मध्यदेशीय भाषाके जो तत्त्व हैं वे अत्यन्त प्राचीन हैं। उचित होगा कि इन तत्त्वोंकी पहचानको आधार बनाकर एकबार फिर सिन्धु घाटीकी लिपिके रहस्यभेद का प्रयत्न किया जाये। सिन्धी शब्दतंत्रका अध्ययन करते समय हम सबसे पहले इस बातपर ध्यान दें कि सिन्धीने महाप्राणताके लक्षणकी रक्षा कैसे कीहै और यह लक्षण सिन्धी रूपोंकी प्राचीनता कैसे सिद्ध करताहै। यदि सिन्धु घाटीकी सभ्यता द्रविडजनोंकी सभ्यता होती तो सिन्धीमें महाप्राण ध्वनियोंकी रक्षा असम्भव होती, विशेष रूपसे इस कारण कि अरबोंने सिन्धपर अधिकार किया और वे भी द्रविड़ोंके समान सघोष महाप्राण ध्वनियोंका व्यवहार नहीं करतेथे।** यदि फ्रांससे आनेवाले नार्मन विजेताओंके प्रभुत्व कालमें अंग्रेजीकी स्थितिसे अरब प्रभुत्वकालमें सिन्धीकी स्थितिकी तुलना करें, तो पता चलेगा कि अंग्रेजीमें ध्वनितंत्रमें जहां व्यापक परिवर्तन हुआहै, वहाँ **सिन्धीका ध्वनितंत्र मूलतः अपरिवर्तित रहाहै। सिन्धी जनताका यह स्वभाषा प्रेम ऐतिहासिक भाषा विज्ञानको उनकी विशिष्ट देन है।**"[२३]

ट्रम्पने 'ग्रामर आफ द सिन्धी लैंग्वेज' पुस्तक लिखी। उसे इस बातका आश्चर्य होताहै कि लैटिन और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओंमें समानताएं हैं विशेष रूप से कृदन्तका चिह्न /ब/—डॉ. रामविलास शर्मा ट्रम्पके कथनपर टिप्पणी करते हुए लिखतेहैं—

"ट्रम्प उन वैयाकरणोंमें है जो लैटिन तथा आधुनिक भारतीय भाषाओंमें आश्चर्यजनक समानताएं देखकर चमत्कृत दिखतेहैं, उन समानताओंको भ्रामक न मानकर कहना चाहतेहैं कि वे वास्तविक है किन्तु भाषाविज्ञानके पुराने चौखटेकी सीमाएं लांघ न सकनेके कारण वे ऐसी समानताओंको अस्वीकार करतेहैं। आर्य और द्रविड़ दोनों परिवारोंमें /ब/—प्रत्ययका व्यापक व्यवहार होताहैं। बंगला, सिन्धी और तमिल तीनों भाषाओंमें इस प्रत्ययका उपयोग भविष्य कालके लिए हुआहै। वही स्थिति लैटिनकी है।"[२४]

कश्मीरीके सम्बन्धमें भी डॉ. रामविलास शर्मा कुछ ऐसे तथ्य प्रस्तुत करतेहैं जिससे उसके आर्य परिवारसे अलग कर दरद परिवारमें रखे जानेपर प्रश्न चिह्न लग जातेहैं। उनका कहनाहै कि दरद परिबार में कश्मीरीके समान एक भी भाषा ऐसी नहीं है जिसमें विपुल साहित्यकी रचना हुईहो। और कश्मीरीमें जो साहित्य लिखा गयाहै, उसका प्रधान कारण कश्मीरसे भारतका सम्बन्ध है। इसीलिए कश्मीर संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंशका रचना केन्द्र भी रहाहै।

कश्मीरीके सम्बन्धमें कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार बताये गयेहैं—

"ग्रियर्सन दरद भाषाओंको संस्कृतकी अपेक्षा ईरानीसे प्रभावित मानतेथे। ईरानकी प्राचीन भाषा वैदिक भाषासे बहुत मिलती-जुलतीहै। यदि कश्मीरी भारतीय उद्भवकी भाषा है तो अवेस्ता की भाषाका भारतीय उद्भव औरभी असंदिग्ध होना चाहिये।"[२५] "भारतीय भाषाओंसे दरद भाषाओंका अन्तर यह है कि यहाँ जैसे प्राकृतोंका विकास होताहै, वैसे कश्मीरीमें नहीं होता।"[२६]... "कश्मीरी उन लोगोंके लिए भारी कठिनाई पैदा

---

२३. भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी, खण्ड १, १९७९, पृ. २९७-२९८।

२४. वही पृ. ३११

२५. भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी, खण्ड १, १९७९ ई., पृ. ३१२

२६. वही पृ. ३१२

करतीहै जो वैदिक भाषाको आदि आर्यभाषा-प्राकृतको मध्य आर्यभाषा और हिन्दी-बंगलाको नव्य भाषा मानकर भारतीय भाषाओंके विकास की रूपरेखा निश्चित करतेहैं।" २७...
"फारसी और कश्मीरीमें एक महत्त्वपूर्ण भेद यह है कि कश्मीरीमें ट-वर्गीय ध्वनियोंका व्यवहार होताहै। सिन्धी मूर्द्धन्य ध्वनि-क्षेत्रकी भाषा है, कश्मीरी उसी प्रकार मूर्द्धन्य ध्वनि क्षेत्रकी भाषा नहीं कही जायेगी। सिन्धीमें/ण/की बहुलता है, कश्मीरीमें उसका अभाव है। ब्रज और अवधीमें अन्य ट-वर्गीय ध्वनियां हैं /ण/ नहीं है। इस दृष्टि से सिन्धीकी अपेक्षा कश्मीरी मध्यदेशीय भाषाओं अधिक समीप है। ब्रज और अवधीमें/ढ/ ध्वनि भी है। कश्मीरीमें न /ढ/ है, न /घ/ ध/, /भ/ /झ/ ध्वनियां हैं। सघोष महाप्राण ध्वनियोंका अभाव फारसीमें भी हैं। जो लोग उसे फारसी प्रभावित मानतेहैं, उनका यह मुख्य तर्क है कि कश्मीरीमें सघोष महाप्राण ध्वनियां नहीं है। उर्दू पर फारसी का कम प्रभाव नहीं है फारसीके जितने शब्द उर्दू में है, उतने कश्मीरीमें नहीं हैं किन्तु उर्दू में सघोष महाप्राण ध्वनियां विद्यमान हैं।" २८

सीमांत प्रदेशोंकी भाषाओंको आर्य परिवारसे अलग करनेका प्रयत्न ठीक नहीं हुआहै। ग्रियर्सनके इस निर्णयसे ऐतिहासिक भाषा विज्ञानके निर्णय असंगत हो गयेहै। डॉ. रामविलास शर्माने सिन्धी और कश्मीरी ही नहीं अपितु शीना भाषाका भी अध्ययन उसी क्रममें प्रस्तुत कियाहै। उक्त अध्यायके अन्तमें उनका निर्णय इस प्रकार है—

"ठेठ दरद भाषाओंकी विशेषताका पता लगाना बहुत कठिन काम है। कश्मीरी दरद भाषा है पर उसपर संस्कृतकी छाया पड़ीहै; उससे औरभी विशुद्ध दरद भाषा शीना है, उसपर आर्यभाषाओं की छाया औरभी गहरी है।

सिन्धी, कश्मीरी तथा दरद क्षेत्रकी भाषाएं हिन्दी प्रदेशकी प्राचीन गणभाषाओंसे घनिष्ठ रूप में सम्बद्ध हैं। इनके विश्लेषणसे संस्कृतकी निर्माण प्रक्रिया समझनेमें सहायता मिलतीहै; साथही इस बातका ज्ञान होताहै कि मगधी, कौरवी, मध्यदेशीय भाषा समुदायोंकी अनेक विशेषताएं प्राचीन हैं और वे भारतके सीमान्त प्रदेशोंकी भाषाओंमें प्राप्त हैं। संस्कृतके साथ आधुनिक आर्यभाषाओं के विवेचनसे प्राचीन आर्य गणभाषाओंकी विविधताका बोध होताहै, विशेष रूपसे सीमान्त भाषाओंके अध्ययनसे आर्य द्रविड़ भाषाओंके सम्पर्कसे उत्पन्न होनेवाली विशेषताओंका ज्ञान होताहै। क्रमश: हम उस भूमिपर पहुंचतेहैं जहां इन्डोयूरोपियन परिवारके अनेक भाषा समुदायों का निर्माण हुआथा। इण्डोयूरोपियन भाषा परिवारकी भारतीय पृष्ठभूमि समझनेमें आधुनिक आर्यभाषाओंके विवेचनसे हमें सहायता मिलती है। २९

आर्यभाषा केन्द्र और पुराण कथाएं : नवीन और प्राचीन

आर्य परिवारकी भाषाओंके सम्बन्धमें कुछ पुराण कथाएं डॉ. रामविलास शर्माने लिखीहैं। पुराण-कथाओं को ऐतिहासिक रूपमें प्रस्तुत कियाहै। इतिहासकार संभवत: उन्हें न मानें किन्तु 'पुराण' शब्दमें इतिहासका अर्थ निहित है। इसी अर्थमें कथाएं लिखकर उनकी सांस्कृतिक व्याख्या प्रस्तुत की गयीहैं। यह सांस्कृतिक विवेचन शब्दोंकी व्याख्या करताहै—उनका ऐतिहासिक विवरण देताहै और इसके कारण भाषा परिवारोंका परिचय मिलताहै। पुराण हमारे सामने इतिहासके रूपमें साकार होताहै इसे स्वीकार करें या न करें—ऐसा हुआहैं और ऐसी मान्यताएं हैं, यह सच है। यों परम्पराको भाषाई धरातलपर उघाड़कर रखनेका प्रयत्न है, यह।

पूरी पुस्तकमें भाषाके रूपोंको उनका भौगोलिक संदर्भ घताते हुए समझानेका प्रयत्न हुआहै। इस पूरे विवेचन और विश्लेषणमें इतिहासकारोंको तथा भाषाविज्ञानके विद्वानोंकी तथाकथित मान्यताएं अपने आप खण्डित हुईहैं। पुराण-कथाओंवाला यह अध्याय अपनी स्थापनाओंको सांस्कृतिक रूपमें उजागर करनेके लिए लिखा गयाहैं। ऐसा है—इतिहासमें कहा गयाहै—यह तो हम जानतेहैं किन्तु उनका भाषिक संदर्भ मालूम हो

२७. वही पृ. ३१२
२८. भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी, खण्ड १, १९७९ ई., पृ. ३१४
२९. वही पृ. ३३९

तो भाषा परिवारोंकी संकल्पनाएं और स्पष्ट हो सकतीहैं। ऐसा प्रयत्न किया गयाहै। कुछ उदाहरण—

'पौराणिक कथाएं निराधार कल्पना, मनगढन्त बातोंके लिए बदनाम हैं किन्तु इतिहासकारों और भाषाविज्ञानियोंने एक अपनी पौराणिक परम्परा डालीहै। इस परम्पराके अनुसार आर्योंका विशाल समुदाय एक ही भाषा बोलताथा और यह भाषा एक कल्पित भारत-ईरानी शाखाकी प्रशाखा थी।...भाषाके समान वे सभी आर्योंकी एकही संस्कृतिकी कल्पना करतेहैं। यद्यपि अथर्ववेद और ऋग्वेदमें सांस्कृतिक अन्तर यथेष्ट है पर भाषाके समान अथर्ववेदमें भी आर्येतर प्रभाव स्वीकार कर लिया जाताहै।"३०

..."भारतके प्राचीन नगर **हस्तिनापुर**की एक ही व्याख्या संभव है, कि वह हस्ति गणका नगर था। अनेक इतिहासकार और भाषाविज्ञानी हित्तियोंकी सभ्यताको वैदिक सभ्यतासे प्राचीन मानतेहैं। उन्होंने हित्ती और हत्ती शब्दकी व्याख्या नहीं की, उनके लिए वे निरर्थक शब्द हैं जो किसी कारण गण समाजसे जुड़ गयेथे। किन्तु गण समाजोंके नाम रखनेकी अपनी पद्धतियां हैं और हत्ती और हस्तिका सम्बन्ध बहुत स्पष्ट है। हाथी गण विशेषका देवता था, यह तथ्य हस्तिनापुरके अलावा पौराणिक परम्पराकी गणेश पूजासे स्पष्ट होताहै। यह तथ्य गणेश-पूजाके उद्भव और प्रसारका कारण बतलाताहै, हस्तिनापुर नामकी व्याख्या करताहै और पश्चिमी एशियाके हत्तियोंका भारतसे जो सम्बन्ध भाषा और संस्कृतिके स्तर पर पहले ही स्पष्ट था उसे और पुष्ट करताहै। किन्तु ये हत्ती तो प्राग्वैदिक कालके माने गयेहैं। तब यहभी मानना होगा कि इण्डोयूरोपियन समुदायमें टोटम पद्धति भारतमें आर्योंके आनेसे पहले भी प्रचलित थी।" ३१

..."रामायण कथामें जिन्हें वानर और राक्षस संज्ञा दी गयीहै, वे मध्य भारतके पड़ोसी गण समुदाय हैं। रावणके जितने बन्धु-बांधव कोसलके पूर्वमें हैं, उतने विंध्यांचलके दक्षिणमें नहीं। जो लोग कहतेहैं कि लंका नगरी मध्यभारतमें थी और उसका वर्तमान श्रीलंका नामके द्वीपसे कोई संबंध नहीं है, उनकी बात तर्कसंगत है। किष्किंधा और लंकामें एक समानता है, जिसपर ध्यान देना चाहिये। किष्किंधा ऋष्यमूक पर्वतपर है और उसके नीचे पम्पा सरोवर है लंका त्रिकूट पर्वत पर है और उसके नीचे समुद्र हैं।"३२

डॉ. रामविलास शर्माने गण समुदायोंसे सम्बन्धित नामोंकी सांस्कृतिक व्याख्या पुराण-कथाओंके आधार पर प्रस्तुत कीहै। नामकरणोंकी भाषा तत्त्वोंके आधार पर व्युत्पत्ति बतानेका प्रयत्न भी कियाहै। ऐसे शब्द हैं—नाग, नग, नगर, मग, मधु, मधुरा, मथुरा, दास, दस्यु, असुर, पिशाच, गन्धर्व, राक्षस, किरात...आदि आदि। इन शब्दोंसे जुड़ी भावनाओं और विचारों दोनोंकी पौराणिक जानकारी दी गयीहै। इस जानकारी में भाषा-सम्बन्धी तत्त्व प्रधान हैं। निष्कर्ष इस प्रकार है--

"नस्ल सिद्धान्तके आधारपर जो नयी पुराण-परम्पराएं रची गयीहै उनके लिए तर्कसंगत कारण नहीं है। एक नस्लके गोरे आदमियोंने दूसरी नस्लके काले आदमियोंको आकर जीत लिया, इससे भाषाओंका विकास हुआ, इस प्रकार की धारणाएं अवैज्ञानिक और इतिहास विरोधी हैं। इनका मुख्य आधार भाषाओंसे प्राप्त जानकारी है ऐसे कल्पित इतिहासका आधार भाषा विज्ञान है, भाषाविज्ञानके नामपर प्रचलित किंवदन्तियां हैं ये किंवदन्तियां विशाल जनसमुदायों को प्रभावित करतीहैं। उनकी पुष्टि भाषाओंके विश्लेषणसे नहीं होती। इसीलिए उनका खण्डन आवश्यक है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान जितना ही वास्तविक अर्थमें विज्ञान बनेगा, उतनाही वह भारतीय जनजीवनको प्रत्येक स्तरपर प्रभावित करेगा, उसकी सर्वांगीण प्रगतिमें सहायक होगा।" ३३

उपसंहार

परिशिष्टमें **'बलाघात और वर्ण संयोजन पद्धति'**

---

३०. भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी, खण्ड १, १९७९ ई. पृ. ३४०

३१. वही पृ. ३४२-३४३

३२. वही पृ. ३५२

३३. भारतके प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी, खंड, १, १९७९ ई., पृ. ३६६

तथा 'अतिरिक्त महाप्राणताकी [illegible]' [illegible] शीर्षकोंपर विचार किया गयाहै। भाषाओंकी उच्चारण-पद्धतिका विश्लेषण इनमें किया गयाहै। इनको समझनेसे भाषा-भेदके कारण भी समझमें आतेहैं।

ध्वनि-परिवर्तनके कारण प्रधान रूपसे भौगोलिक होतेहैं। इन कारणोंका विश्लेषण उच्चारण-प्रक्रियाके आधारपर संभव है और उच्चारणसे सम्बन्धित प्रश्नोंपर परिशिष्टके दोनों शीर्षकोंके अन्तर्गत विचार हुआहै। संस्कृत और संस्कृतसे सम्बन्धित गण भाषाओंकी सूक्ष्म पहचानमें परिशिष्टकी सामग्री हमारे लिए सहायक है।□

[आगामी अंकमें लेखमालाके अंश २ का प्रथम खण्ड]

काव्य

आग कुछ नहीं बोलती[1]

कवि : रामदरश मिश्र

समीक्षक : दिगन्त शास्त्री

सन्'५० के आसपाससे, श्री रामदरश मिश्रने साहित्यिक परिवेशके रचनात्मक आलोकमें अपनी बहुविध और बहुआयामी रचनाधर्मिताको सशक्त रूपसे प्रस्फुर्त कर रखाहै। हाँ, जीवनानुभूति और काव्यानुभूतिकी प्रेरणात्मक प्रयोजनशीलताके कारण, उन्होंने अपने आपको साहित्यिक दलबन्दियोंके दबावोंसे मुक्त रखाहै। ग्रामीण परिवेशके मध्यवर्गीय जीवनकी अनुभूति और संघर्षशीलता, संवेदना और संलग्नतासे प्रतिबद्ध होनेके कारण, उनकी प्रारम्भिक रचनाओंमें सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेशका मूल्यगत द्वन्द्व उजागर हुआथा। स्वातंत्र्योत्तर राष्ट्रीय जीवनमें पिछड़ापन और योजनाबद्ध विकास कार्यक्रमों में भयंकर अन्तर्विरोधकी उनकी अभिव्यक्तिसे उन्हें एक विशिष्ट पहचान मिलीथी। समीक्ष्य संकलनकी एक कविता द्रष्टव्य है : 'जब वह गांवसे आया/तब वह कवि था / उसके शरीरमें खेतोंकी चमक थी/ मनमें मिट्टीकी खुशबू/वह सही देखताथा, सही कहताथा/ ···कब किसपर कितना कीचड़ उछाला जाये, धीरे-धीरे उसका सत्य हकलाने लगा'···अब महानगर उसमें एकदम तन गयाहै/और, वह कविसे/एक आलोचक बन गयाहै।'

उनके उपन्यासोंके पात्रोंमें, कहानियोंके कथ्यमें, निबन्ध-संस्मरणोंकी वस्तुनिष्ठतामें और कविताओंकी भावभूमिमें उनकी अन्तर्दृष्टि, उनकी पहल और उनकी चेतना स्पष्ट रूप रेखांकित होने लगी। किन्तु, उनकी समकालीन यथार्थ और ऐतिहासिक युगबोधकी गहरी सम्पृक्तिमें उन्हें काव्यकी भाषा अर्थहीन लग रहीथी और उसे अर्थगर्भित करनेके प्रयासमें शब्दकी संकीर्णता का बोध हुआ। अत: अपनी संवेदनाकी ऊष्माको व्यक्त करनेके लिए काव्य भाषाकी सम्प्रेषणीयतामें ही सार्थक बिम्ब-योजनाका प्रयोजन-सिद्ध प्रयोग किया।

सात काव्य संकलन और एक गजल संग्रहके उपरान्त आलोच्य संकलन। 'आग कुछ नहीं बोलती' में उनकी ८० से ९२ की अवधिमें संरचित ५० कविताओंको संगृहीत किया गयाहै। प्रगतिशील मिश्रजी की परवर्ती और विशेषकर इस संकलनकी कविताओं में समकालीन कविताके तीव्र रंगोंका छिड़काव अधिक स्पष्ट दिखायी दे रहाहै। समकालीन कवियोंके सदृश राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिधियोंसे अलग, अपने आपको उन्होंने आत्मिक और वैयक्तिक

---

१. प्रका. : इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, के-७१, कृष्णनगर, दिल्ली-५१। पृष्ठ : ७९; डिमा. ९२; मूल्य : ४०,०० रु.।

चौहद्दी तक बांधे। रखा/उनकी कविताओंमें प्रखर वैचारिक सम्प्रेषणीयता ही नहीं, संवेदनात्मक संरचना भीहै। उनकी इसमें पहली कविता है—'आग कुछ बोलती नहीं' किन्तु "कैसा लगता होगा उसे/जब कोई हाथ/उसे जगाकर डाल आता होगा/या झोंक देता होगा / भरेपूरे खेतोंमें खलिहानोंमें/कैसा लगता होगा जब उसे किसी गोलेमें बांधकर/सभ्य हाथों द्वारा फेंक दिया जाता होगा / अनन्त जन-प्रवाहके बीच/ अपनी इच्छाके विरुद्ध धधकनेके लिए/हंसती गाती जिन्दगियोंको निगलनेके लिए।" आपने अपने अनुभवों के ढेरको उन सचेतन रंगोंसे चित्रित किया जिसमें वर्त्तमान एक पीड़ादायक त्वरणसे गुजर रहाहै। 'पेड़', 'कुर्सी', 'कपड़े', 'भवन', 'झाड़-फानूस' और 'मेरे जाने के बाद'की मध्यवर्गीय जीवनसे संदर्भित कविताओंमें उसी सम्प्रेषणीयता और संरचनाका रचनाधर्म विश्वसनीयता अर्जित करताहै। रचनात्मक स्तरपर उन निर्जीव वस्तुओंके प्रतिबिम्ब-रूपक संयोजनके द्वारा आसक्ति-परक एक सम्यक् दृष्टि व्यक्त हुईहै।

'उत्सू', लड़की, सवाद, खाली प्लाट, फूल, दिन, अपढ, सीट, कुत्ता, साक्षर आदि कविताओंमें आत्मिक-पारिवारिक सन्दर्भोंसे जन्य आकांक्षाओं और आशंकाओंके चित्रणकी भाषा अनउलझी और स्पष्ट है, किन्तु नितान्त ठण्डी और निराग्रही। उनकी काव्यानुभूतिने यहां निश्चित रूपसे अपनी सम्प्रेषणीयता खो दीहै।

'समय: एक कर्फ्यू,' 'कंकड़ी', 'पुस्तकें', 'ऊंचाई', 'मकान', 'अखबार', इन दिनों 'एक-एक जा रहे सभी' 'छोटे-छोटे मसीहे', में समयबोधके स्थूल-सूक्ष्म अनुभवों का आग्रह है।— कितना वीरान हो गयाहै, समय··· विराट् समय सहमकर ठहरा हुआहै' में काल-सापेक्ष अनुभूतिकी अनुगूंज है।

'सत्य', 'सुबह-सुबह', झरबेरी, 'गोली', 'आकाश' 'घर' 'गली', 'तलाश'में दुविधा और संशयका स्वर उनकी पूरी संरचनामें घुल-मिल गयाहै।

वसन्ताभास और वसन्त : आठ कविताओंमें प्राकृतिक सौन्दर्यको पर्यावरणके सन्दर्भोंमें, यथार्थपरक दृष्टि से विश्लेषित किया गयाहै। समग्रत: इन कविताओंमें एक सजग, चिन्तनशील कवि, मध्यवर्गीय जीवनकी संक्रमणशील शक्तियोंको पहचाननेके लिए बाध्य दीखताहै। □

पृष्ठोंके लिए[1]

कवि : रणजीत

समीक्षक : डॉ. प्रेमचंद विजयवर्गीय

डॉ. रणजीत प्रगतिवादी कवि हैं। उनके इस छठे काव्य-संकलनमें उनकी सन् १९८४ से १९९० के बीच लिखी राजनीतिक, अराजनीतिक, प्रेम घृणा—सभी प्रकारकी कविताएं संकलित हैं। कुल मिलाकर ६८ कविताओंका यह संकलन कविके शब्दोंमें उनके "पिछले पांच छह वर्षोंकी रचनात्मकताका सही प्रतिनिधित्व करताहैं, उन सरोकारों और संलग्नताओंको रेखांकित करताहै, जो इस काल-खंडमें" उन्हें आलोड़ित विलोड़ित करती रहीहैं। संग्रहकी 'मजबूरी' शीर्षक कवितामें उन्होंने अपनी कविताओंको अपने भीतर-बाहर मिली सच्चाई का प्रत्यांकन बतायाहै, और लिखाहै कि "किसी राजनीतिक-साहित्यिक महत्त्वाकांक्षाके लिए/ मैंने उसकी (सच्चाईकी) अभिव्यक्ति नहीं दबायी/पर उसे जबरदस्ती ओढ़ी या बिछायी भी नहीं।" और कहाहै कि "अन्तस्में हो उमड़न-घुमड़न/और होंठ एक टेक्टिकल चुप्पी या चापलूसीमें लगेहों / ऐसी स्थिति/ मुझे अपने लिए कभी नहीं सुहायी"—इसे कोई उनकी ईमानदारी कहे या गावदीपन, पर इसे वे अपनी 'आन्तरिक मजबूरी' मानतेहैं।

प्रस्तुत काव्यमें डॉ. रणजीतकी, सृजनधर्मिता के दो आयाम हैं—एक राजनीतिक-सामाजिक चेतना और बौद्धिकताका, और दूसरा वैयक्तिक-पारिवारिक चेतना और सम्बद्ध भावुकताका। एक पर्वत-सा ठोस और स्थिर है, दूसरा सरिता-सा तरल और प्रवहमान। एक हमारी बुद्धिको युग-बोधसे बांधताहै तो दूसरा हृदयको रसानुभूतिके आकाशमें मुक्त करताहै। कविकी अधिकांश कविताओंके विषय गम्भीर हैं तो कुछके हलके-फुलके भी—जैसे घरकी सफाईमें प्रतिदिन शहीद होती गृहिणी, ट्रेन और बसकी यात्राका अन्तर, और, टी. वी. पर अपने आपको कविता सुनाता देखकर।

राजनीतिक-सामाजिक स्थितियाँ और उनके प्रति

---

१. प्रका. : (अनुल्लिखित)। पृष्ठ : ११०; डिमा. २९; मूल्य : ४०.०० रु.।

कविकी संचेतनाको व्यक्त करनेवाली प्रथम कविता 'चाकू और हत्या' ही यह बताती है कि आज किस प्रकार जनतंत्र जन-जनके सीनेपर चढ़कर बैठा है, जमीदार हरिजनोंको जिन्दा जला रहे हैं। 'दुहरी मार' में कविने पुलिस द्वारा किसीको मारने, उसके हाथ पैर और सिर तोड़ देने और औरतोंके साथ बलात्कार करनेके अधिकारपर प्रश्न चिह्न लगाया है। 'राष्ट्रीय एकता' कवितामें चुनावके समय दल विशेषके कर्मोंका पर्दा फाश किया है ? अन्यत्र कविका प्रश्न है कि अपनी आंखोंके सामने अपने पिताओं भाइयोंकी हत्या होते, उन्हें जिन्दा जलाये जाने, अपनी माताओं-बहनोंपर बलात्कार होते देखनेवाले बच्चे आगे जाकर क्या बनेंगे ? भिंडरवालाके अवतार ही न। कविके अनुसार पांच हजार सालके सांस्कृतिक विकासके बाद आजभी जिसकी लाठी उसकी भैंस है, और "चांदपर पहुंच जानेके बाद भी आदमी अभी डंडेसे ऊपर नहीं उठ पाया है"। कवि इस कृतिके रचना कालमें सम्भावना युक्त आणविक युद्धके अवश्यम्भावी भीषण दुष्परिणामोंसे परिचित था, अत: उसने उन्हें गिनाते हुए कवित्वमयी भाषामें लिखा है :

"नाम-हीन / इतिहासहीन हो जायेगा यह पूरा ब्रह्माण्ड/ और पृथ्वी/ अपनी ओज़ोनकी साड़ी लीर-लीरकर दिये जानेके बाद/ अरक्षित, नंगी और बंजर/ किसी औरकी अधजली लाशकी तरह/ क्षत-विक्षत/ लटकी रहेगी आसमानमें अनाम/ यह सुजला/ सुफला/ वसुन्धरा।" (पृ. २१-२२)

कविने ऐसे लोगोंपर व्यंग्य किया है जो तभी सक्रिय होते हैं जब उनके प्रदेशमें कोई गड़बड़ी हो, दूसरे राज्योंमें होनेपर नहीं/ उसने इस बातपर भी प्रकाश डाला है कि किस प्रकार कोई सत्ता अन्याय और अत्याचारके विरुद्ध उठाये गये इन्कलाबके झंडे को अपने प्रभुत्वके जालमें फांस लेती है। कविने एक कवितामें इन्दिरा गांधी, संजय गांधी और राजीव गांधीकी नीतियोंकी आलोचना की है (पृ. ४७-४८) और सन् १९८८ की देशकी राजनीतिक स्थितिका विश्लेषण करनेके पश्चात् यह निष्कर्ष दिया है कि 'जनतंत्र धनतंत्र बन गया है, लोकतंत्र जोंक-तंत्र और प्रजातंत्र मजातंत्र बन गया है; समानता स्वतंत्रता और 'बन्धुत्व' न लोगोंके चेहरेपर है न उनके विचारों या जीवनमें, वह केवल फ्रांसिसी क्रांतिके इतिहासमें लिखा रहता है (स्थिति, ८८)। इसके अतिरिक्त कविने उस समयकी स्थितिमें दलाली खाने, आतंकवादियों द्वारा बेकसूरोंको मारने और रिश्वतखोरीको भी गिनाया है। सोवियत रूसके वर्तमान विघटनका कारण उसने वहांकी व्यवस्थाके अंतर्विरोध और उसकी कचाहट, स्वेच्छाचारिता तथा रूसी टैंकों द्वारा किशोरोंको कुचले जानेको माना है, इनके अतिरिक्त समयपर सच्चाइयोंसे समझौता न किये-जाने, छोटे-छोटे सुधारोंको कुचल दिये जाने और सत्ताके जड़ीभूत हो जानेको भी उसका कारण माना है। चाहे क्रांतिकी मशाल साम्यवादी देशोंमें बुझ जाये, कविको विश्वास है कि वही क्रांति एक छोटी-सी कन्दीलके रूपमें उसके हृदयमें, जलती रहेगी और कभी दक्षिणी अफ्रीकामें, कभी ब्राजीलमें, कभी नेपालमें तो कभी बंगला देशमें फूट पड़ेगी। पर कविका कहना है कि अब हम उस कंदीलके ठंडे हरे आलोकको कभी उन्मादके रक्त-रंजित दावानलमें बदलने नहीं देंगे (पृ. १०३)।

कवि न तो हिन्दू राष्ट्रको मानता है, न खालिस्तानको, वह तो विविधताओंवाले इस महान् देशको सबका साझा और सबका अपना मानता है, जिसमें उन्नति करनेका सबको समान अधिकार है (पृ. १०५)।

कविको अपना देश, देशके प्रत्येक प्राणी, पशु-पक्षी, खाद्य-पेय पदार्थ, ध्वनि और गंधमें दिखायी देता है (पृ. १०६-१०९), पर साथही उसे वर्तमानमें यह भी अनुभव होता है कि इस देशका वातावरण शांतिसे सांस लेने योग्य भी नहीं रह गया है।

कविने जिन सामाजिक स्थितियों और समस्याओं को इस कृतिमें व्यक्त किया है उनमें से एक पर्यावरण का विनाश है, 'इस संदर्भमें उसने फर्नीचर आदिके लिए वनोंकी कटाई और परिणामत: पृथ्वीको रेगिस्तानोंमें तथा दलदलोंमें बदल देने, पृथ्वीकी ओजोन की साड़ी फाड़नेका कवित्वमय वर्णन करते हुए, भावी पीढ़ीके लिए पृथ्वीकी, पर्यावरणके इस विनाशसे, रक्षा करनेकी इच्छा व्यक्त की है।

नारीके प्रति पुरुषके दृष्टिकोण और व्यवहारको वर्णित करते हुए कविने लिखा है कि पुरुष लोग नारीको सदैव ठंडी रखना चाहते हैं ताकि वे उसे आइसक्रीम या कुलफीकी तरह चाट-चाट कर खा सकें; वे नहीं चाहते कि वह दूध या पानीकी भांति उबल पड़े क्योंकि वे मानते हैं कि उसका धर्म जलाना नहीं जलना है, चाहे

दहेजके प्रसंगमें, चाहे सती होनेके लिए। (पृ. ८५-८८)। मीरा नाम्नी एक स्त्रीके बहाने कविने नारीके पुत्र-देवर आदिके सब काम करने, घरका खर्च चलानेके लिए सस्ते दामोंपर सिलाई करने और फिरभी पतिसे बिना बात पिटते रहनेकी स्थितिका चित्रण कियाहै (पृ. ९८-१००)।

आर्थिक पक्षमें कविने जिन विचारोंको प्रस्तुत कियाहै वे हैं : परिवार-नियोजन, अर्थके संचय और केन्द्रीकरणका विरोध, तथा उसका लोकहितमें उपयोग। (पृ. ९३)। कुहरे-पाले भरे, हाड़ कंपानेवाले आधी रातके अंधेरेमें, भीगे हुए चिथड़ोंमें कांपते हुए, हमारा दरवाजा खटखटानेवाले छोटेसे बच्चेको हमारा 'दुत्कारा हुआ सच कहाहै, जिसे अपना मानते हुए उसे जल्दीसे दरवाजा खोलकर भीतर ले लेनेके लिए' कविने कहाहै (पृ. ९०) : गरीबोंके प्रति कवि की संवेदनशीलता, करुणा और सहानुभूतिका यह प्रभाव है।

कविने कुछ कविताओंमें व्यंग्य भी कियेहैं, व्यंग्य के विषय हैं—परिवार नियोजनपर इन्दिरा गांधीको अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार दिया जाना (पृ. २), बिना सोचे समझे बच्चे पैदा करने, मंत्रियोंकी ईमानदारी (?), पीपभरे अंगोंवाली व्यवस्था, राजीव गांधीकी देशके लिए अपरिहार्यता आदि।

संग्रहमें कुछ कविताएं वैयक्तिक चेतना-सम्पन्न भी हैं। अकेलापन ऐसीही एक संचेतना है, यह सामान्य भी है और निजीभी। इस अकेलेपनसे बच्चेही नहीं बड़ेभी डरतेहैं। कृतिकारने स्वयं अपने अकेलेपनकी ऊब और अपनी पत्नी तथा बच्चोंके साथ पारिवारिक जीवन बितानेकी आकांक्षाको व्यक्त कियाहै 'तीन महीने ओर' कवितामें। इसी प्रकार सवेरे जल्दी उठकर घर भरके सब बर्तन भर लेने और उन्हें भरा हुआ देखनेका सुख, बिना किसी त्याग तपस्याके परम काम्य तन और मनवाली पत्नी, और कुम्हारकी चाकसे, उतरे हुए माटीके दो मुलायम सौंधे कच्चे दिवलोंसे दो बच्चे पानेका सौभाग्य, कभी उनकी अनुपस्थिति का दुःख, पत्नीकी वियोगजन्य वेदनाकी अनुभूति, फिर 'गुड्डन' का आगमन उत्सवधर्मी तीर्थसा अनुभूत होना—आदि ऐसीही वैयक्तिक चेतनाधर्मी अनुभूतियां हैं जिनकी अभिव्यक्ति करनेमें कविकी कल्पना सक्रिय ही नहीं हुईहैं उसने अनेक आलंकारिक विधान भी कियेहैं। कवितामें हर लड़ाई किसी न किसी स्त्रीलिंग संज्ञाके लिए रहीहै जैसे व्यक्तिकी अस्मिता, अभिव्यक्ति, जनता, पृथ्वी आदि। कविका मानना है कि उसकी जीवन-संगिनी अपनी सत्तासे संसारको नया सौंदर्य और एक नयी सार्थकता देतीहै। कविको संसार से प्राप्त सुविधाओंका, अपने द्वारा अत्यल्प प्रतिदान देनेका दुख भी है। वह यहभी अनुभव करताहै कि अपनी ढलती-उम्रके कारण अब उसमें शहादत तक पहुंचानेवाला मसीही उन्माद नहीं उमड़ता।

कविने अनेक स्थलोंपर अपने विचार और दर्शन को भी अभिव्यक्ति दीहै जैसे असंगति, जीवनकी असंगति, दादागिरीकी स्वतंत्रता समर्थन, बड़ेकी प्रभुताका विरोध, छोटेकी प्रभुताका समर्थन कष्ट-सहन, दृढ़ता, आत्मोत्सर्ग। जीवनकी अनेक परिभाषाएं भी दीहैं, जो उसके सद् और असद् दोनों पक्षोंको व्यक्त करतीहैं, इस दुनियांको तो वे एक 'एब्सर्ड थियेटर' मानतेहैं।

इस संग्रहमें रणजीतकी प्रकृति-सम्बन्धी केवल एक ही कविता है—'कश्मीरकी धरतीमें' जिसमें कश्मीरसे उसके सेब, शहतूत, आमका रसास्वाद, तथा अपने थके-हारे जीवनको वहां विश्राम ले लेनेकी अनुमति चाही गयीहै (पृ. ८९)। इस कविताको व्यंजनात्मक भी मानाजा सकता है।

डॉ. रणजीतके काव्य-कृतित्वमें सामान्यतः सहज अनलंकृत अभिव्यक्ति होतीहैं—विशेषतः सामाजिक राजनीतिक कविताओंमें, जिनमें मुख्यतः वैचारिकता होतीहै--किन्तु भावना प्रधान कविताओंमें उनकी कल्पना शक्ति जागृत होकर बहुविध अलंकृत अभिव्यक्तियोंका सृजन करने लगतीहै। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अपन्हुति प्रतीक आदिके सुन्दर नये प्रयोगोंके साथ मानवीकरण और उदात्तीकरण भी है। अभिधा, कभी कभी लक्षणा और वक्रताका भी सहारा लिया गयाहै। अलंकृत कवित्वमयी अभिव्यक्तियोंके ऐसे बीसियों स्थल इस काव्य-कृतिमें हैं, पर निःसंदेह ये ही वे स्थल हैं जहां वे सच्चे अर्थोंमें कवि हैं, अन्यत्र तो वे गद्यकारके ही अधिक निकट हैं। ☐

क्षितिज एक भ्रम है¹

कवि : सुरेशचन्द्र त्यागी
समीक्षक : डॉ. सन्तोष तिवारी

सुरेशचंद्र त्यागीके इस तीसरे काव्य-संकलनकी कुल तीन रचनाएं ध्यातव्य हैं--एक क्षण डूबना, बदलाव, प्यार। कवि इस तथ्यको रेखांकित करना चाहता है कि भीतरी ऊर्जा-ऊष्माही जीवनके लिए वरेण्य हैं। जीवनका सर्वाधिक प्रेरक एक क्षणभी पूरे जीवनसे श्रेष्ठतर होताहै। गंगाकी धारपर तैरते अकम्प दीपका यह सार्थक कथन हमें भ्रम-भटकाव और अनिश्चितता की मनःस्थितिसे बहुत कुछ मुक्त करताहै—

जलतीहैं, बुझतीहैं/बाहरकी ज्वालाएं/अन्तरस्थ वह्नि तो होतीहै अक्षय/उसका ताप अनुभव करो/ जो है वरेण्य, उसे वरो/क्षितिज एक भ्रम है/जीवन भर भटकनेसे बेहतर है/एक क्षण डूबना/उसके समक्ष, सच,/सब कुछ कम है। (पृ. ४४)

कविका जीवन-दर्शन अनगढ़, अर्थहीन पत्थरमें असंख्य रूपाकार देखताहै और अमूर्त ध्वनियोंमें तार-सप्तककी अनुभूति करताहै, कोरे कागजमें रंगीन आकृतियां देखताहै। रचनाकारकी महती संभावनाएं हमेशा आश्वस्त करतीहैं। कविने प्यारको सृजनकी प्रेरणा, सत्यका संधान, सनातन-मर्म और कालजेता छंद कहाहै।

इन रचनाओंके अतिरिक्त अन्य कविताओंकी भावभूमि सामाजिक वैषम्यों-विकृतियोंसे साक्षात्कार करातीहैं और जीवनके अनुत्तरित प्रश्नोंको उछालनेकी सार्थक चेष्टा भी करतीहै। उसमें 'दीवाने खास' और 'दीवाने आम' का अन्तर भी पेश किया गयाहै। कविकी दृष्टि जीवनकी प्राथमिक आवश्यकताओंसे जूझते मनुष्य पर केन्द्रित हुईहै और मीलके पत्थरकी उस जड़तापर भी, जो चेतनको गतिशील बनातीहै। कवि बुद्धिजीवियों के गूंगेपनपर भी अंगुली उठाताहै और कभी अधरामृत पीना; आलिंगन और परिरम्भणकी चर्चा भी करताहै। यह मांसल अभिव्यक्ति और क्षयी रोमांस क्या छायावादोत्तर आत्मपरक कविताका स्मरण नहीं दिलाती? इसे हम वर्जनाओं और कुंठाओंसे दूर सौंदर्य-चेतना का खुलापन नहीं कह सकते बल्कि 'वासनाके न्यायीकरणकी मांग अवश्य कह सकतेहैं। कविने कहीं मिट्टी के आकर्षणकी बात कहीहै और कहीं व्यक्तिके उन्मुक्त चिन्तनको सराहाहै।

हमें यह कहनेमें कोई संकोच नहीं कि इन्दिरा गांधीके निधनपर लिखी पाँचों कविताएं एकदम सपाट हैं, अर्थात् भीतर तक उद्वेलित नहीं करती। संग्रहकी कुछ कविताएं छायावादी काव्य प्रवृत्तियोंकी याद दिलातीहैं याने मधुमय-काव्यके लक्षण दर्शातीहैं। अच्छा होता यदि संकलनमें रचनाओंके चयनमें कुछ सावधानी बरती जाती। कुछ रचनाएं नीरस, उपदेशपरक प्रतीत होतीहैं—'जो जल रहीहै भीतर वह ज्योति कम नहीं है/आओ उसे जगायें, न कि उससे ही डरें हम/'

(पृ. ४२)।

सुरेशचंद्र त्यागी एकाकी पथिकके मनको 'प्रभुका परस' देना चाहतेहैं और कुछ स्थानोंपर सूत्रात्मकतामें बोलने लगतेहैं, जहां संवेदनाएं हैं, वहां विचार तत्त्व गायब है और जहां विचारणा है वहां संवेदनशीलता नगण्य है। रचनाकारने कविका सत्य (भूमिका) में लिखा है कि अच्छी कविता संवेदनात्मक और, वैचारिक संभानाओंका अक्षय-स्रोत होतीहै। कुल मिलाकर अधिकसे अधिक चार-छः कविताओंको छोड़कर संकलनकी शेष पचाससे ऊपर रचनाएं हमें भीतर कुरेदती नहीं। विचारको संवेदनाके साथ सम्पृक्त कर सर्जनाके स्तर तक कई रचनाएं पहुंची ही नहीं। भीतरी तपनके अनुरूप शब्दको आगकी लकीर बताया गयाहै पर रचनाकार के शब्दोंमें आगका प्रभाव कहीं नहीं, फिरभी ये पंक्तियां ध्यातव्य हैं—'खुला रखो चेतनाका पात्र / शब्द ही उसको भरेगा/तुम वरोगे शब्दको यदि/शब्द भी तुमको वरेगा।' (पृ. ५६)। अनुभूति और सम्प्रेषणीयताका यही तालमेल सार्थक सर्जनाकी कसौटी है।□

---

१. प्रका. : आशिर प्रकाशन, रामजीवन नगर, चिलकाना रोड, सहारनपुर (उ. प्र.)। पृष्ठ : ९६; डिमा. ९९; मूल्य : ६०.०० रु.।

पिता बोलेथे[1]

कवि : हरीश करम चन्दाणी

समीक्षक : डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ

राजस्थान साहित्य अकादमीके आर्थिक सहयोगसे प्रकाशित 'पिता बोलेथे' ऐसी कविताओंका संकलन है जो जीवनके परिवेशकी महानगरीय सभ्यताके बीच लोकजीवनसे जुड़ा हुआहै। श्री हरीश वर्तमानमें इलाक्ट्राय माध्यम (दूरदर्शन जयपुर) से जुड़े हुएहैं तथा सिन्धी एवं हिन्दीमें समान अधिकारसे अपनी लेखनी चला रहेहैं और यह चलाना एक सर्जककी गम्भीर प्रकृतिका परिचायक है।

आलोच्य कृतिमें एक सौ दो कविताएं संकलित हैं, जिनका शीर्षक आठवीं कविता 'पिता बोलेथे' पर आधारित है। स्थूल रूपसे इन कविताओंका एक वर्गीकरण बच्चा, मां और पिताके रूपमें कियाजा सकताहै। यह वर्गीकरण कथ्य आधारित है जिसमें पन्द्रह कविताओं का केन्द्र बच्चा है और यह मानवपुत्रके रूपमें ही वर्ण्य वस्तु है जबकि छः कविताओंमें यह पशु-बालक रूपमें चित्रित हुआहै। बालचिन्तनकी दृष्टिसे (बाल साहित्य नहीं) इक्कीस कविताओंमें बच्चेको केन्द्र बनाकर लिखना संयोगात् नहीं कहा जा सकता। कवि हरीशने बच्चेके माध्यमसे वह सब कहनेका सफल प्रयास कियाहै जिसे वे वयस्क या युवक या पुरुषके माध्यमसे नहीं कह पाते क्योंकि आजकी स्थितिमें वीडियोपर देखी फिल्मके परिणामस्वरूप भयसृष्टि होने लगतीहै—"बच्चेने उठा लिया चाकू/अपना खिलौना छोड़कर/मैं डर गयाथा/चाकू हाथमें लिये बच्चेकी आंखोंमें चमक थी' (पृ. २४), पितृ वर्गमें सम्बोधन बच्चोंके लिए ही है और पिताके उपदेश अंगीकृत करनेवाले बच्चेके समक्ष संकट है कि उनके उपदेशसे सत्यभाषी, ईमानदार, न्यायप्रिय तो रहा जा सकताहै, पर क्या सुख सम्पन्नता उक्त आचरणसे संभव हो सकतीहै (पृ. २५)। पितृ-आशीषका ह्रास (पृ. २८) होते हुएभी पिता अपनी सन्ततिके लिए—"तबसे खोजता भटक रहाहूं/एक छोटा-सा बिछौना/जिसमें भरी हो सपनोंसे लबालब/मेरी बिटियाकी नींद" (पृ. १०६) की चिन्ता लिये हुए जीताहै।

मातावर्गमें भी श्री हरीशने कविताएं प्रस्तुत कीहैं क्योंकि जब बच्चेकी भाव-भूमिपर कविता रची जायेगी तो बिना मांके अन्य कोई आधार नहीं हो सकता क्योंकि बच्चेके लिए मां ही एक ऐसी हस्तीहै जो अपने पुत्रके लिए निरन्तर दुःख सहतीहै तथा तीन लड़कियोंके बाद पुत्र-जन्मकी आशा लिये (पृ. ३०) बैठीहै। ऐसी मां ही अस्वस्थताके क्षणोंमें बहुत याद आतीहै (पृ. ३३)। इसी प्रकार चिड़िया मां भी(सहमी मां) ने आशंका बोझिल/निकाली गर्दन और/उड़ते दिखे बहुत सारे परिन्दे (पृ. ३४)सन्तोष ग्रहण करतीहै तथा—डाल देतीहै बच्चेकी चोंचमें/दाना (पृ. ३६)। हरीश करम चन्दाणी अपने समयके क्रूर यथार्थका चित्रण करते हुएभी एक विश्वासकी टोहमें लिखी जाती रहीहै—बच्चोंको शोर मचानेसे रोको मत/...बच्चे चुप हो जायेंगे तो जगायेगा कौन ? (पृ. १९)।

आलोच्य कृतिकी सम्भावनाओंके सम्बन्धमें राजस्थानके सुप्रसिद्ध कवि हरीश भादाणीका कथन सार्थक है कि—अनुभवोंसे रची छोटे-छोटे शब्दोंकी दुनियां देखते हुए लगा कि यह संसार बहुत बड़ा हैं—(पृ. ९)क्योंकि बार बार सम्वेदनाओंके संस्पर्शसे उभरते प्रश्न अपने आपकी पहचान बनानेकी व्यग्रताका गहरा संकेत लिये हुएहैं तभी पिता बच्चेमें संसारकी रचना करता दृष्टिगत होताहै तो अपनी उपलब्धियोंकी संरक्षाके लिए—"बस बचानीहै/बच्चेकी हंसी (पृ. (पृ. २०)। मनुष्यका अकेलापनभी कविको गहरे आहत करताहै क्योंकि जमीन (पहचान) खोदते हुए सम्बन्ध तोड़कर भी अकेले लड़ते रहनेके बाद उसे पता चलताहै कि—पराजित हो चुका था (पृ. ५६) और तनेसे झड़े पत्तेकी तरह लगताहै उसे अपना अकेलापन(पृ. ५७)। इसीलिए बंजर धरती खोदते हुए सपने बुनते हुएभी वह दिहाड़ीसे अधिक कुछ भी नहीं पाता (पृ. ६४) तो फिर परिश्रम करनेपर भी श्रमसार्थक नहीं हो पाता तो वह प्रश्न करताहै—'माई बाप !/ फिर मैं भी क्यों बोऊं अन्न ?'(पृ. ६६), जब उसे ही भूखा रहना पड़ताहै। कवि अपनी समग्रतामें सहजही ईमानदारीपूर्ण अभिव्यक्तिके धरातलपर स्पष्ट कह जाताहै कि—'हां, उनका छोटा भाई/...बेरोजगार था/और था फिलहाल ईमानदार भी।(पृ. ८४), जिसे

---

१. प्रका. : पुस्तक संसार, २५८ आदर्श नगर, जयपुर-३०२००४। पृष्ठ : १२६; डिमा. ९२; मूल्य : ७५.०० रु.।

वह कहताहै—तुम्हारा काम था/दीया जलाना/…दीये का कामथा रोशनी देना (पृ. ८५)। कवि आजभी माथे पर बल डाले/।…खोजतेहैं अर्थ जीवनका (पृ. १००)। और उसके लिए कहताहै कवि—थाम लो कलम हाथमें/ लिखनी ही पड़ेगी कविता/…राह दिखाती रहेगी हाथ की (मेहनतकश) आँख बनकर (पृ. १०३)।

आलोच्य कृतिमें एक पुनरावृत्ति दोष है कि एक ही रचना पृष्ठ ६३ एवं १२४ पर एक ही शीर्षकसे प्रकाशित होगयीहै। अकादमी सहायता प्राप्तिसे पूर्व निर्णायकोंके पासभी पाण्डुलिपि गयी होगी फिर प्रकाशनके समयभी जागरूक प्रूफशोधकके अभावमें यह त्रुटि मामूली नहीं है और न क्षम्य समझी जानी चाहिये। आकर्षक आवरणमें अस्थायी बाइंडिंग सहित पुस्तक पठनीय है।□

ब्रज-काव्य

पद-पद्माकर[1]

रचयिता : रामरज शर्मा 'पंकिल'

समीक्षक : डॉ. मानवेन्द्र पाठक

'पद-पद्माकर' ब्रज भाषाका एक श्रेष्ठ गीति-काव्य है। यद्यपि इसका रचनाकाल बीसवीं शताब्दीका अन्तिम दशक है, तथापि इसका कथ्य मध्यकालका है। अतः यह आवश्यक नहीं है कि जो रचनाकालकी दृष्टि से आधुनिक है, वह प्रवृत्तिकी दृष्टिसे भी आधुनिक हो। "पद पद्माकर' का रचनाकाल अवश्य ही आधुनिक कालके अन्तर्गत आताहै, तथापि उसकी जड़ें मध्यकालमें हैं। प्रवृत्ति और विषयकी दृष्टिसे भी कृति मध्यकालके अन्तर्गत आतीहै।

कृतिमें कुल मिलाकर २८१ गेय पद हैं। सम्पूर्ण रचनामें कविने अनेक प्रकारसे सांसारिक दीनता-हीनता, सांसारिक लिप्तता, तुच्छता आदिका विस्तृत वर्णन करके दीनानाथ शरण, अशरण-शरण, भक्त-वत्सल, सर्वशक्तिमान् ईश्वरकी असीम कृपाके दृष्टांत प्रस्तुत करके उसकी भक्तिकी याचना कीहै। इसमें कविका एकमात्र उद्देश्य भक्ति-भावनाकी अभिव्यक्ति है और उनकी भक्ति-भावनाका आलम्बन है—एक परमशक्ति परमब्रह्म (निवेदन : पृष्ठ-५)। वस्तुतः पंकिल भक्तिके क्षेत्रमें समन्वयवादी हैं, इसलिए रामभक्तिके ८५ पदों, शिव-भक्तिके १७ पदों और कृष्ण-भक्तिके ४७ पदोंकी रचना करके उन्होंने तीनोंके प्रति अपनी भक्ति-भावनाका प्रदर्शन कियाहै। पंकिलजीकी भक्ति दास्य-भावकी भक्ति है। सेवक और सेव्य भावको उन्होंने अन्यतम रूपसे निभायाहै। वे कहतेहैं : "जगमें धन्य रामके दास।/जागत सोवत सरन रामको, सदा रामकी आस।"—(पद-२४१)

रचना शैलीकी दृष्टिसे इस कृतिके समस्त पदोंको तीन वर्गोंमें विभाजित कियाजा सकताहै—(१) कला गीत (२) शुद्ध गीत और (३) दृष्टिकूट पद।

1. प्रका. : गोविन्द भवन, गीता प्रेस, गोरखपुर। पृष्ठ : २२०; क्रा. २०४७ (वि.); मूल्य : ५.०० रु.।

(१) कलागीत—वे प्रसंग, जिनमें कविका निजी व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होताहै, कलागीतोंकी कोटिमें रखे जा सकतेहैं। उदाहरणके लिए श्रीकृष्णकी बाल-छवि (पद-११८), बाल-क्रीड़ा (पद-१२६), माखनचोरी (पद-१२०), मुरली विषयक पद (पद-१२९), राधा-कृष्ण मिलन (पद १३६), रास लीला (पद-१३८) और अन्तमें श्रीकृष्णका मथुरागमन (पद १४५) आदि ऐसेही प्रसंग हैं, जिनमें रचनाकारकी मौलिकता, मनोयोग एवं कवित्व शक्तिका चरम रूप परिलक्षित होताहै। इन्हींमें कविकी गीति-काव्य-कला भी सन्निहित है।

(२) शुद्ध गीत—वे गीत जो प्रभुके सामने आत्म-निवेदनके रूपमें आदिकालसे ही प्रस्तुत किये जाते रहेहैं, उन्हें शुद्धगीत कहा जाताहै। आत्म-निवेदन, प्रार्थना एवं विनय सम्बन्धी पदोंके रूपमें ये शुद्ध गीत संतोंकी परम्परामें बहुत पहलेसे चले आ रहेहैं। इन गीतोंके वर्ण्य विषय प्रभुकी भक्ति-वत्सलता, पतित पावनता, ऐश्वर्य, आत्मनिंदा तथा आत्म-निवेदन आदि रहतेहैं। साथही प्रसंगवश सांसारिक माया-कंचन और कामिनीका भी वर्णन होता रहताहै। "पद पद्माकर" में रामभक्ति (पद १५ से ९९ तक) और शिव-भक्ति (पद १०० से ११६ तक)के प्रसंगान्तर्गत रचित सम्पूर्ण पद इसी कोटिमें आतेहैं। इन पदोंमें भक्त-हृदयकी कातरता, आत्म-निवेदन और भगवान्की भक्त वत्सलता है। भक्ति विषयक पदोंके अन्तर्गत भक्त-वत्सलता, माया, अविद्या, तृष्णा आदिसे सम्बन्धित पद भव एवं उद्देश्यकी दृष्टिसे संतोंसे काफी मेल खातेहैं। इसके अतिरिक्त 'चेतावनी' और विविध शीर्षकके अन्तर्गत नाम-महिमा (पद २५९), मन-प्रबोध (पद २३९, २४२) गुरू-महिमा (पद-२३८), भक्ति-साधना (पद-२४७), वैराग्य-वर्णन (पद संख्या २६४, २६५) एवं आत्मबोध (पद-२७२) आदि प्रसंगोंमें कविने जिन पदोंकी रचना कीहै, वे भी शुद्ध गीत ही हैं।

(३) दृष्टि-कूट पद : दृष्टिकूट काव्यकी मूल-भावना गोपनीयता और दुरूहतामें हैं। कूट शब्दका अर्थ चाहे 'पर्वत' ग्रहण किया जाये चाहे "छल-कपट", प्रमुख तात्पर्य तो यही है कि इस प्रकारके काव्यमें अर्थ-क्लिष्टता तो अवश्य रहतीहै। पंकिलजीने इस शैलीमें केवल एकही पदकी रचना कीहै। पद द्रष्टव्य है : "कैसी एक अद्भुत बात।/कूट ऊपर कूट बैठ्यो, कूट गहि, ताकि घात॥ आजु सारंग रूप भरि, सारंग चलत इतरात।/कच्छपी लै हठि बजावै, कच्छपी निज हात॥/आजु हरि हू पाई हरि-बल, हरिहि आंखि दिखात।/राजनय-मातंग अब, मातंग चढ़ि इठलात।/ आजु द्विज हू द्विज-गनन को मांस रुचि-रुचि खात।/सुरसरित विष हू अदूषन सों, भयो विष जात।/(पद २६६)।

उपर्युक्त पदके अर्थ-ग्रहणमें कठिनाई होतीहै। इसमें कविकी चमत्कार-प्रियता दृष्टिगोचर होतीहै। पंकिलजीके उक्त पदमें यह प्रवृत्ति दिखायी देतीहै।

इस कृतिमें भक्ति और शांत रसोंकी प्रधानता है। इसमें आद्योपान्त भक्तिकी मंदाकिनी बहीहै। प्रारंभसे अन्त तक कविने विनय, दैन्य, आत्म-ग्लानि, अधीरता आदि भावोंको विभिन्न रूपोंमें व्यक्त किया है। अतएव इसमें भक्तिका चरम रूप तो पाया ही जाताहै, साथही इसमें शांत रसान्तर्गत निर्वेद स्थायी की भी प्रधानता है। प्रेम, क्रोध, शोक, उत्साह और भय आदि तो शान्त रसके ही अंग बनकर आये हैं।

इस काव्यकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। ब्रजभाषा को साहित्योचित एकरूपता देनेका जो कार्य आचार्य केशवके द्वारा उठाया गयाथा तथा बिहारीलालके द्वारा आगे बढ़ाया जाकर कविवर घनानन्दके द्वारा पूर्ण किया गयाथा वह सराहनीय कार्य अब वर्तमान समय, खड़ी बोलीके राज्यमें, पंकिलजीने गौरवपूर्ण सफलताके साथ कियाहै। कविने स्वाभाविक रूपसे अलंकारोंको भी अपने काव्यमें अपेक्षित स्थान दियाहै। कृतिमें सर्वत्र शब्दालंकारों और अर्थालंकारोंकी झांकी देखीजा सकतीहै।

रचनाकारने इसमें पद-शैलीका प्रयोग कियाहै। इसका प्रत्येक पद राग-रागनियोंमें खरा उतरताहै। सभी पद गेय हैं। गीतकी सरलता, कोमलता, सूक्ष्मता और मार्मिकता आदि समस्त विशेषताएं पदोंमें विद्यमान हैं। "पद-पद्माकर"में कविताके साथ-साथ दर्शन की धारा भी समानान्तर रूपमें बहतीहै। दार्शनिक क्षेत्रमें पंकिलजी यद्यपि अद्वैतवादके अनुयायी हैं, फिर भी उन्होंने स्वयं किसी वादका प्रतिपादन नहीं किया। □

शक्तिपुत्र[1]

लेखक : श्यामसुन्दर भट्ट

समीक्षक : शलभ

ऐसा कहा जाताहै कि ऐतिहासिक उपन्यास अतीत की पुनर्रचना होताहै, पर वह अतीतकी नकल कतई नहीं होता। उसकी पुनर्रचना इसलिए नहीं होती कि अतीत कालके विश्वास-अन्धविश्वास, भ्रम-विभ्रम, विजड़ित रूढ़ियां और उनकी अतिरंजित गौरव-गाथा, जो अबतक किसी पुरातत्त्वके म्यूजियमकी धरोहर बन चुकीहो, उन्हें पुनर्रचित किया जाये, बल्कि उस अतीत के अन्धविश्वासों, भ्रमों विजड़ित रूढ़ परम्पराओंके विरुद्ध रचनाकार उस युगकी प्रासंगिकताको आजके संदर्भमें पुनर्रचित करताहै, अतः उसे सही रूपमें ठीक-ठीक जाननेके लिए इतिहासज्ञ और स्मृतिजीवी होना ही पर्याप्त नहीं है, आगे भी देखना आवश्यक है। वैसे भी, ऐतिहासिक उपन्यास लोकजीवनका इतिहास होता है इसीलिए जन-साधारण अपने इतिहासकी मांग रचनाकारसे ही करताहै, किसी इतिहासकारसे नहीं, क्योंकि अरस्तूके अनुसार साहित्यिक रचना वैश्विक सत्यको लिये होतीहै, वहां इतिहास मात्र व्यक्ति-सत्यको ही वर्णित करताहै, सर्वकालिक सत्यको नहीं। इसीलिए साहित्यिक कृतिका विश्वजनीन सच लोक-हृदयको केवल अनुरंजित ही नहीं, बहुत गहराईसे अनुप्राणित भी करताहै। निश्चयही ऐतिहासिक उपन्यासकार उन साहसिक और शौर्यपूर्ण बृहत्तर मानवीय संभावनाओं को पुनः सृजित करताहै जो जनसाधारणके अन्तर्मनमें अभीप्सित आकांक्षाओंके रूपमें सोयी रहतीहैं, और संकटापन्न घड़ियोंमें तीव्र संवेदना बन उभरतीहैं। अतीतकी प्रासंगिकता इसीमें है, जो उसके सच्चे और सही अस्तित्वके अनुभवका कलात्मक रूप प्राप्त करतीहै।

अतः 'जन' और 'अभिजन' के संश्लिष्ट रूपसे प्रत्येक श्रेष्ठ रचनाकार भलीभांति अवगत होताहै। वह जनमें अन्तर्निहित महत् मानवीय मूल्योंका अन्वेषण कर, उन्हें जीवनका जीवन्त परिवेश देताहै, उसके उत्कट संघर्ष और सृजनेषणाको, उसके कर्मके माध्यम से रूपायित करताहै और तभी ऐसी कृतियां जीवन्त दस्तावेज होतीहैं, जो समयकी साक्षी भर नहीं होतीं बल्कि उस अनागतका अर्घ्य भी बनतीहैं, जो उसी समय के गर्भसे जनमताहै, और बृहत्तर मनुष्यताके संरक्षण और परिपोषणके लिए प्रकाशवती-लौ की भांति उद्दीप्त होताहै। वह जन-मनमें अडिग आस्था, अटूट धैर्य असीम साहस, अदम्य वीरत्व और विवेक जागृत करता है। अतः ऐतिहासिक उपन्यास निरन्तर मानवीय ऊर्जा के स्रोत बने रहतेहैं।

'शक्तिपुत्र' ऐसे कालखण्डको अपनेमें समेटे हुएहै जो राजस्थानकी धूसर मिट्टीसे पैदा हुआ, पनपा और उसीमें खेलाथा। रावल रत्नसिंह और उनकी रानी पद्मिनीके जीवनकालके भीषण संघर्ष, ज्वलंत जौहर और स्वातंत्र्य चेतनाके गत्यात्मक परिवेशसे आरम्भ होकर एक ग्रामीण सामान्याकी कोखसे उणवा गांवमें जन्मे बालक हमीरको 'अन्नदाता' की पदवी तक पहुंचानेकी यह कथा भीषण रक्तपात, लूटखसोट, बलात्कार आगजनी, अनहद शोषण और उत्पीड़न, स्वार्थसे अंधी राजनीति और उसके छलकपट, भैरवियां, जोगनियां, चारणियां, उनके विश्वास और अन्धविश्वास सभी कुछ अपनेमें समेटे हुएहैं।

अलाउद्दीन खिलजी, उसके युगका मध्याह्न और

---

1. प्रका. : अंकुर प्रकाशन, १३ पीपलेश्वर महदेवकी गली, नाइयोंकी तलाई, उदयपुर (राज.)। पृष्ठ : २०७; डिमा. ९३; मूल्य : १२५.०० रु.।

अन्तकालके इतिवृत्तके साथ यह कथा फिर मोड़ लेतीहै और मोहम्मद तुगलकके अभ्युदय, महाराव मालदेवके उत्थान-पतनका रूपायन करती चलती है। सेनाध्यक्ष भट्ट लक्ष्मणसिंहके ज्येष्ठ पुत्र अरिसिंहका परिणय उणवाके खेतीहर ठाकुरकी कन्या देवीके साथ एक रोचक संयोग होताहै, और इसी वीर क्षत्राणीकी कोखसे हमीर जैसा शक्तिपुत्र जन्म लेताहै। लेखकने इतिहासकी मूल भावनाओंको न तोड़ाहै, न छोड़ाहै, अत: इसके प्राय: सभी पात्र ऐतिहासिक हैं। उसीके अनुसार 'कथानककी धाराको जैसी थी वैसी ही रहने दियाहै। घटनाओंके क्रममें उनकी ओरसे नमक-मिर्च मिलानेका प्रयत्न अत्यल्प है, तिथिक्रम भी इतिहास सम्मत है'। अत: वह इस पुस्तकको न इतिहास ही मानताहै, न उपन्यास ही। राजस्थानके मूल इतिहासकारोंके अध्ययनका प्रतिफल है यह 'शक्तिपुत्र'। यह शक्तिपुत्र है हमीर। शक्ति ही तो देवी है। उसका पुत्र अन्तत: अपनी गहरी राजनीतिक सूझ-बूझ, प्रबल पराक्रम, कारगर रण-कौशल और साहससे अपने पूर्वजोंकी खोयी हुई पुण्यभूमि चित्तौड़को फिरसे प्राप्त करनेका श्रेयस कर्म करताहै। वह मोहम्मद तुगलकको युद्धमें बन्दी बना लेताहै और अपनी ही शर्तोंपर उसे मुक्त करताहै। उसकी जन्मजात ठकुराई और दूरदर्शी विवेक उसकी सदैव सहायता करताहै, तभी तो वह 'अन्नदाता' महाराणा बन पाता है?

एक समय उसका मनभी जीवनकी गहन निराशाके क्षणोंमें सोमतीर्थकी ओर प्रयाणकर, द्वारिकामें द्वारिकानाथके दर्शनोंके उपरान्त जल-समाधि लेनेका संकल्प लेताहै। चारों ओरकी असफलताएं उसे विवश बना देतीहै और अपनी मरण-यात्रा केलवाड़ासे आरंभ करता है, क्योंकि किसान लोग, विशेषत: चितौड़के किसान महाराव मालदेवके प्रशासनके लिए उसकी आज्ञाका उल्लंघन कर अन्न उगाते रहतेहैं। और चित्तौड़को अपने शत्रुओंसे मुक्त करा लेनेकी सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जातीहैं। वह अपने विश्वस्त साथियोंके साथ मेवाड़ छोड़कर निकल पड़ताहै।

और यहींसे यह मरण-वरण प्रकरण ही 'शक्तिपुत्र' को उपन्यासकी सही आकृति देताहै। यह प्रकरण चरित्र-नायकके अन्तर्मनके मार्मिक संघर्ष अन्तर्विरोध और असमंजसपूर्ण भावातिरेकको व्यंजित करताहै। हमीरके इस यात्री-दलको मार्गमें कई प्रकारके लोग मिलतेहैं जिनमें अनेक शरीरसे विकलांग, भूखे-अधनंगे, सर्वस्व खोये मरे-मरेसे चलते-फिरते नर-कंकाल, उजड़े-उजड़े जले हुए गांव, जहां दिनमें भी सियारोंकी चहलकदमी दिखायी दी। जो भव्य प्रासाद जहां नर्तकियोंके पैरोंके घुंघरूओंकी रुनझुन ध्वनि अहिर्निश ध्वनित होती रहती थीं, उन्हींके मलवेके ढेरके ढेर, धूल चाटती मंदिरोंकी घंटियां, दिन रात जिनकी आरती-अर्चना, पूजा और अभ्यर्थनासे महिमामण्डित अनेक कलात्मक देव प्रतिमाएं, मूर्तिभंजकोंके लोह प्रहारोंसे खंड-खंड बिखरी पड़ी मिलीं। जले हुए खेत खलियान और हरे-भरे वन-प्रांतर अपनी दारूण कथा कहते जैसे उन्हें पुकार रहेथे। यही नहीं, लाखों पशुओंके अस्थि पंजर ठौर-ठौरपर दिखायी दे रहेथे।

व्यभिचार, बलात्कार, तलवारोंकी नोकोंपर धर्म परिवर्तन, मंदिरोंका विध्वंस, बच्चोंकी नृशंस हत्याओंके रुदन भरे विवरण, भस्मीभूत अनेक घर-बार—सारे हृदय विदारक दृश्य हमीरके मृत्युकामी मनको जैसे ज्वलंत चुनौती दे देकर, उसे बड़ी गहराई तक खंगाल रहेथे।

इस पस्त और थकेहारे दलके गांवमें मंदिरके पुजारीका आतिथ्य फिर सम्बल देताहै, देवी बरवड़ीसे फिर नये सिरेसे जीवन जीनेका प्रेरणास्पद प्रकाश मिलता है, जो उनके बुझते हुए मन-दीपकोंमें फिरसे स्नेह पूरता है। यह 'शक्तिपुत्र' उसी देवीकी भविष्य-वाणीको रूपायित करनेका सार्थक प्रयत्न है। युद्धकी छापामार प्रणाली हमीर-युगका भी एक सार्थक सत्य रहीहै। अनेक वर्षों तक मेवाड़की धरतीपर भील, मीणों और और वनवासियोंके सक्रिय और सजग सहयोगसे गुहिल वंशी इसी रणनीतिको अपनाते रहे। हमीरकी भांति बादमें महाराणा प्रतापको भी हल्दी घाटीके युद्धके बाद अपनी विषम और मर्मांतक परिस्थितियोंके कारण, देश छोड़नेका संकल्प लेना पड़ाथा। उनका यह मर्मवचन कि 'मरणो भलो बिदेश मां, जहां न अपणो कोय/ माटी खाय जनावरां महा महोत्सव होय।'—उसी मनस्तापकी तपनको उजागर करताहै। लेकिन तब कोई देवी बरवड़ी नहीं भामाशाह जैसे देशभक्त और त्यागी दानवीरने अपना सारा स्वार्जित अर्पणकर, जीवन संघर्षके लिए फिरसे उत्प्रेरित कियाथा।

अरावली शृंखलाका वह गौरवशाली अतीत राजस्थानकी प्राचीन साहित्यिक कृतियोंमें, उसके घने

जंगलोंमें जागता-सोता जन-जीवन, जीनेके लिए अनवरत जूझता हुआ वह मनुष्य और उसके जीवन्त दृश्य अब कहाँ दिखायी देतेहैं ? यह ठीक है कि अब जंगल कट-छटसे गयेहैं, और उसके दुष्प्रभावने वृन्दावन तक को मरुस्थली बनानेकी जैसे ठान लीहै, पर अरावलीकी उपत्यकाओंमें क्या गरीबीसे जूझता हुआ जीवन, संवेदन की सृजनवती आंखोंके सामने नहीं आता ? 'सतपुड़ा के घने जंगल' जैसी एकाध रचना भी यहां कहां है ?

'शक्तिपुत्र' राजस्थानके उसी ऐतिहासिक अतीत का चित्र है, जहां अरावलीकी गहरी घाटियां और जंगल एक बार फिर जीवन्त हो उठेहैं, परन्तु संघर्ष और सफलता यहां अन्नदाता सामंती जीवनकी ही है अन्न उगानेवाले धरतीपुत्र किसानोंकी नहीं साम्राज्य कायम करने या उसे तलवारोंकी धारपर स्थापित करनेका चित्रण है यहां, जो इतिहास-सम्मत है । अधिसंख्य घटनाएं और तिथियांभी इतिहास-सम्मत हैं, 'शक्तिपुत्र' की कहानी कहनेका ढंग तक इतिहास-सम्मत है । कभी डॉ. मोतीलाल मेनारियाने 'मेवाड़की विभूतियां' नामक कृति दो भागोंमें लिखीथी । वह इन ऐतिहासिक शक्ति पुत्रोंकी कथा न जाने कितने हृदयों पर उस युगमें, उस अतीतकी चित्रमयी पिछवई-सा प्रभाव छोड़तीथी । इस लेखकका 'शक्तिपुत्र' भी उनमें से एक है । उसके पिता अरिसिंह और उनकी पत्नी वह कृषक वीरबालाका वह रोमांचक और रोचक प्रसंग भी मेनारियाजीकी संवेदनशील कलमने उकेरा है । इतिहास और कल्पनाका सजीव रोमांस है वहां । लेकिन दृष्टि समूची सामंतवादी—खमागणी अन्नदातावाली ।

परन्तु 'शक्तिपुत्र' के इस लेखककी दृष्टि उससे कुछ अधिक खुलापन लिये हुएहै, आजके, वर्तमानके दृष्टिबोधसे यथाशक्ति संवारनेका प्रयत्न इस कलमने कियाहै । पात्रोंकी जीवन्तता तो उनके कृतित्वके माध्यम से ही निरूपित होतीहै, मात्र उनके बड़बोलेपन मात्रसे नहीं । महाराणा हमीरका यह कथन कि "अरे सुलतान ! आपने जो भी कष्ट उन भोले-भाले निर्दोष किसानोंको दिया उसका हिसाब-किताब तो आपका खुदा कयामत के दिन करेगा । जिन लोगोंकी बहू-बेटियां बेइज्जत हुईं, उनकी पीड़ाका अन्दाज आप नहीं लगा सकतेहैं । उनको मैं क्या दे सकताहूं । उनके घावोंको न आप भर सकतेहैं, न मेरे शब्द । यदि आपके साथ भी वैसाही व्यवहार किया जाये तो शाही महलोंमें रहनेवालोंको पता लगेगा कि पीड़ा और जुल्मको कैसे भुगता जाता है । दूसरोंकी गर्दन उड़ा देना आसान है, परन्तु अपनी कटी अंगुलीकी पीड़ा सहन करना कितना असह्य है ? ...हिदायतें तो कई मित्रों, पुस्तकों और पैगम्बरोंने दी हैं, परन्तु इन्सान उन्हें मानता कब है ? हिदायतों पर बहस करना, उन्हें याद करना और भाषणोंमें उनका प्रयोग करना बहुत सरल है, सुल्तान ! पर अमल करना कठिन है ।"—इस चरित्रनायकके कृतित्वकी अपनी विशेषता रहीहै, जो भारतीय संस्कृतिकी गरिमा के अनुरूप है । उनकी भार्या रानी दमयंती तक देश और मनुष्यताकी रक्षार्थ अपने पिता महाराव मालदेव तक के खिलाफ विद्रोहपर उतर आतीहै । मालदेव तो अपनी ही स्वार्थ-सिद्धिके लिए सदैव सन्नद्ध रहेहैं, पर अन्ततः उन्हें भी अपनी पुत्रीके सम्मुख झुकना पड़ताहै ।

हमीरके अन्यान्य सहयोगी यथा—देवाजी भील, मोती जी भील, बारुजी चारण, मेहता जालसी भीम मामा, पुरोहित जयराम, भोलू पंडित, चारण देवीदान आदि अपने कर्तव्योंको लगन और निष्ठा, विवेक और वीरता, साहस और शौर्यके साथ सम्पादित करतेहैं । रावल रत्नसिंह, भट्ट लक्ष्मणसिंह और हमीरके पिता अरिसिंह तो शक्ति-शौर्य, भक्ति और विवेकसे सम्पन्न व्यक्तित्ववान् हैं ही । जिनकी कथनी और करणी सदैव एकरस, एकरूप रहीहै, उनका वह अतीत इसका साक्षी है । सारा कथानक इकहरा और वर्णनात्मक है क्योंकि तत्कालीनकी उपेक्षा लेखक नहीं कर पाया, न ही उसके विविध रोमांचक पहलुओंको संकल्पनाके बिम्बही बना पाया । हमीरकी वह अनाम भार्या दमयंती के व्यक्तित्वके रखावमें उस कल्पनाकी पर्याप्त संभावना भी थी, पर लेखकने इतिहासकी लकीरोंकी लीक को अपनाना ही अधिक पसंद किया । 'मेवाड़की विभूतियां' में चित्तौड़ स्थित उस गुफामें हमीरको देवी द्वारा प्रदत्त तलवारका वह प्रकरण भी बड़ा आकर्षक

वैसे इस कथानकमें भी अन्य ऐतिहासिक उपन्य[illegible] यथा 'नीला चाँद' की तरह अपने विश्वास और [illegible] अन्तर्ग्रथित हैं ही—योगनियां, चारणियां [illegible] माया भी है । महाराव मालदेव और हमीर [illegible] पात्र उनके चमत्कारी व्यक्तित्वसे लाभ[illegible]तेहैं । औघड़ बाबाका व्यक्तित्व और अधिक स[illegible]त और यथार्थपरक बन सकताथा । हमीरके व्यक्ति[illegible]को

उसके महत् कार्योंके माध्यमसे उकेरनेका अच्छा प्रयत्न लेखकने कियाहै। यहां मानवीय दुर्बलताकी अभिव्यक्ति कहीं नहीं है। वैसे हमीर हठ तो इतिहास-प्रसिद्ध सच हैं। कुछेक रखैलियां हैं उसकी जिनके कारण राणी दमयंती खिन्न रहा करतीहै। हमीर अपने ससुर मालदेवकी स्वाभाविक मृत्युके उपरान्तही चित्तोड़पर बड़ी ही चतुराईसे चढ़ाई करताहै और राजगद्दीपर बैठे अपने बड़े सालेको परास्त कर चित्तोड़ गढ़पर अधिकार कर लेताहै। बड़ा साला अपने निर्वासन कालमें मोहम्मद तुगलककी सहायतासे फिर चित्तौड़ पर आक्रमण करताहै, पर हमीरके रणकौशलसे पराजित होकर तुगलक बन्दी बना लिया जाताहै। तुगलक के साथ फिरभी मानवीय व्यवहार किया जाताहै और अंततः उसकी भेंट स्वीकार कर अपनीही शर्तोंपर उसे क्षमा कर मुक्त कर दिया जाताहै। हमीर वीर ही नहीं, विवेकशील राजनीतिज्ञ भी है, साथही मनुष्यता का पक्षधर भी। उसे उसके जीवनानुभवोंने निरन्तर तराशाहै। जीवनकी यह कर्मस्थलीही उस ग्रामीण वीरकी पाठशाला रही और वही उसे तत्कालीन मेवाड़ की अन्नदाता बनातीहै। वह गुहिल वंशके आराध्यदेव एकलिंगनाथकी साक्षीमें उनके दीवानकी पदवी धारण करताहै और पुजारी 'सर्वे भवन्तु सुखि नः' के श्लोकोच्चारणके साथ उसे अपने आशीर्वादसे अभिषिक्त करताहै।

भाषा सहज प्रवाहपूर्ण और साफ सुथरी है कहीं भी वैचारिक अस्पष्टताका उलझाव नहीं क्योंकि इसके सभी पात्र इकहरे व्यक्तित्वके हैं और जिनमें मनोवैज्ञानिक अंतर्मंथन बहुत ही कम हैं। वे सभी अपने अपने कर्त्तव्योंकी सीमाओंमें बंधेहै अतः उनकी सार्थकता इतिहासके परिप्रेक्ष्यमें ही अधिक है। फिरभी 'शक्ति ' इस लेखकसे अधिक जीवन्त कृतियोंकी उम्मीद ताहै। ☐

गिरा अनयन, नयन बिनु बानी[1]

[तेलुगुसे अनूदित]

लेखक : बलिवाड कान्ता राव
अनुवाद : डॉ. पाण्डुरंग राव
समीक्षक : सन्हैयालाल ओझा

प्रस्तुत उपन्यास तेलुगुके प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री बलिवाड कान्ता रावके प्रसिद्ध मूल उपन्यास 'इदे नरकम् इदे स्वर्गम्' (यहीं नर्क यहीं स्वर्ग) का हिन्दी अनुवाद एक प्रतिभाशाली जन्मान्ध युवक श्रीकान्तम्की अपनी जन्मजात अन्धतासे संघर्ष और उसपर विजयकी हृदयग्राही गाथा है। केवल स्पर्श, श्रवण और गन्धकी सीमित शक्ति द्वारा रेखाओंके माध्यमसे श्रीकान्तम् न केवल प्रकृतिके रूप-रसमय सम्यक् जगत्का बोध ही प्राप्त कर लेताहै, बल्कि अपने हृदयकी उर्वर भावभूमिमें परात्पर मानसिक भाव-सौंदर्य भी उपलब्ध कर लेताहै। रचनाके मध्य गुजरते हुए कहीं नहीं लगता कि लेखक किसी प्रतिनियुक्त अनुभवका वर्णन कर रहाहै। बल्कि स्वयं अपनी नेत्रहीनताका वर्णन कर रहाहैं। एक उत्कृष्ट रचनाकी यही कसौटी है कि अपनी रचनामें वह कहां तक स्वयम्का अतिक्रमण कर सकाहै। श्रीकान्तम् स्वयं अपनी कहानी कह रहाहै, किन्तु सच तो वह एक स-नेत्र लेखककी लेखनीकी प्रतिभाका परिणाम है!

श्रीकान्तम् अपनी नेत्रहीनताके कारण कहीं उसे अपनी हीनताका बोध नहीं होता। वह क्रमशः उमा बाला, नागमणि आदिके सम्पर्कमें प्रेमके कोमल भावोंको भी बराबर अनुभव करताहै और अन्तमें जब वह एक गायकके रूपमें प्रतिष्ठित हो जाताहै तो मानों उसके अभावकी पूर्तिके लिए ही एक सुन्दर नयनोंवाली, किन्तु मूक युवती कल्याणी उसकी जीवनसंगिनी बन जातीहै। लेखकने रही-सही कमी उन्हें एक सवाक्-सनयन सुन्दर मनोज्ञ पुत्र देकर पूरी कर दी।

अनुवादकी भाषा प्रांजल और प्रवाहमयी है तथा मूलका आनन्द देतीहै, किंतु, कहीं कहीं अस्पष्टता

---

१. प्रका. : भारतीय ज्ञानपीठ, १८ इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११०००३। पृष्ठ : १३०; डिमा. ९३; मूल्य : ७५.०० रु.।

और असंगतियां खटकतीहैं । पृष्ठ ५ पर ही दादाजी के बड़े लड़केका उल्लेख हैं। इस लड़केके पैदा होतेही दादीजीका देहान्त हो जाताहै। जब उससे छोटा कोई हुआ ही नहीं, तो बड़े होनेका क्या अर्थ है?—पृष्ठ ३३ पर मान्त्रिक मरिउम्मा द्वारा श्रीकान्तम्के पूर्व जन्मकी कहानी, एक पूर्वजन्मकी है या दो-तीन पूर्व जन्मोंकी? पृ. ३४ पर बरगदके एक छोटे-से पौधेका उल्लेख हैं। आगे ही कहाहै, 'उसका बीज तो बहुत छोटा होताहै, पर पेड़ बहुत बड़ा होताहै।

अनुवादकने मूल पुस्तकका नाम बदल दियाहै, जो काव्यमय तो है किन्तु लेखकके मूल नाम 'यहीं नर्क यहीं स्वर्ग' की सार्थकताको नहीं पहुंच पाता। संगीतके प्रति श्रीकांतम्की रुचि तो बहुत बादमें विकसित होतीहै, उसका संघर्ष संगीतज्ञ होनेका हैभी नहीं। वह अपनेसे तीन बड़े समर्थ भाइयोंके बाद चौथी संतान है। बत्तीस परिच्छेदोंके कथा-प्रवाहमें, नागमणिकी उपेक्षासे विरत होकर ही वह केवल उन्तीसवें परिच्छेदमें संगीतकी सुर-सुन्दरियोंसे पहचान प्रारंभ करताहै और तब वे उससे प्रभावित होने लगती हैं—'गिरा' को 'अनयन' बने रहनेका अभिशाप नहीं ढोना पड़ा। कल्याणीके नयन भी कहीं वाणीके मुहताज नहीं दिखायी देते। स्वयं श्रीकांतम् अन्तमें कहताहै 'यहीं उसका स्वर्ग हैं और यहीं उसका नर्क भी!' (पृ. १२१) और इस वाक्यमें हीं उपन्यासका सार्थक बोध समाया हुआहै □

दो सखियां[1]

उपन्यासकार : गोवर्द्धन ठाकुर
समीक्षक : डॉ. शत्रुघ्नप्रसाद

प्रस्तुत उपन्यास घटना प्रधान सामाजिक है, मारिशसके हिन्दू सामाजिक-पारिवारिक जीवनकी प्रेम समस्या पर आधारित। यह प्रेमकथा मारिशस तक सीमित नहीं रह जाती। इसकी सीमा भारत और इंगलैण्ड तक फैल जातीहै। भारतका उल्लेख है, पर इंगलैंडका प्रत्यक्ष वर्णन भी! तथापि सीमाके फैलावके व्यापकत्व का अनुभव नहीं होपाता। प्रेमकी अनुभूतिकी गहराई का अनुभव अवश्य ही नायिका चमेलीके जीवनमें हो पाता। यह उपन्यासकारकी सफलता है। सामाजिक जीवनमें उनकी और गरीबीका अन्तर रहताहै। प्रेमके क्षेत्रमें यह अन्तर कष्ट देताहै। यह अन्तर त्यागकी मांग करताहै। अनुभूतिकी गहराईका मापक बन जाताहै। उपन्यासकारने एक ओर अमीरी और गरीबी का चित्रण कियाहै, दूसरी ओर नायिका चमेलीके सम्पन्न जीवनमें विपन्न नायक गुलाबके प्रति प्रेम भाव निरन्तर सघन होता जाताहै, प्रत्येक अवरोध निरन्तर मिटता जाताहै। अन्तका अवरोध उसे मृत्यु तक पहुंचा देताहै, पर उसका भाव असीम निष्ठामें परिणत होकर त्रासदी की सृष्टि कर देताहै। यहभी लेखककी सफलता है। पर अन्तिम अवरोध-गुण्डोंका हमला उचित और आवश्यक प्रतीत नहीं होता।

कथा आधुनिक जीवनकी प्रेमकथा है। धनी पिता की पुत्री चमेली स्कूल और पुस्तकालय आते-जाते गरीब गुलाबसे प्रेम कर बैठतीहै। गुलाब कालेजका छात्र है। दोनोंको पढ़नेमें रुचि है। पुस्तकों-उपन्यासोंके आदान-प्रदानमें ही मिलना हो जाताहै। परन्तु त्रियोले के बड़े किसानके पुत्र, जिसे समरदासने गोद ले लिया था—रणछोड़दाससे चमेलीका विवाह तय हो जाता है। रणछोड़दास शराबी और चरित्रहीन है। पिता शराबपर पर्दा डालतेहैं। पर चमेलीको पता चल जाता

1. प्रका. : हिन्दी बुक सेंटर, ४/५-बी, आसफअली रोड, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १२०; डिमा. ९३; मूल्य : ५०.०० रु.।

है। इसी आधारपर विरोध करतीहै। गुलाबके प्रति रागभाव भी प्रकट होताहै। पिता अमरसेनके दबाव पर वह चुप रहतीहै। अत: रणछोड़ चमेली और उसकी सखी चम्पाको लेकर सागर तटपर जाताहै। कौन चमेली है—उसकी वाग्दत्ता है, समझ नहीं पाता है। चम्पा भी विनोदकी दृष्टिसे चमेली होनेका स्वांग रचतीहै। फलत: शराबी रणछोड़ पेप्सीमें शराब मिला-कर पिला देताहै। चमेली ही सखी बन जातीहै। उसे शराबका शक होताहै। वह नहीं पीती। अलग रह जातीहै। रणछोड़ चम्पाके साथ बलात्कार कर हट जाताहै। चम्पा गर्भवती हो जातीहै। वह सिविल मैरिज कर लेतीहै। तथापि रणछोड़ उसे अस्वीकार करताहै। डॉ. भारद्वाज सहारा देतेहैं। उधर चमेलीका विरोध प्रबल होताहै। और वह गुलाबके प्रति संकल्पित होतीहै। डॉ. भारद्वाज पत्नीकी मृत्युके बाद चम्पाको अपना लेतेहैं। एक समस्याका समाधान हो जाताहै। दूसरी ओर गुलाब चमेलीकी सहायतासे ऊंची शिक्षाके लिए इंगलैण्ड जाताहै। वहां भारतकी प्रभा उसे प्यार करने लगतीहै। गुलाब भी निकट आताहै। पर मारि-शसमें घटनाचक्र मोड़ लेताहै। एक दिन शामको गुण्डे चमेलीको घेर लेतेहैं। उसके साथ बलात्कार होताहै। वह खाटपर गिर जातीहै। शरीरके साथ मन आहत हो जाताहै। गुलाबके लौटनेपर उसके सामनेही मृत्युको प्राप्त होतीहै। गुलाब दु:खी होताहै अन्तत: चमेलीके माता-पिता—अमरसेन और शिवरानी भारतकी प्रभा से उसका विवाह करा देतेहैं।

इस प्रकार यह त्रासदी सामने आतीहै। एक ओर इस उपन्यासमें मारिशसके हिन्दू सामाजिक-सांस्कृतिक जीवनका प्रभावी वर्णन है तो दूसरी ओर सामाजिक जीवनमें गिरावट--शराब, गुण्डा-गर्दी और बलात्कारका भी रोमांचकारी अंकन है। यदि इसमें एक ओर हिन्दी भाषा एवं हिन्दू संस्कृतिके विकासमें पं. विष्णुदयाल की चर्चा है तो दूसरी ओर आधुनिकताके प्रभाव स्वरूप विवाहसे पहले मिलने-जुलने और आलिंगनकी भी स्थिति है। इस स्थितिमें स्खलन संभव है। एक ओर मारिशसके भौगोलिक रूप—नगर-ग्राम और सागर तटका सम्यक् वर्णन है तो दूसरी ओर भारत और इंगलैण्डकी चर्चा भी है। परन्तु, मारिशसके जीवनका — सम्पूर्ण आर्थिक-सामाजिक जीवनका चित्रण नहीं हो सकाहै। यह अवश्य है कि आधुनिकताके साथ हिन्दू विश्वासों एवं मान्यताओंका चित्रण मनको छू लेताहै। मारिशसके सन्दर्भमें यह अपेक्षित भी है।

कथानकमें कुछ घटनाएं नियोजित हैं जो उपन्यास में गति लातीहैं। चम्पाको चमेली समझ लेना, पेप्सी में शराब मिलाकर पिलाना और फिर बलात्कार रण-छोड़ दासके लिए एक हदतक स्वाभाविक माना जा सकताहै। परन्तु डॉ. भारद्वाजकी पत्नीकी मृत्यु चम्पा के उद्धारके लिए होतीहै। यह स्वाभाविक नहीं लगती। इसी प्रकार संकल्पित-समर्पित चमेलीका गुण्डोंका शिकार हो जाना, आत्महत्याका प्रयास और अन्तत: मृत्यु त्रासद है। यह ठीक है कि इससे चमेलीका चरित्र उभरताहै। उपन्यासकारने चमेलीके चरित्रको निरन्तर उठायाहै। प्रभावित भी करताहै। पर गुलाबका प्रभा की ओर आकर्षण और उससे विवाहके लिए चमेली का मरण मन स्वीकार नहीं करता। कथानक दुर्बल हो जाताहै। वैसे तो आजके आधुनिक जीवनमें कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। पर चमेलीके साथ बला-त्कार अस्वाभाविक और सुनियोजित है।

ठाकुरने मुख्य रूपसे चमेली और गुलाबके चरित्र को चित्रित करनेका प्रयास कियाहै। चमेलीका चरित्र ऊपर उठता जाताहै। उसका दर्द सबका दर्द बन जाताहै। पर गुलाबका इंगलैण्डमें प्रभाकी ओर मुड़ना एक ऊंचे चरित्रका सामान्य धरातलपर आ जानाहै। चम्पा सामान्य चरित्र है पर रणछोड़ तो चरित्रहीन है ही। निस्सन्देह उपन्यासकारने नारी चरित्रके प्रति सहानुभूति दिखायीहै। पुरुष पात्रोंके सहज पुरुष रूप को दिखानेका प्रयास कियाहै। गुलाब भी एकनिष्ठ नहीं रह पाताहै। तथापि लेखकमें चरित्रको समझने की क्षमता है। कथानक व चरित्रकी रचनामें उसे प्रभावमुक्त होनाहै।

उपन्यासमें मारिशसके प्रकृति चित्रणके साथ पुस्त-कालय प्रेमचन्द भवन एवं मंदिरोंका वर्णन हुआहै। गुलाब और चमेलीके भावोंकी अभिव्यक्ति भी प्रभावी हो गयीहै। परन्तु शैक्षणिक संस्थान, मंदिर, एवं किसान जीवनका सजीव वर्णन नहीं हो सकाहै। केवल उल्लेखभर है। लेखक अपने परिवेशकी सजी-वताको शब्दायित करनेके लिए तत्पर रहे—यह आवश्यक है अध्ययन, पर्यवेक्षण एवं मननके साथ निरन्तर लेखन लेखनीको सशक्त बनायेगा। ☐

देवकी[1]
[उड़ियासे अनूदित]

मूल लेखक : प्रतिभा राय
अनुवादक : राजेन्द्रप्रसाद मिश्र
समीक्षक : हरदयाल

उड़ियाकी सुप्रसिद्ध लेखिकाकी पन्द्रह कहानियोंका संग्रह है 'देवकी'। संग्रहमें कहानियोंसे पहले 'लेखकीय' दिया गयाहै, जो लेखिकाकी सूझबूझ और विचारशीलताका सटीक प्रमाण है। अपने वक्तव्यमें लेखिका ने कहानीकी वस्तु और शिल्पके सम्बन्धमें सुविचारित और सुलझी हुई टिप्पणियां कीहैं। कहानियोंमें लेखिका की दृष्टि क्या है, इसका अनुमान उसकी इस टिप्पणीसे सहज ही लगायाजा सकताहै—"कहानीका जीवन है यथार्थ। जीवनके सत्यको प्रकट करते समय एक अच्छी कहानी जीवनकी निष्ठुरता बीभत्सता और पापको भी प्रकट कर देतीहै। पर सत्यको प्रकट करते-करते एक अच्छी कहानी 'शिव' की अवहेलना नहीं कर सकती। जो मंगलकारी है, वही शिव है। यथार्थ के नामपर कहानीमें उद्दण्डता, हिंसा अश्लीलताको प्रमुख स्थान देकर मंगलकारी, सौन्दर्यभरे विश्वको गौण करना उचित नहीं। इसलिए यथार्थके निष्ठुर सांचेमें एक कल्याणकारी जगका सपना अच्छी कहानी में अंकित होताहै।" (पृष्ठ १०)। अपनी इसी दृष्टि के कारण लेखिकाने अग्राह्य सत्यको भी शिवसे मण्डित करके सुन्दर बना दियाहै।

जिस कहानीको पूरे संग्रहके नामकरणके लिए चुना गयाहै, सबसे पहले उसकी चर्चा करना उचित होगा।

[1] प्रका. : भारतीय ज्ञानपीठ, १८ इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११०००३। पृष्ठ : १७०; डिमा. ९३; मूल्य : ६०.०० रु.।

इस कहानीमें अकालग्रस्त गांवकी झुमिया और पौराणिक आख्यानकी देवकीकी तुलना की गयीहै। झुमिया और देवकीमें साम्य इतना ही है कि दोनों आठ सन्तानोंको जन्म देतीहैं और दोनोंके सामने अपनी-अपनी सन्तानोंकी प्राणरक्षाकी समस्या है। इस साम्य के अतिरिक्त दोनोंमें वैषम्य ही वैषम्य है। देवकी कंस के हाथों सात सन्तानोंके मारे जानेपर आठवीं सन्तान के रूपमें कृष्णको जन्म देकर अन्ततः जीत जातीहै। कंस जैसे क्रूर शासकपर विजय पायी जा सकतीहै। पर झुमियाका कंस तो अकाल और सूखा है जिसपर विजय पाना सरल नहीं है। उसका पहला लड़का भुखमरीसे तंग आकर कहीं भाग गया। उसके बाद एकके बाद एक उत्पन्न होनेवाली उसकी सन्तानको अकाल खाता गया। उसने अपनी सातवीं सन्तानको ८० रुपये और एक मोटी-साड़ीके बदले इस आशासे बेच दिया जिससे वह अपनी आंठवीं गर्भस्थ सन्तानकी रक्षा कर सके; लेकिन यह सन्तान बीच रास्तेमें समयसे पहलेही मृत पैदा हुई। अपनी इस आठवीं सन्तानसे, जिसे वह 'देवशिशु' के रूपमें देखतीहै, उसे अपने उद्धारकी आशा है। पर इस आशाके निराशामें बदलनेपर वह टूटती नहीं, "क्योंकि वह जानतीहै, उसके गांवमें साल में बारहों महीने भरपेट भात जुटानेकी अपेक्षा सालमें एक बार मां बनना अधिक सहज है।" (पृ. ६१) इस तुलनामें लेखिकाने झुमियाके संघर्ष और मातृत्वको देवकीके संघर्ष और मातृत्वसे श्रेष्ठ ही सिद्ध कियाहै।

'देवकी' कहानीमें लेखिकाने देवकीकी कथाको सन्दर्भके रूपमें प्रयुक्त कियाहै, इससे उसकी प्राचीनको आधुनिक सन्दर्भमें देखने और विचार करनेकी प्रवृत्ति सामने आतीहै। यह प्रवृत्ति और अधिक प्रखर और प्रत्यक्ष रूपसे 'इतिवुत्तक' (जिसे भ्रम-वश 'इतिवृत्तक' के रूपमें छापा गयाहै।) कहानीमें सामने आयीहै।

इस कहानीमें 'लेखिकाने गौतम बुद्धके जीवन और उपदेशोंपर यशोधराकी नारी दृष्टिसे प्रश्नचिह्न लगायेहैं। बुद्धके दुःखवादको लेकर यशोधराके मनमें बराबर शंकाएं उत्पन्न होतीहैं—"संसार दुःखमय है, क्या सुखको भी दुःख समझकर जीवनको दुःखमय करना ही इस जीवनका लक्ष्य है? दुःखमें सुख ढूंढ़ना उचित है या सुखमें दुःख? मृत्यु जीवनका एक अटल सत्य है तो क्या जीवन मिथ्या है? वार्धक्य अटल है तो क्या यौवन मिथ्या है? जीवन, यौवन क्षण-स्थायी हो सकतेहै, पर मिथ्या नहीं।" (पृष्ठ ९९)। इस कहानीको पढ़ते समय हमें बुद्धकी अपेक्षा यशोधरा का दृष्टिकोण ही अधिक सत्य प्रतीत होताहै। यह लेखिकाकी सफलता है। लेखिकाकी सफलताका रहस्य इस बातमें है कि लेखिकाकी जीवन दृष्टिभी यही है अर्थात् जीवनके स्वीकारकी, अस्वीकारकी नहीं। उसने इस कहानीमें ही नहीं, अन्य कहानियोंमें भी बुद्धके दुःखवादपर प्रश्नचिह्न लगायाहै। 'चन्द्रभागा और चन्द्रकला' कहानीमें उसने लिखाहै—"बुद्धत्वकी अमरवाणी, प्रथम आर्य सत्य दुःख। दुःख मनुष्यके जीवनका एक मर्मान्तक सत्य है। परन्तु मनुष्य दुःखमें भी सुखकी खोज करताहै। अलग-अलग उपायोंसे दुःखको कम करताहै। इसलिए रोगग्रस्त मनुष्य चिकित्साकी सहायता लेताहै, मनको दिलासा देताहै, रोग क्षणिक है—स्वस्थ जीवन ही शाश्वत सत्य है। जबकि मनुष्यको मालूम है, विपरीत बात ही अकाट्य है। आशा ही दुःखका कारण है। जबकि वह आशा ही मनुष्यको जिलाये रखतीहै—आशा ही मनुष्यको आनन्द देतीहै, जबकि आनन्द स्वयं क्षणिक है।" (पृष्ठ १०३)। अपाहिज चन्द्रभागाका परम दुःखात्मक स्थितिमें भी आनन्दमग्न रहना लेखिकाकी आशावादी दृष्टिका प्रमाण है।

मनुष्यका जीवन अन्तर्विरोधपूर्ण है। उसमें सुख-दुःख, आशा-निराशा, उदात्तता-अनुदात्तता, देवत्व-पशुत्व आदिके युग्म बराबर विद्यमान रहतेहैं। लेखिकाने अपनी कहानियोंमें इस सत्यका उद्घाटन बड़ी कुशलतासे कियाहै। 'अंगूठी' की बुढ़ियामें वात्सल्य और लोभ दोनों एक साथ विद्यमान हैं। 'वार्धक्य भत्ता' के वृद्ध दम्पतीका निस्वार्थ वात्सल्य और उनकी अमरीकी पुत्रवधू तथा किरायेदारिनकी पूंजीवादी व्यावसायिक मनोवृत्ति कि ममताकी भी कीमत होतीहै, दो परस्पर विरोधी जीवन दृष्टियोंके द्वन्द्वको हमारे सामने लाते हैं। 'अव्यक्त' कहानीमें सम्पन्न और सभ्य माने जाने वाले लोगोंकी बेईमानी और असभ्य माने जानेवाले गरीबोंकी ईमानदारीके परस्पर विरोधी चित्र उपस्थित किये गयेहैं।

अबतक हमने जिन कहानियोंकी चर्चा कीहै, उन्हें पढ़नेपर आप पायेंगे कि इनमें लेखिकाने अपनी सकारात्मक दृष्टिका ही परिचय नहीं दियाहै अपितु उसने मनुष्यके अन्तर्मनमें भी प्रवेश कियाहै। मानव-मनोविज्ञानमें उसकी रुचि भी है और पैठभी। इसीलिए उसने कुछ ऐसी कहानियां भी लिखीहैं जिनमें उसने व्यक्तियोंके मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत कियेहैं। 'नारंगी' कहानीमें निम्न वर्गकी ऐसी पत्नीका मनोविज्ञान प्रस्तुत किया गयाहै जो अपने पतिके दुर्व्यवहार और सद्व्यवहार दोनोंसे दुःखी रहतीहै, यद्यपि वह पतिमय है। 'जागीर' कहानीमें ऐसे ग्रामीणका अध्ययन प्रस्तुत किया गयाहै जिसे जीनेके लिए एक 'मिशन' चाहिये। उनके मिशनका दायरा परिवार, गांव और देशकी स्वाधीनता तक क्रमशः प्रसृत होता जाताहै। औरोंको वह पागल मालूम पड़ताहै जबकि वास्तवमें वह अपने मिशनमें मग्न है। 'मनका पुरुष' कहानीमें आदर्श पति-पत्नीके मनोविज्ञानको रेखांकित किया गयाहै। लेखिकाके अनुसार पुरुष हमेशा मां जैसी पत्नी चाहताहै जो उसकी पुत्रवत् देखभाल करे, लेकिन पत्नी पुत्रवत् आज्ञाकारी और पूर्णतः उसपर निर्भर रहनेवाला पति नहीं चाहती। तब वह कैसा पति चाहतीहै? लेखिकाने इसका स्पष्ट शब्दोंमें उत्तर नहीं दिया। इस कहानीके निर्मलकी दृष्टिमें उसकी पत्नी कमला आदर्श पत्नी है, पर कमलाकी दृष्टिमें निर्मल आदर्श पति नहीं है। निर्मलको लेकर कमलाने अपनी डायरीमें जो कुछ लिखाहै, उससे पाठक आदर्श पतिका चित्र बना सकताहै—"मेरे पति जैसा सरल, निर्मोही, अच्छा इन्सान आजकल पाना मुश्किल है। उन्होंने मुझपर दुनियां भर की सुख-सुविधाएं उंडेल दीं। अपनी क्षमताके अनुसार उन्होंने मुझे क्या कुछ नहीं दिया। फिरभी अगले जन्ममें मैं उन्हें पतिके रूप में नहीं पाना चाहती, बेटेके रूपमें पाना चाहतीहूं। जीवन भर मैं उन्हें सन्तानका स्नेह ही देती आयीहूं और उसीसे वे पूरी तरह सन्तुष्ट हैं। उनमें कोई कमी नहीं है। पर सब कुछ पानेके बावजूद कुछ भी न पाये

होनेकी व्यथा अन्दरसे बार-बार मेरे मनको कचो-टतीहै...क्योंकि मेरे पति सब कुछ थे...पर वे मेरे कल्पनाके आदमी, मेरे मनके पुरुष नहीं थे।" (पृष्ठ १३१) 'आँखें' कहानीमें एक स्त्री और पुत्रके पागल होनेके मनोवैज्ञानिक कारणोंको प्रस्तुत किया गयाहै। लेखिकाकी मान्यता है कि पागलपन मनो-वैज्ञानिककी अपेक्षा सामाजिक समस्या अधिक हैं। यदि सामाजिक-परिवारिक स्थितियां अनुकूल हों तो पागल हो जानेवाले स्त्री-पुरुष पागल न हों। 'एक्सि-डेण्ट' कहानी ऐसे पिताकी कहानी है जो अपनी पत्नी के डरसे दुर्घटनाग्रस्त व्यक्तिकी सहायता करनेसे डरता है। इसीके कारण वह अनजाने अपने दुर्घटनाग्रस्त पुत्र की भीं सहायता नहीं कर पाता और अपने एकमात्र पुत्रको जीवनभर के लिए अपाहिज बनानेमें परोक्षत: सहायक होताहै और पागल हो जाताहै। संग्रहकी यह सबसे दुर्बल कहानी है; क्योंकि इसका विभावन व्यापार प्रभावशाली नहीं बन पायाहै।

लेखिकाने अपनी कुछ कहानियोंमें अविस्मरणीय व्यक्तिचित्र उपस्थित कियेहैं। इस दृष्टिसे 'ट्रालीवाली' कहानी विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। इसमें एक ऐसी अविवाहित रहकर मां बननेवाली और अपने बलबूते जीवित रहनेवाली निम्नवर्गीय स्त्रीकी कहानी है। जो समाजकी परवाह नहीं करती। वह यदि किसी पुरुषसे संसर्ग करतीहै तो बराबरीके स्तरपर। उसकी नैतिक सोचके सम्बन्धमें हमारी जो भी राय हो, हम उसके जीवटकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। ऐसा लगताहै जैसे लेखिकाको समाजकी उपेक्षा स्वीकार्य नहीं है। तभी तो ट्रालीवालीको उपेक्षित मरते हुए चित्रित कियाहै।

प्रतिभा रायके इस कहानी-संग्रहमें दो कहानियां उड़ीसाके बण्डा आदिवासियोंके जीवनसे सम्बन्धित हैं। ये कहानियां हैं 'रेमो' और 'मंग'। 'रेमो' कहानीमें आदिवासियोंके नैतिक मूल्योंका चित्रण है और 'मंग' कहानीमें रक्त सम्बन्धोंका। आदिवासियोंके नैतिक मूल्य सभ्य माने जानेवालोंके मूल्योंसे हीन समझे जा सकतेहैं, पर यह सचाई नहीं है। सभ्य समाजमें स्त्री-पुरुषके बीच यौन सम्बन्ध समाज द्वारा स्वीकृत सम्बन्धोंके अतिरिक्त भी होतेहैं और बलात्कार भी होताहै; किन्तु बण्डा-समाजमें ऐसा नहीं होता। हां, उनके समाजमें स्वीकृत सम्बन्ध हमारे लिए अनैतिक हो सकतेहैं। यह अपने-अपने मूल्योंकी बात है। सभ्य समाजमें स्त्री असुरक्षित है, बण्डा-समाजमें वह सुरक्षित है। बण्डा भाषामें 'रेमो' का अर्थ है मनुष्य। कहानीका 'रेमो' शीर्षक रखकर लेखिकाने सम्भवत: बण्डा आदिवासियोंकी मनुष्यताको ही रेखांकित करना चाहाहै। 'मंग' कहानीमें लेखिका का कहनाहै कि बण्डा आदिवासियोंमें एक ही सम्बन्ध सच्चा है और वह है मातृत्वका। बाकी सब सम्बन्ध अस्थिर और अनिश्चित हैं। बण्डा भाषामें 'मंग' शब्द का अर्थ है मां।

'देवकी' संग्रहकी कहानियां पढ़कर अभिभूत हुए बिना नहीं रहाजा सकता। लेखिका कहानी कहनेकी कलामें अत्यन्त निपुण है। उसकी कहानियोंमें घटनाओं के कुशल संयोजनके साथ ही भावों और विचारोंकी सम्पन्नता, अविस्मरणीय चरित्र-रचना, चमत्कारपूर्ण अर्थगर्भित संवाद, मनपर छा जानेवाला परिवेश और व्यंजक भाषा भी विद्यमान है। फलत: लेखिका श्रेष्ठ कहानियोंकी रचना करने सफल हुईहै।

कहानियोंका अनुवाद सुन्दर बन पड़ाहै। घौंद, भार, धारता, पुर-पुर, दांय-दांय, फांय जैसे आंचलिक शब्दोंसे हो लगताहै कि हम उड़िया कहानियोंका हिन्दी अनुवाद पढ़ रहेहैं। अन्यथा ये कहानियां हिन्दीकी मौलिक कहानियोंका आस्वाद देतीहैं। ❐

सत्यका सफरनामा[1]

लेखक : जियालाल आर्य

समीक्षक : डॉ. तेजपाल चौधरी

'सत्यका सफरनामा' जियालाल आर्यका तीसरा कहानी-संग्रह है जिसमें दस कहानियां संगृहीत हैं। अपनी कथायात्रामें जियालाल आर्य अपने पूर्ववर्ती संग्रहों—'अलग अलग रास्ते' और 'विश्वासके अंकुर' की कहानियोंसे निश्चय ही आगे बढ़े हैं। परन्तु आज हिन्दी कहानी ही उस मोड़पर आ गयीहै जहां पहुंच कर नयी राहोंकी तलाश अनिवार्य हो जातीहै। इस लोकप्रिय विधामें आज यथार्थके नामपर जो सामग्री पाठकोंको परोसी जा रहीहै, वह इतनी बासी हो चुकी

---

१. प्रका.: राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ: ९२; का. ९२; मूल्य: ४०.०० रु.।

है कि उसमें न तो कथ्यके स्तरपर कोई नवीनता बचीहै न कलाके स्तरपर कोई सौन्दर्य। अत: आज कहानीमें (अन्य विधाओंमें भी) मूल्योन्मुख लेखनकी आवश्यकता बड़ी तीव्रताके साथ अनुभव की जाने लगी है। सौभाग्यसे इधरके कुछ कहानीकारोंमें परिवर्तन की आहट सुनायी देने लगीहै। जियालाल आर्यकी कुछ कहानियां इस दृष्टिसे आश्वस्त करतीहैं।

संग्रहकी शीर्षक कथा 'सत्यका सफरनामा' कलात्मकता भव्यता न होते हुए भी एक उत्तम कहानी है। कहानी विकास नामके एक ईमानदार कलेक्टरकी संघर्ष यात्रा का चित्रण करतीहै। विकास अपने क्षेत्रमे एक ऐसा स्कूल देखताहै जो केवल कागजोंपर चल रहाहै। स्कूलका न कहीं भवन है न अध्यापक है न छात्र। फिर भी सरकारसे नियमित ग्रान्ट मिलतीहै जिसे संस्था के संचालक मिल-बांट कर खा लेतेहै। विकास स्कूलकी ग्रांट रुकवा देताहै। राजनीतिक दवाब और अन्धे न्याय के चलते वह अपने संघर्षमें सफल तो नहीं हो पाता, परन्तु मूल्योंके लिए उसका जुझारुपन पाठककी आस्थाओंको बल प्रदान करताहै।

कहानीकारका यह आदर्शोन्मुख संघर्ष 'नक्सली' कहानीमें सफल होताहै, जहां एक अन्य जिलाधीश विवेककी साहसिकता और चारित्रिक उदात्तता प्रशासन में राजनीतिके हस्तक्षेपको तोड़नेमें सफल हो जातीहै। कहानीमें आदर्शवादकी गंध है, पर वह अविश्वसनीयता को नहीं छूती। प्रशासनमें राजनीतिके हस्तक्षेपको अन्य कहानियोंमें भी रेखांकित किया गयाहै। इस दृष्टिसे 'असहमति' एक उल्लेखनीय कहानी है। यह कहानी एक स्वतन्त्रतासेनानीके भ्रष्टाचारकी विभीषिकाको रूपायित करतीहै जिसे सरकारी अधिकारी सब जानते हुएभी हाथ लगानेका साहस नहीं करते। स्वयं मुख्यमन्त्री उसका बचाव करतेहैं। उनका तर्क है उनकी गिरफ्तारीसे स्वतन्त्रता सेनानियोंकी छवि धूमिल हो जायेगी। फलस्वरूप मामलेको रफा-दफा कर दिया जाताहै।

राजनीति और प्रशासनकी सांठ-गांठको भी कुछ कहानियां स्वर देतीहै। 'स्लम' का नेता राजेश नगरपालिकाके अधिकारियोंके साथ मिलकर झोपड़-बस्तीके निवासियोंका शोषण करताहै। अमिताभ इस कुचक्र का पर्दाफाश करना चाहताहै परन्तु नेताके प्रति लोगों की अन्धश्रद्धा आड़े आ जातीहै।

संघर्ष इन कहानियोंका प्रमुख स्वर है जो कहीं-कहीं अतिरंजित हो उठाहै। 'नामकी चोरी' इस कमीसे विशेष रूपसे ग्रस्त हुईहै। कहानीके दुखन पासवानका जमींदारके अत्याचारोंका केवल इसलिए शिकार होना कि उसके मां-बापने उसका नाम दुखहरण प्रसाद रख दियाथा जो जमींदार परिवारके किसी पूर्वजका नाम था अविश्वनीय लगताहै। कहानीका एक और कमजोर पक्ष दुखन और जमींदारकी बेटीका प्रेम-प्रसंग है और उससे भी कमजोर उसका प्रतिहिंसात्मक आक्रोश, जिससे अभिभूत होकर वह जमींदार और उसके दो बेटोंकी हत्या कर देताहै। स्पष्ट है, इस प्रकारकी अराजक घटनाएं संघर्षके औचित्यको आघात पहुंचातीहैं। 'झुकी हुई आंखें' में भी जमींदारकी लड़कीके भाग जाने और बरसों बाद पानकी दुकान चलाते हुए मिलनेका वर्णन इस वर्गकी विपन्नताको देखकर तुष्टि अनुभव करनेकी तामसिकताका परिचायक है। इसीके कारण वहां रुढ़िग्रस्तताकी बात गौण होकर रह गयीहै। कहानीके शीर्षकका भी यही संकेत है।

अन्य कहानियोंमें प्राचीन और अर्वाचीन मूल्योंके समन्वयकी कहानी 'दो चेहरे' ध्यान आकर्षित करती है। कहानीकी राधा अपने परम्परावादी ससुरकी भावनाओंकी रक्षाके लिए घरपर घूंघट निकालकर रहतीहै और स्टेशनसे गाड़ी छूटतेही आधुनिक अध्यापिका बन जातीहै। टकरावको टालनेकी यह स्थिति नाटकीय लगतीहै परन्तु इसे अयथार्थ नहीं कहा जा सकता।

वतनकी खातिर भी भावना और कर्त्तव्यके समन्वयकी कहानी है। स्मिथ और मेरी दाम्पत्य सम्बन्धोंके प्रति ईमानदार होते हुए भी अपने-अपने देश के प्रति समर्पित हैं। 'खुशीके आंसू' प्रौढ़ शिक्षाके आदर्श और यथार्थकी कहानी है जो हल्की-फुल्की होते हुएभी प्रभाव छोड़तीहै किन्तु 'सिपाही' एक साधारण कहानी है जो न केवल कथ्यमें स्पष्ट है न संवेदनामें।

शिल्पके स्तरपर संग्रहकी सभी कहानियां प्रौढ़ नही हैं। कई जगह अनलंकृत सपाट कथन संवेदनात्मक गहराई तक नहीं पहुंच पाते। □

गीताकी जीवन दृष्टि

श्रीमद्भगवद्गीताका जीवन-दर्शन[1]

कृतिकार : डॉ. ब्रजबिहारी निगम
समीक्षक : डॉ. भगीरथ बड़ोले

आधुनिक दार्शनिक अध्येताओंके अन्तर्गत परिगणित डॉ. ब्रजबिहारी निगम बहुमुखी व्यक्तित्वके धनी हैं। अपने दीर्घ जीवनकालमें मूलतः प्राध्यापकीय कर्म निबाहने वाले इस दार्शनिक-साधककी चिन्तन-साधना अद्यावधि अपने कर्मनैरंतर्यको बनाये हुएहै तथा किसी निष्कर्ष बिन्दुपर पहुंचनेकी क्षमतासे संपन्न है। दर्शन के क्षेत्रमें उनकी कतिपय पुस्तकोंका प्रकाशन भी हुआ है और उन्होंने प्रशंसा भी अर्जित कीहै। किन्तु यह संदर्भ मात्र यहींतक सीमित नहीं है। दर्शनके साथ ही धर्म एवं साहित्यके क्षेत्रमें भी उनकी अच्छी गति है। इस प्रकार धर्म, दर्शन एवं साहित्यकी त्रिवेणीका संगम अर्जित करनेवाले डॉ. निगमकी सम्यक् दृष्टि परंपरासे जुड़कर भी आधुनिक हैं। तात्पर्य यह कि यह दृष्टि किसी संकीर्ण मतवादसे सम्बद्ध नहीं है, अपितु निहित प्रत्येक संदर्भको उसके विस्तृत आयामोंमें देखतीहै तथा अनिवार्यतः जीवनसे सम्बद्ध संतुलित परिणाम प्रस्तुत करतीहै। प्रस्तुत नवप्रकाशित कृति 'श्रीमद्भगवद्गीता का जीवन दर्शन, डॉ. ब्रजबिहारी निगमकी इसी बहु-बहुआयामी एवं विस्तृत स्वस्थ चिन्तनधाराका सार्थक परिणाम कही जा सकतीहै।

'श्रीमद्भगवद्गीता' भारतीय सांस्कृतिक जीवन-दर्शनका एक महत्त्वपूर्ण एवं अद्भुत ग्रन्थ है। अद्यावधि अनेकानेक विद्वानों-चिन्तकोंने प्रस्थान-त्रयीमें परिगणित इस ग्रंथपर अनेकानेक पद्धतियोंसे भाष्य प्रस्तुत कियेहैं। इन विद्वद्जनोंकी अधिकाधिक व्याख्या-प्रस्थापनाएं धर्म और दर्शनके साम्प्रदायिक संदर्भोंसे ही सम्बद्ध रहीहैं, जिसके फलस्वरूप प्रत्यक्ष जीवनके व्यावहारिक पक्षसे उसका कटाव होता रहाहै। वस्तुतः दर्शनका क्षेत्र इसलिए सहनीय नहीं है कि वह अध्यात्म अथवा अलौकिक सन्दर्भोंको खोजकर मनुष्यको उस शून्य या अमूर्त लोकमें भटकनेके लिए छोड़ दे, अपितु उसकी महत्ता इस बातमें है कि वह जीवनको सम्पन्न बनानेवाले विचारोंको स्पष्टतासे अभिव्यक्त करे तथा उन्हें दृढ़तासे जीवनमें प्रस्थापित करनेका उपक्रम करे। भारतीय दर्शनकी परम्पराका अवलोकन करनेपर प्रतीत होताहै कि जीवनको व्यावहारिक निर्देश देनेवाली प्रस्थानत्रयीकी चिन्तनधारा बादमें व्याख्याकारोंके घेरेमें आकर अपने उद्देश्यसे भटक गयी। पाण्डित्य-प्रतिभा-प्रदर्शनके चक्करमें उलझा दर्शनका ऐसा स्वरूप धीरे-धीरे जीवनसे भिन्न होता चला गया।

इस उपर्युक्त तथ्यके परिप्रेक्ष्यमें विद्वान् चिन्तक डॉ. ब्रजबिहारी निगम मानतेहैं कि जीवनके यथार्थसे कटनेवाली चिन्तन-प्रक्रियाकी ऐसी व्याख्यात्मक प्रणाली उचित नहीं कहीजा सकती। क्योंकि जीवनसे नाता तोड़कर धर्म, अन्धविश्वासके घेरेमें बन्दी हो जाताहै तथा दर्शन कोरी कल्पना भर बनकर रह जाताहै। प्राचीन दर्शनकी युगीन आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तनोंके परिप्रेक्ष्यमें संगत व्याख्या होनी चाहिये, ताकि जीवनसे संबद्ध होकर दर्शन जीवनकी समस्याओंको सुलझानेमें सहायक हो सके। वस्तुतः मनुष्यको जीनेके लिए जीवन दर्शन चाहिये, न कोई दार्शनिक प्रणाली या धार्मिक संप्रदाय। इसी उद्देश्यको दृष्टिगत रखकर डॉ. निगमने प्रस्तुत कृतिमें 'श्रीमद्भगवद्गीता' की अपने ढंगसे जीवनानुकूल व्याख्या प्रस्तुत कीहै।

अपने इस दृष्टिकोणको उद्भासित करनेके लिए डॉ. निगमने प्रस्तुत कृतिको चार अध्यायोंमें विभाजित कियाहै। प्रथम अध्याय 'भारतीय चिन्तनमें भगवद्गीता का स्थान' के अन्तर्गत वैदिक परम्परा और प्रस्थान-त्रयीका उल्लेख करते हुए उन्होंने भारतीय चिन्तनकी भाववादी एवं भौतिकवादी व्यवहार अर्थात् जीवनवादी परम्पराका परिचय प्रस्तुत कियाहै तथा भगवद्गीताके संदर्भमें इस विवेचनकी प्रासंगिकता दर्शायीहै। डॉ. निगमने स्पष्टतः घोषित कियाहै कि गीता जीवन-दर्शन का ग्रंथ है, न किसी साम्प्रदायिक दर्शनकी सिद्धान्त कृति। सिद्धांत और व्यवहारमें एकता निरूपित करने

१. प्रका. : श्री कावेरी शोध संस्थान, ३४ केशवनगर, गोघाट, उज्जैन—४५६०१०। पृष्ठ : १६६; डिमा. ९३; मूल्य : ५०.०० रु.।

वाले इस विशिष्ट ग्रंथकी दृष्टि मूलत: कर्म विषयक है, अत: आधुनिक दृष्टिसे यह एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।

द्वितीय अध्यायके अन्तर्गत डॉ. निगमने वेदोंसे होकर गीता तक चली आ रही अविच्छिन्न चिन्तन-धाराके मूलमें समायी लोक-व्यवहार परक् दृष्टिके विकासको विवेचित कियाहै। अनेक चिन्तन-संदर्भोंपर अपना मौलिक स्पष्टीकरण प्रस्तुत करते हुए अन्तत: डॉ. निगमने सिद्ध कियाहै कि इस चिन्तन परंपराका मूल दृष्टिकोण वैराग्यवादी नहीं, जीवनवादी है तथा जीवनके लिए अनिवार्य सामाजिक अवधारणाओंके सभी उपबन्धोंकी चर्चा यहां प्रमुखतासे हुईहै। इनमें से श्रीमद्भगवद्गीता जीवनवादी लौकिक दृष्टिका दुग्धामृत है, अत: चिन्तन-विकासमें उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

'सर्वोपनिषदो गावो' शीर्षक तृतीय अध्यायमें डा. निगमने बतायाहै कि चार वेद एवं तेरह प्राचीन उपनिषदोंका चिन्तन मूलत: सम्प्रदायातीत रहाहै। गीताने इनसे अनेक तत्त्व ग्रहण किये तथा कर्मसिद्धांत एवं पुनर्जन्म आदि अवधारणाओंको भाववादी व्यावहारिक धरातलपर अधिक दृढ़तासे प्रतिष्ठित कियाहै। फलत: 'श्रीमद्भगवद्गीता' सम्पूर्ण भारतीय जीवन चिन्तनका सार-संग्रह-ग्रंथ सिद्ध होताहै।

प्रस्तुत कृतिका चतुर्थ अध्याय वस्तुत: सर्वाधिक प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण अध्याय है, जिसमें भारतीय चिन्तनधाराके आलोकमें जीवन दर्शनकी मीमांसा प्रस्तुत करते हुए 'श्रीमद्भगवद्गीता' में निहित जीवन-दर्शन के स्वरूपको विस्तारसे प्रतिपादित किया गयाहै। इस प्रमुख अध्यायमें अनेक बिन्दुओं-उपबिन्दुओंके अन्तर्गत भारतीय चिन्तन-धारामें जीवन-दृष्टिके सम्यक् समायोजनको प्रमुखतासे उल्लिखित किया गयाहै। विद्वान् लेखकने अनेक शास्त्र-ग्रंथोंके परिप्रेक्ष्यमें गीताकी महत्ता को प्रतिपादित करते हुए उसमें निहित चिन्तन-तत्त्वको उद्घाटित कियाहै तथा बतायाहै कि गीता मूलत: जीवन-दर्शनका सीधा साक्षात्कार करानेवाली विशिष्ट कृति है। इसका प्रतिपाद्य अथवा इसमें उठाया गया सर्वप्रथम प्रश्न युद्धकी अनिवार्यताको लेकर है। इस प्रस्तुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न द्वारा वस्तुत: कृष्णार्जुन संवाद के रूपमें मानवके मानसिक द्वन्द्व एवं ऊहापोहकी यथार्थ स्थितिको व्यंजित करते हुए अंतत: सामरस्यकी स्थिति लानेके लक्ष्यको उकेरा गयाहै। यद्यपि 'श्रीमद्भगवद्गीता' में पारमार्थिक एवं स्वस्थ व्यावहारिक तथ्योंका समन्वयात्मक दृष्टिसे अनुशीलन प्रस्तुत किया गयाहै, तथापि ब्रह्म-जिज्ञासा सम्बन्धी विवेचनके अंतर्गत विष्णु शक्तिकी मानव रूपमें अभिव्यंजना कर जीवन को समग्रतामें प्रस्तुत करनेका उत्कट प्रयास लक्षित होताहै। अपनी ऐतिहासिक सीमाओंके उपरांत भी 'श्रीमद्भगवद्गीता' की दृष्टि भविष्यसे भी जुड़ीहै। इसीलिए सामाजिक संदर्भोंके अंतर्गत पारंपरिक नैतिकताका विरोध एवं कर्मके प्रति एक स्वस्थ दृष्टि वहां उपलब्ध होतीहै। कुल मिलाकर गीतामें मानव-जीवनका वैज्ञानिक अध्ययन-विश्लेषण प्रस्तुत किया गयाहै। प्रत्यक्ष जीवनसे संबद्धता एवं सुख तथा विकास के संदर्भोंको सहेजनेका लक्ष्य ही श्रीमद्भगवद्गीताके दर्शनका साध्य है। अपनी इसी विशेषताके कारण भारतीय दर्शन परंपरामें इस ग्रंथका महत्त्व एवं सम्मान सर्वाधिक है। डॉ. निगमने यही सिद्ध करनेका सार्थक प्रयत्न कियाहै।

वस्तुत: डॉ. निगमकी यह नवीनतम कृति 'श्रीमद्भगवद्गीता' में निहित तथ्योंका अपनी दृष्टिसे मौलिक विवेचन प्रस्तुत करतीहै। यह दृष्टि डॉ. ब्रजबिहारी निगमकी अपनी है, किन्तु साथही वर्तमानकी सामाजिक प्रेरणाओंसे भी संबद्ध है। प्रस्तुत कृतिमें 'श्रीमद्भगवद्गीता' की जीवनपरक व्याख्या प्रस्तुत करनेके उपरांत भी सत्यके समीप पहुंचनेका एक जुझारू प्रयत्न भी सर्वत्र परिलक्षित होताहै। यद्यपि प्रस्तुत कृतिमें 'श्रीमद्भगवद्गीता' के विचार क्रमकी व्याख्या प्रस्तुत नहीं हुईहै, तथापि इसमें निहित स्वतंत्र चिन्तन अपना विशिष्ट महत्त्व रखताहै। विवेचनाके इस क्रममें भाषा-शिथिलताके साथही अनेक स्थलोंपर दुहराव भी दृष्टिगोचर होताहै। फिरभी विषयको विस्तारसे प्रतिपादित करनेकी धुन भी स्थान-स्थानपर दिखायी देतीहै। कुल मिलाकर दर्शनके क्षेत्रकी यह कृति 'श्रीमद्भगवद्गीता' पर की गयी भिन्न-भिन्न व्याख्याओं द्वारा उत्पन्न भ्रम एवं उलझावकी स्थितिसे भयभीत मनुष्यको परे हटाकर किसी सुचिन्तित, सरल एवं सहज मार्गका दर्शन करानेमें सक्षम है तथा जीवनको जीनेके लिए व्यावहारिक चिंतन-विश्लेषण द्वारा उपयुक्त मार्गदर्शन देती है। डॉ. ब्रजबिहारी निगमकी ऐसी महत्त्वपूर्ण एवं मूल्यवान् साधनात्मक कृतिका स्वागत करना वस्तुत: सर्वथा समीचीन है। ☐

कथा-समय

आदिकालसे ही कविताके साहित्यके केन्द्रमें प्रतिष्ठित रहनेके कारण कथा-साहित्यका मूल्यांकन भी कविताके ही मापदण्डसे होता रहा। कहानी और उपन्यासको कथावस्तु, मूल संवेदना, चरित्र-चित्रण और देशकालके खांचोंमें बांटकर उनका जो खण्डित मूल्यांकन होता रहाहै, उससे कथा-साहित्यकी मूल संचेतना और उसकी रचना-प्रविधिमें अन्त:साक्षात्कारमें बाधा उपस्थित होती रहीहै। सातवें दशकमें कहानीके एकाएक साहित्य-चर्चाके केन्द्रमें आनेसे वह युग-चेतनाकी अभिव्यक्तिका कवितासे भी अधिक समर्थ माध्यम बन गयीहै। कथा-साहित्यके समर्थ आलोचक डॉ. **विजयमोहन** सिंहने 'कथा समय' में आजके अनेक चर्चित कथाकारों और उपन्यासकारोंका आलोचन-विवेचन प्रस्तुत कियाहै। कृति-समीक्षक हैं : डॉ. **मूलचंद सेठिया**।

मैं और मेरा भाषा चिन्तन

शब्द-साधक **आचार्य अम्बाप्रसाद 'सुमन'** की प्रस्तुत कृति उनकी संघर्षमय जीवनकी आत्मकथा, पारिवारिक झांकियोंका परिचयके प्रारम्भिक खण्डके साथ शब्दके ब्रह्मरूपकी साधना और उसके साक्षात्कारकी साधनाका भी विशिष्ट आकलन है। शब्द मूल, रूप, उद्भव, मूल, अर्थ, प्रयोग, को लेकर उनके चिन्तन और पक्षकी प्रस्तुति वस्तुत: उनका 'जीवन-दर्शन' रहाहै। समीक्षक हैं : **आचार्य शिवचन्द्र शर्मा**।

मरुभूमिकल उण्टाकुन्नतू

यह मलयाली उपन्यास है। इस मलयाली शब्दका अर्थ है 'बनते रेगिस्तान'। उपन्यासका केन्द्र-बिन्दु है वह सरकार (राजकीय सत्ता) क्या है? क्या हम उसे देख सकतेहैं, या चख सकतेहैं। संभवत: नहीं। उसके सम्बन्धमें हम जो सुनतेहैं अथवा जो सुनाया जाता है, वह भी सचमुच सरकार नहीं है। क्या वह निराकार परब्रह्म है? नहीं, हमारे ऊपर धुंधला-सा विस्तार सरकारका सिर, मुंह बांये नुकीले बाहर निकले दांत, खूनसे लथपथ नुकीले नाखून, धरतीको प्रतिपल क्षितिजकी एक दिशासे दूसरी दिशा तक रौंदते पैरोंके सामूहिक रूपके सान्निध्यको 'सरकार' अनुभव किया जा सकताहै। प्रादेशिक पुरस्कारसे सम्मानित कृतिके लेखक हैं **'आनन्द'**, समीक्षक हैं : **श्रीरेखा**।

'पुरस्कृत भारतीय साहित्य'

अगस्त'९३ का "पुरस्कृत भारतीय साहित्य" विशेषांक, वार्षिक शृंखलाका ग्यारहवां अंक है। इसी शृंखलाका पूरक अंक नवम्बर'९३ है। इससे पूर्व दस विशेषांक प्रकाशित हो चुकेहैं। भारतीय भाषाओंके साहित्यमें इस समय जो प्रवृत्ति दिखायी दे रहीहै, वह इस दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है कि अपनी प्रादेशिक और क्षेत्रीय विशिष्टता होते हुएभी भारतीय साहित्यकी अन्तश्चेतना एक है, उसकी अन्तःस्फूर्तिके स्रोत भी समान हैं। फिरभी उस चेतनाके समग्र रूपको न तो प्रस्तुत किया गयाहै, न उसका, योजनाबद्ध अध्ययन। इस अध्ययनकी सम्भावनाको ध्यानमें रखते हुए 'प्रकर' प्रतिवर्ष ऐसी सामग्री प्रस्तुत कर रहाहै जो अध्ययन और शोधकी दृष्टिसे बहुत उपयोगी है।

अबतक इन ग्यारह विशेषांकोंमें विभिन्न भारतीय भाषाओंके ग्रन्थोंपर जो समीक्षा-सामग्री प्रस्तुत हुई है, उनकी संख्या इस प्रकार है :

भाषा	ग्रन्थ संख्या	भाषा	ग्रन्थ संख्या	भाषा	ग्रन्थ संख्या
असमी	९	डोगरी	१०	मराठी	११
उड़िया	१२	तमिल	१२	मलयालम	९
उर्दू	३	तेलुगु	१०	मैथिली	११
कन्नड़	१२	नेपाली	९	राजस्थानी	११
कश्मीरी	५	पंजाबी	११	संस्कृत	८
कोंकणी	१०	बंगला	९	सिन्धी	१०
गुजराती	१३	मणिपुरी	११	हिन्दी	१३

सभी अंकोंकी कुल पृष्ठ संख्या : ११९० कुल समीक्षित ग्रंथ २१०

इन ग्रंथोंकी समीक्षाओंसे न केवल भारतीय भाषाओंकी एकात्मता उभर कर आतीहै, साथमें विदेशी साहित्यके स्पष्ट, प्रबल और गहरे (अनेक बार प्रचारात्मक) प्रभावका भी साक्षात्कार होताहैं। साहित्यिक दृष्टिसे वैज्ञानिक विश्लेषणके लिए यह सामग्री सहायक है।

१९८३ से अबतक प्रकाशित 'पुरस्कृत भारतीय साहित्य' विशेषांकोंके पृथक्-पृथक् मूल्य इस प्रकार है : ८३—२०.०० रु.; ८४—२०.००; ८५—२०.००; ८६—३०.००; ८७—३०.००; ८८—३०.००; ८९—३५.००; ९०—३५.००; ९१—३५.००; ९२—४०.००; ९३—४०.०० रु.; नवम्बर'९३—१०.००।

अध्ययन और शोधकी दृष्टिसे यह सामग्री प्रत्येक पुस्तकालयमें संग्रहणीय है।

सभी ग्यारह अंकोंका डाकव्यय सहित मूल्य : २७५.०० रु.

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार : मुद्रक : संगीता कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा रायसोना प्रिंटरी, चमेलिया रोड, दिल्ली-६।
प्रकाशन स्थान : ए-८/४२ राणा प्रतापबाग, दिल्ली-७ दूरभाष : ७११३७६३

दूरभाष : ७११३७६३

[अनुशीलन अध्ययन-समीक्षाकी मासिक पत्रिका]

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार
ए-८/४२, राणा प्रताप बाग,
दिल्ली-११०००७

वर्ष : २६ अंक : ५ ज्येष्ठ : २०५१ [विक्रमाब्द] मई : १९९४ [ईस्वी]

श्रीनारायण चतुर्वेदीकी दैनंदिनी और उनके पत्र

[अनौपचारिक साहित्य-विधाकी शक्ति और सीमा]

—डॉ. रामदेव शुक्ल

लोकसाहित्यकी मर्मवेधक शक्ति सामान्य साहित्य की अपेक्षा बहुत अधिक होतीहै । कारण है उस साहित्य का एक व्यक्तिकी कृति न होकर जनाकांक्षाका प्रतिनिधि होना । औपचारिक साहित्यकी नयी विधाओंमें जो लोकप्रिय हो रहीहैं, उनमें व्यक्तिगत लेखनके रूप हैं, जो मूलतः प्रकाशित न होनेके लिए लिखे जातेहैं । जैसे निजी संस्मरण, डायरी, पत्र आदि । इधर हिन्दी में डॉ. रामविलास शर्माने अपने परिवारके सदस्योंके पत्रों और संस्मरणोंके आधारपर हिन्दी साहित्यको दो दुर्लभ पुस्तकें भेंट कीहैं 'घरकी बात' और 'बड़े भाई' । यहां एक प्रश्न उठताहै कि जो लेखन किसी व्यक्तिका अत्यन्त निजी और गोपनीय है, उसे सार्वजनिक बनाना क्या उचित है ? जहांतक रोचकताका प्रश्न है, रोचकताकी पहली शर्त होतीहै उसका आवृत होना, दुर्लभ होना । स्वाभाविक है कि लेखकने जो कुछ प्रकाशित करायाहै उसके प्रभावसे चमत्कृत पाठक अपने प्रिय लेखकका वह लेखन अधिक उत्सुकताके साथ पढ़ना चाहेगा, जिसे लेखकने गोपनीय और अप्रकाश्य मानकर लिखाहै । लेकिन ऐसा लेखन प्रकाशित होताहै, तो एक प्रकारका गम्भीर संयम पाठकसे अपेक्षित होगा । इस प्रकारका संयम न होनेपर पाठक लेखकके प्रति कैसी प्रतिक्रिया करेगा, इसका अनुमान लगानेके लिए एक परिस्थितिकी कल्पना की जा सकती है । पति-पत्नी एकान्त क्षणोंमें अपने शयन कक्षमें हों और दुर्घटनावश सड़ककी ओरकी पूरी दीवाल गिर जाये । समाजमें ऐसे लोगोंका अभाव नहीं होता, जो इस दृश्यपर उत्तेजित होकर 'नैतिकता' और 'चरित्र' पर धुंआधार भाषण झाड़ने लगें । इसलिए 'व्यक्तिगत' को 'सार्वजनिक' बनाते हुए संयमका अंकुश अपरिहार्य है । 'जीवन एक खुली किताब है जो बाहर है, वही भीतर, जो चाहे देख ले'—ऐसी घोषणा करनेवाला धवल चरित्र व्यक्ति भी अपने एकान्तमें बहुत कुछ ऐसा जीताहै, जिसे सार्वजनिक नहीं ही होना चाहिये ।

हिन्दी भाषा और साहित्यके लिए संघर्ष करने वालोंमें अत्यन्त तेजस्वी व्यक्तित्व रहाहै, स्वर्गीय भैया साहब, पद्मभूषण पं. श्रीनारायण चतुर्वेदीका । उनके वंशमें पांच पीढ़ियोंसे लेखक पैदा होते रहेहैं । चतुर्वेदी जीने अध्यापकके रूपमें नौकरी आरम्भ की । एक वर्ष अन्दर ही लखनऊके कान्यकुब्ज कालेजमें हेडमास्टर हुए, फिर प्रिंसिपल हो गये । जब वे कान्यकुब्ज इण्टर कालेजके प्रिंसिपल थे, २९ दिसम्बर १९२४ से उन्होंने डायरी लिखना शुरू किया और २३ फरवरी १९२५ की डायरी लिखकर बन्द कर दिया । डायरीके प्रथम पृष्ठपर लिखा—स्ट्रिक्टली प्राइवेट एण्ड कान्फी-

डेंशियल । इसीके साथ, गालिबका एक शेर लिख दिया—

जहाँ पर कि नक्श-ए-कदम देखते हैं ।
खयाबाँ-खयाबाँ अरम देखते हैं ।
बनाकर फकीरों का हम भेस गालिब
तमाशा-ए-अहले करम देखते हैं ।

१९२५ में ही उन्हें शिक्षाशास्त्रमें उच्च अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति मिली । इंगलेण्ड जाकर उन्होंने १९२६ ई. में लंडन डे कालेजसे 'टीचर्स डिप्लोमा' प्राप्त किया और लंडन यूनीवर्सिटीके किंग्स कालेजसे १९३१में पेडागाजीज़ (शिक्षाशास्ज) में एम.ए. किया। इंगलेण्ड प्रवासके समय उन्हें लीग आव् नेशन्स (उस समयका राष्ट्रसंघ) की शिक्षा विशेषज्ञोंकी समितिका सदस्य नामित किया गया । उसकी बैठकें वियनामें होतीथीं । चतुर्वेदीजी उन बैठकोंमें भाग लेतेथे और यूरोपके अनेक देशोंकी यात्रा किया करतेथे । उन्हीं यात्राओंके क्रममें अमरीका जापान आदि भी गये । इन यात्राओंमें चतुर्वेदीजी प्रत्येक सप्ताह अपने पिताको पत्र लिखा करतेथे ।

भैय्या साहबके जन्म शताब्दी वर्षमें अनेक सरकारी और गैरसरकारी आयोजन किये गये । एक कार्य यह भी हुआ कि उनके अतिप्रियपात्र पद्मश्री विद्यानिवास मिश्र और चतुर्वेदीजीके ज्येष्ठ पुत्र डॉ. शैलनाथ चतुर्वेदीने मिलकर भैय्या साहबकी डायरी और उनके पिताके नाम लिखे पत्रोंको प्रकाशित करा दिया। भैय्या साहबके 'एकदम व्यक्तिगत और गोपनीय' को सार्वजनिक बनानेका फल सम्पादक और प्रकाशक चाहे जब, जिस रूपमें भोगें—हिन्दी पाठकको तो एक दुर्लभ अवसर भैय्या साहबके 'अंतरंग' में भागीदारी करनेका मिल गयाहै ।

डायरी रेल-यात्रासे आरम्भ होतीहै । २९ दिसम्बर १९२४ को लिखतेहैं —"आज सुबह हरदोई पहुंचनेपर आंख खुली । मुरादाबादके बाद जो सोये तो तन्द्रामें रामपुरका तो कुछ ध्यान आया, पर उसके बाद दीन-दुनियां कहींकी भी खबर न रही । यह नया लिहाफ इतना गरम है कि ओढ़ते ही बदन सुखिया जाताहै। ऐसा लिहाफ बनवाना भूल है ।" (पृ. २५) ।

'बदन सुखिया जाताहै' के प्रयोगकी मार्मिकता देखिये और यह भी देखिये कि सुखके दिनोंके आरम्भमें ही सुखके आकर्षणके प्रति कैसी सजग चेतावनीभरी गंभीर समझ । इसीका अभाव होनेपर लोग जीवन भर सुख देनेवाले सामानोंके ढेरके ढेर एकत्र करते रहनेके बावजूद सुखका स्पर्श भी नहीं कर पाते ।

सत्तावन दिनोंकी यह डायरी (बीचमें कई दिन छूट भी गयेहैं) अपने लेखकके जीवनके अन्तः और बाह्य संघर्षकी कथा तो कहती ही है, उस समय के भारतीय समाजकी ऐसी बहुत-सी बातें बतातीहै जो अन्य किसी स्रोत या माध्यमसे उजागर नहीं होतीं। पहले ही पृष्ठके पहलेही पैरामें एक सूचना है—"मेरे साथमें रेलके एक बाबू बैठे हुएथे । वे बड़े जोरदार शब्दोंमें इस बातकी शिकायत कर रहेथे कि दफ्तरके लोग हाफकास्ट (उन दिनों ऐंग्लो इण्डियनके लिए प्रयुक्त शब्द) लोगोंकी बड़ी सेवा-सुश्रूषा करतेहैं किन्तु बड़से बड़े हिन्दुस्तानियोंका ध्यान तक नहीं करते। दुनियां ऐसीही है । लाचारी इसे कहतेहैं कि ये महात्मा स्वयं कहने लगे कि मैं भी तो उन्हींमें हूँ । मैं भी यही करताहूं ।" (पृ. २५) ।

ब्रिटिश व्यवस्थामे बाबू वर्गकी मानसिकताकी यह झलक इतिहास-पुस्तकोंमें कैसे मिल सकतीहै ।

राजाओंके ऐशो आराम और उनकी शान-ओ-शौकतका आम आदमीपर बड़ा आतंक रहताथा । इस डायरीमें जयपुरके राजदरबारका एक चित्र है—"शायदही कोई ऐसा काला आदमी हो जो साफा न बांधेहो, एक मुझे छोड़कर । साफे भी इतने रंगके कि रंगोंका पूरा कैटलॉग मय उदाहरणके बनाया जा सकताथा । रंगोंकी बहार तो राजपूतानेमें ही देखी जा सकतीहै । जगह जगह लाल वरदीवाले बंदूकची सिपाही खड़ेथे । दोको छोड़कर कोईभी ठीक पोजीशनमें न था । जितनेथे, उतनी तरहसे खड़ेथे । एक ओर ब्रास बैण्ड था । उसके साथ अंगरेज बैंडमास्टर था । सूरत से वह अच्छा खासा भोंदू मालूम पड़ताथा । यहांभी देखा कि बैंडवालोंकी वरदी वैसीही बेसिरपैरकी थी और उनके बाजेभी कोई पिचके हुए और गंदे । रियासतमें आकर इस अंगरेजकी अक्ल भी खप्त हो गयीहै । 'साँभर झीलमें जो पड़े वही निमक'—देशी रियासतमें जो पहुंचे वही ढीलमढील ।" (पृ. ५७) ।

उपर्युक्त टिप्पणीसे दो बातें स्पष्ट हैं जनतापर आतंक जमानेवाली इन रियासतोंकी असलियत क्या थी और चतुर्वेदीजीके व्यक्तित्वमें सुरुचि, सौन्दर्यबोध,

चुस्ती, फुर्ती, बाकायदा हर काम करनेका सलीका और तेजस्विता किस कोटिकी थी ।

शिष्टाचार, विनम्रता, गुणग्राहकता और गुरु-शिष्यके निश्छल प्रेमका एक दृश्य है, जयपुरके अस्सी वर्षीय वृद्ध विद्वान् ज्योतिषीका घर । "गाढ़े की रुई-दार बंडी पहने और गाढ़ेका लिहाफ ओढ़े लेटेथे । यदि कहीं बाहर जायें तो लोग यही समझें कि बेनी किनारेका कोई भिखमंगा है । लोग कहतेहैं कि गुदड़ी में लाल होतेहैं, परिधान तो धोखेकी टट्टी है ।...न पहचाननेपर भी मिलनेका ढंग ऐसा हार्दिक था कि हमें बड़ा आश्चर्य और आनन्द हुआ । "कोई आध घंटे बाद जब कोई बात आयी तो उन्होंने शास्त्रीजी को पहचाना । बुड्ढा अपने पुराने शिष्यको पहचानकर मारे हर्षके खाटपर से प्राय: उछल पड़ा । बोल उठा, "तू बद्री !" शास्त्रीजीने बड़ी नम्रता और हर्षसे गद्गद होकर कहा—"हां महाराज, थारो ही बद्री हूँ ।" तब उन्होंने इनकी वर्तमान अवस्था वेतन आदि पूछा । यह जानकर कि इन्हें तीन सौ रुपये मिलतेहैं, बड़े प्रसन्न हुए । (आजके हिसाबसे लगभग पचास हजार रुपये)। शास्त्रीजीने कहा, "महाराज, थारो ही आशीर्वाद है ।" इसपर वे बोले, "तो ले बद्री म्हारे पांव तो दाब ।"—ओह ! इस दृश्यकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकताथा । प्राय: पचास वर्षके बूढ़े शास्त्रीजी उससे भी अधिक प्रेम और तेजीके साथ—जैसे उपेन्द्र (चतुर्वेदीजीके भतीजे) मेरे पैर दाबताहै, बूढ़े जगन्नाथजीके पैर दाबने लगे ।......इस दृश्यका मेरे हृदयपर जो प्रभाव पड़ा उसका वर्णन करना मेरे लिए कठिन है, यद्यपि दो ही मिनट बाद बूढ़ेने शास्त्रीजी की रिहाई दे दी, किन्तु उस आज्ञा और उस आज्ञा पालनमें जो प्रेम और आदरका भाव था, उसका मूल्य कितना है ?" (पृ. ४६-४७) ।

गुरु शिष्यके इसी सम्बन्धको आदर्श माननेवाला यह युवा हेडमास्टर कैसा कठोर अनुशासन बरतताथा ? १६ जनवरी १९२५ की डायरी है—"आज दोपहरमें वंश गोपाल जगत और बांके कालेजसे चले गयेथे, मुझसे आज्ञा नहीं ली । इसलिए जगत और बांकेको बेंत लगाये ।" कोमलता और करुणा कितनी है, इस कठोर पुरुषमें ? ४ फरवरी १९२५ की डायरी है—"आज कालेजके बाद मैंने भगवानदीनको बुलाया और उसे दो रुपये दिये । यह लड़का बहुत ही शांत और गरीब है । प्राय: एक ही समय भोजन करताहै । कालेजमें फ्री है और आठ रुपयेका एक ट्यूशन किये है । यह इतना सेंसेटिव है कि जब मैं इसे रुपये देने लगा तो उसके आंसू निकल आये और वह बच्चोंकी तरह रोने लगा । × × —अन्तमें मैंने उसे समझाया । मैंने उससे कहा कि दरिद्रता वास्तवमें ब्लेसिंग इन डिसगाइज है । वह अग्नि-परीक्षा है । जो लोग इस परीक्षामें उत्तीर्ण हो जातेहैं, जो दरिद्रतामें भी अपने सिद्धान्तों और अपने चरित्रको दृढ़ रखतेहैं वे महापुरुष हो जातेहैं । ईश्वर जिन्हें दरिद्र बनाताहै उन्हें बड़े होने का अपनी आत्मा और अपने चरित्रको उन्नत करनेका दुर्लभ अवसर देताहै । अमीरोंको वह अवसर कहाँ नसीब है ?" (पृ. ७६)

जिस युवक चतुर्वेदीको अपनी निर्धनतापर गर्व करना घुट्टीमें पिलाया गयाथा, उनके करुणासे भरे चित्तमें दूसरोंकी गरीबी देखकर ये भाव भी उठतेहैं कि "ऐसे ही अवसरपर मुझे अमीर न होनेका कष्ट और दुःख मालूम होने लगताहै । यदि मेरे पास धन होता तो मैं इसकी कितनी सहायता करता ।' (पृ. ६६) ।

ऐसे ही एक अवसरपर लिखतेहैं, "अपनी कथा कहते कहते उसकी आंखोंसे आँसू टपकने लगे । ऐसेही समय मेरी इच्छा होतीहै कि ईश्वर मुझे करोड़पति बनाता तो कैसा होता । किन्तु इन कोरी कामनाओं से थोड़ेही काम चलताहै । मैंने उसे फिर बुलायाहै ।" (पृ. २६) ।

चतुर्वेदीजीने अपने दीर्घजीवनमें सैकड़ों निर्धन किन्तु योग्य व्यक्तियोंकी सहायता की जिसके फल-स्वरूप वे लोग अपने-अपने क्षेत्रमें महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बने । जीवनके सन्ध्याकालमें जब उत्तरप्रदेश सरकार ने उन्हें लाख रुपयेका भारत-भारती पुरस्कार देना चाहा तो उन्होंने स्पष्ट रूपसे अस्वीकार कर दिया ।

चतुर्वेदीजीके प्रखर व्यक्तित्व और तेजस्वी प्रशासक रूपसे जितने लोग लाभान्वित हुए उनका लेखाजोखा सम्भव नहीं । उनके लेखनमें जो अनुभवप्रसूत गूढ़ संकेत हैं, उनसे आगे भी संस्थाएं और रचनात्मक प्रतिभाएँ लाभान्वित हो सकतीहै ।

ब्रजरसमें आपादमस्तक निमग्न, ईश्वरपर अटूट आस्था रखनेवाले, विनोदी परोपकारी भैय्या साहब, युवा चतुर्वेदी थे, तो अपने विषयमें उनकी राय क्या

थी ?—"यह शेर बहुत पसन्द आया—

खुदा जिससे मिले वह तबअ का मेला न पैदाकर।
नहीं गर इश्क दिलमें, इश्कका अरमान पैदाकर॥

मेरे लिए यह बहुत उपयुक्त है। न तो तबीयत ही ऐसी है कि ईश्वरकी ओर लगे और न ईश्वरकी भक्ति ही है। 'इश्क' तो अपनी प्रकृति ही से गायब है। बस, एक ही बात रह गयीहै। वह यह कि यह 'अरमान' पैदा करूँ कि दिलमें इश्क पैदा हो।"

(३० दिसम्बर १९२४ की डायरी, पृ. २९)

पुस्तकके दूसरे खंडमें यूरोपसे पिताको लिखे गये पत्र हैं। और अच्छा होता, इन्हींके साथ पिता द्वारा लिखे पत्र भी होते।

युवा चतुर्वेदीजीके पत्रोंमें यूरोप-अमरीकाके संबंध में मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक सूचनाएं किस कोटिकी है, इसका अनुमान लगानेके लिए डेनमार्कसे लिखे ४-५-२६ के पत्रका एक अंश पर्याप्त है—"जैसे अच्छे स्कूल इस देशमें हैं वैसे यूरोपमें अभीतक हमने नहीं देखे। यहांके प्राइमरी स्कूल अपने यहांके म्योर कालेज से बेटर इक्विप्ड हैं। एक एक एलिमेन्ट्री स्कूलकी बिल्डिंग और इक्विपमेंटमें १३ लाख क्रोन (१४ क्रोन = १ पौंड) लगतेहैं। इनमें लड़कोंके स्नानागार भोजन-गृह जिमनेजियम इत्यादि शामिल हैं। ये स्कूल यहांके साधारण लोगोंके लिए हैं। इंगलैंडमें कोई एलिमेंट्री स्कूल नहीं जो इनसे चतुर्थांश भी टक्कर ले सके। इस देशमें विशेषता है एक प्रकारके किसानोंके स्कूलकी। इन स्कूलोंमें किसान लोग जाड़ेके दिनोंमें (जब काम कम होताहै) आतेहैं और चार-पांच महीने रहकर साहित्य, इतिहास, अर्थशास्त्र आदिका अध्ययन करते हैं।" (पृ. १३०)।

दो बातोंपर ध्यान दीजिये। एक तो यह कि १९२७ ई. में यूरोपमें साधारण लोगोंके बच्चोंके लिए जो प्राइमरी स्कूल हैं, उनकी वह स्थिति है जो आज भी भारतके विश्वविद्यालयोंमें सभी छात्रोंके लिए नहीं है। दूसरी बात है किसानोंको साहित्य, इतिहास, दर्शन पढ़नेका अवसर देनेवाले विश्वविद्यालयोंकी। किसानको शिक्षित करनेका यह अर्थ नहीं है कि उनसे खेती करना छुड़वा दिया जाये। बल्कि अवकाशके दिनोंमें उन्हें उच्च विषयोंके अध्ययनका अवसर देनाहै जिससे किसानी करनेवाला न तो उच्च शिक्षाके फलसे वंचित रह जाये और न हीनभावसे ग्रस्त हो जाये। भारतके राजनीतिक परजीवी जब बहुत कल्पनाशील होतेहैं तो चरवाहा विद्यालय खोल देतेहैं अर्थात् उनके मनमें चरवाहेको साक्षर बना देनेसे अधिक कुछ भी नहीं आता।

भैय्या साहबके 'अंतरंग' में झांकना दुर्लभ अनुभव है। इस अवसरको सुलभ करानेवाले सम्पादक और प्रकाशक बधाईके पात्र हैं।☐

समीक्ष्य कृति : अन्तरंग। सम्पादक : विद्यानिवास मिश्र, शैल चतुर्वेदी। प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, २०५, चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : १५९; डिमा. ९३; मूल्य : १००.०० रु.।

कथा-समय

लेखक : डॉ. विजयमोहन सिंह
समीक्षक : डॉ. मूलचंद सेठिया

हिन्दी ही क्यों, विश्वसाहित्यमें भी कहानी और उपन्यासकी अपेक्षा कविताका अस्तित्व बहुत पुराना है। खण्ड-काव्य और महाकाव्यमें कथा-तत्त्वका अन्तर्भाव होता रहाहै; परन्तु पुराकालिक कथा-काव्यों और आधुनिक कथा-साहित्यमें मूलगत पार्थक्य है। यंत्र-युगके आविर्भावके साथ उत्पन्न होनेवाली औद्योगिक क्रान्तिके बाद मध्य वर्गका आविर्भाव हुआ और इस मध्यवर्गने जिस लोकतान्त्रिक व्यवस्थाका सूत्रपात किया, उसीके गर्भसे आधुनिक कथा-साहित्यका जन्म हुआ। अपने विशेष ऐतिहासिक और सामाजिक परिवेशके कारण कथासाहित्यकी प्रवृत्ति आरम्भसे ही यथार्थोन्मुख रहीहै। उसके आँचलमें सपनोंकी सोन-जुहीकी अपेक्षा यथार्थके कुश-कण्टकोंको अधिक स्थान प्राप्त हुआया। परन्तु आदिकालसे कविताके ही साहित्यके केन्द्रमें प्रतिष्ठित रहनेके कारण कथा-साहित्यका मूल्यांकन भी कविताके ही मापदण्डसे होता रहाहै। कहानी और उपन्यासको कथावस्तु, मूल संवेदना, चरित्र-चित्रण और देश-कालके खांचोंमें बांटकर उनका जो खण्डित मूल्यांकन होता रहाहै, उससे कथा-साहित्यकी मूल संचेतना और उसकी रचना-प्रविधिके अन्तःसाक्षात्कारमें बाधा उपस्थित होती रहीहै। कथा-साहित्यकी यह विडम्बना ही है कि उसके स्वतन्त्र मान-मूल्योंका विकास नहीं हो सका। सातवें दशकमें कहानी एकाएक साहित्य-चर्चाके केन्द्र में आ गयी और ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह युग-चेतनाकी अभिव्यक्तिका कवितासे भी अधिक समर्थ माध्यम बन गयीहै। उन दिनों कहानीके जो आलोचक विशेष रूपसे उभर कर सामने आये, उनमें डॉ. नामवर सिंह और डॉ. देवीशंकर अवस्थीके नाम प्रमुख थे। परन्तु कालान्तरमें डा. नामवर सिंह कहानीमें कम रुचि लेने लगे और डॉ. अवस्थी एक सड़क दुर्घटनामें अकाल कालकवलित होगये। इस शून्यको भरनेके लिए कथा-साहित्यके जो समर्थ आलोचक सामने आये, उनमें डॉ. विजयमोहन सिंहका प्रमुख स्थान है। 'कथा-समय' में उन्होंने प्रसाद, रेणु, अमरकान्त, रघुवीर सहाय, कमलेश्वर, मनोहरश्याम जोशी और प्रयाग शुक्लकी कहानियों और जैनेन्द्र कुमार, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, कृष्णा सोबती और मनोहरश्याम जोशीके उपन्यासोंका आलोचन-विवेचन प्रमुख रूपसे प्रस्तुत कियाहै।

'प्रसाद' की कहानियोंके सम्बन्धमें डॉ. सिंहकी स्थापना यह है : प्रायः 'प्रसाद' की कहानियोंको अत्यधिक काव्यात्मकतासे ग्रस्त और भावुकतापूर्ण कहानियां मान लिया जाताहै, जबकि वे गहरे अर्थोंमें 'विधेयात्मक निषेध' की कहानियां हैं। प्रायः सभी गम्भीर स्थितियों और मानवीय सम्बन्धोंमें एक प्रकार का द्वन्द्व या द्वैत बना रहताहै, जो किसी संक्रमण बिन्दुपर पहुंचकर चयन या निर्णयके लिए बाध्य करताहै। उदाहरणके लिए पुरस्कार कहानीमें प्रेम और देशप्रेमके बीच द्वन्द्व है और अन्ततः देशप्रेमका चयन किया जाताहै। डॉ. सिंहका यह निष्कर्ष है कि 'प्रसाद' की कहानियोंमें 'सारे निर्णय गहरे मूल्य-बोधसे जुड़े हुएहैं।" इस कवि कहानीकारने पृथ्वीपर स्वर्ग नहीं, 'स्वर्गका खण्डहर' दिखलानेका प्रयास करते हुए यह निर्देश कियाहै कि 'इस पृथ्वीको स्वर्गके ठेकेबारोंसे

१. प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, २/३८, अंसारी मार्ग, दरियागंज, दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : ११६; डिमा. ९३; मूल्य : ९५.०० रु.।

बचाना होगा।' 'प्रसादको निर्मम विडम्बनाओंके रचनाकार' घोषित करनेमें समीक्षकका आग्रह उनकी कहानियोंके यथार्थवादी पक्षको रेखांकित करनेका ही रहाहै। 'प्रसाद'की कहानियोंका विश्लेषण करते हुए डॉ. सिंहने 'छाया' 'ममता' 'आश्रय' आदि कुछ बीज शब्दोंको एकत्र कियाहै। उनकी मान्यता है कि उनके माध्यमसे ही 'प्रसाद' की कहानियोंके अन्तस्तलमें प्रवेश किया जा सकताहै। परन्तु अन्य कहानीकारोंकी रचनाओंके विश्लेषणमें समीक्षकने बीज शब्दोंका आश्रय नहीं लियाहै।

फणीश्वरनाथ रेणु जीवनभर राजनीतिमें सक्रिय रहकर भी अपने अन्तर्मनसे कभी राजनीतिक व्यक्ति नहीं बन सके। "उनकी कहानियोंमें राजनीतिक मूल्योंके क्षणका ही परिदृश्य है, जो उनकी रचनाओंको सम्पन्न बनाताहै, राजनीतिको विपन्न।" रेणुकी कहानियोंमें राजनीतिका पटदृश्य बराबर बना रहताहै परन्तु उनकी अधिकांश कहानियां मूलतः प्रेम कहानियां ही है। 'तीसरी कसम' जो उनकी एक सबसे महत्त्वपूर्ण कहानी है प्रेम-संवेगकी ही कहानी है। प्रेम-कहानियोंके सन्दर्भमें डॉ. सिंहके इस निष्कर्षसे सहमत हुआ जा सकताहै कि 'उनमें ऐन्द्रियकताका उफान तो है पर एक रचनात्मक मर्यादा भी है, जिसकी देहरी पारकर वे भोग-संभोगकी लिप्सामें लिप्त नहीं होते है।' राजनीतिकी विडम्बना और महानगरीय जीवनके तनावने इस आंचलिक आस्थावाले कहानीकारकी मानसिकताको चाहे कितनाही क्षत-विक्षत क्यों न कियाहो, 'उनकी मानवीय आस्थाका झण्डा बदरंग होकर भी बराबर फड़फड़ाता रहाहै।" अमरकान्तभी हिन्दीके बहु-प्रसंसित कहानीकार रहेहैं; परन्तु उनकी कहानियाँ जितनी पढ़ी और सराही गयीहैं, उतनी आलोचित-विवेचित नहीं हुईहैं। निम्न मध्यवर्गीय जीवनको उसकी धूप-छांहभरी सम्पूर्णतामें चित्रित करनेकी दृष्टिसे अमरकान्त बेजोड़ हैं। उनकी कहानियोंमें मध्यवर्गीय व्यक्तिके जीवनका संघर्ष, उसके अभाव और उत्पीड़नका चित्रण यदि करुणाका उद्रेक करताहै तो उसका 'काइयाँपन और कमीनापन' तीखे और चुभते हुए व्यंग्यकी सृष्टि भी करताहैं। अमरकांतने निम्न मध्यवर्गीय जीवनके अनेक अन्तर्विरोधोंको हमारे सामने यथार्थ रूपमें उपस्थित कियाहै। डॉ. सिंहने उनकी कहानियोंके एक दुर्बल पक्षका भी अनावरण कियाहै। उनके पास निम्न मध्यवर्गीय जीवनके आरपार देखनेवाली जैसी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि है, उसे रूपायित करनेवाला वैसा शिल्प-कौशल नहीं है। भाषामें भी वह धार नहीं है, जो व्यंग्यको पैना बना सके।

कवि रघुवीर सहायने भी कुछ सशक्त कहानियां लिखी है। डॉ. सिंहकी दृष्टिमें उनकी कहानियोंमें "कला और जीवन सम्पृक्त और एकाकार हो गयेहैं। इनमें कहानीपन उतना नहीं हैं जितनी एक वस्तु, एक स्थिति और एक रिश्तोंको पकड़नेका प्रयास है। मनोहरश्याम जोशी घोषित रूपसे किस्सागो है, परन्तु समीक्षककी दृष्टिमें 'उनके यहाँ किस्सागोई कमजोरी या लाचारी नहीं, कहानीकारके कौशलका परिचायक है... उनकी किस्सागोईमें जिन्दगीके बुनियादी सवाल गुथे हुएहैं। जोशीजीकी अन्य रचनाओंके समान उनकी कहानियोंमें भी एक क्रीड़ाशील प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होतीहै। डॉ. सिंहकी दृष्टिमें प्रयाग शुक्लकी कहानियाँ अकेले व्यक्तिकी कहानियाँ हैं, जो चाहकर भी अपनेको सामाजिक परिवेशसे जोड़ नहीं पाताहै। वह सोचता बहुत है, पर कर कुछ नहीं पाता।

कमलेश्वर एक कहानीकारके रूपमें इस दौरके एक महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं, परन्तु डॉ. विजयमोहन सिंहने उन्हें चालू तौरपर ही लियाहै। 'प्रसाद' के प्रति वे जितने उदार हैं, उतने ही कमलेश्वरके प्रति अनुदार। कमलेश्वरसे उन्हें अनेक शिकायतें हैं, बकौल राजेन्द्र यादव उनकी प्रत्येक कहानी किसी औरकी कहानीकी प्रेरणा या प्रतिक्रियामें लिखी गयीहै, उनका शिल्प उन्नीसवीं शताब्दीके शिल्पका फिल्मी संस्करण है, नारी-नैतिकताकी दृष्टिसे वे शरच्चन्द्रके युगमें ही सांस ले रहेहैं और उनकी भाषा रानू-राजवंशके दायें-बायें खड़ी हुई दिखायी पड़तीहै। इस समीक्षामें कमलेश्वरकी कहानियोंके नकारात्मक पहलू उभरकर सामने आयेहैं परन्तु उनकी कहानियोंके सन्तुलित मूल्यांकनमें बहुत सहायता नहीं मिल पाती।

'कथा-समय' में डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, जैनेन्द्रकुमार, कृष्णा सोबती और मनोहरश्याम जोशीकी औपन्यासिक कृतियोंका विस्तृत विवेचन किया गयाहै। डॉ. सिंहका मत है कि 'आचार्य द्विवेदीके उपन्यासोंमें अतीत-वर्तमान साथ चलतेहै या उनके बीच निरन्तर

आवागमनका क्रम चलताहै।" इसीलिए उनके कथा-नायक अतीतमें जीवित रहते हुएभी वर्तमानमें सांस लेतेहैं। इसी प्रकार, "उनके उपन्यासोंमें 'लोक' और 'शास्त्र' के बीचभी निरन्तर शास्त्रार्थ चलता रहताहै और दोनों एक-दूसरेको मान्यता देते हुए चलतेहै।" डॉ. सिंहकी दृष्टिमें बाणभट्टकी आत्मकथा 'त्यागपत्र' के बाद हिन्दीका सबसे अपटूडेंट उपन्यास है।" (हालांकि द्विवेदीजीने उसमें मध्ययुगीनता ही छौंक देनेमें अपनी ओरसे कुछ उठा नहीं रखाहै।) 'चारु चन्द्रलेख' मध्यकालीन मनुष्यके उत्कर्षकी नहीं, अपकर्षकी कहानी है क्योंकि वह तंत्र-मंत्रकी साधना और अलौकिकताकी उपासनाके फेरमें पड़कर आत्मदानके सत्यको भूल बैठाथा। द्विवेदीजीके सभी उपन्यासोंमें ही नहीं उनके समस्त साहित्यमें 'अपने आपको दलित द्राक्षाकी भांति आखिरी बूंद तक निचोड़कर मनुष्यकी आराधनामें अर्पित करने' का अन्तःस्वर आद्यन्त व्याप्त है। जैनेन्द्रके उपन्यासोंका ताना-बाना स्त्री-पुरुषके पारस्परिक आकर्षण-विकर्षणके सूत्रोंसे बुना गयाहै। डॉ. सिंहके शब्दोंमें "मानसिक स्तर पर दो व्यक्तियोंके बीच प्रेम जिस विस्फोटकी सृष्टि करताहै, उसे जैनेन्द्रने बड़ी फुर्सतसे अंकित कियाहै।" उनके उपन्यासोंमें प्रेमके साथ नैतिकताका प्रश्न जुड़ा होताहै और कौन नहीं जानता कि हमारे समाजमें स्त्री और पुरुषके लिए नैतिकताके दुहरे मापदण्ड प्रचलित हैं। मृणालकी आत्म-यातना और उसका आत्म-हनन इस दुहरी नैतिकताके प्रति विद्रोह की साक्षी उपस्थित करतीहै। नये युगने नारीको एक सीमा तक जो आर्थिक आत्मावलम्बन प्रदान कियाहै, उसने इस समस्याको सुलझानेके बजाय औरभी उलझा दियाहै। कल्याणी डॉक्टर है, वह अपने पैरोंपर खड़ीहै, पर उसकी समस्या है "···मेरी शादी मेरी डाक्टरी, मेरा पत्नीत्व और निजत्व ये (एक साथ) कैसे निभें ?" डॉ. सिंहको यह शिकायत है कि 'जैनेन्द्र इस नयी नैतिकता और नयी नारीकी करुण नियतिको दिखाकर ही अपनी कृतियोंको निःशेष कर देतेहैं।" परन्तु प्रश्न यह भी है कि अपने युग-सन्दर्भमें जैनेन्द्र और आगे कहांतक जा सकतेथे ?

कृष्णा सोबतीका 'जिन्दगीनामा' हिन्दी उपन्यास का एक शाहनामा है; परन्तु, यह एक व्यक्ति विशेष की कथाके बजाय एक पूरे अंचलके सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिवेशका मनुष्यके साथ रचाव है।" यह उपन्यास एक अंचल विशेषका जीवन चित्रण होते हुए भी आंचलिक उपन्यास नहीं है, क्योंकि इस उपन्यासके केन्द्रमें शाह-परिवार है जिसके इशारेके बिना पूरे क्षेत्रमें कहीं एक पत्ता भी नहीं हिलता। इस परिवारसे पृथक् अंचलकी आम जनताका जीवन-प्रवाह भी है, जो उपन्यासमें शाह-परिवारके वट-वृक्षीय विस्तारके तले अलक्षित ही रह जाताहै। शाह-परिवारके चाकचिक्य-से संभवतः सोबतीजी भी अप्रभावित नहीं रह सकीहैं, यही कारण है कि वे उसके अपराधोंकी ओर से भी आंख मूंद लेतीहै। डॉ. सिंहने सही तौरपर यह प्रश्न उठायाहै "क्या सोबतीजीका उस समाजी व्यवस्थाके प्रति अतिरिक्त लगाव है जोकि अन्ततः और मूलतः दूसरी जातियों और वर्गोंके शोषणके आधारपर टिकी हुईहै ?" यदि ऐसा नही था तो लेखिकाने सामन्त-विरोधी स्वरोंको उभरने क्यों नहीं दिया ? अभीतक उपन्यासका एक ही खण्ड प्रकाशित हुआहै। पूरा उपन्यास प्रकाशित होनेके पूर्व निष्कर्ष रूपमें कुछ नहीं कहा जा सकता।

मनोहरश्याम जोशीका उपन्यास 'कसप' एक प्रेम उपन्यास है; परन्तु, प्रेमके पारम्परिक मिथकको इस उपन्यासमें प्रयत्नपूर्वक तोड़ा गयाहै। उदाहरणके रूपमें नायक-नायिकाका प्रथम मिलन चांदनी रातमें किसी नदी किनारे न होकर 'पाखानेमें होताहै', जिसके साथ किसी रोमेण्टिक कल्पनाका कोई सुदूर सम्बन्धभी स्थापित नहीं किया जा सकता। डॉ. सिंहके शब्दोंमें "यह 'रसाभास' जानबूझ कर है। 'विकृत' रस का उपन्यासमें अपना विशेष स्थान है। भदेस और रोमानीपनका इस उपन्यासमें उद्‌भुत सम्मिश्रण है।"

'कथा-समय' में संकलित समीक्षाओंको देखकर ऐसा आभास होताहै कि डॉ. विजयमोहन सिंहने कहानी और उपन्यासकी समीक्षामें कविताके मानदण्डोंको ज्योंका त्यों लागू करनेका प्रयत्न नहीं किया। प्रत्येक साहित्य विधाकी अपनी-अपनी अलग प्रकृति होतीहै, उसके अनुकूल ही उसकी समीक्षाके निकष निर्धारित कियेजा सकतेहैं। हिन्दीमें कथा-साहित्यका यथेष्ट विकास हो चुकाहै। उपन्यासको तो आधुनिक युगका महाकाव्य माना ही गयाहै; कहानीभी युग-सत्यकी संवाहिकाके रूपमें अपने आपको स्थापित कर चुकीहै। अब यह आवश्यक हो गयाहै कि कहानी और

उपन्यासकी सृजन-प्रेरणा, मूल संवेदना और शैलिक संरचनाका मूल्यांकन उनकी अपनी कसौटियोंपर ही किया जाये। डॉ. विजयमोहन सिंह अपने शोध-प्रबंध "हिन्दी उपन्यासोंमें प्रेमकी 'परिकल्पना' और 'कथा-समय' के निबन्धोंसे हमें आश्वस्त करतेहैं कि इस दिशामें वे उल्लेखनीय योगदान कर सकतेहैं।□

जयशंकर प्रसाद :
परिचय एवं प्रतिनिधि कविता[1]

सम्पादक : डॉ. दिनेश्वर प्रसाद
समीक्षक : डॉ. शत्रुघ्नप्रसाद

राँची विश्वविद्यालयके विद्वान् आचार्य डॉ. दिनेश्वर प्रसादने छायावादके प्रवर्त्तक 'प्रसाद' के व्यक्तित्व एवं कृतित्वके मूल्यांकनके साथ प्रतिनिधि कविताओंका संकलन-सम्पादन कियाहै। सम्यक् मूल्यांकनके लिए प्रतिनिधि रचनाओंका आधार आवश्यक है। इस आधारको सामने रखकर 'प्रसाद' का सम्पूर्ण परिचय, मेरी दृष्टिमें आकलन, प्रस्तुत किया गयाहै। श्री रामनाथ सुमनसे लेकर आजतक महाकवि प्रसादका मूल्यांकन होता रहाहै। पर प्रसादकी ऐसी महत्ता है कि उनके मूल्यांकनकी आवश्यकता रहेगी ही। कारण है कि हिन्दी काव्यमें तुलसीके बाद 'प्रसाद' ही गंभीरतासे स्वीकार किये गयेहैं। जैसे रामचरितमानसका मूल्यांकन सर्वदा होता रहेगा, उसी प्रकार प्रसादकृत 'कामायनी' का। इनके समीक्षककी प्रेरणा जन्मशताब्दी है या प्रकाशककी योजना—यह स्पष्ट नहीं हो पाता, पर इससे अन्तर नहीं आता।

पिछले मास इतिहास, दर्शन एवं राजनीति शास्त्रके भारत प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. विश्वनाथप्रसाद वर्माने साहित्यिक वार्त्ताके मध्य कहा कि आधुनिक हिन्दी काव्यमें प्रसादका कृतित्व सर्वाधिक महनीय है। कोईभी कवि उन तक पहुंच नहीं पाता। मैंने समर्थनमें कहा कि काव्य, नाटक, कहानी, उपन्यास और समीक्षाके रचनाकार 'प्रसाद' सबसे भारी पड़ जातेहैं। फिर स्मरण आया कि नवम्बर' ९२ में आयोजित उत्तरछायावाद संगोष्ठी, पटनामें डॉ. निर्मला जैनने निष्कर्ष दियाथा कि उत्तर छायावाद छायावादकी अध्यात्म मुद्राके भंजनका प्रयास है। मैंने जनवरी'९३ की 'ज्योत्स्ना' की गोष्ठी समीक्षामें लिखाथा—'आश्चर्य है कि छायावादकी श्रेष्ठ उपलब्धियोंके आगे नतमस्तक होनेके बादभी उसकी सूक्ष्म अध्यात्म मुद्रासे इतना आतंक है। इसीलिए अध्यात्म मुद्राके भंजनसे हर्ष है!! सच तो यह है कि 'प्रसाद'ने लहर और कामायनीमें अध्यात्मका आतंक पैदा नहीं कियाहै। "संभवतः इसीलिए डॉ. दिनेश्वर प्रसादने आकलनके अंतमें लिखाहै कि "विश्वदृष्टि उनको वैदिक और आगम साहित्यमें मिलतीहै। यह दृष्टि इहलोकवादी-मानववादी है।" मेरी दृष्टिमें यही प्रगतिशील भारतीयता है। प्रसाद प्रगतिशील भारतीयताके महाकवि हैं।

डॉ. प्रसादने इस ग्रंथमें चित्राधार, उर्वशीचम्पू तथा बभ्रुवाहन चम्पूकी प्रतिनिधि ब्रजभाषा रचनाओंके साथ कानन-कुसुमसे लेकर कामायनी तकके श्रेष्ठांशको संचयित कियाहै। यह संचयन महाकवि प्रसादकी संपूर्ण विकास यात्राको क्रमिक रूपमें प्रस्तुत कर देताहै। प्रतिनिधि रचनाओंके माध्यमसे संपूर्ण विकास क्रमको रखना सम्पादकका दृष्टि बिन्दु रहाहै। इस दृष्टिसे इस संचयनका महत्त्व है। संभवतः अभीतक ऐसा प्रयास नहीं हुआथा। यह संतुलित दृष्टि एवं अथक श्रमका परिचायक है। तथापि यह कहाजा सकताहै कि 'लहर' की ही नहीं, प्रसादकी एक प्रतिनिधि रचना छूट गयीहै। मुक्त छंदकी श्रेष्ठ कलाकृति 'प्रलयकी छाया' नामक रचना इस संचयनमें नहीं आ सकीहै जिसमें नारी सौन्दर्यकी अभिमानकी ग्रंथि, महत्वाकांक्षा और व्यथाकी मार्मिक अभिव्यंजना हुईहै। साथही कामायनीके अन्तिम सर्ग 'आनन्द' का अंश भी अपेक्षित था जिससे समरसता एक ही चेतनाकी समरसताकी अनुभूति स्पष्ट होसके।

संपादक-समीक्षक डॉ. दिनेश्वर प्रसादने संतुलित दृष्टिसे 'प्रसाद' के सम्यक् आकलनका प्रयास कियाहै। यह प्रयास दूसरोंके उद्धरणों तथा मान्यताओंके आधार पर नहीं है। यह पूर्वाग्रहोंसे ग्रस्त नहीं है। समीक्षकने कविकी प्रवृत्तियों और तत्कालीन परिवेशके प्रभावके

---

१. प्रका. : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : ११४; क्रा. ९३; मूल्य : ५०.०० रु.।

निर्मित कवि व्यक्तित्वके विवेचनका प्रयत्न कियाहै। यह सच है कि भारतके सांस्कृतिक जागरण एवं बादके स्वाधीनता आन्दोलनके साथ पश्चिमकी वैज्ञानिक-प्राविधिक संस्कृतिके अन्तर्विरोधोंके प्रभावमें प्रसादका व्यक्तित्व निर्मित होताहै। यह भी सही है कि प्रसादने भारतकी प्रकृति, संस्कृति तथा साहित्य धाराको अनवरुद्ध प्रवाहके रूपमें देखाहै। पारिवारिक वैभव, धर्मनिष्ठा तथा प्रतिष्ठाके साथही उन्होंने आर्थिक संघर्ष और परिवारमें मृत्युके प्रकोपकी पीड़ाको नीलकंठके समान धारण कियाहै। और तब व्यक्तिके संवेदनशील हृदयके सपने, आकांक्षा तथा मानवीय चेतनाको व्यक्त करनेका प्रयास कियाहै।

संपादक-समीक्षकने पहले कविकी अन्तःवृत्ति तथा बाह्य पृष्ठभूमिको समझाहै और तब काव्यकी विकास यात्राको दिखायाहै। प्रसाद काव्यकी सूक्ष्मता तथा गहनतामें प्रवेश कियाहै। नवयुग की नयी प्रवृत्ति: अन्तःवृत्ति एवं नव सौन्दर्यबोधके परिदर्शनसे यह यात्रा आरंभ होतीहै। सम्पादक-समीक्षकने आरंभिक ब्रजभाषा-काव्यमें प्रकृति एवं मनोवैज्ञानिक विषयोंसे संबंधित कविताओंमें नये प्रकारके सौन्दर्यबोधकी झलक पा लीहै। नये प्रकारके अप्रस्तुत विधानको भी देखाहै। इसलिए विश्वासके साथ प्रमाणके आधारपर लिखाहै कि सन् १९११ ई. की 'प्रभा' नामक कवितामें ही रहस्यवादकी झलक 'गीतांजलि' की प्रतिष्ठाके पहले मिलतीहै। 'कानन कुसुम' की व्यथा आधारित कविताओंमें इतिवृत्तात्मकताके साथ भावात्मकताके चित्रणका विशेष प्रयास है। 'प्रेम पथिक' कथाकाव्यसे अधिक भावमूलक कविता है। इसमें प्रेम एवं सौन्दर्यका एक व्यवस्थित दर्शन है। समीक्षकने सही पहचानाहै कि कथानक ग्रहणकी यह पद्धति बादमें और परिष्कृत होकर 'प्रलयकी छाया' तथा 'कामायनी' में आयीहै।

'झरना' के विषयमें सर्वमान्य धारणा है कि इसीसे छायावादका अवतरण हुआहै। सम्पादकने भी मानाहै कि 'झरना' का प्रकाशन आधुनिक हिन्दी साहित्यकी एक घटना है जिसे मुकुटधर पाण्डेयने अपने एक लेखमें स्वीकार कियाहै। इनकी दृष्टिमें सौन्दर्य एवं प्रेम संबंधी कविताओंके आलम्बनकी लौकिकता तथा अलौकिकताका कारण संरचनात्मक उभय प्रवणता है। 'प्रसाद' ने लौकिक तथा अलौकिक और भौतिक तथा आध्यात्मिकको परस्पर विरोधी नहीं मानाहै। एक-दूसरेका विस्तार तथा रूपान्तर मानाहै।

'आंसू' के संबंधमें विद्वान् समीक्षकने लिखाहै कि इसके छन्दकी उद्भावना 'प्रसाद' ने कीथी जो प्रसाद छन्दके नामसे चर्चित हो उठाथा। निस्संदेह यह मत सर्वमान्य है कि किसी निजी प्रेम प्रसंगपर आधारित विरह काव्य है। कविने अपनी विरह वेदनाको विश्व वेदनाके बिन्दु तक पहुंचा दियाहै। 'लहर' में छायावादकी श्रेष्ठ रचनाएँ तरंगित हुईहैं। अन्तिम चार कविताओंमें जो व्यापक सांस्कृतिक राष्ट्रीय चेतनासे अनुप्राणित समष्टि मनकी व्यथा है, इनकी विशेष चर्चा नहीं हो सकीहै। नाटकोंके गीतोंकी राष्ट्रीय चेतनाका विवेचन भी छूट गयाहै। वैसे तो छायावादकी प्रसाद-धारणाका स्पष्टीकरण भी आवश्यक था। छायावादकी प्रसार-दृष्टिपर दो-चार पंक्तियोंमें प्रकाश डालना उचित था।

'कामायनी' के संबंधमें समीक्षकका उल्लेखनीय विचार है कि यह मानव-मेधाकी उपलब्धियोंमें है और कवितत्वकी ऊँचाई, आकल्पनकी विशालता तथा गिनी-चुनी संप्रेष्यकी सार्वभौमताके विचारसे इसकी तुलना दुनियांके किसीभी प्रतिनिधि महाकाव्यसे कीजा सकतीहै। कारण है कि इसका कथानक बड़ी सीमा तक कविकी मौलिक रचना बन गयीहै। दूसरा कारण है कि इसका एक तिहाई अंश वर्णनात्मक है। दो तिहाई भाग अन्तर्वृत्ति निरूपक है। इससे महाकाव्य का स्थापित ढाँचा टूटाहै। तीसरा कारण है कि महाकविने मनुकी इस कथाकी प्रतीकात्मकताको पहचानाहै। इसके द्वारा नयी विश्वमानवताकी रचनाका संकेत दियाहै। समीक्षकने प्रसादकी संकल्पात्मक अनुभूतिको स्पष्ट करनेका प्रयत्न कियाहै। यह अनुभूति भेदमें अभेदका दर्शन करातीहै। यही सच्ची अद्वैतवादी दृष्टि है। समरसतामूलक शैवदर्शन, मनुकी प्रतीकात्मक कथा तथा विश्वदृष्टि कामायनीकी विशेषताएँ हैं जिसके कारण आधुनिक हिन्दी साहित्यका राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय वैशिष्ट्य और पहचान देने वाले सबसे बड़े नामोंमें एक नाम उभरा है—जयशंकर प्रसाद।

इस प्रकार डॉ. दिनेश्वर प्रसादका यह परिचय, परिचय नहीं, सम्यक् आकलन है। इस महत्त्वपूर्ण संचयन एवं समीक्षणके लिए बधाईके पात्र हैं। ☐

बिहारी वैभव[1]

लेखक : डॉ. विजयपाल सिंह
समीक्षक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह

यह कृति बिहारीके कृतित्व तथा व्यक्तित्वसे सम्बंधित है, और स्वयं लेखकने एक स्थानपर कहाहै कि यह पुस्तक आलोचना और टीका दोनोंको एक साथ प्रस्तुत करतीहै और दुरूहताको कम करतीहै। (निवेदन)। यह सही है कि लेखकने बिहारीको सहज बोधगम्य भाषामें विवेचित कियाहै, परन्तु पुस्तककी पूरी संरचना पाठ्य-क्रम एवं छात्रोपयोगी दृष्टिको ही सामने रखतीहै और साथही प्रकरणोंका विभाजन (यथा बिहारीका जीवन वृत्त, बिहारी और शृंगार वर्णन, अभिव्यंजना कौशल, नीति वर्णन आदि १३ प्रकरण) भी पिटा-पिटायाहै। यदि इस पुस्तकको आधुनिक अभिगमों (यथा राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, सृजनात्मक, तथा समाजशास्त्रीय आदि) की दृष्टिसे विवेचित किया जाता, तो बिहारीको आधुनिक संदर्भ (नकारात्मक एवं सकारात्मक) विवेचित एवं मूल्यांकित करनेकी दृष्टि अधिक तर्कमूलक होती। ऐसा नहीं हुआ, पुस्तक किसी नये संदर्भकी ओर नहीं ले जाती, स्थापित मान्यताओंकी पुनरावृत्ति ही अधिक हुई हैं।

उदाहरणतः बिहारीका सामन्तीय वातावरण और उससे प्रभावित उनका कृतित्व परिस्थितियां, शृंगार 'वर्णन, नीति संदर्भ तथा भक्ति भावना जैसे प्रकरणोंमें अधिकतर उन्हीं बातोंको रखा गयाहैं जो छात्र तथा अध्यापक पढ़ते-पढ़ाते रहेहैं —एक यांत्रिक दृष्टिसे। लेखकने कुछ अध्यायोंमें नये संदर्भ अवश्य उठायेहैं, पर उन्हें विस्तार नहीं दिया। जैसे बिहारीके कुछ व्यंग्योंका समाजशास्त्रीय संदर्भ उठाया गयाहै, पर उन्हें समाजशास्त्रीय अभिगमके द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गयाहै। (पृ. ७५)। इसी प्रकार शोषक-शोषित सम्बंधकी बात (पृ. ६६) उठायी गयीहै, पर सामान्य रूपमें, जबकि रीतिकालीन युग शोषक-शोषित द्वन्द्वको किस सीमा तक (?) उभारताहै, यह विचारणीय है। लेखकने पृष्ठ, ६५ पर जो मत प्रस्तुत कियाहै, वह महत्त्वपूर्ण है और साथ ही, लेखककी व्यापक दृष्टिका परिचय देताहै—"कविवर बिहारी समाजमें व्याप्त मत मतान्तरोंका न केवल उल्लेख करतेहैं, अपितु अपनी भक्ति भावनाके अनुसार उसका समाधान भी करतेहैं। यह भक्ति भावना मात्र एक उदाहरण देकर विराम पातीहै, जबकि भक्ति भावनाके सामाजिक रूपको, उसके सामाजिक महत्त्वको रेखांकित करना चाहियेथा। यह एक ऐसा संदर्भ था जो समाजशास्त्रीय, ऐतिहासिक अभिगमन आधुनिक संदर्भके द्वारा ही संभव होता, लेखक इसकी उपेक्षा कर गयाहै। बिहारीकी कवितामें लोक-मानस का जो भी चित्र उभरकर आताहै (औरभी कवियों में), वह मात्र प्रासंगिक है, अत्यंत सतही। इसका कारण कविकी वह रचना दृष्टि है जो सामंतीय मनोभावों एवं प्रारूपोंसे इस प्रकार बंधी हुईहै कि कवि उससे ऊपर उठ नहीं पाता। पर रीतिकालीन युग एक 'जकड़न' से बंधा हुआहै—शिल्प और कथ्य दोनों दृष्टियोंसे। लेखक एक व्यापक दृष्टिसे यदि इन नये अभिगमोंको स्वीकार करता (मात्र परम्परागत अभिगमोंसे अब काम नहीं चल सकता)। यह आशय नहीं है कि प्राचीन अभिगम व्यर्थ है, उनके महत्त्व(यथा ध्वनि-सिद्धांत) को आधुनिक दृष्टिसे देखना आवश्यक है।

फिरभी पुस्तक छात्रोंके लिए उपयोगी हैं, पर शोधकर्त्ताओंके लिए अधिक उत्तेजक नहीं। ☐

नये कवि, भाग-५, ६[1]

लेखक : डॉ. संतोषकुमार तिवारी
समीक्षक : (भाग-५) : डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी
(भाग-६) : कमलाप्रसाद चौरसिया

भाग-५

इधरके कवियोंने प्रधानतः जीवनकी तीखी कड़वी

---

१. प्रका. : राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, ए-२६/२ विद्यालय मार्ग, तिलक नगर, जयपुर-३०२००४। पृष्ठ : १६०; डिमा. ६२; मूल्य : २२.०० रु. (पेपर बैक)।

१. प्रका. : भारतीय ग्रंथ निकेतन, २७/३ कचा चेलान दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ: (भाग-५)—१८२, (भाग-६)—१५६; दोनों क्रा. ६३; मूल्य : (भाग-५)—६०.०० रु., (भाग-६)—५०.०० रु.।

अनुभूतियोंको ही वाणी दीहै। कल्पनाओंके लाचार होते जानेके इस भयावह दौरमें चारों ओर फैलती विसंगतियोंके बीच भी कवियोंका विशिष्ट समुदाय कविताकी शक्ति एवं अस्मिता स्थापित करनेके लिए यत्नशील है। सुपठित और निस्संग समीक्षक डॉ. संतोषकुमार तिवारीने समकालीन काव्य-हस्ताक्षरोंकी उपलब्धियोंका सम्यक् अनुशीलन 'नये कवि' पुस्तकमालामें कियाहै। 'नये कवि', भाग-५ उनके इसी प्रयासका नया और पठनीय आकलन है। समकालीन कविताके कथ्यपर केन्द्रित संक्षिप्त प्रस्तावनाके बाद डॉ. तिवारीने क्रमशः श्रीकान्त वर्मा, केदारनाथसिंह, चन्द्रकान्त देवताले, ऋतुराज, भगवत रावत और अशोक वाजपेयीके काव्यलोककी परिक्रमा कीहै। केदारनाथ सिंहपर संपादित भारत यायावरकी पुस्तकके अतिरिक्त कहीं कोई समीक्षात्मक सामग्री नहीं है। शेष पांच कवियोंपर तो डॉ. तिवारीने नितान्त प्राथमिक सामग्री ही उपस्थित कीहै। इस मौलिकताके कारण 'नये कवि'-५ की महत्ता और उपादेयता स्वयंसिद्ध होतीहै।

काव्य समीक्षा डॉ तिवारीका सर्वप्रिय क्षेत्र है। न जाने कितने कवियों और उनकी कृतियोंसे गुजरनेके बाद उन्होंने काव्य-समीक्षकके रूपमें अपनी गुटनिरपेक्ष एवं निशंक छवि स्थिर कीहै। इस खण्डमें एक बार फिर उनकी समीक्षादृष्टि और विश्लेषण-शैलीका वही सौष्ठव उपस्थित हुआहैं, जो उनकी काव्य धारणासे निखरा है। नवें दशककी हिन्दी कविताकी रचनात्मक अभ्यास और प्रकृतिका अनुशीलन करनेके पूर्व डॉ. तिवारीने यह रेखांकित कर दियाहै कि रचनाकार मानव इतिहासकी दीर्घकालीनता और भीतरी-बाहरी संघर्षोंके स्पन्दनोंको पकड़कर समाजशास्त्रीयताकी संश्लिष्ट रचना-प्रक्रियामें मानवीय संलग्नतासे जुड़कर भावी सम्भावनाओंका तीव्र अनुभूति करातीहै। समकालीन कविता जिन यथार्थ स्थितियोंको पकड़कर वृहद् जीवन मूल्योंको पहचानना चाहतीहै, उन्हीं मूल्योंके साथ समीक्षक डॉ. तिवारीका गहरा सम्बन्ध है। विसंगतियोंपर किये गये व्यंग्य और त्रासपूर्ण जीवनकी भूली चर्चाओंमें कविता अंततः मानवीय करुणाकी भीतरी पर्तोंके बीच मानवीयताके दर्शन करतीहै। इसी दृष्टिसे श्रीकान्त वर्माकी कविताओंमें विद्यमान युग सन्दर्भ और विकल बना देनेवाली इच्छाओंकी अर्थवत्ता समीक्षकको पसन्द आतीहै। डॉ. तिवारीको प्रसन्नता है कि श्रीकान्त वर्माकी रचनाएं वर्तमानके अथाह अंधकारसे भविष्यके बारेमें सोचना चाहतीहैं। केदारनाथ सिंहकी कवितामें विद्यमान संवेदनाकी धारसे लेकर समयकी क्रूरताके बीच जीवनकी ललकके प्रति। डॉ. तिवारीकी आस्थाका भी यही कारण है। चन्द्रकांत देवताले, भगवत रावत, ऋतुराज और अशोक बाजपेयीकी कविताओंमें भी उन्होंने मानवीय सदाशयिता और गहरी संवेदनशीलताके उपकरणोंकी ही खोज कीहै। जहाँ कहीं कविता मनुष्यके भीतरकी परिपक्व मनुष्यताको व्यक्त करती दिखायी दीहै, समीक्षकने कविताके रचयिताकी वकालतसे संकोच नहीं किया। 'नये कवि'के इस पाँचवें भागमें समीक्षकने जिन कवियोंको विवेचनाके केन्द्रमें रखाहै, उनकी कुछ कमजोरियोंसे समीक्षक अपरिचित नहीं है। फिर भी इन समकालीन कवियोंका सृजन डॉ. तिवारीको आकृष्ट करताहै। इसका कारण इन कवियोंके रचना संसारमें उपस्थित मानवीय संवेदना एवं समसामयिक काव्यबोधकी जीवनमुखी चेतना ही है।

अशोक वाजपेयीके काव्य-वैशिष्ट्यकी ओर संकेत करते हुए समीक्षकने लिखाहै—'अशोक बाजपेयीकी कविता किसी बाद या चौखटेमें फिट न होकर विश्वचेतनाकी अनन्तताको अभिव्यक्ति देतीहै।' (पृ. १४८)। स्वयं डॉ. तिवारीकी समीक्षा-दृष्टि भी ऐसी ही है—किसी बाद या चौखटसे बाहर, मानवीय संवेदना और शाश्वत मूल्योंसे सम्पृक्त। 'नये कवि', भाग-५ उनकी इस समीक्षा-क्षमताका नया और पठनीय संग्रथन है, जिसमें नितान्त नये कवियोंकी उपलब्धियोंका सम्यक् अनुशीलन पूरी विश्वसनीयतासे किया गयाहै। ☐

भाग-६

शहर बढ़ रहेहैं। औद्योगिक संस्कृति अपना शिकंजा जकड़ती चली जा रहीहै। विकासकी छाया प्रत्येक क्षेत्रमें निरन्तर बढ़ रहीहै। विज्ञान और प्रौद्योगिकीके विकासने जीवनको अधिक सुखद बनाया या दुःखद ? इस प्रश्नका उत्तर दो खेमे अलग-अलग ढंगसे देते हैं—सम्पन्न और विपन्न, अर्थवादी और अध्यात्मवादी, संस्कृति और गंवार अथवा नागर और भुच्च। रोचक बात यह है कि इन सब दूरियोंमें 'तथाकथित' लगानेका अवकाश सर्वत्र है। इस 'तथा-

कथित' ने रचनाकर्ममें भी अनुचित हस्तक्षेप कियाहै और अब किसीको भी रचनाकार और रचनाके आगे कोई भी रचनाकार 'तथाकथित' लगानेकी छूट ले सकताहै। कदाचित् इस तथाकथितसे मुक्तिके लिएही कवियोंको शिविरबद्ध होनेकी आवश्यकता हुई। नगरोंके विस्तारने भी शायद उन्हें चर्चाके योग्य बननेके लिए शिविरबद्ध होनेके लिए विवश कियाहै। जोभी हो, इससे रचनाके प्रतिमान बनानेकी दिशामें पर्याप्त अड़चन पैदा हुईहै, कविताकी कसौटी तय करना कठिन हो गयाहै। इधर कविता-कर्मने ऐसे तेवर अपना लिये हैं कि उनसे कोई स्पष्ट इंगित प्राप्त नहीं होता।

शिविरबद्धोंको यह माननेमें संकोच नहीं होगा कि 'शिविरबद्धता'को समाचारमूलक प्रतिमानोंके निकट नहीं रखा जा सकता क्योंकि उसमें समावेशी सोच, जीवन-मूल्य और मानवीय संभावनाओंका क्षितिज उभरने लगताहैं। वह एक ऐसी अखाड़ेबाजी है, जहां अपने तम्बूके पहलवानको सर्वश्रेष्ठ घोषित करनेके चक्करमें दूसरोंके कौशलको अनदेखा कर अंक नहीं दिये जाते और इस प्रकार एक सींकिया पहलवानको "वर्ल्ड-रिकार्ड" बनानेके लिए सिफारिशोंके अंबार लगा दिये जातेहैं। आजकल तो 'मीडिया' पर नियंत्रण रखनेवाले पत्रकारों और रचनाकारोंको ही पुरस्कृत करनेका युग आ गयाहै। ये निन्दनीय गति-विधियां साहित्यके क्षेत्रसे बहिष्कृत होनी चाहियें जबकि इनकी पैठ तेजीसे बढ़ रहीहै।'

ऐसेमें डॉ. तिवारीकी इस बातसे असहमत नहीं हुआ जा सकता कि "आजकल समग्रताके नामपर बहुत कुछ समीक्षाएं इस ढंगसे लिखी जा रहीहैं कि रचनाओंसे उनका सबंध कम और स्वतन्त्र समीक्षा-सिद्धांतों या कलात्मक शब्दावलीसे अधिक दिखायी देताहै।" इस दुरवस्था और दुरभिसन्धिकी स्थिति में समीक्षककी टिप्पणी ध्यान देने योग्य है कि 'कविताकी सर्वमान्य दो ही कसौटियां हो सकतीहैं... कविताका मूल अभिप्राय क्या है और क्या वह मानव-मूल्योंका संवाहक है? अभिप्रायके साथ दूसरी बात जुड़ी हुईहै प्रासंगिकताकी। क्या उन जीवन-मूल्योंको अभिव्यक्तिकी पूरी क्षमताके साथ उठाया गयाहै? कहीं संकोच, साहसहीनता, शब्दोंकी कमी, द्विअर्थी शब्दावली या भ्रामकताका शिकार होकर कविता सच्चाईके उच्चारणसे विमुख तो नहीं हुई? कहीं सत्ता और व्यवस्थाकी सुख-सुविधावाली धुनमें कविता झुनझुनिया तो नहीं बजाने लगी।'

'नये-कवि : एक अध्ययन' भाग : ६' में डॉ. तिवारी ऐसे कवियोंको आलोचित करने और उन्हें अभिज्ञान देनेका साहसिक संकट अपने ऊपर लियाहै। इसमें संभावनाओंसे भरे कवियोंपर लगभग अद्यतन अध्ययन उपलब्ध है। पूरे रूपमें अद्यतन होना तो किसीके लिए भी संभव नहीं है। इन कवियोंमें लीलाधर जगूड़ी, राजेश जोशी, मंगलेश डबराल, उदयप्रकाश और अरुण कमलपर विस्तृत चर्चा है, विशद चर्चा है जबकि आजकी कविताकी चर्चा द्वारा उन्होंने अधिकसे अधिक संभावना-गर्भ कवियोंके नाम गिनाने और उनकी दिशाका इंगित प्राप्त करनेका प्रयत्न कियाहै। इन कवियोंमें उभयनिष्ठ निकालनेका एक सार्थक प्रयास ऐतिहासिक समालोचनाके माध्यमसे व्यवस्थित प्रयत्न डॉ. तिवारीने कियाहै, यथा ..."धूमिलने कविताको एक सार्थक बयान कहाथा। लीलाधर जगूड़ीकी कविता भी आदमीके उस बयानकी सबूत है जहां जीवनकी प्राथमिक आवश्यकताएं पहले हैं और अस्त्र-शस्त्रके भंडार बादमें। वहां मानवीय करुणा और बच्चोंके भविष्यके प्रति यथार्थपरक दृष्टि है...इसलिए लोगों/मेरी कविता / उस इन्सानका बयान है/जो बंदूकोंके गोदामसे/अनाजकी ख्वाहिश रखताहै' या फिर यह कि मंगलेश एक कविसे क्या अपेक्षा रखतेहैं..."मैं चाहता हुं/हम साफ-साफ एक समर्थक बयान दें कि सारी चीजें ठीक-ठीक समझायी जायें।'.

एक दूसरा उभयनिष्ठ जो इन कवियोंमें उपस्थित है, वह हैं बच्चे, चिड़ियां, पेड़, पहाड़, पत्थर आदि जिनके माध्यमसे जनवादी होनेका प्रयत्न है। जैसे—'बच्चेका खड़ा होना, डगमगाकर पैर जमाना और इस प्रकार 'चौड़ी होती जमीन' के विस्तारको नापना वस्तुतः हिंसा वृत्तियोंको चुनौती देनाहै क्योंकि आततायी भी बच्चेके पांव लेनेसे डरतेहैं, उनकी गंध और उनके शब्दोंसे भी। जंजीरोंका टूटना और दरवाजोंका खुलना इन्हीं पांवोंकी दमपर संभव होताहै क्योंकि विकासशील जीवन और जिजीविषाकी अमरगाथा बच्चोंके इन्हीं जमते पाँवोंपर निर्भर हैं—'चारों ओरसे उतर रहे/खतरोंके बीच-खिलखिलाता हुआ/बच्चा पांव ले रहा है।' राजेश जोशी—एक दिन बोलेंगे पेड़।

प्रस्तुत खण्डकी विशेषता यह है कि समीक्षक कुछ अधिक बड़बोला, चुटीला और व्यंग्य-प्रहारयुक्त है। इसमें ऐसा नहीं लगता कि कविके प्रति समीक्षक कोई कोमल अथवा रियायती रुख अपनाये हुएहैं। वस्तुतः वह जितना प्रखर और निष्ठावान् है इन कवियोंके अध्ययनमें, उतना ही अधिक चटपटा, चरपरा और विनोदी चुटकियोंसे भरा हुआहै। इसका अध्ययन रसिकोंके लिए निश्चित रूपसे रोचक और ज्ञानवर्द्धक है। □

विनीत : श्रद्धांजलि

अदम्य जीवन-शक्ति सम्पन्न आत्मिक उजासका कवि : डॉ. सत्यपाल चुघ

—डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी

डॉ. सत्यपाल चुघ एक समर्थ कवि और तलस्पर्शी आलोचकके रूपमें 'दिलकी धड़कन और वक्तकी आवाज' को निरंतर सुनते रहेहैं, एक साथ। सृजन और समीक्षाकी सहकारिताने गहरी संवेदनीलता, बौद्धिक सजगता, मूल्योंकी तलाश, यथार्थका साक्षात्कार और एक खुलापन उन्हें प्रदान किया। उन्होंने न तो कभी समीक्षाकी एकांगी भूमिकाको सराहा और न रचनाके सामाजिक दायित्वसे मुंह मोड़ा। प्रायः देखा जाताहै कि विश्वविद्यालयीन और महाविद्यालयीन परिसरके लेखक आलोचनाके विविध दबावोंके कारण अपनी रचनात्मक क्षमताको शिखर तक नहीं पहुंचा पाते, किन्तु सत्यपाल चुघ इसके अपवाद रहेहैं।

कविका विकासशील सामाजिक चिन्तन 'वाद' विहीन धरातलपर मनुष्यताके सूर्यको जमाकर सामंती पूंजीवादी 'सीकरी' को ध्वस्त करनेके प्रयत्नमें निरन्तर लगा रहा। सत्यपाल चुघने जिस सामूहिकता और साहसिकताको पनपानेकी चेष्टा की उसका प्रयोजन मूलतः सीकरीकी ध्वस्तता रहा है। 'सूर्य और सीकरी' की रचनाएं इस बातकी साक्षी हैं। डॉ. चुघकी रचनाएं आत्माके उजासकी रचनाएं हैं और चेतनाके संस्कारकी भी। सामाजिक संलग्नता और चिन्तन एवं परिवेशगत, सच्चाइयोंसे उन्होंने कभी किनारा नहीं किया, 'क्योंकि उनके शब्द जन-जनकी कोखसे जन्मे' थे। उन्होंने आत्मालोचनके साथही 'जन-जनके मन-मनके सूर्यको' सांस्कृतिक और मानवीय चेतनाकी ज्योतिके लिए आमंत्रित किया क्योंकि 'हर युवामें रही है, सीकरी/ पर जूझता रहाहै सदा सूर्य भी।'

व्यक्ति और समाजके सामंजस्यशील-समन्वित मार्गको अपनाते हुए उनकी कविता ऊर्जा-सम्पन्न, आस्था-परक और बृहत्तर सामाजिक संदर्भोंको लेकर चलीहै। उसमें पौरुष, कर्मण्यता और एक प्रकारका शहीदाना संकल्प है। कविका 'समष्टि संचेतित मन' अपने तीखे तेवरमें खुलकर यह बात कह सकाहै— कहनेको तो बहुत हैं तरक्की-पसंद/पर टूटी कहां मनकी जंजीर साहब/जिसने बुझते घरोंको कर दिया रोशन/ वही सच्चा मीर और अमीर साहब।'

सत्यपाल चुघका रचना-संसार उस 'विश्वपुरुष'

को नमन करताहै जो 'चेतना-सम्पन्न सूर्यमुखी' का पर्याय बने और मौन संगीतके अंतरंग उल्लासकी पहचान भी। यह मानवीय सदाशयता अपनी चरम सीमापर इन पंक्तियोंमें परिलक्षित होतीहै—'कौन हो पायेगा/विश्वपुरुष ऐसा/कि प्यारके विस्तारमें/रूह उसकी होगी भू/मन असीम गगन/उदर सागर गंभीर/ललाट नव-विहान/नयन करुणायन/कंठ सरगम संगम/वाणी सर्वकल्याणी/भुजाएं हरित दिशाएं/हाथ जगन्नाथ/चरण मंगलाचरण/ रोम समरस लोग/दृष्टि सारी सृष्टि/और पिंड सकल ब्रह्मांड।'

अपनी रचनात्मकताकी विभिन्न इकाईयोंमें कविने पुरुषकी बर्बरता और वासनाकी शिकार नारीको भी अपनी विभिन्न मनःस्थितियोंमें उजागर कियाहैं और खामोश उदास अंधेरे कोनेमें अपना दर्द बोते, खंखारते वृद्ध पुरुषका भी चित्रांकन कियाहै। कहीं प्रकृति-सौंदर्यमें रंगते हुए धूपके पीताम्बरी तेवरोंका चित्रण है और कहीं 'सावनी संवाद' में छापामारी मेघोंके उड़न दस्तोंका जिक्र है। कहीं बिम्बधर्मिता हमारा ध्यान आकृष्ट करतीहै और कहीं 'हाइकु' जैसे जापानी छंदका चातुर्य—'सांझ पीकर / उगले सुबहको/वही शंकर।' या 'है कोई राम/तोड़े अशिव धनु/जय श्री वरे।'

स्पष्ट है कि डॉ. चुघ 'शिवम्' के पक्षधर रहेहैं। यह कल्याणकारी पावन तत्त्व उनके काव्यकी बहुत बड़ी विशिष्टता है जो पूरे रूपमें भारतीय चिन्तनको आत्मसात् किये हुएहै। उनकी कविता प्रेमालोककी भांति धूप-सी धरतीपर उतरती रहीहै।

सत्यपाल चुघने मृत्युको 'एक नये रोशन दृश्यकी प्रक्रिया' कहाथा। 'इसी जन्ममें पुनर्जन्म' काव्य-संग्रहमें उन्होंने इस बातको रेखांकित कियाहै कि ढलती आयुमें यदि सक्रियता, संकल्प शक्ति, पौरुष, स्वस्थ चिन्तन और संघर्षशीलता बनी रहे तो समझना चाहिये कि इसी जन्ममें पुनर्जन्म हो गयाहै। जीवनके अंतिम क्षणोंतक उनकी संघर्षशीलता और गतिशील चिंतनकी निरंतरता उनके ओजस्वी-तेजस्वी व्यक्तित्वकी परिचायक बनी रहीहै।

मुझे स्मरण आताहै कि फरवरी ९१ में दमोह महाविद्यालयमें अखिल भारतीय शोध संगोष्ठीमें 'समकालीन कथा-साहित्य' गोष्ठीकी अध्यक्षता करते हुए डॉ. चुघने प्रेमचंदको केन्द्रमें रखकर होरी-धनिया की व्यथा-कथा ही प्रस्तुत नहीं की, अपितु प्रेमचंदकी उस स्वप्नदर्शी 'दृष्टि'को भी प्रस्तुत किया जो उन्होंने 'प्रतिपक्ष' में रखकर यथार्थके साथ अपने दिवास्वप्नके रूपमें (अंतर्निहित आशय) रचनात्मकताको ऊंचाई प्रदान कीथी। आधे दर्जन काव्यसंग्रहोंका प्रणयन और उपन्यासोंपर समीक्षात्मक नवीनतम कृति देकर उन्होंने हिन्दी साहित्यको समृद्ध कियाहै। सहज आत्मीयता और प्रेमसे आपूरित उस निश्छल व्यक्तित्वको राजनीति कभी कलुषित नहीं कर पायी। कहाजा सकता हैं कि उन्होंने आचरणजन्य भाषाकी कविताएं प्रस्तुत की हैं। वे महानगर पार्षद भी रहे और अखिल भारतीय साहित्य परिषदके उपाध्यक्ष भी। ऐसे जीवट का व्यक्ति और प्रेरक व्यक्तित्व बहुत विरल होताहै जो अंतर्बाह्य परिस्थितियोंकी विपरीतताके होते हुए अदम्य जिजीविषासे भरा रहाहो। कुछ दिन पूर्व ही उन्होंने मुझे वासंतिक वैभवकी प्रफुल्लतामयी कामनाएं प्रेषित कीथीं और आज उत्तरमें, (कभी सोचा भी न था) विनीत श्रद्धांजलि अर्पित करताहूं।□

मत-अभिमत

'प्रकर' में प्रकाशित सामग्रीके संबंधमें आपकी चिन्तनपरक प्रतिक्रियाका सदा स्वागत है।
प्रतिक्रिया आमंत्रित करनेका उद्देश्य 'प्रकर' में प्रस्तुत विचारों और चिन्तनोंकी मात्र सम्पुष्टि या स्तुति नही है, अपितु उनके क्षेत्रका विस्तार और चिन्तन विचारकी असंगतिकी ओर निर्देश करना भी हो सकताहै। उसे संवादका बिन्दु भी बनाया जा सकताहै।
'प्रकर' संबंधी सामग्रीके सम्बन्धमें नये सुझाव भी आमन्त्रित हैं। सामग्री संबंधी सुझावोंके नये क्षेत्रों का सुझाव भी दिया जा सकताहै।

वी. पी. सिंह : मूल्योंकी राजनीतिसे वोटकी राजनीति तक[१]

लेखक : बच्चन सिंह
समीक्षक : प्रो. कैलाशनाथ तिवारी

बच्चन सिंह हिन्दी पत्रकारिताके सम्मान्य हस्ताक्षर हैं। अनुसंधानात्मक अभिगम, धारदार अभिव्यक्ति तथा विचक्षण बिश्लेषण उनका लेखकीय वैशिष्ट्य रहा है। समीक्ष्य पुस्तकके फ्लैपपर दी गयी सूचनाके अनुसार उनकी प्रातिभ सर्जना दो काव्य-कृतियों द्वारा रेखांकित हो चुकीहै, और शीघ्रही पत्रकारितापर 'कीरतराम पत्रकार' शीर्षकसे अपने ढंगका पहला उपन्यास प्रकाश्य है। राजनीतिपर प्रस्तुत कृति लेखक का प्रथम प्रयास है, पर यह एक बृहद् संभावनाका संकेत देतीहै और साथही, निवर्तमान प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रतापसिंहके शासन-कालको केन्द्रमें रखकर स्वराज्योत्तर भारतीय राजनीतिकी सम्पूर्ण विकलांगताका गहन पड़ताल करतीहै।

पुरोवाक्के रूपमें उपस्थापित 'वी. पी. ही क्यों ?' परिच्छेदमें विश्वनाथप्रताप सिंहके व्यक्तित्वकी बुनावट, उनके राजनीतिक लक्ष्य और घोषित संकल्प से तदन्तर पलायनका तलस्पर्शी, आकलन सन्निवेशित है। विदित है कि वी. पी. सिंह राजनीतिमें मूल्योंकी पुनर्स्थापनाकी पताका फहराकर जन-नायकके रूपमें उभरे। बहुकोणीय भ्रष्टाचारमें आकंठ निमग्न राजनीतिसे त्रस्त जनताके समक्ष वे एक संभावना थे, किन्तु 'यह संभावना एक अंधी गलीमें जाकर अकाल मौत मर गयी तो देश किस प्रकार मध्यकालीन अराजकताके दलदलमें समाता जा रहाहै। इतिहास इस बातके लिए वी. पी. सिंहको दोषी ठहराता रहेगा कि जिस लक्ष्यका संधान करते हुए देश उन्हें देखना चाहता था, उसे लक्ष्य माननाही उन्होंने स्वीकार नहीं किया।' कारण यह बना कि वी. पी. अपने अंतरंगी रचनाकार और राजनीतिज्ञके अन्तर्द्वन्द्वसे उबर नहीं सके। निजी असंतुलन भयानक त्रासदीमें परिणत हुई। हो ची मिन्ह और माओ भी कवि थे, रचनाकार थे, किन्तु अपने रचनाकारको राजनीतिपर स्थापित नहीं होने दिया। यदि वी. पी. भ्रष्टाचार और मूल्यहीनताके विरुद्ध संघर्षरत रहते तो प्रतिभूति घोटाला, डंकल प्रस्ताव, बहुराष्ट्रीय कम्पनियोंकी घुसपैठ, आर्थिक नीतियोंके निर्धारणमें, अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष तथा विश्व बैंकका दबाव, न्यायमूर्ति वी. रामास्वामीके विरुद्ध महा-अभियोग प्रभृति प्रकरणोंके अन्तर्गत न तो राष्ट्रीय अस्मिता पर प्रश्नवाचक निशान लगते और न भ्रष्टाचारके पांव सुदृढ़ होते तथा देशवासियोंको आर्थिक एवं सांस्कृतिक आक्रमणसे जूझनेकी दारुण विवशता संभवत: थम जाती।

'मूल्य और लोकतांत्रिक मूल्य' अध्यायके अंतर्गत मूल्यकी वृत्तिमूलक प्रकृति, उसके विभिन्न स्वरूप तथा उसकी व्यक्तिगत एवं समाजगत उपयोगिताकी दार्शनिक विवेचना हुईहै। अवधारणा यह हैं कि 'मूल्य हजारों वर्षोंकी सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक परम्पराकी कोखसे जन्मतेहैं और मानव समाजको दिशा, गति तथा लय प्रदान करतेहैं।' (पृ. १३)। वर्गीकरणकी दृष्टिसे मूल्य स्वत:प्रेरित और परत:प्रेरित होतेहैं, पर मनुष्यके क्रियाकलापोंको ये दोनों समवेत रूपसे प्रभावित करतेहैं तथा मूल्योंके सातत्यके लिए जन-मानसकी स्वीकृति अपरिहार्य है। मूल्य-विवेचनके क्रममें लेखकने यह ध्यानाकृष्ट करनेका सफल प्रयत्न कियाहै कि यद्यपि मूल्य परिवर्तनशील और समय-सापेक्ष होतेहैं तथापि 'नये मूल्योंकी स्थापना के बिना मूल्य-भंजकता समाजको विघटित कर देती है, असंगठित कर देतीहै और उसमें विस्फोटको जन्म

---

१. प्रका. : प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली-२४३००३। पृष्ठ : ६+२२७; डिमा. ९३; मूल्य : ९८.०० रु.।

देतीहै। मूल्य-भंजकताकी प्रवृत्ति व्यक्तिके अन्दर हताशा, कुण्ठा और भ्रम पैदा करतीहै" तथा 'परिवर्तन का अर्थ विघटन या विस्फोट नहीं हो सकता।' (पृ. १५)। भारतीय मनीषा परिवर्तनको एक सहज निरन्तर प्रवहमान प्रक्रिया मानती रहीहै जिससे सामाजिक समरसताकी स्रोतस्विनी अचानक अवरुद्ध न हो जाये। परिवर्तन अथवा नव-सृजनके लिए विस्फोट या विनाशकी संभावना भारतीय चिन्तन-पद्धतिमें कभी नहीं रही। लोकतांत्रिक मूल्योंको व्याख्यायित करते हुए लेखकका मानना है कि 'किसीभी लोकतांत्रिक व्यवस्थामें लोक ही मूल्योंका संवाहक होताहै' तथा 'व्यक्तिका 'मूल्य' और उसकी स्वतंत्रताही लोकतंत्र के परम मूल्य होतेहैं।' (पृ. २१)। किन्तु 'यदि लोकके पास नीर-क्षीर विवेक नहीं है और उसे उत्प्रेरित करने वाली शक्तियां स्व-हितोंसे बंधीहैं तो लोक द्वारा सृजित मूल्य भी लोक-हितमें नहीं होंगे।' (पृ. २०)।

'भारतीय राजनीतिकी त्रासदी' और 'वी. पी. सिंह : व्यक्ति और राजनेता' विवेच्य पुस्तकके केन्द्रीय आलेख हैं तथा लेखकीय अभीष्टका विस्तृत अपावरण। स्वराज्योत्तर भारतकी राजनीतिक विकृति वस्तुत: आरोपित संविधानका फलितार्थ है। औपनिवेशिक मनोग्रंथि एवं सामंती मानसिकतासे अभिप्रेरित और भारतीय परिवेश, विरासत, चिन्तन एवं संस्कृतिसे सर्वथा असम्पृक्त विदेशी राजकीय पद्धतिने शासक और शासित वर्गके बीच संवादहीनताकी यथास्थिति बनाये रखी तथा दूसरे छोरपर, रागात्मक एकताके तन्तुओंको विनष्ट किया। सम्पूर्ण समाजको एक इकाई के रूपमें देखने-परखनेकी वांछनीय दृष्टिके बदले खण्ड-दृष्टि विकसित हुई। वोटकामी राजनीतिने अल्प-संख्यक-बहुसंख्यक, अगड़ा-पिछड़ा जैसे शब्दावलीको उछालकर 'फूट डालो राज करो'की कुटिल नीतिको पल्लवित-पुष्पित किया। आर्थिक स्तरपर पश्चिमसे आयातित औद्योगिक ढांचेने महानगरीय पंचतारा संस्कृति और भौतिकवादी जीवन-दर्शनको जन्म दिया और गांवकी झोपड़ियां दृष्टि-पथसे ओझल रहीं। साठके दशकमें मार्क्सवादी प्रवक्ताओंने भारतीय परम्परा और मूल्योंको नकारने तथा भारतीय कला, साहित्य, और संस्कृतिको प्रभावित करनेका प्रबल अभियान चलाया। लक्ष्य साधनके लिए हिंसात्मक मोर्चेभी खोले गये। बंगालका नक्सलवादी आन्दोलन और बिहारका वर्ग-संघर्ष, सम्प्रति जाति-संघर्ष, ख्यातव्य उदाहरण हैं। मध्यवर्गीय नामसे अभिहित समाजका एक बड़ा वर्ग छद्म प्रगतिशीलता और कृत्रिम आधुनिकताके प्रति आकर्षण तथा पारम्परिक समाज-व्यवस्थाके प्रति रागात्मक लगावके कारण द्विधाग्रस्त बना रहा। नेहरू युगके इस कलुष परिदृश्यसे मर्माहत डॉ. राममनोहर लोहियाने साम्यवादियोंसे अलग समाजवादियोंको एकजुट करनेका अथक प्रयास किया, किन्तु अपनी डफली अपना रागके फलस्वरूप उनके प्रयास असफल रहे। यद्यपि उनके द्वारा प्रसूत गैर-कांग्रेसवादी चेतनाके अन्तर्गत सन् १९६७ और १९७७ में गैर-कांग्रेसी सरकारें बनीं, पर सत्ताकामी स्वार्थी नेताओंकी आपसी होड़के कारण इन सरकारोंने दम तोड़ दिये।

नेहरू-युगके पर्यावसान-पश्चात् लालबहादुर शास्त्रीने अल्पावधिमें स्वावलम्बन, उत्सर्ग, राष्ट्रीय अस्मिता जैसे स्वदेशी मूल्योंकी वापसीके लिए निष्ठावान् प्रयत्न किये, किन्तु उनके कार्य कालकी प्रवृत्ति और उपलब्धियां विवेच्य पुस्तकमें अलेख्य रहीहैं। इंदिरा गांधीने आरंभिक दौरमें चौदह बैंकोंका राष्ट्रीयकरण और राजाओंके प्रिवी पर्सकी समाप्तिके व्याजसे पूंजीवाद बनाम समाजवादका गगनभेदी नारा उछालकर अपने तपोनिष्ठ प्रतिपक्षियोंको धराशायी किया। तत्पश्चात् उनके निरंकुश व्यक्तित्वकी परतें क्रमश: खुलती गयी। न्यायपालिका और विधायिकापर कार्यपालिकाकी सर्वोच्चता सिद्ध करनेके लिए संविधानमें इतने अधिक संशोधन किये गये कि उसकी आत्माही विकृत हो गयी। वस्तुत: इंदिरा-युगमें अन्तर्निहित वैषम्य, विरोधाभास और छलावेने अवमूल्यनकी प्रक्रिया में यथेष्ट वृद्धि की। भारत-पाक युद्ध (१९७१ ई.) प्राप्त विजयश्रीसे वर्द्धित छवि पुन: आतंकवाद, वंशवाद, भाषाई आन्दोलन, कमरतोड़ महंगाई और चहुंमुखी भ्रष्टाचारके काले सायेमें निस्तेज हो गयी। जयप्रकाश नारायणके नेतृत्वमें आहूत राष्ट्रव्यापी 'समग्र क्रान्ति' की लहरसे बचावमें आपातृकालकी घोषणा कर उन्होंने लोकतांत्रिक मूल्योंकी धज्जी उड़ा दी। परिणामत: १९७७के चुनावमें कांग्रेसकी भयंकर पराजयके पश्चात् जनता पार्टीकी सरकार केन्द्रमें आयी, पर कुर्सी की लड़ाईमें तीन बर्ष बीतते-बीतते यह सरकार सत्ताच्युत होगयी। पुन: १९८० के लोकसभा चुनावमें इंदिराकी वापसीसे कोई विशेष सुधार नहीं हुए।

निष्कर्षतः उनका काल-खण्ड 'चारित्रिक, मूल्यगत मान्यताओं, आदर्शों तथा सिद्धान्तोंके स्खलनके चरमोत्कर्ष' (पृ. ३५) की अवधि रही। सहानुभूति वोटकी बैसाखीपर राजीव गांधी सत्तासीन (१९८५) हुए। सक्रिय राजनीतिमें युवकों एवं बुद्धिजीवियोंकी सहभागिताका आह्वान, इक्कीसवीं शतीके सुनहले प्रभातकी प्रतिज्ञा, मंत्री-मडलमें निष्ठावान् छविके नेताओंका समावेश, पंजाब-मिजोरम-असम-गोरखालैंडमें शान्ति-स्थापना हेतु राजनीतिक समझौते और दल-बदल विरोधी कानून आदि द्वारा उन्होंने शुभ-संकेत दिये, किन्तु उत्तर कालमें दून-संस्कृतिमें दीक्षित सत्ता-दलालों की पकड़में आकर इंदिरा-शैलीकी विकृतिको अंगीकार कर लिया। आर्थिक अपराधियोंको संरक्षण तथा पंचायती राज बिलके माध्यमसे ग्राम समाजपर केन्द्रीय नेतृत्वका हस्तक्षेप इस संदर्भमें ध्यातव्य है। भ्रष्टाचार का बाजार इतना गरम रहा कि स्वयं राजीवके शब्दोंमें —'जनताके कल्याणके लिए सरकार द्वारा दिये गये एक रुपयेमें से सिर्फ पन्द्रह पैसे ही जनता तक पहुंचते हैं, शेष ८५ पैसे नौकरशाही, बिचौलिये और नेता हजम कर जाते हैं।' (पृ. ४६)।

भारतीय राजनीतिके सप्तम दशकसे भ्रष्टाचार और महंगाई चुनावी दंगलके मुख्य मुद्दे बने रहे। स्वीडनसे बोफर्स तोप और जर्मनी पनडुब्बियोंकी खरीदारीमें करोड़ों रुपयोंके घोटालोंने कांग्रेस-प्रशासनकी नींव हिला दी। जनता दलके नामसे जनता पार्टीका नया संस्करण महत् आकांक्षाओं एवं नयी राजनीतिक संस्कृतिका लबादा ओढ़कर सत्तारूढ़ हुई। किन्तु प्रधानमंत्री वी. पी. सिंहकी राजनीतिक अपरिपक्वता तथा सहकर्मियोंके भीतरी छल-छद्मसे सारी संभावनाओंपर तुषारपात होगया। वस्तुतः कवि-मना वी. पी. और राजनीतिक वी. पी. आंतरिक द्वन्द्वमें फंसे रहे। कवि संवेदनशील होताहै और संवेदनाशून्य राजनीतिज्ञ। इन दोनोंका समुचित सामंजस्य स्थापित कर राजनीति की ऊबड़-खाबड़ पगडंडियोंपर चलना दुष्कर तो है, किन्तु सर्वांशतः अनिवार्य। व्यक्तिगत धरातलपर वी. पी. सिंह राजनीतिमें नैतिकता एवं संवेदनशीलता, आर्थिक समानता और न्याय, चुनावोंमें उद्योगपतियोंसे अनुदानपर प्रतिबंध, व्यक्ति-पूजाका विरोध, क्षेत्र-जाति-धर्मके आधारपर राजनीतिक व्यवसायपर रोक, आर्थिक अपराधियोंके प्रति कठोर कार्यवाईके पक्षधर रहेहैं। जनता दलके घोषणा-पत्रमें भी इन प्रतिज्ञप्तियोंका समर्थन रहा, किन्तु आरंभमें ही नेता-पदके निर्वाचनक्रममें लोकतांत्रिक सिद्धान्तों और मर्यादाओंकी बलि चढ़ गयी। एक षड्यंत्रके अन्तर्गत पहले देवीलाल निर्वाचित हुए, फिर उन्होंने वी. पी. की ताजपोशी की। जनता दलके आंतरिक त्रिकोणात्मक कलह (चन्द्रशेखर, वी. पी. और देवीलाल) का यही प्रथम कारण बना। ओमप्रकाश चौटाला-प्रकरणको लेकर देवीलालसे प्रधानमंत्रीकी दूरी बढ़ती गयी और अन्ततः उन्हें अपदस्थ होना पड़ा। आर्थिक अव्यवस्थाकी स्थिति यह रही कि 'बजटका घाटा ७००० करोड़ रुपयेसे बढ़कर १४००० करोड़ रुपये होगया और पहली जनवरी १९९० को जो विदेशी मुद्रा ५२७७ करोड़ रुपये मूल्य के बराबर थी वह अक्टूबर १९९० के अन्तमें ३८२० करोड़ रुपयेके बराबर रह गयी...और तेल मूल्योंपर २५ प्रतिशत अधिभार सहित १२०० करोड रुपये टैक्स लगाये गये।" (पृ. ९४)। प्रतिशोधकी भावनासे उद्वेलित देवीलालने गांव बनाम शहरकी विषमताको उछाला, किसान आन्दोलनकी धमकी दी तो सर्वानुमति और आम रायके प्रति संकल्पित वी. पी. सिंहने सहयोगी दलसे परामर्श किये बिना मंडल आयोगका ब्रह्मास्त्र चला दिया। फलतः भारतीय राजनीति 'मूल्योंसे हटकर पुनः कुर्सी-युद्धमें फंस गयी।' (पृ. १०९)।

सम्पूर्ण देश विशेषतः उत्तर भारत आरक्षणके समर्थन-विरोधकी आगमें जलने लगा। मंडल आयोग की संस्तुतियोंका बृहद् विश्लेषण सम्प्रति अपेक्षित नहीं है, पर इस संदर्भमें लेखककी बेबाक टिप्पणी (पृ. ११३-११५) अनिवार्यतः पठनीय और विचारणीय है। कामके अधिकारको संविधान प्रदत्त मूल अधिकार में जोड़ना, जमाखोरी और कालाबाजारीका उन्मूलन, शहरोंमें पटरियोंपर रहनेवालोंकी आवास-व्यवस्था, व्यापक चुनाव-सुधार, आकाशवाणी और दूरदर्शन-संचालनके लिए स्वायत्त निगमोंकी स्थापना, पंजाब समस्याका राजनीतिक समाधान प्रभृति महत्त्वपूर्ण मुद्दोंकी उपेक्षाकर जब मुस्लिम और पिछड़े वर्गके वोट बैंकको सुनिश्चित करनेकी पहल होती रही तो अयोध्यामें राम मंदिर-निर्माण हेतु अडवाणीकी रथ-यात्रा आरंभ हुई। बहुसंख्यक वोटकी स्वाभाविक चिन्ताके अतिरिक्त भाजपाके लिए मंदिर-निर्माण आन्दोलन

राष्ट्रीय अस्मिता और जातीय गौरवकी वापसीका प्रबल मुद्दा बना। अडवाणीके पीछे व्यापक जन-समर्थनसे विचलित और हताश प्रधानमंत्रीने ऐसे परस्पर विरोधी कदम उठाये कि स्थिति विकटसे विकटतर होती गयी। अंततः अडवाणीकी गिरफ्तारीसे जनता दल [राष्ट्रीय मोर्चा] के केन्द्रीय प्रशासनकी अकाल मृत्यु हो गयी। इस परिप्रेक्ष्यमें वी. पी. सिंहकी स्वीकारोक्ति भी ध्यातव्य है—'ईमानदारीकी बात यह है कि मैं महज गलतीसे राजनीतिमें हूं' और वह अपनेको 'राजनीतिके लिए उपयुक्त नहीं मानते।' (पृ. १६३)।

आलोच्य पुस्तकके 'उपसंहारमें सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, नैतिक, राजनीतिक प्रभृति देशव्यापी विरूपण एवं प्रवंचनाओंके प्रति गहरी चिन्ता और चिन्तनकी अभिव्यक्ति हुईहै। सामाजिक परिवर्तन, मंदिर मस्जिद-विवाद, राष्ट्रवादी मुस्लिम वर्गकी उपेक्षा, सामाजिक न्यायके सिद्धान्तका राजनीतिकरण, मार्क्सवादकी आन्तरिक त्रुटियाँ, भौतिकवादकी चकाचौंधमें देशीय मूल्योंका अनादर, जन प्रतिनिधियों द्वारा अपव्यय और भोग-विलास तथा धर्मनिरपेक्षता विषयक प्रतिज्ञप्तियोंकी नितल विवेचना महत्त्वपूर्ण अंश हैं। लेखककी दृष्टिमें गांधीवादकी पुनर्स्थापना एकमात्र सार्थक विकल्प है।

यत्र-तत्र मुद्रण-दोष तो हैंही, किन्तु पृष्ट २०२ पर एक ही अनुच्छेदका दुबारा मुद्रण अक्षम्य प्रतीत होता है। सारतः भारतीय राजनीतिकी सोच समझके लिए यह असाधारण रूपसे प्रचारणीय उद्बोधन है और विचारोत्तेजक भी। ☐

भाषा विज्ञान : चिन्तन एवं दिशाएं

ऐतिहासिक भाषा विज्ञान और भारतका भूगोल

[अंश : २, खण्ड : १]

[डॉ. रामविलास शर्माका भाषा-चिन्तन]

—डॉ. राजमल बोरा

उपक्रम

दूसरे खण्डका शीर्षक 'इंडोयूरोपियन परिवारकी भारतीय पृष्ठभूमि' है। यह खण्ड अनेक दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है। डॉ. रामविलास शर्माके भाषा-चिन्तनका स्वरूप इसमें अधिक उजागर हुआहै। भारतवर्षकी भाषाओंको यूरोप और एशियाकी भाषाओंके परिप्रेक्ष्य में रखकर पहचाननेका प्रयास इस खण्डमें हुआहै। यह पहचान भाषा-परिवारोंके आपसी सम्बन्धोंको बतलाते हुए किया गयाहै।

प्रथम खण्डमें डॉ. रामविलास शर्माने 'आर्यभाषा केन्द्र और हिन्दी जनपद' पर अपना ध्यान केन्द्रित कियाहै। ठीक इसी प्रकार इस खण्डमें उनका ध्यान इंडोयूरोपीय परिवार है। यह परिवार एशिया और यूरोपमें विस्तृत रूपमें फैला हुआहै और इस परिवार की भाषाओंमें भारतवर्षकी पृष्ठभूमि क्या रही होगी? भारतवर्षकी भाषाएँ एशिया और यूरोपकी भाषाओंसे किस रूपमें सम्बद्ध है? ये और इस प्रकारके प्रश्नोंपर ऐतिहासिक और भौगोलिक परिप्रेक्ष्यमें विचार किया

गयाहै।

इस खण्डमें आठ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय ध्वनितन्त्रसे सम्बन्धित है। दूसरा अध्याय शब्दतन्त्र का है। तीसरा अध्याय रूपतन्त्रका है और चौथा अध्याय 'ऐतिहासिक भाषाविज्ञानके परिवर्तित परिप्रेक्ष्य और हित्ती' से सम्बन्धित है। बादके तीन अध्याय स्लाव-केल्त भाषा समुदाय, ईरानी भाषा-क्षेत्र और मध्य और पश्चिमी एशियाके भाषा-परिवारकी भाषाओं के साथ भारतके सम्बन्धको बतलानेवाले हैं। निश्चित ही ये सभी अध्याय ऐतिहासिक भाषा-विज्ञानकी परख में उपयोगी हैं। इस सारी सामग्रीका उपसंहार अन्तिम और आठवाँ अध्याय है और वह है 'ऐतिहासिक भाषा विज्ञान और भारत।'

डॉ. रामविलास शर्मा 'ऐतिहासिक भाषा विज्ञान' की उपेक्षाको अच्छा नहीं समझते। इस क्षेत्रमें उन्होंने पहल कीहै। भारतीय विद्वानोंने विदेशी विद्वानोंके ऐतिहासिक भाषाविज्ञानके विवरणोंमें और उनके कार्यों में अधिक विश्वास कियाहै। इससे हमारे देशकी बहुत हानि हुईहै। हमारी भाषाओंकी पहचान ठीकसे नहीं हुईहै। इस पहचानको ठीकसे उजागर करनेका काम 'ऐतिहासिक भाषाविज्ञान' ही कर सकताहै। ऐसा क्रान्तिकारी काम डॉ. रामविलास शर्माने प्राथमिक स्तरपर किन्तु बड़े ही दृढ़ शब्दोंमें कियाहै।

डॉ. रामविलास शर्माके 'ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के कार्यपर भाषाविज्ञानके विद्वानोंने गंभीरतासे ध्यान नहीं दियाहै। आलोचनाके अंक-८३ (अक्तूबर-दिसम्बर १९८७) में डॉ. सुरेन्द्रकुमार शर्मा लिखतेहैं—"डॉ. भोलानाथ तिवारीने बताया, डॉ. रामविलास शर्मासे पूर्व काशीराम शर्माने अपनी पुस्तक 'द्रविड़ परिवार की भाषा और हिन्दी' (१९६८ ई.) और भगवानसिंह ने अपनी पुस्तक 'आर्य द्रविड़ भाषाओंकी मूलभूत एकता' (१९७३ ई.) में डॉ. रामविलास शर्मा जैसा प्रयास कियाहै, किन्तु भाषाविज्ञानके किसी भी व्यक्ति ने इसे गंभीरतासे नहीं लिया।" (पृ. ९२)।

भाषाविज्ञानके विद्वान् डॉ. रामविलास शर्माको गंभीर विद्वान् नहीं मानते। भाषाविज्ञानके क्षेत्रमें उनके कार्यको वे पसन्द नहीं करते। वे रास्क, ग्रिम, श्लेगल, बॉप्प, हम्बोल्ट, श्लाइखर, ब्रुगमान, जूल ब्लॉख तथा मेये जैसे विद्वानोंको दिग्गज मानतेहैं। उनके विचारसे पहले इन सबका खण्डन करो और [illegible] हो। और इसीलिए डॉ. रामविलास शर्माकी अनुसन्धान पद्धतिको दोषपूर्ण मानतेहैं। वे लोग विदेशी विद्वानोंकी ऐतिहासिक पद्धति को स्वीकार करतेहैं।

डॉ. सुरेन्द्रकुमार शर्माने आलोचना-८३ अंकमें जो कुछ प्रश्न उपस्थित किये उसका उत्तर आलोचना ८६ अंकमें श्री भगवानसिंहने दियाहै। उन्होंने डॉ. रामविलास शर्माके कार्यको महत्त्वपूर्ण मानाहै। वे लिखतेहैं—"ध्यान न दिये जानेपर डॉ. रामविलास शर्माकी कृति स्वयं इस बातका प्रमाण है कि ये मान्यताएं ऐतिहासिक भाषाविज्ञानकी लोकप्रिय मान्यताओंकी निस्सारताको उद्घाटित करने और नयी दृष्टि अपनानेके लिए ही नहीं अपितु एक ऐतिहासिक ठोस आधार प्रदान करतीहैं। ज्ञातव्य है कि डॉ. रामविलास शर्मा अपने प्रतिपादित मतपर प्रस्तुत लेखक से स्वतन्त्र रूपमें पहुंचेथे और जिस समय **'आर्य द्रविड़ भाषाओंकी मूलभूत एकता'** प्रकाशनाधीन थीं, उस समय भी इसी मार्गपर काम करते उन्हें कुछ वर्ष हो चुकेथे। यह बात इस लेखकको डॉ नामवर सिंहने बतायी थी। संभव है इसलिए ही पाँच-सात साल बाद अपनी पुस्तकें प्रकाशित करानेके बावजूद हवाला देना या उसकी स्थापनाओंपर विचार करना उचित न समझा हो कि कहीं उनकी कृतिकी शुद्धता नष्ट न हो जाये।" (पृ. १०३-१०४)।

डॉ. रामविलास शर्माने भाषा-विज्ञानकी तकनीकी पद्धतिसे पुस्तकें (तीनों खण्ड) नहीं लिखीहैं। उनका लेखन-क्रम सहज प्रेषणीय नहीं है। उनके लेखनमें बिखराव है। और स्वयं लेखक इनसे अवगत भी प्रतीत होताहै। बात यह है कि शर्माजी सीधे पाठकोंको अपनी बात बतला रहेहैं। उन्होंने विद्वानोंके लिए पुस्तकें लिखी ही नहीं हैं। विद्वान् उनकी पुस्तकोंको अपनी परम्परा और तकनीकी पद्धतिसे देखना चाहेंगे तो उन्हें डॉ. भोलानाथ तिवारी और डॉ. सुरेन्द्रकुमार शर्माकी तरह निराश होना पड़ेगा और वे लोग इस ओर ध्यान देना ठीक नहीं समझेंगे।

'ऐतिहासिक भाषाविज्ञान' में पहल करनेवाले भारतीय विद्वानोंमें डॉ. रामविलास शर्मा हैं। उनका कार्य क्रान्तिकारी है। जिस विषयकी उपेक्षा कीजा रहीहै, उसकी ओर वे ध्यान आकृष्ट कर रहेहैं। वे अपने दोष स्वयं जानतेहैं और इस क्षेत्रकी कठिनाइयों

को उन्होंने पहले ही लिख दिया है। डॉ. रामविलास शर्मा जहांतक ऐतिहासिक चिन्तनकी बात करतेहैं, उस सीमातक उनके विचारोंको परखनेका प्रयास होना चाहिये। उन्होंने जो उदाहरण प्रस्तुत कियेहैं, उनपर बहस हो सकतीहै। और स्वयं शर्माजी भी यह कहां कहतेहैं कि उनके उदाहरण पूरे ठीक-ठीक हैं। अन्ततः उन्होंने इस क्षेत्रमें दूसरे विद्वानोंने जो कार्य कियाहै, उसी कार्यको लेकर वे आगे बढ़े हैं।

डॉ. श्रीधर व्यंकटेश केतकर और डॉ. रामविलास शर्मा

यहां मैं श्रीधर व्यंकटेश केतकर (मराठीके सुप्रसिद्ध/ज्ञानकोशकार एवं इतिहासकार) का नाम लेना आवश्यक समझताहूं। यदि डॉ. रामविलास शर्मा उनकी पुस्तक 'प्राचीन महाराष्ट्र' पढ़ लेते (उसका अनुवाद हिन्दीमें नहीं हुआ) तो उनके विचारोंको और बल मिलता। डॉ. केतकर (१८८४-१९३७ ई.) की पुस्तक १९३५ ई. में छप गयीथी। मराठीमें भी वह बहुत काल तक उपलब्ध नहीं थी। उसका दूसरा संस्करण १९८९ ई. में प्रकाशित हुआहै। भारतीय दृष्टिकोणको समझनेमें उनकी पुस्तक बहुत उपयोगी है। उसका हिन्दीमें अनुवाद होना चाहिये। जैसे हिन्दीमें भाषा-विज्ञानके विद्वान् डॉ. रामविलास शर्माके कार्यकी ओर ध्यान देना आवश्यक नहीं समझते, वैसे ही डॉ. केतकरकी रचनाओंके साथ हुआहै। अन्यथा उनकी पुस्तकको १९३५ ई. से १९८९ ई. तक दूसरे संस्करणके लिए प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती।

डॉ. केतकरने कुरुयुद्धसे लेकर शक संवत्के आरम्भ तक का इतिहास लिखाहै। ऐसे कालका इतिहास लिखा, जिसकी ओर न इतिहासकारोंका ध्यान गयाहै और न ही भाषाविदोंका ध्यान गयाहै। मौर्योंसे पहले नन्दवंशका शासन रहाहै। और ठीक उसी समय दक्षिणमें प्रतिष्ठानमें शातवाहनोंका शासन था। इतिहासकार शातवाहनोंका काल मौर्योंके बादमें मानते हैं किन्तु डॉ. केतकरने अनेक प्रमाण दियेहैं और उन्हें नन्दवंशका समकालीन भी कहाहै। शक संवत्का जब आरम्भ हुआ, उस समय शातवाहनोंकी सत्ता भारतमें प्रधान हो गयीथी। मुख्य बात यह है कि गौतमबुद्धके पूर्व और कुरु वंशके ऐतिहासिक अन्तरालको—अंधकारमय इतिहासको—केतकरने आधुनिक आलोक में उजागर कियाहै। संदर्भ उन्होंने संस्कृत तथा प्राकृत वाङ्मयसे प्रमाण एकत्रित कियेहैं। पौराणिक वाङ्मयकी ऐतिहासिक मीमांसा उन्होंने नये दृष्टिकोण से कीहै। इस मीमांसामें उन्होंने संस्कृत तथा प्राकृत भाषाओंके आपसी सम्बन्धोंको बतलायाहै।

डॉ रामविलास शर्माने प्राकृत भाषापर विशेष ध्यान नहीं दियाहै। वे पं. किशोरीदास वाजपेयी तथा राहुल सांकृत्यायनके विचारोंको लेकर ही आगे बढ़ते हैं। उन्होंने पौराणिक वाङ्मयके आधारपर प्राचीन भाषाओं (संस्कृत-प्राकृत) की मीमांसा नहीं कीहै। यह कार्य डॉ. केतकरने किया है। यों दोनों विद्वानोंके निष्कर्ष मिलते-जुलतेहैं।

डॉ. केतकरके कुछ निष्कर्ष यहां प्रस्तुत हैं। वे लिखतेहैं—

> "कुरु युद्धके कालसे प्राकृत भाषाका राजनीतिक दृष्टिसे विभाजन करें तो उसका स्वरूप कुछ-कुछ इस प्रकार होगा—
>
> १. पैशाची एवं महाराष्ट्रीकी प्रधानताका काल वररुचिसे पहलेका है।
>
> २. मागधी एवं शौरसेनीका समृद्ध काल वररुचि का काल है।
>
> ३. पाली और अर्ध मागधीकी प्रधानताका काल वररुचिके बादका है। यह काल बौद्ध एवं जैन वाङ्मयका है।
>
> कुरु-युद्धसे वररुचिके काल तक देशी भाषाओंका कार्य क्षेत्र मर्यादित-स्वरूपका रहा होगा। उनसे प्रतिस्पर्धा करनेवाली भाषाएं प्रधान रूपसे दो थीं। धर्मके क्षेत्रमें संस्कृत प्रधान थी और राजकाजमें पैशाची महत्त्वपूर्ण थी। इस स्पर्धामें राजनीतिक कारणोंसे पैशाची भाषाके महत्त्व को जानकर उसका ग्राह्य भाग संस्कृतमें सुरक्षित रखा गयाहै। प्राचीन कथा वाङ्मय पहले देशी भाषाओंमें लिखा गयाहै और बादमें उनका पैशाची रूप बना और फिर पैशाचीसे संस्कृतमें उनका अनुवाद हुआहैं।"[१]

१. प्राचीन महाराष्ट्र, डॉ. श्रीधर व्यंकटेश केतकर (मराठी पुस्तक), वरदा बुक्स 'वरदा' ३९७-१, सेनापति बापट मार्ग, पुणे ४११०१६, द्वितीय संस्करण १९८९ ई., दूसरा विभाग, पृ. ६ (प्रस्तावना)।

डॉ. केतकर मानतेहैं कि संस्कृतका स्वरूप प्राकृतके आधारपर बनाहै। व्यवहारकी भाषा प्राकृत रही है। इसीलिए वे कहतेहैं कि प्राचीन कालके शब्दोंका अर्थ लगाते समय संस्कृत व्याकरणका आग्रह करना ठीक नहीं है। मूल शब्द प्राकृतके हैं और किसी-न-किसी रूपमें उनका संस्कृतीकरण हुआहै और इसी रूपमें वे आज हमतक पहुंच सकेहैं। इस बातका ध्यान रखना चाहिये।२

डॉ. केतकर पैशाचीको पेशावरकी भाषा मानतेहैं। इस रूपमें 'पैशाची' नाम भौगोलिक है। पेशावरका प्राचीन नाम 'पेशियाहुवाद' हैं। राजवाड़े बतलातेहैं कि पेशावरकी व्युत्पत्ति 'पिशाचपुर' है। पैशाचीके उत्कर्ष कालमें पेशावरमें 'मगों' का राज्य था। गौतम बुद्धसे पूर्वका वह काल है।३

पैशाचीका भौगोलिक क्षेत्र पेशावर और उसके आसपासका प्रदेश है। पाणिनिने जब संस्कृत भाषाका व्याकरण अष्टाध्यायीके रूपमें लिखा, उस समय पैशाची का व्यवहार लोकभाषाके रूपमें जारी था। उदयनके कालकी भाषा पैशाची ही हैं। इस पैशाचीमें ही गौतम बुद्धसे पूर्वके कालमें विपुल साहित्य लिखा गयाहै। सारा साहित्य हमें उपलब्ध नहीं है। पैशाची वाङ्मय संस्कृतमें अनूदित हैं और उन अनुवादोंके आधारपर ही हम पैशाचीकी महत्ताको जान सकतेहैं। पैशाची ने शौरसेनीको और तदनुसार मागधीको भी प्रभावित कियाहै। प्राकृतके विविध रूपोंमें पैशाची राजनीतिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण रहीहै और उसका प्रचार-प्रसार अपने भौगोलिक क्षेत्रोंसे बाहर भी समस्त पश्चिमी भारतमें रहाहै। वह ईरानके पड़ोसमें होनेके कारण उस समयकी ईरानी भाषाके प्रभाव भी उसपर हैं। गौतम बुद्धके पूर्वका यह काल है। उस समयमें पेशावर में मगोंका राज्य था। वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृतके अन्तरालको समझनेमें पैशाची सहायक है। उसका सम्बन्ध ईरानकी प्राचीन भाषा अवेस्तासे भी है और प्राचीन कश्मीरकी भाषासे भी है। पैशाची ही नहीं अपितु प्राकृतके अन्य रूपोंको संस्कृत पचा गयीहै और संस्कृतका मूल प्राकृत है। संस्कृतको आदि भाषा नहीं मानना चाहिये।

आर. पिशलने प्राकृत भाषाओंका व्याकरण लिखा है। उसमें वे लिखतेहैं—"प्राकृत भाषाओंमें पैशाची संस्कृतसे सबसे अधिक मिलती-जुलतीहै। वररुचि १०, २ में शौरसेनीको पैशाचीकी आधारभूत भाषा बताताहै और इस मतसे हेमचन्द्र अपने प्राकृत व्याकरण के ४, ३२३ में पूर्णतया सहमत हैं।"४ पुस्तकके इसी पृष्ठकी पाद टिप्पणीमें अनुवादक डॉ. हेमचन्द्र जोशी लिखतेहैं—"कुमांऊके विशेष स्थानों और विशेषकर पिठौरागढ़ (पिथौरागढ़) की बोलीमें पैशाचीके कई लक्षण वर्तमान समयमें भी मिलतेहैं। वहां 'नगरी' को 'नकरी' बोला जाता होगा जो आजकल 'नाकुरी' कहा जाताहै।"५

पैशाचीकी तुलना डॉ. केतकरने आधुनिक भाषाओं में उर्दू से कीहै। वे भारतकी भाषाओंपर ईरानीका प्रभाव बतलाते हुए लिखतेहैं—

> "शातवाहन राजा प्राकृत भाषाओंका आदर करते थे और उसकी समृद्धिमें सहायक थे, ऐसी ख्याति है। पैशाची भी प्राकृत भाषा ही थी। शातवाहनों ने पैशाचीका अनादर किया, उस अर्थमें वे देशी भाषाका आदर नहीं करतेथे, ऐसा नहीं कहा जा सकता। पैशाची, आजकी उर्दू की भांति शूरसेन प्रदेशमें अर्थात् ब्रज प्रदेशमें जो भाषा थी, उस भाषाकी विकृति थी। पैशाचीकी प्रकृति शौरसेनी थी, ऐसा वररुचिका कहनाहै। शूरसेन देश अर्थात् मथुरा या ब्रज प्रदेश है और उर्दू की प्रकृति भी ब्रजभाषा सदृश है, ऐसा उर्दू का अध्ययन करनेवाले कहतेहैं। ब्रजभाषाको प्राचीन कालमें ईरानीका जो रूप प्राप्त हुआ वह पैशाची ही है और मुस्लिम कालमें उसे जो स्वरूप मिला वह 'उर्दू' है। प्राचीन पैशाची एवं आजकी उर्दू का सम्बन्ध एक स्थानमूलक होनेका है या उससे अधिक है, इस सम्बन्धमें आज कुछ कहना ठीक नहीं। ब्रजभाषाकी पैशाची विकृतिका दीर्घकाल तक अस्तित्व रहाहै। इसीलिए बादमें उस पैशाची

---

२. वही, दूसरा विभाग, पृ. २५ (प्रस्तावना)
३. वही, दूसरा विभाग, पृ. २०७।

४. प्राकृत भाषाओंका व्याकरण, आर. पिशल, अनु. डॉ. हेमचन्द्र जोशी, बिहार राष्ट्रभाषा। पटना-८०००३, प्रथम संस्करण १९५८ ई. पृ. ५५।
५. वही, पृ. ५५।

की निरन्तरता उर्दू में बने रहना असंभव नहीं... पैशाचीसे उर्दू का उद्‌भव संभव लगताहै।'६

पैशाचीके सम्बन्धमें विस्तारसे लिखनेका एक कारण यह है कि इसके आधारपर 'ईरानी भाषा-क्षेत्र और भारत' का विवेचन संभव है। डॉ. रामविलास शर्माने दूसरे खण्डमें इस विषयपर स्वतन्त्र अध्याय (छठा अध्याय) लिखाहै। किन्तु उस अध्यायमें पैशाची के सम्बन्धमें आवश्यक रूपमें लिखा नहीं जा सकाहै। यों उनके निष्कर्ष बहुत ठीक हैं और केतकरके निर्णयों से मेल खातेहैं। व्हीलरने इस सम्बन्धमें जो कुछ लिखाहै, उसका खण्डन डॉ. रामविलास शर्माने ठीक ही कियाहै। उनका यह कहना—"व्हीलरकी तर्क योजना उस विवेचन पद्धतिका अच्छा नमूना है जिसमें अर्वाचीन इतिहास-सम्बन्धी धारणाएं प्राचीन इतिहासपर आरोपित की जातीहैं। पुरातत्त्व कहां समाप्त होताहै और पौराणिक गाथा कहां शुरू होतीहै, यह कहना कठिन है" (पृ. २७०) ठीक ही है।

यहां मैं यह बात स्पष्ट रूपसे लिख देना चाहताहूं कि डॉ. रामविलास शर्मा भाषा-परिवारोंका विवेचन कर रहेहैं और केतकर प्राचीन इतिहास लिख रहेहैं। दोनोंके लेखनके प्रयोजन अलग-अलग हैं। केतकरके लेखनमें भाषिक इतिहास, राजनीतिक इतिहाससे सम्बद्ध होकर आयाहै और वे भाषिक इतिहासको आधार मानकर राजनीतिक इतिहासको उद्‌घाटित कर रहेहैं। भाषिक इतिहासको प्रमाण मानकर वे आगे बढ़तेहैं। इस रूपमें उन्होंने प्राचीन इतिहास लिखाहै। डॉ. रामविलास शर्मा प्राचीन भाषाओंका इतिहास डॉ. केतकरकी भांति नहीं लिख रहेहैं। उनके लेखनमें भारतका प्राचीन इतिहास पुष्ट प्रमाणोंके रूपमें नहीं है। विदेशियोंने जो अनुमान किया और जो परम्परा ऐतिहासिक भाषा विज्ञानमें विदेशियोंने चलायीहै, उसको प्रस्तुतकर वे उस परम्पराका प्रबल खण्डन करतेहैं। उनके खण्डनमें बल है किन्तु जो आधार वे शब्द-संस्कृतिका देतेहैं, वह और प्रमाणोंकी अपेक्षा रखतीहै। भाषा-विज्ञानकी पद्धतियोंसे भाषाओंका इतिहास नहीं लिखा जा सकता। ध्वनि-विज्ञानके जो रूप डॉ. रामविलास शर्माने प्रस्तुत कियेहैं और ध्वनि-परिवर्तनके उदाहरण दिये हैं, उन्हें उसी रूपमें मान लेनेमें संकोच होताहै।

डॉ. केतकरका भाषिक इतिहास पुष्ट प्रमाणोंसे युक्त है। वह सहज प्रेषणीय है। उसका आधार पौराणिक वाङ्‌मय है। और प्रधान रूपसे प्राकृत वाङ्‌मय है। प्राकृत वाङ्‌मयमें उन्हें विमल सूरिकृत पउमचरिय (ईसाकी प्रथम शताब्दीकी रचना जो अर्धमागधीकी रचना है) पढ़नेके लिए चाहनेपर भी उपलब्ध नहीं हुई। अब वह हिन्दी अनुवादके साथ छप गयीहै (प्राकृत ग्रंथ परिषद, वाराणसी, प्रथम संस्करण १९६२ ई.)। उक्त पुस्तक उपलब्ध होती तो वे उसेभी आधार ग्रन्थ बनाते।

विलडूरेण्टने 'स्टोरी ऑफ सिविलाइजेशन'—सभ्यताकी कहानी—पुस्तक लिखीहै। उनके लेखनका प्रधान आधार पौराणिक वाङ्‌मय है। बाइबलकी प्राचीन कथाओंको भी उन्होंने ऐतिहासिक रूपमें सभ्यताकी कहानी लिखनेमें प्रस्तुत कियाहै। इसी प्रकार प्राकृत वाङ्‌मय (गुणाढ्यकी बृहत्कथा) की कथाओंको केतकरने ऐतिहासिक स्वरूप दियाहै। ऐसा लिखनेके लिए उन्हें संस्कृत वाङ्‌मयको भी आधार बनाना पड़ाहै। कारण यह है कि प्राकृत वाङ्‌मय, संस्कृत वाङ्‌मयके माध्यमसे हम तक पहुंचाहै। मूल प्राकृत वाङ्‌मय हमें जैसे रहा होगा, उस रूपमें प्राप्त नहीं है। प्राकृत वाङ्‌मयका सार रूप संस्कृत वाङ्‌मय में उपलब्ध है। प्राकृतकी मूल रचनाएँ--ऐतिहासिक महत्त्वकी हैं। उनमें भारतीय इतिहास संस्कृत वाङ्‌मय की तुलनामें अधिक मुखरित है। इस बातको केतकर अच्छी प्रकार जानतेथे और वे उसी लीकपर अन्त तक चलेहैं और इसी प्रयासमें अप्रत्यक्ष रूपमें उन्होंने प्राकृत भाषा और उसके विविध भौगोलिक रूपोंका इतिहास लिख दियाहै।

भारतवर्षकी आधुनिक भाषाओंका इतिहास प्राकृत और उसके विविध भौगोलिक रूपोंकी उपेक्षा करके नहीं लिखा जा सकता। डॉ. रामविलास शर्माने प्राकृत भाषाओंके साथ आधुनिक भाषाओंकी संगति ऐतिहासिक क्रममें बैठानी चाहिये—इस बातको स्वीकार कियाहै किन्तु ठीकसे संगति बैठानेका काम अभी शेष है। वे आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओंके इतिहासकी कालावधिको दसवीं-ग्यारहवीं शतीके पीछे ले जाकर परखनेका प्रयत्न करतेहैं। प्रथम भागमें

६. प्राचीन महाराष्ट्र, डॉ. श्रीधर व्यंकटेश केतकर विवरण उपर्युक्त—पृ. ६१।

हिन्दी भाषाकी बोलियोंका ऐतिहासिक परिचय उन्होंने इसी प्रकार दियाहै। वे सात-आठ सौ वर्ष पीछे जाकर आधुनिक बोली-भाषाओंका परिचय देतेहैं। इस दृष्टिसे विचार करते समय प्राकृत भाषाकी तथा अपभ्रंश भाषाकी ऐतिहासिक कालावधिका परिचय उन्होंने नहीं दियाहै।

भारतकी प्राचीन भाषाओंके सम्बन्धमें डॉ. केतकर ने कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्योंकी ओर संकेत कियाहै। जैसे—

१. "प्राकृत वाङ्मय निरपेक्ष अर्थात् स्वतन्त्र रूप में विकसित हुआहै किन्तु संस्कृत वाङ्मयका बहुतांश प्राकृत साहित्यका संहितीकरण होकर समृद्ध हुआहै।"७

२. "संस्कृत भाषाका विकास किसी विशिष्ट राजसत्ताका परिणाम नहीं है। प्राचीन राजा एवं लोक प्राकृतही बोलतेथे। यज्ञ एवं तत्वज्ञान की चर्चा करनेवाला एक वर्ग विशेष था जिनके व्यवहारकी भाषा संस्कृत हुई। उसको नियम-बद्धता क्रमसे प्राप्त हुई। पाणिनिने सभी भिन्न प्रचलित रूपोंको वैकल्पिक कहकर स्वीकार किया। ऋग्वेद सूक्त जब लिखे गये उस समय भिन्न प्रकारकी प्राकृत भाषा समाजमें प्रचलित रहीहै एवं उसके वाङ्मयका रचयिता वर्ग भी रहाहै। वररुचिके कालमें महाराष्ट्री, मागधी, पैशाची तथा शौरसेनी—इन चार भाषाओंमें वाङ्मय रहा होगा। उस समय पाली एवं अर्ध मागधीका वाङ्मय न रहाहो।"८

३. कुरुयुद्धसे उदयनके काल तक की शताब्दियोंमें ईरानी संस्कृतिका प्रभाव भारतीय संस्कृतिपर रहाहै। फलस्वरूप संस्कृत भाषा एवं देशी प्राकृत भाषाका महत्त्व कम होता गया और पैशाचीका महत्त्व बढ़ता गया। इसलिए इस कालावधिमें पैशाचीमें विपुल वाङ्मय तैयार हुआ। जिस प्रकार मुस्लिम प्रभुताके कालमें मुसलमानोंने अपना इतिहास फारसीमें लिखकर रखाहै, ठीक उसी प्रकार कैकेयोंके अर्थात् ईरानियोंके कालमें उन्होंने अपना वाङ्मय अपने व्यवहारकी भाषा पैशाचीमें लिखाहै।"९

४. पाली भाषा रूपांतरित पैशाची है। हिन्दी एवं उर्दूके इतिहासको देखें तो पैशाचीसे इनका आरंभ होकर आजकी पाली भाषा कैसे बनी है, इसका इतिहास स्पष्ट होगा। पैशाची भाषा उर्दूकी भांति शूरसेनोंकी भाषा हो गयी थी। ब्रजभाषासे सम्बन्धित मूलकी भाषा प्राचीन कालमें ईरानी विकृतियोंके फलस्वरूप पैशाची हो गयी और ठीक उसी प्रकार आजकी उर्दू भी मूलमें ब्रजभाषा रहीहै किन्तु ईरानी प्रभावके कारण उर्दू या हिन्दुस्तानीमें परिणत हुई। उर्दू भाषा देशभरमें फैलने लगी। इसपर भी सारे उत्तर भारतमें जो भाषा फैली उसकी नागरी लिपिका रूप प्राप्त होनेपर उसमें से फारसी शब्द-समूहका त्याग होने लगा। साथही संस्कृत का शब्द-समूह उसमें आने लगा। उर्दू अपने मूल रूपमें अर्थात् फारसी विकृति सहित सारे देशमें फैल नहीं पायीहै। उसका हिन्दी रूप अधिकाधिक प्रसारित हुआहै और उसका कारण भी है। दक्षिणमें फारसी शब्द-समूहका प्रसार उत्तरकी भांति कभी नहीं हुआ। इसी प्रकार प्राचीन पैशाचीभी विंध्य पर्वतके दक्षिणमें नहीं पहुंची है।"१०

५. संस्कृत भाषाका व्यापक इतिहास लिखें तो ज्ञात होगा कि प्रत्येक भाषाके अंतर्गत विकासको संस्कृतने बाधित कियाहै।"११

६. गौतम बुद्धके मूल वचन (उपदेश आदि) पैशाचीमें रहेहों। उनका संग्रह करनेवालोंकी ओरसे संग्रह करते-करते उसका स्वरूप धीरे-धीरे बदलता गया और उसकी सुरक्षा जिस रूपमें सिंहलमें हुईहै उस रूपमें उसका ईरानी अंश पूरे रूपमें लुप्त होते-होते उसे आजकी पाली

७. प्राचीन महाराष्ट्र, भाग दूसरा, श्रीधर व्यं. केतकर, व्हीनस प्रकाशन, पुणे (संपादन व संकलन—नी.म. केलकर), आवृत्ति प्रथम १९६३ (मराठी पुस्तक) पृ. १३।

८. वही, पृ. १३।

९. वही, पृ. १५।

१०. वही, पृ. १६।

११. वही, पृ. १६।

ग्रंथभाषाका स्वरूप प्राप्त हुआ होगा। और इस प्रकार पाली भाषाका स्वरूप मूल रूपमें पैशाची रहाहो किन्तु बादमें आजकी पाली (धर्मग्रंथोंकी भाषा) उसी पैशाचीका दक्षिणी रूप है।"१२

७. "कुरुयुद्धोत्तर एवं उदयनपूर्व कालमें अर्थात् कैकेयोंके कालमें पैशाची, भारतवर्षमें सबसे अधिक शक्तिशाली भाषा रहीहै और उसका महत्त्व गौतम बुद्धके समयमें भी बना हुआथा। शातवाहन राजाओंका काल पैशाचीकी समाप्तिका काल है।"१३

८. उदयनोत्तर कालमें तदनुसार नंदवंशके कालमें उत्तर भारतमें पैशाचीका उन्मूलन हुआ किन्तु दक्षिणमें शातवाहन राजाओंने पैशाचीके वाङ्मय को सुरक्षित रखना चाहा और उनके द्वारा पैशाची की सुरक्षाके आग्रहके कारण दक्षिणमें पंडितोंकी परम्परामें पैशाची जागृत रहीहै।"१४

डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. केतकरकी भांति प्राकृत भाषाओंकी पहचान नहीं बढ़ाते। यह बात सच है कि उन्होंने विदेशी मान्यताओंका खण्डन भाषा-परिवारोंके संदर्भमें ठीक कियाहै। वे संस्कृतसे प्राकृत और प्राकृतसे अपभ्रंश और बादमें देशी भाषाओंके ऐतिहासिक विकासको ठीक नहीं मानते। ऐसा मानना ठीक है। इसके लिए पुष्ट प्रमाण डॉ. केतकरने दियेहैं। इस बातको पारम्परिक भाषा-विज्ञानके विद्वान् नहीं मानते। इस अर्थमें उनका सारा विवेचन क्रान्तिकारी है। इस विवेचनके अभी पुष्ट आधारोंकी आवश्यकता है। जबतक पुष्ट आधार प्रस्तुत नहीं किये जायेंगे, भाषा-विज्ञानके विद्वान् इस बातको स्वीकार नहीं करेंगे।

भाषा विज्ञानकी पुस्तकोंमें प्राकृत भाषाओंके विभिन्न रूपोंकी घोर उपेक्षा हुईहै। संस्कृतको मूल भाषा मान लिये जानेके कारण ऐसा हुआहै। ऐतिहासिक क्रम बिगड़ गयाहै। ध्वनि-विज्ञानके विवेचनमें ध्वनि-परिवर्तनके जो रूप प्रस्तुत किये जातेहैं, उनमें संस्कृत को मूल मान लिया गयाहै और बादमें हम सीधे आधुनिक भाषाओं तक पहुंच जातेहै। प्राकृतों और अपभ्रंशोंका क्रम ठीकसे प्रस्तुत नहीं हुआहै। क्रमको बैठानेमें ऐतिहासिक क्रम तो लगाया जाताहै किन्तु भौगोलिक क्रम पूर्णत: उपेक्षित है। इतिहासके साथ भौगोलिक क्रमकी संगति बैठानी भी आवश्यक है।

डॉ. रामविलास शर्माका कार्य इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि उन्होंने संस्कृत-प्राकृतके सम्बन्धको प्रश्न-चिह्नके रूपमें उपस्थित किया और भाषा परिवारको नये ऐतिहासिक क्रममें रखकर परखनेका सुझाव दिया। विदेशी विद्वानोंकी पारम्परिक मान्यताको उन्होंने नकारा है।

इस दूसरे खण्डमें डॉ. रामविलास शर्मा विदेशी विद्वानोंसे जमकर जूझते हुए दिखायी देतेहैं। उन्हें आश्चर्य इस बातका होताहै कि भारतीय विद्वान् विदेशी विद्वानोंकी विचारधाराको आंख-मूंदकर बिना ऐतिहासिक क्रमकी पहचानका प्रयत्न किये स्वीकार करते चले आ रहेहैं। यह सच है कि ऐतिहासिक भाषाविज्ञानकी ओर पुन: ध्यान देनेकी आवश्यकता है और उसे उपलब्ध प्राचीन वाङ्मयके आधारपर परखना हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने ध्वनि-विज्ञानके भौगोलिक स्वरूपको पहचाननेका सूत्रपात विस्तृत स्तरपर और प्रधान रूपसे भारतवर्ष की भाषाओंके संदर्भमें कियाहै। तदर्थ उन्होंने विशाल सामग्री एकत्रित कीहै। इस एकत्रित सामग्रीका उपयोग उन्होंने अपने ढंगसे कियाहै। उसपर बहस हो सकतीहै किन्तु उस सामग्रीको स्वीकार करना चाहिये।

डॉ. केतकरका कहनाहै कि प्राकृत भाषाका परिचय ठीकसे अबतक नहीं दिया जा सकाहै। भाषा-विज्ञानकी पद्धतियोंसे उसका विवेचन भी नहीं हो सकाहै। और जबतक हमारा यह परिचय समृद्ध नहीं होता तबतक आर्य लोगोंके आगमनके सम्बन्धमें जो कुछ कहा जाताहै, उसको यथावत् स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह जांच अभी होनीहै।

संस्कृत भाषा प्राकृत भाषाको आत्मसात् कर या पचाकर समृद्ध हुईहै। वस्तुत: प्राकृत व्यवहारकी भाषा रहीहै। इस तथ्यको ध्यानमें रखकर ध्वनि-परिवर्तनकी प्रक्रियाको ऐतिहासिक आलोकमें परखने की आवश्यकता है। पं. किशोरीदास वाजपेयीने पहली प्राकृतको वैदिक संस्कृत कहाहै। उनके तर्कोंको डॉ. रामविलास शर्मा स्वीकार करतेहैं और तदनुसार हिन्दी

---

१२. वही, पृ. १६।

१३. वही, पृ. १७।

१४. वही, पृ. १७।

बोलियोंका विवेचन प्रस्तुत करतेहैं। बोलियोंके इतिहास लिखते समय वे और पीछे गयेहैं। किन्तु उनका ऐतिहासिक क्रम अभी बैठाना आवश्यक है।

(आगामी अंकमें लेखमालाके अंश २ का द्वितीय खण्ड)

व्यक्ति : शब्द-साधना

मैं और मेरा भाषा चिन्तन[1]

लेखक : डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन'
समीक्षक : आचार्य शिवचन्द्र शर्मा

शब्द शिल्पी श्री अम्बाप्रसाद 'सुमन' सतत सारस्वत साधनाके फलस्वरूप साहित्योपवनमें जो सुरम्य नूतन पुष्प विकसित हुआहै, उसका नाम है 'मैं और मेरा भाषा-चिन्तन"। संख्याकी दृष्टिसे तीसवां होते हुएभी आभाकी दृष्टिसे सर्वथा अनिर्वचनीय और मौलिक-गन्ध-परिपूर्ण। श्री 'सुमन' जी की आत्मकथा का परिचायक यह 'मैं' केवल उनके व्यक्तित्वकी परिधिमें ही चक्कर नहीं लगाता, अपितु पारिवारिक वीथियोंमें भी खेलताहै और लोक-जीवनके बीहड़ कान्तारमें भी विचरण करताहै।

इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तकके प्रथम खण्डसे जुड़ा यह 'मैं' लेखकके संघर्षमय जीवनकी विविध झांकियोंको रोचक शैलीमे प्रस्तुत कर उनके व्यक्तित्वको तो साकार रूप देता ही है; लेकिन अम्बाप्रसाद 'सुमन' का परिचायक होकर भी शब्द-ब्रह्मके उपासक 'सुमन' का परिचय नहीं दे पाता। इसके लिए तो उनके भाषा-चिन्तनपर दृष्टि डालनी होगी, तभी भाषा विवेचनके पर्याय बने 'सुमन' के समस्त व यथार्थ जीवनका परिचय पा सकेंगे। शब्दार्थ-मीमांसाकी चसकसे जुड़ा यह 'सुमन' आत्मकथाकी पगडण्डीसे होकर गुजरते हुए जीवनकी मार्मिक घटनाओंका उल्लेख तो करताही है साथही प्रसंगवश समागत उपयोगी व विशिष्ट शब्दोंके ऐतिहासिक एवं तात्त्विक विवेचनमें भी डूब जाताहै। शब्दार्थान्वेषी डॉ. सुमन शब्दोंसे अपना लगाव अलग नहीं कर पाते। यहांतक कि अपने प्रपितामह पं. गंगाराम गौड़के गोत्रका उल्लेख करते हुए शाखा व संहिताओंके विवेचनमें दत्तचित्त हो जातेहैं। इसी प्रकार अपनी शैशवावस्थाका चित्रण करते हुए शैशव, पौगण्ड, कैशोरकी विवेचनामें डूब जातेहैं। (पृ. १४)।

शब्द-चिन्तनकी प्रेरणा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजीके इस उद्‌बोधनसे प्राप्त हुईथी कि "शब्दोंको बार-बार छेड़ते रहो, छेड़नेपर वे बोलेंगे और सुख-दुखकी कथा कहेंगे।" इस कृतिमें 'शिक्षाविदों', साहित्यिकों, कवियों, काव्य रस-रसिकों तथा भाषातत्त्ववेत्ताओंका ध्यान इस तथ्यकी ओरभी आकर्षित कियाहै कि – जागृति, सृजन, सृजेता, प्रदर्शिनी, अन्तर्साक्ष्य, बहिर्साक्ष्य, उपरोक्त, अनुवादित, छः, गण्यमान, अहिल्या-बाई, अनुसूया, अन्तर्राष्ट्रीय, अस्तित्वमान, पुनर्प्राप्ति, मनोभिमुखता, श्रीयुत, साम्यता, विद्वान, उपलक्ष, बासनाएं आयातित, तेजोद्दीप्त, शक्तिवान्, भाषायी, संभावना, आद्योपान्त, ज्योत्सना, पुनर्स्थापना, हतोत्साहित, दृष्टव्य आदि शब्द सर्वथा अशुद्ध हैं। इनके स्थानपर क्रमशः जागति, सर्जन, स्रष्टा, प्रदर्शनी, अन्तःसाक्ष्य, बहिःसाक्ष्य, उपर्युक्त, अनूदित, छह, गण्यमान्य, अहल्याबाई, अनसूया, अन्तरराष्ट्रीय, अस्तित्ववान्, पुनःप्राप्ति, मनोऽभिमुख-श्रीयुत, समता, विद्वान्, उपलक्ष्य, वासनाएँ, आयात, तेजोदीप्त, शक्तिमान्, भाषाई, सम्भावना, आद्यन्त, ज्योत्स्ना, पुनःस्थापना, हतोत्साह, द्रष्टव्य, जैसे शुद्ध शब्दोंका प्रयोग होना चाहिये। अपनी इस मान्यताका प्रतिपादन आपने व्याकरणके नियमोंके आधारपर तार्किक ढंगसे कियाहै।— (पृष्ठ ३७ से ५३)।

कुछ ऐसे प्रचलित शब्दोंकी ओरभी शब्द-मीमांसक डॉ. 'सुमन' ने ध्यान आकर्षित कियाहै, जिन्हें संस्कृत-शब्द समझा जाताहै, जबकि वे संस्कृत-शब्द नहीं हैं। आवागमन, प्रण, मनोकामना, वक्षस्थल, शैया, जागृति और श्राप ऐसे ही शब्द हैं। 'आवागमन' संकर शब्द है। इसमें 'आवा' हिन्दीका शब्द है। आना-जानाके लिए आवाजाही का प्रयोग होताहै। प्रण प्राकृत भाषाका है। संस्कृत शब्द पण है।

1. प्रका. : वासन्ती प्रकाशन, ए-८७, विवेकनगर, दिल्ली रोड, सहारनपुर। डिमा. ६४; पृष्ठ : ४७८; मूल्य : ३८०.०० रु.।

मनोकामनाका संस्कृत शब्द मनस्कामना है और वक्षस्थलका संस्कृत शब्द वक्षःस्थल है। जागीत शब्द संस्कृतका नहीं संस्कृतमें तो जागर्ति है। 'शैया' का संस्कृत शब्द शय्या है। शैया कोई शब्द नहीं है। श्राप शब्द प्राकृत भाषाका है। संस्कृत शब्द तो शाप है। (पृष्ठ १६४)। इस तथ्यको भी उजागर कियाहै कि भाषामें प्रत्येक शब्द अपनी अलग पहचान रखताहै। अर्थकी दृष्टिसे पर्यायवाची शब्द पूरी तरह एकार्थी नहीं होते। उनमें कुछ न कुछ सूक्ष्म भेद अवश्य रहता है। उस अर्थभेदक रेखाको सूक्ष्म दृष्टिसे ही देखाजा सकताहै।

'भव' और 'हर' शिवके पर्यायवाची होते हुएभी अर्थमें अलग-अलग हैं। 'भव' स्रष्टा हैं और 'हर' विनाशक है। 'स्तुति' और 'प्रार्थना' में भेदक रेखाको उजागर करते हुए 'सुमन' जी कहतेहैं—

'स्तुति' में हम अपने इष्टदेव या प्रभुका गुणगान करतेहैं और 'प्रार्थना' में कुछ मांगतेहैं।—(पृष्ठ २०१)।

'कठिन', 'कठोर', 'कर्कश' की अर्थ-छवि अलग-अलग है। जो बुद्धिके लिए मुश्किल हो, वह कठिन है। जो स्पर्श करनेपर सख्त लगे, वह कठोर है। जो कानों को भद्दा लगे वह कर्कश है।—(पृष्ठ २१८)।

वास्तवमें शब्द-जगत्‌में व्याप्त वैविध्य, वैषम्य व वैचित्र्यको देखकर काव्य रस रसिकोंका मन चकित व हृदय आनन्दविभोर हो उठताहै। ध्वनिके समान होते हुएभी भाषा भेदके कारण कभी-कभी शब्दार्थ नया मोड़ ले लेताहै। इसी तथ्यको उजागर करते हुए डॉ. 'सुमन' लिखतेहैं—

संस्कृतमें पाक शब्दका अर्थ है पकानेकी क्रिया या पका हुआ अन्न, पर फारसीमें इसीका अर्थ होताहै शुद्ध, पवित्र। इसी प्रकार संस्कृतके 'कोट'शब्दका अर्थ होताहै गढ़, किला; पर अंग्रेजीमें अर्थ होताहै एक प्रकारका सिला हुआ पहनावा जो पतलूनके साथ पहना जाताहै। (पृष्ठ १६७)।

शब्द-संरचनाके संबंधमें डॉ. 'सुमन'ने संस्कृत और हिन्दी दोनोंकी दृष्टि अलग-अलग स्वीकार कीहै। संस्कृत शब्द शास्त्रके अनुसार 'मानवता' शब्दका मूलाधार शब्द 'मनु' है। मनु + अण = मानव + ता = मानवता। हिन्दी शब्द शास्त्रके अनुसार 'मानवता' शब्दका मूलाधार शब्द 'मानव' है। मानव + ता = मानवता। (पृष्ठ १६४)।

कभी-कभी शब्द यात्रा करते हुए बहुत दूर निकल जातेहैं। उस स्थितिमें उनका बाह्य रूप एक नया ही मोड़ ले लेताहै। संस्कृतका 'सूनु' शब्द इंग्लैंडमें जाकर 'सन' (SON) बन बैठा और संस्कृत ही का 'मातृ' शब्द ईरानमें जाकर 'मादर' तथा इंगलैण्डमें 'मदर' का रूप ले बैठा। (पृष्ठ ३४६)।

इस रचनामें ध्वनिको भी भाषाका निर्णायक तत्त्व स्वीकार किया गयाहै। वे लिखतेहैं कि जिन शब्दोंमें ट् ठ् ड् ढ् ध्वनियां हैं, वे हिन्दीके अपने शब्द होने चाहियें। यथा—भट्टी, ठीकरा, डाल, ढोर। जिन शब्दोंमें ऐन, गैन, तोइ आदि ध्वनियां होंगी वे अरबी भाषाके शब्द होंगे। (पृष्ठ ११५)।

कोई शब्द किसी शास्त्रमें अपना कुछ अर्थ रखता है तो आवश्यक नहीं कि दूसरे शास्त्रमें भी उसका वही अर्थ हो। वहां उसका अर्थ एकदम बदल जाता है। साहित्यमें यदि दो शब्द अर्थमें समान होतेहैं तो वे एक-दूसरेके पर्याय कहे जातेहैं। 'सूर्य' और 'रवि' एक-दूसरेके पर्याय हैं, पर जैनदर्शनके ग्रन्थोंमें पर्याय शब्दका अर्थ होताहै अवस्था। (पृष्ठ १७३)। वास्तव में शब्दोंका संसार ही विचित्र है। सभी रसोंमें इनकी लीलाएं बराबर देखनेको मिलतीहैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी अपने भाषणोंमें कहा करतेथे कि "हमें शब्दोंके तारोंको बार-बार छेड़ते रहना चाहिये।" बार-बार छेड़नेपर उनकी झंकारोंसे उनमें व्याप्त अर्थ अनायास प्रकट हो जायेगा। डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन' एक स्थानपर लिखतेहैं कि एक बार मैं 'आगमें जल गया' इस वाक्यकी कई आवृत्तियां कर गया। कभी 'जल गया' एक साथ बहुत जल्दी कहता और कभी 'जल' के बाद कुछ विश्राम लेकर फिर 'गया' कहता। अर्थात् (१) आगमें/जल गया। (२) आगमें जल/गया। इस तरह उच्चारण करनेपर लेखककी बुद्धिके पटलपर उपर्युक्त वाक्यके दो अर्थ उभर आये। (१) कोई पदार्थ आगमें भस्म हो गया। (२) जल आगमें गया, इसलिए आग बुझ गयी। (पृष्ठ ३२)।

पृष्ठ २०३ और पृष्ठ ३७६ पर छन्दःशास्त्रके विवेचनमें कहा गयाहै कि घनाक्षरी (कवित्त) वर्णिक छन्द नहीं, आक्षरिक छन्द है। इसमें वर्ण-गणना नहीं, अपितु अक्षर-गणना होतीहै। इसके प्रत्येक चरणमें ३१ अक्षर होतेहैं; १६, १५ अक्षरोंपर यति होतीहै।

'कमल' में ३ अक्षर हैं।

शब्द-रस रसिक डॉ. सुमनने इस रोचक व कौतूहलवर्द्धक तथ्यकी ओर भी ध्यान आकर्षित कियाहै कि शब्दोंका मूल स्रोत सभ्यता व संस्कृति की आयुका सूचक भी बन जाताहै। उदाहरण प्रस्तुत करते हुए वे लिखतेहैं—"मिट्टीका बना हुआ आयतके आकारका ऊंचा अन्न-भांडार कोठी या कुठिया कहलाताहै। इसका मूल शब्द कोष्ठो हैं। अन्न-भण्डारके अर्थमें कोष्ठो शब्द 'शतपथ ब्राह्मण' में आयाहै। इसी प्रकार एक शब्द है दरांत। साग या फसल काटनेमें काम आनेवाला लोहेका एक औजार दरांत कहलाताहै। यह शब्द मूल वैदिक शब्द दात्र से विकसित है। ऋग्वेदका ऋषि कहताहै "हस्तेदात्रं च नाददे"। (पृष्ठ १८६)।

शब्द शिशु हैं और भाषा इनकी माता। इन शब्द शिशुओंका पालन-पोषण वह अलग-अलग ढंगसे किया करतीहै। अंग्रेजी, फारसी संस्कृत, आदि भाषाओंमें इस तथ्यके अनेक प्रमाण मिलतेहैं। ये शिशु जब बालक हो जातेहैं, तब इनकी माता भाषा इन्हें चलना भी अलग-अलग ढंगसे ही सिखातीहै। ग्यारहके लिए अंग्रेजीमें 'इलेविन' शब्द है, पर बारहके लिए "टूलेविन" नहीं हुआ। इसी प्रकार फारसीमें प्राणि-वाचक संज्ञा शब्दमें आन प्रत्यय लगाकर बहुवचन बनताहै, जैसे 'मर्द' से 'मर्दान', लेकिन 'परिन्द' से बहुवचन 'परिन्दान' नहीं बना। संस्कृतमें 'डरा हुआ' के अर्थमें 'भीत' विशेषणका प्रयोग संज्ञाके अर्थमें नहीं होता, पर सभीत का प्रयोग होताहै। (पृष्ठ १८८)।

संस्कृत शब्द विवेचनामें आचार्य पाणिनिको मूर्द्धन्य स्थान उपलब्ध है। उनकी तपस्या व मेधा शक्तिकी झलक प्रस्तुत करते हुए डॉ. सुमनने लिखाहै कि 'चाणक्य' और 'चापल्य' के अन्तिमांशके एक-सा होते हुएभी अर्थमें भिन्नता है। इसके लिए पाणिनि ने 'चाणक्य' में यञ् और चापल्य' में ष्यञ् प्रत्ययकी व्यवस्था दीहै। (पृष्ठ ३४८)।

उपर्युक्त भाषा विषयक विवेचनके अतिरिक्त इस पुस्तकमें डॉ. 'सुमन' ने देशकी विकृत राजनीतिपर भी चोट कीहै। (पृष्ठ ४२१), राष्ट्रीय भावनाकी गिरावटपर आंसू भी बहायेहैं। (पृष्ठ ४३१), शिक्षा-संस्थाओंकी लरजती हुई भित्तियोंकी ओरभी संकेत कियाहै (पृष्ठ ४३४), अंग्रेजीकी असलियतको उजागर करते हुए हिन्दीके असली दुश्मनोंको भी बेनकाब किया है। पृष्ठ (४१५), साहित्यकारके दायित्वका बोध कराते हुए श्रेष्ठ साहित्यकी परखका भी उल्लेख किया है। हिन्दीके दैनिक समाचारपत्रोंपर हावी होती हुई अंग्रेजियतकी ओर भी ध्यान आकर्षित कियाहै, (पृष्ठ ४२८)। शिशु शिक्षाकी शोचनीय स्थितिका उल्लेख करते हुए टूटती हुई भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओंपर हार्दिक व्यथाको भी अभिव्यक्त कियाहै (पृष्ठ ४३२)। इस कृतिमें गूढ़ चिन्तनका आयाम ससीम होते हुएभी असीम है।□

काव्य

जिल्द बन जानेसे पहले[1]

कवि : सुव्रत लाहिड़ी

समीक्षक : दिगन्त शास्त्री

आलोच्य कृति डॉ. लाहिड़ीकी प्रथम कृति है, जो सहयोगी उपक्रममें स्थापित "सम प्रकाशन" की भी प्रथम प्रकाशित कृति है। संकलनकी प्रथम रचना है "अगर"। "अगर चुप्पी न होती/ तो शायद पटरीपर/ शब्द ही दौड़ते / कविताकी जरूरत न होती।" इस लघुतम कवितामें कलकत्ताके जाने-माने प्रबुद्ध कविने मुक्तिबोधकी प्रसिद्ध कविता "सब चुप / साहित्यिक चुप और कविजन निर्वाक्/ चिन्तक शिल्पकार नर्तक चुप है" और धूमिलकी कविता "एक समझदार चुप" का सम्भवत: प्रत्युत्तर दियाहै।

1. प्रका : सम प्रकाशन, १६२, रवीन्द्र सरणी, कलकत्ता-७०००७ । पृष्ठ : ६८; डिमा. ६१; मूल्य : ५०.०० रु.।

"जिल्द बन जानेसे पहले" कवि किसी अनिवार्य द्वन्द्वात्मकतासे ग्रस्त नहीं होना चाहता क्योंकि उसके लिए "हर शब्दको/ भीतर भरते हुए / नये नये रास्ते की खोजमें/ रोज रोज़ निकल पड़ना/ सार्थकताकी तलाश है।" बंगालके समर्पित और शक्त साम्यवादी नेताओं और रचनाकारोंकी उग्र भीड़के चेहरोंके पीछे यह कवि साम्यवादी चिन्तनसे प्रभावित है। बंगलाके आधुनिक कवियों—श्री सुभाष मुखोपाध्याय और श्री आलोकरंजन दाशगुप्ता—से सुव्रत लाहिड़ी अभिव्यंजना की दृष्टिसे अत्यधिक प्रभावित हैं। "भागती/ भीड़में खोते शब्दोंकी कविताकी दक्षबीज तक लाकर/पहचान देनेको तड़पती/ अंगुलियां चेहरेके जंगलमें / ढूंढ़तीहैं अर्थ/ (पृ. ४)। कविकी चेतना युग-यथार्थकी द्वन्द्वात्मक स्थितियोंसे संत्रस्त भले ही हुईहो, किन्तु उसकी केन्द्रस्थ ऊर्जा द्वन्द्वमूलक नहीं हो सकी। संकलित कविताओंमें उसकी आत्मस्वीकृति और आत्मसाक्ष्यमें कोई अन्तर्विरोध नहीं है। "नाराजगी किस बातकी" शीर्षक कवितामें विपन्नता और संघर्षशील जिजीविषाके बीच उपस्थित शैशवकी हलकी-सी पीड़ा, वर्षों बाद जब याद आतीहै, तब कवि निर्द्वंद्व भावसे उसे आत्मसात् कर लेताहै /—"घर-घर बर्तन मांजती मांके लिए/ चायखानेमें प्याले धोते/ मुझ बच्चेको सपने दिखानेकी फुर्सत कहां ?" और जिस मांने "लड़खड़ाते कदमोंको उंगली थामे चलना नहीं सिखाया"/ "फूल, पत्ते आकाश सूरजके रंगोंसे दोस्ती नहीं करायी" उसके लिए उसे कोई नाराजगी नहीं है। फिरभी कवि न समाजद्रोही बना और न मानवद्रोही।

कविकी नितान्त अनलंकृत अभिव्यक्तिमें जिस महानगरीय जीवनकी विडम्बना और विद्रूपताका निर्मम चित्रण हुआहै, वह अप्रासंगिक नहीं है। कवि कुछ अन्य कविताओंमें भी अपनी उन स्मृतियोंकी परछाइयोंको इतिहासकी निरन्तरतासे ठहरा हुआ पाता है। "महानगरकी सुबह" में कवि अपने महानगरका निर्भ्रान्त दर्शन कराताहै। "दूधसे भरी/ सरकारी बस की जलती आंखें/ रिक्शेपर लदी / दो चार शक्लें/ हाथोंमें जिलेबी और गुड़का टुकड़ा लिये/ गंगाकी ओर चल पड़ीहै / फुटपाथपर दानें चुंगतीं/ कबूतरोंकी भीड़/ कुछ देर पहले / गाहकोंसे छुटकारा पायी अंगड़ाई लेती औरतें/ बरामदेमें बासी चांदको देखतीहैं/ मरदतुमा दलाल ऊंघताहै/ मेट्रो रेलकी मशीनें जागेंगी/ मस्जिदकी अजान/ काली मंदिरकी घंटा ध्वनि/ फ्लाई ओवरके नीचे/ सोयी मां अक्सर सूरजको उगते नहीं देख पाती/ कागज चुननेवालीके/ सूखे स्तनसे चिपके बच्चेको/ कुतिया अपने पिल्लेकी तरह चाटतीहै / अखबारकी सुर्खियोंको घर घर/ पहुंचानेकी आपाधापी/ सलाम कलकत्ताकी होर्डिंग/ शहर कलकत्ताकी सुबह/ ऐसी ही होतीहै/ इस निर्भ्रान्त समवेदनाका, कवि अपनी सारी एकाग्रतासे अस्तित्वमूलक निपट मानवीय अनुभवके आधारपर, दर्शन कराताहै।

"तैरता समय" में कलकत्ताके अतीतकी सामाजिक आर्थिक व्यवस्थाके प्रति कविकी एक मोह-दृष्टि है, एक गहरी आस्था है क्योंकि उसने वहां इतिहास की सीमाओंमें विचरण कियाथा, उसकी माटीको अनुभूत कियाथा, केवल जाना-सुना नहीं था। "मुहल्लेके फुटपाथपर/ गैसबत्ती जलाते/ आदमीको देखकर/ मैं भी सबको/ रोशन करनेकी/ तरस पालताथा/ तब शहर कलकत्तामें/ गैस बत्ती ही जलतीथी/..."तब कलकत्ता में/ बरगदके पत्ते हरेभरे होतेथे/...तब कलकत्ताके हर फुटपाथपर/ चौपाकल हुआ करताथा /...बचपनमें मुहल्ला मुझमें होताथा/ अब मैं मुहल्लेमें होताहूं।" (पृ. ६२)। बंगालके इस कवि व्यक्तित्वकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे ग्रन्थिमुक्त होकर आत्मालोचन करतेहैं और उनका आत्म-प्रक्षेपी बंगला स्वभाव नितान्त प्रासंगिक तथा विश्वसनीय बन जाताहै। इन कविताओं और उनके शीर्षकोंकी सार्थकता इसमें यह है कि कलकत्ताके काल-प्रवाह और इतिहासका साक्ष्य इससे आबद्ध है। किन्तु बंगालकी अपेक्षा महानगरीय जीवनकी अभावग्रस्ततामें समयके प्रश्नों और चिन्ताओंपर कविने नये चिन्तन और विचारसे ऐतिहासिक प्रमाण प्रस्तुत कियाहै। इससे कविकी खुली सजग मानसिकता, कविताके केन्द्रमें प्रतिष्ठित दिखायी देतीहै।

"तय रहनेके बावजूद" शीर्षक कवितामें, साम्यवादी चिन्तनके समर्थक सुव्रत, समय और दिक्को चौराहेपर मसियाराके रूपकको चरितार्थ करतेहैं। "हम सब एक साथ न सही/ अलग अलग/ दिशाओंमें भटकते हुएभी/ चौराहेपर आ जायेंगे/ बढ़ेंगे मसियारा बनकर।" (पृ. २२)। अपने सृजन और सम्वादमें कवि नितान्त छद्म मुक्त है। उसकी वैचारिक सक्रियता, सारे आकांक्षित स्वप्नोंको अपूर्ण पाकर कह देती

है—"देनेके लिए कुछ भी / अब मेरे पास नहीं है/ पीछेकी ओर झांककर/ समयके कुएंमें/ बन्द होना नहीं चाहता है/...हां, साथ साथ/ मेड़पर पर से/ चलना चाहताहूं/'तुम्हींने कहाथा/ हर मेड़ एक ज्वालामुखी है।" (पृ. ६६)।

कवि अपने समयकी राजशक्ति और राजनीतिके बीच उपस्थित. स्वातंत्र्योत्तर भारतकी बेचैनी और उन्मादहीनताकी स्थितिको तोड़नेके लिए प्रतिबद्ध दिखायी देताहै। उसकी समवेदना अपने रचनात्मक संश्लेषणके संयममें मुखरित है। "क्षत-विक्षत लाशोंका बयान/ अखबारोंकी सुर्खियोंमें/ रोजाना दीख जाताहै/ अनन्तनागसे असम तककी/ रेखाएं/ बारूदकी गंधसे देशको घेरती आ रहीहै।" (पृ. ६३)।

अन्ततः 'जिल्द बन जानेसे पहले' कवितामें दैन्य जीवनकी परम्परासे अन्तर्मुक्त और साम्यवादी उन्मादके समर्थनमें कविका विचार है कि निम्न वर्गकी समवेदना और चेतना, हमारी क्रूर नियति और भौतिक तत्वोंकी आवश्यकताको इतना आत्मसात् करती गयी "ताकि तुम्हारे नंग धड़ंग बच्चे/ नया मोड़ लेती धाराको अपनी पहचानमें बदल सकें।"

बंगालकी मिट्टीसे उद्भूत लाहिड़ीकी हिन्दी कविता नवीन क्षितिजको इसमें तलाश रहीहै। ❒

सीढ़ियां चढ़ता सूर्य[1]

कवि : स्वदेश भारती

समीक्षक : डॉ. संतोषकुमार तिवारी

एक सार्थक सर्जना समष्टि चिन्तनकी उपेक्षा नहीं कर सकती। सामाजिक चेतना और मानवीय सदाशयता उसकी अनिवार्यता है। यही कारण है कि प्राणवान् रचनाकार 'सामूहिक आकाश जीना चाहताहै और दायरोंमें सिमटकर आत्मकेन्द्रित नहीं होना चाहता। वह भीड़भरे अपरिचयके बीच अपनेको खोलता रहना चाहताहै। अनकही मर्मभरी बातको और प्राण-संवेदनाकी पीड़ाको निरंतर अभिव्यक्तिकी तलाश होतीहै। यही अस्तित्व बोधका भी पर्याय है। अजाने सत्यकी सतत खोज करना काव्यकी अनिवार्य शर्त है— "पर वह कौन-सा गोपन सत्य है जो/समयकी धारामें बहनेसे रह गया/ जिसके जाने बिना मर्मका रेतघर बह गया/ और बहुत कुछ जाना गया सत्य अजानाही रह गया।

इसी गोपन सत्यकी पकड़के लिए अभिव्यक्ति कवि की 'आत्म-सखी' होतीहै और कविके रचनात्मक आशय को बंजर धरतीका संकेत-बीज बनातीहै। स्वदेश भारतीकी रचनाएं "मेरी रचना प्रक्रिया" में वक्तव्यके तौरपर कही गयी अधिकांश बातोंको अपनेमें चरितार्थता देतीहै और इस बातको सिद्ध करतीहैं कि जीवनके सिद्धान्त बिना लादे हुए कवितामें घुल-मिलकर एक हो जातेहै। कविके अंतस्‌का सम्पूर्ण ममत्व और "जिजीविषाके संघर्ष उद्वेग" संपूर्ण हताशाओंके बीचभी "दिवास्वप्न" के रूपमें एक "विजन" लिए हुएहैं। युगकी आपाधापीके बीच गर्भवती यादों, अपतत्त्वभरे प्यारके क्षणों और प्रकृतिकी आकुल आत्मकथासे कवि वंचित-विमुख नहीं है। यही आत्म-संवेदना "मनमें स्वप्न गंगा" बहातीहै और आत्मछलके बावजूद मानवीय संबंधोंको नये संदर्भोंसे जोडतीहै, 'मेरा सूर्य मुझसे कहताहै/ मेरी तरह चमको/ सबेरेकी जरतानी स्वर्णाभ किरण बन.../ अपनी प्रणय प्रभासे सजित करो/ प्रेम सत्ताका साम्राज्य/ और इससे बड़ा काम कुछ भी नहीं होताहै/ जो दूसरोंके लिए अपनेको खोताहै।"

कवि शब्दहीन चुप्पी नहीं चाहता क्योंकि "स्वप्नहीन जिजीविषा अस्तित्वका भयंकर कोढ़ होताहै।' आवश्यक है कि वर्तमान कमजोर न हो अन्यथा "भविष्य स्वप्न सर्जक" नहीं हो पाता। स्पष्ट है स्वदेश भारतीके पास जीवनकी स्वस्थ सामाजिकता और वर्तमानको ठीक ठाक जीनेकी चाह है। सच है कि प्रकृतिकी संचेतना जीवनकी जड़ताको नष्ट करतीहै इसीलिए कवि सागरकी विराटता, पर्वतीय चेतनामें आबद्ध शिखरकी सर्वोच्चता और नदीकी गतिमयता का हिमायती है। नदीका प्रवाह और आवेग महासिंधु के द्वार तक मनकी गांठें खोलकर ही पहुंच पाताहै। आदमीके भीतरका हरा-भरा वृक्ष ही उसकी आत्मशक्ति है। इस प्रकार स्वदेश भारतीकी कविता सीढ़ी-दर-सीढ़ी आत्म-जागरणका संदेश देतीहैं। व्यक्तिका अपनी मूल स्थिति और सही सन्दर्भोंसे जुड़ाव आवश्यक है, क्योंकि "जो नदी/ अपने बहावसे कट जातीहै/ वह

1. प्रका. : वाणी प्रकाशन, ४६६७/५, २१-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली ११०००२। पृष्ठ : १००; डिमा. ६३; मूल्य : ८५.०० रु.।

नहीं रह पाती प्रवाहमय/ हो जाती है नद/ जो आदमी अपने सपने / और महत्त्वाकांक्षाओंसे छंट जाता है/ उसके भविष्यपर / पड़ता है समयका पाला/" स्पष्ट है कवि प्रकृतिकी महती प्रेरणासे इंसानियतके शिखरोंको छूनेका सार्थक उपक्रम करता है।

आलोच्य संग्रहकी कविताओंमें युगसत्यकी भयावहता, कटुता और उत्पीड़नके सांकेतिक चित्रभी मौजूद हैं—'आजादीमें भी परतंत्रताका अनुभव कियाजा सकता है' और 'पेटकी राजनीति/ देश-प्रेम संस्कृति-धर्मसे/ अधिक सशक्त होतीहै।' स्वदेश भारतीकी कविताएं 'वर्तमानमें जीनेके संघर्ष सेतु' संकेतित करतीहैं, इसलिए वे अपनत्व, ऊर्जा और ऊष्मासे भरी हुईहैं। कविता एकात्मबोधके लिए नदीकी तरह 'विश्वजनकी आत्म-वेदना" सहतीहै और आत्मघाती प्रवंचनासे दूर मानवीय रिश्तोंकी नजदीकी भी जतातीहै—"चलो हम नापें दूरियां/ संबंधोंकी/ और महसूसें छुवन कन्धोंकी/ जिससे अधिक दिनों तक इकाइयोंमें बंटे/ अपने घावों को सीते न रहें।"

बहुत स्पष्ट है कि समुद्रकी मर्यादित विराटता और सौन्दर्य-प्रेम-आस्थाकी लहरोंसे ये कविताएँ आप्लावित हैं, इसीलिए कवि कहता है—"हे समुद्र तुम मेरे अंधेरे को/अपनी करुण धारसे काटो।' ये कविताएँ प्रेममय आस्थाके साथ समय और सौन्दर्यको इंसानी सरोकारसे जोड़नेकी कोशिश करतीहैं। कवि महत्वाकांक्षाके सिंहासन और औरतके अस्तित्वमय संघर्षके बीच उभरते रचनात्मक जीवनको भी अनदेखा नहीं करता। इसलिए वह मौन व्यथा और सन्नाटेके अटूट जालको तोड़ना चाहताहै।

स्वदेश भारतीने 'अनुभवके रंगों' और 'भावोंकी तूलिका' से शब्द चित्र अंकित कियेहैं। कविके लिए सर्जनाकी देन यह है कि उसका एकान्त अर्थमय अपनत्व में बदल गयाहै और अभिराम स्वप्नोंसे जुड़ गयाहै। यह सच है कि ये कविताएं पर्वतीय बाँकपन, सोनाली किरणों, प्रीतिके बादल और गंतव्य-पथसे जुड़ी हुईहैं, यह भी सच है कि इन रचनाओंमें कुछ स्थल ऐसे हैं जहां कवि मसीहाई मुद्रामें उपदेश-परक पंक्तियां देने लगाहै—"चलो हम अपनेको खोलें⋯एकात्मकताके दीप जलाएं, एक दूसरेको झेलें, जड़ता, जड़ताको काटे, अनास्थाका अंधकार भागे। ये रचनाएं इस दृष्टिसे लचर हैं कि इनमें सपाटता जरूरतसे ज्यादा है और कविता लादी हुई सदाशयता दूर तक वहन नहीं कर पाती।

निश्चयही महानगरीय बोध और संत्रास, सामाजिक संस्कार मानवीय सदाशयता और प्रकृतिकी विविध दृश्यावलियोंसे ये रचनाएं सम्बद्ध-सम्पृक्त हैं। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होताहै जैसे अज्ञेयका शिल्प और उनकी 'कहन' कवितामें स्पष्टतः झांक रहीहै, परन्तु शैलीकी कुछ सहजताके साथ। कई जगह मुक्तिबोधीय सामाजिक चेतनाभी जोर मारतीहै और इस प्रकार स्वदेश भारती समकालीन कविताके इन दो छोरोंके बीच स्थित खड़े दिखायी देतेहैं। अभी उनमें परिवर्तन-क्रांतिकी जोरदार दस्तक भी दिखलायी नहीं देती, मात्र अनुगूंज है कहीं-कहीं, जिसे हम कलात्मक संयम कहकर भी छुट्टी पा सकतेहैं। फिरभी जिजीविषा, आदमियतके नये सपने, बौद्धिकता और शिल्पकी सहजता हमें प्रभावित किये बिना नहीं रहती।□

जख्मोंके हाशिए[1]

कवयित्री : डॉ. पद्मजा घोरपड़े
समीक्षक : डी. डी. तिवारी

नवें दशककी कवयित्रियोंमें डॉ. पद्मजा यथार्थवादी कवयित्री हैं, जिनकी कविताओंमें परिस्थितिजन्य व्याकुलताका चित्रण हुआहै। जीवन संघर्षोंमें पराजित उनकी अनुभूतियां शब्दोंमें उतर आयीहैं। इनकी कविताओंमें छटपटाती प्यास, टूटते सम्बन्धोंकी तिक्तता तथा संघर्षसे उद्भूत संवेदनाओंका मार्मिक स्वर निजी दृष्टिकोण और मौलिकताके साथ उभर आयाहै।

आजकी बदलती परिस्थियोंके साथ कविताका स्वरूप भी बदलता जा रहाहै। समसामयिक कविता वैचारिक द्वन्द्वको संवेदनात्मक धरातलपर नया अर्थ प्रदान करनेका प्रयास कर रहीहै। जीवनके विविध आयामोंको संजोये हुएभी यह कविता आत्मकेन्द्रित अधिक हैं, जिसमें सामाजिक पीड़ाको आधुनिक कवि वैयक्तिक पीड़ाके रूपमें अनुभूतकर अभिव्यंजित कर रहेहैं। परिस्थितिजन्य विवशता तथा संघर्षोंकी कठोरतामें हारे हुए कवियोंके काव्यमें मोहभंगकी

1. प्रका. : वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १२६; डिमा. ९१; मूल्य: ६०.०० रु.।

स्थिति अधिक है। कुछ इसी प्रकारकी प्रतीति डॉ. घोरपड़ेकी कविताओंमें अनेक स्थलोंपर होतीहै। यथा— 'मैंने/कीलोंपर/चढ़कर/शहीद होना चाहा/लेकिन/कीलें महँगी थी।…अपने विचारोंको ही शहीद बनाया'। (पृ. १३)।

आज चारों ओर तनाव और व्याकुलता व्याप्त है। नयी संस्कृतिकी ओर आकृष्ट होकर मानवीय चरण अपने चिर सम्बन्धोंको भुलाते चले जा रहेहै। अपनी संस्कृति और गरिमाको भुला देनेवाली यह संस्कृति भीतरसे खोखली है। आजकी कवितामें प्राय: इन बदलते आयामोंसे उत्पन्न सम्बन्धोंकी विडम्बना, तनाव और खिचावसे उत्पन्न मानसिक व्यथाका स्वर मुखर होताहै। मनुष्य चाहकर भी संघर्ष नहीं कर पा रहाहै, क्योंकि 'हम बौने होते जा रहेहैं (पृ. २८) मन और मस्तिष्कसे'। मानवीय सम्बन्धोंके इस बौनेपन में वह अपनेको नितान्त लावारिस अनुभव करताहै। आज व्यक्ति अपनेही घरमें अजनबी बनकर सहारा ढूंढताहै। किन्तु इस तलाशमें उसके हाथ शून्य और खाली रहतेहै। इसी व्याकुलताका अंकन घोरपड़ेकी इन पंक्तियोंमें है: मैं/ अपनेही घरमें/ पनाह ढूंढती हुई/आंखोंमें काटती रात/भटकती रही/इस दीवारसे उस दीवार तक।' (पृ. ५८)।

परिस्थितिजन्य इस विषमताके प्रति कवयित्री विद्रोह करना चाहतीहै। वह इस टूटते परिवेशमें परिवर्तनकी आकांक्षी है। वह नयी दिशा तलाशना चाहतीहै। इसीलिए जन-जनका आह्वान करती हुई कहतीहै: 'आओ चलें/इस राखको ही/खाद बनाकर/ हम उगायें/नये पेड़/नये पौधे/नये फूल/नये युगकी/नयी पहचान' (—पृ. ३१)।

किन्तु प्रतिकूलतासे टूटा हुआ साहस संघर्षोंके सामने कुछभी कर पानेमें अक्षम है। तनावग्रस्त जीवन अनेक भागोंमें बंट गयाहै। 'कितनेही टुकड़ोंमें बंटी आकाश-सी मेरी जिन्दगी' (पृ. १९) कथन लेखिकाके पराजय और उसकी व्याकुलताका प्रतीक है।

डॉ. घोरपड़ेकी कविताओंमें उस सामान्य जनकी पीड़ा भी अभिव्यक्त हुईहै जोकि हमारे समाजका दलित और पीड़ित है, जिसे शोषित कहा जाताहै। आज हमारा समाज चाहे कितना ही क्यों न बदल गयाहो, खद्दरधारी नेता चाहे गरीबोंके उत्थानके झूठे वचन क्यों न करते हों, शोषितकी पीड़ा अब भी वैसी ही है जो सदियों पूर्व थी। आतंकका शिकार भी वही है। शोषितोंकी इस दयनीय स्थितिका चित्रांकन इस संकलनकी अनेक कविताओंमें हुआहै। प्रकृतिके माध्यम से लेखिकाने समसामयिक आतंकवाद और उसके शिकार और निरीह प्राणियोंकी दम तोड़ती स्थितिका मार्मिक अंकन कियाहै। यथा: 'ख्वाबोंका घरौंदा तोड़कर/कौन ले गया/वे उनींदे पंछी ?…तो फिर/ कौन बागी बन गया ?/हवा ?/पत्तियाँ/डाली ?/ जड़ें ?'—(पृ. २०)

इनकी कविताओंमें सामाजिक पीड़ाकी गहरी अनुभूति है। लेखिकाने भोग्य यथार्थको अनुभूत कियाहैं।

काव्य-संकलनकी इन कविताओंमें जहां सामाजिकताका स्वर है वहीं कविताओंमें प्रेमकी पीड़ा भी अभिव्यक्त हुईहै। इनके प्रेम चित्रणमें प्रेमकी मांसलता और स्थूलताकी मिलीजुली वह असह्य बेचैनी और और कसक है जिसे जीवनमें यथार्थत: अनेक मनुष्य जीते-भोगते और अनुभव करतेहैं। प्रेम वह कस्तूरी है जिसकी गन्धसे हृदयमें हरसिंगार झरने लगतेहैं। जीवन महक उठताहै। कविके प्रेमका आराध्य कोई परब्रह्म परमेश्वर नहीं है अपितु वही पुरुष प्रेम है जिसके स्पर्शने उसे हिमालयके समान गौरवमय स्थान दिलाया है। प्रेमकी इस मधुरताका स्रोत उनके इन शब्दोंमें फूट पड़ाहै: 'मेरी / संवेदनाओंपर/तुम्हारे/ढेर सारे स्पर्शों-यादोंका/ हिमालय खड़ा हो गयाहै/ और तुमने मुझे/उस उच्चतम शिखरकी शिला/बननेका वरदान दियाहै' (पृ. ५९)।

इस प्रेममें प्रियतमा अपना सर्वस्व समर्पण करना चाहतीहै। प्रेमपरक इस समर्पणमें वासनानुभूतिका स्वर है। प्रेमीकी चाहना है कि उसका प्रेमी सूरज बन जाये और वह ग्लेशियरकी भांति पिघलकर उसी में विलय हो जाये, इस चाहमें 'पानी ही तें हिम भया हिम है गया विलाय' वाली भावना है। इस प्रकारकी प्रेमानुभूतिका भाव निम्नांकित पंक्तियोंमें अभिव्यंजित हुआहै—'मैं चाहती हूं/कभी तो तुम/सूरज बनो/और/ मैं/ग्लेशियर बनकर बह निकलूं'… (पृ. ५९)।

प्रेम सम्बन्धोंमें कवयित्री यथार्थवादी अधिक है। प्रेम में वह तन-मनसे दोनोंकी पक्षधर हैं। बिना देहके प्रेम अधूरा है। तभी तो वह कहतीहै कि—'कौन/कहता है/कि/तन, तनसे / या / मन, मनसे / जुदा होताहै'

(पृ. ५४)।

प्रेमके मधुर क्षणोंके साथ-साथ कुछ कविताओंमें विरह एवं वेदनाकी तीखी कसक है। उनकी अनेक कविताओंमें नारीकी विरह-वेदनानुभूतिको सच्चाईकी सीमा तक सम्प्रेषित कियाहै। सम्पूर्ण समर्पणके बादभी जब प्रेमी हृदयको कुछ न मिला तो अनस्तित्व बोधका गहरा भाव हृदयमें घर कर गयाहै। प्रेमकी इस विरह-पीड़ा एवं नैराश्यका चित्रण उनकी 'तुम आतेहो', 'कहाँ गये मेरी प्रतीक्षाके', 'घबराहट उकताहट, बेचैनी' और 'तुमने कुछ अधिक ही' आदि कविताओंमें हुआहै।

इस कविता-संकलनकी कविताओंके शिल्पका जहाँ तक प्रश्न है, कहाजा सकताहै कि कविताओंके कथ्यके सामने शिल्प निरीह और अबोध-सा प्रतीत होताहै। भावोंकी अस्पष्टताने रूप और शिल्प दोनोंको बोझिल बना दियाहै। कवयित्री क्या कहना चाहतीहै, कुछ कविताओंमे स्पष्ट नहीं हो पायाहै। जैसे—'एक सम्बोधन था वह', 'मेरे पैरों तले फैली, तथा 'युगकी गिनतीमें' आदि। किन्तु अधिकांश कविताएं अच्छी बन पड़ीहैं जिनमें कवयित्रीने शब्दोंकी शबनम अँजुरि भरकर लुटायीहै। एक ही प्रतीक अनेक अर्थ लेकर आयाहै, जैसे 'सूरज' कहीं उदारताका प्रतीक है तो कहीं 'तानाशाह' और 'हत्यारे' का, 'आइना', 'शबनम', 'आकाश' और 'सूरज' लेखिकाके प्रिय प्रतीक हैं। कुछ पौराणिक प्रतीकोंको भी भावाभिव्यक्तिका माध्यम बनायाहै, उदाहरणार्थ 'पृथ्वी' त्यागका, 'सीता' नारी विवशताका, 'रावण' दुःखका तथा 'गौतम'-त्याग और ज्ञानका प्रतीक है।

बिम्ब-योजजनाकी दृष्टिसे कविताएँ उत्कृष्ट और सराहनीय हैं। जीवनकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म घटनाकी अभिव्यंजनाके लिए अनेकशः बिम्बोंका निर्माण कियाहै। अपने भावोंको सम्प्रेष्य बनानेके लिए यत्र-तत्र प्राकृतिक, रूप और यथार्थ बिम्बोंका प्रयोग कियाहै। प्राकृतिक बिम्बकी एक छटा दर्शनीय है—'फिरभी/पैरों तले/अंकुर—/ कोंपलें—/जंगली फूल—/शबनमी पत्तियाँ' (पृ. ११७)।

भाषा-योजनामें कवयित्री सफल है। अपने भावों की सहज अभिव्यक्तिके लिए उन्होंने सरल, सरस एवं कोमल शब्दोंका प्रयोग कियाहै। भाषामें ध्वन्यात्मक शब्दोंका प्रयोगकर संगीतकी झंकार गुंजरित कीहै। यथा—'चीड़ वनोंके/ साँय-साँय अँधेरे/रह-रह कर/ थर्रा उठते हैं/मेरी नन्हीं-सी/आँखोंकी अतल घाटियोंमें' —(पृ. २२)।

कहीं-कहीं भाव, भाषा-दोषसे दब गयेहैं। यथा—'जिन्दगी दहशत भरी बियाबाँ' बन जातीहै'—(पृ. ९८)। साधारणसे भावके लिए इतने भारी भरकम शब्दोंका प्रयोग भावाभिव्यंजनामें सहज नहीं कहा जा सकता।

कविता-संग्रहको कवयित्री डॉ. घोरपड़ेके जीवनानुभवोंका शबनमी प्रतिबिम्ब कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी। ☐

प्राण पिरोऊं किसमें[1]

कवयित्री : आशा रानी

समीक्षक : डॉ. प्रयाग जोशी

आशा रानीकी पचपन कविताओंका प्रस्तुत संकलन प्रतीक्षा, आस्था और अन्तर्मन तीन शीर्षकोंमें विभक्त है। कुछ कविताओंमें भारतीय सनातनके किस्मकी आत्म-अनात्मकी प्रश्नाकुलता है। अधिकतर कविताओं में प्यार और समर्पणकी लबालब भरी चाह है। वे कहीं प्रियतमकी प्रतीक्षामें तिल-तिल गल रहीहैं तो कहीं मातृत्वकी सहजतासे भरे हुए वात्सल्यको पाने ललक रहीहैं। प्रकृतिके दारुण और कोमल, दोनों प्रकारके रूपोंपर भी कवयित्रीका विश्वास व्यक्त हुआहै। इस विश्वासकी अभिव्यक्ति स्तुतियों और प्रार्थनाओंके रूपमें हुई है। अनेक कविताओंमें लोरियों जैसी गुदगुदाहट है।

संग्रहकी कविताओंमें जो द्वन्द्व है वह सनातन स्त्री को बन्धनके लिए तरसते हुए मन और पुरुषकी हदबंदी से मुक्त होनेकी कामनासे छटपटाते मनका द्वन्द्व है। प्रतिकारकी तीक्ष्ण चाकूकी धारसे चीरी जाती हुई अस्मिताके प्रति आत्मसजगता भी विभिन्न कविताओं मैं दिखायी देतीहै। भावनाओंसे रंगी हुई प्रकृतिके बिम्बोंसे कवयित्रीने इस सजगताको रेखांकित कियाहै। इन रेखांकनोंमें पुरुषकी वृत्तियों और प्रवृत्तियोंकी

---

1. प्रका. : सरस्वती विहार, जी. टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-११००३२। पृष्ठ : ८०; डिमा. ९१; मूल्य : ४५.०० रु.।

पहचान स्पष्ट होती गयीहै । सहीको इंगित करनेकी प्रामाणिक प्रतीतिसे उत्पन्न सात्विक दर्पभी यत्र-तत्र झलक उठताहै ।

कविताओंमें व्यक्त स्त्री कहीं तो अपने शरीर सौष्ठवपर मुग्ध है, कहीं मनुहारके लिए उद्वेलित। वह दयिता भी है और विप्रलब्धा प्रगल्भाभी। कहीं वह पुरुषके परिरंभणके लिए मचल रहीहै कहीं उसे अपने से परे ठेलकर स्वतन्त्र हवामें सांस लेनेको व्याकुल। कहीं अफसोस और खिन्नतामें झरझर झरते आंसुओंके झरने हैं तो कहीं पिसते जानेके अहसाससे उत्पन्न खीझ, उपालंभ और व्यंग्यके पनाले। एक स्त्रीके अन्तर्मनके बीसियों संवेगोंसे जुड़ी ये कविताएं पुरुष-केन्द्रित संसार के कटु-तिक्त, खट्टे-मीठे अनुभवोंके तानों-बानोंसे बुनीं गयीहैं।

रचनाओंमें, जीवनकी सपाटतामें बजता एक रबाब है जिसकी तांतें गृहस्थीके सम्बन्धोंसे तनी-खिंची हैं। सामाजिक दायित्वों और पारस्परिक खींचा-तानियोंका राग चल रहाहै और जीवनके कर्ण-कटु शोर-शराबेके बीच भी एक मधुर लय वातावरणमें व्याप्त रहीहै: यादोंके साये/लम्बे, छोटे,/ धुंधले, उजले साये/यादोंके।/ एक साया लम्बा/खम्भा ज्यों बिजलीका/दूर जाती लम्बी सड़कपर/मूक खड़ा रहता है/स्थिर अडिग।/और एक साया/लघु, अतिलघु/मृदु फलकी पंखरी-सा/रोज खिलता/रोज झर जाताहै।/ कहां तक गिनूं/साये हैं अनगिनत/लहराते गहराते/ उठ आते, गिर जाते/इन सबके बीच/चकराती/मैं खुद भी एक/साया बन जातीहूं।

कविताओंकी विश्वसनीयता यह है कि कवयित्रीने अपने अन्तर्मनकी बारीक परतोंको पहचानाहै। बेमन किये समर्पणोंके असत्में सत्को टटोलाहै और अपनी ही दुरभिसंधियोंको प्रकट करके दिलका संताप हल्का कियाहै। नफरतमें प्यार और प्यारमें नफरतके विलयनोंका परीक्षण कियाहै। बाह्यके प्रति आत्म सजगता और अन्तस्थके प्रति ईमानदारी इन कविताओं की पहचान है। पहलेने सृजनके क्षेत्रको व्याप्ति दीहै, दूसरेने अनुभूतिकी निबिड़ता। शिल्प और विषय दोनों स्तरोंपर बरता गया संयतपन मनको आकृष्ट करताहै।

अपनी क्षेत्र सीमाके भीतर पूर्ण दमखमके साथ दी गयी चुनौतियां, व्यंग्य व उपालंभ कविताके तेवरों में नया खम देतेहैं। जीवनकी हकीकतोंसे मन नहीं चुराया गयाहै नहीं आवेश और भावुकताके क्षणोंमें निजताका अतिक्रमण ही है।

कविताएं आश्वस्त करतीहैं और प्रतीति करातीहै कि अगले संकलनोंमें कवयित्री और भी सशक्त रचनाएं प्रस्तुत करेंगी। ☐

उपन्यास

'मरुभूमिकळ उण्टाकुन्नतु'[1]

[केरलके प्रादेशिक पुरस्कार 'वयलार अवार्ड' से सम्मानित]

उपन्यासकार : आनन्द

समीक्षक : श्रीरेखा

आखिर यह 'सरकार' क्या वस्तु ? क्या हम उसे देख सकतेहैं ? छू सकतेहैं ? सूंघ या चख सकते हैं ? नहीं, नहीं। सरकारके बारेमें हम जो सुनतेहैं या जो सुनाया जाताहै, वहभी सचमुच सरकार नहीं है। अर्थात्, वह कोई ऐसा 'परब्रह्म' है जिसके सिर नहीं, मुंह नहीं, रीढ़-पेट नहीं, छाती-पीठ नहीं और हाथ-पैर भी नहीं।

कहना बहुत सरल है, पर अनुभव ठीक उसके विपरीत है। हमारे ऊपर जो धुंधलका फैला दीखताहै वह सरकारका सिर है। वह मुंह बाये हुएहै, दांत

1. प्रका. : डी. सी. बुक्स, कोट्टायम्-१। मूल्य : ५०.०० रु.।

बाहर निकले हुएहैं और हैंभी नुकीले। उसके दोनों हाथ जनताको अपनी लपेटमें कसे रखतेहैं। उन हाथों में पांच-पांच अंगुलियां हैं, प्रत्येक अंगुलीमें नुकीला नाखून है जो खूनसे लथपथ है। उसके पैर देशके क्षितिजसे क्षितिज तक प्रति पल धरतीको रौंदते चलतेहैं। तब हमें अनुभव होताहै कि सरकारकी सत्ता है।

इस अमूर्त सरकारकी खोजमें मूर्त अनुभवोंके मलबोंके ऊपर जो उपन्यासकार टेढ़ी-मेढी चालसे चलताहै, वही मलयालमका विलक्षण प्रतिभावान् युवा उपन्यासकार आनन्द है। उसके चर्चित उपन्यास का नाम है 'मरुभूमिकळ उण्टाकुन्नतु'।

अव्यक्त एवं अमूर्त विषयको लेकर उसे मूर्त रूप देनेका प्रयास इसमें हुआहै, इसलिए ग्रन्थ-नाम भी उसीके अनुरूप है अर्थात्, 'मरुभूमि कैसे बनती हैं' या 'रेगिस्तान बनते जा रहेहैं' कहनेसे वाक्यकी पूर्ति होती है, पर उपन्यासकारने उस वाक्यसे दो शब्द मात्र लेकर 'रेगिस्तान बनते' नाम दिया है। इसलिए मैं यहां इस ग्रन्थका नाम "बनते रेगिस्तान" रखना चाहता हूं, हिन्दीमें।

राजस्थानके किसी मरुस्थलमें रम्भागढ़ नामक एक प्राचीन उपेक्षित किला घटनास्थल है। कथानक का फैलाव आसपासके गांवों नगरों रेलवे स्टेशनों और सड़कों तक हुआहै, तोभी रम्भागढ़ ही केन्द्र स्थानमें है। पूरा उपन्यास पढ़नेके बाद प्रतीत होताहै कि वह किला सरकारका प्रतिरूप है।

किलेकी कहानी सदियों पूर्वकी है, जिसका निर्माण अनेक राजाओं राजपुत्रोंने किया होगा। यह निश्चित है कि राजा मानसिंह वहां अंतिम बार गद्दीपर बैठेथे। सुलतान आलम खानसे पराजित होकर मानसिंह वहांसे हटे तो उनके सभी सैनिक-सेवक मारे जा चुकेथे और उनकी पत्नियां जौहरकी ज्वालामें भस्मसात् हो चुकीथीं। जब आलम खान किलेमें घुस कर वहांकी धूल राखपर अपनी गद्दी जमा नहीं सका। उसे धूल-राखने उसे वहांसे खदेड़ दिया।

यह किला सामन्ती युगकी सरकारोंका आवास स्थान रहा। भारतके स्वतन्त्र होनेके दो तीन दशकके अंदर स्वतन्त्र भारतकी सरकारकी दृष्टि इस किलेपर पड़ी। सरकारी सुरक्षा विभागने एक योजना बनाकर उसे नाम दिया—रम्भागढ़ स्ट्रैटेजिक इंस्टालेशंस प्रोजेक्ट, संक्षेपमें इसे 'रम्भागढ़ सुरक्षा योजना' कह सकतेहैं। इस योजनाके अन्तर्गत अनेक रहस्यमय गर्तों का निर्माण शुरू हुआ तो उसके लिए दो प्रकारके मजदूरोंको वहां लाया गया। एक, आसपासके गांवों-नगरोंके बेरोजगार निर्बल गरीब पुरुष, जिन्हें 'पायनियर फोर्स' नाम दिया गया। दूसरे वे, जो देशके कोने कोनेके सेन्ट्रल जेलोंमें फांसीकी प्रतीक्षामें अन्तिम दिन गिन रहेथे। उन्हें यहां लाकर दूसरे मजदूरोंके साथ मिलाकर इन रहस्यपूर्ण गर्तोंके काममें लगाया गया। जबतक वे कामपर हैं उनकी फांसीकी सजा स्थगित कर दी गयी, पर लौटनेपर तत्काल मृत्युदण्ड दिया जाता।

ऐसी एक नयी टोली के आनेके साथ यह उपन्यास प्रारंभ होताहै। उन मजदूरोंकी जांच-पड़ताल और उनके ब्यौरे—लंबाई, वजन, निशान आदिके साथ उन्हें अपने विश्वासमे लेना, नयी भर्तीकी सूचियां तैयार करना कुंदन नामक लेबर-अफसरका काम था। इसी क्रममें कुंदनजीके सामने पशुपतिसिंहको लाया गया। अपने ब्यौरोंके अनुसार वह साधारण नहीं था। पशुपति सिंहके बारेमें एक विशेष बात यह थी कि उसके एक हाथ की तीन उंगलियां कटीहैं। पर इस आदमीकी पूरी उंगलियां थीं। कुंदनजीको शंका हुई कि यह कैदी भूलसे यहां लाया गया है। उसे लौटा देनेकी बात सोची गयी। पर प्रोजेक्टके सभी अफसरोंने कुंदनको सावधान कर दिया कि उसे कहीं लौटानेकी आवश्यकता नहीं क्योंकि लौटानेसे सभी अफसर संकटमें पड़ जायेंगे। कुंदनभी संकटमें पड़ जायेगा। पर इस सबका अर्थ उसकी समझमे नहीं आया। वह सत्यकी खोजमें निकला। यही यात्रा इस उपन्यासकी कथा हैं।

पशुपतिसिंहके स्थानपर जो बेचारा लाया गयाथा उसका नाम था सुलेमान। पशुपतिसिंह किसीकी हत्या करनेके अपराधमें फांसी-दंड पानेवाला बन्दी था। जेलके वार्डन, पुलिसके कर्मचारी और सरकारके अन्यान्य विभागोंके अफसरोंने जानबूझकर पशुपतिसिंह को बचाया और उसके बदलेमें सुलेमानको बेनामी बंदी कर दिया। सुलेमानने यह इसलिए स्वीकार कर लिया था कि पशुपति सिंह पांच सौ रुपये प्रति मास सुलेमान के घरपर पहुंचा देनेको राजी हुआथा। उसका

परिवार उसी राशिसे आधा पेट भरकर जीवित रह पाताथा।

यह सब जान-सुनकर कुंदन आश्चर्य-चकित रह गया अवश्य, पर बादमें तो जब दानियल, भोला, अमला, आदि-आदि अनेकों स्त्री-पुरुष उसके सामने आये तो उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। धीरे-धीरे उसे समझमें आने लगा कि इन सब कुचक्रोंके पीछे सरकारका कोई न कोई हाथ है। केवल यही नहीं समझ पाया कि स्वयं कुंदन भी उस सरकारका हाथ है।

जब उसे यह जाननेकी इच्छा प्रबल हुई तो कुंदनने किलेके अंदरके दफ्तरों, अफसरों और यहांतक कि अपने नौकरों तक के सामने यह समस्या रखी। पर उसे केवल एक अमूर्त सरकारके जालका स्पर्श अनुभव हुआ। किलेके बाहर चौड़ी सड़कों, गंदी गलियों और तंग दरारों तक में वह मारा-मारा भटका। सरकारका विराट् रूप औरभी ठोस सामने आने लगा। अन्तमें वह कहीं दूर किसी नगरमें एक संपादकके सामने जा बैठा और राक्षसीय सरकारके विरुद्ध शिकायतें रखने लगा तो वह स्वयं ही गिरफ्तार होगया। क्योंकि, संपादक भी उसी सरकारका एक अंग था और कुंदन राजद्रोही सिद्ध हो रहाथा।

पूरे एक वर्ष जेलमें, बिना किसी आरोपके वह बन्द रहा। एक दिन देखा कि जेलका दरवाजा उसके सामने खुला पड़ाहै और दरवाजोंपर कोई पहरेदार तक नहीं है। उस अनुत्तरित समस्याका समाधान खोजने कुंदन बाहर निकला। हमभी उसके साथ उसी समाधानकी खोजमें आगे चलतेहैं।

उपन्यास समाप्त। पर यह कहानी प्रस्तुत करने का ढंग उतना सीधा-सादा नहीं जितना यहां खींचा गयाहै।

'रम्भागढ़, रम्भागढ़ नामक एक किला; वहां कुंदन, कुंदन नामक एक अफसर' वाली रीति नहीं अपनायी गयी। बल्कि छोटे-मोटे नाटकीय रंगमंचोंपर कथापात्र एवं घटनाएं पल्लवित होतीहैं। बीच-बीचमें गहरी दार्शनिकताकी संकीर्णता है। उन विचित्र और विभिन्न रंगमंचोंपर कैसे-कैसे पात्र-पात्रियां आती-जातीहैं और क्या-क्या सामाजिक सत्य उद्घाटित एवं प्रदर्शित होतेहैं यह तो पढ़कर जानना ही अच्छा है; किसी माध्यमसे जानना ठीक नहीं होगा।

एक बातकी ओर ध्यान अवश्य आकृष्ट होताहै कि निन्यानवे प्रतिशत घटनाओंमें कथापात्र समाजके निम्नातिनिम्न तलके हैं। कभी-कभी वे मनुष्य नहीं, तड़पने-रेंगनेवाले कीड़े मकोड़े ही लगतेहैं। संभवतः सरकारी प्रहार-प्रत्याघात इन घिनौने जीवजंतुओंपर निरन्तर पड़ता रहताहै।

इस नाटकीयताके बीच एक मंचपर कुंदन प्रिजनर फोर्स कमाण्डर योगेश्वर महोदयके सामने बैठाहै और पासही योगेश्वरकी पत्नी अमला बैठीहै, पति पत्नीकी प्रशंसा करते नहीं थकता। अंतमें इस बातका रहस्योद्घाटन होताहै कि पशुपति सिंहने जिस व्यक्तिकी हत्या कीहै वह अमलाका सगा भाई है। उसी पशुपति सिंहके साथ रियायत करनेवाला योगेश्वर हंसता चिल्लाता बातें करताहै। बादमें एक अन्य मंचपर हम योगेश्वरको देखतेहैं एक नयी युवती पत्नीके साथ। अमला, अब न जाने कहां अदृश्य हो गयीहै। कुंदन अन्तमें अमलाको मैले फटे चिथड़ोंमें लिपटी किसी रहस्यपूर्ण योजनाके कार्यान्वयनमें लगी देखताहै। पशुपतिसिंहका मृत्यु-दंड उसीके हाथों निपटानेका आभास भी मिलताहै।

कुंदनके साथ यात्रा करते हुए हम एक नगर चत्वरमें पहुंच जातेहैं और दूरसे देखनेको मिलताहै कि वहां एक साम्प्रदायिक दंगा चल रहाहै और कुछ लाशें खुले रास्तेमें पड़ीहैं। दंगई सरकारी ट्रकोंमें बच जाते हैं। यह सरकारकी जानकारीमें हुआहै जिससे सरकार का हिलता चौखटा तत्काल दृढ़ हो गयाहै।

आनन्दके इस उपन्यासकी एक विशेषता यह है कि स्त्री-कथापात्र बहुत ही कम आतेहैं, आते भी हैं तो नग्नताका कोईभी दृश्य देखनेको नहीं मिलता। हां जब रूथ, कुंदनकी पूर्व परिचिता सहपाठिनी सहेली, जो उसी सरकारकी खोजमें निकली दूसरी सत्यान्वेषिका हैं, कुन्दनके यहां जातीहै और दो तीन रात रहतीहै तो सीमित रूपमें आपसी हेलमेलका दृश्य अवश्य देखनेको मिलताहै। पर यहां भी नग्नताकी स्थिति नहीं है।

यह अवश्य कहा जा सकताहै कि इस उपन्यासके दार्शनिक विवरण एवं धारणाएं साधारण पाठक तक नहीं पहुंचती। पर इसमें कोई हानि नहीं। साधारण पाठक उसमें पैठें और गोता लगायें तो अवश्य कुछ मुक्तामणि हाथ आ जायेगा। इसके विपरीत विचारशील पाठक उस दार्शनिकको गहराईमें उतरकर अनन्य रसिकता प्राप्त कर सकतेहैं।

किसी सरकारी इंजीनियरके लिए इस प्रकारकी सृजनात्मक रचना प्रस्तुत करना असाध्य नहीं तो असाधारण अवश्य है। कथानकके सभी घटना स्थल उत्तर भारतमें ही हैं और सब कथापात्र उत्तर भारतीय ही हैं, तो भी यह दक्षिणकी, पूर्वकी और पश्चिमकी सम्पूर्ण भारतकी कथा है। मलयाली इसे मात्र अपने देशका, मलयालम भाषाका उपन्यास नहीं कह सकते। इस पुस्तकका हिन्दीमें अनुवाद होता तो कोई यह नहीं कह पाता कि यह हिन्दीका मौलिक उपन्यास नहीं है। यही इसकी विशेषता तथा विशिष्टता है।□

अन्तिम पड़ाव[1]

उपन्यासकार : डॉ. लक्ष्मीप्रसाद श्रीवास्तव
समीक्षक : डॉ. तपेश्वरनाथ

प्रस्तुत औपन्यासिक जीवनीमें लेखकके अनुसार "संस्मरणिकाओंकी छाया" भी रूपायित है। इस प्रकार रचनाका मूल कथ्य यद्यपि जीवनी है पर इसे लेखकीय छद्मनाम (लच्छो) दे देनेके कारण यह औपन्यासिक व संस्मरणात्मक भी बन गया है। परिशिष्टमें प्रशस्ति, समीक्षा व अयोध्या-मन्दिरका इतिहास संकलित है।

इसमें कुल सात अध्याय हैं। प्रथम अध्यायमें कथानायक लच्छोका जन्म-वृत्तान्त दिया गया है। तदनुसार, लच्छोका जन्म सन् ४२ के मार्चमें लछमिनियां गांव, जिला-सुपौलमें हुआ। पिता हरिहरबाबू व माँ सबुज देवी धार्मिक संस्कारके दम्पती थे। पूजापाठ, पर्व-त्योहार, धर्मग्रंथोंका नित्य पाठ आदि उसके परिवार की दिनचर्याके नित्य अंग रहे। स्वभावतः बालक लच्छो का हिन्दू-संस्कार शुरूसे वंश परम्परानुसार पालित-पोषित और जागृत होता गया। गांवमें सुकरातीकी "हुड़ियाही, चरवाही आदिके लोक-दृश्य लोकबोली (मैथिली) में ही चित्रित है। उन बाल-नयनोंमें भागलपुर जैसे शहरका वर्णित दृश्य यदि उसे स्वर्ग-सदृश लगा हो तो विस्मय क्या। अगहन-पूसमें धन-कटनीके समय किसानके उल्लासका छोरअन्त नहीं। दीना-भदरीका नाच, ग्राम पंचायत, घरढुक्की, पंचोंके प्रपंच, मेला, अष्टयाम आदिके अनेक दृश्य सहज, भदेसी, व्यंग्यपूर्ण व चित्ताकर्षक हैं। इसमें आंचलिकता जीवन्त हो उठी है। उनसे रेणुकी रोचक, मुहावरेदार कथा-शैली याद आती है।

दूसरे अध्यायमें अंग्रेजकालीन लोकल बोर्डके चुनावमें वोटरोंको लुभानेवाले भोजके बावजूद कांग्रेसियोंकी जीत, फिर सन् ४७ की आजादीका जश्न और भोज, ५२ का आम चुनाव, भदेसी नारे, रेणुके "मैला आंचल" की याद दिलाते इनकिलास, गान्ही महिसमा, जिन्नाबाद। गांधी टोपी व लाल टोपीकी बहार और सोसलिस्टोंके कांग्रेस-विरोधी नारे—"ई कंगरेसिया चोर हैं—लोहा चोर, चिन्नी चोर"—के शोरमें राजनीतिक भ्रष्टाचारकी आरंभिक दासताके स्वर गूंजते हैं। नाच, बारात, बालविवाह, बाबाजीकी विरक्तिके मूलमें सेक्सकी कुंठा, छुतहा रोग और दवा के अभावमें झाड़-फूंक, ओझा-गुनी, अन्धविश्वास, भूत व भगत खेली, जिससे अकाल-मृत्यु। जमींदार सच्चूबाबूके गांवमें आतेही, सुन्दरी कन्याओंकी आबरू पर संकट, मेलासे लौटती अकेली कन्यापर गांवके लुच्चे लड़केका हथलपक और विडम्बना यह कि पंचोंका निर्दोष गरीबोंके विपक्षमें बेईमान फैसला। सिंहेश्वर स्थानका शिवरात्रि-मेला-खेल-तमाशे, लड्डू-जिलेबी और लड़कियोंको भगाये जानेका दृश्य वर्णित है। गांवके विद्यालयमें सरस्वती-पूजा तथा सिरपंचमीको हलवाहोंके सम्मान-दिवस-आयोजन, जन-मजदूरोंकी हड़ताली धमकीपर बैठक और उसमें कम्यूनिस्टोंकी छीछालेदर तथा गृहस्थ-गृहस्थिनसे वात्सल्यपूर्ण सद्व्यवहारकी मन्त्रणासे तनाव-शान्ति और टकराव टलने से चमर टोली-बभन टोलीमें एकात्म्य और समरसता-स्थापन। फगुआमें जानी-जोगीराका नाच, देवर-भाभी का गाली-गलोज आदि सरस दृश्य।...

तीसरे अध्यायमें किशोर लच्छोके छात्रावासी जीवनकी तेज-कड़वी झांकी। सन् ६२ का चीनी आक्रमण और उसमें देशकी शर्मनाक पराजयमें नेहरू-नीतिकी भर्त्सना। उत्तरांचलके सुप्रसिद्ध कवि गोपाल सिंह "नेपाली" द्वारा विनोबाजीको लिखी पत्रमयी कविता में उनकी समर्पण-वृत्तिपर क्षोभ और लच्छोके तरुण हृदयकी वेदनाकी अंगड़ाई—उसकी चीनको ललकार भरी कविताओंमें—प्रत्यक्ष है। देश-भक्तिका बीज यहीं से उत्तरोत्तर पल्लवित-पुष्पित होता गया। डॉ. ग्रियर्सन

१. प्रका. :-सीताराम प्रकाशन, गंगावारा, दरभंगा (बिहार)। पृष्ठ : १२०; मूल्य ; ३५.०० रु.।

के मिथिला-भाषा-सर्वेक्षणकी व्यंग्यपूर्ण संस्मरणात्मक झांकी (बहलमान द्वारा पूछे गये "हेहैत" शब्दके अर्थ में उनकी झेंप) चिन्ताकर्षक है। देशानुरागकी झलक उसकी "वेच मत विचारको" तथा "दिल्ली" शीर्षक श्रेष्ठ कविताओंमें उजागर हुईहै। "दिल्ली" पर यों राष्ट्रकवि दिनकरकी बड़ी कविता प्रसिद्ध रहीहै। पर लक्ष्मीजीकी "दिल्ली" शीर्षक यह कविता भी कम ज्वलन्त नहीं है। एक बानगी देखें—"गयी सभ्यता/संस्कृति हमारी घुल-घुल रोयी / कोई नहीं था उसे सहारा देनेवाला/इसका कारण और नहीं, बस दिल्ली वाला/ओ दिल्ली ! तुम हुई अशुचि, नापाक, विषैली/तुमपर बैठे नशाबाज और दगाबाज/इसीलिए बनकर रही तुम नाच-हवेली···" "ध्यातव्य है कि ये पंक्तियां तो तभी की हैं जब "सूटकेसी-संस्कृति" नहीं चलीथी। अतः उसकी प्रासंगिकता आज औरभी अधिक है।

चौथे अध्यायमें सर रवीन्द्रनाथ द्वारा पंचम जार्जके स्वागतार्थ (कलकत्ता) लिखित —"जन-गण-मन-अधिनायक" की व्याख्याकर उसकी "वन्दे मातरम्"से न्यूनता-सिद्धि, गुरुगोविन्द सिंहके पिता गुरु तेगबहादुर को इस्लाम न कबूलनेके कारण दिल्लीमें शीश कटाने व उनके बच्चोंको औरंगजेब द्वारा सरहिन्द (पंजाब) की दीवारोंमें जिन्दा चुनवा देनेकी बर्बरतापूर्ण घटना की मर्मान्तक याद, इटावाके कलक्टर मि. ह्यूमपर सुराजियोंके हमलेसे बचनेके लिए उनका औरत वेषमें घरके पीछेसे भागने और बादमें इंगलैंडसे भारत वापस आकर १८८५ ई. में कांग्रेस-संगठन बनानेकी पृष्ठभूमि की चर्चा है। लच्छोजीका निष्कर्ष है कि जिस दल की स्थापना ही स्त्रीवेशी भगेरू अंग्रेज ह्यूम द्वारा हुई उससे (पृ. ४४) "पुरुषार्थकी आशा करना व्यर्थ है। डरकर समझौता कर लेना (जैसे चीन, पाक) या वास्तविक समस्याओंको टालते जाना इसका जन्मजात संस्कार रहाहै।" इसलिए लच्छोके शब्दोंमें"—वह प्रपंचपूर्वक (पृ. ४४) गद्दी हथियानेवाले लालची, डरपोक, समस्याके उचित निदानसे उदासीन, कायर तथा हीन समझौतावादियोंका संगठन बनकर रह गयी है।" उसके अनुसार—"इसी नीतिके कारण भारत-विभाजन हुआ, चीन और पाक-संघर्षमें हजारों वर्गमील भारत-भूमि गँवानी पड़ी, कैलाश-मानसरोवरपर धार्मिक अधिकार छूटा, बंगलादेशको "तीन विगहा" क्षेत्रका भूदान करना पड़ा। उसे गांधीजी व उनके उत्तराधिकारी नेहरू-नेतृत्वमें हुए कुछ राष्ट्रघाती निर्णयों पर भी भरपूर क्षोभ है (पृ. ४४-४५) तथा उसके अनुसार, साम्प्रदायिक दंगे व देश-हत्याके नासूर उसीके परिणाम हैं।

पंचम अध्यायमें उनके वैचारिक जीवनका घूर्णित वात्याचक्र वर्णित है, जिसमें समाजवादी नेताओंका प्रभाव प्रदर्शित है। सोशलिस्टोंके बदलते लोहियावादी-चरित्रमें यह नारा कि—"मुस्लिम-हरिजन भाई-भाई/हिन्दू जात कहांसे आयी" से क्षुब्ध होकर उसने उसे भी त्याग दिया। कांग्रेस गत ४५ वर्षोंसे बबूलमें आम की कलम लगाकर थक गयी, अब समाजवादी बगूले हँसकी चाल चलने चलेहैं। "शेख अबदुल्ला द्वारा भारतीय संविधानमें धारा ३७० जोड़नेकी मांग करने पर डॉ. अम्बेदकरने उन्हें अपने चेम्बरसे निकाल दिया था। दुर्भाग्यसे नेहरूजीके दबावपर उक्त धाराको जोड़ दिया गया और अबके अम्बेदकरवादी तो धारा ३७० की हिफाजतमें "कठमुल्लों" को भी पीछे छोड़ रहेहैं।

छठें अध्यायमें लच्छोको देशमें बार-बार होनेवाले साम्प्रदायिक दंगेसे लेकर कश्मीर तक की फिक्र सताती है। उसकी बुनियादमें झांकनेपर उसे उचित लगताहै कि जब मजहबके नामपर यह हुआ तो देश-विभाजनके समय ही पूरी आबादीका परिवर्तन हो जानाथा। उसके अनुसार-जिन्नाके "डायरेक्ट एक्शन" से जिस दंगेकी शुरुआत हुई, उससे देश टूटा। हिन्दुओंने खून का घूंट पीकर विभाजन स्वीकार कियाथा। कुर्सी-कामी कांग्रेसियोंने मुआवजा देकर मुसलमानोंको पाकिस्तान भेजा, पर बदलेमें वहांसे लाखों हिन्दू-लाशें ही यहां भेजी गयीं। हिन्दू युवाओंका तो सफाया वहीं होगया और तरुणियोंका सामूहिक निकाह भी। बचे-खुचे कुछ हजार हिन्दू आजभी वहां मुस्लिम-हिन्दू बनकर नारकीय जीवन भोग रहेहैं। हिन्दू बालाएँ उनकी अघोषित बीबियां बनकर जीतीहैं। इसपर अल्पसंख्यक या मानवाधिकारका सवाल क्यों नहीं उठता ? विश्वमें यदि कहीं मुसलमानोंको कुछ हुआ तो उसकी निष्ठुर कीमत देश-विदेशके केवल हिन्दुओं को ही अपनी गर्दन गँवाकर चुकानी पड़तीहै। ऐसे अनेक ज्वलन्त प्रश्नोंपर लेखककी निर्द्वन्द्व दृष्टि सटीक जान पड़ती है। लेखकके अनुसार कुर्सीके लालची हिन्दू नेता जिस प्रकार मुसलमानोंको एकमुख निर्दोष साबित कर हिन्दुओंको बार-बार लांछित और अपमानित

करते जा रहेहैं—यह अशुभ भविष्यका सूचक है। (पृ. ६०)। इस अध्यायमें धर्मनिरपेक्षता एवं सम्प्रदायवाद की जैसी व्याख्या ऐतिहासिक एवं साहित्यिक शैलीमें की गयीहै वह अपने आपमें अनूठी और स्पृहणीय है। लेखकके अनुसार हिन्दू तो स्वभावसे "सेक्युलर" और जन्मजात सहिष्णु होते ही हैं। उन्हें धर्म-निरपेक्षता समझानेकी क्या आवश्यकता है। ध्यातव्य पंक्ति है "यहां धर्मनिरपेक्षताकी आड़में आगको पानी बनानेके बजाय पानीको बर्फ बननेका उपदेश दिया जा रहाहै। वोटके लालची नेताओंके कारण ही साम्प्रदायिकताका रोग अब "कैंसर" बन चुकाहै और इलाज मलेरिया का चल रहाहै। वस्तुतः कांग्रेसी कम्युनिस्ट और समाजवादियोंके राजनीतिक दुष्कर्म और मुस्लिम-तुष्टीकरणकी कोखसे उपजीहै—"हिन्दू महासभा", "भाजपा" और "शिवसेना", वर्ना इनकी कोई आवश्यकता नहीं थी।" धर्म और सम्प्रदाय-संबंधी विवादपर भी लच्छोके विचार दो टूक हैं। उसके अनुसार—'धर्म मनुष्यपर जन्मगत संस्कार शैली और आभ्यन्तरिक चित्तवृत्तियोंको संतुलित करताहै। "रिलीजन' का वास्तविक अर्थ "सम्प्रदाय" है, धर्म नहीं। (पृ. ७७)। धर्मको सम्प्रदाय कहना तो पिताको पुत्र कहने जैसा शास्त्रीय अपराध है। राष्ट्रीय शिक्षा पाठ्क्रम भी मुगाई-ईसाई गुलामीकी छायासे ग्रस्त है। उसकी ज्वलन्त दृष्टिमें, अपने तेजस्वी चरितों (शंकर, शिवाजी, विवेकानन्द आदि) के समावेशसे इसे ऊर्जित करना श्रेयस्कर होगा।

सातवें अध्यायमें लच्छोके जीवनमें राजनीतिसे विलग आध्यात्मिक मोड़ प्रदर्शित है। यह अवस्था-सुलभ, सत्संग और वैचारिक परिपक्वताका जान पड़ताहै। उसे लगताहै कि अबतक का जीवन निरर्थक रहा (अब लौं नसानी, अब ना नसैहों)। अतः आगामी कुछ अवधि हरि-शरणमें बिताना श्रेयस्कर होगा। वैयक्तिक जीवनमें वैराग्य तो उसे शुरूसे था और पुत्र-कलत्रसे निराशा भी। सत्संग पाकर मनका भक्ति-बीज प्ररोहित हो उठा। उसे परोक्ष सत्ताका आन्तरिक आकर्षण मिला। आत्म-मूल्यांकनके पश्चात् परिष्कृत हृदयमें भक्तिका जागरण क्रमागत प्रक्रिया है। सो, लच्छोजी संसारसे विरक्त हो भगवत्प्रेममें पग गये। भारतके तीर्थोंका भ्रमण किया और अयोध्या आकर एक रामभक्त महात्मासे दीक्षित हो गये। अब उन्हें परमात्मा द्वारा जीवमात्रपर अहर्निश हो रही अनुकम्पाका आत्म-साक्षात्कार हुआहै। समाजवाद, साम्यवादकी नास्तिकता दिग्भ्रम प्रतीत हुई। घोर साम्यवादीको भी बन्द कोठरीमें नाम-जपकी माला फेरते देखा। उन्हें "कम्युनिज्म" विसंगतिपूर्ण ढोंग लगा और कांग्रेसियों, समाजवादियोंका "सेक्यूलरिज्म" कुर्सी हथियानेकी ताबीज। लच्छो मातृभक्त हैं। उनकी मातृभक्तिका वर्णन (पृ. ८३) अद्भुत है। लेखकके अनुसार माता-पितातो साक्षात् ईश्वर सदृश धरतीके अधिदेव हैं, तभी तो अन्य देशोंमें वृद्ध-सदन बने, पर भारतमें अबतक नहीं। यहाँ बूढ़ोंकी सेवा आज भी घरोंमें ही युवावर्ग करतेहैं। श्रवणकुमार यहीं हुए। उनका आर्यसमाजी सुधारक-संस्कार पुनः धर्मान्तरण चाहताहै, जो बलात् हिन्दू-से-मुसलमान या ईसाई बनाये गयेहों। पंडित अपना पाखण्ड छोड़ आत्मविस्तार करें तभी हिन्दू समाजमें उदारता, समरसता आ सकेगी। इसीसे समाज बंटा है। अब इसे जोड़ना है, तोड़ना नहीं। समाज टूटेगा तो देश टूटेगा। समाज जुड़ेगा तो देश जुड़ेगा।

पुस्तकके मुखपर चरणचिह्न अंकित होकर ऊपर "सीताराम" के विग्रह तक पहुंचे हैं और यही है—लेखकका अन्तिम पड़ाव भी। अतः शीर्षक अत्यन्त सटीक और सार्थक है। देश और समाजकी विभिन्न ज्वलन्त समस्याओंपर सारगर्भित लेखन हेतु लेखकको अनेकशः साधुवाद। तथापि, इतने निर्भीक और देशभक्तिपरक युवा लेखनमें भी यदि आजकी चुनावी राजनीतिके कारण सारे देशमें योग्यता और प्रतिभाकी बलि देकर जाति (और सम्प्रदाय) को दिये जा रहे सरकारी संरक्षणके विरुद्ध एक भी शब्द न लिखा जाये तो समझमें नहीं आता।

अन्ततः यह कृति व्यष्टिमें समष्टिका साक्षात्कार तो है ही।□

हिन्दी लेखिकाओंकी श्रेष्ठ कहानियां[1]

सम्पादक : योगेन्द्रकुमार लल्ला, श्रीकृष्ण
समीक्षिका : ऊषा सक्सेना

आज आख्यायिका एक निश्चित लक्ष्य यां प्रभाव को ध्यानमें रखकर लिखा गया नाटकीय आख्यान मात्र नहीं है, उसका क्षेत्र व्यापक हो गयाहै। उसमें आजके यांत्रिक व्यस्त जीवन, वर्ग संघर्ष, जीवनकी गहनतम अनुभूतियों, परिवर्तित परिवेशमें बदलती हुई मानसिकता, महानगरीय कृत्रिम वातावरण, यथार्थ जीवन की विकृतियों, भयावहताओं, त्रिसंगतियों, विषमताओंके साथही मानव मनके अन्तर्द्वन्द्वका सजीव चित्रण हुआ है। इस क्षेत्रमें लेखिकाओंने विलक्षण योगदान दियाहै। नये तेवर, नये आयाम, कथ्यकी विविधता, शिल्पगत वैशिष्ट्य, एवं ताजगी लिये हुए अठारह कहानियोंका यह संकलन अभिभूत कर जाताहै।

इन्दिरा मित्तल द्वारा लिखित कहानी "प्लीज हमें बेबी चाहिये" में बाल मनोविज्ञानका सूक्ष्म विश्लेषण हुआहै। कहानीके प्रमुख पात्र हैं नन्हें बच्चे रश्मि और मनु, जिन्हें अपने साथ खेलनेके लिए और साथी चाहिये। ऐसे साथी जो उनके अपने हों "हमने कहा भी एक दिन कि हमें रीनाकी तरह एक बेबी चाहिये—रीना गर्ल है ब्वायको हम बिन्नू कह लेंगें। हाय, वर्मा आंटीकी रीना कितनी चबी-चबी है। ममीसे कहा बेबी ब्रदर या सिस्टर चाहिये ला दीजिये। वे तो बस गुस्सा करना ही जानतीहैं।

आयासे तो हमने एक बार कहा भी कि भई तुम ही बेबी ले आओ न एक, वह तो टप-टप आंसू गिराने लगी।

"हमने नानीसे कहा कि वे ही हॉस्पिटल जाकर बेबी ले आयें" नानी एकदम घबरा गयी।

"ममीकी नहीं तो बस नहीं है। उन्हें बेबी लाना पसंद ही नहीं।

बच्चे निराश होकर समझौता कर लेतेहैं कि वे पपी ही पाल लेगें या गुड़िया ही ले लेंगे, तभी कहानी एक नया मोड़ लेतीहै। बच्चोंकी इच्छा फलवती होने वाली है यह जानकर जब सब बड़े लोगोंके चेहरोंपर प्रसन्नताकी लहर व्याप्त हो जातीहै तो उनका भोला मन कुछ नहीं समझ पाता, वे सोचतेहैं :

अब नानासे चिट्ठीमें पूछेंगें कि पापा ममी आया सबके सब इतने फनी क्यों हो गयेहैं ?

अत्यंत आधुनिक ढंगसे लिखी गयी इसे कहानीमें बच्चोंके मनोभावों, सपनों, आकांक्षाओं, विचारों एवं जिज्ञासु मनका सहज एवं स्वाभाविक चित्रांकन हुआ है—बच्चोंके संवाद मर्मस्पर्शी हैं।

कमला दत्तकी कहानी 'कीड़ा रेशमका' आजके कटु यथार्थका परिचय देतीहै। पुरुष स्त्री सम्बन्धोंको उजागर करती इस कहानीमें नारीकी सीमाओं और यौन आवर्जनाओंसे आक्रान्त पुरुषकी मन:स्थितिका स्पष्ट चित्रण हुआहै।

कृष्णा अग्निहोत्रीकी "गाउन" मध्यवर्गकी युवती की दमित आकांक्षाओंसे जूझते हुए अन्तर्द्वन्द्वकी सुन्दर कहानी है। कहानीकी नायिका मधु एक सामान्य परिवारकी बहू है जिसे परिवारका उत्तरदायित्व निबाहनेके लिए नौकरी करनी पड़तीहै एक दिन बाजारमें दुकानपर रखे हुए एक अत्यन्त सुन्दर गाउन को देखकर उसके मनमें उसे पहननेकी तीव्र ललक उठतीहै।

"खिस खिस···अंजनकी पतली झिरझिरी पंक्तियों की तरह फैलता हुआ शो केसका वह गाउन—जैसवान के फूलकी भांति झकझक करता लाल रंग।

---

1. प्रका. : राष्ट्रभाषा प्रकाशन, ५१८/६ बी, विश्वास-नगर, शाहदरा, दिल्ली-३२। पृष्ठ : १९०; डिमा. ९१; मूल्य : १००.०० रु.।

वह अहर्निशि उसीके सपने देखतीहै, उसीकी कल्पनाओंमें खोयी रहतीहै।

"वह गाउन पहनेगी, पहनेगी, पहनेगी।

इच्छा इतनी तीव्रतर हो उठतीहै कि एक रात वह स्वप्नमें गाउनके साथ डबल बेड, ड्रेसिंग टेबिल मेज कुर्सियां सभी कुछ खरीद लेतीहै और मादक सपनोंमें खोयी सुबह देर तक सोती रहतीहै, तभी सासका कर्कश स्वर गूंजताहै "क्यों महारानी साहिबा कबतक शयन फरमायेंगी" उठोगी।

सपने बिखर जातेहैं और प्रारम्भ हो जातीहै वही घिसी-पिटी जिन्दगी "गाउन पुन: हिलता रहा।"

दीप्ति खण्डेलवालकी कहानी "मूल्य" सामाजिक विद्रूपताओं और पीढ़ियोंके अन्तरालपर एक तीक्ष्ण व्यंग्य है। जीवनके मूल्य बदल जातेहैं। गांवके भोले-भाले पंडितका युवा पुत्र अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि से ही लज्जित है।

"ओ माई गॉड" पिताजी क्या हुलिया बनाये रहतेहैं आपभी! ढंगसे कपड़े तो पहना कीजिये। क्या आप लोगोंके लिए ठीक ढंगसे रहनेकी कोई वेल्यू नहीं।

आत्मप्रदर्शन, मिथ्या दंभ और नये मूल्योंकी परिणति होतीहै अपने ही एक विरोधी छात्र द्वारा उसकी मृत्यु—पुरानी वेल्यूजके नामपर रह जातेहैं वृद्ध माता पिता आजीवन रोने और तड़पनेके लिए।

निरुपमा सेवतीकी कहानी "बद्धमुष्टि" आर्थिक विषमताओंपर तीखा प्रहार है। आज जीविकोपार्जन हेतु नारीको कितने मुखौटे लगाकर कैसे कैसे व्यवसाय अपनाने पड़तेहैं। फाइव स्टार होटलकी रिसेप्शनिस्ट शुभाका जीवन एक समस्या बनकर ही रह गयाहै।

"जिन्दगीकी मारसे थककर ही तो नौकरीके बाजारमें नौकरी झपटने निकल पड़ीथी।

ऊपरसे सामान्य दिखनेवाली शुभा अन्तमें प्रतिशोधकी अग्नि लिये दिवास्वप्न देखतीहै कि उसने उन व्यक्तियोंकी हत्या कर दीहै जिन्होंने उसकी विवशता का अनुचित लाभ उठायाथा।

"मैं जकड़ देनेवाली मुट्ठियोंमें और कैद नहीं रह सकती, मैंने उन मुट्ठियोंको तोड़नेके लिए उनपर गोली चलादी।

कहीं-कहीं फन्तासीके माध्यमसे नारी मनकी कुंठा ग्रंथियोंका अत्यंत मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआहै।

"एक विद्रोह-व्यक्तिगत" नीता मुखर्जीकी इस कहानीकी नायिका डॉ. उर्मिला वसु मिथ्या प्रदर्शन, भ्रष्टाचार, सामाजिक व्यवस्था खोखली मान्यताओं से विद्रोह करतीहै। अस्पतालमें साधनोंके अभावमें छटपटाकर मरनेवाली नारीकी दयनीय स्थिति देखकर वह फुफकार उठतीहै। तीन आदमियोंको सस्पेंड कर देतीहै—सस्पेंशन आर्डर वापिस लेनेका दबाव पड़नेपर कहतीहै :

"मरनेवाली अगर बेटी होती तोभी आप ऐसा कहते?

परिणामत: "दूसरे ही दिन उसके तबादलेका हुक्म लेकर टेलीग्राम आया।"

वह अपने आदर्शसे नहीं गिरती, दंड उसे स्वीकार हैं। कोई उसे अपनाना चाहे तोभी उसे स्वीकार नहीं।

"नहीं चाहिये उसे कुछ नहीं चाहिये इस व्यवस्था से इस समाजसे इस दुनियांसे वह कुछ नहीं लेगी—न वर्तमान न भविष्य।

मृणाल पांडेकी 'दरम्यान' कहानीमें प्रवासी भारतीय नवयुवकके अन्तर्द्वन्द्वका सामाजिक चित्रण हुआहै आर्थिक समस्याओंसे बोझिल मनुष्य अनिच्छासे जीवन जीनेको कैसे विवश हो जाताहै? जबभी वह अपमानभरा प्रवासी जीवन पर फैलकर हिन्दुस्तान लौटना चाहताहै तो पुश्तैनी घरकी जीर्णशीर्ण दीवारें, दो अनब्याही बहनें और घरके कर्जकी माहवारी किश्तोंकी स्मृति उसे पुन: आहत कर जातीहै और वह उसी घुटनभरे वातावरणमें जीनेको बाध्य हो जाताहै।

जीवनके कटु यथार्थका बोध कराती मृदुला गर्गकी कहानी "दुनियांका कायदा" आजके समाजका एक जीवन्त चित्र है। नारीके विविध रूप पाठकोंके मनमें अनेक प्रश्न चिह्न छोड़ जातेहैं।

नारी मनके सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्पंदनोंका चित्रण करने वाली कथाकार मालती जोशीकी कहानी "एक और देवदास" प्रेयसी, प्रियतमके मादक प्रणय संबंधोंको उजागर करते हुए जीवनके वास्तविक सत्यको अनावृत करतीहै। छात्रावासकी मेट्रन मिस गीता देसाई उन्तीस वर्ष पूर्वके विद्यार्थी जीवनके मधुर स्वप्निल क्षणोंकी स्मृतिके अवशेष अपने प्रणयी प्रकाश बाजपेयीके कुछ

पत्रोंको आजभी संजोकर रखे हुएहैं और एकाकी क्षणों में उन्हें बार बार पढ़तीहै—वर्षों बाद प्रकाश अपनी पुत्रीको उसके छात्रावासमें लेकर आताहै क्योंकि उसकी पत्नी दिवंगत हो चुकीहै। अवचेतन मनमें दबा हुआ प्यारका पौधा एक बार पुनः लहलहाना चाहताहै तो सहसा ही भरभरा कर गिर जाताहै। उसका पूर्व प्रेमी उसे किसी डॉ. इन्दू मखीजासे अपने पुनर्विवाह की सूचना देताहै तो वह स्तब्ध रह जातीहै। उसकी सहानुभूति अपने प्रेमीकी दिवंगत पत्नीसे हो जातीहै।

"इतने वर्षों तक रूप और यौवनका अर्घ्य देकर भी जो पतिको नहीं बांध पायीथी वह किस विश्वासके सहारे मौतसे संघर्ष करती चली गयी बेचारी और वह आदमी उन्नीस वर्षोंके भरे पूरे विवाहित जीवनकी स्मृतिको पत्नीके साथ ही चितापर चढ़ा आया। इधर मैं कालिजके उन मुट्ठी भर स्वप्निल क्षणोंपर ही अभिमान किये बैठी रही। गीताके स्वप्न बिखर जाते हैं, कल्पनाएं विशृंखलित हो जातीहैं। शरत बाबूके देवदासकी मूर्ति जैसे खंडित हो जातीहै और गीता सोचतीहै "पुरुष मात्र एक पुरुष है न प्रणयी है और न पति।

प्रकृतिके सुन्दर बिम्बोंसे प्रारम्भ, लोकप्रिय कहानीकार मेहरुनिसां परवेजकी कहानी "हत्या एक दोपहर की" नारीकी अस्मिताके प्रतिष्ठापन और स्वाभिमान का सुन्दर चित्र है। नायिका नूपुरको जीवनके सही मूल्योंकी खोजनेकी चाह है। असमय ही वैधव्यका अपार दुःख झेलते हुएभी वह जीवनसे पराभूत नहीं होती अपितु कृतसंकल्प हो नया जीवन जीनेका निर्णय ले लेतीहै।

"वह किसी औरके लिए नहीं जियेगी झूठे आश्वासनोंके धोखेमें, भुलावेमें वह नहीं आयेगी। उसका बेटा जो अब बड़ा हो गयाहै उसे उंगली पकड़कर रास्ता पार करा देगा।

संकलनकी लगभग सभी कहानियां किसी-न-किसी स्थिति, मनोवेगको लेकर लिखी गयीहैं और मानव मनःस्थितिको पर्त-दर-पर्त उकेरतीहै—सूर्यबालाकी कहानी "रेस" में महानगरीय उच्चस्तरीय वर्गका यथार्थ चित्र अंकित हुआहै। जीवन महत्त्वाकांक्षोंकी रेस ही तो है। सामान्यसे उच्च और उच्चसे उच्चतर वर्गमें प्रतिष्ठा पाने हेतु मानव अविराम भागता ही रहताहै। कहानीका प्रमुख पात्र सुधीर जीवनकी इसी रेसमें अविराम भागते हुए अपनी पत्नी, पुत्र यहांतक कि स्वयं अपने आपको भी विस्मृत कर देताहै। वह यह समझना भी नहीं चाहता कि वह हृदय रोगी है पत्नी राशी हर पल हर क्षण चिन्तित रहतीहै।

"कब कैसे धीमे-धीमे यह आत्मतुष्टि, अहं-तुष्टिका साधन बन गयी, राशी जान न सकी। वहां उग आया था अहंतुष्टिमें गदराया दिन दूना रात चौगुना बढ़ता हुआ महत्त्वाकांक्षाका पौधा।

राशीको समझाते हुए सुधीर कहताहै कि "तुम समझती क्यों नहीं राशी, मैं रेसमें हूं पिछड़ नहीं सकता। बस किसी तरह यह सीनियर रैंक ले लेता फिर तो टेंशन खत्म।

अथक परिश्रम, स्वास्थ्यकी उदासीनता, सीनियर रैंक लेनेकी अदम्य इच्छा और अनवरत रेसकी प्रतिक्रिया स्वरूप सुधीरको मिलतीहै आकस्मिक मृत्यु। प्रारम्भसे अंततक कहानीमें लेखिकाने समाजमें महत्त्वाकांक्षाके घातक बनते हुए पौधोंका यथातथ्य अंकन कियाहै।

जीवनके अनेक अनदेखे पहलुओंका गहनतासे स्पर्श करता हुआ घनेरे अनुभवोंसे युक्त नये आयाम और बदलते संदर्भोंको शिल्पके नूतन उपकरणों द्वारा व्यक्त करता हुआ यह कहानी संग्रह आजके कथा साहित्यमें अपना अन्यतम स्थान रखताहै। जीवनके प्रति विशिष्ट दृष्टि अनुभूति और अभिव्यक्तिके नये मानदंडोंसे युक्त इस संग्रहकी कहानियां मुक्त कंठसे सराहनीय हैं। □

आंगनसे भी छोटा आसमान[1]

कथाकार : कौशलेन्द्र पाण्डेय
समीक्षक : राजेन्द्र परदेशी

कौशलेन्द्र पाण्डेयका कहानी संग्रह 'आंगनसे भी छोटा आसमान' प्रकाशनके क्रममें नहीं बल्कि अपनी संवेदनात्मक कथ्य और जीवनकी यथार्थ अभिव्यक्ति के कारण विचारणीय है। कथायात्री पाण्डेयजीने जीवनकी यात्राको कथायात्रामें देखाहै इसलिए उनकी कहानियोंमें न तो ओढ़ी हुयी भावुकता है और न ही

---

१. प्रका.: वर्तिका प्रकाशन, सी-१३/१ पेपर मिल कालोनी, लखनऊ। मूल्य : १००.०० रु.।

भावका मात्र प्रवाह, कथाको कथात्मक बनानेमें उनका 'हूं' उसमें जीवित है, भाषा घटनाको दो फांक कर देतीहै और एक साफगोई भीतरसे बाहर आतीहै। आसमानके असंख्य तारे आंगनसे देखनेकी ललक जब कहानियोंमें उतरतीहै तो वह इक्कीस दानेमें—अकंचन, अलपटें, आंगनसे भी छोटा आसमान, आजाद, गति, चन्द्रिका बाबू, चोट, तीसरी सुईका सर्वनाम, पंखहीन, प्यासा एक झरना, बर्थ नम्बर २७, बोध, मकसद, मटमैले बादलोंमें उलझा हुआ चांद, यकीन, लम्हा-लम्हा जिन्दगी, वह सूरज नहीं, विकल्प, शहादत एक कैजुअल लीवकी, सूखा, संवेदनामें बिखर जातीहै, मनुष्य जब पंछी बन जाये या मन जब यायावर हो जाये तो एक अनवरत जीवन यात्राका क्रम उभरता चलताहै, कविताकी यात्रा जब कथायात्रा होतीहै तो बुनावटकी चित्रकारी बढ़ जातीहै।

कथ्य, शिल्प, भाषा जहां संस्कारित है वहां जिन्दगीकी बहुकोणी पहचान इस संग्रहकी सफलताके कारण भी हैं। आज आदमीसे खास आदमी तक, स्त्री पुरुषकी भिन्नता क्या है, इसकी पहचान हम कैसे करें—यह सब कुछ पहचान कराती चलतीहै इस संग्रहकी कहानियां, सम्बन्धोंकी सीवनको तोड़कर घावको ताजा करतीहै, पाठकको बांधतीहै, पिछले मूल्योंको तोड़तीहैं और देतीहै ऐसी कुछ खुशबू जिसकी गंधसे मन बेचैन हो जाताहै। मेरा आग्रह कौशलेन्द्र पाण्डेयको किसी बुजुर्ग कथाकारकी बगलमें बिठाकर जुगाली करनेका नहीं, बल्कि इस विश्वासके साथ इन कहानियोंके भीतर से गुजरनाहै कि सवालिया संवाद हमें कहां ले जाते हैं ? कहां विराम देतेहैं ? और एक अन्तहीन रास्तेकी ओर जानेकी ललक कैसे मनपर पसर जातीहै···इन सभी शंकाओं-आशंकाओंको मिटानेके लिए छोटेसे आंगनमें बोये हुए इक्कीस कहानीके फूल किसी एक जातिके नहीं हैं।

कहानियोंको वर्णके क्रममें और जीवनको एक मुट्ठीमें बांधे हुए बालूके रेतकी मुट्ठी निश्चित रूपसे रिसतीहै, बूंदमें नहीं धारमें, अकंचन, अलपटें, आंगनसे भी छोटा आसमान और आजाद कहानियां कला और जीवनकी एक संगतमें हैं, जिज्ञासाके तराजूमें पठनीय सरसता, खुरदरी नहीं है। घटनाको शब्द देना और यथार्थको पाठकके भीतर तक उतारना कथाकी सही प्राणवत्ता बन उठीहै। 'पंखहीन' कहानीके स्नेह का संवाद, 'लहरकी भांति मैं तुम्हारे हृदयपर मचलती रहना चाहतीहूं, धरतीकी भांति बंधी रहना नहीं··' तुम स्वयं बोलो अजय, घोंसलेमें बैठी हुई चिड़ियाकी तुलनामें क्या वह अधिक आनन्दित नहीं जो रह-रहकर उड़तीहै ऊपरकी ओर और जितना वह उठतीहै, आकाश भी उतनाही उसी गतिसे उठता जाताहै। 'आजाद' की सुखिया और मास्टरमें प्रेमकी उपलब्धिके वाद वैधव्यकी मर्मान्तिक पीड़ा है। सुखिया चबूतरेसे उठकर चौखटके अन्दर गयी, दीवारपर धरे हुए दीये को टटोला तो कुछ भी नहीं था, उसमें न तेल न बाती। माचिस भी प्राणहीन···खामोश लेटी रही। लग रहा घर बाहर भरा हुआ सारा अन्धकार उसकी आंखोंके अंतरिक्षके भीतर अंतरिक्षमें बड़ी तेजीसे समाया जा रहाहै। अन्तिम वाक्य संवेदनाको चरम स्थितिका बोध है—'घरकी दीवारों चौखट और चबूतरोंसे कोई सरोकार नहीं था उसका', 'आंगनसे भी छोटा आसमान' इस कहानी संग्रहका शीर्षक और सारी कहानियों के रचना-बिन्दुका संकेत भी। इन संवेदनात्मक कहानियोंमें काव्यकी धार रिसती रहतीहै। इसलिए कहानी कविताका रूप धारण कर लेतीहै, जैसे कुम्हार चाकपर कई खिलौने बनाकर संतोषका अनुभव करताहै, ठीक वैसे कहानियां जीवनकी अनेक पर्तोंको खोलतीहैं और दे जातीहैं अनेक कड़वे-मीठे और खट्टे अनुभव। यह जीवन एक आंगन है अहंका पराभव और यथार्थका बोध—मुझे अनुभव हुआ कि यह आकाशसे निकली हुई एक ऐसी किरण हैं जो मुझसे बहुत लम्बी है क्योंकि वह आदमियतके गली-गलियारोंको रोशन करतीहै।

जीवन संघर्ष और मानवके यथार्थसे जुड़ी इस संग्रहकी कहानियां प्रसादकी भांति भले ही संवेदनाको अधिक महत्त्व देतीहों किन्तु बिखरे हुए चुनौतीसे भरे हुए जीवनके अधिक निकट हैं। रचनाकार मूलतः कवि है इसलिए बचनवक्रताके साथ सरसता सहज छनती चलतीहै। इस संग्रहकी सभी कहानियां विश्वसनीयताको पुष्ट करतीहैं और फूलकी सुगन्ध भी देतीहै। यकीन, सूखा, वह सूरज नहीं में बिम्बात्मक संकेतोंमें प्रकृतिकी मनोरम स्थिति है। केवल कथा कहना उनका उद्देश्य नहीं बल्कि कथाको सार्थक करनेके लिए उन सभी तत्त्वोंका सहारा लियाहै जिससे उनकी सफलताएं कोई बाधा नहीं आती। कहानियां छोटी हैं किन्तु प्रभाव वातावरण और संवेदनाके विस्तारके कारण सुरुचि-पूर्ण

है। उनमें सागरकी लहरोंका उफान है और [illegible] कभी लटके-झटकेमें कहीं-न-कहीं बराबर जीवित रहते हैं। ये कहानियाँ आँगनकी हैं जीवनके आँगनकी हैं, उन्हें बांधकर अनुभव करते रहना उनकी नियति है।☐

उन्माद[1]

लेखिका : कमलेश सिन्हा

समीक्षिका : डॉ. राधा दीक्षित

समीक्ष्य कहानी-संग्रहमें जीवनके विविध पहलुओं से संबंधित नौ कहानियां हैं। प्राक्कथन और कहानियों से ध्वनित होताहै कि लेखिकाकी प्राचीन नैतिक मूल्यों में आस्था है। उसकी चिन्ता है कि नयी कड़ियोंके स्थापित होनेसे पहले ही पुरानी कड़ियोंका विच्छेद कर दिया जाताहै। लेखिकाका विचार है कि व्यक्ति और समाजकी सर्वांगीण उन्नति तभी संभव है जब नये और पुराने विचारों और मूल्योंमें समुचित समन्वय हो।

कहानियोंकी भाषा प्रवाहमयी है। सरल, रोचक गतिशील वाक्योंमें लय भी। कथ्यको विस्तार देनेमें वातावरण सृजनमें लेखिकाने अपनी बहुज्ञताका सहज और सुन्दर प्रयोग कियाहै। जहां अवसर मिला लेखिका ने पात्रके माध्यमसे अथवा वातावरण-निर्माणकी पूर्व-पीठिकाके रूपमें अपने विचारोंका उल्लेख कियाहै। पुरातन कथा प्रसंगों और सन्दर्भोंका कहानियोंमें सहज वर्णन है। लेखिकाकी भावों और उद्वेगोंकी सहज पकड़ है, जिससे चरित्र जीवंत हो उठतेहैं। स्थान-स्थानपर प्रयुक्त उपमान प्रभावित करतेहैं। कुछ वाक्य तो सूक्ति रूप ग्रहण कर लेतेहैं।

प्रथम कहानी 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' प्रबुद्ध, रूपवती प्रोफेसर राधिकाकी कथा है, जिसका विवाह आर्थिक विषमताके कारण मनपसन्द समानगुणधर्मी सत्पात्र युवकसे नहीं होपाता, एक चिकित्सक डॉ. सेनगुप्तासे होताहै। बादमें पता चलताहै कि चिकित्सकका पहले ही विवाह हो चुकाहै और उसके बच्चे भी हैं। वह [illegible] टूट जाती है। राधिकाके टूटन और भावनात्मक मनः स्थितिका लाभ उठाकर नजीर नामक एक कलाकार उसे अपने मोहजालमें आबद्ध कर लेताहै। दोनोंका विवाह हो जाताहै। नजीरका प्रेम छलावा निकलता है। उसके पारिवारिक जन राधिकापर दबाव डालते हैं कि वह अपना धर्मान्तरण कर ले और अपनी पुरानी मान्यताओंका परित्याग करदे। अंततः एक दिन अपने बच्चेको लेकर वह घर छोड़ देतीहै और वृन्दावनमें शरण लेतीहै। कहानी चरित्र-चित्रण और भावाभिव्यक्ति की दृष्टिसे तो ठीक है, परन्तु प्रारंभिक भाग कहानी पर पेबन्दसा लगताहै।

'कोहरा' कहानी भी स्त्री-शोषणसे संबंधित है। इसकी नायिका सुरजीत अपनी पुरानी किरायेदारिन मालिनीको सार्वजनिक बस-स्टापपर विभिन्न प्रकार से प्रताड़ित करतीहै क्योंकि उसके सम्बन्ध उसके पतिसे थे। पर जब मालिनी उसे उसके पतिके द्वारा किये छल-छद्मके बारेमें बतातीहै तो वह उसे निर्दोष मान लेती है और क्षमा कर देतीहै।

संग्रहकी तीसरी कहानी 'जीवन झूला' एक उत्कृष्ट कहानी है। इसमें एक अत्यन्त निर्धन बालकको परिश्रमके बलपर सफल होकर कलक्टरके पदपर पहुंचते दिखाया गयाहै। परिश्रम, सादगी और भ्रातृ-पितृ प्रेम का सन्देश देती हुई यह एक हृदयग्राही कहानी है। 'टूटे-बिखरे स्वप्न' निरन्तर टूटते जा रहे मूल्योंकी कहानी है। नायिका विद्याकी बारात आतीहै कि उसके अधिकारी पिताका अचानक अवसान हो जाता है। विवाह-सम्बन्ध टूट जाताहै। वर उसी दिन विद्या की मौसीकी लड़कीसे बिवाह कर लेताहै। पिताके असामयिक निधनकी दुर्घटना नैतिकताको तार-तार कर देतीहै। बादमें विद्याको अपने पिताके कार्यालयमें निम्न श्रेणी लिपिकका पद मिल जाताहै। सरकारी तन्त्रके छिन्न-भिन्न होनेपर स्वार्थ और हृदयहीनता किस प्रकार अपना दोमुंहा फन तान देतीहै, उसका सजीव चित्रण इस कहानीमें हुआहै पर कहानीकी कुछ नाटकीय घटनाएं असंगत लगतीहैं।

'प्रतिशोध' नीता और शीला नामक युवतियोंकी कहानी है जो रूपवती और गुणवती तो हैं पर भौतिकतासे आक्रांत हैं। बादमें उनका मोहभंग होताहै। दोनोंकी कहानियां अलग-अलग चलतीहैं जिससे कहानी सुगठित नहीं लगती और कहानी 'टू-इन-वन' लगतीहै।

१. प्रका. : भवन प्रकाशन, १/२० महरौली, नयी दिल्ली-११००३०। पृष्ठ : ११५; क्रा. ९३; मूल्य : ४५.०० रु.।

'उन्माद' एक भारतीय इन्जीनियर राघवेन्द्रकी कहानी है जो मिस्रकी राजधानी कैरो (काहिरा)में अपनी प्रतिभाका लोहा मनवाताहै। एक दिन कारखाने की स्वचालित मशीनके गिरनेसे वह दुर्घटनाग्रस्त हो जाता है। उसका एक पैर काटना पड़ताहै। इस विभीषिकाके बाद वहां वह दयाका पात्र बन जाताहै। उसकी प्रतिभा वहांके लोगोंके लिए अतीतका अंग बन जातीहै। यह स्थिति उसे तथा उसके परिवारको अच्छी नहीं लगती। वह भारत लौट आताहै। उसे एक प्रतिष्ठापूर्ण नौकरी मिल जाती है। यहां अपना दु:ख दर्द लोगोंको बांटते देखकर राघवेन्द्र तथा उसकी पत्नी अपने सारे दु:खोंको भूल जातेहैं। यह संग्रहकी उत्कृष्ट कहानी है और इसीलिए कहानी-संग्रहके शीर्षक के सर्वथा उपयुक्त है।

'नीड़' की कथानायिका जसोदाने अपनी कर्कशा सासकी सेवा धैर्य और सहनशीलताके साथ कीथी। वही जसोदा आगे चलकर अपनी विदुषी और डॉक्टर बहूके प्रति कठोरताकी सीमा तक कटु व्यवहार करती है। बहूकी वास्तविक अस्वस्थताको वह 'बहाने गढ़ने' का रूप देतीहै। लाचार होकर बड़ा लड़का बहूको लेकर बम्बई चला जाताहै और वहीं बसनेका निश्चय करताहै। झूठे अहं और बहकावोंमें हंसता-खेलता परिवार कैसे नष्ट हो जाताहै, उसका चित्रण कहानी में है।

'पाषाण' एक ऐसे प्रेमी युगलकी कहानी है, जिसमें नायक रहीमखान अपनी सरल-निश्छल पत्नी, जो दूसरे धर्मकी है, को छल-कपटसे आग लगाकर मार डालताहै। अन्तिम कहानी 'दीदी' में अद्भुत रूप-लावण्य, मधुर कण्ठ और भावुक कवयित्री रूपके कारण विवाहिता कथा-नायिका शिल्पजाके आसपास प्रेमी भंवरे मडराते रहतेहैं। नायिका अपने परिवारपर ध्यान नहीं देती। जब उसकी एक पुत्री युवती होने पर उसके ही रास्तेपर चलने लगतीहै, तो उसकी आंखें खुलतीहैं पर तबतक बहुत देर हो चुकी होतीहै।

सामान्यत: कहानी-संग्रह पठनीय है। लेखिकामें कहानी लेखनकी संभावनाएं हैं। □

व्यंग्य-विनोद

जादूकी सरकार[1]

लेखक : शरद जोशी (स्व.)

समीक्षक : डॉ. भानुदेव शुक्ल

जितने उतार-चढ़ाव हिन्दी-व्यंग्यने झेलेहैं वैसे उतार-चढ़ाव हिन्दी साहित्यकी किसी अन्य विधाके हिस्सेमें नहीं आयेहैं। एक शताब्दीसे कुछ ऊपरकी यात्रामें आधी शताब्दीके लगभग यह गहरे विश्राममें रहा जबकि प्रारम्भमें तथा पिछले लगभग चार दशकमें यह अत्यन्त, कभी-कभी अतिरिक्त, सक्रिय रहाहै। बीच का विश्राम काल वास्तवमें संन्यासका काल था। व्यंग्य की इस सक्रियता अथवा समाधिके कारणोंको तलाशें तो हमको देशकी राजनीतिक गतिविधियोंके स्वर्णिम अथवा कलुषित रूप दिखायी देने लगतेहैं।

छापेखानेने गद्यको विकसित किया और गद्यने सामाजिक एवं राजनीतिक यथार्थोंको रचनाका मुख्य आधार बनाया। हिन्दी गद्यके उदयकालमें, भारतेन्दुयुग में, देशकी सामाजिक एवं राजनीतिक चेतनाको पोषित करनेके लिए कोई राजनीतिक दल नहीं था। लोकमान्य

1. प्रका. : राजपाल एंड संस, दिल्ली-६। पृष्ठ : १४४; डिमा. ९३; मूल्य : ७०.०० रु.।

तिलकने अखिल भारतीय कांग्रेसको यह दायित्व संपन्न करने योग्य बनाया। हिन्दी व्यंग्य लेखकोंने ऐसाही अनुभव किया कि उनके कार्यको अधिक सामर्थ्यके साथ सम्पन्न करनेवाले निष्ठावान् राजनेता जनताको जागृत करनेके लिए पूर्ण समर्पण भावसे संलग्न हुए, उन्होंने व्यंग्य रचनाके स्थानपर अनुभूतिपूर्ण साहित्य-रचनामें अधिक ध्यान देना उचित समझा। व्यंग्य मानों शिव-समाधिमें चला गया।

देश पराधीनतासे मुक्त हुआ। रातके अंधकारमें मिले अधिकार लेकर राजनेता विदेशियोंसे भी अधिक भूखे भेड़ियोंके समान देशको चीथनेमें जुट गये। अंधकार अधिक घना होता गया। साहित्यकारको पुनः लेखनीको इन देशद्रोहियोंके विरुद्ध हथियार बनाना पड़ा। फिरसे व्यंग्य जागृत हुआ। परिस्थितियोंकी विषमताओंके अनुरूप अबकी व्यंग्यको अधिक प्रखर बनना पड़ा। स्वार्थोंके अभेद्य कबचोंसे आच्छादित व्यक्तियोंके मर्मको भेदना तो संभव नहीं किन्तु व्यंग्य लेखक जन-जागृति द्वारा ही अपने लक्ष्यको पा सकता है। यही वह कर भी रहाहै।

स्पष्ट है कि व्यंग्य सामाजिक-सोद्देश्यतामें ही सार्थकता प्राप्त करताहै। इसका यह अर्थ भी नहीं हैं कि सामाजिक प्रश्नोंको सपाट-बयानीके साथ प्रस्तुत किया गया। सपाट-बयानी कभी भी प्रभावशाली नहीं होती। कलात्मक अभिव्यक्ति रचनाको शक्ति प्रदान करतीहै। किन्तु, यदि व्यंग्यकार अपनी वर्ण्य-वस्तुसे ध्यान हटाकर कलात्मक अभिव्यक्तिमें उलझने लगताहै तो निश्चय ही वह अपने लक्ष्यसे दूर हटने लगताहै। तब पाठकको लगने लगताहै कि रचना आन्तरिक दबावसे मजबूर होकर नहीं प्रस्तुत की गयी। भाषाके चमत्कारसे वह चमत्कृत अवश्य होताहै, सोचनेकी सामग्री न मिलनेके कारण शीघ्र ही रचनाको भूलने भी लगताहै। ऐसा व्यंग्य उस जड़ाऊ तलवारकी तरह होताहै जो अन्दरसे कच्चे लोहेकी एवं भोथरी होतीहै। दूसरी ओर, वर्ण्य वस्तुको यदि सैद्धान्तिक आवरणमें बुरी तरह लपेटकर प्रस्तुत किया जाये तो भी व्यंग्य धारहीन हो जाताहै। राजनीतिक सिद्धान्त आधार-भूमि तो देतेहैं किन्तु वे हमारी दृष्टियोंको सीमित कर देतेहैं। साहित्यकार यदि ऐसी सीमित दृष्टिको लेकर चलताहै तो वह अपने और पाठकके बीच सैद्धान्तिक परदा डाले रखताहै। न वह पाठकको अच्छेसे देख पाताहै और न पाठक ही इस परदेके पीछेके संवेदन-शील सत्यको भली प्रकार देख पाताहै।

दुर्भाग्यसे हिन्दीके दो प्रमुखतम व्यंग्यकार—हरिशंकर परसाई तथा शरद जोशी—प्रतिबद्धताके परदे तथा रूपवादी अवगुण्ठनमें कई बार छिपे रहेहैं। यहां शरद जोशीके लेखनपर ही विचार अपेक्षित है।

× × ×

'जादूकी सरकार' में शरद जोशीके सैंतालीस लेख तथा दस छोटी-छोटी कहानियां संकलित हैं। कुछ लेख काव्य-मंचोंपर पढ़े जानेके विचारसे रचे गये हैं। इनमें छोटे-छोटे वाक्य हैं जो नाटकीय ढंगसे पढ़े जा सकतेहैं। 'हैं भी, मगर नहीं हैं' का शरद जोशी द्वारा किया गया पाठ हमने दूरदर्शनपर सुना-देखाहै। इस पाठकी सफलताका एक प्रमुख कारण जोशीका कुशल पाठ भी था। इन लेखोंमें विपरीत बातोंको युग्मके रूपमें नत्थी किया गयाहै। अनेक लेख कथात्मक हैं तथा संवादात्मक शैलीमें रचे गयेहैं। 'जिसके हम मामा हैं', 'आम आदमीकी पहचान', 'नाई-नाई कितने बाल, सामने आयेंगे श्रीमान्', 'गिरफ्तारी', 'सरकारका जादू, जादूकी सरकार', 'अपनी-अपनी मछली: एक काल्पनिक संवाद' 'पानीकी समस्या', 'संशयकी एक रात' तथा अंशतः संवादात्मक लेख 'समस्या सुलझानेमें बुद्धिजीवीका योगदान' संवादोंमें रचे कथात्मक लेख हैं। केवल संवाद रचना 'भारतीय पतियोंके हिलने-डुलनेकी स्वतंत्रताके संघर्षका एक गौरवशाली अध्याय: आसनसोल' अपने प्रकारकी इकलौती रचना है। शेष लेखोंमें सामान्य स्वीकृत शैलियोंके प्रयोग मिलतेहैं।

शरद जोशी प्रखर-लेखनीके धनी लेखकके रूपमें प्रतिष्ठित है। आलोच्य संकलनके कमसे कम एक तिहाई लेख ऐसे नहीं हैं। समस्याओंके प्रति कम संपृक्त तथा शब्दोंकी बाजीगरीकी ओर झुकाव वाले लेख हैं—'नेतृत्वकी ताकत', 'इक्कीसवीं शताब्दी', 'अपनी-अपनी मछली: एक काल्पनिक संवाद', 'संशय की एक रात', 'टीम अनाथ और साथमें विश्वनाथ', 'भारत एक कृषिप्रधान देश', 'चोरी चोरी ज्ञान', 'हीरोइन नहा रहीथी', 'हमारा मध्यप्रदेश उर्फ नयी मध्यप्रदेश गाइड', 'कहहु लिखि कागद कोरे', 'अर्थ तेरे कई अर्थ', 'उनको मिली कोल्हापुरे, हमको मिली कोल्हापुरी', 'समस्या सुलझानेमें बुद्धिजीवींका योग-दान', 'भारतीय पतियोंके हिलने-डुलनेकी स्वतंत्रता

...', 'प्रेमपत्र : राष्ट्रभाषाके सन्दर्भमें', 'बोफोर्स शब्द अनेकार्थी है', 'गावस्करने रिकार्ड तोड़ा' आदि।

इन रचनाओंमें पाठकको चमत्कृत करनेकी चेष्टाएं होनेसे व्यंग्यके सहज आवेग बहुत क्षीण हो गयेहैं। कहनेके अन्दाजसे निबंध हैं तो रोचक, किन्तु ये हमें प्रेरित नहीं कर पाते। क्रिकेटके प्रति या तो जोशीजीका विशेष झुकाव रहाहै या भारतीय दर्शकोंके क्रिकेट-प्रेमके दीवानेपनको देखकर प्रेरणा मिलीहो, भारतीय क्रिकेटके कुछ वर्ष पहलेके दो आधार-स्तम्भों—विश्वनाथ एवं गावस्करपर उन्होंने दो लेखोंमें बाउन्सर फेंकेहै जो निर्जीव पिचपर अत्यन्त श्रेष्ठ बल्लेबाजोंपर किया गया कमजोर हमला है। 'हीरोइन नहा रहीथी' काफी कुछ दिशाहीन विनोदपूर्ण रचना है। ऐसीही कम विनोदपूर्ण रचना है 'उनको मिली कोल्हापुरे'।

शब्दजाल फेंकनेके कुछ उदाहरण भी प्रस्तुत हैं—

"मध्यप्रदेश संबंधी सारी किताबोंमें मैंने पढ़ा कि यहां ऊंचे पहाड़ हैं। हमारे पहाड़ उन पहाड़ोंमें से नहीं जो ऊंचे नहीं होते बल्कि गहरे एकदम जमीनके अन्दर धंसे या समतल होतेहैं। हमारे मध्यप्रदेशके पहाड़ ऊंचे हैं। दूसरी बात है नदियां। हमारे यहां पहाड़ोंके अलावा नदियां भी हैं। ये नदियां पहाड़ोंसे निकलतीहैं और मैदानोंमें बहतीहैं। यह कितने संतोषकी बात है और ऊपरवालेकी कृपा है कि वे मैदानसे निकलकर पहाड़ोंपर तो नहीं बहतीं।"

"हिन्दुस्तानकी आजादीको सैंतीस साल बीत गये। इसमें हम क्या कर सकतेहैं और कोई क्या कर सकता है। जिस बातको सैंतीस साल हो जातेहैं उस बातके सैंतीस साल हो जातेहैं। पचास साल हो जाते तो पचास साल हो जाते। देश वही है और वही रहेगा। उत्तरमें हिमालय, दक्षिणमें समुद्र। पेकबंद, चाकचौबंद, भूलचूक लेनी-देनी। इतना बड़ा देश है, थोड़ा-बहुत कम-ज्यादा हो जाये तो क्या फर्क पड़ताहै? खुशीकी बात यह है कि देश, देश है।"

अन्दरके दबावमें मजबूर होकर लिखनेवालेको इतनी फुरसत कहां कि वह अपनी बातको पानके बीड़ेकी तरह दबाकर जुगाली करने लग जाये। सोद्देश्य व्यंग्यका यह रूप नहीं है। इसे पढ़कर तो लगताहैं कि लेखकके पास कथ्यकी पूंजी कम है इसीलिए वह शब्दोंकी मोटी पैकिंगमें लपेट रहाहै। इन लेखोंमें शरद जोशीके प्रारम्भिक लेखोंकी ऊर्जा कम है। तबभी इन लेखोंमें भी सपाट-बयानीसे अधिक आकर्षण है। परसाईजीके पिछले वर्षोंके लेखनसे जोशीजीके ये लेख भी अधिक आकर्षित करतेहैं और एक सीमित प्रभाव भी छोड़तेहैं। ये वक्तव्य मात्र तो नहीं हैं। कभी-कभी लगताहै कि लम्बे समय तक व्यंग्य-रचना तक सीमित रहनेवाला लेखक चुकने लग जाताहै। अधिक लिखनेपर लेखक मुहावरोंमें पुनरावृत्ति करने लगताहै और अंदरकी आग राखके ढेरमें बदलने लगतीहै।

संकलनके व्यवस्थित चिन्तन तथा सुनिश्चित उद्देश्यवाले लेखोंमें प्रमुख हैं—'जिसके हम मामा हैं', 'आम आदमीकी पहचान', 'गिरफ्तारी', 'इक्कीसवीं सदी', 'यदि जसलोक सरकारी अस्पताल होता', 'सरकारका जादू, जादूकी सरकार', 'पानीकी समस्या', 'बड़ी प्रगति की देशने', 'उधारका अनन्त आकाश', 'शुद्धताकी खोज', 'गणतंत्रके इस वर्षमें' आदि। इन लेखोंमें ठोस आधारभूमिके साथ बिना प्रयासके ही जोशीजीने कलात्मक अभिव्यक्तिके भी परिचय दियेहैं। जोशीजीका अपना खास अन्दाज सहज रूपमें उभर आयाहै। सामान्य लेखक और उत्तम लेखकके बीच अन्तर इस बातमें भी प्रकट होताहै कि कोई रचनाकार ऊंचा उठते हुए कितने ऊंचे उठ पाताहै। हमारे विचारमें रचनाकारकी महानताका निकष यह नहीं है कि उसने कमजोर रचनाएं कम रचीं बल्कि यह है कि उसका उच्चतम स्तर क्या है। इस विचारसे भारी संख्यामें सामान्य या कभी-कभी भरतीके लेखोंके बावजूद 'जादूकी सरकार' एक स्तरीय पुस्तक है।

शरद जोशीके लेखनके कमजोर उद्धरण हमने दिये तो आवश्यक है कि जोशीको प्रतिष्ठित करनेवाले लेखनकी हलकी झलक भी ली जाये। "एक नारा उठा, सत्ता मिल गयी। दूसरा उठा, सत्ता चली गयी"; 'विचाराधीन' शब्द बड़ा रोचक है। यह 'नहीं' का सरकारी पर्यायवाची है। सोते हुए शासनकी अक्षमताकी गम्भीर अभिव्यक्ति है"; "आजादीके इन वर्षोंमें देशमें उत्पादन बढ़ा और उत्पादनके भाव बढ़े। आदमी सस्ता सामान मंहगा हो गया। बदन सस्ता और कपड़े मंहगे हो गये"; तिरंगा चौरंग होगया, एक पट्टी खूनकी है" जैसी सटीक उक्तियां भरी पड़ीहैं। उल्लेखनीय बात यह है कि ऐसी व्यंजनापूर्ण उक्तियां छोटे-छोटे वाक्योंमें हैं। स्पष्ट है कि जहां जोशीजी कथ्याभावका अनुभव करतेहैं वहां किसी हलकी-सी बातको धुनते चले जातेहैं

जबकि कहनेके लिए बहुत होनेपर वे सूत्रोंमें बातको समेटकर शीघ्र आगे बढ़ जातेहैं।

हिन्दी व्यंग्य रचनाकारोंमें हमको शरद जोशीकी लेखन-शैली सबसे अधिक तराशी हुई लगती रहीहै। यह तराश संकलनके लेखोंमें भी स्पष्ट दिखायी देतीहै। जो लेख कथ्यकी कमजोर आधारभूमिपर खड़ेहैं उनमें भी शैलीगत कौशलके कारण सरसता बनी हुईहै। भले ही वे पाठकको सोचनेके लिए मजबूर न करें तो भी पूरे समय बांधे रखनेकी कुशलता उनमें हैं। स्व. शरद जोशीके जीवन्त तथा सजग व्यक्तित्व इन लेखों के माध्यमसे हमारे निकट बने रहेंगे। □

इतिहासका शव[1]

लेखक : रवीन्द्रनाथ त्यागी

समीक्षक : डॉ. भानुदेव शुक्ल

रवीन्द्रनाथ त्यागी हिन्दीके प्रमुख हास्य-व्यंग्यकार हैं। उनके लेखनमें अध्ययनजन्य वैविध्य भी मिलताहै और शैलीगत वैविध्यके कारण एकरसता भी नहीं है। त्यागीजी कवि हैं, उपन्यासकार हैं, बाल-कथा साहित्य के रचनाकार भी हैं और बड़ी संख्यामें वे हास्य एवं व्यंग्यकी रचनाएं दे चुकेहैं। अध्ययनशीलता उनके लेखनकी विशेषता है। इससे उनकी रचनाओंमें गम्भीरता मिलतीहै। किन्तु, अभिव्यक्तियां सहज स्वाभाविक हैं, अध्ययन भारसे दबी हुई नहीं है। निजी जीवनके अनुभवोंपर लिखते समय अभिव्यक्ति विशेष आत्मीय हुईहै। त्यागीजीमें यह विरल विशेषता मिलतीहै कि अपने आपपर, अपने लोगोंपर, अपने वर्गपर भी खुल कर फब्तियां कस लेतेहैं। उन्होंने त्यागी समुदाय, अपने रिश्तेदारों तथा सरकारी अधिकारियोंपर बिना संकोचके फब्तियां कसीहैं। वे स्वयं उत्तरदायी उच्च पदस्थ सरकारी अधिकारी रहेहैं। निष्कुण्ठ व्यक्ति ही इस प्रकार अपने आपपर खुलकर हंस सकताहै।

पुस्तकमें कुल छब्बीस लेख संकलित हैं। इनमें दो का त्यागीजीने केवल संकलन कियाहै, उनका अपना लेखन नहीं हैं। 'प्रेमचन्द और प्रसाद: कुछ रोचक प्रसंग' तथा 'विश्वके महान् राजनीतिज्ञोंके हास्य-व्यंग्य' को त्यागीजीके लेखनमें स्वीकार नहीं किया जा सकता। 'हिन्दीकी कुछ श्रेष्ठ व्यंग्य कविताएं' का गद्य भाग त्यागीजीका है। एक कविता भी त्यागीकी अपनी है और शेष नागार्जुन, प्रभाकर माचवे, विद्यानिवास मिश्र, धूमिल, दुष्यंतकुमार, लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, हरिवंश राय बच्चन, भारतभूषण अग्रवाल तथा भवानीप्रसाद मिश्रकी हैं। कविताएं महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय हैं। किन्तु, यहां उल्लेखनीय कवियोंपर संक्षिप्त किन्तु सटीक टिप्पणियां हैं। लेखके प्रारंभमें उर्दूके व्यंग्य-कवियोंके संक्षिप्त परिचयमें त्यागीके अध्ययन क्षेत्रकी व्यापकताकी झलक मिल जातीहै। यदि इन कवियोंके नामोल्लेखसे कुछ अधिक जानकारी दी गयी होती तो इस जानकारीकी प्रासंगिकता बढ़ जाती। तब लेखका आकार भी बढ़ जाता।

लेखोंमें यथावसर संस्कृत, उर्दू शायरी तथा डोगरी आदिके लोकगीतोंकी पंक्तियां उद्धृत की गयीहैं। एक स्वतन्त्र लेख 'कश्मीरी और डोगरीके कुछ दिलचस्प लोकगीत' त्यागीजीके रुचि क्षेत्रकी व्यापकताका एक प्रमाण है। विषयगत तथा शैलीगत वैविध्यका हमने ऊपर उल्लेख कियाहै यथावसर इस वैविध्यके महत्त्वपर भी हम विचार करेंगे।

अभावग्रस्त परिवारमें जन्म लेकर अपने परिश्रमसे रवीन्द्रनाथ त्यागी केन्द्रीय सेवामें, इंडियन डिफेंस एकाउण्ट्स सर्विसमें, उच्चाधिकारी बने। सम्पन्न स्थितिमें पहुंचनेपर भी वे आम आदमीकी पीड़ाको भूले नहीं। इसीलिए अधिकारी वर्गके अमानवीय आचरणोंपर उन्होंने व्यंग्य-प्रहार कियेहैं। "जबतक किसीका दिल नहीं दुखाया गया तबतक सरकारकी शक्तिका पता लोगोंको कैसे लगेगा?" "पुलिसमें जितने अपराधी नियुक्त हैं उतने तो राजनीतिक क्षेत्र में भी नहीं हैं।" एक व्यंग्य-बाणसे एक साथ दो गुद्ध मारेहैं। तथापि, त्यागीजीके लेखनमें ऐसे तीक्ष्ण प्रहार कम मिलतेहैं क्योंकि वे मूलत: चिकोटी लेनेवाले विनोदी प्रकृतिके लेखक हैं।

संकलनके कुछ लेख गंभीर हैं। इनमें व्यंग्य प्रहार विरल हैं। प्राय: ही उनमें गंभीर विचार-विमर्श है, यदाकदा विनोदभरे छींटे अवश्य मिल जातेहैं। 'क्या कानून अंधा है?' में न्यायपालिकाओंकी समस्याओं तथा उनके प्रति सरकारी उपेक्षाभावनाको गंभीर

---

१. प्रका. : राजकमल प्रकाशन, १ बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १६९; क्रा. ६३; मूल्य : ५०.०० रु.।

विवेचनका विषय बनाया गयाहै, उपयुक्त समाधान भी सुझाये गयेहैं। 'अपराधी साहित्यकार' में लेखकने अनेक ऐसे साहित्यकारोंके सम्बन्धमें जानकारी दीहै जो या तो वास्तवमें अपराधी थे या अपराधी न होते भी दोषी माने गयेथे। शेक्सपीयर, सर वाल्टर रैले, जॉन बनयान, ऑस्कर वाइल्ड, ओ-हेनरी, फ्लाबेयर, वाल्टेयर, दोस्तोएवस्की, जूलिए फूचिक, डेनियल डिफो, मिल्टन, फ्रांसिस बेकन, ऑलिवर गोल्डस्मिथ, शेरिडन, बायरन, अबुलफज्ल, रहीम, मिर्जा गालिब, सआदत हसन मण्टो आदिने कानूनकी गिरफ्तमें आकर दण्ड भोगेथे। कुछ बच भी गयेथे। हम इस सूचीमें एब्सर्ड नाटककी शैलीके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण नाटककार ज्यां जैनेका नाम जोड़ना चाहेंगे। जैनेको आजीवन कारावासका दंड मिलाथा किन्तु उसकी प्रतिभाका सम्मान करते हुए फ्रांसके राष्ट्रपति द गालने उसको क्षमादान दियाथा। यह उल्लेख इस विचारसे कियाहै कि संभवतः एक महान् साहित्यकारका यह सम्मान अपने ढंगका अनूठा है। प्रेमचन्द, बंकिम बाबू शरत् बाबू आदि बाल-बाल बचनेवाले साहित्यकारोंके उल्लेखभी त्यागीजीने कियेहैं। लेखमें धार्मिक या राजनीतिक अनाचारके शिकारोंमें चर्चके अपराधी डेनियल डिफो तथा जारके अपराधी दोस्तोएवस्कीके नाम हैं, सफदर हाशमी एवं परसाई छूट गयेहैं। सलमान रुशदी पर इस्लामी तलवार लटकी हुईहै। एक दृष्टिसे रुशदी दंड भोग ही रहेहैं।

गंभीर विवेचन किन्तु व्यंग्य भावनासे सम्पन्न लेख 'सरकारी काम न करनेके कायदे' अधिकारियोंके निकम्मेपनकी खाल खींचताहै। इसे व्यंग्य मानें या प्रशासन-तंत्रका गंभीर लेखा-जोखा, कहना कुछ कठिन है। 'इतिहासका शव' में न हास्य है और न व्यंग्य बल्कि पुरातत्त्वके स्मारकोंके रख-रखावमें भारी लापरवाहीपर पीड़ा व्यक्त की गयीहै।

मौजके क्षणोंके लेख है—'प्रियतम गये विदेश', 'विक्टोरिया चली गयी', 'पिकासो, इकबाल और खाकसार', 'आनेवाला कल' तथा 'ढाई आखर प्रेमका'। कुछ डाक्टरोंकी बाबत', 'एक देहाती डाक्टर' तथा 'आसपास' में निजी अनुभवोंके समावेश कियेहै। 'मैं जेल जाना चाहताहूँ', 'प्राचीन कालसे लेकर अबतक' तथा 'कहां गये वे दिन' मौज और व्यंग्यात्मक चिकोटियों भरे लेख हैं जिनमें व्यंग्य तरंग शैलीमें हैं।

नये मुहावरोंको गढ़नेमें त्यागीजी कुशल हैं। 'जिस प्रकार लोहेको लोहा काटताहै, उसी प्रकार रिश्वत जो है, उसकी रक्षा भी रिश्वत ही करतीहै', 'चिड़ीमारको यदि चिड़ीमार नहीं पहचानेगा तो और कौन पहचानेगा' जैसे सटीक मुहावरे उनके भाषापर अधिकार को प्रभावित करतेहै।

त्यागीजीके तर्जे-बयांमें 'जो है सो' या 'जो है' के बार-बार प्रयोग हुएहैं। भाषामें यह टीका ध्यान अवश्य खीचताहै, खटकता नहीं। पाठक इन घुसपैठियोंके बांकेपनको स्वीकार कर लेताहै।

सौभाग्यवश मुझको अधिकतर प्रतिष्ठित व्यंग्य लेखकोंकी पुस्तकोंकी समीक्षाओंके अवसर मिलेहै। मैंने प्रायः ही अनुभव किया, तथा इसको एकाध बार प्रकट भी कियाहै, कि दर्जनों निबंधोंको एक या दो बैठकमें पढ़नेपर उनमें प्रायः एकरसताके कारण सपाटपन दिखायी देने लगताहै। भाषा एवं विषयोंमें पुनरावृत्तियां मिलने लगतीहै। रवीन्द्रनाथ त्यागी उन कम लेखकोंमें है जिनके सभी लेखोंको उसी तल्लीनताके साथ एक बैठकमें पढ़ा जा सकताहै। उनके विषय-संकलन तथा अभिव्यक्तिमें सदैव नयापन और ताजगी बनी रहतीहैं। ऐसा शायद इसलिए है कि वे प्रतिबद्धतामें आबद्ध व्यंग्य-रचनाकार नहीं है। प्रतिबद्ध रचनाकारको ठोस भूमि तो मिलतीहै लेकिन यह भूमि बहुत संकुचित होतीहै तथा लेखक अपने सिद्धान्तके दायरेमें बन्दी हो जाताहै। रवीन्द्रनाथ त्यागी किसी खूंटेसे नहीं बंधेहैं। इसलिए उन्होंने मुक्त बिचरण कियेहैं। पुस्तकमें संकलित लेखभी इसके प्रमाण हैं। □

आगामी अंकमें

शब्दार्थ विचार कोश

'प्रामाणिक हिन्दी कोश' (१९४९) से 'शब्दार्थ दर्शन' तक कालक्रमिक तथा विकास क्रमिक रूपमें परिपक्व होते हुए **'शब्दार्थ विचार कोश'** के रूपमें परिणति हुईहै। यह ग्रन्थ आचार्य वर्माके देहत्यागके लगभग २५ वर्ष बाद प्रकाशमें लानेका श्रेय शब्दार्थ विज्ञानी **डॉ. बदरीनाथ कपूरको** है। ग्रन्थ दो खण्डोंमें विभक्त है। प्रथम खण्डमें विषयका शास्त्रीय पक्ष है और दूसरे खण्डमें हिन्दीकी २५७ पर्यायमालाओंका तुलनात्मक और व्याख्यात्मक विवेचन है। परिशिष्टमें हिन्दीके कुछ गिनेचुने शब्दोंकी अर्थगत व्याख्या है। समीक्षक है : **डॉ. सुरेशकुमार।**

समयके शब्द

यह ग्रन्थ कवि **केदारनाथ सिंहके** समीक्षात्मक निबन्धों, संस्मरणों और कुछ रम्य रचनाओंका संकलन है, जो नयी कविताके प्रमुख हस्ताक्षरोंकी कविताओंके अध्ययन और आकलनके लिए अन्तर्दृष्टि प्रदान करनेके साथ ही स्वयं लेखककी सृजनशीलताको अनेक कोणोंसे आलोकित करताहै।'' ग्रन्थमें संकलित सभी निबन्ध समीक्षात्मक नहीं हैं। कुछ टिप्पणियां, कुछ व्यक्ति प्रसग केवल स्मृतियोंको संजोकर रखनेकी दृष्टिसे प्रस्तुत किये गये हैं।''''ग्रन्थकी पृष्ठभूमि ऐसी है कि समीक्षाएं नयी कविताके आकलन और आस्वादनकी एक नयी दृष्टि प्रदान करनेके साथ कविताके प्रति एक आन्तरिक लगाव भी पैदा करतीहैं। समीक्षक हैं : डॉ. मूलचन्द सेठिया।

फूल स्मृति गंधाके

काव्यकृतिकी-सी शीर्षकवाली प्रस्तुत कृति प्राध्यापक **घनश्याम शलभकी** छठी औपन्यासिक कृति है। सर्जनात्मकताके धरातलपर सोद्देश्य रचनाके रूपमें इस कृतिमें मूल्योंकी प्रतिष्ठाका उपक्रम है। एक ओर मानवता की जयगाथा प्रस्तुत करतीहै तो दूसरी ओर स्वातन्त्र्योत्तर कालमें विकसित विसगतियोंका आलेखन है। एक ओर आधुनिक विसंगत युगमे मानवताकी विकृतिके उत्तरदायी कारणोंकी खोजबीन है तो दूसरी ओर उनके सम्यक् समाधान के बिन्दुओंके सदर्भमें दिशा-निर्देश भी हैं। राजनीतिक स्तरपर साम्प्रदायिक संकीर्णताका विरोधी तथा मानवीय एकताका पक्षधर स्तर है।

'प्रकर', मई'९४ : पंजीकरण संख्या १७५८२/६९ : डाक पंजीकरण संख्या : डीएल : १९००९/९४

'पुरस्कृत भारतीय साहित्य'

अगस्त'९३ का "पुरस्कृत भारतीय साहित्य" विशेषांक वार्षिक शृंखलाका ग्यारहवां अंक है। इसी शृंखलाका पूरक अंक नवम्बर' ९३ है। इससे पूर्व दस विशेषांक प्रकाशित हो चुकेहैं। भारतीय भाषाओंके साहित्यमें इस समय जो प्रवृत्ति दिखायी दे रहीहै, वह इस दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है कि अपनी प्रादेशिक और क्षेत्रीय विशिष्टता होते हुएभी भारतीय साहित्यकी अन्तश्चेतना एक है, उसकी अन्तःस्फूर्तिके स्रोत भी समान हैं। फिरभी उस चेतनाके समग्र रूपको न तो प्रस्तुत किया गयाहै, न उसका, योजनाबद्ध अध्ययन। इस अध्ययनकी सम्भावनाको ध्यानमें रखते हुए 'प्रकर' प्रतिवर्ष ऐसी सामग्री प्रस्तुत कर रहाहै जो अध्ययन और शोधकी दृष्टिसे बहुत उपयोगी है।

अबतक इन ग्यारह विशेषांकोंमें विभिन्न भारतीय भाषाओंके ग्रन्थोंपर जो समीक्षा-सामग्री प्रस्तुत हुई है, उनकी संख्या इस प्रकार है :

भाषा	ग्रन्थ संख्या	भाषा	ग्रन्थ संख्या	भाषा	ग्रन्थ संख्या
असमी	९	डोगरी	१०	मराठी	११
उड़िया	१२	तमिल	१२	मलयालम	९
उर्दू	३	तेलुगु	१०	मैथिली	११
कन्नड़	१२	नेपाली	९	राजस्थानी	११
कश्मीरी	५	पंजाबी	११	संस्कृत	८
कोंकणी	१०	बंगला	६	सिन्धी	१०
गुजराती	१३	मणिपुरी	११	हिन्दी	१३

सभी अंकोंकी कुल पृष्ठ संख्या : ११९०

कुल समीक्षित ग्रंथ २१०

इन ग्रंथोंकी समीक्षाओंसे न केवल भारतीय भाषाओंकी एकात्मता उभर कर आतीहै, साथमें विदेशी साहित्यके स्पष्ट, प्रबल और गहरे (अनेक बार प्रचारात्मक) प्रभावका भी साक्षात्कार होताहैं। साहित्यिक दृष्टिसे वैज्ञानिक विश्लेषणके लिए यह सामग्री सहायक है।

१९८३ से अबतक प्रकाशित 'पुरस्कृत भारतीय साहित्य' विशेषांकोंके पृथक्-पृथक् मूल्य इस प्रकार है : ८३—२०.०० रु.; ८४—२०.००; ८५—२०.००; ८६—३०.००; ८७—३०.००; ८८—३०.००; ८९—३५.००; ९०—३५.००; ९१—३५.००; ९२—४०.००; ९३—४०.०० रु.; नवम्बर'९३—१०.००।

अध्ययन और शोधकी दृष्टिसे यह सामग्री प्रत्येक पुस्तकालयमें संग्रहणीय है।

सभी ग्यारह अंकोंका डाकव्यय सहित मूल्य : २७५.०० रु.

सम्पादक : वि. सा. विद्यालकार : मुद्रक : संगीता कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा रायसोना प्रिंटरी, चमेलिया रोड, दिल्ली-६।
प्रकाशन स्थान : ए-८/४२ राणा प्रतापबाग, दिल्ली-७ दुरभाष : ७११३७६३

दूरभाष : ७११३७६३
सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार
ए-८/४२, राणा प्रताप बाग
दिल्ली-११०००७.

['पुरस्कृत भारतीय साहित्य अंक']

वर्ष : २६ अंक : ८ भाद्रपद : २०५१ [विक्रमाब्द] अगस्त : १९९४ [ईस्वी]

सम्मानित कृतिकार

पुरस्कृत कृतियां

कितने स्वतन्त्र कितने पराधीन

[सैंतालीसवें स्वातंत्र्य दिवसके उपलक्ष्यमें]

देशके आजके राजनीतिक वातावरण और राज-नीति-अर्थ-संस्कृति-भाषा-जाति-सम्प्रदाय-नैति-कताकी समग्र स्थितिका आकलन करते हुए बार-बार मनमें यह सन्देह उठ खड़ा होताहै कि क्या हम लोग किसी स्वतन्त्र देशके निवासी हैं? कहीं ऐसा तो नहीं कि जिन राजनीतिज्ञोंने अंग्रेजोंसे, उनके साम्राज्यके भारत स्थित शासक माउंटबेटनसे सत्ता प्राप्त कीथी, वे इस सत्ता-हस्तान्तरणसे वे इतने विभोर हो उठे, इतने आत्मविमुग्ध हो उठे और ब्रिटिश शासन कालकी शिक्षा-दीक्षा एवं चिन्तनसे निर्मित मानसिकता से ऐसे अभिभूत होगये कि कृतज्ञतावश वे अन्तः और बाह्य रूपसे मात्र "ब्रिटिश शासनके उत्तराधिकारी" बन गये। वे ब्रिटिश परम्परा, रीति-नीति-व्यवस्था, जीवन-पद्धति, व्यवहार और उसके रूपसे एक क्षणके लिए भी विचलित नहीं हुए, उन्हींकी निरन्तरताको अबाधित रूपसे जारी रखा, परन्तु एक विशिष्टताके साथ, इन्हींके समानान्तर भारतीय संस्कृति, जीवन-पद्धति, भाषा, नैतिकताका तारस्वरसे दुंदुभियोंके मात्र कर्ण-विस्फोटक विकराल तर्जन-गर्जनके साथ। गत सैंतालीस वर्षके इस अबाधित कर्ण-भेदक तर्जन-गर्जनमें पूरा देश बहरा होगया, मस्तिष्क-तंत्रियां सहज-स्वा-भाविक चिन्तनकी व्यवस्थासे मुक्त होकर केवल उन्हीं नारोंको दोहराने योग्य रह गया जिन्हें ब्रिटिश सत्ताके ब्रिटिश-शिष्य उसके कानमें उंडेलते रहे।

आज इस देशके लोगोंमें यह धारणा जमा दी गयीहै कि यह देश विश्वका विशालतम लोकतन्त्र है, वे नारातन्त्रकी कर्णभेदी एवं सदा परावर्तित होनेवाली ध्वनियों-प्रतिध्वनियोंके बीच यह भी भूल गये कि माफिया-अपराध-तंत्र और लोकतन्त्रमें कोई अन्तर होताहै। अब वह केवल तर्जन-गर्जनभरे नारोंको ही मात्र विश्वसनीय मानताहै। इसीलिए समारोहों, विशाल सभाओं और रैलियों और प्रदर्शनोंका आयो-जन किया जाताहै, जिससे इस नारातन्त्रको ही वह लोकतन्त्र मानता रहे। वह इसे स्वीकार कर लेताहै। माफिया-अपराध-तंत्रके एजेंटों प्रतिनिधियोंके सम-झाने-बुझानेपर प्रथम तो मतदान केन्द्रपर जाताही नहीं, अपनी शक्तिहीनताके कारण धमकियोंके सामने झुक जाताहै, अथवा मतदान-केन्द्रपर सशस्त्र लोगोंके जमावको देखकर लौट आताहै, मतदाताओंके मतोंकी मतपेटियां बदलकर नष्ट कर दिया जाताहै, अथवा मतदान रोकनेके उपायोंसे, शक्ति-प्रयोगसे वहां मत-दान होनेही नहीं दिया जाता। ऐसे भी उदाहरण हैं जब मतपेटियां एक-एक मतपत्रसे नहीं, मतपत्रोंकी गड्डियोंसे भरी होतीहैं। इस भारतीय लोकतंत्रकी ब्रिटिश विशेषता यह है कि किसीभी मतदाताके लिए मतदानमें भाग लेना अनिवार्य नहीं है, किसी निर्दिष्ट प्रत्याशी अथवा उम्मीदवारके पक्षमें मतदानके लिए बाध्य नहीं है, इस प्रकार किसी निर्धारित दण्डसे बच जाताहै। इस समाजवादी बाध्यतासे ब्रिटिश उत्तरा-धिकारियोंने अपने देशके लोगोंको बचाकर केवल नारातंत्रके आदेशोंका पालन न करनेकी प्रतिदिन की प्रताड़ना-उत्पीड़नसे मतदाता-समूहकी रक्षाकर ली है। यह है ब्रिटिश उत्तराधिकारियों द्वारा देशपर लादी गयी 'लोकतन्त्र' नामक व्यवस्थाका उपहार।

समाजवाद : आर्थिक समर्पण

यह भी हमें स्पष्ट रूपसे समझ लेना चाहिये कि ब्रिटिश पद्धतिसे शिक्षित-दीक्षित और उसी चिन्तन और मानसिकतासे निर्मित ब्रिटिश उत्तराधिकारी भारतीय सत्ताधारियोंमें अपनी मौलिक प्रतिभा नहीं थी। ब्रिटिश शिक्षण कालमें वे समाजवादसे प्रभावित

हुए और उस ओर आकृष्ट [illegible] 'समाजवाद' सोवियत संघका राजनीतिक-आर्थिक धर्म बना। उसके सत्तात्मक और राज्य-विस्तारके रूप को भी देखा। इससे वे इतने मुग्ध हुए कि वे जन-साधारणको दास बनते हुए देखकर भी देखनेको उत्सुक नहीं थे, बल्कि उसपर अविश्वास करतेथे और उसे मिथ्या प्रचार मानतेथे। उन्हींके कालमें सोवियत संघमें जनसाधारणका जो उत्पीड़न हुआ, जिसे साहस-पूर्वक वहींके साहित्यकारोंने अपनी पूरी साहित्यिक प्रतिभाके साथ संवेदनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की उसे भी उन्होंने यथार्थके धरातलपर देखना स्वीकार नहीं किया। यूक्रेनकें स्तालिनी हिंसाकाण्ड और परिणाम-स्वरूप सामूहिक रूपसे किसानोंको धकेलकर साइ-बेरिया निर्वासित कर दिया और वहां उन्हें उनके भाग्यपर छोड़ दिया। फिरभी मन-बुद्धि और चक्षु पर पट्टी बांधकर ब्रिटिश उत्तराधिकारियोंने इस देशको समाजवादी घोषित किया, उसी कर्ण-भेदी तर्जन-गर्जनके घोषके साथ। पर यह समाजवाद केवल देशके संविधानका अर्थहीन शब्द मात्र ही बन सका, क्योंकि सत्ताके स्तरपर अर्थव्यवस्था को मिश्रित घोषित कर दिया गया। अर्थात् संवि-धानके कागदोंपर अंकित समाजवादी देशको कानूनी रूपमें मिश्रित अर्थ व्यवस्थाका देश बना दिया गया, अभी कुछ दिन पूर्वतक यह मिश्रित अर्थव्यवस्थाका देश था, इसीलिए नारोंमें समाजवादी देश था।

पर अब ब्रिटिश सत्ताके भारतीय अर्थात् इंडियन उत्तराधिकारियोंके औरभी निम्न बौद्धिक स्तरके उत्तराधिकारियोंने देशके जनसाधारणको भूतलपर प्रत्यक्ष स्वर्गके दर्शन करानेके स्वप्नकी आशाको भी समूल नष्ट कर दियाहै। उसके स्थानपर प्रस्तुत किया है सोनेकी भांति चमकती पीतलकी थालीमें सजाकर अमरीकी पूंजीवाद। ब्रिटिशकालमें उन्हें केवल अनु-करण-नकल करनेका अभ्यास कराया गयाथा, प्रत्येक भारतीय मूलकी वस्तुका, चाहे वह मौलिक प्रतिभा ही क्यों न हो, उपहास करने और उसे घृणाकी दृष्टिसे देखनेकी विशिष्ट प्रकृतिका निर्माण किया गयाथा, इसलिए मौलिक मार्ग, देशकी और जनसाधारणकी आवश्यकताओंको ध्यानमें रखकर किसी नये आर्थिक उपायको प्रस्तुत कर सकनेकी प्रतिभाके अभावके कारण तथा ब्रिटिश साम्राज्यवादके पूंजीवादके स्थान पर 'लोकतन्त्रीय' अमरीकी पूंजीवादको अपने अनु-[illegible] और उसके प्रति समर्पित होकर अपने देशका बाजार अर्पित करनेका स्वयं प्रस्ताव लेकर करबद्ध होकर अमरीकाके सम्मुख नतमस्तक खड़े होगये।

इस आर्थिक समर्पणकी तुलना भारतीय जनश्रुति के कालकाचार्य-कथानकसे करना अनुपयुक्त नहीं होगा, जबकि कालकाचार्य उज्जैन नगरीको ध्वस्त करनेके लिए पश्चिम एशियासे शकोंको निमन्त्रितकर अपने साथ ले आयेथे। ये लोग लगभग विक्रम संवत् प्रारम्भ होनेसे पचहत्तर वर्ष पूर्व आयेथे और विक्रमा-दित्य द्वारा इस देशसे इन्हें निष्कासित करने तक पश्चिम भारतमें शासन करते रहे। विदेशी शासनको समाप्त करने और इस अवधिमें देशके राजनीतिक-आर्थिक उत्पीड़नकी आज कल्पना ही कीजा सकती है। इन्हें देशसे निष्कासित करने, उनके अवशिष्टोंको देशमें आत्मसात् करनेमें उत्तरकालमें औरभी समय लगा। आज देशके पाँच प्रतिशत (बल्कि उससे भी कम) वर्गने अर्थ-लोभमें, तत्काल सम्पन्न हो जाने के तात्कालिक लाभके लिए, देशके पचानवे प्रतिशत को अमरीकी पूंजीवादके लिए अर्पित कर दियाहै। जिस तीव्र गतिसे यहांके उत्पादनोंके मूल्योंमें और आयात की जानेवाली सामग्रीके मूल्योंमें कृत्रिम और अप्रत्याशित रूपसे वृद्धि कर दी गयीहै, उससे जन-साधारणकी अर्थ-स्थिति अकस्मात् गड़बड़ा गयीहै और वह भौंचक्क भावसे, हतबुद्धि होकर, इसे भोगनेको विवश है। यह कहना अनुपयुक्त नहीं होगा कि देशको जानबूझकर विदेशियोंका उपनिवेश बना दिया गयाहै जबकि देशकी सैंतालीसवीं स्वाधीनताका घोष करते हुए उन पुराने विकास कार्यक्रमोंको सार्वजनिक मंचों से दोहराया जा रहाहै जो दशकोंकी घोषणाओंके बाद अबभी देशको विकासकी दिशामें नहीं ले जा पाये और दिवालियेपनकी स्थितिमें देशको लाकर खड़ा कर दियाहै। वर्तमान दिवालियापन और पूंजीवादी शोषण के दो चक्रोंके बीच पिसनेकी विडम्बनाका चक्र चालू हो गयाहै, समयके साथ इसकी गतिमें वृद्धि होनेकी दशा और स्थिति कम भयानक प्रतीत नहीं होती। सत्ताने पूर्ण रूपसे वैदेशिक उपनिवेशवादके साथ अपने को बांध लियाहै, जबकि सत्तासे बाहरका कोई दल कोई नयी दिशा सुझाने तथा अथवा कोई विकल्प प्रस्तुत करनेकी स्थितिमें नहीं है।

देशके जिस पांच प्रतिशतकी सम्पन्नताकी चर्चा हमने ऊपर कीहै, उनकी यह सम्पन्नता क्या देशको विकसित करनेमें समर्थ होगी? अबतकके भारतीय व्यापारिक जगत्के व्यवहार और उससे प्राप्त अनुभवों के आधारपर कहा जा सकताहै कि वर्तमान परिस्थिति में एक सम्पन्न भोगवादी वर्गका सशक्त गठन हो जायेगा। और यह विदेशी शोषकों और देसी शोषितों के बीचका ऐसा अन्तवर्ती वर्ग होगा जिसके हित देशके शोषितोंके साथ नहीं, बल्कि विदेशी शोषकोंके साथ जुड़े होंगे। यह स्थिति अभीसे अनुभव होने लगीहै और सत्ताधीशोंका भी इन्हें सक्रिय समर्थन है जोकि कि अनेक घोटालोंकी स्थितिसे स्पष्ट हुईहै। नारों और घोषोंके तर्जन-गर्जनसे स्तब्ध जन-साधारण तो अभीतक इन संकेतोंको पकड़ नहीं पाया, राजनीतिक दल भी जनसाधारणसे कहीं अधिक विभ्रमकी स्थिति में हैं।

धर्म निरपेक्षता

स्वतंत्र भारतकी एक और विशिष्टताका घोष 'धर्मनिरपेक्षता' (संविधानकी नयी प्रतियोंके अनुसार पंथनिरपेक्षता) शब्दसे किया जाताहै। क्योंकि संवि-धानका प्रामाणिक रूप अंग्रेजीमें है, वहां इन दोनों शब्दोंके स्थानपर एक शब्द 'सेक्युलरिज्म' का प्रयोग किया गयाहै। भारतीय स्थितिमें, चाहे वह मुस्लिम कालकी हो या ब्रिटिश कालकी—अथवा ब्रिटिश उत्तराधिकारियोंके कालकी, इन तीनों शब्दोंका अभि-प्रायात्मक रूप वही है जो ऊपर निर्दिष्ट लोकतन्त्र और समाजवादका है। 'सेक्युलर' शब्दका विधिगत (कानूनी) अर्थ क्या है, इसे प्रसंग आनेपर भी स्वयं उच्चतम न्यायालयने स्पष्ट नहीं किया, यद्यपि इस शब्दको आधार मानकर निर्णय अवश्य दियाहै, जिससे उस प्रसंगसे जुड़ी उच्चतम न्यायालयकी व्यवस्थापर ही विधिवेत्ताओंने प्रश्नचिह्न लगा दियाहै। धर्मनिर-पेक्षता और पंथनिरपेक्षता सेक्युलर शब्दके अर्थ तो हैं ही नहीं, उसके प्रचलित भाववाची रूपको भी स्पष्ट नहीं करते। फिरभी राजनीतिक विवादोंमें इन शब्दोंका प्रयोग आधिकारिक रूपमें किया जाताहै और प्राय: विरोधी पक्षोंको अपमानित और तिरस्कृत करनेके लिए। यह वही मनोवृत्ति है जिसका संकेत ऊपर लोकतंत्र और समाजवादके प्रसंगमें किया गयाहै। धर्मनिरपेक्षताके शाब्दिक अर्थको लेकर कांग्रेस कल्चर अपनी धर्मनिरपेक्षताका निरन्तर दावा करतीहै। परन्तु कांग्रेस दलका इतिहास इसकी पुष्टि तो करता हो नहीं, इसके विपरीत ये प्रमाण अवश्य प्रस्तुत करता है कि अपने राजनीतिक हितोंके लिए, मत और वोट जुटाने और उनका समर्थन प्राप्त करनेके लिए वह प्राय: प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूपसे नितान्त साम्प्रदायिक एवं असहिष्णु पंथों-वर्गों-मजहबों-धर्मोंको संविधान की सीमाओंसे बाहर जाकर सुविधाएं प्रदान करताहै। अनेक बार ये सुविधाएं और रियायतें अन्य वर्गोंके हितोंको हानि पहुंचातीहैं। इसका क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध है, परन्तु राजनीतिक स्तरपर इसका उपयोग करनेका साहस कोई व्यक्ति या दल नहीं जुटा पाता। भारतीय राजनीतिका यह कोई विशिष्ट रहस्य नहीं है, फिरभी इसकी सार्वजनिक विवेचनात्मक चर्चा इस-लिए नहीं होती क्योंकि अन्य सभी वर्ग-दल भी कांग्रेस के चरणानुयायी हैं। एक यहभी कारण है कि प्राचीन भारतीय साहित्यमें 'धर्म' का वह अर्थ नहीं है जिस अर्थमें राजनीतिक दल उसका प्रयोग करतेहैं। वहां धर्म उदात्त और व्यापक है, परन्तु उसमें न संकीर्णता है, न वह किसी कर्मकाण्ड-रीतिरिवाज-प्रचलित व्यव-हारसे बंधाहै। अपनी उदात्तताके कारण वह सदा संकीर्णता, कर्मकाण्ड, रीति-रिवाज और लोक व्यव-हारके बंधनसे मुक्त है, वह अपनी उदात्तताके कारण जीवनके सभी अंगोंको श्रेष्ठता और उच्चता प्रदान करनेकी एक प्रेरणात्मक शक्ति है, परंतु आधुनिक ब्रिटिश-यूरोपीय शैलीके अन्तर्गत उसे संकीर्णताका आवरण ओढ़ा दिया गयाहै। आजकी राजनीतिमें इसी शैलीके आधिपत्यके कारण धर्म शब्दके अर्थकी अव-गति की गयीहै और जो धर्मकी और भारतीय साहित्य की अवमाननाको प्रस्तुत करतीहै।

जीवनके समग्र विकास और उसे श्रेष्ठ एवं उच्च स्तर तक पहुंचानेकी आन्तरिक कामनाके कारण एवं धर्मकी प्रेरणात्मक शक्तिके कारण ही भारतीय पर-म्परामें धर्मको विशिष्ट स्थान प्रदान किया गयाहै। न उसका राजनीतिसे कोई पृथक् अस्तित्व है, न वह राजनीतिके अन्तर्गत उसका अधीनस्थ अंग है। परन्तु ब्रिटिश परंपराके सत्ताधीशोंने संविधानमें राजसत्ता और राजनीतिसे एक पृथक् बल्कि राजनीतिसे नियन्त्रित तत्त्वके रूपमें उसे स्थान दियाहै और राज्यको वैधा-निक रूपमें धर्मनिरपेक्ष बना दियाहै। इस देशका मान-

वीय अस्तित्व इस प्रकार पूर्णरूपसे राज्य-नियंत्रित कर दिया गयाहै जोकि ब्रिटिश परंपराके उत्तराधिकारी सत्ताधीशोंकी कुटिल प्रतिभाका अवदान है। व्यावहारिक स्तरपर सत्ताके पास यह एक ऐसा साधन है जिससे वह धर्मके माध्यमसे, उसके कुत्सित प्रयोगसे समाजको ठीक उसी प्रकार, बल्कि कहीं अधिक राजनीतिक प्रयोजन-सिद्धिके लिए, विभाजित किये रखता है। संविधान 'धर्मकी स्वतन्त्रता प्राप्त करानेकी' घोषणा करताहै, सत्ता उसे राज्य और व्यक्तियोंको विभाजित करनेका साधन बनाताहै। इसी मनोवृत्ति का परिणाम है सत्ता दल अपने चुनाव घोषणा पत्रमें देशके उत्तरपूर्वमें ईसाई राज्यकी स्थापनाका आश्वासन देता है और यथार्थके स्तरपर अघोषित रूपमें देश के उत्तरपूर्वके विशाल खण्डको ईसाई राज्योंमें परिवर्तित कर दियाहै। किसीभी छोटेसे भूभागमें मुस्लिम जनसंख्याके बहुमतमें आतेही उसे मुस्लिम बहुमतका जिला-जनपद घोषित कर देताहै। इससे भी बढ़कर संविधानके अनुच्छेद ३७०के अन्तर्गत सभी राज्योंपर लागू होनेवाले अन्य अनुच्छेदों और उनके अन्य अनुबंधों से इस अनुच्छेद मुक्त रखा गयाहै क्योंकि वहां मुस्लिम बहुमत है। संविधानके इस 'वदतोव्याघात' का दण्ड पूरा देश भुगत रहाहै। सांप्रदायिक सद्भावके नामपर वहां के हिन्दू नामक प्राणियोंको सामूहिक रूपसे निष्कासित कर दिया गयाहै। सत्ता दल और सत्ता उनके पुनर्वास अथवा उन्हें अपने क्षेत्रमें ले जाकर पुनर्स्थापित करनेके लिए भी चिन्तित नहीं है। देशमें यह ऐसा मुस्लिम क्षेत्र बना दिया गयाहै जहां देशके अन्य निवासी न बस सकतेहै, न वहां आ जा सकतेहैं। अपने धार्मिक स्थलों के दर्शनके लिए देशवासियोंको सत्ता और सेनापर निर्भर रहना पड़ताहै, उस सत्तापर जो उन्हें प्रत्येक अवसरपर 'हिन्दू धर्मका अंग होनेके कारण निरन्तर प्रताड़ित और अपमानित करतीहै जबकि देशमें 'हिन्दू धर्म' नामकी कोई वस्तु नहीं है केवल 'हिन्दू समाज' है जो सैकड़ों धर्मोंका सम्मिलित समाज है। इसी व्यवहार और अपमानके माध्यमसे सत्ताकी धर्म-निरपेक्षताका अर्थ और प्रयोजन स्पष्ट हो जाताहै और ऐसा आभास मिलने लगताहै कि राज्य और सत्ता हिन्दू अर्थात् हिन्दू समाज विरोधी हैं। आजके इस चातुर्यपूर्ण राजनीतिक रूपको देखकर मुगल शहंशाह औरंगजेबके जयसिंह आदि सेनापतियों की आत्माएं भी, यदि वे कहीं विद्यमान हों, तो, अपनी तत्कालीन राजभक्तिपर लज्जित होनेकी आवश्यकता अनुभव नहीं करेंगी।

आजकी राजनीतिक सत्ता और न्यायपालिकाने धर्मनिरपेक्षता और सैक्युलरवादका जो रूप निर्धारित कियाहै, उसने संविधानकी 'उद्देशिका' की घोषणा : "भारतको एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष (पूर्व शब्द धर्मनिरपेक्ष) बनानेके लिए, तथा उसके समस्त नागरिकोंको सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासनाकी स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसरकी समता प्राप्त करानेके लिए, तथा उन सबमें व्यक्तिकी गरिमा और राष्ट्रकी एकता और अखंडता सुनिश्चित करनेवाली बंधुता बढ़ानेके लिए दृढ़संकल्प करनेकी भावना को पग-पगपर खण्डित कियाहैं।

भाषा : हिन्दी

यहां हमने संविधानकी घोषणाओं, उद्घोषणाओं, प्रावधानों और उपबंधोंकी चर्चा प्रसंगत: कीहै, उनकी विवेचनाके लिए नहीं। प्रसंगवश इस ओर ध्यान खींचना भी आवश्यक है कि अनेक संवैधानिक प्रावधानों और व्यवस्थाओंके व्यापक प्रभावको सीमित करनेके प्रयत्न भी हुएहैं। 'अवसरकी समता' की धारणाके बादके वैधानिक प्रावधानोंसे विशेष रूपसे आहत हुएहैं। सबसे अधिक आहत प्रावधान हैं : अनुच्छेद ३४३ (संघकी राजभाषा) और अनुच्छेद ३५१ ('हिन्दी भाषाके विकासके लिए निदेश',) जिनका शीर्षक है "विशेष निदेश"। इस संबंधमें कुछ प्रारम्भिक सूचनाओंकी ओर ध्यान खींचना आवश्यक है। 'भारत का संविधान' मूल रूपमें २६ नवम्बर १९४९ ई. [मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् दो हजार छः विक्रमी] को संविधान सभा द्वारा स्वीकार किया गयाथा। उसी संविधानमें भारतीय संघकी राजभाषाके रूपमें हिन्दी को स्वीकृति प्रदान की गयीथी, जबकि सम्पूर्ण स्वतन्त्रता आन्दोलनकी अवधिमें हिन्दीको 'राष्ट्रभाषा' के रूपमें अभिहित किया जाताथा। राष्ट्रभाषासे राजभाषा नामका रूपान्तर संयोगवश या आकस्मिक रूपसे नहीं हुआथा, बल्कि उसके मूलमें उन्हीं ब्रिटिश सत्ता के उत्तराधिकारियोंकी मनोवृत्ति और उनकी योजनाएं कार्य कर रहीथीं जो सक्रिय रूपसे देशमें हिन्दीके प्रचलनकी विरोधी थीं। इसका आभास तत्कालीन

नेहरू मन्त्रीमंडलके सदस्य आई सी एस अफसर रहे गोपालस्वामी अयंगारने दियाथा और संविधान लागू होनेके पन्द्रह वर्ष बाद देशकी राजभाषा हिन्दी बनाये जानेका प्रावधान संविधान सभामें प्रस्तुत करते हुए कहाथा "मुझे पचास वर्ष तक भी हिन्दीके देशमें राजभाषा बन जानेकी संभावना नहीं प्रतीत होती, यह भी संभव है कि वह राजभाषा बन ही न पाये।" अयंगार साहबने आजीवन ब्रिटिश सत्ताकी सेवामें रहनेके बाद जनाब नेहरू साहबकी विशेष कृपाके कारण मन्त्रीमंडलमें स्थान पायाथा, उनका विशिष्ट राजनीतिक महत्व था, फिरभी संविधान सभाके अनुभवी और क्रियाशील सदस्यों तकने इसे बहुत गंभीरतासे नहीं लियाथा। बादमें हिन्दीके प्रश्नको लेकर जो विशेष अधिनियम संसद्ने स्वीकार किये, उनके अन्तर्गत हिन्दीका राजभाषा पदपर बैठना सदाके लिए संदिग्ध हो गया। फिरभी इन अधिनियमोंमें केन्द्रीय सत्ताके शासकीय प्रयोजनोंके लिए हिन्दीके प्रयोगकी व्यवस्था थी, परन्तु सत्ताके ब्रिटिशपंथी प्रशासकोंने व्यावहारिक रूपमें हिन्दीका प्रयोग बन्द कर दियाहै। हिन्दी पत्रोंका उत्तर न देनेकी अनुशासनहीनता अब अनुशासनहीनता नहीं, बल्कि आदेश-पालन हो गयाहै क्योंकि हिन्दी पत्रोंका उत्तर न मिलने की शिकायतभी किसी भी स्तरपर अनुत्तरित रहतीहै, उसपर किसी कार्यवाहीका तो प्रश्नही नहीं उठता।

इसीसे जुड़ी समस्या देवनागरी अंकोंके प्रयोगकी भी है। यद्यपि संविधानके अनुच्छेद ३४३ में संघके शासकीय प्रयोजनोंके लिए ही अंग्रेजी अंकोंके प्रयोग का प्रावधान है, परन्तु प्रत्येक शासकीय विभाग इसे जनसाधारणपर लादनेपर तुला रहताहै और सामान्य रूपसे अंग्रेजी अंक प्रयुक्त न करनेपर शासन किसीभी व्यक्तिको दण्डित करनेपर तुल जाताहै। स्वयं 'प्रकर' भी भारत सरकारके इस प्रकोपको भुगत रहा है और परिणामस्वरूप विज्ञापन एवं दृश्य प्रचार विभागने चार हजारके लगभगकी राशि रोक रखी है। किसी पत्रका उत्तर देना भी उन्हें शासकीय स्तर पर शिष्टाचारहीनता प्रतीत होतीहै। बैंक भी इसी प्रकारका व्यवहार करनेसे नहीं चूकते। राजनीतिज्ञ ही नहीं शासकीय पदसे जुड़ा कोई भी व्यक्ति गर्व अनुभव करताहै कि उसने अपने देशमें सदियोंसे व्यव-हारमें आनेवाले अंकोंका प्रयोग करनेपर प्रतिबन्ध लगा दियाहै। इस रोगने हिन्दीभाषी भी समान रूप से पीड़ित हैं। सामान्य हिन्दीभाषी गर्वके साथ, बल्कि अपने अन्तर्राष्ट्रीय बन जानेके अहंके साथ भूतलसे कुछ इंच ऊपर उठकर चलनेका प्रदर्शन तो करताही है। दुर्भाग्य यह है कि हिन्दीभाषी सरकारें भी इसी रोगसे पीड़ित हैं। बंगाल, असम, उड़ीसा, महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाबमें वहांके अंग्रेजीसे बंधे साहबोंको छोड़ अभी यह रोग अपना विस्तार नहीं कर पाया। इस रोगकी परिणति देवनागरी लिपिके स्थानपर रोमन लिपिके चलनमें भी हो सकतीहै, जिसके लिए ब्रिटेन-यूरोप-अमरीकासे जुड़े लोग प्रयत्नशील हैं।

भाषाकी सहजता और सरलताकी चर्चा ब्रिटिश दायके उत्तराधिकारियोंका बहुत प्रिय विषय है। ये लोग जब हिन्दीकी सरलता और सहजताकी चर्चा करतेहैं, उनका लक्ष्य हिन्दीका विकास नहीं, अपितु भारतीय भाषाओंके शब्द भण्डार उनकी शब्द शक्ति, व्यंजना एवं लोकमानसके स्पर्श मात्रसे उसमें अपना स्थान बना लेनेकी शक्तिको समाप्त कर एक ऐसी पंगु और व्यंजनाहीन भाषाका निर्माण करनाहै जो उन्हींकी भांति लोक मानससे कटी हो, जिसमें उनकी श्रद्धास्पद एवं अन्न एवं शक्तिप्रदाता अंग्रेजीसे सत्ता और मुगलोंके अतीत प्रशासनकी बू आये, और वैदेशिक शक्तिकी उपस्थितिका प्रदर्शन भाषामें भी होता रहे। उन्हें यहभी चिन्ता नहीं कि भाषाओंकी अपनी अस्मिता होतीहै जिसकी रक्षा होनी चाहिये और निकटवर्ती भाषाओं-बोलियोंसे उनका निकटतम सम्पर्क होना चाहिये। पर वे तो केवल अपने पूर्व प्रभुओंके भाषिक आतंकके विस्तारमें ही रुचि लेतेहैं। उनकी दृष्टिमें यही भाषिक विकास है कि हिन्दी देश भरमें फैली अपनी सहोदरी भाषाओं-बोलियोंसे कटकर विचित्र एकाकी रूप धारण कर किसी कोनेमें बैठी टुकुर-टुकुर निहारती रहे और अपने खड़े होनेके लिए उनके प्रभुओंकी भाषाओंके टुकड़े चिपकाकर, थिगलियों भरी वेशभूषाके साथ हाथ पसारे मात्र शब्द-भीख मांगती रहे, जिससे उनके प्रभुओं की भाषाका, जिसे उन्होंने स्वाभाविक रूपमें नहीं, प्रयत्नसाध्य कठिन अभ्याससे साधा है, गौरव बढ़ता रहे। इसीलिए जनाब नेहरू साहबसे लेकर भारत सरकारका चपरासी तक भाषाको सहज-सरल बनानेका चमत्कारिक मंत्र-यंत्र हिन्दीके हाथमें थमानेको उत्सुक है कि हिन्दी अपने जन्मजात सौन्दर्यको समेटकर

हास्यास्पद रूप धारणकर कोनेमें जा बैठे। ऐसा न हो कि वह अपनी संवेदनात्मक अभिव्यक्तिको प्रकट कर, अपने स्वतंत्र विकास द्वारा अपनी जननी और भगिनी भाषाओंके दायसे समृद्ध होकर, पारस्परिक सहयोग और सहायतासे न केवल अधिकतम मात्रामें ज्ञान-विज्ञान, अपनेमें समा ले, अपितु मुक्तहस्तसे उस ज्ञान-विज्ञानका वितरण भी कर सके। उसकी सहभागिनी कहिये, जननी कहिये' संस्कृतमें इतनी विपुल शक्ति है कि वह अपने विशाल पिटारेसे अभिव्यक्तिको विविध प्रकारका रूप-रंग प्रदान करनेमें सहायक हो सकती है।

यही कारण है कि ब्रिटिश सत्ताके उत्तराधिकारी जब अपने 'धाय' पितृदेश ब्रिटेनमें उत्तराधिकारकी योग्यता ही जुटा रहेथे, तभी इस देशके लोगोंने नवीनतम ज्ञान-विज्ञानका प्रशिक्षण हिन्दी भाषाके माध्यमके देना शुरु कर दियाथा। उन दिनोंके हिन्दी माध्यमसे प्रशिक्षित एलोपैथी और आयुर्वेदका उच्चतम अध्ययन कर स्वतन्त्र रूपसे न केवल अपनी स्तरीय योग्यता का परिचय दे रहेथे, बल्कि हिन्दीकी अन्त:निहित भाषा-सामर्थ्यको भी स्थापित कर रहेथे, इसी प्रयोजन से उच्च स्तरीय ज्ञान-विज्ञानके प्रशिक्षणके लिए शब्द कोषोंका निर्माण ब्रिटिश सत्ताकी सहायताके बिना कर रहेथे। इसी मूक-साधनाका परिणाम था कि देशके स्वतन्त्र होतेही, आधुनिकतम ज्ञान-विज्ञानका प्रशिक्षण हिन्दी माध्यमसे देनेके प्रयत्न आरम्भ हो गयेथे, जो किसी स्वप्नमें से नहीं जन्मेथे अपितु अनुभवजन्य थे, जिन्हें विस्तार देनेका प्रयत्न किया गया। यह देशका दुर्भाग्य है सत्ता हस्तान्तरण देशकी धरतीसे जुड़े लोगोंको नहीं हुआ बल्कि विशुद्ध ब्रिटिश चिन्तन, शिक्षा-दीक्षा, संस्कारोंमें पूर्ण अनुकरणी लोगों और उनके वर्गके लोगोंको किया गया। इसलिए स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद जिस उत्साहसे, जिस लगन और उमंगसे देशके प्रत्येक अभिव्यक्ति माध्यम की भाषाके रूपमें हिन्दीको प्रोत्साहित करनेका कार्य प्रारम्भ किया गयाथा, उसे 'पचास वर्ष तक भी हिन्दी को राजभाषा न बनने देनेकें संविधान सभामें की गयी घोषणा' के अनुरूप उन्हीं घोषणाकर्त्ताओं और उनकी पीठपर बैठे शक्तिशाली राजनीतिज्ञोंने हिन्दीको राजभाषाके पदपर बैठानेके प्रत्येक प्रयत्नको विफल कर दिया।

एक स्वतन्त्रता-सेनानीके रूपमें जब हम गत सैंतालीस वर्षोंके इस घटना चक्रका आकलन करतेहैं तो वस्तुत: हमारी सम्पूर्ण जीवनी-शक्ति— दैहिक, मानसिक, बौद्धिक, प्राणिक, आत्मिक—सिहर उठतीहै। जीवनी-शक्तिका प्रत्येक कण यह प्रश्न करता प्रतीत होताहै क्या तुमने अपने जीवनमें, बाल्यकालसे लेकर आज की वृद्धावस्थाके प्रत्येक क्षणका उपयोग देशके इस रूपकी स्थापनाके लिए कियाथा, जिसमें लोकतंत्र माफिया-अपराध तंत्रमें परिवर्ति हो गयाहै, समाजवाद का आग्रह न होते हुएभी जनसाधारणकी स्थितिमें सुधारकी आशासे उसका समर्थन कियाथा, जिसका स्थान अब अमरीकी पूंजीवादने निमंत्रणके साथ ग्रहण कर लियाहै, सभी पंथों, धर्मों, महजबोंके समान मूल्योंकी स्थापना द्वारा देशके जिस नैतिक-सांस्कृतिक रूपका स्वप्न देखाथा, वह तो एक दिन भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ, उसके स्थानपर मजहब-धर्मके उग्र विवादों आतंकका राज्य स्थापित हो गयाहै। जिस संप्रभुता सम्पन्न शक्तिशाली देशकी कल्पना कीथी, वह संप्रभुता पूंजीपतियोंके भोगस्थलोंमें गिरवी रख दी गयीहै! अपने संघर्षपूर्ण जीवनके इन अन्तिम दिनोंमें अपने आपसे प्रश्न कर रहाहूं, कि हमारा—मेरा यह देश स्वाधीन है या पराधीन—गिरबी रखा हुआ?

प्रेम, प्रगति और प्रयोगके कवि : गिरिजाकुमार माथुर

—डॉ. हरदयाल

गिरिजाकुमार माथुरने बचपनमें ही काव्य-रचना प्रारम्भ कर दीथी, पर पूरी सचेतनता और गम्भीरता-पूर्वक उन्होंने १९३८ के आसपास कविता लिखनी शुरू की जब वे एम. ए. के छात्र थे। उस समय उन्होंने जो कविताएं लिखी, उनमें बस्तु और शिल्प दोनोंके स्तर पर सजग प्रयोगशीलता हमें दिखायी देतीहैं। उनकी उस समयकी लिखी कविताएं उनके पहले कविता-संग्रह 'मंजीर' में संगृहीत हैं, जिसकी भूमिका निरालाजीने लिखीथी। इस भूमिकामें निरालाजीने लिखाथा कि "गिरिजाकुमार माथुर हिन्दीकी निगाह खींचनेवाले तारे हैं। काव्यके आकाशमें उनका बहुतही मधुर प्रकाश हिन्दीके धरातलपर उतराहै।" निरालाजीकी यह उक्ति शीघ्रही चरितार्थ हुई, क्योंकि १९४३ में प्रकाशित होनेवाले 'तारसप्तक' में जो कवि संगृहीत हुए, उनमें निरन्तर काव्य-रचना करते रहनेवाले और स्वीकृति पानेवाले एक कवि गिरिजाकुमार माथुर थे। 'मंजीर' के बाद उनके प्रकाशित होनेवाले संग्रह हैं 'नाश और निर्माण' (१९४६), 'धूपके धान' (१९५५), 'शिला-पंख चमकीले' (१९६१)' 'जो बंध नहीं सका' (१९६८), 'भीतरी नदीकी यात्रा' (१९७५), 'छाया मत छूना मन' (१९७८), 'साक्षी रहे वर्तमान' (१९७९), 'कल्पान्तर' (खण्डकाव्य, १९८३), 'मैं वक्तके हूं सामने' (१९९०) तथा 'मुझे और अभी कहना है' (१९९१)। इन काव्य-संकलनोंमें संगृहीत कविताओंको पढ़नेवाला कोईभी व्यक्ति यह स्वीकार करेगा कि माथुरजी हिन्दीके गिनेचुने महत्त्वपूर्ण कवियों में से एक हैं।

जिस समय गिरिजाकुमार माथुरने गम्भीरतापूर्वक काव्य-रचना प्रारम्भ की उस समय एक ओर तो छायावाद अपने चरम उत्कर्षपर था और दूसरी ओर मार्क्सवादी विचारधारासे प्रभावित प्रगतिवादी आन्दोलन चल पड़ाथा। उस समय उभर रही कवियोंकी नयी पीढ़ीके सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह था कि ऐसा कौन-सा मार्ग चुनें, जिसपर चलकर वे छायावादके प्रभाव से बच सकें और अपनी अलग पहचान बना सकें? अलग-अलग कवियोंने अपने लिए इस प्रश्नका अलग-अलग उत्तर खोजा, लेकिन छायावादके प्रभावसे पूर्णतः बच पानेवाला विरला ही कोई कवि हमें मिले। नयी पीढ़ीके इन कवियोंने चाहे व्यक्तिगत सुख-दुःखके प्रगीत लिखेहों, चाहे सर्वहाराकी पक्षधरता करके क्रान्तिकी गुहार लगायीहो अथवा प्रयोगको सब कुछ मान लिया हो, इनमें एक बात सभीमें सामान्य रूपसे मिलतीहैं, और वह है व्यक्तिवादिताकी प्रधानता। इन कवियों की व्यक्तिवादिता व्यक्तिगतताकी ओर उन्मुख है जबकि छायावादी कवियोंकी व्यक्तिवादिता वैयक्तिकताकी ओर उन्मुख थी। छायावादी कवियोंका अपने व्यक्तिगत अनुभवके प्रति गोपन-भाव था, जबकि इन कवियोंमें अपने व्यक्तिगत अनुभवको लेकर स्वीकार और खुलकर व्यक्त करनेका भाव था। इसीलिए इनमें से ऐसे कवि कम ही हैं जिनमें हमें आध्यात्मिकता और रहस्यवादकी प्रवृत्तियां मिलतीहैं। इस पीढ़ीके जिन कवियोंकी परिणति आध्यात्मिकता अथवा रहस्यवादमें हुई, उन्हें हम आसानीसे छायावादसे सर्वाधिक प्रभावित कवि मान सकतेहैं और उन्हें बेहिचक उत्तर छायावादी कवि कह सकतेहैं। ये कवि छायावादसे ही नहीं अपितु प्रगतिवाद और प्रयोगशीलतासे भी प्रभावित हैं।

गिरिजाकुमार माथुरपर विभिन्न मात्राओंमें ये प्रभाव प्रारम्भसे ही देखनेको मिलतेहैं। इस बातसे वे स्वयं परिचित थे। तभी तो उन्होंने एक साक्षात्कारमें 'मंजीर' कालकी अपनी कविताओंके सन्दर्भमें कहा था—

"उस समयकी कविताओंमें उत्तरछायावाद काल की मनोभूमि और शैली है; और कुछ कविताएं मुक्त छन्द, नयी भाषा, शैली और यथार्थ चेतनाके निकट है। उनमें मेरे इतिहासबोधका भी कुछ प्रमाण है। उन्हीं दिनों यूरोपमें फ़ासिज़्मका उदय हो रहाथा, जिसके विरुद्ध कवियों-लेखकोंमें एक प्रतिक्रिया आरम्भ हो चुकीथी। विनाशके बादल मंडरा रहेथे। मुसोलिनी ने एबीसीनिया जैसे छोटे देशपर आक्रमण किया। एक नये प्रकारके साम्राज्यवादी प्रसारकी विभीषिका सामने खड़ी हो गयीथी। उसीके बाद दूसरा विश्वयुद्ध शुरू हुआ। इन दोनों अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियोंकी प्रतिक्रिया मेरी कवितामें अभिव्यक्त हुई। 'विजय', 'तूफानोंकी छाया', 'अदनपर बम वर्षा' ऐसी ही कविताएं थीं। कुछ नवरोमानी प्रयोगात्मक कविताएं थीं, जिनमें अनुभवकी नयी जमीन उद्घाटित हुईथी। जैसे, 'प्रेमसे पहले', 'लोरी' इत्यादि। कुछ गीत, जैसे, 'प्यार बड़ा निष्ठुर था मेरा', 'मेरे जी में पीर कहां है' आदि में भी एक नयी दिशा-दृष्टिकी सूचना मिलतीहै। (सन्धान-६२: १९६४)

इसका एक अर्थ यह लगाया जा सकताहै कि गिरिजाकुमार माथुर ऐसे कवि थे जो आसानीसे जगत्प्रवाहमें बह जातेथे। एक सीमा तक यह सच है; और इसका प्रमाण है साठोत्तर कालकी कविताके साथ रहनेका उनका प्रयत्न। साठोत्तर कालमें जो दर्जनों काव्यान्दोलन चले, उनमें 'अकविता'का आन्दोलन सर्वाधिक प्रबल था। यह आन्दोलन मूलत: निषेधात्मक था। गिरिजाकुमार माथुर इसके साथ थे। 'अकविता' के विभिन्न अंकोंमें न केवल उनकी कविताएं प्रकाशित हुईहैं अपितु उनका चरित्र भी अकवितावादी है। अकविताके साथ जुड़े विभिन्न कवियोंने—विशेषत: मुद्राराक्षसने—एब्सर्डिटिया (ऊलजलूल कविताएं) लिखीं। माथुर साहब भी पीछे नहीं रहे। उन्होंने भी एक ऊलजलूल कविता लिख डाली—

नगर, रे नगर
तू मच्छ रे मगर
मच्छर रेंग मर
मछन्दरे गमर
छिनन्दर दर छिनर

तनर, थनर
तगर मगर
घसर पसर
—जगर मगर (अकविता, अंक ४, पृष्ठ ५२)

इसके बाद आठवें दशकमें जब 'विचार कविता' की प्रस्तावना सामने आयी तब गिरिजाकुमारने उसका भी समर्थन किया और उसके साथ स्वयंको जोड़ा—"'विचार-कविता' शब्दका सबसे पहले प्रयोग १९७० में श्याम परमारने कियाथा। उनकी तीन कविताएं इसी नामसे 'मतान्तर' मासिक पत्रिकाके मार्च १९७० के अंकमें प्रकाशित हुईथीं। उसके पहले शुरू फरवरी, १९७० में मैंने 'इतिहासके जर्राहोंसे' नामक लम्बी कविता लिखीथी, जिसे मैंने 'विचार-कोलाज़' कहाथा —और इसी शीर्षकसे वह 'धर्मयुग' में प्रकाशित हुई थी। कविताके प्रति सामयिक प्रतिबद्धताका यह नया दृष्टिकोण स्पष्टतम सामने आ गयाथा। किन्तु वह आठवें दशककी कविताको परिभाषित करनेका एक निकष बनेगी, ऐसी कल्पना उस समय नहीं कीथी, न यह ख्याल था कि 'विचार-कविता' की प्रवृत्तिको रेखांकित करनेकी जरूरत पड़ेगी।" (विचार-कविताकी भूमिका—सं. नरेन्द्रमोहन, महीपसिंह, पृष्ठ ४३-४४) अर्थात् अनजानेही 'विचार-कविता' का बीज-वपन माथुर साहबने कियाथा।

कोई कवि आसानीसे जगत्-प्रवाहमें बह जाये और बहता रहे तो वह काव्यके क्षेत्रमें न तो अपनी अलग पहचान बना पाताहै और न ही कविके रूपमें उसकी कोई महत्त्वपूर्ण उपलब्धि होतीहै। गिरिजाकुमार माथुर जगत्-प्रवाहमें बहतेथे, लेकिन एक सीमा तक। उनमें प्रवाहके बीच जमकर खड़े होनेकी शक्ति थी और प्रवाहके विरुद्ध चलनेका साहस भी। यह शक्ति और साहस उन्हें अपनी प्रतिभा, परिवेश और संस्कारोंसे मिलाथा। उनमें मौलिक काव्य-रचनाकी प्रतिभा थी, इससे कौन इन्कार करेगा। उनका प्रारंभिक जीवन जहां बीता, उस परिवेशने भी उन्हें

प्रेरणा दी। उस परिवेश और उससे मिली प्रेरणाके सम्बन्धमें उन्होंने लिखाहै—"हवा चलनेपर हमारे घरके दो बड़े नीमके पत्तोंमें सांय-सांय भरती। तब उसकी लय भी मुझे अपनी ओर खींचती। गोधूलिमें लौटती हुई गायोंके गलेमें बंधी घण्टियां और उसके बाद बस्तीके मन्दिरसे सांझके धुंधलकेमें दूरसे आते हुए झांझ-मंजीरोंके साथ आरतीकी आवाज मेरे मनमें बस जाती। गांवका वह सन्नाटा-भरा वातावरण इन झांझ-मंजीरोंसे भरकर और गहरा होजाता और उसे एक लम्बे 'विस्तार' में डुबो देता। मुझे लगता कि गांवकी समूची दुनियां उसमें गुंजार उठीहै। मेरी कविता 'कौन थकान हरे जीवनकी' की अन्तिम पंक्ति 'कहीं बहुत ही दूर उनींदी झांझ बज रहीहै पूजनकी' इसका उदाहरण हैं। लेकिन दूरसे आती या जाती हुई इन सारी आवाजोंसे सन्नाटेकी पीठिका और व्यापक होजाती। मेरे मनमें यह सन्नाटा सूनेपनमें बदलता। सूनापन फिर उदासी बनकर मेरे मनपर छा जाता जैसे मेरी कोई अपनी चीज दूर चली गयीहो।…" (मुझे और अभी कहनाहै; भूमिका; पृष्ठ ९-१०) परिवेशसे प्राप्त यह सूनापन और उदासी जितना परिवेशका गुण है उतनाही कविकी अपनी मूल प्रकृतिका भी। गिरिजाकुमार माथुरकी मूल प्रकृति रूमानी है। लेकिन उन्होंने यथार्थके साथ अपनेको बराबर और सायास जोड़े रखाहै। इसीलिए उनके अनेक गीतों और कविताओंमें उनकी सहज रूमानियत और यथार्थका सायास बोध हमें एक साथ मिलताहै। उनका १९५३ में रचित बड़ा प्रसिद्ध गीत है 'छाया मत छूना, मन'। इस गीतका मूल स्वर तो रूमानी हताशाका है—

> जीवनमें हैं सुरंग सुधियां सुहावनी
> छवियोंकी चित्र-गन्ध फैली मन-भावनी
> तन-सुगन्ध शेष रही बीत गयी यामिनी
> कुन्तलके फूलोंकी याद बनी चांदनी
> भूली-सी एक छुवन बनती हर जीवित क्षण;
> छाया मत छूना, मन, होगा दुख दूना, मन।
>
> (छाया मत छूना, मन, पृष्ठ ११)

परन्तु कविके रूमानी मनकी हताशा दुख ही देगी, और कुछ नहीं - यह वह भली प्रकारसे जानताहै। अतः यथार्थसे सम्बद्ध रहनेवाला, उसके प्रति सजग रहनेवाला उसका व्यावहारिक मन उसे समझाताहै कि 'बीती ताहि बिसारि करि आगेकी सुधि लेहु'—

> द्विविधाहत साहस है, दिखताहै पन्थ नहीं
> देह सुखी हो पर मनके दुखका अन्त नहीं
> दुख है न चांद खिला शरद रात आनेपर
> क्या हुआ जो खिला फूल रस-वसन्त जानेपर
> जो न मिला, भूल उसे, कर तू भविष्य-वरण
> छाया मत छूना, मन, होगा दुख दूना, मन।
>
> (वही, पृष्ठ ११-१२)

जो द्विविधा हमें उनके इस गीतमें तथा उनकी सम्पूर्ण कवितामें मिलतीहै, वह उनके व्यक्तित्वमें भी थी और कवितामें वही प्रतिफलित होतीथी। इस बातको अजितकुमारने भी अपने एक संस्मरणमें लक्षित कियाहै—"दिलचस्प बात है यह कि एक ओर तो रही उनकी साहबी, अफसरी, अंग्रेजियत, रिजर्व…और दूसरी ओर छोटे-बड़े हरेकके साथ उनकी मित्रता, घनिष्ठता, आत्मीयता। जरूर ही उनके ये परस्पर विरोधी लगने वाले गुण, उनके फार्मल और इनफार्मल चेहरे—उनकी रचनामें झलकतेहैं।" (निकट मनमें, पृष्ठ ४८)। उनके व्यक्तित्व और कृतित्वकी यह द्विविधा उनके परिवेशके साथ-साथ उनके परिजनों और उनकी वृत्तिकी भी देन थी। इसीलिए उनकी कवितामें हमें परस्पर विरोधी रंगतें मिलतीहै।

गिरिजाकुमार माथुरका सबसे प्रमुख रंग प्रेम या शृंगारका है। उनके पहले कविता-संग्रहसे लेकर अन्तिम संग्रह तक कोईभी संग्रह ऐसा नहीं मिलेगा. जिसमें शृंगारिक कविताएं भरपूर मात्रामें न हों। उन्होंने उस दौरमें भी ऐसी कविताएं लिखीं जब प्रेम या शृंगारकी कविताएं लिखना रीतिकालीन, सामन्तवादी और ह्रासशील प्रवृत्ति माना जाने लगाथा। इस संदर्भमें उन्हें अपनी इस प्रकारकी कविताओंके संबंधमें कभी-कभी सफाई भी देनी पड़ी। 'मुझे और अभी कहनाहै' की भूमिकामें उनका यह कथन ऐसीही सफाई का एक उदाहरण है—"मेरी कविताओंके बारेमें एक और बात बार-बार कही गयीहै कि मैं मूलतः प्रेम; माधुर्य, और सौन्दर्य या रंग, रस, रोमांस और देह-रसका कवि हूं। लेकिन प्रेम और माधुर्य, संघर्ष और यथार्थकी पहचान मुझे समान रूपसे रहीहै। मैं जहां जन्मा था, वह कालिदासकी भूमि हैं और कालिदास सिर्फ प्रकृति, स्त्री, सौन्दर्य और शृंगारके कवि नहीं हैं, बल्कि रघुवंश जैसे काव्यमें इतिहास और विराट्को भी उन्होंने समेटाहै। भर्तृहरिके 'शृंगार, नीति और

वैराग्य शतक' की परम्पराका भी यह प्रदेय है। इतिहास-चेतना, विद्रोह, जुझारूपन यहांकी जन-परम्परा है। यह सही है कि जीवनके सुन्दर, मधुर, मांसल, ऊष्म, कमनीय तथा प्रगाढ़ ऐन्द्रिय अनुभवोंको व्यक्त करनेके लिए मैंने अपनी कवितामें अपने समूचे संवेदनात्मक व्यक्तित्वको मुक्त रूपसे उंड़ेल दियाहै। मैंने जीवनकी आसक्ति और जीवनका आनन्द, उल्लास पूरा व्यक्त कियाहै। इसीलिए उन कविताओंने लोगोंका बहुत ध्यान खींचाहै। परन्तु मेरी प्रेम और सौन्दर्य सम्बन्धी कविताओंमें रीतिकालीन शृंगारिकता, रूप-रसाकुलता, वासना, रुग्ण विलासिता या मात्र देह-रस नहीं है; उसमें पारिवारिक प्रेम, प्रणय, ममता और स्वस्थ ऊष्माकी अभिव्यक्ति हुईहै, जो मनुष्यको शक्ति और सामर्थ्य देतीहै।" (पृष्ठ ३६-३७)।

जैसाकि हमने अभी कहाहै कि गिरिजाकुमार माथुरकी कविताका सबसे प्रमुख रंग प्रेम और शृंगार है। इसीने उनके पाठकों और आलोचकोंको सबसे अधिक आकर्षित कियाहै। जो लोग प्रेमके आलम्बन स्त्रीके शारीरिक-मांसल चित्रण मात्रको रीतिकालीन प्रवृत्ति मान लेतेहैं, उन्होंने गिरिजाकुमार माथुरकी प्रेम या शृंगार सम्बन्धी कविताओंको भी रीतिकालीन घोषितकर दियाहै। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि ऐसे लोगोंकी समझ बहुत सीमित और स्थूल हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं हैं कि शुरूसे लेकर आखिर तक माथुर साहबमें नारी-शरीर और उसके मांसल सौन्दर्यके प्रति तीव्र लालसा और आसक्ति थी। उनकी पहले दौर की कविता 'रात हेमन्त की' में नारी-शरीरका यह मांसल चित्र हमें देखनेको मिलताहै—

नयन लालिम स्नेह दीपित
भुज-मिलन तन-गन्ध सुरभित
उस नुकीले वक्षकी
वह छुवन, उकसन, चुभन अलसित

इस अगरु-धुधिसे सलोनी हो गयीहै
रात यह हेमन्तकी
कामिनी-सी अब लिपटकर सो गयीहै
रात यह हेमन्तकी।

(मुझे और अभी कहनाहै, पृष्ठ १०२)

यद्यपि यहां कामिनीको उपमान बना दियाहै, फिरभी इससे उसकी मांसलतामें कोई अन्तर नहीं पड़ाहै। उन्होंने अपनी पहले दौरकी कवितामें प्रायः प्रकृतिपर नारीका आरोप कियाहै। इसे हम उनके कविपर छायावादी प्रभाव मान सकतेहैं। 'सावनके बादल' शीर्षक कवितामें भी इसका उदाहरण हमें मिलताहै। लेकिन बादमें यह प्रवृत्ति कम होगयी। उनमें जो नैतिक संकोच था, वह जाता रहा। 'भीतरी नदीकी यात्रा' संग्रहकी कविता 'ईंटार सांवली' में भवन-निर्माणमें मजदूरी करनेवाली स्त्रीका यह चित्र कविकी नारी-शरीरके प्रति आसक्ति और उसकी संकोचहीनताका ही द्योतक है—

वह ऊपर फिंकी/ईंट-सा बदन/ठमका सधा कद/
उठी चुस्त मेहनती बांहोंसे/ग्रिन जाने उठा/
सटा गेंद-झूल/छींटका पोलका/मेरी सारी आधुनिकताका/शीशे मढ़ा/शो-केस चटका—(पृष्ठ ३)

ऐसे चित्रोंमें निस्सन्देह वासना है, लेकिन वासनाके बिना प्रेमकी कल्पना कोरी कल्पना होतीहै। रीतिकालीन कवितासे इसकी भिन्नता इस बातमें है कि इसमें नारीकी शारीरिकताके साथ-साथ उसका व्यक्तित्व भी है। इस व्यक्तित्वके प्रति माथुर साहबकी दृष्टिको लेकर आपत्ति कीजा सकतीहै। पर यह दृष्टि सर्वत्र आपत्तिजनक नहीं है; क्योंकि उनकी कविताओं में शारीरिकताके साथ-साथ मानसिकता या भावात्मकता भी है। शृंगारिक कविताओंमें उनका भावबोध प्रायः रूमानी है। उनकी प्रेम-कविताओंमें उल्लास और अवसादका जो अतिरेक हमें मिलताहै वह प्रायः उनकी रूमानियतका प्रमाण है। मिलनकी स्मृतियां संयोगके समयके चूड़ीके टूटे हुए टुकड़ेको लेकर भावुक हो उठना, अवसाद, निराशा और उदासीसे भर उठना आदि सब रूमानी भावनाके ही प्रमाण है। कोई रूमानी मनोवृत्ति वाला कवि ही इस प्रकारकी पंक्तियां लिख सकताहै—

कौन थकान हरे जीवनकी ?
बीत गया संगीत प्यारका
रूठ गयी कविता भी मनकी !
वंशीमें अब नींद भरीहै,
स्वरपर पीत सांझ उतरीहै,
बुझती जाती गूंज अखीरी—
इस उदास वन-पथके ऊपर
पतझरकी छाया गहरी है,
अब सपनोंमें शेष रह गयीं

सुधियां उस चन्दनके वनकी।
(मुझे और अभी कहना है, पृष्ठ ३२)

यह रूमानी मनोभाव और दाम्पत्य एकनिष्ठाकी झलक माथुर साहबकी शृंगारिक कविताओंको रीतिकालीन शृंगारिक कविताओंसे अलग करतीहै। उनकी वासना में सात्विकता है। प्राकृतिक सौन्दर्यके प्रति उनके आकर्षणमें भी रूमानियत है।

गिरिजाकुमार माथुरके अन्त:करणसे जो कविताएं स्वत:स्फुरित हुईहैं वे यही शृंगारिक कविताएं हैं। उनकी अन्य कविताओंमें हमें बौद्धिक सजगता और सायासता मिलतीहै। वे मार्क्सवाद और प्रगतिवादके साथ होनेकी घोषणा बार-बार करते रहे। विचारधारा (और यह निश्चित रूपसे मार्क्सवादी विचारधारा है) के महत्त्वको रेखांकित करते हुए उन्होंने लिखा कि "विचारधाराके बिना कोईभी स्पष्ट जीवन-दृष्टि नहीं बन सकती बशर्ते कि वह विचारधारा समानता तथा जनमुक्तिके लिए हो।" (मुझे और अभी कहनाहै; भूमिका, पृष्ठ ४) उन्होंने बराबर ऐसी कविताएं लिखीं, जिन्हें आसानीसे प्रगतिवादी-जनवादी कविताएं कहाजा सकताहै। १९५२ में 'तैंतीसवीं वर्षगांठ' पर उन्होंने लिखाथा—

आज दुनियांके करोड़ों आदमी
सह रहेहैं धूप, सर्दी औ' नमी
जिन्दगीका एक भी साधन नहीं,
उम्र तपती धूप है, सावन नहीं।
जन्मदिनकी क्या खुशी होगी उन्हें
जिन्दगी है मृत्युसे भारी जिन्हें
भूख, बीमारी, गरीबी, गन्दगी
कौड़ियोंके मोल बिकती जिन्दगी।
आदमीका मिट गया सम्मान है
मनुजताका अब न गरिमा-गान है
वह नहीं इन्सानकी है सभ्यता
स्वार्थ, लालच, युद्ध जिसके देवता
मूलधन हिंसा, गुलामी सूद है
आदमी बन्दूककी बारूद है।
जब जगत्को चाहिये फुलवारियां
हो रहीं तब युद्धकी तैयारियां
फिर धरा-सीता सतायी जा रही
फिर असुर संस्कृति जमायी जा रही।
(मुझे और अभी कहनाहै; पृष्ठ १२४-२५)

१९५२ में ही नहीं, १९८९ में भी आम आदमीकी स्थितिमें विशेष परिवर्तन नहीं हुआहै, उल्टे उसकी हालत बदतर हुईहैं। माथुर साहबकी यही स्थापना है और इसका प्रमाण है उनकी 'राम भरोसे' शीर्षक कविता। जनसाधारणकी स्थिति ठीक हो, स्त्रीको समाजमें उसका उचित स्थान मिले, शोषण समाप्त हो, इसका जो उपाय उन्हें सूझताहै वह क्रान्ति है। 'नया कवि' शीर्षक अपनी कवितामें उन्होंने इसी क्रांति की बात कीहै। उन्होंने साम्यवादके पक्षमें और फासीवादके विरोधमें अनेक कविताएं लिखीहैं। फिरभी उन्हें हिन्दीके प्रगतिवादी खेमेमें कभी कोई महत्त्वपूर्ण स्वीकृति नहीं मिली। इसका कारण क्या था? हमारी समझमें इसका एक कारण गिरिजाकुमार माथुरकी स्वाधीन चेतना थी। वे किसी मठ या मठाधीशसे बंध कर नहीं चल सकतेथे। दूसरा कारण डॉ. नगेन्द्रके शब्दोंमें यह था कि उनकी "प्रगति-चेतना मध्यवर्गकी प्रगति-चेतना" थी। "इसलिए उग्र प्रगतिवादी आलोचक उसका उचित मूल्यांकन करनेमें कदाचित् असमर्थ रहे।" (आधुनिक हिन्दी कविताकी मुख्य प्रवृत्तियां, पृष्ठ १३६) एक तीसरा कारण भी था। और वह था अभिव्यक्तिका कलात्मकताके प्रति विशेष आग्रह। इसने भी प्रगतिवादी आलोचकोंको बिदकाया——

शब्द रस है
रस ध्वनि है
ध्वनि जितनी ही विकट है
जितनी वाचिक निरी गद्य है
रूखा विवरण है, रपट है
उतना ही बड़ा जस है,
उतना ऊंचा साहित्य है
ऊंचा विचार है,
उतना ऊंचा पुरस्कार है,
मठके तिलक-छापे बिना
हर लेखन बकवास है।
(मैं वक्तके हूं सामने; पृष्ठ १६-१७)

इस व्यंग्यमें कविकी अस्वीकृति-जनित तीव्र व्यथा भी मुखर है।

गिरिजाकुमार माथुर चौथे दशकसे लेकर नवें दशक तक की हिन्दी कविताकी प्रत्येक प्रवृत्ति साथ रहे। उनकी पांच दशकोंसे अधिककी लम्बी काव्य-यात्रामें ऐसा शायद ही कोई समकालीन विषय छूटा होगा

जिसपर उन्होंने कविता न लिखीहो। उनकी अनेक कविताओंके शीर्षक हमें चौंकाते हैं — जैसे, रेडियमकी छाया, रेडियो कवि-सम्मेलन, चूड़ीका टुकड़ा, मशीनका पुर्जा, प्रौढ़ रोमांस, देहकी आवाज, दियाधरी इत्यादि। इन शीर्षकोंके आधारपर यह अनुमान लगा पाना कठिन होगा कि इनमें कविने क्या कहाहै। वस्तुतः इन कविताओंमें महत्त्व विषयका नहीं, वस्तुका है। यह इस-लिए कि जब कविकी वैयक्तिकता-व्यक्तिगतता प्रधान हो उठतीहै तब महत्त्व विषयका नहीं विषयीका हो जाताहै। विषयीकी प्रधानता व्यक्ति-वैचित्र्यवादको जन्म देतीहै। व्यक्ति-वैचित्र्यवाद अनुभूति और अभि-व्यक्ति दोनोंके स्तरपर प्रयोगशीलताकी ओर उन्मुख होताहै। गिरिजाकुमार माथुरमें प्रयोगशीलताकी प्रवृत्ति बड़ी प्रबल थी। परन्तु उन्होंने विषय और वस्तुके स्तरपर ऐसे प्रयोग नहीं किये कि उनके साथ पाठकोंका तादात्म्य या साधारणीकरण न होसके। उनके गीत तो सहज मधुर हैंही, उनकी अनेक कविताओंमें भी गीतात्मकता विद्यमान है। वस्तुके स्तर पर उनका सबसे बड़ा प्रयोग उनका खण्डकाव्य 'कल्पा-न्तर' है जिसमें उन्होंने नवीनतम भौतिक वैज्ञानिक आविष्कारोंको कविताका विषय बनानेका प्रयत्न किया है और जिसमें उन्हें आंशिक सफलता ही मिलीहै। काव्य-रूपके स्तरपर भी उन्होंने कोई विशेष प्रयोग नहीं कियाहै। उनकी प्रयोगशीलताका मुख्य क्षेत्र अभिव्यंजना-शिल्पका है।

'तारसप्तक' के अपने वक्तव्यमें उन्होंने घोषणा कीथी कि "कवितामें विषयसे अधिक टैकनीकपर ध्यान दियाहै। विषयकी मौलिकताका पक्षपाती होते हुए भी मेरा विश्वास है कि टेकनीकके अभावमें कविता अधूरी रह जातीहै। इसी कारण चित्रको अधिक स्पष्ट करने के लिए मैं वातावरणके रंग उसमें भरताहूं।···वाता-वरण चित्रणके 'डिटेल' में मैंने रंगोंका आधार विशेष रूपसे रखाहै, किन्तु मैं चित्रको सदा हल्के रंगोंकी छांहों के आवरणमें लिपटा पसन्द करताहूं; क्योंकि यथार्थ चित्रके सभी डिटेल मैं कलाकी दूरीसे देखता रहाहूं। मेरा विश्वास है कि अत्यधिक गहरे रंगोंका प्रयोग कलामें प्राचीनता (मेडीवल ट्रेट) का द्योतक है। क्लासिकल विषयोंपर गम्भीर शैली (ग्रैंड स्टाइल) में लिखी कविताओंमें मैंने गहरे रंग प्राचीनता लानेके लिए ही रखेहैं। यहां मैंने आधारभूमि विशालकाय कर दीहै और डिटेल कम। डिटेल मैंने रोमानी कवितामें अधिक भरेहैं। इसके अतिरिक्त मैं चित्रकलाकी 'तीन दूरियां' चित्रके पूर्णत्व (राउण्डिंग-अप) के लिए यत्रतत्र लाया हूं।' (पृष्ठ १६८)।

रंगोंकी भांतिही माथुर साहब ध्वनियोंके प्रति भी अत्यन्त सजग रहेहैं? यह सजगता कवि-जीवनके प्रारम्भसे ही उनमें थी। 'तारसप्तक' के ऊपर संदर्भित अपने वक्तव्यमें उन्होंने लिखाथा — "रोमानी कविताओं में मैंने छोटी और मीठी ध्वनिवाले बोलचालके शब्द प्रयुक्त कियेहैं। रोमानी कविताएं मैं हिन्दुस्तानी भाषा में ही लिखना पसन्द करता हूं। क्लासिकल कविताओंमें आर्य गुण लानेके लिए बड़ी लम्बी और गम्भीर ध्वनि वाले शब्द रखेहैं। अभिव्यंजनात्मक शब्द-विन्यास वातावरणके रूप-भावके अनुकूल नये बनायेहैं - जैसे पतला नभ, सिमटी किरन, आदिम छांहें, घूमते स्वर, आदि। क्योंकि मैं व्यंजनाको वातावरणके लघु चित्र अथवा प्रतीकका रूप दे देताहूं। कहीं-कहीं नये शब्द वातावरणका ध्वनि-भाव लेकर बनायेहैं, जैसे सूनसान, खंडरों आदि। उदाहरणार्थ 'सूनसान' शब्द लीजिये। 'शून्यता', 'सूनापन', 'सुनसान' सभी शब्द उस ध्वनि-भावके साथ निर्बल प्रतीत हुए। 'शून्य' में एक खोखला-पन है, 'सूनापन' में दो स्वर-ध्वनियोंकी तेजीके बाद ही अन्तकी व्यंजन-ध्वनियां गतिको समाप्त कर देतीहैं, रोक देतीहैं। 'सुनसान' सबसे निर्बल है, क्योंकि इसमें केवल एक स्वर-ध्वनि है और आरम्भकी दो व्यंजन-ध्वनियोंसे शब्द-निर्मिति है। 'सूनसान' में 'ऊ' की ध्वनि लम्बाई और दूरी व्यक्त करतीहै, 'आ' की ध्वनि-विस्तार। बीचमें 'न' की ध्वनि सनसनाहट और गहराई व्यक्त करतीहै। इस प्रकार 'सूनसान' शब्दका ध्वनि-भाव 'आं ऊं' हो जाताहै जो गहरे सुनसानका यथार्थ रूप है।" (तारसप्तक, पृष्ठ १६६)। उन्होंने अपने लिए विभिन्न स्वर-ध्वनियोंके भावमूल्य भी तय कर रखेथे। शब्दोंकी ध्वनि और उनकी अर्थ-व्यंजनाके प्रति उनकी यह सजगता और प्रतिबद्धता अन्ततक बनी रही। 'मैं वक्तके हूं सामने' में कई कविताओंमें शब्दों के प्रति अपनी सजगता और उनके महत्त्वका प्रति-पादन कियाहै। पहली ही कविता 'शब्द जो रोशनी है' में उन्होंने लिखाहै—

मेरे पास सिर्फ शब्द हैं/ जो समयके अस्त्र हैं/
इन अस्त्रोंकी धार बचा चमकदार रखनाहै/

क्योंकि चारों तरफ आज बड़े चालाक शब्द हैं/
जो भीतरसे जंग लगे/ बाहरसे चुस्त हैं/
उन शब्दोंको बेनकाब करनाहैं। (पृष्ठ २)

रंगों, ध्वनियों तथा अन्य इन्द्रियबोधोंके प्रति गिरिजाकुमार माथुरकी इस सजगताका एक सुखद परिणाम यह हुआहै कि उनकी कविता बिम्ब प्रधान और अत्यन्त सरस है। इसका दूसरा परिणाम हुआहैं कि लगभग सभी प्रयोगवादी-प्रगतिवादी कवियोंमें से वे उन दो-चार कवियोंमें हैं, जिन्होंने कलात्मक, किन्तु सुबोध भाषामें कविता लिखीहै। उनकी काव्य भाषामें माधुर्य और प्रासादिकता भरपूर मात्रामें है। भाषाके माधुर्य और गीतके संगीतके प्रति उनका आकर्षण इतना अधिक था कि उसमें बहकर वे कुछ त्रुटियां भी कर बैठतेथे। उनका बड़ा प्रसिद्ध गीत है 'पन्द्रह अगस्त'। हिन्दीमें देशभक्तिकी भावनासे पूर्ण इतने सरस-मधुर गीत बहुत कम है। इसमें देशके पहरुए को 'अचल दीपक समान रहने' के लिए कहा गयाहै। 'दीपक' उपमान है और 'अचल' उसका विशेषण। पहरेदारका अचल रहना ठीक है, लेकिन क्या दीपक अपनी अचेलताके लिए ख्यात है? यदि नहीं तो दीपकके साथ इस विशेषणका उपयोग अनुचित हैं। इसी प्रकार इस गतिमें पहरुएसे कहा गयाहै—'ले युगकी पतवार/ बने अम्बुधि महान् रहना'। पतवार अम्बुधि लेताहै अथवा मल्लाह? ऐसी असावधानियोंके और भी उदाहरण हमें माथुर साहबकी कवितामें मिलतेहैं। उन्होंने अपनी कवितामें बड़े व्यंजक और चित्रात्मक विशेषणों और उपमानोंका उपयोग कियाहै; पर साथही उन्होंने ऐसे उपमानोंका भी उपयोग कियाहै—

चांद पूरा साफ
आर्ट पेपर ज्यों कटा हो गोल।
(धूपके ध्यान; पृष्ठ ८८)

पर इसे हम कविके रूपमें उनका छोटा-सा स्खलन मानतेहैं। प्रयोगशीलताके अन्तर्गत छन्दके क्षेत्रमें उनका एक प्रयोग विशेष रूपसे उल्लेखनीय है और वह है सवैयाके विरामों और लयपर आधारित मुक्त छन्दका निर्माण—

आज हैं केसर रंग रंगे वन
रंजित शामभी फागुनकी खिली पीली कली-सी
केसरके वसनोंमें छिपा तन
सोनेकी छांह-सा
बोलती आंखोंमें
पहिले वसन्तके फूलका रंग है।
(तारसप्तक, पृष्ठ १७१)

वस्तुत: गिरिजाकुमार माथुर शुरुसे ही स्वचेतन कवि थे। उनकी यह स्वचेतना प्रेम, प्रगति, प्रयोग सभी क्षेत्रोंमें विद्यमान है। यह उनकी रचनाओंमें भी विद्यमान है और रचनाओंके सम्बन्धमें दिये गये उनके वक्तव्योंमें भी। उनकी कविताओंमें हमें कहीं भी किसी प्रकारकी उलझन या अस्पष्टता नहीं मिलेगी। ऐसी ही उनकी कविता-सम्बन्धी अवधारणा भी एकदम स्पष्ट थी, और इसे उन्होंने अनेक बार व्यक्त कियाहै। उनके अनुसार-"न तो सिर्फ विचार या कथ्य ही कविता कहला सकतेहै, न कोरी भावना या कला। कविकी प्रातिभ दृष्टि कथ्य और कथन-क्षमता के इस नाजुक सन्तुलनको तय करतीहैं कि कौन-सा पक्ष कितनी मात्रामें कवितामें रहेगा। इस गहरी द्वन्द्वात्मक प्रक्रियासे गुजरे बिना कोईभी श्रेष्ठ कलात्मक रचना हो ही नहीं सकती। उसकी सार्थकता और परिणति मनुष्यकी पक्षधरता, जनोन्मुख जीवन-मूल्यों और संवेदनाके अन्तरंग परिष्कारमें होतीहै। यही वह सूत्र है जो मेरी सौन्दर्य, प्रेम और इतिहास तथा यथार्थकी पिछली रचनाओंको जोड़तीहै और आजतक की रचनाओंमें हमेशा मेरे साथ रहाहै। संभवत: इसीलिए मुझे अपनी बनायी हुई रचना-परिधियोंको तोड़कर नयी अनुभव-भूमियोंकी तलाशमें बाहर आना बहुत अच्छा लगताहैं।" (मैं वक्तके हूं सामने, भूमिका)।

उनके इस वक्तव्यकी स्थापनाओंको लेकर मतभेद की गुंजाइश कम ही है। □

परम्परा, परिवेश, प्रतीक-मिथक-आद्यबिम्बके प्रयोक्ता कवि : सीताकान्त महापात्र

—डॉ. तारिणीचरण दास 'चिदानन्द'

परिचय

कवि सीताकान्त महापात्रका जन्म कटक जिलेके कीरुआ नामक गांवमें १७-९-१९३७ ई. को हुआ। दर्शन तथा इतिहास (प्रतिष्ठा) विषयमें रैवेंशॉ कॉलेज से बी. ए. की परीक्षा, राजनीति-विज्ञानसे उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालयसे एम. ए किया। १९५९ से १९६१ तक वे रैवेंशॉ कालेजमें प्राध्यापक रहे, १९६१ ई. में भारतीय प्रशासन सेवामें आये। १९६८ में कैम्ब्रिजमें अध्ययन किया। भाबा फैलोशिप पाकर जनजाति-संस्कृति तथा पूजा-पद्धतिके संबंधमें अनुसंधान किया और उत्कल विश्वविद्यालयसे पी-एच. डी. प्राप्त की। आजकल भारत सरकारके मानव संसाधन विकास (संस्कृति विभाग) के सचिव पद पर हैं। एक निराडम्बर, गंभीर तथा हंसमुख स्नेह-परामण व्यक्ति हैं। कविताके अतिरिक्त यात्रा-वर्णन, निबन्ध लेखन, संपादन तथा अनुवादमें भी रुचि हैं।

सीताकान्तजी अबतकके देश-विदेशके अनेकों पुरस्कारोंसे सम्मानित है। उड़ीसामें आप विषुव पुरस्कार, सारला पुरस्कार और ओड़िशा-साहित्य अकादमी पुरस्कार एवं भारतीय स्तरपर भारत साहित्य अकादमी पुरस्कार, कुमारहासान पुरस्कार तथा ज्ञानपीठ पुरस्कार द्वारा सम्मानित हो चुकेहैं। उन्होंने कई विदेशी कवि सम्मेलनोंमें भाग लियाहै। "इंटर नेशनल एकाडेमी पोइट्स" के वे सदस्य रहेहैं। उनके कई काव्य संकलनोंका हिन्दी अनुवाद तथा पांच संकलनोंका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुआहै।

महापात्रजीका काव्य जीवन १९७३ ई. से शुरु हुआहै। वे कोटिके कवि ही नहीं, गंमीर निबंधकार, यात्रा-वृत्त लेखक संपादक तथा सफल अनुवादक भी हैं। अबतक उड़ियामें प्रकाशित उनकी पुस्तकें हैं :—

कविता—(क) दीप्ति ओ द्युति (१९६३), (ख) अष्टपदी (१९६७), (ग) शब्दर आकाश (१९७१), (घ) समुद्र, (१९७७), (ङ) चित्रनदी (१९७६), (च) आर दृश्य (१९८१), (छ) समयपर शेषनाम (१९८४), (ज) काहाकु पुच्छिबा कुह (१९८७), (झ) चढ़ेई रे तुकि जाणु (१९९०)। **निबन्ध और यात्रा वर्णन**—(क) निःसंग मणिष (१९८०), (ख) भिन्न आकाश भिन्न दीप्ति (१९७८), (ग) अनेक शरत् (यात्रा)। जनजाति-कविता-संकलन—सार-हुलर जहत। अनुवाद—सूर्य तृष्णा।

आधुनिक उड़िया कविताके उन्नायक कवि सच्चिदानन्द राउतरायने पांडुलिपि (१९४७) नामक कविता संकलन प्रकाशित कर ओड़िआ-कविताको नया मोड़ दियाहै। उनका यह प्रगतिवादी तथा प्रयोगवादी कविताओंका संकलन था। सच्चिदानन्दके बाद अनन्त पट्टनायकने मार्क्सवादी, विनोद नायकने स्वच्छन्दतावादी तथा नित्यानन्द महापात्रने गांधीवादी संस्कार सम्पन्न कविताएं लिखीं। परंतु १९६० ई. में "काल पुरुष" नामकी लम्बी कविता लिखकर उड़िया काव्य क्षेत्रमें गुरुप्रसाद महान्तिने सर्वप्रथम टी. एस. इलियटके 'द वेस्ट लैण्ड' की धाराका प्रचलन किया। उन्होंने राउतरायकी नवल उपमा, नवीन छन्द और शब्दोंको नयी गति दी। गुरुप्रसादने मिथक तथा लोक गल्पोंका सुन्दर प्रतीकात्मक प्रयोग ही नहीं किया बल्कि आद्यबिम्बोंकी ओरभी संकेत दिया, इसी समय पाश्चात्य कविताके प्रभावसे अंग्रेजीके विद्यार्थी रमाकांत रथने प्रचलित तुकांत छन्दमें भी नये विषयोंका परिवेषण किया। रथजीने ऐतिहासिक पारम्परिक, समसामयिक तथा व्यक्तिगत प्रतीकोंका प्रयोग कर साठोत्तरी-उड़िया कविताको समृद्ध बनाया। उनके बाद १९६३ ई. में

उड़िया काव्य क्षेत्रमें सीताकान्तजीका एकाएक प्रवेश हुआ। उन्होंने नृतत्वके प्रभावसे ... जातिकी पूजा पद्धति पौराणिक प्रतीक, मिथक तथा देश-विदेशके आद्य बिम्बोंको अपनी कविताओंमें स्थान दिया। उनकी लम्बी कविताओंने पाठकोंका ध्यानाकर्षण किया, उनकी कविताओंने शुष्कता तथा कोरी गद्यात्मकता होनेपर भी नवीनता थी। उन्होंने अपनी कविताओंमें उड़ीसाकी संस्कृति तथा प्रकृतिको इतनी सफलतासे जोड़ा कि इस लेखकने अपने आलोचना ग्रन्थ 'समीक्षायन' में उनका स्वागत कियाथा।

काव्य कृतियां

"दीप्ति और द्युति" सीताकान्तजीका प्रथम काव्य संकलन है जो १९६३ ई. में प्रकाशित हुआथा। इससे उनकी काव्य प्रवृत्तियोंकी झलक मिलतीहै। यह कृति पल्ली वर्णना, सामाजिक चेतना और विश्ववेदनाके साथ पौराणिक प्रतीकों तथा मिथकोंका समावेश था, जिसे उनकी सम्पूर्ण प्रतिभाकी दीप्ति अथवा स्फुरण कहाजा सकताहै। "अष्टपदी" (१९६७) उनका इलियटीय प्रयास है, यह टी. एस. इलियटके द वेस्ट लैंडकी रीतिका उड़ियामें अन्य एक प्रयोग है। जैसे इलियटने प्राचीन पाश्चात्य मिथकों, किम्वदंतियों तथा आद्यबिम्बोंके खंडित प्रतीकों तथा कई उद्धरणों द्वारा पांच कविताओंके समाहारको एक लम्बी कविता अथवा महाकाव्यात्मक कविताका रूप दियाहै, वैसाही यह प्रयत्न है। उनसे पूर्व कवि गुरुप्रसाद महान्तिने "काल पुरुष" लिखकर इस शैलीका श्रीगणेश कियाथा। रमाकांत रथने भी 'व उपहरा' लिखा। फिरभी कविने जनजातियोंकी पूजा पद्धति, महाभारत तथा भागवतके खंडित प्रतीकों तथा रागकल्पोंसे अष्टपदीकी रचना की। इसका प्रथम प्रकरण 'मृत्यु नृत्य' है, जिसमें नरकका चित्रण है; 'स्तन-धमकी आत्मकथा'में संत्रस्त मानवका चित्र है; 'माटी और मनुष्य' में जनजाति पूजा पद्धति, बलिप्रथा, देवी पूजा, भागवतीय कंस भीति तथा श्रीकृष्ण के जन्मसे उसके विनाशकी आशा समाहित है। "त्रिशंकु" में मानव की आस्पर्द्धा और पतनका भय चित्रित है। 'मरुपथकी स्वर लिपि'में वैयक्तिक अनुभूति, अकेलापन, नैराश्य तथा मृत्यु भीति चित्रण है। "रक्त नदी संतरणके बाद" में दुर्योधनका नैराश्य तथा युद्धोपरान्त मानवकी अकुलाहट वर्णित है तो "कुब्जा" कवितामें पराधीनता, उत्पीड़न या घुटनसे मुक्त होकर मुक्त आकाशको देखनेकी चाह है। कुब्जा के शब्दोंमें —

> भूरी मौत और टूटे कालको खत्म होने दो,
> अंत होने दो अश्लील, कुत्सित, राज पूजा का,
> सूखे आसमानमें
> उमड़ने दो बादल...
> घुमड़ने दो काली घटाएं।
> ('कुब्जा' से)

अंतमें "सोलीन" के समुद्र दर्शन वाला प्रकरण जोड़कर कवि चार ओरके ज्वलन, पीड़ा, घुटन तथा अवदमनके बीच अंतिम शांतिकी कामना करताहै। परन्तु एक द्वीप निवासी डाक बंगलाके तत्त्वावेदारण सोलोनके साथ दो दिन ठहरकर उसे आद्यबिम्बका रूप देनेका प्रयास ही लगताहै। इससे कविताओंकी अन्विति तथा अंतर्वद्धनाको वहन करनेमें श्लथता प्रकट होतीहै। मेरे विचारसे संभवतः कोई वैदिक या उपनिषदीय प्रकरण अधिक समर्थ सिद्ध होता।

"शब्दर आकाश" (१९७१ ई.) केन्द्रीय साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत काव्य संकलन है। इसकी कविताएं प्रतीकात्मक, सरल तथा गंभीर हैं। इसके शब्द कविकर्म, धरतीसे उठकर आकाशमें पहुंचते और आकाशसे फिर धरतीकी ओर लौट आतेहैं। कविकी इस उभयविध संप्रीतिको अंतःसंघर्ष कहनेकी अपेक्षा मिट्टीसे बद्ध रहनेकी मानव प्रीति तथा समन्वयवादिता कहना अधिक युक्तिसंगत है।

'समुद्र' कई कविताओंको एक साथ संश्लिष्ट करने का उनका दूसरा प्रयास है। इसमें पश्चिम, प्रतिवेशी तथा परिणाम नामके तीन खंड हैं जो समुद्र सम्बन्धी कविकी बिभिन्न अनुभूतियोंको एक करनेके लिए उन्मुख हैं। प्रत्येक प्रकरणके प्रारम्भमें एक-एक उद्धरण है, जो संपृक्त खंडकी कविताओंको एक सूत्रमें बांधनेका प्रयास करताहै। समुद्र तटीय पुरीके समर्थ खंडित बिम्ब तथा मुहावरेदार उड़िया भाषा इसकी अन्य विशेषताएं हैं। यह काव्य जीवन, संघर्ष तथा विलयन के शोभनीय चित्रों द्वारा मानव-नियतिके शाश्वत संघर्षको उजागर करताहै।

"चित्र नदी' में कविकी नदीके आसपासके चित्रों को बटोरती समुद्रकी ओर बढ़तीहै अर्थात् परिपार्श्व

का चित्रण तथा समुद्रका महामिलन नदीके दो लक्ष्य हैं। इन दोनों लक्ष्योंको एक साथ समेटनेकी दक्षता "चित्र नदी" में है। अतः यह संकलन व्यावहारिक तथा दार्शनिक उभय है।

"समयर शेषनाम" (१९८४) में उपयुक्त परि-पार्श्व अथवा परिवेश और उन्मुक्त रूपमें आतेहैं। इस संकलन उड़िया भाषापर कविकी अद्भुत दक्षता दृष्टिगोचर होतीहै। इस संकलनमें कवि अपने घर, गाँव, नदी-नाले एवं बचपन तथा यौवनकी स्मृतियोंसे सम्बद्ध जान पड़ताहै, जिसमें कि घरेलू वातावरण तथा ग्रामीण जनजीवन उभर आयेहै।

भारतीय कविताके क्षेत्रमें साठोत्तरी कवितामें जो आविलता तथा प्रयोगशीलता दीख रहीथी वह १९८० ई. तक आते आते अनाविल होने लगी। सीताकान्तजी का 'समयर शेष नाम' तथा 'काहाकु पुच्छिबा कुह' आदि कविता-संकलन इसके उदाहरण हैं। दूसरे संकलनमें कवि दार्शनिकता और प्रयोगवादिताको छोड़ सारल्य तथा युग बोधमें पहुंचतेहैं। "काहाकु पुच्छिबा कुहट्ट' नामक कवितामें वे सरल संलाप-शैलीको अपनाते और युगकी अव्यवस्थापर व्यंग्य करतेहैं। इस संकलनमें स्थित दो मिथकाश्रित कविताओंमें भी वे युगकी अव्य-वस्था तथा पीड़ा ही देखतेहैं। करारे व्यंग्य, गंभीर मानवीय संवेदना तथा युगबोधसे यह संकलन समृद्ध है।

सीताकान्तजीकी कविताओंमें गद्यात्मकता, गति-हीन शुष्कता तथा अबोध्यताका आरोप लगाये जानेपर भी उनमें भारतीय परम्परा तथा उड़ीसाकी संस्कृति और प्रकृतिको उज्जीवित करनेकी अपूर्व दक्षता नकारी नहीं जा सकती। धरतीकी सोंधी गन्ध तथा आकाशकी निर्लिप्त गन्ध उन्हें वस्तुतः कविकी आख्यासे मंडित करतीहै। उनकी यशोदा कृष्णकी माता न होकर साधारण ग्रामीण बालककी माता बन जातीहै। बालक का दुःखसुख माताकी उद्विग्नता समाजकी स्थिति उन्हें युगबोधसे युक्त किये रखतीहै। अतः कवि काल्पनिक तथा दार्शनिक नहीं बल्कि वास्तविकतावादी भी बन जाताहै। परम्परा और प्रतिभाका यह गठबन्धन कम भारतीय कवियोंमें दीखताहै।

शैलीकी दृष्टिसे देखें तो उड़ीसाके तथा भारतीय आराध्य देव महाप्रभु जगन्नाथजीके प्रति कवि स्वयं प्रतिबद्ध है। उनकी अधिकांश कविताओंमें जगन्नाथजी तथा जगन्नाथदासके उड़िया भागवतके प्रति प्रतिबद्धता है। उनकी कविताओंमें महाभारत तथा भागवतके जितने बिम्ब दीख पड़तेहैं रामायणके उतने नहीं। पुनश्च देहातके जितने बिम्ब दिखायी पड़तेहैं नगरोंके उतने नहीं। देहातकी मेंड-मडैया, पेड़-पौधे, नदी-नाले, पशु-पक्षी (नवेला कजलौटा तितली व्यवहार्य वस्तुएं (अंगोछा, आँचल, चूड़ियां), भांति भांतिकी खानेकी चीजें; मेला, पाठशाला, नहानेके घाट विभिन्न पर्व आदि उनकी कविताओंमें जीवन्त हो उठेहैं, अतः पाश्चात्य शैली अपनाते हुएभी सीताकान्तजी अपनी संस्कृति और बाह्य प्रकृतिको नहीं छोड़ते—उड़ीसाके जनजीवनके अतिरिक्त आदिवासी जनताकी पूजा पद्धतियोंको भी अपनी कविताकी सामग्री बनाकर अपनी समग्रताकी सूचना देतेहैं।

फिरभी, यह मानना ही होगा, कि कवि महापात्र फ्रांसीसी तथा अंग्रेजी बिम्बवादी कवियोंकी उपज है, और उनसे भारतीय कविता भारतीय परम्परासे सम्बद्ध किसी महाकाव्यकी आशा रखतीहै। एक प्रश्न और यह है कि क्या कोई बिम्ब, आद्य बिम्ब, मिथक आदि का प्रयोग किये बिना कवि नहीं हो सकता? देशकी अन्य भाषाओंके साहित्यमें भी यह प्रवृत्ति दीख पड़ती है और समालोचकभी इसका समर्थन कर अपनेको आधुनिक सिद्ध करतेहैं। विश्व साहित्यमें बिम्बवाद जब असफल प्रमाणित हो चुकाहै, उसकी सीमाएं स्पष्टतर हो गयीहैं, भारतीय कविको अपनी साधना तथा ओजके बलपर चलनाहै। आशा है, भारतीय कवि इसका प्रत्युत्तर ढूंढ़ निकालनेमें समर्थ होंगे। □

अर्द्धशतीकी मुक्तक काव्य रचनाका आकलन

चैत्या

कवि : नरेश मेहता

समीक्षक : डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

'चैत्या' ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता नरेश मेहता की अर्द्ध शताब्दीकी काव्य-यात्राका प्रतिनिधि संकलन है, जिसमें स्वयं उन्हींके द्वारा चुनी ९९ कविताएं हैं। दूसरा सप्तकके कविके रूपमें जिस संवेदनशील व्यक्ति की काव्य-साधनाकी प्रतिष्ठा हुईथी उसकी चरम परिणति इस संकलनके रूपमें देखीजा सकतीहै। नरेश मेहता मूलतः नयी कविताके रचनाकार हैं, परन्तु आत्मकेन्द्रित वैयक्तिकताके अत्यधिक आग्रहके दुरूह शिल्पसे अलग हटकर उन्होंने अधिकतर वैयक्तिक अनुभूतियोंको बड़ी सूक्ष्म सौन्दर्यमयी शालीन अभिव्यक्ति प्रदान कीहै अभिजात्य रुचिके पाठकोंके लिए। नितान्त अछूती एवं विशिष्ट अनुभूतियोंको उन्होंने नये बिम्बों के माध्यमसे व्यक्त कियाहै। इन कविताओंमें देशकाल की समस्याओंसे ऊपर उठकर प्रकृतिके शुद्ध-शाश्वत सात्विक दिव्य आनन्दमय सत्तासे मंडित अनुभूतियोंको औपनिषदिक शब्दावलीमें व्यक्त कियाहैं। विविध रंग रूपमयी प्रकृतिके सूक्ष्मसे सूक्ष्म और विराट्से विराट् तत्त्वोंके माध्यमसे निष्कलुष बातावरणकी सात्विकता की संवेदनाओंको विशिष्ट जनग्राह्य शिल्पमें मुखरित कियाहै। प्रकृति, प्रणय, इतिहास और विराट् भूमाकी अनेक भव्य मुद्राओंका प्रगाढ़ रागात्मकतासे किया गया यह दुर्लभ अंकन हैं। आजके हिन्दी रचना संसारमें उनकी काव्य चेतनाके उच्च धवल शिखर अभिजात्य पाठकोंको एक विस्मयजनक आह्लादकी अनुभूति करातेहैं। अनायास लगनेवाला यह काव्यलोक आज विरल है। कोमलकान्त नवीन पदावलीके सम्मोहनसे पाठकका अछूते रहना संभव नहीं हैं। 'पिछले दिनों नंगे पैर' खण्डकी कविताएं इसका अपवाद अवश्य हैं। कथ्य या संवेद्यके बदलनेपर। मध्यकालीन मुस्लिम इतिहाससे सम्बद्ध इन कविताओंके लिए जो भाषा रूप उन्होंने प्रस्तुत कियाहै वह अधिक सप्राण है, पर वहांभी अरबी-फारसीके कुछ शब्द असम्प्रेषित ही रह जातेहैं।

'चैत्या' की कविताएं नरेश मेहताके पूर्व प्रकाशित संकलनोंसे ली गयीहैं। सबसे पहले 'दूसरा सप्तक', से उद्धृत कविताएं हैं। इनमें प्रकृति सम्बन्धी अनुभूतियां हैं, जिनमें लोक जीवनके पारिवारिक दृश्योंका बड़ा सहज अंकन है—"भिनसारेकी चर्चाके संग / फैल रही गीतोंकी किरणें/ पास हृदय छाया लेटीहै / देख रही मोतीके सपने/ गीत न टूटे जीवनका/ यह कंगन बोल रहे।" परम्परागत और कवि सम्मेलनी गीतोंसे अलग इसकी छवि है। प्रकृतिमें प्रणयका यह दृश्य छायावादी सौन्दर्यकी छविको ही व्यक्त करताहै-- 'लॉज कुंकुममें डूबे गाल। गिरी जब इन्द्र दिशामें देवि/ 'सोमरंजित नयनोंकी छांह / रूपके उस वृन्दावनमें।" उषसक्तीनका यह दृश्यभी 'कामायनी' के प्रकृति एवं रमणीक सौन्दर्यकी याद दिलाताहै—"उस सोमदेवके राजमहल/ नयन रागमय अधर गीतमय बने। सोमका कर फिर पान।" तथा भूमाका भोगो सुख/ नदियों का सोम पियो/ त्यागो सब जीर्ण वसन/ नूतनके संग चलते चलो/" ये 'कामायनी' की ध्वस्त देव सृष्टिकी छाया-से लगतेहैं।

दूसरे खण्डमें 'वनपाखी सुनो' से उद्धृत कविताएं हैं जिनमें अधिकतर संयोग-वियोगकी सूक्ष्म अनुभूतियां सधे हुए शिल्पमें व्यक्त हुईहै। अपनी निरर्थकताका

यह अंकन भी दर्शनीय है—"शंख सीपियों बीच/ समुद्री-झरबरी-से हम / अब भी भीगी पलकें/ अधूरे वाक्य/ कंठमें लिये खड़ेहै।" वियोगकी यह विडम्बना भी बड़ी बेधक है—"रह गये पीछे / जिनके कुन्तलों की छांहमें / हुआ सूर्योदय हमारा ।" "सिद्धोंकी सी सन्ध्या भाषामें यह रहस्यवादी उक्ति—"अपनेको वर दे श्रेष्ठ" का अर्थ मां समझातीहै—'बेटी/ वह यौवन था/ वरनेको आया /" बाउल गान रवीन्द्र और सिद्ध कवियोंके प्रभावसे यह कविता उद्दीप्त हो उठीहै। बीतते हुए दिनको 'अपमानित, उपेक्षित, तिरस्कृत करनेका प्रायश्चित इस रूपमें हुआहै—"लौटो ओ सम्यक् दिन लौटो/ हमें आलोकों/ हमारी मृत चेतनाओंको धेनु करो ।" लोकगीतोंकी भोली विरहिणी दिन भर आंख बिछाये बैठी रही प्रियकी प्रतीक्षा में "कागा बोले मोर अटरिया/ इस पावन वेलामें सूने/ चौमासा क्यों किया विग्र" तथा इस टेसूसे नील गगनमें हलद चांदनी उग आयी री/ पर अभी न लौटे उस दिन गये सवेरेके/ पीले फूले कनेरके ।" विरहकी इस रागिनीमें बड़ी गहरी पीड़ा है। यह उपालंभभी प्रियकी निष्ठुरताको उभारताहै "केतकीमें आ गये। फिर फूल पत्ते/ सब नये/ वचनके इस वकुलको/ पर क्या हुआ। जो हमें तुम दे गये।" पीड़ा सृजनका कारण बन सकतीहै—"पहचानो ये दुःख आजके/ घन चोटे सब/ धावित यात्रा/ वैतालिकता—देव कृपा हैं ।" दुःखको सुखमें बदलनेकी यह क्षमता वांछनीय है। प्रिय के संसर्गके कारण अच्छी लगनेवाली धूपकी यह स्मृति बड़ी मनोरम है" कौन जाने धूप उस दिनकी कहां है ? जो तुम्हारे कुन्तलोंमें/ गरम, फूली/ धुली, धौली लग रहीथी ।"

इनके बाद "बोलने दो चीड़को' से लिख लिये गये नवगीत हैं। इनमें भी व्यक्ति मनकी अत्यन्त-सूक्ष्म मनोरम कोमल संवेदनाएं हैं। चारों ओर प्रकृतिकी प्रफुल्लतासे भी मन अछूता रह गयाहै—"गाछ कुल हरसा/ नरसुलोंके फूलपर सहसा/ रंग तो बरसा/ हलद सरसों संग/ सुनहला कास भी सरसा/ पर हम न भीगे/ रंगमें या गंधमें ।" चीड़के जंगलका यह स्वर बड़ा व्यंजक है—"सम्बन्ध सी/ यह टूटती ही जायेगी/ सन्ध्या/ क्षितिजके पार/ बोलने दो चीड़को/ काफल कहीं पर पक चुकाहै ।" सन्ध्याका यह अमूर्त उपमान कविके सौन्दर्य एवं भावबोधके सूक्ष्म रागात्मक बोध का परिचायक है। बनस्पति जगत्का ऐसा चित्रण पंत निरालाके पश्चात् हिन्दीमें पहली बार हुआहै। 'पीपलसे' कविताके ये अंश द्रष्टव्य है—"रात भर तो सुन लिया/ फागुन आ गया/ फागुन आ गया/ बंधु/ वे अन्य हैं/ रंग पाग बंधनी हैं जिन्हें/" ऐसेमें अपना दुर्भाग्य अधिक चुभताहै—"बंधु/ मैंने सुन लिया/ फागुन आगया अब चुपभी करो/ करताल अपनो /" ऐसे ही संवेदनशून्य व्यक्तियोंको वसंतकी यह शुभ-कामनाभी बड़ी सार्थक है—"शुभ हो उनको भी यह वसन्त / जो बांच सके ना इसे/ और जिन्हें अनुभव न होताहो ।" वैयक्तिकताको बचानेका यह दृढ़ संकल्प भी कविकी जिजीविषाकी प्राणवत्ताका परिचायक है—"मैं वर्चस् बन/ पुत्रोंमें पौत्रोंमें लौटूंगा। आज एक/ कल अनेक बन लौटूंगा/ किंतु मैं लड़ूंगा तुमसे / तुम्हारे बंधु बांधवोंसे/ और इन कृपा पाशोंसे/ जिसने घेराहै / समय और भूमाकी प्रज्ञाको / व्यक्तिकी विवशताको ।" अमूर्त शत्रु से भिड़नेका अपनाही कौशल है, ज्ञात शत्रुओंकी उपेक्षा करके। इस युगमें शायद ही किसीके उपमान इतने अछूते और मौलिक हों—"भिक्षुणियोंके मुखों-सी/ओ सांध्य दीर्घाओ/ ···एक पवित्र.विशाल एकान्त/ भिक्षुणियोंके मुखोंकी भांति-अनिन्द्य ।"—मैंने प्रार्थनाओंसे कहा। लेकिन यह मोमबत्तियोंकी तरह / उदास भिक्षुणी बन गयी; भिक्षुणियोंकी उदासीनता, वैराग्य असम्पृक्त उपमानोंके रूपमें अभिव्यक्तिके सूक्ष्म सांस्कृतिक सौन्दर्यबोधकी व्यंजक है।

इनके पश्चात् कुछ कविताएं 'मेरा समर्पित एकान्त' से हैं। निजी अस्मिताको मुखरित करती ये कविताएं चुपके-से संवेदनशील पाठकोंके कानमें हृदय की बात कहती लगतीहै, सांसारिक हलचलसे दूर प्रकृति या मनके एकान्त कोनेमें केन्द्रित होकर कवि ने जो पायाहै उसीको अकुंठ भावसे स्वीकार करके वह संतुष्ट है। "यह समर्पित एकांत/ सबका कर्म/ सबका धर्म/ सबका स्वत्व है/ मैंने इन्हें निर्मल्यवत् स्वीकारा प्रभु ।" पूजा प्रार्थनाके भावसे निर्मल्यवत सत्य सबका धर्म-कर्म कैसे है। यह तो नितान्त व्यक्तिमनकी निर्वेद स्थिति है। एक साधकके लिए इस एकांत साधनाका जो महत्त्व हो, दूसरोंके लिए क्या है ?

इसके बाद की कविताएं 'उत्सवा' से ली गयीहै। यहांभी, प्रार्थना समर्पणका ही पवित्र वातावरण है

कृष्ण-भक्तिका सूक्ष्म और नया रूप। किसी समान-धर्माको सम्बोधित 'प्रार्थना धेनुएं' कवितामें व्यक्त हुआहै—"स्मरण करो/ कोई-सा भी उपाधिहीन सादा-सा दिन/ जब तुम्हें अनायास/ अपने स्वत्वमें किसी कृष्ण गंधकी प्रतीति हुईहो/ अथवा किसी ऐसे रागकी असमाप्तता/ जो तुम्हारी देह बांशी को/ गोवत्सकी भांति/ विह्वल कर गयीहो/ विश्वास करो स्मरणके उस गोचरणमें/ कहीं तुम्हारे लिए/ कोई प्रार्थना है।" विराट्, प्रकृतिका यह रूप इसी वैष्णव दृष्टिका परिणाम है—"नदियोंके अनन्त यज्ञोपवीत धारण किये/ इस धूर्जटिको कभी देखाहै/ जो अग्निके अनुरूप लिख रहा है।"

यह आकुल जिज्ञासा भी व्यक्तित्वका वैष्णवी पक्ष ही उद्घाटित करतीहै—"तब प्रार्थनामें/ निवेदनमें/ समर्पणमें/ क्यों नहीं व्यक्तित्व मेरा नदी बनता ?" अकिंचनता और परोपकारका यह भक्तिकालीन स्वर आज विलक्षण तो लगताही है। ऐसेही यह—"ऊर्ध्वकी इस अवरोहण यात्राको/ एक कविकी दृष्टि से देखो/ कैसी वैष्णवीकी उत्सुकता अनुभव होतीहै।" अनुभूतिकी यह वैयक्तिकता भी विलक्षण हीहै—"धरतीको कहींसे छुओ/ एक ऋचाकी प्रतीति होती है।" अन्यथा कबीर तो जन्मभर इस धरतीको देखकर दुखी होते रहे और रोते रहे 'दुखिया दास कबीर है जागे और रोवे।' लेकिन कविकी यह मानसिकता सच-मुच ईर्ष्य ही है जहां 'किसीको भी सूंघो/ सूर्यकी सुगंध मिलेगी / कहींभी जाओ/ एक सम्पूर्ण अनुष्टुप/ इस पृथ्वीपर लिखा मिलेगा।" यह कविका अपना ही भाव लोक है। वास्तविक जगत्से एकदम अछूता। आजके तुमुल कोलाहल कलहसे बहुत दूर है यह लोक, जिसमें फूल भी मंत्र होताहै। क्योंकि फूल/ एक शब्द ही नहीं/ सम्पूर्ण भाषा है। इस वैष्णव कविके भावलोक में "चींटीके आहत होतेही/ संहिताकी हत्या-सा लगता है।" लेकिन यथार्थ जगत्के नित प्रति होनेवाली नृशंस सामूहिक/ या एकाकी हत्याओंका हाहाकार वहां तक नहीं पहुंचता। आंगनमें खिले फूलकी गंधने "इस टूटे छाजनपर / वैष्णवताने कैसी यह 'ब्रज कृपा कीहै।" वनस्पति जगत्की इस सुषमाको ही कवि भाग-वत् कृपा कहना चाहताहै, (परं जग हंसाईके डरसे सम्भवत:) पर संकोचवश / इन वानस्पतिक भागवत् पृष्ठोंको/ फूलही कहताहूं।"

इतिहासको केवल अहंकारियोंकी नृशंसताओंके रूपमें ही कवि देखताहै और इसके लिए प्रार्थनाको प्रस्तुत करताहै—"इतिहास किसी भाषाका नाम नहीं है। और न ही किसी उदात्त मानवीय सम्बन्धका नाम/ वह तो शक्तिके लिए किया गया नितान्त अमानुषी रक्त स्नान है/' इसलिए "प्रति इतिहास हो जाने का नाम नहीं/" बल्कि इतिहाससे सर्वथा उदासीन होकर वनस्पति हो जानेको/ इतिहाससे सर्वथा अनासिक्त होकर निर्भय होजानेको, इतिहासके सर्वथा समानान्तर होकर विनम्र रचना होने, मानवीय विश्वास हो जानेको, जीर्ण पोथियों और उपेक्षितोंके नेत्रोंकी भाषा हो जानेको इतिहास मानाहै।

नित नवीन क्रूरताओंके बीच जीते हुए जन सामान्य क्या विशिष्ट जनके लिए भी यह विश्वास करना संभव नहीं है—"तुम नहीं जानते कि एक कवच है/ एक प्रार्थना है/ एक मंत्र है/ जो तुम्हें सम्पूर्ण आवेष्टित किये हुएहै/ जो तुम्हें निष्णात/ सुगन्धित किये हुएहै/ जो तुम्हें ईश्वरत्वकी ओर लिये जा रहा है। पराशक्तिमें ऐसी आस्था जिनकी बची हुईहै वे बड़भागी है। अन्यथा वस्तुस्थिति कितनी भयावह है यह किसीभी संवेदनशील व्यक्तिसे छिपी नहीं हैं। वड्स-वर्थके 'प्रकृतिकी ओर' वाले वायवीय नारोंका ही यह आधुनिक रूप है। विराट् प्रकृतिका यह दृश्य देखनेकी क्षमता किसी अलौकिक भावावेशमें ही संभव है—"पुराकथाओंके बाघम्बर लपेटे/ वह आग्नेय नेत्री रुद्र/ सूर्योपर लेटा हुआ/ संहारका धूम पी रहाहै/ और सृष्टिका प्रकाश उगल रहाहै/ यह कैसा महाश्मशानका स्वर्गोत्सव है। शक्तिके महाशव सदाशिवका यह कैसा लीलाभाव है/ यह किसका लीलाभाव है/" शैवागम का यह काव्यावतार आजके लघु मानवके लिए अबूझ पहेली-सा ही है। अद्वैतके इस साक्षात्कारको हृदयं-गम करनेके लिए बड़ी विराट् अनुभूति चाहिये—"जो कुछ है / यह यज्ञ हैं/ ब्रह्मांड जिसके बाघाम्बर हैं। उस यज्ञ पुरुषका यज्ञ ही/ यज्ञका यज्ञ है/" इसी प्रकार यह अनुभूति—"धरतीके से वे ही वक्षस्थलपर/ कभी भी कान लगाकर सुनो/ एक उत्सव बीणा बजती सुनायी देगी।" एवं "कभी मिट्टीको उदास देखाहै/ वह प्रत्येक क्षण/ ऋतु स्नान किये स्त्री-सी प्रस्तुत रहतीहै।" यह तो पूर्णत: रामराज्यका दृश्य है जहां दैहिक दैविक भौतिक ताप किसीको व्यापते ही नहीं।

मानवतामें यह विश्वास ही सभी संकटोंमें अभय का बल देताहै --"एक दिन मनुष्य सूर्य बनेगा/ क्योंकि वह आकाशमें पृथिवीका और पृथिवीपर आकाशका प्रतिनिधि होगा/ मनुष्यके इस देवत्वके माध्यमसे ही/ यह सम्पूर्ण सृष्टि ईश्वरत्वको प्राप्त करेगी।" परन्तु जगत्‌की दुर्धर्ष वास्तविकताकी तो कोई ध्वनि इस भावलोकमें प्रवेशकर नहीं पाती।

इनके बाद 'तुम मेरा मौन हो' से संकलित कविताएं है, जिनमें मानवीय प्रेमकी अनुभूतियाँ और स्मृतियाँ प्रकृतिके सन्दर्भमें देहसे परेकी भव्य मानसिक लोककी अछूती मुद्राओंमें व्यक्त हुईहै। विराट् भूमाके अगम अगोचर रूपकी अनिर्वचनीयताकी अपेक्षा ये कविताएं अधिक रागात्मकता और आश्वस्ति प्रदान करतीहैं---"मैं जबभी तुम्हें देखताहूं/ लगताहै— अग्रहायणी प्रातः धूपमें ओससे भीगा/ केनाका फूल क्यों उत्सव लगताहै/" प्रकृतिके रमणीय वातावरणमें दीख पड़ी प्रेयसीकी यह छवि कविको वास्तवमें सौन्दर्य स्रष्टा बना देतीहैं—"हवामें उड़ते तुम्हारे चीनांशुक में/ और पीले रंगके केनाके/ हिलते हरे प्रलम्ब पत्तोंमें/ केलि प्रसंग जैसी एकलयता है/ जोकि गुलाल उड़ाती/ कुमार गंधर्वके आलापकी कमनीयता ही हो सकतीहै। रूमालों जैसे पतले दलके/ हिलते केनामें/ और सान्ध्य धूपमें/ लॉनपर टहलती तुममें जाने कैसी मध्यकालीन कुलीनताकी साम्यता है/ जो कि तोलस्तोयकी नताशा में ही संभव है।"

नरेश मेहता लगताहै मुलत: प्रणय और सौन्दर्य के ही कवि है। इन दोनोंकी सूक्ष्म दिव्य 'अनुभूतियोंको उन्होंने अनेक अछूते उपमानों और व्यंजक बिम्बोंसे अपारम्परिक शब्द चयनके द्वारा व्यक्त कियाहै। इस खंडमें अधिकतर ऐसीही छवियां है—"तुम्हारा स्मरण ही सुगंध है प्रिय।" तथा "तुम नहीं जानती होगी कि तुम्हारी देहका यह कल्पवृक्ष बन्ध छवि मुद्राओंके साथ/ एक रत्नदीप-सा। प्रशांत दीर्घाओंवाले मेरे इस एकांतमें/ निर्धूम जल रहाहै----यह प्रतीक्षा करती एकान्तकी नेत्र भाषाही तुम्हारा स्मरण है प्रिया/' कविताका यह सहज क्षेत्र हैं। प्रकृति तथा मानव-तन-मनके सौंदर्यकी विविध रूप रंगमयी मुद्राएँ रसोद्रेक करनेमें समर्थ हैं। इन सहज मानवीय संवेदनाओंकी अभिव्यक्ति अत्यन्त परिष्कृत सौन्दर्य बोधके माध्यमसे जितनी अधिक सम्प्रेष्य है उतनी किसी अलौकिक अगम अगोचर सत्ताके माध्यमसे नहीं होपाती। परन्तु अनुभूतियोंकी यह संवेद्य अभिव्यक्ति यदाकदा अलौकिक भावभूमिकी ओर संकेत करती-सी लगतीहै, तभीतक वह वांछनीय है। दर्शन अध्यात्म रहस्य रोमांच काव्यके सहज विषय नहीं है। स्पर्शका यह अंकन बड़ा व्यंजक है—"मुझे अपने बांये कंधेपर/ पत्तियोंकी भाषा जैसा / तुम्हारे हाथका स्पर्श/ अभी अभी, शेष हुई। बाँसी जैसी/ तुम्हारी सांसोंकी सुगंध और समाप्त हो रहे प्रसंगके जैसा / तुम्हारे झुके सिरके सूर्यास्तका बोध/ क्यों निरन्तर होता रहताहै प्रिया ? तुम्हारी स्मृतिका ताल भी/मेरीही भांति थरथराताहै ?" यह जिज्ञासा भी बड़ी सहज है। प्रेयसीकी इस मुद्राका रसास्वादन कोई भुक्तभोगीही कर सकताहै—"प्रिया/ उठाओ अपना यह आनत मुख/ मुझे तुम्हारे इन बुदबुदाते अधरोंका नहीं/ छलछलाये हुए नेत्रोंका विश्वास है/" इन कविताओंमें व्यक्त प्रेयसीको इनसे बाहरभी देखनेकी कवि की यह इच्छा भी सहज ही है---"कभी तो इन कविताओंसे बाहर निकलकर/ मेरे सामने/ एक प्रिया/ एक सुगंध/ एक नाम बनकर बैठो / और इस अलभ्यताका साक्षात् करनेदो/ जिसे तुम अपनी देहयष्टिमें/ परिधान में/ और नेत्रोंमें वहन करतीहो/" नेत्रोंका वंशीमें यह रूपान्तरण बड़ा भव्य है---"मत बजाओ/ अपने इन अप्सावरी नेत्रोंकी बाँशीमें/ मत बजाओ मेरा नाम/ यह साधारण-सा मेरा नाम/ तुम्हारी बाँशीमें बजकर उत्सव हो जायेगा प्रिया/ मेरे नामको/ अपने एकांतका सम्बोधन ही रहनेदो/" नेह दृष्टिका यह फल भी एक दुर्लभ बिम्बसे व्यक्त हुआहै—"प्रातःकालीन आलापसी/ ये मंदार पलके/ क्रमशः उठाकर तुम तो मात्र देखतीहो/ परन्तु मुझे लगताहै/ जैसे गुलालके बादलोंका एक प्रपात आकाशसे फटा पड़ाहै।" प्रियाकी यह छवि अभूतपूर्व ही लगतीहैं—"अपने फैले केशों/ चपल चितवनों/ और कनेरी अंगुलियोंमें/ यह मेरे सर्वस्व अपहरणका/ कैसा वल्लभा अनुष्ठान। देहकी समस्त आलाप भाषाके साथ/ कौमुदी महोत्सव-सा मेरे सामने सम्पन्न हो रहाहै।" देह सौन्दर्यका ऐसा भव्य अंकन बहुत कम हुआहै।

जूड़ेमें फूल लगानेका यह कारण बहुत रसमय है —"वृंतपर लगा फूल/ परम पुरुषके स्तवनका अनुष्टप है/···जूड़ेमें लगा फूल/पार्श्वमें खड़े पुरुषकी कविता है।" प्रियके अधरोंपर सजनेका सोभाग्य पाना सचमुच ईर्ष्या

है "वाद्य ही नहीं/ कोईभी इन देव दुर्लभ अधर पल्लवों का स्पर्श पाकर/ आद्यन्त बांशी बन, सकताहै—"मानवीय आकुलताका वाद्य बांशी/ तुमने मुझे बांशी भी कहाँ रहने दिया ? उस माधवी स्पर्शको बीते तो/ एक युग हुआ और तबसे/ मैं हवा मात्रमें बजता हुआ / केवल तुम्हारा नाम हूं/ बांशी भी नहीं/ केवल नाम।" राजनीति और देहकी मांसलताके कोलाहलमें मलय समीरके झोंकों-सी मनको ये बातें निश्चित ही कवि और युगके लिए एक गौरवास्पद उपलब्धि है। प्रणय जैसे सर्वाधिक लोकप्रिय विषयपर इतनी अधिक मात्रा और गुणमें लिखी गयी ये रचनाएं किसीभी साहित्यके लिए गर्वकी बात है। इन्हींमें नरेश मेहताके कविकी सर्वाधिक सहज अभिव्यक्ति हुईहै। अनेक नये मौलिक अछूते अपारम्परिक उपमानों और बिम्बोंके कारण ये कविताएं सहृदय पाठकोंके निकट अपनी पहचान बनानेमें समर्थ हैं। प्रणय और कविताका यह संयोग दोनोंके सहज सुन्दर रूपको व्यक्त करताहै।

अगली कविताएं 'अरण्या' से उद्धृत हैं। रूप रस गंध स्पर्श श्रवणके लोकमें भटकते हुए संभवतः अकस्मात् कविता मिल जाये। "फूल वाद्य देह फल और गंध केअतिरिक्त स्मृतिलोक तथा "ऐसे न जाने कहां कहां/ किन किन रूपोंमें भटकना होताहै/ और तब जाकर अभिहित होतीहै/ एक कविता/" काव्यशास्त्रीय कथनों से कविता नहीं बन पाती—"कविता अर्थ नहीं, अनुभव होतीहै। क्योंकि वह भी सत्ता है/ अप्रतिहत, अप्रमेय/ इसीलिए/ शब्दपर जाकर खड़े मत रहो/ शब्दका उल्लंघन ही कविता है।" कलहके इस तुमुलनादसे बहरे हुए परिवेशमें मानवताके भविष्यके प्रति आश्वासनका स्वर देनेवाली कविताकी आज अभूतपूर्व आवश्यकता है—"इतिहास और राजनीतिसे दग्ध हुए/ मनुष्य मात्र को अब केवल कविताकी प्रतीक्षा हैं। कविताका लोगों के बीच लौटना / मनुके लौटने जैसा होगा — / कविता का लोगोंके बीच लौटना/एक अविश्वसनीय घटना होगी। इसलिए मेरी अरण्यानी/मुझे यहांसे अपनी धरती/ अपनी शाश्वतताके पास लौटनाही होगा/" कविताकी वापसी का नारा जोरशोरसे लगाया जाता रहा लेकिन जो कविता धरती और उसके लोगोंके पास लौट चुकीथी कवि सम्मेलनों और लोकप्रिय वेश धारण करके वह व्यावसायिकता, गलेबाजी, और अवसरवादिताके कुहासेमें खो गयी। कविताका स्थान तो उसके पाठक-श्रोताओं का हृदय ही है यदि वहां उसका प्रवेश हो सके तो।

कुछ कविताएं 'पिछले दिनों नंगे पैरों' से ली गयीहैं जो मध्यकालीन मुस्लिम इतिहासके भोग-विलास और रक्तरंजित युद्धकी लोमहर्षक घटनाओंपर आधारित है। अरबी फारसी शब्दावलीसे तत्कालीन परिवेशको सजीव करती हुई हुस्न और इश्कके तिलिस्मी 'एक देह गंध / और श्वेत पंखोंवाली चांदनीमें गरारेसे झांकते हुए इसी परीजाद हसीनाकी पिंडलियोंको सुरसुराता रानोंपर और उससेभी ऊपर भागपर पड़ती खुशबूदार फव्वारेकी फुहारोंका मायावी स्पर्श हैं जिसका पर्यवसवान इस परीकी हत्यामें होताहैं। नंगे पैर घूमनेपर जो कविको मिलाहै, इतिहासकी गुफाओं में, उसकी एक झांकी यह भीहै —"मैं न तो आदमी हूं/ न उसकी लाश ही / बल्कि इन दोनोंपरसे/ उधेड़कर उतार ली गयी/ खून टपकाती खाल हूं/इतिहासकी धूपों में/ सूखती हुई एक खाल।" इतिहासका एक और दृश्य भी ऐसाही है—"वैसे तख्ते ताऊस भी/ शाही लिबास और जाहो जलालमें तलवार ही है / या जलते कुतुबखानोंकी खाक होती तामीरे हों/ या फौजियोंके खौफके आगे दम तोड़ती चीखती चिल्लाती मासूम बस्तियां हो / जमशेदके प्यालेमें यह सब दीखताहै/ कितनी हत्याओं, खुदकुशियों और कत्लआमोंके जवाब है और किसके पास ?—किलोंके अंधेरे तहखाने/ या नंगे जिस्मोंसे भरे हम्माम। कौन नहीं गवाही दे सकता /···मनुष्य और सत्ताके प्रतीक/ इन किलोंके बीचके ये खाई जल/ कब तक ऐसे ही लाल होते रहेंगे।" यह चिन्ता जिस कविको होतीहै वह क्या यथार्थसे पलायनकर प्रकृतिके या ऊर्ध्व मनःलोकमें विचरण कर अलौकिक दिव्यके साथ रमण कर सकताहै ?—"इबादत या प्रार्थनाके रूबरू खड़े होनेपर दूसरी कोई आवाज नहीं सुनायी पड़ती सिवाय अपनी जमीर और अपनी अन्तरात्माकी वाणीके/ पवित्र वाणीके / सोऽहं / केवलोऽहं।" यह सोऽहं केवलोऽहं मात्र आत्मप्रक्षेपण है या इसका दूर-दूर तक कोई संबंध जगत्के अतीत या वर्तमानकी वास्तविकतासे हैं क्या ?

'अवधूत' कवितामें कवि फिर अपने चिरपरिचित मनःलोकमें लौट जाताहै—"देशके/न कालके/किसीके नहीं ताबेदार/निर्गुण निरंजनका भेद मत देना अवधू/ भेद मत देना।" जिन संतोंकी तर्जपर यह लिखा गया है, उनकी सांसारिक चिन्ताका यदि किंचित् मात्रभी

स्पश हो जाता ! सांसारिकताकी निस्सारता नहीं स्वस्थ सांसारिकताकी खोजके लिए प्रेरित कियाहै। संतों जोगियोंने तभी वे 'साधु देखो ! जग बौराना' गाते फिरे। काम क्रोध लोभ मद मोहके जबड़ेमें फंसे लोगोंको सचेत करनेके लिए एक सहज स्वस्थ जीवन की प्रेरणा देनेके लिए। और वहभी अधिकांशतः अनपढ़ोंकी बोलीमें, जिसे भाषा माननेको भी विद्वान् आज भी तैयार नहीं है।

'आखिर समुद्रसे तात्पर्य' से संकलित कविताओंमें नारी देह प्रणय और प्रकृतिकी कविताएं हैं। पत्तोंकी मर्मराहटको सुननेवाले सूक्ष्मचेता कवि सौन्दर्य लोकमें ही विचरण करताहै —"इन सूखे पत्तोंपर मत चलो/देखते नहीं/इनकी भाषा कैसी चरमरा उठतीहै/और इस चरमरानेको सुन / वृक्ष चौंकते ही नहीं/उन्हें दर्द होता है। वैयक्तिकताके दोषका परिणाम देखिये—"समूहकी शक्ति/पहाड़ जैसी विपुल विराट् अवश्य/पर जड़ मात्र/व्यक्तिकी शक्ति/नदीका संकटपूर्ण एकाकीपन भले ही/पर प्रखर-चैतन्य/और गतिशील।" 'अखंड रामायण', 'अन्ततः', 'क्या होगा' में पाखंड मद और सभ्यताके बानेमें क्रूरतापर व्यंग्य इन कविताओंमें कैसे मुखर होगया, क्योंकि ये तो वैष्णव कविताके विरुद्ध पड़तेहैं। नारी-देहकी वासनोद्दीपक मुद्राको सौन्दर्य मान कर लांछित करनेमें क्या औचित्य है—'अगर तुमने प्रेम किया/जो कि किया ही होगा। (और वहभी वासनाकी जीती जागती अग्निशिखा जैसी इतिहास लांछित अनुपम सुन्दरीसे)। तो तुम जानते ही होंगे कि/सौन्दर्य—सबसे खतरनाक आकर्षण होताहै/और जो सौन्दर्य अनिंद्य हो/वह क्लियोपेट्राके आमंत्रणी नेत्रों का नागपाश होताहै/पानीसे भी पतली धारवाले/रत्नजटित बेशकीमती खंजरको/अपने भीतर उतरते अनुभव करना/पानेके ख्यालेमें/अनिंद्य सौन्दर्यके/विषकी उपस्थिति है।" सहज शालीन परिष्कृत दिव्य सात्विक सौन्दर्यकी छविसे अंकित अधिकतर कविताएं लिखने वाले कविकी लेखनीसे निकली इन पंक्तियोंका क्या आशय लगाया जाये? नरेश मेहता आवेशमें एकांतिक हो जातेहैं फिर भले ही उनका अपना लिखा हुआही क्यों न खारिज हो जाये।

और नमस्कारानेसे पहले 'देखना एक दिन' की कुछ कविताएं जिनमें वत्सल मां की छवि उक्त सभी छवियोंपर फैल जातीहै। चौके चूल्हेमें खटनेवाली मां —जो भी जहांभी चिन्ताभरी आंखें लिये निहारता होताहै / दूरतक का पथ/वही/हां वही है मां।" उसके अधिक मांके विषयमें इतने मर्मस्पर्शी रूपसे शायद ही अनुभव किया गयाहो। ऐसेही प्रेयसीका व्यवहार और अपनी क्रियाओंका यह 'विपर्यय' बड़ा बेधक है—"वर्षा से भीगकर/चित्र/बदरंग हो गया/और तुमने/दीवारपर से ही नहीं/मनपर से भी उसे उतार दिया/यह मैं था/वर्षामें भीगकर/कविता/कैसी रंगों नहायी फूल हो आयी/और मैंने/उसे वृन्त परही नहीं/अपने में भी धार लिया/यह तुम थीं।"

एक बात नरेश मेहताके शिल्पके विषयमें! संवेदनाओंके वैशिष्ट्यानुसार शिल्पकी विशिष्टता संयोजित की गयीहै। अतुकांतमें भी और गीतोंमें भी। बोलीके मिठासके साथ संस्कृत तथा बंगलाके शब्दों वाक्यांशों और कहीं कहीं एकाध वाक्यके प्रयोगसे रवीन्द्र, प्रसादके शिल्प वैभवकी याद आतीहै। तद्भव शब्दोंमें संस्कृतके प्रत्यय तथा बढ़े हुए शब्दका अप्रचलित रूप केवल चौंकाताहै। परम्परागत तुकबंदीके अभिशापसे मुक्त गीत रचना बड़ी व्यंजक और भव्य बन पड़ीहै। ☐

इन्द्रधनुषी रंगोंसे रंगा गीति-काव्य

मोर जे किमान हेंपाँह

समीक्षक : डॉ. भूपेन्द्र रायचौधरी

कवि : केशव महन्त

साहित्य अकादमीसे पुरस्कृत कृति 'मोर जे किमान हेपांह' (मेरी है कितनी चाहत) के कवि-गीतकार केशव महन्त (१९२६ ई.) असमिया साहित्याकाशके उज्ज्वल नक्षत्र हैं। वस्तुत: केशव महन्त धरतीसे जुड़े साहित्यकार हैं, जो श्रममें पिसते लोगोंके हर्ष-विषाद, दुःख-दर्द, आशा-आकांक्षा, प्रेम-प्रीति, स्वप्न-यथार्थ इत्यादिको भावभूमि प्रदान करतेहैं। वे मनमोहक चित्र, कला या बिम्बोंके माध्यमसे कविता या गीतको इस प्रकार संवारतेहैं कि जिससे लोग इसमें माधुर्य अनुभव करतेहैं। यद्यपि असमकी मिट्टीकी भीनी-भीनी सुगन्धसे उनके गीत-काव्य महकतेहैं, फिरभी उनके काव्य-गीतमें ड्योढ़ियां लांघनेकी अपार शक्ति निहित होतीहै, जिससे उनकी उन्नायक चेतना विश्व मानवताको समेटकर गौरवान्वित होतीहै।

केशव महन्त कवि और गीतकार दोनों हैं। दोनों क्षेत्रोंमें उनका समान अधिकार है। एकके बिना उनका दूसरा रूप अधूरा है। 'आमार पृथिवी' (१९४६), 'आगन्तुक' (१९६३), 'तोमार तेज' (१९८५), 'बुकुत एजाक धुमुहा' (१९८६), उनके उल्लेखनीय काव्य-हैं। गीत-संकलन हैं—'रद जिकिमिकि' (१९५८), 'कुवँली ओंतरि जा' (१९६४), 'दिश धवली वरण' (१९७०), 'मोर जे किमान हेपांह' (१९९२) तथा बच्चोंके लिए प्रस्तुत 'मा आमि सदियालै जामेइ' (१९९३)।

मिजिकाजान (शोणितपुर) चाय बगीचेमें जन्मे और पले केशव महन्तने साधारण लोगोंके जीवनको इतनी निकटसे देखा-भोगाहै कि उनका साहित्य सामाजिक चेतनाबोधसे जुड़ सका। पचासके दशकसे उनका काव्य-जीवन प्रारम्भ होकर साठ दशक तक प्रतिष्ठित हो जाताहै। 'आघोणट कुँवली' (अगहन का कुहासा), 'आपोन' (अपना), 'आयोजन शेष' (आयोजनकी समाप्ति), 'चराइ हइ पनिम जँ' (पक्षी होकर बैठूंगा(, 'सोणजिरा माहीर नाड़ी' (सोनजिरा मौसीकी नस), 'छाइ' (राख), 'मिनिर खबर' (मिनि की खबर) इत्यादि कविताओंसे उन्होंने असमिया काव्य साहित्यमें एक विशिष्ट स्थान बना लियाहै।

कवि महन्तमें प्रत्येक वस्तुको देखने-परखनेकी अपनी एक विशिष्ट कला है। उन्होंने परम्पराका निर्वाह करते हुएभी नवीन दृष्टिसे जीवनके यथार्थको टटोलनेका प्रयत्न कियाहै। हो सकताहै कविमें साम्य-वादी विचारधारा क्रियाशील होनेके कारण उन्होंने श्रमिक जनोंके लिए एक नवीन दुनियांको खोजा हो, जहां सभी प्रकारके शोषणसे उन्हें मुक्ति मिल सकती है। इसलिए क्षयरोगी, वेश्या, मोची, नशाखोर, चाय बगीचेके मजदूर, गांवके किसान, मेहनतकश श्रमिक इत्यादिको श्री महन्तने कविताओंका कथ्य बनायाहै। वे चाहतेहैं कि सामाजिक अव्यवस्थाके प्रति जनताका मोहभंग हो। इसलिए वे जीवनकी सभी समस्याओं—आर्थिक दैन्य, शोषण, कपटता, कायरता, प्रवंचना इत्यादिको खोलना चाहतेहैं, जिससे सामान्य जनोंकी आंखें खुलें। श्री महन्तकी कवितामें जनजीवनका कारुण्य, विषाद और असहायताका प्रतीकी रूप इस प्रकार

देखाजा सकताहै—

हठात् सुना शिशुका/बिलखता हुआ स्वर :/शियालदहकी नंगी छाती/दुग्धहीन/असहाय (अधीन)

श्री महन्तकी ऊपरकी पंक्तियोंकी तुलना सहजही कुंवर नारायणकी इन पंक्तियोंसे की जा सकतीहै :

भूखसे बिलखता हुआ बालक/सिरहाने रक्खे दीये की रोशनीमें/अभी थककर सो गयाहो—/सो। गया वह एक छोटा-सा पहाड़ी ग्राम। (हम तुम)।

राजनीतिक षड्यन्त्रोंका शिकार होकर यातना भोगने वाले व्यक्तियोंकी यंत्रणा एक-सी है, चाहे वह असममें हो या अफ्रीकामें। 'बीजके गर्भके अननुभूत-पूर्व वेदनामें मैं आंदोलित : मानो एक पूर्णिमाका चांद है, घोर अमावसके क्रूर-जठरमें (आयोजन शेष) के माध्यमसे कविने नये युगके नये चांदका आह्वान कियाहै कि संसारके दलित वर्गको नयी मानवताकी रोशनी दीख पड़े।

चालीसके दशकसे ही केशव महन्तने गीत लिखना प्रारम्भ कियाथा। पचास और साठके दशकमें वे पर्याप्त गीत लिखकर असमके संगीत जगत्में छाये रहे। रुद्र बरुवा, दिलीप शर्मा, गुणदा दास (कोर), वीरेन्द्र नाथ दत्त, चारु गोहांइ, खगेन महन्त प्रभृति गायकोंके कंठसे उनके गीत श्रोताओं तक पहुंचते रहे। आकाशवाणीके स्वीकृत गीतकार होनेके कारण उनके गीतों का प्रचार-प्रसार हुआ। उनकी पुरस्कृत कृति 'मोर जे किमान हेपाँह'में श्रीमहन्तके १५१ गीत संकलित हैं। ये गीत बहुरंगी हैं; विविध विषयोंको समेटे हुए इन गीतोंमें गीतकार श्री महन्तने कथ्योंको विस्तृत आयाम प्रदान कियाहै। विषयोंकी दृष्टिसे उनके गीतों को मोटे तौरपर इस प्रकार वर्गीकृत कियाजा सकता है—सामान्य जन-जीवनसे संबंधित, मानवीय जीवन-चेतना, प्रेम-प्रीति, ग्रामीण परिवेश, नैसर्गिक बिहु आदि), देशसे संबंधित, वैप्लविक चेतना, समन्वयकी भावना, विश्वचेतना तथा विविध विषयक।

'काउरी परे', 'आइ ऐ शिपिनी', 'हेर ओ हो :', 'सागरे सागरे ओ चेनाइटि', 'घर साजोंहि आहा', 'तोमार खोजर धूलि', 'आमि खाओं निमख दिया रङा-चाहपानी', 'तोमार माटित चाहर बागान', 'ओ दुखीया मन मरा तोर', इत्यादि गीतोंमें सामान्य जन-जीवनका चित्रण हुआहै। श्री महन्तके प्रसिद्ध गीत 'काउरी परे, कलरे पातते काउरी परे' में कौवे द्वारा दी जानेवाली सूचनाके लोकविश्वासके आधारपर एक सामान्य व्यक्तिका चित्रण किया गयाहै कि जो जीविकाके लिए अपने खेत-खलिहान छोड़कर नगरमें डाकियाका काम करनेके लिए आया हुआहै। उसे कौवेके संदेहमें अपने गांवकी याद आतीहै, पत्नी जेउति तथा शिशु पुत्रके लिए मन तड़पताहै। उसे यह चिन्ता सतातीहै कि खेत के लिए तैयारी की गयीहै या नहीं, क्योंकि घरमें रहने वाली पत्नीको ही सारा प्रबंध करनाहै। चिट्ठीका बोझ पीठपर लादकर वह दूसरोंको तो प्यार-संदेश पहुंचाताहै, पर उसे अपनी प्रिया-पत्नीका कोई समाचार नहीं मिल पाता—चिट्ठीका बोझ मैं/पीठपर लादकर/दूसरोंका प्यार ढोताहूं/पर मेरी प्रिया क्या सोच रहीहै/उसका पता ही नहीं चलता।

'आइ ऐ शिपिनी' जैसे गीतमें असमके जुलाहेके जीवन को चित्रित किया गयाहै, 'हेइ ओ हो : जैसे गीतमें मछुवेका जीवन रेखांकित किया गयाहै। 'आमि खाओं निमख दिया रङा चाहपानी' (हम पीतेहैं नमकसे लाल चाय) गीतमें मजदूर और आभिजात्य वर्गके जीवनकी तुलना कीहै कि कुछ लोगोंको खून-पसीना बहाकर मजदूरी करके भी अधपेट रहना पड़ताहै और शोषक वर्गोंको भांतिभांतिकी सुविधाएं उपलब्ध हैं, सम्पन्नता सुविधामें उनका जीवन व्यतीत होताहै। श्रमिक वर्गोंके प्रति श्री महन्तकी सहानुभूति है, क्योंकि गीतकारको यह विश्वास है कि इन लोगोंमें ही समाजको तोड़कर नये सिरेसे निर्माण करनेकी शक्ति है—तेरे

दोनों हाथ अनाज पहुंचाते/तेरे दोनों हाथ पथ्य पहुंचाते/तेरे दोनों हाथ वस्त्र पहुंचाते/तेरे दोनों हाथ अस्त्र पहुंचाते/अरे गरीब/रोता क्यों रे तेरे दोनो हाथोंमें/समाजको तोड़कर बनवानेकी/कुंजी है/जगत् व्यापी/अरे तेरे साथी हैं जगत्व्यापी।

(ओ दुखीया मन मरा तोर)

'आह ओ आह', 'मोर समग्र जीवन', 'एक पण यदि आमरण हम', 'प्रियतम एइ जीवन', 'जीवन आमार स्वप्न नहय', 'चकुलो शुकाइ जा', 'लतया समय हल', 'मइ जेन एटा बाटरुवा', 'कोबाल नदीर सोंते सोंते मेलि दिलो नाओ', 'गानर कोलात तुलि दिलो मोर' शीर्षक गीतोंमें गीतकारकी मानवीय जीवन-चेतना अभिव्यक्त हुईहै। जीवन, विशेषतः श्रमिक जनोंके दुख-दर्दको उन्होंने चित्रित कियाहै और सुख-दुखपूर्ण जीवनमें आस्थाको छोड़े बिना जीवन-संग्राममें

अवतीर्ण होनेका आह्वान कियाहै। यद्यपि गीतकार को यह विश्वास है—'जीवन हमारा स्वप्न नहीं, हम रचतेहैं स्वप्न; दिग्वलयमें सूर्य देख हम पोंछतेहैं आंसू'; फिरभी वे जीवनको निराशाके गर्तमें फंसानेके पक्षधर नहीं हैं। इसलिए कहतेहैं—

आंसू सूख जा
जा
तेरे सामने है मृत्यु-छाया
जीवन-ज्योतिसे भरा। (चकुलो शुकाइ जा)

गीतकार जीवन-संग्राममें थके हुए हमराहियोंको हताशा में चूर-चूर न होकर भविष्यको नये सिरेसे निर्माण करनेके लिए उनके जीवन रूपी नौकामें आशाका पाल बांधते हैं पूरे आत्मविश्वासके साथ—अब समय हुआ/ आगे देखकर/और समय नहीं बचा/लौट जानेका। (एतिया समय हल)

जीवनको सुन्दर, सम्पूर्ण और मंगलमय बनानेके लिए प्रेमका महत्त्व अनस्वीकार्य है। श्री महन्तके प्रेम-परक गीतोंमें जीवनकी ऊंचाइयोंको लांघनेकी शक्ति है। यह प्रेम बचपना या आवेगसर्वस्व नहीं है, क्योंकि संभवत: वासनात्मक प्रेमपर गीतकारका वह विश्वास नहीं, जो इसके मंगलमय रूपमें है। क्योंकि उन्हें विश्वास है 'युग युगसे मैंने देखाहै प्रेमकी ही जय, प्रेम की ज्योतिमें विश्व आलोकमय' (सर्पइ दंशिलो ओ बेउला)। इसलिए वे मुक्त कंठसे यह स्वीकारतेहैं—

जिस प्रेमने किया प्रिय तुम्हें सुन्दरतम/उस प्रेमने तुम्हें करना चाहाहै जो अन्तरतम/वह प्रेम जोड़ कर तोड़ताहै/वह प्रेम देताहै ध्यानकी निविड़ता। (मइ जि प्रतिमा गढ़िलों)

कवि महन्त जनताके कवि हैं। असमके गांवोंके साथ उनका घनिष्ठ संबंध है। खेत-खलिहान, कृषक जीवन, असमकी बहुरंगी संस्कृति, चाय बगीचेका अंत-रंग जीवन इत्यादिसे उनकी आत्मा जुड़ी हुईहै। इस-लिए ग्रामीण परिवेशसे संबंधित उनके 'आमार मन पथार र लहपहीमा बाओ धानबोर', 'रद जिकिमिकि काचि चिकिमिकि', 'होमर जुइ धरिले', 'आजिहे गलागै एरि', 'एने एटि गधूलिते', 'कार घरर पाटनाद आछिल', 'बीणरे तारँगछ लरे कि चरे'; 'शालिकी ऐ सबुज चटाइजनी', 'माणिकजुरि चाह बानिचात' इत्यादि गीतोंमें जन-जीवन ही नहीं ग्रामीण वातावरण ही सजीव हो उठाहै। विभिन्न चित्रकल्पोंके सहारे उन्होंने ग्रामीण परिवेशका यथार्थ चित्रण खींचनेमें सफलता प्राप्त कीहै। 'होमर जुइ धरिले', 'आजिहे गलागै एरि, 'कार घरर पाटनाद आछिल' इत्यादि गीतोंमें विवाह, गौनाके मनोरम चित्रोंके साथ कारुण्यको भी विशिष्टताके साथ उतारा है—आज गयी छोड़कर/

तोड़ स्नेह-डोर/मांके आंचलका मिठास/कहां गया छोड़। (आजिहे गलागै एरि)। अथवा ऐसी एक सांझमें/मेरी कुटियाके सामने/तुम्हारा जलाया दीया/आजभी है जला हुआ। (एने एटा गधूलिते)

श्री महन्तके ग्रामीण परिवेशके चित्रणमें एक प्रकारकी मादकता है, महुएके फूलोंकी भांति मधुर आकर्षण है। केशव महन्त भी आजकी यांत्रिक सभ्यतासे पिसे मानव की यांत्रिकता, चाहे पलभरके लिए, समाप्त करनेके लिए व्याकुल हैं, इसलिए वे एक रातभरके लिए सही लोकजीवनके भीतर प्रवेशकर उसे देखने-परखनेके लिए आमन्त्रित करतेहैं—

माणिकजुरि बगीचेमें (चाय बगीचा)
रात भर रुक जा रे
मादल-बंसीकी नशीली रात। (माणिकजुरि बागिजात)

नैसर्गिक सौन्दर्यमें असम अद्वितीय है। खेत-खलिहान, पहाड़-पर्वत, नद-नदी, मठ-मंदिरोंसे भरे हुए असमका मोहिनी रूप जहां हृदय पर आसन जमाता है, वहीं विध्वंसकारी बाढ़ जनमानसकी आशाओंपर पानी फेर देतीहै। 'देशरे पानीखन बरनैमे गिलिले' गीतमें बाढ़की तांडव-लीला है तो 'पारर पाखिल गाचि दिलो' गीतमें बिहु (रङाली बिहु, चैत्र संक्रांति) के अवसरपर कबूतरके पंखपर संसार भरको बिहुका मंगलगान सुनानेके लिए सादर पत्र बांध देनेका आनन्दमय वातावरण है। परन्तु यह आनन्द पलभर में समाप्त हो जाताहै जब महन्तजीको बिहु नर्तकीकी 'मानो तू हर जून अधपेट रहती, मानो तू पग पगपर लांछित होती' (उजाये चालो घट) की व्यथा सताती है या आपसी कलहसे मानवतामें आंच आनेकी बात सोचकर वे विचलित हो जातेहैं। इसलिए आकर्षण और आनन्दका उत्सव बिहु भी उन्हें किरकिरा लगने लगताहै।

सहृदय होनेके कारण कवि-गीतकार श्री महन्तको देशका वैभव स्मरण हो आताहै, पर विभिन्न स्थितियों

के कारण देशकी होनेवाली दुर्दशाके कारण उन्हें संताप होताहै। इससे अधिक विषम स्थिति क्या हो सकती है जब किसीको अपनी भूमिमें ही अतिथि जैसा जीवन व्यतीत करना पड़ताहै। 'देश कला हले याके दुदिनले' गीतमें उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें उस व्यथाको अभिव्यक्त कियाहै—'बताऊं भी तो कैसे अपनेही घरमें, मैं क्यों अतिथि हुआ', गीतकारके हृदयकी वेदना मानो इन पंक्तियोंमें साकार हो उठीहै—सब कुछ रहकर भी

कुछ न रहनेवाला देश/लक्ष्मी-पृथिवी, यह कैसा विचित्र देश, तुम्हारा/यह कैसा विचित्र देश।

(सकलो याकिओ एको नथकार देश)

इसलिए उन्हें आज दुःखका नैवेद्य मातृभूमिके लिए सजाना पड़ रहाहै—'सजाया नैवेद्य माता दुःखका नैवेद्य' (सजालों राराइ आइ दुखरे शराइ)। शासन की नृशंसताका भी उन्होंने अत्याचारी आहोम राजाके रूपमें परिणतिसे 'तुखन देशत एक रजा आछिल' गीतमें दिखायाहै, जिसे गीतकारके निरंकुश शासनके प्रति चेतावनी कही जायेगी।

गीतकार केशव महन्त केवल दयनीय स्थितियोंके वर्णन करके मौन नहीं हो जाते, मातृभूमिसे आशीष की कामना करतेहैं, शक्तिकी याचना करतेहैं जिससे सारी विसंगतियोंको नष्टकर स्वस्थ-सुन्दर समाजकी नींव स्थापित कर सकें—प्रण मेरा रणहीन दुनियां

बसाना/प्रण मेरा भागिरथी-गंगा उतरवाना/प्रण मेरा द्रोणका व्यूह चूर्ण करना/प्रण मेरा उत्तरा का आंसू पोंछना/बजा है मातृ पांचजन्य/तैयार है सुदर्शन। (रजनी विदूर दिय धवली वरण)

गीतकारकी वैप्लविक चेतनाका मुख्य आधार-स्रोत है गण-शक्ति। उन्हें विश्वास है कि जनसमुद्रके गरजनेपर उसे रोकनेकी शक्ति किसीमें नहीं है (गणसमुद्र गरजिछे घर्ण)। क्योंकि जन-शक्ति सदा कुचली नहीं जा सकती, उसका शोषण नहीं किया जा सकता। अतः इसका प्रतिवाद प्रतिध्वनित होताहै इस प्रकार—हम चाहतेहैं

शांति/हम चाहतेहैं शोषणसे मुक्ति/सुन आदमीका शत्रु/तुम लोगोंने छीन लीहै हमसे शांति/छल कपटसे आकर थोपाहै युद्ध/हमारे विरुद्ध हमें ही कर प्रयोग/हमारी धरतीमें बिछायाहै जाल।

(सिंह कंठे करों आमि पांचजन्य शंखनाद)

अतः शोषणका जाल छिन्न-भिन्नकर, जन-शत्रु को नष्ट करनेके लिए गीतकार प्रतीक्षा नहीं कर सकते। परिवर्तनका बिगुल बजाना ही है तो उसके लिए देर क्यों—बरसे यदि शिला तो आज ही बरसे/देवकीकी

शृंखला आज ही टूट जाय/हां आज अष्टमी अभिनव जनमका/देवियों, उल्लू ध्वनि करो मंगल लगनका।

(हृदय सागर हल)

उन्हें विश्वास है कि गणशक्तिका पुंजीभूत रूपही परिवर्तन लानेमें सफल होगा। इसीलिए वे अष्टमी रात्रिके अभिनव जनमकी प्रतीक्षा अधीरतासे करतेहैं। श्री महन्तने 'घन कला कयलार राति' गीतमें औद्योगिक भयावहताके प्रति विद्रोहकी घोषणा कीहै, क्योंकि उन्हें विश्वास है कि इस यांत्रिकतासे नृशंसताकी ही होड़ बढ़ेगी, जिसे 'मृत्यु दैत्यकी समाधि रच' से विशेषित किया गयाहै।

कवि गीतकार महन्तजीको समन्वयमें विश्वास है। 'अनेकतामें एकता' का भारतीय दर्शन उन्हें मान्य है। 'हरि मंदिरत ईश्वर सेवा, मछजिदत आल्लार दोवा' गीतमें धार्मिक समन्वयपर बल दिया गयाहै। मानवकी मानवतासे नाता जुड़ताहै। गीतकारने व्यष्टि चेतनासे सपष्टिपरक चेतनाको श्रेय देकर 'हमारा एक ही घर' (ताइर नाइ जे आपोन पर) की कल्पना कीहै जिसमें किसीको हानि पहुंचाये बिना सब एकत्र निवास करेंगे। क्योंकि इसीमें उन्हें विशाल देशका पूर्ण चित्र प्रतिबिम्बित होता दिखायी पड़ताहै—

(क) गंगा कावेरी ब्रह्मपुत्र
जन्मभूमिका लग्नसूत्र
आओ सतीर्थ
आओ विचित्र
इस संगमके दर्पणमें निहारें
महाभारतका अपना चित्र।

(गंगा कावेरी ब्रह्मपुत्र)

(ख) जिस देशमें है ब्रह्मपुत्र
जिस देशमें है गंगा
जिस देशमें हैं कृष्णा-कावेरी
विंध्य कांचनजंघा
वह देश है यह भारतवर्ष
लक्ष्य गगनस्पर्शी।

(जिखन देशत ब्रह्मपुत्र)

श्री महन्तकी समष्टिपरक दृष्टि विश्व-मानवताके साथ विलीन होतीहै। संसारमें कहीं भी उन्हें गणशक्तिका अवरोध सहन नहीं होता, चाहे वह वियत-

नाम या अफ्रीका ही क्यों न हो । 'मोर ओपजा माटिर कलिजात लिखा', 'कत आछे ओ विदेश तोर', 'हिसार चिकमिक चोका तरोवाल, 'संग्रामी तुमि, दृष्टिरे तुमि पोहर करिला विश्व', 'लुइतर रूपाली बालिमे' आदि गीतोंमें कविकी विश्वचेतना देश-प्रेमके माध्यमसे अभिव्यक्त हुईहैं । गीतकारको यह विचित्र-सा लगताहै कि पूरी धरती एक ही है, पर उसमें भेद क्यों, क्योंकि—

कहां है रे विदेश तेरा/देश देशमें है तेरी /धरती धरतीका कोई नहीं है पराया भाई/नहीं है उसकी जात कोई । (कत आछे ओ विदेश तोर)

इसीलिए स्वतंत्रता संग्रामी वियतनामवासीके साथ गीतकार एकीभूत हो गयेहैं, उन्हें भी साम्राज्यवादी, लुंठनकारीका आक्रमण गले नहीं उतर रहाहै, उन्हें लग रहा है—इस मिट्टीके सहस्र नामका एक है वियतनाम/

वीरदेश, रे मेरे द्वितीय स्वदेश/ लो, लो इस सहयोद्धाका संग्रामी प्रणाम ।

(मोर ओपजा माटिर कलिजात लिखा)

पर है वे रचनात्मक कार्य करनेके पक्षधर । वे अपना लक्ष्य इस प्रकार निर्दिष्ट करतेहैं : हमारा स्वप्न : देश

प्रेम बढ़ाना/हमारा स्वप्न : विश्वको अपना लेना । (हिसार चिकमिक चोका तरोवाल) ! क्योंकि इसीमें ही विश्व मानवताका उज्ज्वल भविष्य छिपाहै : संग्रामी तुम, दृष्टिसे आलोकित किया तुमने विश्व/उस आलोकमें चमक उठाहै सृष्टिका भविष्य ।" (संग्रामी तुमि) ।

इनके अतिरिक्त गीतकार केशव महन्तकी अनेक अवसरोंपर विविध विषयक गीतोंकी रचनाएं हैं : किसी सभा-समितिके स्वागत गीतके लिए, युद्धके सन्दर्भमें यात्री-परिवहनकर्मियोंके लिए, तत्त्वपरक, पौराणिक आख्यानोंपर आधारित, व्यक्तिपरक इत्यादि । इनमें उनके सतीर्थ, असमके ख्यातिप्राप्त कलाकार विष्णु राभाके प्रति लिखे गीत 'जानो अनुपम, तुमि उभति आहिबा', 'जिमाने दिन जाय सिमाने आपोन होवा तुमि', नाट्यकार-अभिनेता-कलाकार फणी शर्माके प्रति 'मरणे तोमार मृत्यु आनिब नोवारे'; कलाकार जयंत हाजरिकाके प्रति 'जयंत तइ कि दुर्दांत बालक', 'सुरे गरका आभार ओपजा माटि'; ढोलकके कलाकार मघाइ ओझाके प्रति 'बोलरे कठोया', 'ए मघाइ घाइ ढुलीया' इत्यादि गीत उल्लेखनीय हैं । इन गीतों में केशव महन्तने हृदय उंड़ेलकर अपनी अनुभूतिको प्रकट करके कलाकारोंके प्रति श्रद्धा-तर्पण किया है ।

निष्कर्षतः कहाजा सकताहै कि प्रस्तुत कृति 'मोर जे किमान हेपाँह' मात्र गीत-संकलन ही नहीं है, कवि-गीतकारकी जीवनलब्ध साधनाकी अभिव्यक्ति है । कविताकी अपेक्षा गीतमें स्वरोंकी दुनियांमें तैरती हुई भाव-लहरी हजारों श्रोताओंके पास पहुंचती है—उनके हृदयको प्रेरित-प्रभावित करतीहै । कवि केशव महन्तको गीतकार होनेके कारण यही सफलता मिलीहै । उन्होंने लौहित्यके तटसे ही कावेरी-गंगाको पार करके विश्व-मानवताके महासागरमें अवगाहन कियाहै । मानवके सुख-दुख, हर्ष-विषाद, हीनता-नीचता, प्रेम-प्रीतिसे लेकर उदात्तता तक उन्होंने गीतों के माध्यमसे एक पड़ावसे दूसरेकी ओर बढ़े हैं ।' मानव की त्रुटियोंको संवारकर उसे मर्यादित ढंगसे 'आदर्श मानव' के रूपमें प्रतिष्ठित कराने तक केशव महन्तने गीतोंको सहेजाहै, संदेश संप्रेषित कियाहै । असमकी मिट्टी, धूलमें ही उनका गीत अंकुरित हुआहै, जिसकी गन्ध देशकी सीमा लांघकर विश्वमानव तक पहुंचनेके लिए छटपटा रहीहै । जयशंकर प्रसादके शब्दोंमें ही इसे सार्थक रूपमें परिभाषित किया जा सकताहैं :

सब भेद भाव भुलवाकर
दुख सुखको दृश्य बनाता;
मानव कह रे, 'यह मैं हूं'
वह विश्व नीड़ बन जाता ।

(कामायनी) □

संस्कृतकी अपनी मूल परम्परामें रचित गद्यकाव्य

जयन्तिका

कृतिकार : बालधन्वि जग्गु वकुलभूषण

— डॉ. सत्यकाम वर्मा

भारतीय साहित्य अकादमी द्वारा इस वर्ष पुरस्कृत संस्कृतके गद्यकाव्य या उपन्यास 'जयन्तिका' के आरम्भिक पृष्ठोंपर एक विहंगम दृष्टिपात करते ही दो-एक बातें एकदम स्पष्ट हो जातीहै। पहली तो यह कि कमसे कम संस्कृतकी उपन्यास-परम्परा किसीभी रूप में पाश्चात्य उपन्यास परम्परासे अप्रभावित रहकर अपने मूल स्वरूपको बचाये रखनेमें समर्थ रहीहै। कमसे कम उन पण्डितों और कवियों द्वारा लिखे गये गद्य और पद्यके सम्बन्धमें यह बात सर्वांशतः सत्य कही जा सकतीहै, जिन्होंने संस्कृतकी प्राचीन शैली और परम्परामें दीक्षा पायी और उसे ही अपनानेमें स्वयंको समर्पित किया। श्री बालधन्वि जग्गु वकुलभूषणकी यह कृति देखते ही आधुनिक युगमें संस्कृत गद्यकथाके प्रथम सूत्रधार महाकवि अम्बिकादत्त व्यासकी अमर कृति 'शिवराजविजय' की याद आजातीहै। वहभी तो पाश्चात्य प्रभावसे सर्वथा अछूती रहकर संस्कृतकी निजी परम्पराको बचाये रखनेमें पूर्णतः सफल और समर्थ रहीथी।

आरम्भिक परिचय : कवि एवं कृतित्व

गद्य और पद्यकी अनेक विधाओंमें समान गति रखनेवाले 'जयन्तिका' नामक गद्यकाव्यके प्रणेता श्री बालधन्वि जग्गु वकुलभूषण बाल्यावस्थासे ही साहित्यके विविधांगोंके प्रणयनमें रुचि रखतेथे। किन्तु गद्यकी ओर इनकी प्रवृत्ति मोड़नेमें इन्हींके पितृव्यपाद श्री बालधन्वि जग्गु वेंकटाचार्यका बड़ा हाथ रहा। उन्होंने इन्हें आरम्भिक आयुमें ही काव्यकी अपेक्षा गद्यमें कौशल का महत्त्व समझाया। यही वेंकटाचार्य इनके गुरु भी रहे। इनके समीप रहकर ही कविने समस्त शास्त्रोंमें नैपुण्य प्राप्त किया।

किशोरावस्थासे ही काव्यविनोदमें आनन्द लेने वाले इस कविने साठ वर्षकी आयु तक पहुंचते-पहुंचते ४०-४५ से भी अधिक काव्यग्रन्थोंकी रचना करली थी। उनकी षष्ट्यब्दिपूर्तिके दिनही उनकी यह गद्य रचना 'जयन्तिका' पूर्ण हुई। किन्तु इसे प्रकाशनका अवसर इसके भी अट्ठाईस वर्ष बाद १९९० में, वहभी सरकारी सहायता मिलनेपर ही, सम्भव होपाया। और वहभी किंचित् परिवर्तन-परिवर्धनके बाद। और एक बार इसके प्रकाशनके बाद, सम्पूर्ण संस्कृत जगत्को उनके लेखनका गौरव समझमें आया। पुरस्कार और प्रतिष्ठा तो उन्हें पहलेभी बहुत प्राप्त हुएथे, किन्तु साहित्य अकादमीका सम्मान उन्हें इस उपन्यासके प्रकाशनके बाद ही मिला। यद्यपि देखनेमें यह बात बड़ी गौरवपूर्ण लगतीहै, किन्तु यही उस महाकविके कृतित्वका सबसे बड़ा उपहास भी है। एक ओर ऐसे भी साहित्यकार हैं जिन्हें संस्कृतमें एकमात्र काव्यरचना प्रकाशित होतेही यह सर्वोच्च समझा जानेवाला पुरस्कार बहुत छोटी आयुमें ही प्राप्त हुआहै, जबकि लगभग साठ रचनाओंके इस महान् प्रणेताको अपनी आयुके नौवें दशकके अन्तमें यह पुरस्कार प्राप्त हुआ। मानो, उसे यह पुरस्कार देकर उसपर कोई कृपा की गयीहो। लेखकने संस्कृतमें जो अट्ठावन काव्य लिखेहैं, उनमें

से २४ तो स्तोत्र हैं। शेष ३४ में से २१ नाटक या रूपक कोटिके हैं, चार चम्पू-काव्य, पांच पद्यात्मक काव्य और चारको कविने 'गद्यकाव्य' कहा है, यद्यपि उनमें से सही अर्थोंमें उपन्यास कोटिमें केवल 'जयन्तिका' और 'यदुवंशचरितम्' ही आतेहैं। इन दोनोंको लिखनेकी प्रेरणा कविको क्रमशः बाण भट्टकी अमर गद्यकथा 'कादम्बरी' और जीवनचरितकी कोटिमें समाविष्ट उनकी ही प्रौढ़ गद्यरचना 'हर्षचरितम्' से मिली। कवि स्वयं तथा उसके आलोचक समान रूपसे यह स्वीकार करतेहैं कि कविने ये दोनों ग्रन्थ वस्तुतः बाण भट्टकी पूर्वोक्त कृतियोंकी पूर्णतः अनुकृतिपर ही लिखेहैं। दोनोंकी भाषा एवं शैली बाण भट्टकी उक्त दोनों शैलियोंकी अनुकृतिपर ही है।

कथासूत्र : परम्परा और नवीनता

यह तो लेखकने स्वयंही स्वीकार कियाहै कि उसे 'जयन्तिका' लिखनेकी प्रेरणा बाणकी 'कादम्बरी' से मिली। परन्तु यह बात प्रेरणा तक ही नहीं रुक गयी। सच तो यह है कि कथासूत्र, विशिष्ट वर्ण्य स्थल, पुनर्जन्म, दोहरी कथा, श्लेष एवं समासप्रधान भाषा, दिव्यांश, आदि लगभग सभी दृष्टियोंसे लेखकने 'कादम्बरी' का पर्याप्त दूरतक अनुकरण करनेका प्रयास किया है। कई बार तो ऐसा लगने लगताहै, मानो कविका उद्देश्य बाणकी शैलीको आजके युगमें भी पुनरुज्जीवित कर दिखाना रहाहो। परन्तु नवीनता भी इसमें कम नहीं है।

कथाकी संरचनाको ही लें। मुख्य कथानक संक्षेपमें इस प्रकार है : 'वैजयन्तीके राजा विमत केसरीके बृषस्कन्ध द्वारा मारे जाने और राज्यच्युत कर दिये जाने पर उसकी रानी वरमालिनी अपने बारह वर्षीय पुत्र चारुवक्त्रके साथ भागकर दण्डकारण्यमें रहकर उसका संवर्धन करने लगी। मांसे भाग्यकी विडम्बना जानकर चारुवक्त्र शत्रु को मारकर अपने राज्यको पुनः हस्तगत करनेके लिए उचित शस्त्रोंको देवोंकी सहायता से प्राप्त करनेकी दृष्टिसे हिमालयपर जाकर घोर तपस्या करताहै और अन्ततः इन्द्र शिव और ब्रह्माकी सहायतासे देवाधिदेव नारायणसे समुचित अस्त्र प्राप्त करनेमें समर्थ होजाताहै। कथाका प्रथम खण्ड—प्रथम लहरी—यहां समाप्त होताहै।

द्वितीय खण्डमें चारुवक्त्र इन नव अधिगत अस्त्रोंके साथ विजययात्रा आरंभ करताहै और धीरे धीरे एक विशाल सेना बनाकर वृषस्कन्धको पराजित कर फिरसे अपना खोया राज्य अधिगत कर लेताहै। उनका ही पुराना मन्त्री मरुन्माल उसका राज्याभिषेक करताहै। उसकी प्रसन्न माता उसे उपदेश और साधुवाद देतीहै। यह उपदेश कादम्बरीके शुकनासाकपदेशके ही समान है। तृतीय खण्डमें, अभिषिक्त होनेपर चारुवक्त्र आखेटयात्रापर निकलताहै। वहां अनजानेमें वह एक सुन्दरीको घायल कर देताहै। यही वह सौगन्धिनी थी, जिससे उसका परिणय निश्चित होनाथा। सौगन्धिनी स्वयं उसे यह बतातीहै कि वह मधुराके राजा सुगन्धनकी पुत्री है, जिसकी माता एक वनसुन्दरी कांचनमालिनी राजाको एक नदी तटपर मिलीथी, और जो उसे जन्म देनेके बाद उसे उसी तटपर छोड़ गयी थी, जहांसे उठाकर पहले नौ वर्ष तक धमनने और बादमें दीर्घसत्रने उसका पालन किया और चारुवक्त्र को उसके सर्वथा योग्य बताकर उसके साथ उसके विवाहको वांछनीय बताया। यह बतातेही घायल सौगन्धिनी प्राण छोड़ देतीहै। शोकाकुल चारुवक्त्रभी वहीं प्राण त्याग देताहै। यहींपर प्रकट होकर इन्द्र उन दोनों को फिरसे बालक-बालिकाके रूपमें पुनर्जीवित कर देते हैं और दीर्घसत्रके आश्रमवासी बालकोंको सौंपकर आदेश देतेहैं कि बालक चारुवक्त्रको वे अरिभिकरपुरी के राजा वज्रबाहुको, और बालिका सौगन्धिनीको हेमपुरके राजाकी महिषी हेमवतीको सौंपदें। दीर्घसत्र चारुवक्त्रकी माता वरमालिनीको फिरसे उसका पुत्र मिलनेका आश्वासन देताहै।

कथानकका उत्तरार्द्ध अन्तिम दो लहरियों या खण्डोंमें है। वास्तवमें इसे ही मुख्य कथा कहाजा सकताहै। राजा वज्रबाहुके घर चारवक्त्र 'जीवसेन' के नामसे पलताहै। उधर सौगन्धिनी रानी हेमवतीके पास 'जयन्तिका' के नामसे पलतीहैं। बड़ी होनेपर यही जयन्तिका जीवसेनके चित्रको देखते ही उसपर प्रेमासक्त होतीहैं। जीवसेन यह जानतेही हेमपुर पहुंचकर उससे गुप्त रूपसे मिलताहै। मिलनके बाद तुरन्त ही जीवसेन तिरोहित हो जाताहै। भटकती हुई जयन्तिका एक तापसीको मिलतीहै, जो स्वयं कभी चित्रपुरके राज वीरकेतुके पुत्र सुकेशके रूपमें थी, किन्तु अभिशापवश तापसीमें रूपान्तरित हो चुकीथी। तापसी

जयन्तिकाको एक अद्भुत रत्नमाला प्रदान करतीहै और उससे आग्रह करतीहै कि वह सुकेश बनकर चित्रपुर जाये और वहांका शासन संभाल ले। तापसी स्वयं भी उसके साथ जातीहै। यहाँ चतुर्थ लहरी समाप्त होतीहै।

पंचम लहरीका आरम्भ अपने पति और नवजात शिशुकी खोजमें भटकती जयन्तिकासे आरम्भ होताहै। रास्तमें वह रत्नमाला कहीं खो जातीहै। खोजमें भटकती जयन्तिका और तापसी चारों दिशाओंमें सेवकोंको वह अद्भुत माला खोजनेके लिए दौड़ातेहैं। माला एक बालक ग्वालेके पास मिलतीहै, जो वास्तवमें जयन्तिका का ही पुत्र है। अनजानेमें वह उसे एक कसाईको देकर उसे मारनेका आदेश देतीहै। यह कसाई स्वयं जीवसेन ही है। तब जीवसेन और वह पुत्र दोनों जंगल में बिछुड़नेके बादसे अपनी आपबीती सुनातेहैं। किन्तु अपना कर्तव्य समझकर स्वयं पिता अपने पुत्रका शिरश्छेदन करताहै और बादमें स्वयं अपना सिरभी काट लेताहै। कथाका यह अंश पंचतन्त्रमें स्वामिभक्त वीरवरकी कथाकी अनुकृतिपर है। निराश जयन्तिका भी अपना प्राणान्त कर लेतीहै। बलिदानोंसे प्रसन्न होकर देवी दुर्गा प्रकट होतीहै, और उन तीनोंको पुनः जीवित करनेके अतिरिक्त तापसीको भी पुनः सुकेशके रूपमें परिवर्तित कर देतीहै। तब जीवसेन अपनी माता वरमालिनीको लेकर अपने राज्यमें पुनः प्रवेश करताहै और अस्थायी शासक हंसध्वजसे शासनकी बागडोर लेकर स्वयं राजसिंहासनपर बैठताहै। उसके पुत्र वीरसेनको अपने नाना हेमपुर नरेश सत्यकीर्तिका उत्तराधिकार मिलताहै, और वह हेमपुरका राजा बनताहै। चमत्कार और दैवीय सहायतापर आश्रित यह कथा यहीं समाप्त होतीहै।

कला, भाषा और संरचना :

कथावस्तुका संगठन इस गद्यकथामें अधिकांशतः 'कादम्बरी' की अनुकृति पर ही हुआहै। यहां भी दो जन्मोंकी कथाको आधार बनाया गयाहै। जंगलमें लेजाकर राजकुमारको तिरोहित कर देने और वहां किसी अनुपम सुन्दरीसे मिलानेका आयोजन यहांभी किया गयाहै। और भी अनेक समानताएं दोनों कथाओं में है। इसपर भी कुछ अन्तर और नवीनता भीहै। यथा दैवीय सहायताके विषयमें। स्वयं नारायण, देवराज इन्द्र, शिव एवं ब्रह्माके रूपमें उच्चतम देवोंकी सहायतासे कथाको आगे बढ़ाया गयाहै। शस्त्र भी उनकी सहायतासे मिलतेहैं और पुनर्जीवनभी (वह भी एक नहीं दो-दो बार : पहली बार इन्द्र द्वारा और बादमें देवी दुर्गा द्वारा)। इसी प्रकार अभिशापके प्रयोगकी बात है, जिसे आजके काले जादूके समकक्ष कहाजा सकताहै। सुकेशका तापसीके रूपमें परिवर्तन इसी प्रकारका है; यद्यपि उसका पुनः सुकेश बनना देवी दुर्गा की कृपासे ही सम्भव हुआ। अभिशाप और वरदान का यह प्रयोग भी अलौकिक या दैवीय तत्त्वमें ही गिना जायेगा। जहांतक आधुनिकताके प्रभावका प्रश्न है, वह नितान्त नगण्य है। इसका भी एक प्रमुख कारण यह है कि कवि आरम्भसे ही संस्कृतमें कुछ अनूठा प्रयोग करना चाहताथा। और ऐसा करते समय उसका उद्देश्य सदा अपने-अपने युगके सर्वश्रेष्ठ कवियोंकी शैलीमें उन्हींकी तुलनामें कोई रचना प्रस्तुत करनेका रहा। भास, कालिदास, और बाण भट्टके अनुकरणपर लघुरूपक, गद्यकथा, जीवनचरित, और वंशचरितात्मक महाकाव्य लिखकर उसने यही सिद्ध करनेका प्रयास कियाहै कि आजभी उन कवियोंकी शैलीसे संस्कृत साहित्यको मण्डित किया जा सकताहै। और आजके युगमें संस्कृतकी बढ़ती सर्वतोमुखी उपेक्षाको देखते हुए उसे पर्याप्त सीमा तक सफल कहाजा सकताहै।

जहांतक भाषाका प्रश्न है, निस्संदेह कवि संस्कृत की परम्पराको अक्षुण्ण रखनेमें सफल रहाहै। पर यह भी सत्य है कि अनेकत्र समारचना एवं शब्द-प्रयोग में वह आधुनिकताके प्रभावसे बच नहीं पायाहै। १२१ पृष्ठपर 'रोमाञ्चयति गात्रं स्मरणमात्रेण' का प्रयोग ऐसा ही हैं। संस्कृत शैलीमें 'लोमहर्षं जनयति स्मरणमात्रेण' कहना अधिक उचित रहता। इसी प्रकारके प्रयोग अन्यत्र भी हैं। फिरभी, निर्विवाद रूपसे यह कहा जासकताहै कि अपने संकल्प और प्रतिज्ञामें पर्याप्त मात्रामें सफल रहाहै।

शैलीके सम्बन्धमें कह ही चुकेहैं कि कवि जिसभी कृतिको लिखते समय जिसभी कविकी कृतिको अपनाप्रति मान बनाकर चलताहै, उस रचनामें वह उसी प्रतिमान की शैलीका सफल अनुकरण भी करताहै। उसकी रचना 'जयन्तिका' में बाण भट्टकी श्लेष, समास, अनुप्रास, एवं दीर्घवाक्यता, आदिका सफल अनुकरण हुआहै। परन्तु दूसरी ओर लघुतर वाक्यविन्यासोंके द्वारा

उपदेश या सन्देश देनेकी बाणकी शैलीको भी पूरी सफलताके साथ अनुकृत किया गयाहै। २८ से ३१ पृष्ठ तक का वर्णन जहां बाणके अच्छोद सरोवर वर्णन की याद दिलाताहै, वहां लघुवाक्यरचनाका मनोहारी उदाहरण ४४-४५ पृष्ठपर माता वरमालिनी द्वारा अपने प्रिय वत्सको कहे गये उपदेशात्मक वचन हैं, जो कादम्बरीके शुकनासोपदेशकी याद दिलातेहैं।

जहांतक संरचनाका प्रश्न है, कवि आधुनिक संरचना पद्धतिसे अप्रभावित रहकर ही चलाहै। कादम्बरीका अध्येता जानताहैं कि संस्कृत गद्यकथा और रूपकोंकी संरचनामें पर्याप्त अन्तर होताहै। इस दृष्टि से आधुनिक कथा या उपन्यास संस्कृत नाट्यकथाके आधारपर अधिक संगठित होताहै। किन्तु कादम्बरीमें कविके लिए ऐसा कोई बन्धन नहीं रहा। प्रस्तुत कथा के लेखकने भी यही स्वतन्त्रता अपनायीहै। उसमें कोई भी उपकथा स्वतन्त्र सत्ता लेकर नही चलीहै। यहांतक कि तापसी और सुकेशका प्रसंग भी मुख्य कथाका ही अभिन्न अंग है। सच तो यह है कि यह सम्पूर्ण कथा इतिहासकी भांति प्रबन्धरससे आसिक्त रहीहै। कवित्व से भरपूर होनेपर भी, रसोंसे पूर्णत: सिंचित होनेपर भी, और गद्यकी कसौटीपर खरी उतरनेपर भी, यह कथा इतिहास जैसी अधिक प्रतीत होतीहै। आधुनिक युगमें संस्कृतकी स्थितिको देखते हुए इसे अद्भुत रूपसे सफल कृति कहाजा सकताहै। लेखक इसके लिए अन्य सभी कृतियोंके लिए न केवल साधुवादका पात्र है, बल्कि आधुनिक भारतको संस्कृतको, इस प्रकार संवर्धन देनेके लिए स्वयंको उसका ऋणी मानना चाहिये।

कुछ कमियां : मुद्रण एवं प्रकाशन

संस्कृतके कवि या कथाकारको अपनी रचनाके मुद्रणके लिए कितनी प्रतीक्षा और श्रम करने पड़तेहैं, और कितनी सीमाओंके भीतर रहकर उसे यह सब करना होताहै, यदि इन बातोंको ध्यानमें रखकर विचार किया जाये तब इसके प्रकाशनमें कोई त्रुटि खोजना अशोभन एवं व्यर्थ होगा। लेखकने अपने युग की उपेक्षा सहकर और अभावोंसे परिपीडित रहकर भी इसे लिखा। उसका यही महान् अनुग्रह है। यदि दिखावेके लिए दीजाने वाली स्वल्प-सी सरकारी सहायता भी न मिलती, तो कदाचित् तीस सालसे अधिक कालतक अन्धकारमें रहनेपर भी यह कृति कभी प्रकाशित न होपाती। और सहकारी सहायता तो इतनी स्वल्प होतीहै कि उसमें आधुनिक दृष्टिसे उत्कृष्ट मुद्रण होपाना सम्भव ही नहीं होगा, यदि यह ध्यानमें रहे कि इसका मुद्रण बंगलूर जैसे दक्षिणात्य किन्तु आधुनिक नगरमें हुआहै, तब इसके लिए प्रयुक्त मुद्राक्षरोंके रूप और आकारपर कोई आपत्ति करना सर्वथा अनुचित होगा। भारतीय समाज और प्रशासक वर्गके लिए क्या यही बात कम लज्जास्पद है कि इसका प्रकाशन लेखकको स्वयं करना पड़ाहै। स्वभावत: विक्रय की व्यवस्था भी उसे स्वयंही करनी पड़ी होगी। घाटे के इस सौदेमें केवल एक ही लाभकी बात कहीजा सकतीहै : वह यह कि जहां लेखकको आत्मसन्तोषका लाभ हुआहै, वहीं संस्कृतानुरागियोंका मस्तक गर्वसे उन्नत हुआहै। रोचक स्थिति यह कि २२४ पृष्ठकी इस पुस्तकका मूल्य कुल ३४ रुपये है। इसे हम सामान्य भाषामें कह सकतेहैं कि यह अनुपम गद्यकथा एकदम रद्दीके भाव मिल रहीहै। संस्कृतमें ग्रन्थरचनाका अर्थ है भूखे पेट रहकर केवल उद्देश्यकी उदात्तताके लिए जीवित रहना। उसपर यदि पुस्तकका प्रकाशन भी स्वयं करवाना पड़े तो लेखकको आत्मानन्दके अतिरिक्त और कुछ लाभ नहीं होता। बल्कि उसे घरफूंक तमाशा देखनेवाला ही समझा जाताहै। इसीलिए हमने कहा कि मुद्रण पठनीय है, यही बहुत समझना चाहिये। उससे अधिक आशा रखना स्वयंको धोखेमें रखनेके बराबर होगा।

एक कमी जो सबसे अधिक उभरकर आयी, वह यह कि इतनी सुन्दर और गौरवमयी कृतिकी भूमिका अंग्रेजीमें लिखी गयी, वहभी एक संस्कृतविभागाध्यक्ष के द्वारा। यह बात स्वयंमें दो परम लज्जास्पद सत्यों को सामने लातीहै : प्रथम यह कि किसीभी ग्रन्थकी प्रामाणिकता तबतक स्वीकृत नहीं हो पाती, जबतक उसपर अंग्रेजी और अंग्रेजीदाँ विद्वानोंकी मोहर न लगे। भलेही वे विद्वान् स्वयं संस्कृतके धुरंधर पण्डित हों। और द्वितीय यह कि पुरस्कार अपितु सरकारी अनुदान देनेवाली संस्थाएँ भी इन्हें तबतक मान्यता नहीं देतीं, जबतक इनपर अंग्रेजीकी मोहर न लगीहो। हमारी दृष्टिमें संस्कृत और लेखकके साथ यह सर्वाधिक अन्याय कहा जाना चाहिये। पर इसे किसीभी प्रकार लेखकका दोष नहीं माना जासकता। इसके लिए तो हमें संस्कृति और संस्कृतके प्रति उपेक्षासे भरे अपने

समाजकों ही दोषी ठहराना चाहिये। जहांतक ग्रन्थका प्रश्न है, इसे सम्मानित करके साहित्य अकादमीने अपने आपको सम्मानित कियाहै। लेखक तो मां भारतीका सम्पुष्ट वरदान इसे संस्कृतमें निबद्ध करके ही पा चुकाहै।

इस ग्रन्थको प्रत्येक संस्कृतप्रेमी और संस्कृतिके पुजारीके घरमें पहुंचाना हमारा कर्तव्य होना चाहिये, ताकि हम सिद्ध करसकें कि संस्कृत अभी भी स्वयं अपनी स्वधाशक्तिके बलपर सजीव और बलवती बनी हुईहै। इसको प्रकाशमें लानेमें सहायक एवं उत्तरदायी प्रत्येक व्यक्तिको हमारी हार्दिक बधाई। ⊡

उपन्यास : हिन्दी

जीवनके विराट् परिप्रेक्ष्यमें नारीका नारीत्व सर्वोपरि

अर्द्धनारीश्वर

उपन्यासकार : विष्णु प्रभाकर **समीक्षक : डॉ. मूलचंद सेठिया**

'अर्द्धनारीश्वर' विष्णु प्रभाकरका अद्यतन उपन्यास है, जिसमें सपनोंके उस समाजको आकार देनेका प्रयास किया गयाहै, जहां स्त्री और पुरुष समान अधिकार और समान दायित्वके साथ एक स्वस्थ समाजके निर्माणमें समान रूपसे भागीदार हो सकेंगे। "वे एक दूसरेमें विसर्जित नहीं होंगे, एक-दूसरेसे स्वतंत्र फिर भी जुड़े हुए। नर नर हो और नारी नारी परन्तु एक दूसरेकी निर्भरतासे मुक्त।" नारी विष्णु प्रभाकरकी साहित्य-सर्जनाके केन्द्रमें प्रतिष्ठित रहीहै, उसकी प्रेरणा का मूल स्रोत। बांग्ला कथाकार शरच्चन्द्रके कथा-साहित्यमें विष्णुजीको नारीकी मर्यादा और मुक्तिका आभास प्राप्त हुआ, तभी तो उस 'आवारा मसीहा' के जीवन प्रवाहकी खोजमें अपने जीवनके चौदह वर्ष लगा दिये। पुरुषके बलपर नारीके चिर आश्रित रहनेका परिणाम यह हुआ कि वह एक वस्तु मात्रमें परिणत हो गयी और उसके स्वतंत्र व्यक्तित्वकी कोई पहचान शेष नहीं रह गयी। विष्णु प्रभाकरके लिए नारी चिन्ता का केन्द्रभी रहीहै और चिन्तनकी धुरीभी। 'कोई तो' में उन्होंने नारीके साथ बलात्कारकी समस्याको ही उठायाथा, परन्तु ऐसा लगताहै कि उसमें उनके लिए बहुत-कुछ अनकहा रह गया और समस्याका मूलग्राही समाधान प्रस्तुत नहीं कियाजा सका। तभी तो उन्होंने 'अर्द्धनारीश्वर' में उसी 'थीम' को दुबारा उठाया और उसे औरभी विस्तृत फलकपर परिपूर्णता और समग्रताके साथ चित्रित करनेका प्रयास कियाहै।

'अर्द्धनारीश्वर' के मूलमें भी बलात्कारकी ही घटना है। "पुरुषके साथभी बलात्कार होताहै। कामातुर नारी जब पुरुषको चाहतीहै तो उसे कोई नहीं बचा सकता। "फिरभी, बलात्कारग्रस्त नारीके साथ जो विडम्बना होतीहै, वह पुरुषके साथ नहीं। यह इसलिए होताहै कि 'चिरकालसे पुरुष अहेरी है, नारी शिकार; पुरुष स्वार्थी है, नारी आलोक-मण्डित दासी, पुरुष भू-

स्वामी, नारी भूमि।" उपन्यासकारने 'अर्द्ध नारीश्वर' में नारीकी इसी अभिशप्त नियतिका साक्षात्कार कराया है। परन्तु, इस उपन्यासका उपजीव्य केवल नारी-जीवनकी त्रासदीको चित्रित करनाभर नहीं रहाहै। इस उपन्यासके कथानकका बीज बलात्कारकी दुर्घटना में ही है, जिसकी जघन्य स्मृति सुमिता आदि बलात्कार ग्रस्त नारियोंके तन-मनपर एक लिजलिजे केंचुएंकी तरह रेंगती रहतीहै। वे लाख प्रयत्न करनेपर भी इस कुत्साकी कटुतासे अपनेको मुक्त नहीं कर पातीहैं। परन्तु, इस त्रासद अनुभवके मूलमें केवल बलात्कारकी दुर्घटना ही नहीं, वे युग-युगीन संस्कार भी हैं, जो एक चक्रव्यूह बनकर नारीको चारों ओरसे आबद्ध किये हुए हैं। यौन-शुचिताको अतिरिक्त महत्त्व दिये जानेके कारण ही नारी एक बार इस दारुण यंत्रणासे गुजरने के बाद अपनेको फिर स्वस्थ और सामान्य अनुभव नहीं कर पाती। इस उपन्यासमें नारीको पुरुष-प्रधान समाजसे भी अधिक अपने अन्तस्‌के संस्कारोंके साथ संघर्ष करना पड़ताहै। कितना कठिन है यह अपनेको अपने आपसे ही मुक्त करना और अन्ततः अकुण्ठित चित्तसे अपने अस्तित्वको सतीत्व और नारीत्वपर भी प्राथमिकता प्रदान करना। विष्णु प्रभाकरने 'अर्द्ध नारीश्वर' में नारीको अपने अन्तर्मनकी अतलान्त गहराइयोंमें प्रवेशकर उसे अपने ही अन्तस्‌की अनेक पर्तों, कुण्डली-चक्रों और मकड़जालोंके साथ संघर्ष करते हुए ही नहीं चित्रित दियाहै, वह अन्ततः जीवनके उस धरातलको पा लेतीहै जहां स्त्री और पुरुष दोनोंकी स्वतंत्र सत्ता एक दूसरेमें विसर्जन नहीं, सम्मिलन खोजतीहै। 'तुम तुम रहोगे, वह-वह रहेगा, तभी सच-मुच एकदूसरेको प्यारकर सकेंगे।

उपन्यासका पर्दा उठताहै। सुमिताके साथ बलात्कारकी दुर्घटनासे। अजित अपनी पत्नी सुमिता और बहिन विभाके साथ रातके अन्तिम शोमें सिनेमा जाता है। अर्द्धरात्रिकी शून्य नीरवतामें जब वे घर लौटनेको होतेहैं तो स्कूटरके पुरजे बिखरे हुए मिलतेहैं। जब भीड़ छंट जातीहै तो गुण्डे प्रकट होतेहैं और उनका सरदार विभाकी ओर इशारा करते हुए धमकी भरे स्वरमें कहताहै "हमें एक लड़की चाहिये सिर्फ एक। उठा इस पालकी और ले चल।" सुमिता दृढ़ स्वरमें प्रतिवाद करतीहै 'उसे मत छूना। मैं चलूंगी तुम्हारे साथ।" पतिके प्राण और ननदके कौमार्यको बचानेके लिए सुमिता अपनेको बलिका बकरा बना देतीहै। दूसरे दिन सवेरे उसकी क्षत-विक्षत देह एक नालेके किनारे पर मिलतीहै। पति अजित और श्वसुर महेन्द्र मयंक, जो स्वयं एक प्रमुख कथाकार और विचारक है, सुमिता की अपनी स्नेह-छायामें लेकर उसे पूर्ण आश्वस्त करने के प्रयासमें अतिरिक्त स्नेह और सराहना प्रदान करते हैं। परन्तु, पति-पत्नी एक दूसरेके दर्दमें गहरे डूबकर भी अपने मनमें गहरे द्वन्द्वसे ग्रस्त हो जातेहैं। दोनों अपने मनको मिलाये रखनेके लिए सतत सचेष्ट रहतेहैं परन्तु एक फांस, जो कहीं मनके गहरेमें फंस गयीहै निकालनेके लाख प्रयत्नके बादभी गहरीसे गहरी धंसती चली जातीहै। कोई अपने मनको कहांतक समझाये? और फिर मन क्या केवल अपना ही है? उसके निर्माण में क्या वातावरण, संस्कार, परम्परा इन सबका योग नहीं होता? सुमिताके आहत मनसे बार-बार एक ही गुहार निकलतीहै "मुझपर ही अत्याचार और मुझे ही दण्ड, यह कैसा न्याय है?" उसका विक्षुब्ध मन निरन्तर उबलता रहताहै। सारी सद्‌भावना होते हुएभी सम्बन्ध सहज नहीं हो पाते। उसे लगताहै कि तनका घिनौनापन मनपर भी किस प्रकार छा जाताहै! एक ओर अजितकी अतिरिक्त अनुरक्तिमें उसे असहजता का अनुभव होताहै तो दूसरी ओर उसे यह संशयभी संत्रस्त करता रहताहै कि पति उसका सीधे सामना नहीं कर सकते, इसीलिए उससे दूर-दूर भागे फिरते हैं। अजितको भी लगताहै कि सुमिताने जैसे उसपर अहसानका एक पहाड़ लाद दियाहै। "तुमने शहादत का जाम पियाहै और हम तुम्हें सलीबपर चढ़ा रहेहैं।" इस मनःस्थितिमें अजितको कभी कभी यह सन्देह भी होताहै: क्या यह संभावना नहीं कि रतिक्रियामें वह मुझसे सन्तुष्ट नहीं हो सकी पर परम्परागत मूल्योंके कारण हिन्दू नारी होनेके नाते उसने इस बातकी शिकायत नहीं की और उस दिन अनायास ही यह कारण बन गयाहो, उसके अपनी इच्छासे उनके साथ जानेका।" एक ही शय्यापर सोते हुए दोनों अनुभव करतेहैं जैसे उनके बीच एक दीवार खड़ी हो रहीहै और उसकी ऊंचाई बढ़ती ही जा रहीहै। सुमिताके लिए सबसे बड़ी त्रासदी तो यह है कि अपनी जिस ननदके लिए उसने अपने सतीत्वको लुटायाथा वही यह अनुभव करतीहै कि इस औरतने आत्म-बलिदान करके मुझे छोटा बना दियाहै, जीवन भर आंख नहीं मिला

सकूंगी इससे।" वह यह सोचनेसे भी नहीं चूकती कि सुमिताके मनमें कहीं अतृप्त वासना पनप रहीथी और उसने इस संयोगका लाभ उठाकर बलात्कारका सुख प्राप्त किया! यह सब सुनकर सुमिताका अन्तर्मन कराह-कराह उठताहै, पर वह हार नहीं मानती। प्रतिक्रियावश वह सोचतीहै: "काश! मैं पुकार-पुकार कह सकती कि मैंने अपने साथ बलात्कार होने दिया, पर नहीं कह सकी।' राजकलीकी तरह निम्न मध्यवर्गीय नारी होती तो वह कोई रोकटोक नहीं मानती, पर उसकी उच्च मध्यवर्गीयताने उसे मौन रहनेपर विवश कर दिया।

कुल मिलाकर, सुमिता अपने पति अजितसे उतना नहीं लड़ती जितना अपने आपसे लड़तीहै, अपने उन संस्कारोंसे लड़तीहै जिन्होंने उसे एक ऐसी वस्तुके रूपमें परिणत कर दियाहै, जिसपर पुरुषने अपना स्वामित्व स्थापित कर लियाहै। बलात्कार समाजमें इतना निन्दनीय इसलिए माना जाताहै कि उससे नारीपर पति-पुरुषका एकाधिकार खण्डित होताहै। सुमिता इस मूलमंत्रको दृढ़तासे पकड़ लेतीहै: "मेरी जिन्दगी मेरे लिए मेरे कुंआरेपनसे अधिक महत्त्व रखतीहै।" नारीके लिए उसका अस्तित्व उसके सतीत्वसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, पर युग-युगके संस्कार एक अभेद्य चट्टान बनकर इस धारणाको खण्डित करनेके लिए उठ खड़े होतेहैं। सुमिता अपने आत्म-बलके आधारपर अपनेको अपने आपसे मुक्त करनेका प्रयास करतीहै, परन्तु, यह आप और कुछ नहीं सनातन संस्कारोंका संपुंजन है, जो मूल्यों और आदर्शोंका छद्म बनकर नारीकी चेतनाको आच्छन्न किये रहताहै। पुरुषके प्रभुत्वसे मुक्त होनेके लिए नारीको पुरुषके बल और उस बलसे प्राप्त होने वाली सुरक्षाकी गारण्टीसे भी मुक्त होना पड़ताहै। जबतक नारी अपने बलपर जीना नहीं सीखेगी, तबतक वह इसी प्रकार भटकती रहेगी। "अपनेको पानेके लिए नारीको आर्थिक स्वावलंबन भी चाहिये, परन्तु नारीकी मुक्तिके लिए केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है, क्योंकि "नारी उत्पीड़न मात्र आर्थिक अभावपर निर्भर नहीं है। आर्थिक अभाव और संपन्नता दोनों प्रकारके समाजमें वह समान रूपसे उत्पीड़ित रहीहै। अजित और सुमिता अन्ततः सारे मानसिक तनावों और दबावों से मुक्त होकर अपने 'आप' को पानेके साथही दूसरेको भी अपना बना सके तो इसीलिए कि अजितने जीवनके इस सत्यको प्राणप्रणसे स्वीकार कर लियाथा "मैं सुमिता को अपनी दासतासे मुक्त कर दूंगा। मैं उसकी दासता से मुक्त हो जाऊंगा, तभी हम पति-पत्नी हो सकेंगे।" एक-दूसरेपर अत्यधिक निर्भरता भी दासताका ही एक रूप है। मुक्त होनेके लिए नारीको सौभाग्य और मातृत्व दोनोंकी आकांक्षासे मुक्त होना होगा।

सुमिताकी ननद विभा अपने पति अनित्यको उसकी भाभी अपर्णाकी ओर आकृष्ट होते देखकर दाम्पत्य संबंधोंकी निर्जीव लाशको ढोनेसे बिल्कुल इन्कार कर देतीहै। अपने पतिके जीवन कालमें ही उसकी भाभीने स्वयं आगे बढ़कर अपने देवरके साथ यौन संबंध स्थापित कर लियेथे और विधवा होनेके बाद तो उसे अनित्यके साथ औरभी घनिष्ठ होनेका अवसर प्राप्त हो गयाथा। जब विभा यह अनुभव कर लेतीहै कि अनित्य और अपर्णाके बीच केवल दैहिक संबंध ही नहीं आन्तरिक आकर्षण भी है तो वह अपने पत्नीत्वके अधिकारको बलपूर्वक स्थापित करनेका रंचमात्र भी प्रयास नहीं करती और अपनी ओरसे पति को मुक्त कर देतीहै। वहभी मानतीहै कि रिश्तेके टूटनेसे चोट तो लगतीही है, पर "जब रिश्तेकी सारी संभावनाएं ही समाप्त हो जायें तो उससे चिपटे रहना कहांकी समझदारी है?" 'अर्द्धनारीश्वर' की विभा के इस तर्कमें शरत्‌के उपन्यास 'शेष प्रश्न' की नायिका कमलकी मानसिकताका स्पष्ट आभास प्राप्त होताहै। कमल और विभाकी भांति अपने पतिसे अपने दावेको इस प्रकार पूरे रूपमें उठा लेना सरल नहीं है, परन्तु नारीके स्वाभिमानकी रक्षाको और कोई मार्गभी नहीं है।

स्त्री और पुरुषके संबंधोंका एक बहुकोणीय और समग्र चित्र प्रस्तुत करनेकी दृष्टिसे 'अर्द्धनारीश्वर' में कई युग्मोंको विभिन्न जीवन-स्थितियोंमें प्रस्तुत करने का प्रयास किया गयाहै। उनमें से एक है वर्तिका और नारायणन्‌का युग्म। नारायणन्‌की मांके साथ एक नेता ने बलात्कार कियाथा और वह कभी नहीं भूल सका कि वह पापकी राहसे आयाहै—एक जारज सन्तान है। इस कारण वह द्वंद्व मानसिकताका शिकार हो जाता है, "उसमें जितनी बदला लेनेकी हिंसक भावना थी, उतनी ही प्यारकी भूख।" वस्तुतः वह एक अस्थिर चरित्र था। वह कभी-कभी वर्तिकासे कहताथा "हम बहुत दिन रह लिये साथ, अब साथी क्यों न बदल लें।

वर्तिका इस बदलावकी कोई आवश्यकता अनुभव नहीं करती। परन्तु जब नारायणन् अपने और बच्चेमें से किसी एकका चुनाव करनेकी बात कहताहै तो वह बिना किसी दुविधाके बच्चेका ही चनाव करतीहैं। परन्तु, उपन्यासके अन्तमें जब नारायणन् लस्तपस्त हालतमें वर्तिकाके समक्ष आ खड़ा होताहै तो वही उसे अपनी बांहोंमें आश्रय देतीहै। बेचारा पुरुष !

श्यामला केरलकी एक नायर कन्या है, जो अजित के जीवनमें एक महिला मित्रके रूपमें प्रवेश करतीहैं। उसके साथ श्यामलाके काफी घनिष्ठ संबंध हो जातेहैं, जो लक्ष्मण-रेखाको कभी पार नहीं करते, पर उसको स्पर्श अवश्य कर लेतेहैं। सुमिताके प्रति अपनी श्रद्धाके कारण ही वह पति-पत्नीके बीचमें नहीं आना चाहती और अपनी अलग गृहस्थी जमानेके प्रयासमें प्रत्येक बार धोखा खातीहै। अपने सारे नारियलके पेड़ बेच कर अपने जिस प्रथम पतिके लिए कार खरीदतीहै, वह शराबी और आधा पागल निकलताहै। वह उसे मारताहै और कहताहै "कैसी लेखिका है! एक उपन्यास प्रति मास लिख और दो हजार रुपए ला।" उस प्रवंचक पतिसे पीछा छुड़ाकर वह फिर एक नाट्यकर्मी केशवन्के साथ बंध जातीहै। वह भी यही चाहताहैं कि श्यामला कमाये और वह मस्तीसे मौज उड़ाये। श्यामला की नौकरी छूट जातीहै तो घरवाले भी आंखें फेर लेते हैं। घरकी छतसे बाहर निकलकर वह जिन्दगीके चौराहेपर आकर खड़ी हो जातीहै। "क्या श्यामलापर बार-बार बलात्कार ही नहीं हुआहै? यह दूसरी बात है कि बलात्कारीको विवाहके रूपमें बलात्कारकी अनुमतिका लाइसेंन्स मिला हुआथा।" श्यामलाके मनमें सौभाग्य और मातृत्वके प्रति जो अतिमोह था, वही उसे पुनःपुनः प्रवंचित होनेके लिए विवश करताहै। उसका यह दुर्भाग्य था कि वह अकेली खड़ी होनेका साहस नहीं जुटा सकी। अन्ततः वह इसी निष्कर्षपर पहुंचतीहै "अब मैं पैसा देकर प्यार नहीं खरीदूंगी। वह मारेगा तो पुलिसमें रिपोर्ट करूंगी।" अनित्यके बाद विजयसे टूटकर विभा भी अकेलेपनका बल पहचानतीहै। शाहिदासे भी सुमिता यही कहतीहै "शरण मांगोगी?" जबतक नारी अपने बलपर जीना नहीं सीखेगी तबतक वह इसी प्रकार प्रताड़ित होकर भटकती रहेगी। जीवनमें मुफ्त कुछभी नहीं मिलता, जितनी बड़ी उपलब्धि हो उसके लिए उतनी ही बड़ी कीमत भी चुकानी पड़तीहै। यदि नारी अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित करना चाहतीहै तो उसे अकेला खड़ा होना सीखना ही पड़ेगा। पुरुषके आश्रयकी आकांक्षा को छोड़कर ही वह उसकी दासतासे मुक्त हो सकेगी।

शाहिदा शिवनाथकी ओर आकृष्ट है। वह बी. बी. सी. का संवाददाता बनकर लन्दन जानेवाला है और शाहिदा चाहतीहै कि उसके साथ उसका प्रणय शीघ्रही परिणयमें परिणत हो जाये। परन्तु, सुमिता उसे समझाते हुए कहतीहै "अभी तू मोहमें फंसीहै। प्यार होनेदे। भूल मत, प्यार पासही नहीं लगता, दूर भी करताहै। विश्वनाथ यदि सचमुच तुझे प्यार करता है तो इतनी जल्दी नहीं करेगा। तेरे भलेके लिए तेरी राह देखेगा और आवश्यकता हुई तो रास्तेसे हट भी जायेगा।" सुमिता प्रत्येक स्थितिमें अतिमोहको अनर्थकारी मानतीहै। "एक दूसरेमें खो जानेकी रूमानी भावना स्वतंत्र प्रेमका नकार है।" इसीलिए, विवाह-बन्धनमें आबद्ध होनेकी जल्दबाजीका वह विरोध करतीहै। प्रेमके इस गैर रूमानी स्वरूपको रेखांकित करनेके लिए वह खलील जिब्रानकी इस उक्तिको बार-बार उद्धृत करतीहै "एक-दूसरेका प्याला भरो, एक-दूसरेके प्यालेसे पीओ मत।" रुककर प्रतीक्षा करनेसे प्रेमका रंग गहरा होताहै या फिर कच्चा हो तो उड़ ही जाताहै। अन्ततः दोनोंही स्थितियां वांछनीय सिद्ध होतीहै।

विष्णु प्रभाकरने स्त्री-पुरुष संबंधोंके सन्दर्भमें समाजका व्यापक सर्वेक्षण कियाहै और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचेहैं कि आदिकालीन समाजमें उत्पादनकी प्रक्रिया और साधनोंपर स्त्री-पुरुषका समान अधिकार था। एक प्रकारका आदिम साम्यवाद।" नारी पुरुषमें समाती नहीं थी, बराबर खड़ी होतीथी। यही कारण है कि कई आदिम-जातियोंके शब्द-कोशमें आजभी बलात्कारका समानार्थक कोई शब्द नहीं है। ज्यों ज्यों पुरुष अर्थतंत्रपर हावी होता गया, स्त्रीको अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति माननेकी चेतना प्रबल होने लगी। आजभी मध्यमवर्ग और उच्च वर्गकी अपेक्षा निम्न वर्ग की नारी अधिक स्वतंत्र है क्योंकि किसी-न-किसी स्तर पर वह उत्पादनकी प्रक्रियाके साथ जुड़ी हुईहै। वर्तिका अपने अनुभवके आधारपर कहतीहै "जो गरीब हैं, वहां इज्जत कभी बाधा नहीं बनती, न कोई यौन शुचिताकी बात करताहै। ये सब वर्जन मध्यवर्गके हैं

जो समाजका पन्द्रह प्रतिशत भी नहीं है।" एक निम्न वर्गीय नारीकी यह स्वतंत्र चेतना जगरानीके इस उद्गारमें व्यक्त होतीहै "हम बराबर खटे हैं, बराबरका कमावे हैं। हम पे नहीं चलेगी धौंसपट्टी। हम ना सहते किसीकी चोधराहट।" इस उपन्यासमें अनेक स्त्रियां बलात्कारका शिकार होनेके लिए अभिशप्त होतीहैं, परन्तु जैसा सक्रिय प्रतिरोध और प्रतिशोध निम्नवर्गीय किरणके द्वारा प्रदर्शित किया जाताहै', किसी अन्य उच्चवर्गीय स्त्रीके द्वारा सम्भव नहीं होसका है। उसके साथ बलात्कार करनेवाले तीन गुण्डोंमें से एक फरार हो जाताहै। एक दिन किरण उसे किसी दुकान पर खड़ा देख लेतीहै तो वह एक पेड़पर चढ़ जातीहै और एक बड़ा-सा पत्थर उठाकर पूरी ताकतके साथ उसपर मारतीहै। युवक चीखकर वहीं धाराशायी हो जाताहै। किरण सीधी पुलिस चौकीपर जा पहुंचतीहै और उसे गिरफ्तार करा देतीहै। इस अप्रतिम साहस को उसकी वैयक्तिकसे अधिक वर्गीय विशेषताके रूपमें प्रस्तुत किया गयाहै।

'अर्द्धनारीश्वर' में विष्णु प्रभाकरने नर-नारी के शाश्वत आकर्षणसे उत्पन्न उनके वैवाहिक एवं विवाहेतर संबंधोंको एक विराट् कथा-फलकके माध्यम से प्रस्तुत कियाहैं। दोनोंके तन-मनमें एक-दूसरेके प्रति जो जैविक और यौनिक आकर्षण है, वह उन्हें सह-जीवनके लिए विवश करताहै परन्तु उनका साहचर्य इतनी सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओंसे आक्रान्त हो जाताहैं कि वह वरदानसे अधिक एक अनिवार्य अभिशाप ही प्रतीत होने लगता है। दोनोंके अहम् और स्वार्थके संघर्षसे उत्पन्न होने वाली चिनगारियां क्रमशः एक दाहक और विस्फोटक स्थिति पैदा कर देतीहै। "नारीको जगदम्बा, रणचंडी, शारदा, सरस्वती, लक्ष्मी, अन्नपूर्णा क्या-क्या कहकर नहीं लुभाया गया। पर अन्तत: नरको पत्नीका पति-परमेश्वर बनाकर उसे मात्र वस्तु बना दिया।" यही कारण है कि उसके साथ अपराध होनेपर भी उसीको अपराधिनी घोषित किया जाताहै। वह पुरुषसे ही नहीं ठगी जाती, आरोपित आदर्शों और मिथ्या मूल्योंके नामपर अपने आपसे भी ठगी जातीहै। अपनी कारापर जैसे वह स्वयं पहरेदार बनकर बैठ गयीहै। तभी तो वह कहतीहै "परन्तु कितना कठिन है मुक्त होना और किसीको मुक्त होने देना। 'अर्द्धनारीश्वर' की सुमिता बलात्कारकी नारकीय यंत्रणासे निकलकर अपने आपसे जूझते हुए न केवल सब प्रकारके रूढ़ संस्कारों, मृत मान्यताओं और मिथ्या आसक्तियोंसे अपने आपको मुक्त करतीहै, बल्कि विभा, वर्तिका, श्यामला, शाहिदा, किरण और जगरानी जैसी अनेक स्त्रियोंको बिना किसी सहारेके जीवन-संघर्षमें अकेले खड़े होनेका बल प्रदान करतीहै। वह अकेली अपनी ही मुक्ति नहीं खोजती, अपने जैसी अनेकानेक व्यक्तों, अपमानित नारियोंके साथ अपनेको जोड़ती है और अन्तत: एक ऐसे समूह की नेत्री बन जातीहैं, जिसमें अनेक सम-विषम स्तरकी हरिजन, मुस्लिम-ईसाई और दाक्षिणात्य महिलाएं आ-आकर मिलती चली जातीहैं। वे सभी किसी-न-किसी रूपमें पुरुषों द्वारा प्रवंचित और प्रताड़ित होती हैं परन्तु सतीत्वसे अपने जीवनको अधिक महत्त्वपूर्ण मानतीहैं। वे अपने शील-भंगको आत्म-हननका कारण नहीं बनने देती। "नारीका शरीर ही क्या सब कुछ है? उसका अन्तर्मन क्या कुछ भी नहीं?" परन्तु, आपकी तथाकथित नैतिकता तो चमड़ीसे गहरा उतरने के लिए तैयार ही नहीं होती। नारी तो अपनी कोमलताके कारण ही लचक जातीहै इसलिए सदा सूली पर चढ़नेके लिए भी उसीको तैयार रहना पड़ताहै।

स्त्रीके जीवनमें पुरुष और पुरुषके जीवनमें स्त्रीका प्रवेश चाहे अनिवार्यता न हो परन्तु दोनोंकी परिपूर्णता तो परस्परोन्मुखतामें ही निहित है। स्त्री या पुरुषके जीवनमें यदि कोई विशेष लक्ष्य हो तो अकेले रहकर भी सार्थक जीवन व्यतीत कियाजा सकताहै, परन्तु, महेन्द्र मयंकके शब्दोंमें "विवाह संस्थाको मिटाना समाजको मिटाकर फिर गुफाके युगमें जाना होगा।" विभाका दावा है "यौन सम्पर्कके बिना भी वह मिलन कितना सरस, सम्पूर्ण होताहै, वह हमारी अगली पीढ़ी सहज ही देख सकेगी।" इसी सन्दर्भमें वह आगे कहती है "जिन स्त्री-पुरुषके बीच चुम्बन और आलिंगनकी सीमाओंके नीचे न उतरनेवाला संपर्क बन सके वह स्वाभाविक और सहज साधन हो उनके लिए।" चुम्बन और आलिंगनके आगे लक्ष्मण-रेखा खींचना तो आसान है परन्तु वासनाके विकट वेगके सम्मुख उसके अनुल्लंघित बने रहनेकी संभावना क्षीण ही होतीहै। सामान्य स्थितिमें स्त्री-पुरुषका संबंध देहात्मका संयुक्त संबंध होताहैं, उसे केवल देह तक सीमित रखना यदि संकीर्णता है तो उसमें से देहको सर्वथा निष्कासित कर

देता भी असंभावनाकी स्थि[illegible] । [illegible] संयम और सात्विक जीवन व्यतीत करनेवाले वयोवृद्ध महेन्द्र मयंककी यह स्पष्ट स्वीकारोक्ति है 'काम मुझे अब भी परेशान करताहै, इस सत्यको हम स्वीकार क्यों नहीं कर लेते कि काम कभी मरता नहीं।'' काम-भावना मानवके तन-मनकी ऐसी ऊर्जा है जिसका परिशोधन और दिशान्तरण तो हो सकताहै, पर सर्वथा निषेध नहीं कियाजा सकता। विवाहकी जकड़बंदीको तोड़नेकी जरूरत हो सकतीहै, विवाह संस्थाको ही विघटित करनेकी नहीं।'' जब नारीके मनका सुर नरके मनके सुरसे मिल जाताहै तो मिलन धन्य हो जाताहै। इसी भावको किसी भाषाविद्‌ने 'प्रेम' नाम दिया होगा।'' परन्तु, इस आदर्श प्रतीत होनेवाली स्थितिके भी अपने अन्तर्विरोध हो सकतेहैं. जिसमें से एकको ओर स्वयं उपन्यासकारने संकेत कियाहै ''एक नारीके मनका सुर दो नरोंसे नहीं मिल सकता क्या। वैसेही एक नरके मनका सुर दो नारियोंके मनके सुरसे नहीं मिलता क्या?' यह मानना ही होगा कि जीवनमें नर-नारीके संबंधोंका कोई बना बनाया 'पैटर्न' नहीं होता। जितने स्त्री-पुरुष युगल होतेहैं, उनकी मनोरचनाके अनुकूल संबंधोंके उतनेही सांचे हो सकतेहैं और कौन कह सकता है कि कोई युगल अपने पूरे जीवनको एकही सांचेमें ढाल सकतेहैं। जीवनके नियम सरल होकर भी चिर-गूढ़ हैं और इस अन्तर्निहित गूढ़ताकी ओरसे आंखें मूंदकर नियम निर्धारित करेंगे तो अतिसरलीकरणका खतराभी उतना ही होगा। विभा स्त्री-पुरुष संबंधोंकी एक नयी आचार-संहिता बनानेपर बार बार जोर देतीहै और इसकी अपरिहार्यताको अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता परन्तु जीवनकी गत्यात्मकता किसी बंधी-बंधायी स्थितिको चिरकाल तक कभी स्वीकार नहीं कर सकेगी।

'अर्द्धनारीश्वर' उपन्यासका प्रकाशन हिन्दी कथा साहित्यके इतिहासमें एक 'घटना' के रूपमें चिर स्मरणीय रहेगा। इस उपन्यासमें विष्णु प्रभाकरने बलात्कार के सन्दर्भमें स्त्री-पुरुष संबंधोंके विभिन्न रूपोंको इतनी समग्रता और गहरी सूझ-बूझके साथ प्रस्तुत कियाहै कि उसका कोई पक्ष शायद ही अछूता रह गयाहो। उपन्यास में घटनात्मक अभिक्रमके सूत्र नारियोंके हाथोंमें है, इस लिए पुरुषोंकी अपेक्षा उनके चरित्रोंमें सचेतनता और सक्रियता अधिक मात्रामें परिलक्षित होतीहै। महेन्द्र [illegible] और गरिमामय चरित्र जीवनके आवर्तमें फंसी हुई इन नारियोंको दिशानिर्देश प्रदान करताहै। अजितने अपना सन्तुलन साधकर सुमिताके सन्तुलित बने रहनेमें बड़ी सहायता कीहै। परन्तु, अन्य पुरुष चरित्र—अनित्य, नारायणन्, केशवन् आदि जैसे एक अंधी दौड़ लगा रहेहैं। उपन्यास बलात्कारकी घटनासे आरम्भ होताहै और अपने विपुल विस्तारमें कहींभी उसकी छायासे मुक्त नहीं हो पाताहै। परन्तु विष्णु प्रभाकरने इस समस्याको जीवनके विराट् परिप्रेक्ष्यमें प्रस्तुत कियाहै। उसकी यह आधारभूत मान्यता है कि 'बलात्कारसे सतीत्व नष्ट होताहो, पर नारीत्व नष्ट नहीं होता और नारीके लिए नारीत्व सर्वोपरि है।' इस उपन्यासके केन्द्रमें विभिन्न नारियोंका अपने ही बलबूतेपर अपनी अन्तर्बाह्य दुर्बलताओंके साथ संघर्ष करते हुए मुक्त होनेके प्रयासको चित्रित किया गयाहै। यह मुक्ति उसे पुरुष-प्रधान समाजके बाह्य बन्धनोंसे ही नहीं अपने अन्तर्मनके बद्धमूल संस्कारोंकी जकड़नसे भी प्राप्त करनीहै। उपन्यासकारने केवल सुमिताही नहीं अनेकानेक नारी चरित्रोंके माध्यमसे उस शृंखलाकी एक-एक कड़ीको ठोक बजाकर देखाहै, जिसने नारीके तनको ही नहीं, उसके मनके स्वर-स्तरको अनादिकाल से जकड़ रखाहै। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए उपन्यासकारने यहां विविध चरित्रोंका विधान कियाहै, वहां कई भुक्तभोगी महिलाओंकी आपबीतीको बयानों और डायरियोंके माध्यमसे भी प्रस्तुत कियाहै। इस सन्दर्भमें कई पौराणिक मिथकोंकी पुनर्व्याख्या की गयी है, जिनमें राम, कृष्ण, लक्ष्मी, विष्णु और सहस्रफणके मिथक प्रमुख हैं। महेन्द्र मयंककी एक पूरी कहानीको उद्धृत किया गयाहै तो जैनेन्द्रके उपन्यास दशार्क सेभी कई उद्धरण दिये गयेहैं। खलील जिब्रानकी सूक्तियों और डॉ. के विचारोंका भी एकाधिक बार प्रस्तुत किया गयाहै। रवीन्द्र और शरत्‌के उपन्यासों एवं प्रसाद और महादेवीकी कविताओंसे प्रसंगानुकूल विचारोंको लेकर उन्हें उपन्यासमें यथास्थान मालामें मोतियोंकी तरह पिरोया गयाहै। इस उपन्यासमें विष्णु प्रभाकरके जीवन भरके अध्ययन, चिन्तन और लोक-निरीक्षणका सार समाहित है परन्तु सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है स्वयं कथा-स्रष्टाकी सबल संवेदना और गहन अन्तर्भेदिनी दृष्टि जो सभी व्यक्तियों और स्थितियोंका सन्तुलित विवेचन कर जीवनका एक समग्र चित्र प्रस्तुत करतीहै। उपन्यास

के नारी चरित्र कथाकारकी अवधारणाओंके प्रतीक मात्र न होकर अपनी विशिष्ट वैयक्तिकतासे सम्पन्न हैं। सबसे प्रमुख चरित्र सुमिताका हो सकताहै परन्तु सर्वाधिक जीवन्तताके साथ विभाको चित्रित किया गयाहै। उपन्यासकारने 'अर्द्धनारीश्वर' में कोई शैल्पिक प्रयोग नहीं कियाहैं, परन्तु कथा-संरचनाकी दृष्टिसे यह उपन्यास एक बहुत ही सधी हुई कृति है। विष्णु प्रभाकर अपने भाषा-प्रयोगमें सहजके उपासक रहेहैं, परन्तु इस उपन्यासकी भाषामें सहजताके साथ जो व्यंजकता और यथापेक्षित वक्रता है, वह स्वयं एक उपलब्धिके रूपमें स्वीकार की जायेगी। 'आवारा मसीहा' के लेखकको भविष्यमें 'अर्द्धनारीश्वर' के रचयिताके रूपमें ही याद किया जायेगा। निश्चय ही, यह उनकी जीवनभरकी सत्य-शोध और शब्द-साधनाकी सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है। हिन्दीके दस श्रेष्ठतम उपन्यासोंकी किसीभी तालिकासे इसको बाहर नहीं रखाजा सकेगा। □

उपन्यास : तमिल

मानसिक भ्रान्तियों, तामसिक वृत्तियोंसे संघर्ष और जीवन यथार्थकी कथा

कादुकल

उपन्यासकार : एम. बी. वेंकटराम

समीक्षक : डॉ. एम. शेषन्

तमिल कहानी साहित्यके विकास एवं संवर्द्धनके लिए समर्पित पत्रिका 'मणिक्कोडि' का कथा साहित्य में अपना एक विशेष महत्त्व है। कथा साहित्यके प्रारंभिक कालमें इस पत्रिकाने कई उदीयमान एवं प्रतिभाशाली कहानीकारोंको प्रोत्साहित कियाहैं। इस पत्रिका से जुड़े हुए अनेक कहानीकारोंने तमिल कहानीके क्षेत्र में अपना नाम अंकित कियाहै। कथाकार एम. वी. वेंकटराम भी शुरूमें 'मणिक्कोडि' से जुड़े हुएथे। विगत ५७ वर्षोंसे अपनी रचनाओंके माध्यमसे तथा अपने विशिष्ट वैचारिक चिन्तनके कारण तमिल पाठकोंके बीच एक विशेष स्थान बना चुकेहैं।

वेंकटराम अपनी कहानियों और उपन्यासोंके माध्यमसे जीवनके मर्मको, उसकी गहराईमें पहुंचकर खोजने परखनेका प्रयास करतेहैं। उनकी यह खोज आज भी जारी है। सांसारिक बवण्डरमें मानवको भेजनेवाला वह कौन था? जीवनका उद्देश्य और लक्ष्य क्या है? इन सभी रहस्योंको जाननेकी उनकी उत्सुकताके कारण उनकी कृतियोंको समझनेमें सामान्य पाठक कभी भ्रममें पड़ जाताहै। आत्मशोध ही लेखककी सृजनशीलता और रचनाधर्मिताका उद्देश्य प्रतीत होताहै।

'कादुकल' (कान) भी इसी आत्मशोधनकी प्रक्रियामें से निकलता एक अनूठा उपन्यास है। इसमें लेखकके जीवनका एक अंश कथाके माध्यमसे चित्रित किया गयाहै। लेखकके असाधारण जीवनानुभवोंको

कुछ विशिष्टताओंके साथ परोक्ष रूपमें कहनेका प्रयास इसमें हुआहै।

उपन्यासका नायक महालिगम एक लेखक है, साहित्यकार है। आरंभमें उसका जीवन सुखी, संपन्न एवं भरपूर था। ३६ ३७ वर्षकी आयुमें अचानक वह बहरा हो चला। तबसे उसके जीवनमें परिवर्तन दृष्टि-गोचर होने लगा। ये परिवर्तन बाहर और अन्दर दोनों प्रकारके थे। मनकी गुफाके अन्दरसे तथा बाहर शून्याकाशसे भी विभिन्न प्रकारकी आवाजें सुनायी पड़ने लगी। केवल सुनायी पड़ी, यह बात नहीं। कभी भयंकर, घोर, घृणित आवाज उसके शरीरके अन्दरसे शोर मचाने लगती, उसे परेशानकर, तंग करने लगती, उसे अशांत कर देती। कल्पनातीत घोर घृणित छायाएं, भिन्न भिन्न आकार धारणकर उसके आस-पास उसे घेरे हुए भयभीत करतीहों, ऐसा एक भ्रम, मति-विभ्रम, उसे निरन्तर उद्विग्न करता रहा। एक प्रकारका मानसिक रोग होगया। अतः स्वाभाविक रूपसे वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठा। उसका जीवन अस्त-व्यस्त एवं डांवाडोल होगया। वह विभिन्न प्रकारकी चिन्ताओं और भयसे घिरा रहने लगा। इतना होते हुए भी महालिगमकी बुद्धिशक्ति तथा अहम्‌वृत्ति थोड़ी भी विचलित नहीं हुई। इस कारण अपने चारों ओर घटित घटनाओंको वह एक मूक गवाहकी भांति ध्यान से तथा तटस्थ रूपसे देखता रहा। बचपनसे वह भग-वान् मुरुगन् (कार्तिकेय) का परम भक्त था। उन्हें अपने जीवनका गुरु और मार्गदर्शक मान चुकाथा। अपने अन्दर शोर मचानेवाली भयंकर आवाजों तथा घृणित छवियोंके भ्रमसे ऊबकर समय-समयपर वह अपने इष्टदेव मुरुगनके सम्मुख प्रार्थना करताथा। इसके अतिरिक्त उसे कोई दूसरा मार्ग ही नहीं सूझता था। वह अपनेको विवश और निरुपाय अनुभव करने लगा।

उसके मनकी तामस शक्ति उसे चारों ओरसे घेरने लगीं, उससे आक्रांत थी यह कहना अधिक उपयुक्त होगा। यह तामस शक्ति अपनेको काली माता कहते हुए उसपर यह दबाव डालतीथी कि महालिगम मुरुगन की उपासना करना छोड़कर केवल उसीकी उपासना करे। उसे इस बातके लिए विवश करनेकी दृष्टिसे कई प्रकार के घृणित बीभत्स रूपोंको लेकर भ्रांति और मतिविभ्रम की लहरोंपर लहरें होकर उसे डराती, धमकी देती तथा भयभीत करने लगीं।

यह आन्तरिक नाटक महालिगमके जीवनमें कई वर्षों तक चलता रहा। इन कटु अनुभवों के कारण महालिगमका मन जीवनके कार्यकलापोंसे उचट गया। वह जीवनसे विरक्त होगया। परिणाम-स्वरूप उसकी संपत्ति दिनों दिन घटती गयी। लेखकके रूपमें भी उसकी लोकप्रियता घटती गयी। गरीबीने उसके जीवनको घेर लिया, परिवार संकटमें पड़ गया। इस प्रकार लगभग २०-२५ वर्ष तक वह यातना और कटु अनुभवोंसे त्रस्त, पीड़ित और मर्माहत रहा। एक ओर अमानुषिक तामसवृत्ति तथा दूसरी ओर अति-मानवीय सत्ववृत्ति, दोनों मिलकर उसके बाह्य और आन्तरिक जीवनको झकझोरती रहीं। इस आत्मसंघर्ष ने जूझते हुएभी उसने अपने साहित्यिक सर्जनके कार्य को नहीं छोड़ा। इस बीच उसने कुछ उपन्यासों तथा कहानियोंकी रचना की; पचाससे अधिक जीवनी ग्रंथोंका अनुवाद प्रस्तुत किया और सामान्यज्ञान संबन्धी कई पुस्तकें भी लिखीं। इस प्रकार उसके साहित्यिक कार्य यथावत् चलते रहे।

समग्र उपन्यासमें महालिंगमकी आत्मपीड़ा, यातना तथा अपने निजी जीवनसे जूझने तथा घोर संघर्षकी कथा—आपबीती शैलीमें मार्मिक ढंगसे चित्रित है जो सहृदय पाठकके मनमें करुणा उत्पन्न कर देतीहै। तामसवृत्तियों एवं सत्वशक्तिके मध्य इस घोर संघर्ष में पिसकर उसकी समस्त शक्तियां क्षीण होचलीं। इतना होते हुएभी उसके अन्दरकी सत्वशक्ति धीरे-धीरे बलवती होती गयी और उसे सर्वनाशसे बचानेका प्रयास करने लगीं। उसका आत्मविश्वास जग जाताहै और जिजीविषा बलवती होगयी। इस सत्वशक्तिके उठनेके साथही उपन्यासका अन्त हो जाताहै। इस प्रकार लेखक के, अपने जीवनको खोजने और समझनेका प्रयास चलता रहताहै। एक पहेली-से लगनेवाले जीवनमें वह अपने गुरुके मार्गदर्शनकी अबभी प्रतीक्षा कर रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'कादुकल' में लेखककी आध्यात्मिक खोज चल रहीहै।। मायाकी शक्ति उसके अच्छे प्रयत्नोंको विफल करनेपर तुली हुईहै। इस मायाकी शक्तिसे निस्तार पानेके लिए लेखकने जो प्रयास किया, आत्मसंघर्ष किया तथा कटु अनुभव प्राप्त किये, इन सबका कलात्मक चित्रण प्रस्तुत उप-

न्यासमें हुआहै। लेखक एम. वी. वकटरामने अपने निजी आध्यात्मिक अनुभवोंकी अनुभूतिके स्तरपर लाकर महालिंगम नामक पात्रके माध्यमसे अभिव्यक्ति देकर एक अच्छे उपन्यासका निर्माण कियाहै।

तमिल साहित्यमें आध्यात्मिक खोजको अनुभूतिके माध्यमसे साहित्यिक रूप देनेकी एक लंबी एवं पुरानी परम्परा रहीहै। तमिलके प्राचीन प्रबन्धकाव्य 'शिलप्पदिकारम्' "मणिमेखलै" जैसे पंचमहाकाव्योंने जैन, बौद्ध आदि तत्कालीन धार्मिक संघर्षोंकी उनके आध्यात्मिक प्रभावोंको कलात्मक रूपसे अभिव्यक्ति दीहै। परवर्तीकालमें ईसाई धर्म और इस्लाम धर्म जैसे विदेशी धर्मोंके दार्शनिक चिन्तन भी काव्यके माध्यमसे तमिलमें व्यक्त किये गये। इसके पश्चात् उन्नीसवीं शतीमें तमिल प्रदेशके नवजागरण कालमें राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती, भारतीदासन जैसे कवियों और लेखकों ने आध्यात्मिक खोजको अपनी कविताओंके माध्यमसे प्रकट कियाथा।

आधुनिक युगके कथाकार पुदुमैपित्तनका 'मनगुहै ओवियंगळ', 'अवतारम्', के ळविक्कुरि', 'कयिट्रखु' जैसी कहानियां मानवकी आध्यात्मिक जिज्ञासाके कारण उनके निरंतर आत्मसंघर्षको पहली बार तमिल कहानियोंमें व्यक्त करनेका प्रयास करतीहैं। तमिल प्रदेशके सिद्ध संतोंकी दीर्घ परम्परामें उन्नीसवीं शतीके संत रामलिंग वल्ललारकी 'अमरता प्राप्त करनेकी कला' नामक विज्ञानको तमिलोंने अनदेखा-सा कर दिया।

अत: आध्यात्मिक ज्ञानकी पिपासासे प्रेरित लेखक वेंकटराम अपने उपन्यासकी कथाके माध्यमसे आत्मशोधनका मार्ग अपनातेहैं तो भारतीय परम्पराके अनुकूल ही मानना होगा। उनके अनुसार 'सत्यकी खोजमें विगत ३५ वर्षोंकी तपस्याके परिणामस्वरूप' उनका यह उपन्यास 'कादुकल' प्रकाशमें आया। इस प्रकार आध्यात्मिक खोजकी साहित्यिक परिणतिके रूपमें 'कादुकल' उपन्यास निकला ऐसा कहना अनुपयुक्त न होगा।

रहस्यमय विद्याके नामसे आध्यात्यिक रूपको जाननेके प्रयत्नमें तमिलमें पहली बार इस प्रकारके उपन्यासकी रचना हुईहै। रचनामें लेखकने अपने जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवोंको अपने रहस्यवादी चिन्तनको भाववादी अगम्य योगके साथ कलात्मक अभिव्यक्ति देनेका प्रयास कियाहै। यूरोपीय साहित्यिक प्रभावोंसे मुक्त होकर विशुद्ध भारतीय चिन्तन परम्पराका अनुकरण करते हुए अपनी विशिष्ट शैली द्वारा दार्शनिक चिन्तनको अपनाते हुए तमिलमें नये ढंगकी रचनाका प्रयास कियाहै।

विश्वके साहित्यकारोंके मनमें यह संशय निरन्तर बना रहाहै कि जीवनकी सभी बातोंको, मनके समग्र चिन्तनको क्या ज्योंका त्यों लेखनमें अभिव्यक्त किया जा सकताहै? प्रसिद्ध लेखक और चिन्तक दास्तायवस्की भी इसी द्विधावश जीवनभर खोजमें लगा रहा। अपने जीवनके यथार्थको उन्होंने लिपिबद्ध किया। साहित्यमें जिस यथार्थवादकी चर्चा होतीहै वह इस 'कादुकल' में चित्रित यथार्थसे बहुत कुछ भिन्न है। लगभग तीस वर्षोंसे एक ही कानसे सुनते आनेवाले लेखक अपने जीवनमें जिन जिन अनुभवोंसे निकलतेहैं, वहीं पाठकभी पहुंच जाताहै। लेखकके जीवन यथार्थ का वह साक्षात्कार करताहै।

लेखक स्वयं कथा नायकके रूपमें एक मायाके संसारमें विचरण करतेहैं। उस मायावी संसारकी बातों का तटस्थ होकर, निष्पक्ष रूपमें यथार्थ चित्रण करतेहैं जिससे उपन्यासमें स्वाभाविकता आ जातीहै। फिरभी खटकनेवाली बात यह है कि कथानायक महालिंगमके जीवनकी समस्याओंका उत्तर स्वयं कथाकार ही देनेका व्यर्थ प्रयास करतेहैं। साहित्यिक ढंगसे भलेही उनके उत्तर सही भी लगतेहों, पर सामान्यतया विश्वसनीय नहीं लगते। आजका मानव तनावों से होकर गुजरताहै, जीवन संघर्षोंमें भटकताहै। इस संघर्षशील जीवनके पीछे शान्तिकी खोज करना ही लेखकके सृजनका मूल ध्येय है, यही उपन्यास रचनाके पीछेका प्रेरणा स्रोत भी है।

कथानकमें कोई विशेष आकर्षण न होनेसे, तथा घटनाओंकी गतिशीलतामें मंदता रहनेसे तथा संवादों की भरमारसे सामान्य पाठक ऊब जाताहै। साथही वह इस भ्रममें पड़ सकताहै कि उपन्यासकार एक बहरे व्यक्तिके संकटों और उसके मानसिक ऊहापोहों तथा मतिभ्रमोंका ही चित्रण करता जाताहै। इस प्रकारकी सीमित दृष्टिसे उसे समझनेकी आशंका इसमें अवश्य है। परन्तु कथाकारका अभिप्राय कुछ इससे भिन्न है, इसे समझनेके लिए कथाकारके साथ सहृदय पाठक बन-

कर चलनेपर इस कृतिका वास्तविक सौन्दर्य तथा लेखकीय तत्व-चिन्तनके प्रति आतुरता उसे समझमें आयेगी ।

लेखककी मान्यता है कि आध्यात्मिक अनुभूति तथा सांसारिक जीवन संघर्षों दोनों मार्गोंके बीच होनेवाली खींचतान एवं तनातनीमें व्यक्तिको घोर आत्म-संघर्षसे होकर निकलना पड़ताहै । अपने भीतरकी सत्वशक्तिके बलपर तामसवृत्तियोंका नाश करना पड़ेगा । युग युगसे मानव संसारमें यह आत्मसंघर्ष निरन्तर व्यक्तिके भीतर ही भीतर चलता रहाहै । झूठ, अस्वाभाविकता, तामसवृत्ति आदि बुराईयोंको सत्य-स्वाभाविकता सात्विक वृत्तियोंके बलपर पराजित करनेमें ही उसके जीवनकी सार्थकता मानी जायेगी । स्वेच्छासे चलते रहनेवाली जीभ, कामासक्त मन, कुदृष्टिसे संसारको देखनेकी प्रवृत्ति, दुर्गन्ध और सडान्धको सूंघनेवाली नाक, सदा शोर मचानेवाला कान, पंचेन्द्रियोंका उपद्रव इत्यादि कारणोंसे भ्रमित और भटकते मनसे युक्त व्यक्ति अपने बुद्धिबल, आत्मबलसे सदा संघर्ष करता रहताहै । युग युगसे व्यक्ति-मन और उसकी बुद्धिके बीचका यह संघर्ष निरन्तर चलता ही रहताहै । इस विश्वका 'महानियंत्रक' 'महाशिक्षक' उसके साथ रहकर जब उसे युद्धके उपाय सुझाते रहतेहैं तब विजय किसकी होगी यह प्रश्न ही कहां उठताहै ? ▫

उपन्यास : मणिपुरी

आदर्शवाद; निष्क्रिय बौद्धिकता, कल्पनात्मक सैद्धान्तिकताकी कथा

'पुन्सिगो मरुद्यान'

उपन्यासकार : अराम्बम बोरेन सिंह

समीक्षक-द्वय : डा. इबोहल सिंह काङ्जम, देवराज

"पुन्सिगो मरुद्यान" को पढ़ते समय जो समस्या रह-रहकर कचोटती रही, वह थी समकालीन समाजके सन्दर्भमें इस कृतिकी सार्थकताकी खोज । अभी भी ऊपरसे बंधा-बंधा और पुरानी संस्कारशीलतासे चिपका हुआ लगते हुएभी इससे आँखें नहीं मूंदी जा सकती कि मणिपुरी समाज भीतरही भीतर अन्तर्विरोधोंकी आंचसे उबल रहाहै । आये दिन समाचार माध्यमोंमें उग्रवाद या राजनीतिक उठा-पटक और केन्द्रीय सरकार के विवादग्रस्त हस्तक्षेपके जो समाचार छाये रहतेहैं, उनसे इस समाजकी बिल्कुल अधूरी छवि उभरतीहै—क्योंकि उससे जिस आतंक और अस्थिरताका संकेत मिलताहै, वह मात्र बाहरी है । वास्तविक आतंक और आन्तरिक अस्थिरता मणिपुरी लोगोंके जीवनमें है, जिसे उनके निकट जाकर ही अनुभव कियाजा सकता है । यह समाज इन प्रभावोंसे गहरे स्तरपर आतंकित है, जो उसकी युवा-पीढ़ीको उद्दण्ड और कल्पनाहीन बना रहेहैं, वातावरणको विरूप कर रहेहैं तथा सृजनात्मकताकी क्षति कर रहेहैं । इसीके साथ अपने भावी

स्वरूपकी चिन्ताके कारण यह समाज निरन्तर खोखला तथा अस्थिर होताजा रहाहै। इन दोनों कारणोंसे समस्याएं निरन्तर बढ़ रहीहैं।

ऐसेमें 'पुन्सिगी मरुद्यान' की सृजन-सार्थकताका प्रश्न उठना स्वाभाविक है, क्योंकि इसके पात्र कहीं भी समकालीन सन्दर्भोंसे नहीं टकराते और एकाध प्रसंगको छोड़कर कहानी कहींभी सीधी चोट नहीं करती।

उपन्यासका प्रमुख पात्र है—महेन्द्र। उसके चरित्र में एक संस्कारी, आदर्शवादी, निष्क्रिय-बुद्धिजीवी, सिद्धांतवादी, कल्पनाजीवी और 'निष्ठावान् व्यक्तिमें पायी जानेवाली विशेषताएं विद्यमान हैं। कहा जा सकताहै कि यदि इनके थोड़े-थोड़े अंश मिला दिये जायें तो महेन्द्रका ढांचा ढलकर सामने आ जाताहै। वह अपने पितासे झगड़कर घर छोड़ देताहै और जिस दुकानपर काम करताहै उसीके मालिक द्वारा दिये गये एक कमरे में रहने लगताहै। वहां उसे पुलिस वेश्यावृत्ति सम्बन्धी मामलेमें फंसा देतीहै और उसका वह ठिकाना भी जाता रहताहै। पिताकी मृत्यु होनेपर वह फिर घर लौट आताहै और सौतेली मांकी गरीबी देखकर उसके लिए कुछ करना चाहताहै, किन्तु कोई काम नहीं खोज पाता। संयोगवश उसका पुराना साथी प्रवीण उसे काम देताहै, पर जब उसे पता चलताहै कि वह मादक-पदार्थों की तस्करी करनेवाले गिरोहके हाथों पड़ गयाहै तो उसे बहुत क्षोभ होताहै। वह समाज और राष्ट्रको बर्बाद करनेमें लगे प्रवीणसे झगड़ा कर उसका सिर फोड़ देताहै, फिर पुलिसके डरसे भाग जाताहै—कुछ दिनों बाद आत्म-समर्पण कर देताहै और जमानतपर रिहा हो जाताहै। उसके बाद वह पुलिसकी मारके दर्दसे परेशान घरमें चुपचाप पड़ा रहताहै।

महेन्द्रके चरित्रमें निष्ठाका विशेष गुण है, इसलिए उसे उस दूकानपर पुनः काम करनेका बुलावा आताहै, जहांसे उसे निकाल दिया गयाथा, किन्तु वह मना कर देताहै। दूकानकी नयी संचालिका अंजलि जाते-जाते भी उसे कामपर बुला जातीहै। कुछ दिनों बाद यही अंजलि अपनी परिस्थितियोंसे विवश होकर शराबमें डूब जातीहै, क्योंकि उसका डाक्टर प्रेमी उसे धोखा दे देताहै और सास-ससुर उसे घरसे निकाल देते हैं, जिससे वह अपने पितृ-गृह लौट आतीहै। महेन्द्र भगवान्से अंजलिको सही मार्ग दिखानेकी प्रार्थना करता है, जिसे सुनकर पहले तो अंजलि व्यंग्य और उपेक्षा की आंधीमें उसे उड़ा देना चाहतीहै, किन्तु फिर अकस्मात् उसकी जीवन-धारा नया मोड़ ले लेतीहै। वह नये उत्साह संकल्पके साथ नया जीवन प्रारम्भ करती है। उसके लिए जीवनका सारा अर्थ ही बदल जाताहै। वह समाजके लिए कुछ करना चाहतीहै। उसकी यही भावना उसमें ट्रस्टीशिपकी भावनाको जन्म देतीहै। अन्तमें वह एक स्कूल खोलतीहै, जिसे अपनी सारी सम्पत्ति दान कर देतीहै। अंजलि अपने जीवनमें होने वाले गुणात्मक परिवर्तनका श्रेय महेन्द्रको देतीहै। वह अपने स्कूलका दायित्व भी उसे ही सौंपतीहै।

महेन्द्रके, दुकानके वरिष्ठ सहकर्मी निमाईकी लड़की प्रिया (जो वस्तुतः उसकी न होकर उसकी वर्तमान पत्नी थावल्लीके पहले पतिसे उत्पन्न हुईथी) महेन्द्रको प्रेम करतीहै, किन्तु महेन्द्र नहीं समझ पाता। जब अंजलि उससे सीधे सीधे प्रियासे विवाहका प्रस्ताव करतीहै तो स्पष्ट होताहै कि कि वह विवाहको जीवनके अनावश्यक एवं दुखदायी तत्वके रूपमें देखताहै। किन्तु यही महेन्द्र बादमें प्रियाके सामने विवाहका प्रस्ताव रखताहै। दोनोंका विवाह हो जाताहै। इसके बाद अंजलि दोनोंके लिए उपेक्षणीया हो जातीहै। महेन्द्र-प्रियाका अंजलिकी दूकानपर काम करना बन्द करवा देनाहै और वह महेन्द्रको अंजलिके स्कूलकी नौकरीसे इस्तीफा देनेको बाध्य कर देतीहै। महेन्द्र किसी उद्योग-केन्द्रका सहायक प्रबन्धक बनकर प्रियाके साथ सुखी जीवन बिताने लगताहै और अंजलि अपने स्कूलके माध्यमसे समाज-सेवामें लग जातीहै।

उपन्यासका यह कथानक इसे मणिपुरी भाषाके चालीस-पचास वर्ष पुराने उपन्यासोंकी श्रेणीमें खड़ा कर देताहै। उस कालमें "माधवी", "लवंगलता", "जेहरा",, "इमा" थादोक्पा", "रोहिणी" आदि उपन्यास छपेथे, जिन्होंने मणिपुरी उपन्यासके भवनकी नींव रखीथी। सन् १९३४ में प्रकाशित प्रथम मणिपुरी उपन्यास माधवी (डॉ. लमाबम कमल) मानवतावाद और आदर्श प्रेमके स्वरूपको दर्शानेवाला चरित्र प्रधान उपन्यास है। मणिपुरी भाषाका प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास लवंगता (खवाइराक्पम चाओबा सिंह) एक रोमानी प्रेमकथापर आधारित है। जहेरा (हिजम अङाङ्हल) प्रेमके सन्दर्भमें हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धोंकी कुछ यथार्थ, कुछ काल्पनिक कहानी कहताहै और निश्छल किन्तु असफल व दिशाहीन आकर्षणको प्रस्तुत

करताहै। इमा (राजकुमार शीतलजीत सिंह) मातृत्व का चित्रण प्रस्तुत करताहै। रोहिणी (वही) में आदर्शका चित्रण प्रस्तुत करताहै। बहिन-भाईके प्रगाढ़ व निर्मल नेहकी गाथा है और बादोकृपा (वही) में मनुष्य जीवनमें कर्मयोगकी महत्ता दर्शायी गयीहै। निष्कर्षतः ये प्रारम्भिक उपन्यास प्रेम, प्रकृति, आदर्श—संक्षेपमें, स्थानीय प्रभावोंसे युक्त रोमानी भावधाराके अलग-अलग द्वीप हैं। इनमें कहीं भी तत्कालीन संस्कारोंसे हटनेकी सुगबुगाहट नहीं है। ठीक यही बात 'पुन्सिगी मरुद्यान' में भी है। उसमें आदर्शवादी संस्कार हैं, एकपक्षीय प्रेम है, भावुकतापर आधारित दार्शनिक चिन्तन है, परिस्थितियोंके हाथों पिटते रहनेकी ओढ़ी हुई विवशता है, प्रत्येक महत्त्वपूर्ण मोड़पर निर्णय न कर पानेकी अक्षमता है और हिन्दीके प्रेमचन्दके कुछ प्रारम्भिक उपन्यासोंके पात्रोंकी भाँति जीवनके अन्तमें समाज-सेवाके उच्चादर्शको अपनानेकी नियति है। उपन्यासकी कुल कथासे प्रत्यक्ष रूपसे जुड़े यही तत्त्व हैं, इसी कारण लेखककी रचनाधर्मिता से इन की संगतिपर अनेक प्रश्न उठ खड़े होना अस्वाभाविक नहीं है। विशेषकर समकालीन उपन्यास-धाराके चरित्र को देखते हुए यह पूछाजा सकताहै कि आज जब मणिपुरी उपन्यास साहित्य जीवनकी वास्तविकताकी नग्न तस्वीरें उतारते हुए जनताको युगीन समस्याओंके विरुद्ध जगानेका प्रयास कर रहाहै और शैली-शिल्पके नितान्त नये साहस भरे प्रयोग करनेका साहस दिखा रहाहै, तब समीक्ष्य उपन्यासकी दृष्टि अपने समयसे इतनी दूर क्यों जा पड़ीहै ? क्या वह समझताहै कि उसके प्रधान चरित्र —महेन्द्र, अंजलि और प्रिया आत्म-विश्वास और स्पष्ट-निर्णय-क्षमताके अभावके बलपर भी अपने परिवेशको प्रभावित कर पायेंगे ? यहभी पूछाजा सकताहै कि पचास साल पुराने आदर्शको पाठकोंके सामने परोसनेके पीछे लेखकका उद्देश्य क्या है ? यदि यह मान भी लिया जाये कि उस आदर्शको माननेवाले एक दो व्यक्ति आजभी मिल जातेहैं (महिप पत्रिकाको दिये साक्षात्कारमें लेखकने उन लोगोंको आड़े हाथों लियाहै, जो इस उपन्यासके पात्रोंको काल्पनिक कहतेहैं। उसका कहनाहै कि ऐसे पात्र आजभी विद्यमान हैं), तबभी पाठकोंको यह जाननेका अधिकार है कि ऐसे श्रेष्ठ कोटिके पात्रोंका सामान्यीकरण क्यों किया जाये ? ऐसा नहीं है कि ये और इस प्रकारके प्रश्न केवल इस समीक्षामें ही उठाये जा रहेहैं, बल्कि पाठक इस उपन्यासको लेकर बड़ी संख्यामें इस प्रकार की चिन्ता प्रकट करतेहैं।

उपन्यासकारने अपनी इस कृतिमें सबसे अधिक विचार स्त्री-पुरुष सम्बन्धोंपर कियाहै। फ्रॉयडीयन आँधीके बावजूद अभीतक प्रामाणिक रूपसे नहीं कहा जा सकता कि स्त्री-पुरुषके बीच मानसिक आकर्षणका स्थान प्रथम है अथवा यौनाकर्षणका। सत्य यह है कि एक अवस्था आनेपर विपरीत लिंगी परस्पर खिंचाव अनुभव करतेहैं। यह बहुत कुछ समाज विशेषके सांस्कृतिक और नैतिक ढांचेपर निर्भर करताहै कि यह आकर्षण मनसे यौन और यौनसे मनके बीच किस अवस्थामें कब कौन सा रूप धारण करे। इसीके साथ इतना और सत्य है कि स्त्री-पुरुषके सम्बन्धोंकी समीकरणका असली रहस्य आकर्षणके, प्रथममें—और उससे भी आगे विवाहमें, परिणत हो जानेके बाद खुलताहै। पुन्सिगी मरुद्यानमें इन सम्बन्धोंकी गहराईमें झांकनेका लेखकका प्रयत्न ध्यान आकर्षित करताहै। महेन्द्रका मित्र निमाई स्त्रीकी कठोरतापर क्षोभ प्रकट करता नहीं अघाता। वह पत्नीके रूपमें स्त्रीके चरित्रपर चोट-सा करताहै—"तुम बादमें समझोगे कि एक स्त्री अपने पतिको कितने दिन तक प्यार करतीहै। कुछही पल। गृहस्थी बसानेके कुछ ही वर्ष बाद उसका सारा खिंचाव और उत्साह मन्द पड़ जाताहै, वह दिखावेके तौरपर पतिकी नाममात्रकी सेवा करतीहै, पतिपर ध्यान नहीं देती। और संकट यह कि उसका खुलकर प्रतिवाद भी नहीं कियाजा सकता। कभी असन्तोष जताया तो उनका उत्तर होताहै, "हमने आपके साथ ऐसा क्या कर दिया, जिससे आप गुस्सा हो उठे ?' 'इस उत्तरसे हमारा स्वभाव और गुस्सैल हो उठताहै। हमें सेवाका दिखावा नहीं चाहिये, पतिका महत्त्व चाहिये, वे यह नहीं समझतीं......।" (पृ. १३)। इन विचारोंकी पृष्ठभूमिमें घटना यह है कि निमाईकी पत्नी उसकी सच्ची सेवा न करके उसे छोड़कर भाग गयीथी। किन्तु महेन्द्र स्त्री-पुरुषके बीच विवाहको दार्शनिक स्तर पर अस्वीकार करताहै। वह विवाह-संस्थाको मनुष्योंके जीवनको चौपट करने और उसे दुखसे भर देनेवाली बताताहै। इतना ही नहीं वह संसारको ही दुखभरा मानताहै। क्योंकि वह संसारसे दूर रहना चाहताहै, अतः संसारसे प्रगाढ़ रूपमें जोड़नेवाले वैवाहिक आयोजनको भी वह पूर्णतः अस्वीकार कर देताहै। वह

अंजलिसे कहताहै—"मैं जीवनको आनन्दभरा नहीं मानता, मानताहूं कि संसार दुःखसे भराहै। मैं इसे दूसरे ढंगसे छोड़ना चाहताहूं। विवाह अकेले मुझेही नहीं, दूसरे बहुतोंको संसारके दुःख-सागरमें डुबो देगा।" (पृ. १६६)।

किन्तु स्त्रियोंके सम्बन्धमें दोनों पात्रोंकी वैचारिक परिणति किस रूपमें सामने आतीहै? स्त्रियोंकी बुराई करनेवाला निमाई अवसर पातेही एक दूसरी स्त्री थाबल्ले (जो पूर्व पतिसे सम्बन्ध विच्छेदकर एक लड़की लेकर आतीहै) को लिये हुए महेन्द्रके पास आताहै और कहता है—"महेन्द्र! आज तुम्हारी नयी भाभी···समक्ष गये न?' (पृ. २१)। वह अपने मित्र से तीन सौ रुपये उधार मांगताहै और पत्नीके गांव चला जाताहै। "एक दिन स्त्री जातिके विरुद्ध बोलने वाले निमाईके आज एक स्त्री ले आनेको देख महेन्द्रके आश्चर्यकी सीमा न रही।" (पृ. २२)। उधर अपने मित्रके चारित्रिक बदलावपर विस्मित होने और स्वयं विवाहका विरोध करनेवाले महेन्द्रकी क्या दशा होती है? वह पहले तो प्रियाके प्रेमको समझ ही नहीं पाता। जब समझताहैं और स्वयं भी अपने हृदयमें उसके लिए प्रेम अनुभव करताहै, तब भी उसे पत्नीके रूपमें पानेका विचार नहीं करता। यहांतक कि अंजलि द्वारा प्रियाके विवाहके प्रस्तावपर स्पष्ट कह देताहै कि वह प्रियाका विवाह किसी अन्य युवकसे क्यों नहीं कर देती? इस स्थलपर उसका वीतरागी-सा चरित्र उभरताहै, किन्तु यही महेन्द्र एक दिन अंजलिकी दूकान पर पहुंचकर प्रियाको (वह वहां काम करतीहै) अपने साथ ले जाताहै और उसके साथ गृहस्थी बसा लेताहै। उसके बाद वह एक सीधे भारतीय पतिका अनुकरण करते हुए अपनी पत्नीके कहेमें चलने लगताहै।

इन दोनों पात्रोंके विपरीत इस उपन्यासकी अंजलि और प्रिया स्त्री-पुरुष सम्बन्धोंको एक भिन्न आयाम देतीहैं। प्रिया अल्हड़-प्रेमकी प्रतिमूर्ति है। उसके हृदय में जब महेन्द्र एक बार अपना स्थान बना लेताहै, तो वह उसे कभी विस्मृत नहीं करती। उसे यह चिन्ता नहीं कि महेन्द्र उसके प्रति प्रेम प्रकट करताहै या नहीं—वह तो दिन-रात उसीका ध्यान करतीहै—"महेन्द्र के व्यवहारसे वह समझ गयी कि वह कभी उसके सामने अपना प्रेम प्रकट नहीं करेगा। फिरभी उसके प्रति अपने मनका आकर्षण यह कभी नहीं त्याग सकती। उस रातको वह चांदनीमें बरामदेमें बैठकर दिनमें घटी घटनाको यादकर मन हीं मन विचारोंमें खो गयी।" (पृ. १०४-१०५)। अंजलिके अनुभव प्रौढ़ हैं अतः स्त्री-पुरुष सम्बन्धोंकी उसकी समझ भी अधिक प्रौढ़ और मनोवैज्ञानिक है। वह इस सत्यको प्रतिष्ठित करतीहै कि स्त्री अथवा पुरुष, दोनोंही एक-दूसरेके अभावमें अपूर्ण हैं। उनकी प्रकृति यह आज्ञा नहीं देती कि वे परस्पर छत्तीसका आंकड़ा बनाकर जी सकें। विवाह मात्र यौन-तृप्तिका साधन नहीं है, बल्कि वह एक-दूसरेको जीनेका उद्देश्य देताहै, अपने को पहचाननेकी शक्ति देताहै और सभी प्रकारकी कुण्ठाओंसे बचाताहै। वह महेन्द्रकी सारी दार्शनिकता को इन शब्दोंमें पराजित कर देतीहै—"मैं विश्वास नहीं कर सकती कि पुरुषका जीवन स्त्रीके बिना आरामसे कट सकताहै। नारीके बिना पुरुषकी पूर्णता असंभव है। आप जो दाम्पत्यको हेय दृष्टिसे देखतेहैं, मैं उससे सहमत नहीं हूं। जीवन-यात्रामें कुछ ऐसे सन्दर्भ आतेहैं जिनमें आपका सोचा काम नहीं करता। जो विवाहित नहीं है, वह उसे कैसे जान सकताहै? कहनेकी आवश्यकता नहीं कि जीवनमें अकेले यात्रा करना अच्छा नहीं है।" (पृ. २०५)।

'पुन्सिगी मरुद्यान' में स्त्री-पुरुष सम्बन्धोंके आधारपर एक विस्मयकारी आदर्शवाद भी कल्पित किया गयाहै। वैसे तो किसीके भी शब्द किसीके जीवन में परिवर्तन ला सकतेहैं, किन्तु लेखकने यह दिखानेका प्रयास कियाहै कि यदि शब्दोंके माध्यमसे यह क्रान्ति ऐसी दशामें घटे जब बोलनेवाला पुरुष हो और प्रभावित होनेवाली स्त्री (अथवा विपरीत) तो उसकी भव्यता चौंधिया देनेवाली होती। अंजलिके भाग्यमें जब पति-सुख नहीं टिक पाता तो वह इन्द्रमणि नामक डॉक्टरको समर्पित होकर शान्तिकी खोज करतीहै। वह डॉक्टरको इतना प्रेम करतीहै कि देह-सुखके साथ ही उसे धन-सम्पत्ति भी बे-रोक-टोक देतीहै, किन्तु एक दिन उसे पता चलताहै कि डॉक्टरने उसे बुरी तरह ठग लियाहै—"अंजलिके लिए निराशाका पारावार न था। वह डॉक्टर इन्द्रमणिके व्यवहारपर सन्देह करने लगी, उसे दिये गये रुपए-पैसे, सोने-चांदी, गहनोंके बदले उससे प्रेम या कृतज्ञता कुछ नहीं मिला। एक दिन उसने यह भी सुना कि इन्द्रमणिका विवाह किसी अन्य लड़कीसे होनेवाला है। वह उसके मानः

सम्मान और पैसेके नाशका कारण बन गया।" (पृ. ११७)। अंजलि यह आघात सहन नहीं कर पाती और परिस्थितिकी झंझासे प्रताड़ित होते-होते शराबमें डूब जातीहै। जब महेन्द्रको उसकी इस दशाका समाचार मिलताहै तो वह दुःखी होताहै —"आह !" वह गहरी सांस लेते हुए बड़बड़ाया, 'बहुत बुरा हुआ, ईश्वर उसे पुन: सद्विचार भरा मार्ग दिखाये।" (पृ. १२५)। हरीके माध्यमसे महेन्द्रका यह संवाद अंजलिके पास पहुंचताहै। उसपर इसकी पहली प्रतिक्रिया उपेक्षा और क्षोभभरी होतीहै। वह कहतीहै, "कोई रास्ता न देख वह ईश्वरपर विश्वास करने लगा क्या ? उसने बिना कुछ किये-धरे बेकार समय नष्टकर दिया, ईश्वर ने उसके लिए क्या किया ? और वह मेरे विषयमें ऐसा कहताहै ?" (पृ. १२६)। किन्तु कुछ दिनों बाद आश्चर्यजनक रूपसे अंजलिका जीवन बदल जाता है। वह शराब छोड़ देतीहै और उसमें मानवता तथा सामाजिकता जैसे गुण उत्पन्न होतेहैं। वह अपने बीते जीवनकी कथा प्रियाको सुनानेका साहस भी प्राप्तकर लेतीहै अर्थात् विस्मयजनक रूपमें उसकी काया-पलट हो जातीहै। वह मानतीहै कि महेन्द्रके मन्त्र जैसे शब्दों की ही यह सब लीला है, अत: उसके प्रति प्रेम और श्रद्धासे भर उठतीहै—"उसके मन्त्र जैसे कुछ ही शब्दोंसे उसके जीवनमें परिवर्तन आया, उसकी नींद टूटी, यह सब कैसे हुआ—कुछ नहीं समझ सकती, सब कुछ विस्मयकारी लगताहै, फिरभी वह विस्मय तो घट चुकाहै।" (पृ. १४५)।

निश्चय ही यह एक आदर्श स्थिति है, जिसकी सृष्टि सायास की गयीहै। इससे एक पग आगे बढ़ा हुआ वह आदर्श है जो अंजलिसे उसकी दुकान छुड़वा कर उसे स्कूलमें लगा देताहै। वस्तुत: यह स्कूल आदर्श शिक्षा देनेके लिए खोला गयाहै और महेन्द्रको उसका हैडमास्टर बनाया गयाहै। इस पूरी योजनापर कार्य करते समय अंजलिके मनमें कहीं न कहीं यह भावना भी है कि वह महेन्द्रको नौकरी देकर उसके उपकारों का कुछ प्रतिदान दे सकेगी। इस बिन्दुपर लेखकका यह आदर्श कुछ उलझ गयाहै, क्योंकि वहां समाज-सेवा की बराबरवाली सीटपर ही अंजलिके मनमें महेन्द्रके प्रति दबा हुआ प्रेम भी आ बैठताहै। फिरभी लेखक अन्तमें अपने आदर्शको ही विजयी बनाताहै। एक दिन महेन्द्रको पता चलताहै कि, "अब अंजलिने दुकान बन्द कर दीहै, वह दुकान किरायेपर उठा दीहै और वह स्वयं स्कूल संभाल रहीहै। उस व्यक्तिने यह भी बताया कि अंजलीकी सारी सम्पत्ति स्कूलके विकासमें लगा दी जायेगी।" (पृ. २२३)। लेखक अपने इस आदर्श से इतना अभिभूत है कि इसी सूचनाके साथ उपन्यास का अन्तकर देताहै। महेन्द्र, अंजलिके अच्छे स्वभाव, उच्च विचारों और त्यागमय जीवनकी प्रशंसा करता रह जाताहै।

अब, लेखककी आदर्शवादिता और वैचारिकताकी गहराई नापनेका प्रयास करें। उसने अपने इस उपन्यासके लिए जिन पात्रों और घटनाओंका निर्माण कियाहै, वे स्थान-स्थानपर यथार्थ परिवेशके बीच घिरे दिखायी अवश्य देतेहै, क्योंकि उनके मनमें कुछ आदर्श विद्यमान हैं, अत: वे अचानक अपने वातावरणसे पल्ला छुड़ा लेतेहैं और एक सधे हुए मार्गपर चलना शुरू कर देतेहैं। लेखकने जिन स्त्री-पुरुष संबंधोंको इस रचना का आधार बनायाहै वे स्वयं उसीके मनमें भिन्न-भिन्न रूप धारण करते रहतेहैं। प्रेम एक-दूसरेको जोड़कर विवाह तक पहुंचाताहै, विवाह पुरुषमें परम्परागत अहम्मन्यता जगाताहै, स्त्रियां धीरे-धीरे प्रेमके आकर्षण से मुक्त होकर औपचारिक हो जातीहैं, विवाह दुखका सागर बन जाताहै, फिरभी आदिम-आकर्षण स्त्री-पुरुष को, दूसरी जगह धोखा खानेके बादभी, दाम्पत्यके घेरे में ले आताहै। पुरुष एक स्थितिमें इतना विशाल हृदय हो जाताहै कि वह अपने सारे सिद्धान्त भूलकर विवाहकर लेताहै, स्त्री उपकारी पुरुषके प्रति कभी भगवान् जैसी आश्वस्ति अनुभव करतीहै, कभी एकान्तिक प्रेम, अन्तत: वह भी संन्यासिनियों जैसे पथका अवलम्ब ले लेतीहै, वहां पुरुष फिर उसकी उदात्तताका गुणगान करनेको प्रस्तुत हो जाताहै। इस पूरे चित्रमें यथार्थके स्पर्शका अभाव नहीं माना जा सकता। टुकड़ों टुकड़ोंमें इनमें से बहुत कुछ आजभी घटित होता रहताहै। लेखक, व्यक्तिगत बातचीत या साक्षात्कारोंके क्रममें उठाये गए प्रश्नोंका उत्तर देते समय उन्हीं टुकड़ोंका सहारा लेता भी है—फिरभी इनसे उसकी विचाधारा का कोई स्पष्ट रूप नहीं उभरता, सिवा इसके कि वह समस्याओंके पास तक जाताहै और जब देखताहै कि उनकी दलदलमें कूदकर वह सकुशल वापस नहीं लौट सकेगा तो अपने कल्पित समाधानकी ओर मुड़ जाता है। हां, इस पूरे सन्दर्भमें इस बातकी अवश्य बल

मिलताहै कि लेखक वर्तमान समस्याओंके लिए यह मानताहै कि उनका हल हमारे पुराने नैतिक आदर्शोंमें है। और, उसे इससे सन्तोष भी हो सकताहै, क्योंकि आजकल ब्रितानी समाजमें एक आन्दोलन जोर पकड़ रहाहै—"बैक टू बेसिक्स", अर्थात् पुरानी संस्कार-शीलता और नैतिकता प्रधान मूल्योंकी ओर लौटनेमें ही समाजकी सुरक्षा निहित है अतः उसी ओर मुड़ो। पिछले चार-पांच वर्षोंमें मणिपुरी समाजमें भी थोड़ेसे लोगोंमें कुछ ऐसा ही विचार दिखायी देने लगाहै, किन्तु यह अनुगूंजके स्तर तक अभी नहीं पहुंचाहै। इसी कारण साहित्यके सामने अनेक संकट खड़े होने लगेहैं।

'पुन्सिगी मरुद्यान' का एक समस्या-पक्ष भी है। इसमें नारीके यौन-शोषण, वेश्यावृत्ति तथा मादक पदार्थोंकी तस्करीको उठाया गयाहै। इनमें से प्रथम दो समस्याएं मणिपुरी कथा-साहित्यमें बार-बार विस्तारसे चित्रित हुईहैं। प्रस्तुत रचनामें उतना विस्तार नहीं है और उनके सामाजिक पक्षकी व्याख्या भी नहीं है। लेखककी विशेष उपलब्धि है—मादक-पदार्थोंके ट्रैफि-किंग और मादक-द्रव्योंके व्यापारके सामाजिक व राष्ट्रीय पक्षको प्रस्तुत करना। महेन्द्रको जब मादक-पदार्थोंके व्यापारमें लिप्त करनेके प्रयत्न किये जातेहैं तो वह प्रवीणसे क्रोधपूर्वक कहताहै—"वैसा करना केवल मुझे ही नष्ट करना नहीं है, बल्कि यह इस जाति को नष्ट करनेका षड्यन्त्र है, यह बहुत बुरा काम है।" (पृ. ८६)। पूर्वोत्तर भारतकी युवा-पीढ़ीको नशेकी लतमें डुबोकर समाजको विनाशके कगार पर खड़ा कर देनेवाले कौन हैं और वे किन स्वार्थोंके चलते ऐसा कर रहेहैं—यह सारा सन्दर्भ अब जग-जाना हो चुका है, इसीलिए मादक-पदार्थोंके जालके विरुद्ध जनता सजग होने लगीहै। महेन्द्र उसीकी सूचना देताहै। लेखकने इससे आगे बढ़कर यह भी दिखायाहै कि मादक-पदार्थोंके व्यापारमें लगे हुए लोग कोई कमजोर नहीं हैं। वे शक्ति संपन्न हैं और अपने विरोधियोंको ललकारनेका दम रखतेहैं। ड्रगके धन्धेका सरगना प्रवीण, महेन्द्रके क्रोधका उत्तर इन शब्दोंमें देताहै—"महेन्द्र संभलकर बात करो, तुम्हें यह सब कहनेका अधिकार नहीं। तुम इस देशके क्या हो, तुमने इस देश के लिए क्या किया? ज्यादा बकबक करनेकी जरूरत नहीं है। मेरे साथ काम नहीं करना तो चुपचाप रास्ता नापो। मुझे तुम्हारे जैसे आदमी की जरूरत नहीं है।" (पृ. ८६)। इसके बाद ही महेन्द्र और प्रवीणके बीच घमासान होताहै। इस घटनाके माध्यमसे लेखकने एक सामाजिक समस्याके भयावह पक्षको उजागर कियाहै। यदि उसने महेन्द्रको इस समस्यासे कुछ अधिक दूरतक जोड़ा होता तो वह उसके अन्य हीनतर पहलुओंको भी खोल सकताथा। ऐसा करनेसे उपन्यासकी उपादेयता बढ़ती।

कुल मिलाकर 'पुन्सिगी मरुद्यान' मणिपुरी उप-न्यास साहित्यमें कोई मील का पत्थर नहीं गाड़ता, फिरभी वह इस दृष्टिसे महत्वपूर्ण है कि उससे उसके लेखककी जीवन-दृष्टिका पता चलताहै और पाठक चाहें तो कमल और अङाङ् हलकी मिश्रित लेखनीका आनन्द उसमें खोज सकतेहैं। □

केरली मुस्लिम आचार-विचारोंका चित्र-फलक

दैवत्तिण्टे कण्णु

उपन्यासकार : एन. पी. मुहम्मद **समीक्षक : डॉ. आरसु**

मलयालम-कथा साहित्यकी चेतना-भूमि समय-समयपर बदलती रहीहै। प्रारंभिक युगमें उसमें मनोरंजनको प्रमुखता मिलीथी। राष्ट्रीय आन्दोलनके अवसरपर स्वतन्त्रताकी मांग और पुकारको कथा साहित्य ने भी आत्मसात् कियाथा। सोवियत संघके उत्कर्षके समय प्रगतिवादका आविर्भाव हुआ तो पीड़ा-आक्रोश-आतंक साहित्यपर बल दिया गया। समाजके विभिन्न निम्न वर्गोंके त्रासद जीवनकी अभिव्यक्तिको कथा साहित्यमें प्रमुखता मिली। समाजकी समस्याएं उस दर्पणके माध्यमसे प्रतिफलित होगयीं। सामाजिक संघर्ष की नयी-निराली कथाएं इस युगमें अधिक लिखी गयीं।

मात्र पेटके सत्यको साहित्यमें स्थान देनेकी प्रथा-प्रणालीपर परवर्ती युगके कथाकार ऊब गये। समाजसे वे व्यक्तिकी ओर मुड़े। उनके हृदय-सत्योंपर इस युग के लेखकोंने अधिक ध्यान दिया। व्यक्तिके मनकी इच्छाओं और सुनहले स्वप्न लालसाओं, आशाओं, कामनाओं, उलाहनों, उद्गारों, मोह-मोहभंग आदिपर लेखकोंने बल दिया। सामाजिक अनुभवोंको आत्म-निष्ठा और वैयक्तिकताके संस्पर्शसे अभिव्यक्ति देनेमें ये कथाकार सफल रहे।

एम. टी. वासुदेवन नायर, टी. पद्मनाभन, माधवी कुट्टी, और एन. पी. मुहम्मद इसी पीढ़ीके सशक्त हस्ताक्षर हैं। स्वतंत्रता आन्दोलनके अवसरपर इनकी पीढ़ी रचनाशील नहीं थी, तब वे बाल-कौमार्य अवस्था में थे। किन्तु स्वतंत्रताके संबंधमें इनके मनमें भी कुछ स्वप्न अंकुरित हो गयेथे। विदेशी शासन मिट जायेगा, स्वाधीनताके अरुणोदयके बाद समता-ममताका एक भव्य वातावरण पैदा हो जायेगा। शोषणका पता-ठिकाना तक न होगा। इस प्रकारके स्वप्नोंने नये उन्मेषका वातावरण बनायाथा। किन्तु स्वाधीनताके बाद लेखनकी ओर मुड़े इन लेखकोंने एक पृथक् यथार्थ के दर्शन किये। इस अर्थमें ये लेखक अपनेको नष्ट-पीढ़ीके लेखक मानतेहैं।

एन. पी. मुहम्मद (जन्म १९२९) इसी पीढ़ीके एक अग्रणी कथाकार हैं। उनके कथा साहित्यकी कुछ विशेषताएं हैं। मलाबारके मुस्लिम परिवारोंके आचार-विचारोंको उन्होंने गहराईसे देखा। वे स्वयं उसी वर्गके हैं। मुसलमानोंकी रूढ़ियों और अर्थहीन आचारोंके बारेमें वे सोचते रहे। उनके जीवनको इस कथाकारने अपनी लेखनीका उपजीव्य बनाया। काजियों और मुल्लाओंकी प्रेरणा और उद्बोधनको उस समाजने महत्त्वपूर्ण मानाया। अधिकांश मुसलमान निरक्षर थे। वे आचारोंका पालन करते रहे। परन्तु उसकी अर्थवत्तासे अनभिज्ञ थे। इस पहलूपर लिखने वाले अग्रणी लेखक वैकम मुहम्मद बशीर थे। बादमें एन. पी. मुहम्मदने आंखों-देखे तथा अनुभूत तथ्योंके आधारपर कहानियां लिखीथीं। आजभी मुस्लिम समाज को ये लेखक अपनी 'सोशियल मिल्यु' (सामाजिक अवस्था) मानतेहैं।

मुहम्मदकी आरंभिक कृतियोंमें सामाजिक परिवर्तनकी कामना है। सुधारवादके प्रति उनका मोह आगे चलकर समाप्त होगया। कारण यह है कि वे सामा-

जिक यथार्थसे अवगत और सतर्क हो गये। लेखक, समाजमें सुधार नहीं ला सकता, समाज पुस्तक कहाँ पढ़ताहै। व्यक्तिही पुस्तकें पढ़तेहैं। भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न ढंगसे पुस्तकका मूल्यांकन करतेहैं। व्यक्ति मनको सजग और सतर्क बनानेमें पुस्तकें सहायक बनेंगी। समाजमें थोक-परिवर्तन लानेकी क्षमता आज पुस्तकोंमें नहीं है। यों सुधारवादकी कामना छूट गयी। फिर एन. पी. मुहम्मद सुधारवादी लेखकसे व्यंग्यकार, सिनिक और निषेधी बन गये। उनकी आरंभिक और परवर्ती रचनाओंके स्वरमें आयी भिन्नता और उसके कारणों और परिणामोंका अध्ययन पृथक् विषय है। कहानीकारके रूपमें उनका आविर्भाव हुआ। राष्ट्रीय आन्दोलनके समय मलबारमें जो जागृति आयीथी, अब्दुरहमान उसके प्रमुख नेता थे। उनके जीवन और आदर्शोंसे परिचित होनेका अवसर छात्रावस्थामें एन. पी. मुहम्मदको मिलाथा। धर्म और राजनीतिसे दूर रहकर जनसाधारणको देखने और उसका संदेशका उस नेतासे मिलाथा जिसे उन्होंने आत्मसात् कियाथा। मलबारके अमर कथाकार एम. के. पोट्टक्काटकी कहानियाँ पढ़कर उसी प्रकारका एक लेखक बननेकी इच्छा एन. पी. मुहम्मदके मनमें पैदा हो गयीथी। छात्रावस्थामें उन्होंने 'अरब रातें' (अरेबियन नाइट्स) पुस्तक पढ़ीथी। कुरानका पठन-पाठनभी मुसलमान परिवारोंमें कायम था। इसका भी प्रभाव उनपर पड़ाथा।

कहानीके क्षेत्रमें मुहम्दकी कई उपलब्धियां हैं। तोप्पियुम तट्टवुम (टोपी और घूंघट), वाल्लवरुडे लोकम्, (भद्रजनोंका लोक), नालपत्तिरंटाम वीट्टिल चेकुस्तान (बयालीसवें नंबर घरका शैतान), 'प्रेसिड-ण्डिण्डे आद्यने मरणम् (राष्ट्रपतिकी पहली मृत्यु) 'मुहम्म-दिण्डे जननम्' (मुहम्मदका जन्म) मेपुकुतिटिकल (मोमवत्तियां) 'तिरजेटुत कथकल' (चुनी हुई कहा-नियां) आदि उनके बहुचर्चित कहानी संकलन हैं।

उपन्यासके क्षेत्रमें भी मुहम्मदकी कृतियाँ बहु-चर्चित रहीहैं। मुस्लिम परिवारोंके आचार-विचारों के इर्द गिर्द प्रणीत उन उपन्यासोंमें एक नया संसार उभराहै।

'मरम' (लकड़ी) 'हिरण्यकश्यप' 'गुहा' 'तंक-वतिल' (सोनेका दरवाजा) 'एण्णप्पाटम' (तेलका क्षेत्र) 'दैवत्तिण्डे कण्णु' (दैव चक्षु) आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। 'अरबी पोन्नु' (अरबी सोना) उनका एक सहयोगी उपन्यास है। एम. टी. वासुदेवन नायरके सहयोगसे यह उपन्यास लिखा गयाथा। राज-नीतिक व्यंग्यके रूपमें प्रणीत 'हिरण्यकश्यप' को लेखक अपना सर्वप्रिय उपन्यास मानतेहैं। आपात्कालसे पूर्व लिखे इस उपन्यासमें आपात्कालके अत्याचारोंका वर्णन किया गयाहै। उपन्यासकारकी दूरदर्शितापर मलयालमके पाठक विस्मित हो उठें।

सन् १९५२ में 'टोपी और घूंघट' कहानी संकलन को मद्रास सरकारका पुरस्कार मिला। १९६९ में 'राष्ट्रपतिकी पहली मृत्यु' कहानी संकलनको केरल साहित्य अकादमीका पुरस्कार मिला। 'तेलका प्रान्त' उपन्यास १९८८ में केरल साहित्य अकादमी द्वारा पुर-स्कृत हुआ। १९९३ में केन्द्रीय साहित्य अकादमीने "दैवचक्षु" उपन्यासको पुरस्कार दिया।

'दैवचक्षु' का प्रकाशन १९९० में हुआथा। १९९३ में उसका दूसरा संकरण आयाहै। यह उपन्यास सर्वप्रथम 'मातृभूमि' साप्ताहिकमें धारावाहिक रूपसे छपाथा। एन. पी मुहम्मदके दूसरे उपन्यासोंकी तुलना में इस उपन्यासकी विशेषताएं हैं। यह राजनीतिक व्यंग्य नहीं है। इधर उपन्यासकारने एक गंभीर विषयको चुनाहै। भूमिपर होनेवाले प्रहारोंसे आकुल-व्याकुल लेखकको हम देखतेहैं। परिस्थितिके असन्तु-लनकी ओर लेखकने पाठकोंका ध्यान आकृष्ट कियाहै। मानवका लोभ और लिप्सा दिनों-दिन बढ़ रहेहैं। इस लोभ-लिप्साके कारण धरती और मानव दोनोंका विनाश होताहै। सोनेके अण्डे देनेवाली बतखको मार डालनेकी पुरानी कहानीको नये संदर्भमें नये ढंगसे उपन्यासमें प्रस्तुत किया गयाहै। फिरभी विज्ञानका आंचल पकड़कर पाण्डित्यका प्रदर्शन नहीं हुआहै। सामान्य जीवनसे जुड़ी बातें ही वर्णित हुईहैं।

उपन्यासका समर्पण अंश विचारणीय है। उपन्यासकारने प्रकृतिका विनाश करनेवाले मानवोंका उल्लेख कियाहै। मानव-मन अहंकारसे भर उठाहै। वह सोचताहै कि मांकी छातीको कुरेदकर खोल सकताहै और आखिरी बूंद दूध पी सकताहै। इसके लिए प्रौद्योगिकी का विकास भी हुआहै। इस विनाशकारी प्रवृत्तिके विरुद्ध आवाज उठानेवाले कर्मठ वातावरण-संरक्षकोंको यह उपन्यास समर्पित हुआहै।

नारकमपुरम घरानेकी कथाके रूपमें उपन्यासकी

घटना तथा गतिविधियोंका चित्रण हुआहै । उस परिवारके सदस्यों और संबंधियोंकी विचित्र-विचित्र कहानियां इसमें रूपायित है । दस वर्षका बालक कोयामोन इसका केन्द्रीय पात्र है । उसकी स्मृतियोंके रूपमें उपन्यासकी घटनाओंका विकास किया गयाहै । आत्मकथात्मक शैलीको अपनाकर लेखकने यह उपन्यास लिखाहै । यह सकारण है । उपन्यासकारने एक भेंटवार्तामें इसका स्पष्टीकरण यों दियाहै - "'मैं' शैलीमें मैंने पहले कहानियां लिखीथी । किन्तु इस शैलीमें उपन्यास पहली बार लिखनेका प्रयत्न कियाहै । उपन्यास में साठ वर्ष पूर्व घटित घटनाओंका वर्णन है । साठ वर्ष बीतनेके बाद जीवनको पीछे मुड़कर देखनेके ढंग से भी यह उपन्यास पढ़ा जा सकताहै । साठ वर्षके आदमीने अपने बचपनको कैसे बिताया होगा, उन दिनों उसके चिन्तन-संस्कार कैसे रहे होंगे—इस ढंगसे भी उपन्यास पढ़ सकतेहैं । यों सोचा जाये तो आत्मकथात्मक शैलीही उपन्यासके लिए उपयुक्त है । इस बालकके जीवनके अनुभवोंका आकलन सहज ढंगसे करनेका प्रयास मैंने कियाहै । उपन्यासकी स्वाभाविकता को बढ़ानेके लिए यह रूप उचित प्रतीत हुआ ।

उपन्यासमें कोयामोनके जीवनसे जुड़े दो स्थानोंका उल्लेख है । पहले वह कोषिक्कोड़में था, बादमें पिता ने उसे परप्पनंगाड़ी भेजाथा । कोयामोन प्रत्येक बातमें कोषिक्कोड़ और परप्पनंगाड़ीके जीवनकी तुलना करता है । बचपनका स्वभाव अत्यन्त सहजतासे वर्णित हुआ है । दूरका ढोल सुहावना लगताहै । इसी प्रकार कोयामोनको कभी लगताहै कोषिक्कोड़का जीवन सुखद है । परप्पनंगाड़ीमें उसके पिताके बड़े भाई कोयस्सनका घर है । यहां पहुंचकर कोयामोनके अनुभव क्षेत्रका विकास होताहै ।

मौसी मरियुम्माकी बेटी उम्मुसे कोयामोन कई बातें सीख लेताहै । इस दीदीसे कोयाकोनकी आत्मीयता बढ़ जातीहै । दीदीसे घर, घरवाले और उधरके रीति-रिवाजोंके संबंधमें कोयामोनको नयी निराली जानकारी मिलतीहै । कसम खानेके बाद कोयामोनको उम्मु अपने घरानेके रहस्य बताया करतीथी ।

उधरकी जमीनमें कई सांप थे । सांपोंको परेशान न करनेके लिए ध्यान रखना होताथा । कोयामोन इन प्रतिबंधोंके संबंधमें जाननेको उत्सुक था । मौसी आइसाका बेटे मोयम्मदालीका जीवन खतरेमें पड़ा था । उसके पीछे एक कारण था । मुस्लिम परिवारों में प्रचलित रूढ़ियोंका परदा हटानेके लिए उपन्यासकारने इस प्रसंगका पूरा उपयोग कियाहै । मोयम्मदाली क्यों और कैसे पागल बना ? और उसका क्या परिणाम निकला ? यह इस उपन्यासका एक मार्मिक प्रसंग है ।

उम्मुने कोयामोनको सभी घटनाएं चुपके-चुपके बतायीं । उधरकी जमीनमें नये कुकुरमुत्ते उगेथे । यह सुन्दर दृश्य मोयम्मदालीने देखा । सब्जी बनानेके लिए कुकुरमुत्ता बढ़िया है । इस इच्छासे उसने उन सफेद फूलोंको तोड़ा । अनजाने उसने कुछ फूलोंको मुंहमें डाला । बादमें पता चला कि यह विशेष प्रकारका कुकुरमुत्ता था, जो भूतप्रेतोंका इष्ट भोजन है । फिर प्रेतोंने मोयम्मदालीको परेशान किया । उसका दण्ड, वह पागल होगया । मौलवी, वैद्य, जोतिषी सभी बुलाये गये । पर मोयम्मदालीको प्रेतकी पकड़से बचाना उनकी पहुंचके बाहरकी बात थी ।

पागल मोयम्मदालीको प्रेतोंने दण्ड देकर पागल बनाया । किन्तु पागल बननेके बाद उससे घरवालोंने औरभी निर्दयतापूर्वक उससे व्यवहार किया । एक अलग मकानमें उसे जंजीरोंसे बांध दिया । जब कभी वह कुछ करता, घरवाले उसे पीड़ित प्रताड़ित करते । मारपीटके कारण अन्तमें वह तड़प-तड़पकर मर गया । कोयस्सन इसके लिए जिम्मेदार था ।

सांप मारनेका एक प्रसंग उपन्यासमें आयाहै । सांप मारनेके संबंधमें मुस्लिम-समाजमें प्रचलित विश्वासोंको इस प्रसंग द्वारा सामने लानेका प्रयास उपन्यासकारने कियाहै । उपन्यासकी भावभूमि इस प्रकारकी कुछ धारणाओंपर टिकीहै । एक दिन कोयस्सन घरके बरामदेकी ओर आ रहाथा । उधर एक काला फीता-सा दियायी पड़ा । पैर उसपर पड़ा तो पता चला कि वह एक सांप था । कोयस्सनने उसकी पूंछको पकड़ा और बड़ी मेहनतसे उसे मार डाला । मरे सांपको उसने कहीं फेंक दिया ।

मरियुम्माको किसी संकटकी आशंका हुई । सांप को मारनेसे घरके लड़केका जीवन संकटमें पड़ेगा । कोयामोन उस घरका एकमात्र लड़का था । वह सबकी आंखोंका तारा था । सभी घरवाले आशंकाके भंवर जालमें पड़े । पापके परिहारके बारेमें गंभीरतासे सोच विचार करने लगे ! नारकपुरम घरानेके लड़केको

बचाना सबकी मांग बन गयी। मौलवियोंसे सलाह मशविरा किया गया। जादू-टोनेका रास्ताभी देखा गया। सांपके दो भेद होतेहैं। असली और नकली। असलीको मार डालनेपर परिवारका तुरंत नाश हो जाताहै। खुजली और कोढ़के शिकार होकर घरवालों को रहना पड़ताहै। पाणन (जातिविशेष जो सांपोंके बारेमें विशेष जानकारी रखतीहै) तामीने अन्तमें मौलवीको बतायाथा कि असली सांप नहीं मारा गया था, वह जाली सांप था। यों परिवारमें फैली आशंका मिट गयी। कोयस्सनको ढाढ़स बंधा।

तामीने भूतप्रेतोंको रोकनेका उपाय बताया था, धरतीके नीचे निधि गड़ी है। उस निधिको निकालनेका मार्ग भी बताया। यह सब सुनकर कोयस्सनके मनमें लालच उत्पन्न होगया। निधि लेनेका लालच उसके मनमें बढ़ता रहा। तामीने उसको उकसाया, अनेक कई गन्दे और गलत कर्म निभानेके लिए। कोयस्सन प्रलोभनका शिकार हो गया। वह तामीकी बातोंसे सहमत होगया। खोपड़ी और जड़ी बूटियां लाकर तामीने अपना काम शुरू कियाथा। कोयामोनको सामने बिठाकर तामीने पूजा पाठ किया। रेशमके लाल कपड़ेसे आंखपर पट्टी बांधकर उससे बहुत सारे प्रश्न पूछे गये। पेड़ोंको काट डालनेके लिए कुछ लोग आये तो मरियुम्माको पता चला कि दालमें कुछ काला है। उन्होंने भाई कोसेस्सनसे पूछताछ की। पहले कुछ ऊल-जलूल बातें करके कोयस्सन असली बात छिपाता रहा। किन्तु मरियुम्मा जब नाराज हो गयी तो कोयस्सन सचको दबा न सका।

तामीके कहे अनुसार कोयस्सनने निधि बाहर निकालनेका उपाय कियाथा। प्रचलित विश्वास यही था कि निधिके पहरेदारके रूपमें भूतप्रेत खड़ेहैं। सांप उनकी सहायता करतेहैं। जबतक भूतप्रेत उधर रहेंगे तकतक घरवालोंके मनको चैन नहीं मिलेगा। भूतप्रेत जब चले जायेंगे तब सांपभी चले जायेंगे। सांपोंके चले जानेपर वे चैनसे निधि बाहर निकाल सकतेहैं। तामीने बादमें मरियम्माको बताया कि खतरेसे बचनेके लिए दो ही उपाय बच रहेहैं। घरानेके लड़केको भूतको देना पहला उपाय है। यदि यह संभव नहीं है तो घरके लड़केके खूनसे भूतप्रेतोंकी प्यासको बुझाना होगा। कोयामनोंके जीवनको दांवपर रखनेकी शर्त सुनकर मरियम्मा आगबबूला होगयी। उसने कोयस्सनकी मूर्खताको दूर करनेका प्रयत्न किया। अन्तमें भूतप्रेतोंकी पकड़ दृढ़ बन जातीहै और परिवारका पतन हो जाता हैं। कोयामोनकी मांकी परेशानी अन्तमे एक सिसकीमें परिणत होतीहै। वह एक पौधेके रूपमें परिणत होकर हवामें हिलतीहै। वह आंसुका एक पौधा है। पौधेके सारे पत्ते अश्रु बूंद हैं। अश्रु के पत्ते हवामें हिलतेहैं। वह 'मुन्ना मुन्ना' पुकारताहै।

एक मुस्लिम घरानेमें प्रचलित आचार और विश्वासोंकी नींवपर यह उपन्यास खड़ाहै। वह परिवार रूढ़िवादसे मुक्त नहीं हुआहै। रूढ़ियों और आचारों का जैसेका तैसा वर्णन करके एक परिवारके पतनके पड़ावोंको उपन्यासकारने दर्शायाहै। सुधार और परिवर्तनके असहज मार्गों और परिहारोंको खोजना लेखक का ध्येय नहीं है। जितना कहा गयाहै उससे भी अधिक अनकहा रह गयाहै। संकेत मात्र देकर पाठकोंको सोच विचार करनेके लिए उपन्यासकार कई अंश छोड़ देता है। यह कलाकारकी सफलताका लक्ष्य है। इस उपन्यासमें एक बड़ी लड़की नफीसु उपन्यासके किशोर पात्र कोयामोनको यौन संबंधका शिकार बनातीहै। बहुत ही अस्पष्ट ढंगसे लेखकने इस प्रसंगका वर्णन किया है। पापबोधकी झलक और गंध इधर नहीं आयीहै। पात्रकी आयु और मानसिकताको ध्यानमें रखकर इस प्रसंगका वर्णन हुआहै।

परिस्थिति और पर्यावरण संबंधी सजगताके प्रचारके लिए उपन्यासमें प्रत्यक्ष रूपसे कुछ भी नहीं मिलेगा। परन्तु निधि निकालनेका प्रसंग अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। धरतीकी संपत्तिका उपयोग करना और उसको चूसना अलग-अलग बातें है। कोयस्सनके मनमें निधि प्राप्त करनेका लालच है। यह लालच आजके वाणिज्य और व्यवसायकी मनोवृत्तिका द्योतक है। इसका भी संकेत उपन्यासमें मिलताहै। स्थूल वर्णनका मार्ग उपन्यासकारने नहीं अपनाया।

प्रकृतिके संगीत और तालको उपन्यासकारने आत्मसात् कियाहै। स्त्रीको प्रकृति और प्रकृतिको स्त्री मानकर कई वर्णन उपन्यासमें मिलतेहैं। प्रकृतिमें आये ऋतु परिवर्तनकी बात कहकर उम्मुकी बातभी वर्णित हुईहै। वह ऋतुमती बन जातीहै तो पाठकोंको प्रकृतिमें आये ऋतुपरिवर्तनकी बात भी याद आतीहै।

उपन्यासके पात्र एक ही परिवारके हैं। पात्रों और परिवेशमें अटूट संबंध है। इस्लामके आचरणों का वर्णन बहुत ही सहज ढंगसे हुआहै। एक बालक की स्मृतियोंके माध्यमसे सारी घटनाएं विकसित होती हैं। अन्य पात्र उसके संबंधी हैं। पात्रोंके संवादमें प्रयुक्त भाषा सर्वथा उपयुक्त है। पात्रोचित भाषाके कारण उपन्यासका उत्कर्ष बढ़ जाताहै। उम्मु की सुनायी कहानियाँ अत्यंत रोचक हैं।

उपन्यासमें आंचलिकता दो प्रकारसे आ सकतीहै। एक प्रदेश विशेषकी भाषासे जुड़ी आंचलिकता है। आंचलिकताका दूसरा रूप जाति विशेषकी भाषासे संबद्ध है। इस उपन्यासमें जाति विशेषकी भाषा प्रयुक्त हुईहै। मुसलमानोंकी भाषाका प्रचलित और जातिगत रूप इस उपन्यासमें देख सकतेहैं। अरबी-फारसीके कई शब्द मलयालममें प्रयुक्त होतेहैं। 'अरबी मलयालम' कहकर इसका व्यवहार किया जाताहै। उपन्यासमें प्रयुक्त ऐसे शब्दोंकी एक विस्तृत सूची अन्तमें दी गयीहै। कहनेका अभिप्राय है आंचलिकता उपन्यासके आस्वादनमें बाधा नहीं बनती।

उपदेश, उद्बोधन और सामान्य कथनके रूपमें कुछ वाक्य उपन्यासमें मिलतेहैं। ये वाक्य उपन्यासकार के जीवन निरीक्षण शक्तिके परिचायक हैं। यदि आप मिट्टीकी रक्षा करें तो मिट्टी आपसे प्यार करेगी। सांझ होते ही पेड़ उदास हो जायेंगे। रात उनके लिए दुःखका समय है। पत्ते तब काले हो जायेंगे। सूर्यका मिटना उनके लिए असहनीय बात है। पानीका टैंक लोहेके बड़े प्यालेके समान है। वह चार पैरोंपर खड़ा है। हाथीके पेटसे भी वह बड़ा है। यादोंको भगानेका प्रयत्न जूठनके हाथसे मुर्गीको भगानेके समान है। धान के पौधे मनुष्योंको देखना पसन्द करतेहैं। लगातार बातें करें तो उनकी फसल बढ़ जायेगी। डर हजार पैरोंसे रेंगनेवाला एक जीव है। इस प्रकारके वाक्योंमें उपन्यासकारके जीवन निरीक्षणकी शक्ति छिपी रहती है।

भूत प्रेतोंकी बातोंको आजके उपन्यासोंमें स्थान देनेकी बातपर विवाद चल रहाहै। उपन्यासने ऐसे विश्वासोंको संजोने-समेटनेवाले एक जन विभागका चित्रण कियाहै। उनके जीवन परिवेशको सहजतासे चित्रित कियाहै। रूढ़ियोंके समावेशसे उस समाजका रूपायन विश्वसनीय बन गयाहै। तर्कका मार्ग न अपनाकर उनके जीवनको निकटसे देखा गयाहै।

पात्र, परिवेश और भाषाके पूरक होनेके कारण उपन्यास जीवन्त बन गयाहै। कोयामोनकी छोटी बहन आईसेथीका चित्रण औरभी कुछ विस्तारसे करनाथा। भाषाकी आंचलिकता बाधा नहीं है। अन्तमें दी गयी शब्दावालीमें इन शब्दोंका अर्थ दियाहै। इस सूचीमें औरभी शब्दोंको स्थान मिलना चाहियेथा। उपन्यासमें अध्याय विभाजन और उपशीर्षक नहीं है। पत्रिकामें प्रकाशित होते समय अध्याय विभाजन था। उससे पारायण सुख ही मिलताथा।

'दैवत्तिण्टे कण्णु' (दैवचक्षु) शीर्षक उपन्यासके लिए सर्वथा उचित है। कुरानकी एक आयतका अर्थ है कि खुदा आंखोंको देखताहै, आंखें उसे नहीं देखती। इधर मानव, प्रकृतिके प्रति अन्याय करतेहैं। ईश्वर इस अविवेकको देखताहै। निधिके लालचमें पड़कर मनुष्य विवेकको खो बैठताहै। उपन्यासका शीर्षक उसको प्रतीक रूपमें द्योतित करताहै। उपन्यास में एक पात्र बताताहै कि सूर्य ईश्वरकी आंख है। उस आँखसे कोईभी दृश्य बचता नहीं पर्यावरण प्रदूषण की समस्याकी ओर प्रेमचंदके उपन्यास रंगभूमिमें एक संकेत है। नागार्जुनके उपन्यास बाबा बटेसर नाथमें पेड़ काटनेवालोंको एक सन्देश मिलताहै। आज पर्यावरण, प्रदूषण और प्रकृति संरक्षणके बारेमें अधिक कृतियोंकी माँग है। एन. पी. मुहम्मदका यह मलयालम उपन्यास उस दिशामें एक सराहनीय कार्य है। विज्ञानके रूखे-सूखे मार्गको न अपनाकर एक बालककी कथामें उपन्यासकारने इस गंभीर समस्याका उल्लेख कियाहै।

बालमनके विचारके रूपमें उपन्यास लिखना बहुत कठिन काम है। यहभी ध्यान रखना होताहै कि यह बाल-साहित्यकी कृति नहीं है। उपन्यासकारने कहाहै कि बालमन अधिक निर्मल होताहै। वह अधिक भावनात्मक होताहै। उसमें सरलताकी शक्ति होतीहै। इसलिए उपन्यासकारने यह शैली अपनायीहै।

प्रकृतिके विनाशमें मानव जीवनको संकटमें डालना है। उपन्यासकारने इस बातपर बल दियाहै। समाज सुधारकी अस्वाभाविक बातें इसमें चित्रित नहीं है। सामाजिक-राजनीतिक व्यंग्यभी लदा हुआ नहीं है। इसलिए यह एन. पी. मुहम्मद की उपन्यास-साधनाकी महत् उपलब्धि है। प्रकृति निरीक्षण और मानव जीवन निरीक्षणका संगम इस उपन्यासमें देखा जा सकताहै। इस विषय और भावको समेटनेवाले उपन्यास मलयालममें दुर्लभ हैं। ☐

मानव-मनका उद्घाटन और उसके सूक्ष्म तत्त्वोंका विश्लेषण

हठयोगी

उपन्यास-लेखिका : तारा मीरचंदाणी **समीक्षक : प्रो. जगदीश लछाणी**

तारा मीरचंदाणी सिन्धीकी पुरानी पीढ़ीके साहित्यकारोंमें से हैं। वे चार दशकोंसे निरन्तर साहित्य रचनामें व्यस्त हैं। सिन्धीकी भावुक लेखिकाओंमें वे प्रसिद्ध हैं। इससे पूर्व कु पोपटी हीरानंदाणी एवं सुन्दरी उत्तम चंदाणी, सिन्धीकी सुप्रसिद्ध लेखिकाएं भी पुरस्कृत और सम्मानित हो चुकीहैं।

हठयोगी (दो भाग) लेखिकाका ९०में प्रकाशित उपन्यास है। 'कोमायल कली' एवं 'उषा' लेखिकाके पूर्व प्रकाशित उपन्यास हैं। कुछ समय पूर्व उनका एक और उपन्यास प्रकाशमें आयाहै, 'लहरुनि जी गूंज'।

तारा मीरचंदाणीके उपन्यासोंकी एक विशेषता यह है कि वे भिन्नता लिये हुएहैं, उनमें एकरसता नहीं है। ताराका पहला उपन्यास १९४९ में प्रकाशित हुआ था और दूसरा उपन्यास 'उषा' १९५८ में। ताराके कुछ कहानी-संग्रह भी प्रकाशित हो चुकेहैं जैसे 'आईनो ऐं अक्लु' (६५) 'रबड़ जी गुड़ी' (६६) 'उलिझियल तन्दूं रेशम जूं' (८६) एवं 'दर्द' (९१)।

तारा मीरचंदाणी सिंधी उपन्यास एवं कहानीमें एक सम्माननीय नाम है। गत दस वर्षोंमें उनकी कलममें और तेजी आयीहै। 'हठयोगी' उनका सिंधीके चुने हुए श्रेष्ठ उपन्यासोंमें एक है। यह उपन्यास लिखनेकी प्रेरणा उन्हें एक मित्रसे मिली। उसके द्वारा बतायी गयी कहानीपर ही इस उपन्यासका भवन खड़ाहै। लेखिका लिखतीहैं, "वह अपनी कहानी बताता गया और मैं 'नोट्स' लेती गयी। उसके आधारपर ही मैंने इस उपन्यासकी रचना कीहै। बहुत-सी घटनाएं, जो उनके जीवनमें घटी हैं, वे सच्ची हैं। ऐसा कहूं कि कैनवेस उसका है, रंग मैंने भरेहैं। लकीरें उसने खींची हैं, उन्हें आकार मैंने दियाहै।"

'हठयोगी' ताराका एक चरित्र प्रधान मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। सही अर्थोंमें सिंधीमें मनोवैज्ञानिक उपन्यास लिखनेकी परम्परा मोहन कल्पनासे शुरू हुई और इस परम्पराको सिंधीके नये उपन्यासकारोंने पल्लवित एवं पुष्पित कियाहै।

उपन्यास जीवनकी व्याख्या है और मूल आधार मनोविज्ञान है। वह जीवनके मानसिक संघर्ष, उसकी उलझन, मानवकी मानसिक ग्रन्थियों, उसकी छिपी भावनाओं एवं कल्पनाओंका मनोविश्लेषणात्मक ढंगसे व्याख्या करताहै।

उपन्यासके इस प्रकारसे मनोविज्ञानकी जितनी जानकारी, जितना ज्ञान प्राप्त हो सकताहै, उतना मनोविज्ञानके ग्रन्थोंसे भी दुर्लभ है। यहां एक बातका विशेष ध्यान रखनाहै, वह यह कि मनोवैज्ञानिक आधार इतना गूढ़ नहीं होना चाहिये कि उपन्यास साहित्य एक तकनीकी ग्रन्थ बन जाये। मनोविज्ञान बीमार मन एवं रोगग्रस्त मस्तिष्कको जांचके लिए ठीक हो सकताहै, पर वह उसका इलाज नहीं कर सकता। यदि हम केवल मनोविज्ञानको ही आधार बनाकर चलेंगे तो साहित्यमें केवल जराग्रस्त मन एवं पागल चरित्रोंकी ही भरमार हो जायेगी। इसके अतिरिक्त इससे एक और हानिकी भी संभावना है, वह यह कि उपन्यास केवल एक पात्र तक ही सीमित

रह जायेगा और फिर उसे समाजका दर्पण नहीं कह पायेंगे। उपन्यासमें कोई भी 'वाद' प्रवेश कर सकता है, प्रवेश कियाहै। पर, शर्त यह है कि वह जीवनकी खुली गलियोंसे आये न कि पुस्तकोंमें बन्द सिद्धान्तोंसे।

परन्तु 'हठयोगी' ऐसा उपन्यास नहीं है। यहां केवल स्थूल घटनाओंके स्थानपर, मानव-मनकी सूक्ष्म भावनाओंका सहारा लिया गयाहै। अतः यह उपन्यास चरित्र प्रधान बन गयाहै। चरित्र-प्रधान उपन्यास, मानव मनके अन्तस्तल तक पहुंचकर, उसके उद्घाटनका प्रयास करताहै। मानव-मनके उद्घाटन एवं उनके सूक्ष्म तत्त्वोंके विश्लेषणमें, हमारे सिंधी उपन्यासकार बहुत पीछे हैं। उन्होंने जितनी सफलता समाजके बाह्य सृष्टि चित्रणमें पायी है, उतनी सफलता मानव-मनकी आंतरिक सूक्ष्म भावनाओंके चित्रणमें नहीं। आजके कुछ नये उपन्यासकार इस ओर सजग हैं।

तारा मीरचंदाणीका यह उपन्यास 'हठयोगी' रोमांटिक उपन्यास है और सिन्धीके श्रेष्ठ उपन्यासोंमें एक। यह उपन्यास हमें कृष्ण खटवाणीके साहित्यकी याद दिलाताहै। श्रीकृष्ण खटवाणी भी सिन्धीके एक सुप्रसिद्ध रोमांटिक साहित्यकार हैं। उनकी अनेक कहानियां एवं उपन्यास 'प्रेम' विषयको लेकर लिखे गयेहैं। फिरभी इनमें थोड़ीभी अश्लीलता नहीं आने पायी। ताराके साथ भी यही बात लागू होतीहै। उपन्यास रोमांटिक चरित्र-प्रधान होते हुएभी, इसमें अश्लीलता नहीं आने पायी।

आत्मकथात्मक शैलीमें लिखे गये इस उपन्यासमें दो ही पात्र मुख्य हैं, जिनको लेकर कहानीका विस्तार हुआहै एक है मलिका या मालू और दूसरा है नायक। दोनों पात्र बड़े प्यारे-से लगनेवाले पात्र हैं। दोनों आदर्शवादी हैं और इन पात्रोंमें 'शरत्'के पात्रोंकी झलक भी मिलतीहै।

जिज्ञासा-उत्सुकता इस उपन्यासकी एक और विशेषता है। उपन्यासके कथानकमें प्रारंभसे लेकर अन्त तक जिज्ञासाका यह भाव निरन्तर बना रहताहै। यही कारण हैं कि पाठक इस उपन्यासको पूरा किये बिना नहीं रहता। 'नये' उपन्यासमें जहां 'रोचकता' का अभाव रहताहै, पर वह यहां प्रचुर है। मलिकासे नायककी पहली भेंटसे लेकर, उसे उसके संबंधियोंके पास पहुंचाने तक—सारी कथा रोचकता एवं जिज्ञासासे परिपूर्ण है। कहानी यूं है....

बदलेकी भावनासे प्रेरित होकर, एक व्यक्ति एक चार वर्षीय बालिकाको उसके रिश्तेदारोंसे अलग करता है। वह उसका रूप बिगाड़कर उससे भीख मंगवाताहै। हरिद्वारमें गंगाके किनारे वह लड़की गाते हुए भीख मांगती है। वहीं उसकी भेंट नायकसे होतीहै। नायक, लड़की के हावभावसे जान जाता है कि यह लड़की भिखारी की लड़की हो नहीं सकती। और सचमुच वह लड़कीको बड़े नाटकीय ढंगसे उस पिशाचसे बचाकर, अपने संरक्षण में रखताहै। लड़की सचमुच बनारसके किसी प्रोफेसरकी लड़की थी। अब नायक, लड़कीके निकट संबंधियोंकी खोज करने लगताहै और जब वह अपने इस महान् कार्यमें सफल होताहै, तभी सुखकी सांस लेताहैं।

परन्तु मालूको संबंधियों तक पहुंचानेके बीचकी अवधि---इस उपन्यासकी अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इस अवधिके अन्तर्गत नायकका मालूको शिक्षित करने का प्रयास एवं दोनोंका गंगा किनारे मंदिर आदिके भ्रमणकी कथा बड़ी ही हृदयस्पर्शी है। यही कथा इस उपन्यासकी रीढ़की हड्डी है। इसी कथासे नायक-नायिकाके उज्ज्वल एवं प्रभावशाली चरित्रके दर्शन होतेहैं और जीवनकी दार्शनिकताके दर्शन भी। दोनोंकी आत्माओंका मिलन यहींपर होताहै। मालू तो नायकके आगे सम्पूर्ण समर्पणके लिए व्याकुल है लेकिन नायक, क्योंकि वह हठयोगी है, इसलिए वह समझताहै कि मालू, उसके पास धरोहर है, याती है और उसे संबंधियों तक पहुंचाना, उसका कर्तव्य है। वह अपनी आत्माकी आवाजको सुनी-अनसुनी कर देताहै।

'हठयोगी' में पात्रोंका चरित्र चित्रण सुन्दरताके साथ किया गयाहै। उनको भावनाओंका उद्घाटन, मन की सूक्ष्म वृत्तियोंका चित्रण एवं मानसिक संघर्षका भी बड़ी सुन्दरताके साथ किया गया है।

उपन्यासकी एक और विशेषता है इसका कथोपकथन, जिसमें रोचकता, स्वाभाविकता एवं दार्शनिक विचारोंकी अभिव्यक्ति सुन्दर ढंगसे हुई है। ये विचार अत्यन्त उदात्त, काव्यात्मक कल्पनाको अपने साथ समाये हुए एवं जीवनके दर्शनसे लबालब भरेहैं। शैली भी बड़ी सुन्दर एवं प्रभावशाली है। विराम-चिह्नों का प्रयोग भी सही सहीं किया गयाहै, जिसपर प्रायः लेखक ध्यान नहीं देते।

कुछ खटकनेवाली बातें भी हैं। इसकी कुछ प्रासंगिक कथाएं, मूलकथासे मेल नहीं खाती। उदाहरणके

लिए इसमें नर्तकी कमलकी कहानी है, उसका मूल कथासे सम्बन्ध जोड़नेमें बल-प्रयोग हुआहै। मैं समझताहूं मालूका कद नायकसे बड़ा देखकर, उसे भी महान् बनानेकी लालसासे ही लेखिकाने इस उपन्यास में नर्तकी कमलकी कहानी जोड़ीहै, जो आजकी स्थिति में स्वाभाविक कम लगतीहै।

फिरभी कहा जा सकताहै कि तारा मीरचंदाणी का 'हठयोगी' सिन्धी उपन्यास साहित्यमें एक अनूठी वृद्धि है। □

कहानी : उड़िया

सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक-आर्थिक विघटनकी युगधर्मी कहानियां

चलन्ति ठाकुर

कहानीकार : शान्तनु कुमार आचार्य **समीक्षक : डॉ. वनमाली दास**

उड़िया-कथा साहित्यके माने हुए कथाकार हैं, शान्तनु कुमार आचार्य। वे अपनी सफलताके लिए न केवल 'चलन्ति ठाकुर' कथा संग्रहके लिए १९९३ में केन्द्रीय साहित्य अकादमीसे पुरस्कृत हुएहैं, अपितु १९६१ से लेकर १९९३ तक बहुतसे पुरस्कारोंसे अलंकृत हुएहैं, उनके पुरस्कारोंकी संख्या दससे कम नहीं है—उड़िया साहित्य अकादमी-पुरस्कार, शारला-पुरस्कार, बाल-साहित्यके लिए भारत-सरकारके शिक्षा-विभागका पुरस्कार, शिशु-साहित्य-पुरस्कार, विषुव-पुरस्कार, झंकार-पुरस्कार, धरित्री-पुरस्कार, भरत नायक सम्मान, उत्कलमणि-सम्मान, गोदावरीश-साहित्य संसद-सम्मान, अन्तमें साहित्य अकादमी पुरस्कारसे पुरस्कृत। उड़ियाके आधुनिक कथाकारके रूपमें उनका नाम बड़े आदरके साथ लिया जाताहै। सचमुच वे एक यशस्वी कथाकार हैं।

उनका प्रकाशित कथा-साहित्य है—नरकिन्नर (१९६२), शताब्दीर नचिकेता (१९६५), तिनोटी रात्रर सकाल (१९६६), दक्षिणावर्त्त (१९७२), यात्रार प्रथम पाढ़ (१९७४), अन्य एक समय अन्य एक भारत (१९७७), शकुन्तला (१९८०), मत्रीकं शेयार (१९८८) अब प्रकाशोन्मुखी है 'धरित्रीर कान्द'।

कहानी संग्रह हैं—मन मर्मर (१९६२), दुर्वार (१९६५), एइ शेष पदक्षि (१९७२), अरण्यर चूल (१९७४) अदिन बउल (१९७८), एकविंश शताब्दीर गल्प (१९८१), करंजिआ डायरी (१९८४), आद्य सकाल (१९८५) सर्वज्ञान (१९८९) चलन्ति ठाकुर (१९९१)।

अन्य विधाओंमें उनका अवदान है वैज्ञानिक बाल साहित्य तथा कुछ अनुवाद।

'चलन्ति ठाकुर' ग्यारह कथाओंका समाहार है, जिसमें कथाएं हैं—पितृऋण, वृक्षसाक्षी, चलन्ति ठाकुर,

लासनष्ट, टेलिफोन कल, जनगणके मन औ तार होते हैं पर वीरके लिए एक भी नहीं।

अधिनायक, प्रेमर प्रमाण, कलोज हतारे जन्हराति, माटिर स्वप्न, अजित रायकं समाधिर-स्तूप, अगस्ट पन्द्रर।

ये कहानियां युगधर्मी हैं, जिनमें लेखकने समाजके, संस्कृतिके, राजनीतिके तथा अर्थनीतिके विघटनोंको दिखायाहै। इन विघटनोंकी जो प्रतिक्रियाएं हैं, जो अवसाद हैं इसमें कहानियोंका रूप लेकर आयेहैं। उन्होंने एक साक्षात्कारमें स्पष्ट कहाहै कि— "शठ गणतंत्रके विरुद्ध यह एक अभियान है। गणतांत्रिक मूल्यबोधके बहाने चारों ओर फैलनेवाले बह्मारिज़िमके विरुद्ध यह एक प्रतिबाद है। ग्रामीणता तथा गणतंत्रकी इसमें पार्थक्यकी प्रतिष्ठा है। मानवीय आवश्यकताकी पूर्ति करनेवाली सामग्रियोंकी मूल्यवृद्धि, जीवन रक्षक-सामग्रियोंमें मिलावट, चोरबाजारी, जनसाधारणके प्रति अन्याय-अत्याचार तथा अपनेको नेता माननेवाले बुद्धिजीवी वर्गकी हीन बौद्धिकता तथा स्वार्थ लिप्सा जनित कुचक्रके प्रति इनमें अंगुली निर्देश है।"-(समाज)। यह अवश्य सत्य है कि इसकी प्रत्येक कहानीमें लेखकने आजकी युगयंत्रणाको, सामाजिक अनीतिको, सांस्कृतिक व्यथाको दिखानेका प्रयत्न किया है। 'पितृऋण' कहानी नारीकी व्यथाका एक व्यथित चित्र है। कहानीकी नायिका 'सुभद्रा' गाँवके किसी युवकसे गर्भवती हो जातीहै, परन्तु गाँववाले निरीह, निर्दोष, निष्कलंक, गरीब नवयुवक 'वीर' को अपराधी बनाकर उसे मार डालना चाहतेहैं और भरी हुई नदीमें फेंक देतेहैं। पर जो, अपराधी है, उसकी ओर किसीका ध्यान नहीं जाता। अवश्य वीरका पिता 'घोर' बदमाश था, लेकिन वीर नहीं। वीर कलंक रहित है, पापशून्य है। वह अन्तमें सारी अर्जित सम्पत्ति गाँवकी तथा राज्यकी उन्नतिके लिए दे देताहै, फिरभी गाँवके लोगों में कोई परिवर्तन नहीं आता। वे आज भी उसी प्रकार चालू हैं, धूर्त हैं। वीर अन्त तक युवती सुभद्राको कभी हीन अथवा वासनाकी दृष्टिसे नहीं देखता अथवा किस लफंगेसे यह कार्य हुआहै, यह भी उससे नहीं पूछता। 'घड़िमूल' गाँव केवल प्रतीक है। ऐसे गांव हजारों हैं। यह कहानी फकीरमोहनकी 'राण्डीपुअ अन्ता' कहानी की याद दिलातीहै। अन्तर केवल इतना है कि 'अन्ता' गाँवके लिए अपना जीवन देताहै और वीर गाँव तथा प्रान्तके विकासके लिए सबकुछ न्योछावर कर देता है। अन्ताके लिए कुछ लोग सहानुभूति दिखातेहैं, दुःखी

'वृक्षसाक्षी' एक छली सरपंचकी करतूतकी कहानी है, जिसमें 'प्रेमी' नामकी गांवकी सुन्दर, स्वस्थ लड़की का वह विवाह नहीं होने देता, सभी प्रकारकी बाधाएं खड़ी करताहै और अन्तमें कलकत्ता ले जाकर एक बदनाम कूचेमें छोड़ आताहै, जहांसे अरबका एक दलाल उसे उठा लेताहै। प्रेमीकी मृत्युके बाद उसका प्रेत एक खजूरका पेड़ बनकर सारी बातें गांवमें उसी सरपंचके द्वारा कह सुनाताहै। इसमें दिखाया गयाहै कि आजके नेता कितने छली, कपटी और गुण्डे होतेहैं और अन्तमें लेखकने यह भी बतायाहै कि ऐसे लोगोंके चंगुलों से अपनेको बचाना चाहिये और इसके लिए आजकी नारीको शिक्षित ही नहीं बुद्धिमान् भी होना चाहिये। अन्यथा परिणाम प्रेमी जैसा होगा।

'चलन्ति ठाकुर' कहानीमें लेखकने दो बातें कहीहैं —एक है आजके आइ.ए.एस.अफसर कैसे अपनेको दूसरों से अधिक गौरव संपन्न और महान् समझतेहैं और किस प्रकार विदेशी संस्कृति और धनको महत्त्व देतेहैं; इसी पर लेखकका कटु व्यंग्य है, उसीका विस्तार है यह कहानी। प्रमाणोंद्वारा लेखकने यह स्थापना कीहै कि इस प्रकार की धारणा नासमझी है, अशिष्टता है और अवास्तविक है। जिस बहनोई 'बिजन सेनापति' को आइ. ए. एस. अफसर 'सिद्धार्थ' घृणाकी दृष्टिसे देखताथा, वही अब अमरीकाकी एक विशिष्ट कंपनी जनरल मोटर्समें एक बड़ा अधिकारी है। आइ. ए. एस.से कहीं ऊपर है, अधिक पैसा पाताहै, साथही अधिक मानमर्यादा भी। यहांकी मूर्त्तियोंको डेड (मृत) कहकर सिद्धार्थ अमरीका में बेचना चाहताहै। वह कहताहै : "तू एक काम कर, आंटिक बिजिनेस कर, इन डेड देवताओंको इस देशसे न हटने तक इस देशमें पावर्टी नहीं हटेगी। कैसी फुलिशनेस है! करोड़-करोड़ रुपये इन पत्थरोंमें भरे हुएहैं, पर हम दरिद्र हैं (च.ठा)"। अपने देशपर ये फूल बरसाते इस आइ. ए. एस. प्रवचनमें, बीसियों वर्षों तक इस विशिष्ट वर्गके लोगोंपर देशकी जितनी शक्ति सम्पत्ति और श्रम व्यय हुआ, यह उसका प्रतिफल है जो देशको प्रतिदानमें प्राप्त हो रहाहै। इसे लेखकने पांच वर्षके भानजे मुस्किनके व्यवहारसे व्यक्त कर दियाहै। वस्तुतः आइ. ए. एस. अफसरोंके एक बड़े वर्गकी यही धारणा है। लेखकके

'चलन्ति ठाकुर' (जीवित देवता) के यही आइ. ए. एस. अफसर हैं और आजके प्रशासक और नेता हैं, जिनमें राष्ट्रीयता नामकी वस्तु ढूंढनेके लिए लैंसकी सहायतासे पृथ्वीपर गिरी सूईको ढूंढनेका श्रम करना होगा।

'ग्लासनस्ट' में सरकारी योजनाओंके प्रदर्शनात्मक रूपपर चोट है। ये सारी योजनाएं मात्र दिखावा हैं, केवल कागजपर कलमसे अंकित हैं, जिसका कोई अर्थ नहीं। सब लाल-फीतेके अन्दर हवा हो जातीहैं, छूमंतर हो जातीहैं। उसका नामोनिशान मिट जाताहै। वे कहीं नहीं रहती। अर्द्धेन्दुका स्टेनो ठीक कहताहै—"झूठ नहीं, सब कुछ पलिटिकाल है सर। सब पलिटिकाल। इससे कलाहांडि (उडीसा का एक जिला) का अकाल दूर नहीं होगा सर!" लेखकने चित्रित कियाहै कि राजनीतिज्ञ सबकुछ कर सकतेहैं, उनसे सफेद काला हो सकताहै और काला सफेद। सही अर्थों में वे आजके नियन्ता हैं। आजके युगमें जो सत्यके मार्ग पर चलताहै, अन्यायका विरोध करताहै, वह अपने ही पैरपर कुल्हाड़ी चलाताहै। यही हुआ कमिश्नर अर्द्धेन्दु का। एक मिनटमें नौकरी चली गयी। वह अब गांवकी सोंधी मिट्टीकी गंधका आनन्द ले रहाहै।

'टेलिफोन कल' में लेखक प्रेमी और प्रेमिकाके भीतरके प्रेमकी पुनरावृत्ति कराताहै, साथही इसमें दिखाताहै कि कैसे आजकल इन्टरव्यू लिया जाताहै और उसका फल कैसे उम्मीदवारको मिलताहै। लेखकने स्पष्ट कहाहै कि—"आजिर इंटरव्यूरे मेरिटर स्थान नाहीं ××× यह 'गिव एंड टेक' का युग है" (च. ठा.)। पहले दो फिर लो। मंत्री तक यही करतेहैं। सफलता पानेके दो मार्ग हैं, प्रेम तथा धन। इस कहानी का सार यही है। आजके समाज तथा राजनीतिपर लेखकका व्यंग्य है।

'जनगणमन और तार अधिनायक' में आजका शासन तथा उसके अधिकारी वर्गकी कार्य कुशलताकी पोल खोलीहै। एक दुधमुहां बच्चा बस स्टेण्डकी गंदी मोरीके भीतर खेल रहाहै, जिसपर किसीका ध्यान नहीं और उसके माता-पिताकी कोई खबर तक नहीं, उसीका यथार्थ चित्र है यह। एक सहयात्रीसे लेखकने सुनाहै कि —"नरक हिं आजिर मणिषर निवास। ए पृथिवीटा त गोटाए विशाल नरक; जेउंठि पड़ि जाइछु आमे समस्ते। एथिरू रक्षा काहिं कहन्तु त?" इसमें आचार्यजीने आजके शासनपर जहां आक्षेप कियाहै वहां आजके समाजकी स्थितिको देखकर अपना 'दर्शन' प्रस्तुत कियाहै। केवल शासन ही नहीं, हमभी उसके लिए दोषी हैं। हममें भी कर्त्तव्य-बोधकी कमी है।

'प्रेमर प्रमाण' में उन्होंने आजके गांवोंके युवावर्ग में कितना औद्धत्य, कितना अक्खड़पन, कितना शोहदापन और आवारापन है और वे कितने विशृंखल हैं यही दिखायाहै। ऐसा लगताहै जैसे कहानीका आशय ही आजकी युवा पीढ़ीकी ओर उंगली उठानाहै। प्रौढ़ोंके प्रति उनका व्यवहार कितना बेहूदा है उसीका यथार्थ चित्र है।

'कलेज हतारे जह्लराति' आजके प्राध्यापकों, व्याख्याताओंके चरित्रपर कुठाराघात है। छात्राओंके साथ घृणित संबंध रखनेमें वे कितने चतुर हैं उसीका ही चित्रण है। यह एक सच्ची घटना जैसी लगतीहै, क्योंकि लेखकके कुछ कॉलेजोंमें अध्यक्ष रहनेके कारण उनकी जानकारीमें यह बात आयी होगी। इसमें कल्पनाकी अपेक्षा यथार्थ अधिक लगताहै। जहां बच्चों को केवल ज्ञान देना नहीं, उनका चरित्र निर्माण करना शिक्षकों-प्राध्यापकोंका कर्त्तव्य है, वहां उन्हें बिगाड़ा जाता है, वासनाका शिकार बनाया जाताहै।

कहानी है अजित रायके समाधि स्तूपपर, जहां अधिकारीकी पत्नीके साथ चपरासीका अवैध प्रेम, यौनक्षुधा है। समाजमें ऐसी बातें बहुत पायी जातीहैं। लेखकने बड़ी कुशलतासे इसका चित्रण कियाहै। प्रतीत होताहै यह घटना लेखकके सामनेही घटीहै। इसमें अतृप्त वासना, कुण्ठा अपनी चरम सीमापर हैं।

आजकल हनुमान मार्कके पैसेका बोलवाला है। बहुत-से लोग उसीके पीछे पड़े हुएहैं। लोगोंकी यह धारणा है कि इस पैसेसे लाखों रुपये मिलनेवाले हैं। लोगोंकी इस धारणाको लेखकने 'माटिर स्वप्न' में रूपाकार दियाहै कि यह एक पागलपन है।

'अगस्त पन्दर' संग्रहकी अंतिम कहानी है। इस कहानीमें सरसता उतनी नहीं है, जितना आजकी समस्याओंको उकेरा गयाहै और उनका आकलन है। इसमें शिक्षा क्षेत्रकी होनेवाली दुर्नीतियां हैं, चिकित्सामें जनसाधारणकी अवहेलना और कर्त्तव्यहीनताके भी चित्र हैं। आजकी युवापीढ़ीमें हताशा ही हताशा है। कारण है नौकरी न मिलना, नौकरी आजकल गूलरका फूल बन गयीहै, इसलिए स्वाधीनताके स्वादका अनुभव उसे नहीं हो रहा। वह सभी प्रकारसे निराश हैं। इसलिए इसमें

न तो गुरुजनोंके प्रति सम्मान है और न श्रद्धाभाव। देवी-देवताओंके प्रति भी भक्तिभाव नहीं है, उपेक्षा है, घृणा है। वे अपने आपको उच्छृंखल, उद्दण्ड तथा असामाजिक बना लेतेहैं। अधिकाधिक लाभ कमानेके लिए लालायित व्यवसायी भी दिन-प्रतिदिन स्वार्थके कारण मानवतासे शून्य होता जा रहाहै। मिलावट करना उसका नैतिक कर्तव्य है। परिणामकी ओर उसका ध्यान नहीं। एक ओर स्वाधीनताका आनन्द लियाजा रहाहै, दूसरी ओर अपमिश्रित तेलके कारण स्वस्थ युवक की स्थिति शोचनीय हो उठतीहै। सरकार भी मौन है। प्रभावकी दृष्टिसे यह कहानी प्रभावात्मक न होने पर भी समाजके यथार्थ चित्रणमें बहुत सफल है। इसमें स्थितिका उतना चित्रण नहीं, जितने लेखकके अनुभव हैं।

समाज तथा राजनीतिका यथातथ्य चित्रण लेखक की शक्ति है। आचार्यकी रचनाएं सामयिक हैं, पर हैं वे उन्हीं रचनाओंका शाश्वत मूल्य जो काल-स्थानकी सीमाको चीरकर सार्वकालिक, सर्वस्थानिक हो जाती हैं। नरकिन्नर (१९६२) और शताब्दीर नचिकेता (१९६५) उपन्यास स्वाधीनताके बादके जर्जरित काल को लेकर लिखे गयेहैं; परन्तु वे कालकी सीमारेखाके भीतर नहीं रहे, कालजयी हो गयेहैं। शकुन्तला उपन्यास षष्ठ और सप्तम दशकके राजनीतिक इतिहास का चित्रपट लेकर आताहै; वह भी कालोत्तीर्ण है। उनकी अन्य रचनाएं भी इसीप्रकार कालकी सीमाके भीतर नहीं है, उनमें आजकी चिन्ता और चेतना पायी जाती है।

'चलन्ति ठाकुर' की कथाओंका मूल्यबोध भी कम नहीं है। यह इसलिए कि आजके युग और जीवनको ये चित्रित करतीहैं और भविष्यका दिशा-निर्देश। आजके युवा, नेता, अधिकारी वर्ग तथा व्यवसायियोंसे सावधान करतीहैं।

उनकी रचनाएं जनसाधारणके लिए नहीं, मननशील उच्चकोटिके पाठकोंके लिए हैं, बौद्धिक हैं। लेखकने एक स्थानपर कहाहै कि—"सचेतन उच्च शिक्षित मननशील गोष्ठीको सामने रखकर मैं संभवतः लिखताहूं।" कहीं-कहीं रचनाओंमें दार्शनिक दृष्टि रहतीहै और कहीं-कहीं सेक्सकी सुरभिभी। संग्रहकी 'टेलिफोन कल', 'प्रेमर प्रमाण', 'कलेज हतारे जह्न-राति', और 'अजित रायकं समाधि स्तूप' कहानियोंमें सेक्सका चित्र कम नहीं पाया जाता। परन्तु सेक्सके वर्णन या विश्लेषणमें कहीं भी नग्नता नहीं, सरसता है, आगे बढ़नेकी आकांक्षा तथा अन्तर्निहितकी जिज्ञासा है।

शान्तनुजीकी कहानियां हों या उपन्यास, कल्पनाजीवी नहीं हैं। वे सबके सब कथ्यधर्मी हैं, तथ्यनिष्ठ हैं, मानवीय मूल्यबोधकी है। उन्होंने जीवनको बहुरूपों में देखाहै और दिखानेका प्रयत्न भी है। वैज्ञानिक होने के कारण उनकी दृष्टि जितनी तीव्र है, पकड़ भी उतनी दृढ़। उन्होंने इसके संबंधमें कहाहै कि—विज्ञान असीम को ससीम बनानेको व्याकुल है तो साहित्य ससीमको असीम बनानेके लिए व्यग्र है। एक आबजेक्टिव है तो दूसरा सब्जेक्टिव।

आचार्य पाश्चात्यप्रेमी नहीं है। भारतीय साहित्य, सभ्यता तथा संस्कृतिसे वे बहुत प्रभावित हैं। भारतीय आदर्शही उनकी रचनाओंकी रीढ़की हड्डी हैं, नींव है। यह आदर्श उनकी 'पितृऋण' कहानीके 'वीर' चरित्रमें, 'चलन्ति ठाकुर' के मिस्कुनके चरित्रमें, 'ब्लासनस्ट' के अर्द्धेन्दुके चरित्रमें, 'जनगणमन ओ तार अधिनायक' में देखा जा सकताहै, लेखकका कर्त्तव्यज्ञान और उसकी उदात्त भावना भी अन्य कहानियोंका आधार बिन्दु नैतिकता है और आशय भी आदर्शकी स्थापना है।

प्रतिभावान् कृतिकार अपने पूर्ववर्ती कृतिकारके लिए फूल है तो परवर्ती कृतिकारके लिए फल होता है। चर्चित लेखकके लिएभी यही कहा जा सकताहै। इसलिए उन्होंने कहा है कि—"उड़िया भागवतके रचयिता परम वैष्णव अतिबड़ी जगन्नाथ दास तथा आधुनिक उड़िया गद्य साहित्यके जनक फकीरमोहनकी शैली को अपना लियाहै मैंने, पर फकीरमोहनकी शैली तथा भाषाका देहातीपन इनमें नहीं है। अवश्य, शैली में सरसता है, सरलता है, सावलीलता है; पर फकीर मोहनकी मुहावरेदार शैली आचार्यजी के पास नहीं है। आचार्यजी कटकके निकटवर्ती गांव सिद्धेश्वरपुरके होने के कारण उनकी भाषामें फकीरमोहनकी बालेश्वरी शैली नहीं पायी जाती। उनकी शैलीमें गोपीनाथ महान्ति तथा प्रेमचन्दकी तरह उपमाओंकी भरमार है: टेलिस्कोपरे तारा दिशिला भलि, कणा धान उलिआर, धानगुड़ाक गलिगला भलि षण्डकु नालिकना देखाइला भलि, एक विस्तीर्ण बालुका-शय्या ता मझिरे सुना 'शेजरे' रुपार कन्याटिट परि धारे पाणि, सेइ

मार्मिक दृश्यटिकु अपेक्षा करि मु बस बाहारकु बेक काढ़ि कंइचटिए परि दीर्घ समय अनेइ रहिलि। ये उपमाएं केवल भाषाको मधुर नहीं बनातीं बल्कि भाव को अधिक स्पष्ट करतीहैं।

आचार्यजीकी यह विशेषता है कि स्थान और पात्रके अनुरूप उर्दू तथा अंग्रेजी भाषाका प्रयोग कर देतेहैं।

उर्दू : खास, मदद, हुलिआजारी, दोस्त, मजाचखाना, अजब, बनावा

अंग्रेजी : स्पिच, रेकर्ड, डाडि, सन्, प्लेप अफ ओरसि, गड, डेड आदि

'चलन्ति ठाकुर' कहानीमें अंग्रेजी शब्द भरपूर हैं आरम्भसे अन्ततक। एक खूबी है उड़िया-गालियां। इसमें ये भरी हुईहैं। भाषा इससे जहां सरस तथा सहज होतीहै, वहां प्राकृतिक भी बनतीहै और अधिक प्रामाणिक होतीहै।

आचार्यजी प्रकृतिप्रेमी हैं। इसलिए उन्होंने कहाहै कि कथा जगत्की विमुक्त धरोहर मनके भीतर पगडंडीमें, पेड़के नीचे, पहाड़की कंदराओंमें है। वहां कथाएं प्रतीक्षारत हैं। केवल पहुंचनेकी जरूरत है। महाप्रकृतिकी गोद ही कथाओंका भण्डार है। उनको प्राप्त करनेके लिए महाभावकी आवश्यकता है। ये कथाएं शहरोंमें उतनी नहीं है, जितनी प्रकृतिके आंचल में हैं। वहांके रहनेवालोंकी, आत्मानुभूतियोंको, संवेदनाओंको साहित्य में लाना चाहिये। कहानीकार को वहीं अपना ठौर बनाना चाहिये। वही उसका कर्मक्षेत्र बने।

आचार्यजीके कथा-साहित्यका चिरन्तन मूल्य है। वहां पाठकको दिशा-निर्देश देनेमें समर्थ है और युगकी वाणी सुनानेमें सशक्त है □

कहानी : कन्नड़

मानव जीवनके सूक्ष्म निरीक्षण, नाटकीयताकी गहन अनुभूति

कल्लु करगुव समय

कहानीकार : पी. लंकेश **समीक्षक : डॉ. टी. आर. भट्ट**

पी. लंकेश कन्नड़ साहित्यकारोंमें ही बिलक्षण, विवादात्मक एवं बहुमुखी प्रतिभा संपन्न व्यक्ति है, जिन्होंने साहित्यकी प्रत्येक विधामें लेखनी चलाकर उस पर अपने व्यक्तित्वकी छाप डालीहै। लंकेश कन्नड़के संपन्न रचनाकार ही नहीं अपितु साहसी, निर्भीक संपादक हैं। सिनेमाके क्षेत्रमें भी उनका अपना विशिष्ट महत्व है। १९८० में कन्नड़में एक पत्रिका शुरू की और आजतक उसे चलाते आयेहैं। सृजनशील कलाकारके रूपमें लंकेशने नाटक, कहानी, उपन्यास, काव्यके क्षेत्रमें समान रूपसे लेखन किया और सहृदयों के प्रशंसा पात्र भी बने और कोपभाजन भी। उनके मित्र हों या शत्रु, दोनों उनकी प्रतिभाकी उपेक्षा नहीं कर पाते। कन्नड़के साठोत्तरी साहित्यके अन्तर्गत लंकेशके उल्लेखके बिना जीवनकी सामाजिक, राज-

नीतिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक चर्चा पूर्ण नहीं हो सकती।

ग्रामीण संस्कारोंसे प्रभावित लंकेशके लिए नगर-संस्कृति चुनौती थी। साठोत्तर युगके आरम्भमें पुरानी परम्पराओं और मूल्योंका प्रभाव था, इस परिस्थितिमें लंकेशको अपने व्यक्तित्वके निर्माणके लिए प्रबल संघर्ष करना पड़ा। साहित्य क्षेत्रमें अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित करनेके लिए उन्होंने धैर्य और साहससे काम लिया। इस दृष्टिसे उन्हें भाषाकी दृष्टिसे भी चुनौती का सामना करना पड़ा। लंकेश यह जानतेहैं कि मनुष्य अपने आपको परखनेके लिए और समाजके साथ अर्थपूर्ण क्रियाशील संबंध विकसित करनेके लिए और मनुष्यकी मूलभूत चेतना—प्रेम, काम, मृत्यु, प्रकृति, भगवान्—इन सबके संबंधमें प्रामाणिक अनुभव प्राप्त करनेके लिए भाषाही एकमात्र माध्यम है। ऐसी स्थिति में लंकेशने अपने लेखन-व्यवसायके आरम्भमें अपनी भाषाके संस्कारके लिए श्रम किया, उसमें नया जीवन भर दिया, अपनी भाषाकी गहराईमें उतरकर उसकी पुरानी ध्वनिको खोजकर प्रकाशमें लानेका प्रयास किया। इसीलिए प्रस्तुत कथा-संकलनकी भाषामें प्रवाह, सहजता, जीवंतताको देख सकतेहैं। यह कन्नड़ भाषाको लंकेशका अपूर्व योगदान है।

"कल्लु करगुव समय" (पत्थर पिघलनेका समय) का कन्नड कथा-साहित्यमें अपना विशिष्ट एवं अन्यतम स्थान है। लगभग दस वर्षके अन्तरालके बाद उन्होंने ये कहानियां लिखीहैं। दस वर्षकी इस अवधिमें उन्होंने काव्य, नाटक या कहानी बिलकुल नहीं लिखी। लगभग तीन वर्षकी अवधिमें लिखी गयी उनकी कहानियां ही इस संकलनमें संकलित हैं। इस कृतिपर लंकेशने स्वयं लिखाहै "मुझे लगताहै कि मेरे पूर्वकी कथाओंके गर्भसे ही इन कहानियोंका जन्म हुआहै। इनमें सामाजिक बोधके साथ यांत्रिकताकी तीव्रता है जो मेरी पूर्व की कहानियोंमें नहीं है। इस ओर मैंने ध्यान दिया है।"

इन कथाओंके पात्र अनेक क्षेत्रोंसे संबंधित हैं। सभी पात्रोंके मानसिक द्वन्द्वके आधार अलग-अलग हैं। प्रत्येक कहानीका पात्र भिन्न-भिन्न वातावरण और मानसिकतामें जीताहै। प्रत्येक पात्र जीवनकी गहराईमें छिपी अराजकता, खिन्नता एवं निगूढ़ सत्य को मुखरित करता है। यह सूक्ष्म प्रक्रिया प्रत्येक कथा में चलती रहतीहै। चाहे स्त्री हो, पुरुष हो या समाज हो सब अपने आपको खोलकर रखतेहैं। कहानीके सभी पात्र युगीन वातावरणको देखते हुए, युग-संघर्षको झेलते हुए अपने जीवनमें युगकी नयी चेतनाको स्वीकार करनेको लालायित हैं। इसमें कथाकार लंकेशने आजकी नयी परिस्थितिके अनुरूप अपने पात्रोंको अधिकतर निर्भीक और स्पष्टवादी बनायाहै। सभी कहानियोंमें युगका यथार्थ मुखरित है। लंकेशकी इसके पूर्वकी और प्रस्तुत कहानियोंमें पर्याप्त अन्तर है। यही कारण है कि दस वर्ष पूर्वकी कहानियोंसे कहानीकारके रचना शिल्पकी भिन्नता स्वयं उभरतीहै। एक कारण यहभी है कि लेखक गत पंद्रह वर्षसे सिनेमा और पत्रिका-व्यवसायसे जुड़े हुएहैं। अब उन्हें जीवनको व्यापक धरातलपर देखनेका अवसर मिलाहै। यह परिवर्तन लेखकको विकासकी नयी दिशा प्रदान करता है।

प्रस्तुत संकलनमें १३ कहानियां हैं जिनमें 'कल्लु करगुव समय" (पत्थर पिघलनेका समय) शीर्षक कहानी इस ग्रंथकी श्रेष्ठ कहानी है। इसीके नामपर संकलनका शीर्षक रखा गयाहै। इसमें श्यामला नामक युवती एक कार्य-शिविरमें भाग लेतीहै और इसीसे उसे नयी जीवन शक्ति मिलतीहै। वह तिप्पण्ण नामक निम्न जातिके युवकसे प्रेम करतीहै, दोनों विवाहका निश्चय कर लेतेहैं। तिप्पण्णके पिता, उसकी जातिके लोग इस प्रस्तावका विरोध करतेहैं। पिता मल्लय्य खूनी आदमी है। धर्मगुरु उसे भटकातेहैं। पर पत्थर जैसा उसका हृदय अन्तमें पिघल जाताहै। उसकी मृत्यु हो जातीहै। सरल, और मुग्ध युवक प्रेमी तिप्पण्ण, भयंकर मानसिक यातनाका शिकार होताहै। पर अन्तमें वह गंभीर यातनाओंसे मुक्ति पाताहै, अपने दायित्वोंके प्रति सजग हो उठताहै। लंकेशके शब्दोंमें कहनाहै तो "वह सहज बनताहै, पक्षीके समान, पेड़ की भांति और मनुष्य जैसा सहज बन जाताहै।" इस कथामें तिप्पण्णकी प्रेयसी श्यामला उसे अपने बल, धैर्य से स्वीकार कर उसकी दुर्बलताके क्षणोंमें उसमें चैतन्य भर देतीहै।

"ओंदु बागिलु" (एक दरवाजा) में तिम्मम्म एक अत्यन्त निर्धन मजदूरिन है जिसकी झोंपड़ीमें नायक दरवाजा लगाना चाहताहै। इस कार्यमें उसे असंख्य

यातनाएं झेलनी पड़तीहै और वह इसी कार्यमें थककर ऊब जाताहै। अंतमें उसे अपनेको क्रूर यथार्थके अनुकूल बनाना पड़ताहै। यही जीवनकी अनिवार्यता बन जातीहै।

तोटदप्पनु (बागवान) शीर्षक कहानीमें एक बूढ़े मालीके माध्यमसे जीवनका कटु सत्य मुखरित है। बूढ़ा माली कहताहै "लगा कि मनुष्य कितना विचित्र है। उसे सम्पत्ति, विद्या, कला सबकुछ चाहिये। पर वह असहनीय जिदसे विजय पाताहै। इसके बिना उसे जीनेके लिए कोई कारण ही गोचर नहीं होता।... मनुष्य इतना जटिल है कि वह मरते समय तक किसी-न-किसी जिदसे और चुनौतीसे जीतता रहताहै।" लगताहै कहानीकार लंकेश बूढ़े मालीके मुखसे अपना जीवन-दर्शन अभिव्यक्त कर रहाहो।

'देवी' कहानीमें लेखकने एक सामान्य स्त्रीके जीवन के वास्तविक सत्यको प्रस्तुत कियाहै। देवीका अनुभव उसके अपने जीवनका ही नहीं अपितु स्त्री जातिका अनुभूत सत्य है। देवी जीवनमें दुख, अपमान और भयसे त्रस्त होतीहै। उसका पति चंद्रप्प सिनेमा निर्देशक नायडू छोटे मनुष्यके रूपमें गोचर होतेहैं।

"मुट्टिसिकोंडवनु" (छुआ हुआ व्यक्ति) शीर्षक कहानी इस संकलनकी श्रेष्ठ कहानियोंमें एक है जिसमें कथानायक बसलिंग जाति-पद्धतिके प्रहारसे प्रताड़ित होकर मानसिक रूपसे पीड़ित है, उसकी सारी शक्ति जाति-प्रथाके कारण कुंठित हो जातीहै। यहां, प्रेमचंद के 'गोदान' के नायक होरीका स्मरण हो आताहै। बसलिंग आंखका रोगी बनताहै। शारीरिक वेदनासे बढ़कर उसे मानसिक संताप अधिक हैं। उसके वैद्य तिम्मप्प उसके परिवर्तनको परखतेहैं। लेखक उसकी स्थितिका उल्लेख करते हुए कहतेहैं—"उसका गला भीग गयाथा। वह घुटनसे छोटा होताजा रहाथा। इस बातका उसे कैसे पता? उसकी बीमारी शरीरके स्तरसे मानसिक स्थितिपर पहुंच गयीथी।" बसलिंग एक भोला-भाला किसान है। उसका कोई अपराध नहीं, कोई गलती नहीं। पर शिष्ट समाज उसे अपराधी बनाताहै। कहानीकार लंकेशने कहानीके अन्तमें बसलिंगमें जो मानसिक परिवर्तन हुआहै उसे नाटकीय ढंगसे प्रस्तुत कियाहै। "स्टेल्ला नामक लड़की' शीर्षक कहानीमें सुब्बण्ण अपनी पत्नी पार्वतीपर होनेवाले अत्याचारको देखकर भी उसका प्रतिकार नहीं कर पाता और उसे चूहेके समान जीवन व्यतीत करना पड़ताहै। 'सुभद्रा' नामक कहानीमें सुभद्रा अपने अंदर छिपी हुई कामनाओंको देखकर अपराधीके समान चीत्कार करतीहै। "दाह" भी एक बहुत अच्छी कहानी है। इसमें लेखककी आपबीती ध्वनित हुईहै। "सहपाठी" कहानी मार्मिकता लिये हुएहै, जिसमें कथानायक भगवान बसवेगौडके हृदयकी आन्तरिक वेदना और भयंकर सपनेको सामाजिक प्रतिक्रियाके रूपमें देखताहै और अन्तमें हरिजन लड़केके पैर धुलवाकर पापमुक्त होने तक उसे ले जाताहै। समाजके इस यथार्थको कहानीकारने बहुत ही प्रभावकारी रूपमें अभिव्यक्त कियाहै। इसमें सुधारकी ध्वनि भी मुखरित है। "कणमरे" (गायब) नामक कथाकी नायिका सावित्री अपने जीवनके दारुण कष्टका स्वयं सहज एवं सीधे ढंगसे सामना करतीहै और उसमें सबकुछ सहनेका आत्मविश्वास पैदा होताहै।

यद्यपि इन कहानियोंके परिवेश अलग-अलग हैं, चिन्तनके क्षेत्र भी भिन्न-भिन्न हैं, परन्तु इन पात्रोंमें अपने ढंगसे सहज रूपसे जीनेका अदम्य उत्साह है। साथही इन कहानियोंको पढ़कर कहानियोंमें तीव्रता एवं गहराई अनुभव नहीं होती। संभवत: कारण यही है कि ये कहानियां लेखकने तीन वर्षकी अवधिमें लिखीहैं।

संकलनकी कई कहानियोंमें जीवनके प्रति लेखक की धारणा पात्रोंके मुखसे प्रकट हुईहै। प्रेम, काम और मृत्युके बारेमें लेखकका जो चिन्तन है, उसमें गहराई और विशालता आ गयीहै। संकलनकी कुछ कहानियां इस ओर संकेत करतीहैं। लंकेश एक सीमा तक गांधीवादी हैं और प्रबल मानवतावादी कलाकार हैं। इसी कारण कहानियोंमें मानवीयता और दुर्बलता—दोनोंका उद्घाटन हुआहै।

अभिव्यक्ति-कलाकी दृष्टिसे कहानीकी शैली लंकेशकी निजी है। जैसे लेखकने चिन्तनकी दृष्टिसे इन्हें विशिष्टता प्रदान कीहै। कहानीकी भाषापर कहानीकारकी शैलीकी छाप है। उन्होंने अपनी भाषा कन्नड़को नयी चेतना दीहै और नया रूपक दियाहै। इन कहानियोंमें लेखककी काव्यात्मकता भी गोचर होतीहै।

कुल मिलाकर कहा जा सकताहै कि प्रस्तुत रचना "कल्लु करगुव समय" लंकेशकी इस कृतिको उत्कृष्ट कलात्मक-सृजन स्वीकार किया जा सकताहै। उनके कथा-साहित्यके विकासकी यात्रामें यह रचना एक महत्त्वपूर्ण मोड़की परिचायक है। कहानियां सहृदय पाठकोंपर अमिट प्रभाव छोड़तीहैं और उन्हें पढ़नेके बाद सोचनेकी प्रेरणा मिलतीहै। □

शैलीकी दृष्टिसे चित्रमय, अभिव्यक्तिमें पैनी और संक्षिप्त

तरंगां

कहानीकार : महाबलेश्वर सैल **समीक्षक : डॉ. चन्द्रलेखा**

साहित्यकी उत्कृष्टता युग-सत्य, समाज, जन-जीवनकी व्यापकतामें, निकटतामें, प्रामाणिकतासे प्रस्तुत करनाहै । साहित्यकार जिन परिस्थितियोंमें साहित्यकी साधना करताहै वह उसका परिवेश है । जिस समाजके सामाजिक संदर्भोंको आधार बनाकर लिखताहै वह उस समाजका परिवेश है । इन दोनोंके साथ साहित्यिक कृतिमें तीसरा परिवेश पाठकका अपना होताहै जिसमें वह कृतिको अपनेही क्षेत्रमें देखनेका प्रयत्न करताहै । जिस साहित्यिक कृतिमें समय-सत्य, समाज एवं जन-जीवनका व्यापक सत्य प्रामाणिक रूपमें अभिव्यक्त होताहै वही कृति अपना स्थान बना पाती है । साहित्यमें भी, साहित्यक परिस्थितियों, सामाजिक स्थितियों और साहित्यकारकी अपनी परिस्थितियोंके फलस्वरूप साहित्यिक नदीमें भी कटाव, बदलाव, झुकाव, ढलाव, बहाव निरंतर चलते रहतेहैं । यह निरंतर प्रवाहके विभिन्न मोड़ोंका इतिहास होताहै ।

कोंकणी कहानीकार महाबळेश्वर सैलका प्रस्तुत पुरस्कृत कहानी संग्रह "तरंगां" तरंगोंका स्पंदन भी गोवाके कोंकणी साहित्यिक उतार-चढ़ाव, इतिहासकी वटोली, झुकीली दीवारों, उसके सामाजिक द्वंद्व और तनावसे उत्पन्न कहानियां हैं । कहानीकारका जन्म-स्थल गोवाके दक्षिण भागमें स्थित कारवार तालुकाके अंतिम छोरका गांव है माज़ाळी । वे नवंबर १९६३ से लेकर नवबर १९६४ तक भारतीय सेनामें भी काम कर चुकेहैं । अपने सैनिक जीवनमें इसरायल और मिस्रके युद्धमें शांति-सैनिकका दायित्व फिलस्तीनमें निभाया और अब गोवामें डाकपालकी नौकरीमें हैं । उन्होंने अपने जीवनको समाजको, इतिहासके जिस मोड़पर देखाहै, उन्हींका निरूपण उनकी कहानियां करतीहै । प्रादेशिकता प्रारंभसे लेकर अंततक द्रष्टव्य होती रहतीहै । एक दो कहानियोंमें गोवाकी मुक्ति संग्रामकी झलकभी प्रस्तुत होतीहै ।

एक कहानी है—'रूमडाफूल'—(एक प्रकारके पेड़का फूल) पारिवारिक भावना और स्नेहकी । लछुमणका भाई सेनामें है और लछुमणकी भाभी सुमित्रा देवर और सासके साथ गोवाकी सीमाके बाहर माज़ळी गांवमें रहतीहै, मांका घर काणकोणमें । भाभी गर्भवती है, गोवाकी सीमा बंद कर दी गयीहै । सुमित्रा पैतृक संबंध कट जानेसे रोती रहतीहै । देवर लछुमण चिन्तित है कि भाभीको कैसे अपने पिताजीसे मिलाये । देवर-भाभीके निर्मल प्रेमकी सुंदर, अभिव्यक्ति भावनाके स्तरपर हुईहै । लछुमण भाभीके पिताजीको संदेश पहुंचाने घरसे तो निकल पड़ताहै, परन्तु सीमापर "सोल्दाद' अर्थात् पुर्तगाली सैनिकोंका पहरा है । फिरभी वह अपनी जान हथेलीपर लेकर चल पड़ताहै । वैसे यह राह लछुमणके लिए नयी नहीं थी । गोवा बंद होनेसे पहले बहुत बार यहांसे आ-जा चुकाहै । पर अब वह राह बंद है । दोनों ओर जंगली पौधोंका साम्राज्य है । अनजाने ही, उसमें डर समा गया । ···गोवाके दो सैनिक और दो गोरे—"पाखले" —एक साथ सामने थे । वे अत्यंत धीमी आवाजमें बातें रहेथे । लछुमणके इतने निकट कि वे जो कुछ बोल रहेथे, वह सब सुनायी दे रहाथा । कोंकणीमें ही बातें

कर रहेथे। पुर्तगाली पाखले— गोरेभी अच्छी कोंकणी बोल लेतेथे। वे सब लछुमणके सामनेके खुले स्थानपर गोलाकार बैठे थे।...

गोवा संबंधी अन्य चित्रण भी पठनीय हैं।...गोवा स्वतंत्र होताहै, जयहिंदका नारा घर घरमें गूंजताहै, पर गांवकी जीवन प्रणालीमें विशेष अंतर नहीं पड़ता। पहले पाखले—गोरे-सिपाही थे, अब भारतीय हैं। सामान्य जनकी दिनचर्या, उनका जीवन समाज, समाज की परिस्थिति, उनकी धार्मिक विचारधारा, आंचलिकतामें कोई परिवर्तन नहीं। पुर्तगाली शासनसे पहले भी "तरंगां" थी, पुर्तगाली शासनमें थी और आजभी यह प्रथा है। गांवोंमें बहुत कम परिवर्तन हुआहै। वास्को, मडगांव, पणजी, फोंडा जैसे नगरोंमें बहुत कुछ बदल चुकाहै और बदलेगा, पर साहित्यमें इस परिवर्तनका और उसका निरूपण नहीं ही है। फिरभी एक दो स्थानपर लड़कीके स्वरूपमें जो परिवर्तन आया है उसका निरूपण श्री सैनने अपनी कहानी—"और लड़कीने कानून अपने हाथमें लिया" के माध्यमसे व्यक्त कियाहै, जो बहुत मार्मिक है।

स्वतंत्र भारतमें स्वतंत्रता हैं कहां? राजकीय, सामाजिक, आर्थिक, ऐतिहासिक कौनसी स्वतंत्रता हमने प्राप्त कीहै? गोवा स्वतन्त्र हुआ १९ दिसंबर १९६१ में और आजभी सामान्य जन-साधारण जहां था वहीं है। केवल सत्तामें परिवर्तन हुआहै। जमींदारको 'कोंकणीमें भाटकार' कहा जाताहै। जैसे धरती जिसके पास है वह जमींदार, उसी प्रकार भाट जिसके पास है वह भाटकार कहलाताहै। यह भाटकार कानून अपने हाथमें लेकर स्वतंत्र भारतमें भी अपनीही धौंस जमाताहै। पोस्टमैन पर भी हाथ उठाताहै। ड्यूटीपर होनेपर भी उसकी फरियाद कोई सुनता ही नहीं। उसकी बहन सुमन जो बी.ए. तक पढ़ी है, अपने भाईको न्याय दिलानेके लिए पुलिस स्टेशन जातीहै, पर इन्सपेक्टर भाटकारके खिलाफ कुछभी करनेसे मना कर देताहै और कहताहै यह दंडनीय अपराध नहीं है। पुलिस कुछ नहीं कर सकती। तब अंधे कानूनसे, कानूनन सुमन न्याय प्राप्त नहीं कर सकती, तब सुमन कानून ही नहीं न्याय भी अपने हाथमें ले लेतीहै। पुलिस स्टेशनके सामने, इन्सपेक्टर की उपस्थितिमें उस भाटकारको आता देख अपनी चप्पल उतारकर चप्पलसे उसकी पिटाई करती है। फिर सुमन उस पुलिसवालेसे कहतीहै—"कर सकते हो तो ऐरेस्ट करो। पर मैं जानतीहूं यह तो सामान्य खरोंचे हैं नहीं इन्सपेक्टर? यह दण्डनीय अपराध नहीं है। आप मेरा कुछ नहीं कर सकते।"

ऐसे ही अंधे कानूनकी कहानी "पाशाणभुंयार" (पाषाणी सुरंग) कहानीमें भी है। इस सुरंगमें पत्थरोंकी नगरीमें गरीबोंकी सुननेवाला कोई है ही नहीं। कानून पैसोंसे खरीदा जाताहै पर गरीबोंके पास पैसा ही नहीं है, 'अंधेर नगरी' और गुंडा राज्य, यही कानून है।

कहानीकारने सैनिक जीवन बिताया है, उस परिवेशको वह कैसे भूला सकताहै! "तुम वापस कैसे आये?" (तूं पर्तो कसो आयलो?)—कहानीमें मांका जो चित्र उभरकर आताहै वह अत्यंत गौरवपूर्ण है। अपना बेटा भागकर आयाहै यह जानतेही वह उसे खाना खिलाकर वापस भेज देतीहै। जो मां अपने बेटे की राह तकते तकते थक जातीहै, स्वयं बीमार है, पर बेटा भागकर आये, अपना नाम गंवाये, कुलका गौरव न बढ़ाये ऐसा बेटा उस स्वाभिमानिनीको स्वीकार्य नहीं है। सैनिकको ट्रेनिंगकी कठिनाइयोंका सामना करना चाहिये तथा देश और समाजकी रक्षा करनी चाहिये। ऐसेही "शारपिशें" (पागल) कहानीमें वही परिवेश है पर कहानी समाजके वातावरणकी बन गयीहै।

तरंगां कहानी संग्रहमें कुछ मिलाकर सत्रह कहानियां हैं। सभी अधिकतर समाजका यथार्थ चित्रण है पर है व्यक्ति चित्रण, जैसे 'वितराग' 'इपरित', 'मेर', 'तळमळ' 'पुण्याय' 'पातक', 'कालखां' 'किरणां' आदि। इनकी प्रकृतिको देखा जाये तो उनमें विविधताका अभाव खटकताहै। जिस तानेबानेको बुनकर कहानियां चलतीहैं वे सामान्य जनमें से कुछको केन्द्रमें रखकर चलतीहै जो मुख्य पात्र है उसीका चरित्र-चित्रण करती है पर परिवेशकी निर्मिति नहीं होती। कहानीकार चरित्र उभारनेमें ही संलग्न है। दायरा भी बहुत सीमित-सा है। मानवीय जीवन विविध आयामी है तो कहानी एक आयामी कैसे हो सकतीहै? प्रत्येक भाषाका साहित्य प्रादेशिक तो होताही है, पर यदि यह मर्यादा बनतीहै तो उसे तोड़ना अत्यंत आवश्यक होताहै।

इसी प्रकार संवेदनाका स्तर भी सतही है। कहानी चाहे अनुभूत सत्य हो या भोगा हुआ यथार्थ, पर जबतक अनुभव सत्य अभिव्यंजनामें ढलकर साहित्यमें रचनात्मक,

ग्रन्थनके रूपमें व्यक्त नहीं हो, तबतक प्रभावात्मक भी नहीं होता। कोंकणी कहानियोंका विश्व बहुत कम स्पंदन दे पाताहै। कोईभी कहानी, संवेदनात्मक रचनाधर्मिताकी कसौटीपर बहुत कम खरी उतरतीहै। यह रचनाकार भी अपवाद नहीं है।

हिंदीकी कहानी-यात्रा विभिन्न रूपोंमें से निकली है। नये नये कथ्य और शिल्पगत प्रयोग देखे जा सकते हैं, वैसे प्रयोग कोंकणी कहानियोंमें दृष्टिगोचर नहीं होते। कथ्यगत, शिल्पगत वस्तुगत रूप एक दूसरेसे संबद्ध हैं। भाव जगत्में परिवर्तनके बिना शिल्पगत परिवर्तन भी संभव नहीं है। रोमानी-बोधसे कोंकणी कहानीकार अभी बाहर नहीं आ पायाहै। विद्रोहका स्वर कहीं-कहीं कुछ मात्र में चित्रित होताहै। चिन्तनभी सतही है। तनाव होते हुएभी निरूपण नहीं है

गोवामें पुर्तगाली शासन ४५१ वर्ष तक रहा। विदेशी शासन होते हुएभी विदेशी दर्शनका प्रभाव गोवाके साहित्य-जगत्में दिखायी नहीं देता। मनोवैज्ञानिक चिन्तन, मार्क्सवादी चिन्तन, अस्तित्ववादी मानववादी किसीभी प्रकारकी आधुनिक चिन्तनपरक दृष्टि और उसका निरूपण इस कहानी संग्रहमें भी नहीं दिखता। मूल्यों और नैतिकताके परिवर्तित स्वरूपका भी रूपायन नहीं है।

भाषाकी दृष्टिसे सपाटबयानी है। चित्रांकन तो मिलताहै पर वातावरणकी निर्मिति नहीं है। बर्फका गिरना, उसका वह ठंडापन उसके साथ प्रकृतिकी निस्तब्धता, नीरवताका वर्णन नहीं मिलता।

कोंकणी भाषाके साहित्यिक विकासको देखा जाये तो वह पूरी कोंकणी-पट्टीमें बोली और लिखी जाती है। कन्नडभाषी क्षेत्रमें यह कन्नड लिपिमें और मलयाली क्षेत्रमें यह मलयाळी लिपिमें लिखी जातीहै। गोवामें नागरी और रोमी लिपिमें लिखी जातीहै। आज भी यह स्थिति है। जब कारवाड़, मेंग्लोर, कोचीन और गोवा चारों स्थानोंका साहित्यिक विश्लेषण किया जायेगा, साहित्यिक आदान-प्रदान होगा तब संभवत: विषयोंकी विविधताका अभाव, जो आज गोवामें लिखित साहित्यपर छायाहै वह दूर होगा। कन्नड लिपिकी कोंकणीका इतिहास और उसकी साहित्यिक परम्परा गोवाकी तुलनामें अधिक परिपक्व है। कहानी और उपन्यास परम्परा वहाँ अधिक पनपीहै। यदि रोमी लिपिके साहित्यको नागरी लिपिमें लाया जाये तोभी भाषा संपन्न होगी और साहित्यिक विकासका रूप समृद्ध होगा। विषयवस्तु और रूप नया आकार लेंगे।

"तरंगां" की तरंगोंको सही रूपमें रूपाकार देनेके लिए सतही तरंगोंके साथ जो कुछ सतहके नीचे घुमड़ रहाहै उसका साक्षात्कार भी करना आवश्यक है। पूरे कहानी-संग्रहको अभिव्यंजना शिल्पमें विश्लेषित करतेहैं तब व्यक्ति चित्रणोंके अतिरिक्त कुछ विशेष प्राप्त नहीं होता। फिरभी कहानी-संग्रहका मूल्य कम नहीं होता, क्योंकि प्रत्येक भाषाके विकासप्रवाहमें यह क्रम चलता रहताहै। कोंकणी साहित्यमें भी ये सभी प्रवृत्तियाँ उदित होकर नया साहित्यिक रूप संवारेगी इसमें संदेह नहीं। ☐

ग्राम्य जीवनका प्रामाणिक बाह्यान्तर निरूपण

मधुरान्तकम् राजाराम् कथलु

कहानीकार : मधुरान्तकम् राजाराम

समीक्षक : भीमसेन निर्मल

मधुरान्तकम् राजाराम पिछले चालीस वर्षसे निरन्तर कहानियां लिखते आ रहेहैं। वे रायलसीमा क्षेत्रके चित्तूरु जिलेके 'दामल चेरुवु' गाँवके हाईस्कूल में अध्यापक थे। उनकी वेषभूषा भी ग्रामीण क्षेत्रके 'अय्यवारु' या 'पन्तुलु गारु' (अध्यापक) की है। खद्दरकी धोती, खद्दरका कुरता (टखनों तक, पुराने ढंग की बण्डीके समान), सास-बहू बार्डर (एक तरफ लाल तो दूसरी तरफ हरा रंग) वाला उत्तरीय, गांवके ही बने चप्पल—यह हैं उनकी वेशभूषा। गोल और गंजा सिर, सांवला रंग और तनिक मुटापा लिये राजाराममें लेशमात्रभी गर्व नहीं है। आजसे बीस वर्ष पूर्व उनकी कहानियोंकी आन्ध्रप्रदेश साहित्य अकादमीने पुरस्कृत कियाथा। इस वर्ष केन्द्र साहित्य अकादमीने उनके कहानी-संकलनको पुरस्कृतकर अपनी गुण-ग्राहकताका परिचय दियाहै।

श्री मधुरान्तकम् राजारामजीका जन्म ५-१०-१९३० को चित्तूरु जिलेके 'मोगराल' नामक गांवमें हुआथा। चित्तूरुमें ही उनकी शिक्षा-दीक्षा संपन्न हुई। तदनन्तर वे सरकारी पाठशालामें अध्यापक बने। सम्प्रति 'दामल चेरुवु' में ही बस गयेहैं। वहींसे नौकरी से अवकाश ग्रहण किया।

राजारामजी सन् १९५० में लेखन कार्यमें प्रवृत्त हुए। इन ४०-४४ वर्षोंमें इनकी लगभग ३०० कहानियां, दो उपन्यास, ३-४ नवलिकाएं (छोटे उपन्यास), कुछ एकांकी, कुछ गेय पद, लेख आदि प्रकाशित हुए हैं। परन्तु उनकी ख्याति कथाकारके रूपमें ही है।

राजारामजीके प्रकाशित कहानी-संकलन हैं : वर्षिंचिन मेघं (बरसा मेघ), प्राणदाता, तानु वेलिगिंचिन दीपालु (अपने द्वारा सुलगाये दीप) पुनर्नवम्; कल्याण किंकिणि, कम्म तेम्मेर (सुगन्धपूर्ण बयार), वक्रगतुलु (वक्र गतियां), विनोद प्रदर्शन आदि।

राजारामजीकी १९५८ से १९९१ के मध्य लिखी गयी ४० कहानियोंको चुनकर 'मधुरान्तकम् राजाराम् कथलु' शीर्षकसे एक संकलन सन् १९९१ में प्रकाशित किया गया। इस संकलनमें कहानियोंको कालक्रमसे न देकर, अव्यवस्थित रूपसे प्रस्तुत किया गयाहै। इससे लेखककी विचार-धारामें अथवा शैलीमें आये क्रमिक विकासको समझनेमें बाधा पहुंचतीहै जो इस संकलन की सबसे बड़ी कमी है। प्रत्येक कहानीके अन्तमें पत्रिकाका नाम प्रकाशन वर्षके साथ दिया गयाहै।

आन्ध्रप्रदेश साहित्य अकादमीने सफल कहानीकारके रूपमें, सन् १९६८ में श्रीराजारामजीका सम्मान किया।

आं. प्र. साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित 'तेलुगु की प्रारंभिक कहानियाँ' नामक पुस्तकका संपादन राजारामजीने सफलतापूर्वक किया।

तमिलकी रचनाओंके तेलुगु अनुवाद करनेके कारण, तंजाऊर स्थित तमिल विश्वविद्यालयने इनको पुरस्कृत कियाथा।

राजारामकी कतिपय कहानियाँ तमिल, कन्नड़, हिन्दी, और अंग्रेजी भाषाओंमें अनूदित-प्रकाशित हुई हैं। 'चिन्न प्रपंचम्-सिरिवाड़ा' (छोटा संसार—

सम्पत्तिकी निधि) नामक उपन्यासका रूसी भाषामें अनुवाद प्रकाशित हुआहै ।

अपनी गम्भीर परन्तु सरल शैलीके कारण, तेलुगु, कहानी क्षेत्रमें राजारामके विशिष्ट योगदानकी भूरि-भूरि प्रशंसा हुईहै ।

राजारामने मध्यवर्गके बहुमुखी आयामोंका सफलतापूर्वक चित्रण कियाहै । उनके एक कहानी-संकलन की भूमिका लिखते हुए, सुप्रसिद्ध कहानीकार स्व. पालगुम्मि पद्मराजु [जिनकी 'गालिवाना' (आंधी) नामक कहानीको विश्व-कथा-प्रतियोगितामें द्वितीय पुरस्कार मिलाथा] ने राजारामकी कहानियोंको एक सार्थक विशेषण दियाथा, 'बातें करना सीखा मध्यवर्ग'। 'मध्यवर्ग स्वाभाविक लोभ, असंगत इच्छाएं, पागल कल्पनाएं, सुख-दुःख, आकर्षण-विकर्षण मंद मुस्कानके साथ चित्रित कियाहैं राजारामने । रामारामकी कहानियोंको पढ़ते हुए, यह नहीं लगता कि 'ये लोगभी कितने पगले हैं, परन्तु लगताहै कि 'हम कितने पगले है।' राजारामकी कहानियोंमें बहुधा 'मैं' एक पात्रके रूपमें आताहै । वह पूर्णरूपेण मध्यवर्गका होकर भी तनिक तटस्थ रहकर, घटनाओंकी नाटकीयताको और विचित्रताको उभारकर बताताहै ।···इन कहानियोंको पढ़ते हुए हम अपने आपको खूब समझ सकतेहैं । अपनी पागल प्रवृत्तियोंको देख-हंस ले सकतेहैं, अपने अविवेक को देखकर अपनेपर दया कर सकते हैं । मेरे विचारसे कथा-रचनाका इससे बढ़कर दूसरा प्रयोजन नहीं हो सकता।' पा. प. ने अपनी कहानियोंमें मध्यवर्गीय समाजके पात्रोंके मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत कियेथे तो राजाराम मध्यवर्गीय पात्रोंके सामाजिक पहलुओं (वास्तविकता अधिक और कल्पनाकी पुट कम) को प्रस्तुत कर रहेहैं ।

पुस्तकके 'निवेदन' में स्वयं राजारामने यों लिखा है 'मैं रायलसीमा क्षेत्रका ग्रामीण लेखक हूं । वहांके गांव, वहांके, लोग, उनके भौतिक उपद्रव (ईतियां), राग-द्वेष, संयोग-वियोग आदिका अभिव्यक्तीकरण अपने विधा विवेक, सामर्थ्यके अनुरूप यथासाध्य रूपमें करता आ रहाहूं ।···जब मेरी प्रकाशित पहली कहानी के लिए पारिश्रमिक मिला तो मैं आश्चर्यचकित रह गया। क्योंकि प्रकाशित करना ही नहीं, रचनाके लिए पत्रिकाएं लेखकको पारिश्रमिक भी देतीहैं, इस पर मुझे विश्वास नहीं था।···मैंने यहभी नहीं सोचा कि मेरे लेखन-कार्यसे समाजको कुछ लाभ होगा । अपने जीवन के तात्पर्यको खोजनेके लिए, जीवनको प्रयोजनवान् बनानेके लिए मैंने पढ़ने-लिखनेको 'समय बिताने' के रूप में स्वीकार कियाहै।···वस्तु-सूत्रोंको प्रदान करनेवाला है समाज, शिल्पके बारेमें बतानेवाला है साहित्य। किसी भी कलाका परमार्थ लोककल्याण है । पैनी दृष्टिसे समाजका परिशीलन-अनुशीलन करते हुए, श्रद्धाके साथ साहित्यका अध्ययन करते हुए, समाजके श्रेयको ही अपना ध्येय मानकर, अपने अस्तित्वको तथा अपने जीवनको सार्थक बनानेके लिए लेखकको लिखना चाहिये, इसी दृष्टिकोणसे वह लिखताहै, ऐसा मेरा विचार है।···ग्रामीण क्षेत्रके निम्न मध्यवर्गके परिवार में जन्म लेकर, बचपन सारा गांवोंमें ही बिताकर, हाईस्कूलकी पढ़ाईके लिए बस्तीमें कदम रखकर, तदनन्तर अध्यापकके पेशेको स्वीकारकर, नौकरीके कारण गांवोंमें तथा बस्तियोंमें सारा जीवन बिताने वाले एक व्यक्तिने चालीस वर्षोंकी सुदीर्घ अवधिमें जो कहानियां लिखीहैं, उनमें से कुछ आप पढ़ने जा रहेहैं।' यह है लेखकका निवेदन ।

गांवोंके वातावरणने राजारामके मनमें साहित्यके प्रति अभिरुचि उत्पन्न की, पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित तत्कालीन कहानियोंने उन्हें लिखनेकी प्रेरणा दी । 'लिख सकताहूं, ऐसा आत्म-विश्वास उत्पन्न हो जाने के बाद, क्यों लिखना चाहिये या क्यों लिख रहाहूं, यह आत्म विचिकित्सा उत्पन्न हुई ।' इस प्रश्नका उत्तर उन्हींकी एक कहानीमें प्राप्त हो जाना, संयोगकी बात है । 'पुनर्नवम्' (१९५९) नामक कहानीमें शेषगिरि नामक एक लेखक एक मकानके, सड़ककी ओरवाले कमरेमें किरायेपर रहताहैं । इस मकानके मालिककी लड़कीका नाम लक्ष्मी है। वह बाल-विधवा है। सौतेली माता इसे सता-सताकर, नरकका निरन्तर स्मरण कराती हैं । सौतेली मां पैसेके लिए उसे अन्य पुरुषोंके पास भेजना चाहतीहै । यहांतक लिखनेके बाद शेषगिरि आगे लिख नहीं सकता । इतनेमें मालिकिनकी लड़की को देखनेके लिए (ब्याहका रिश्ता जोड़नेके लिए) भानुमूर्ति नामक युवक आताहै । यह अधूरी कहानी उसके हाथ लग जातीहै। उस अधूरी कहानीको पढ़कर, भानुमूर्ति मालिकिनकी लड़कीको स्वीकार न कर, मालिकिनकी सौतेली लड़की लक्ष्मीके साथ विवाहकर लेताहै। नये दम्पती शेषगिरिको अपने यहां बुलातेहैं।

फूलोंभरी थालीमें वह अधूरी कहानी रख, उसके साथ एक कलम भी भेंट स्वरूप देतेहैं। लेखन-कार्यके प्रयोजनसे निराश शेषगिरिमें नया उत्साह भर जाताई और वह पुन: लेखन-कार्यमें प्रवृत्त हो जाताहै।

स्वयं लेखक (राजाराम) स्वीकार करतेहैं कि यह आदर्श पूर्ण रूपमें आदर्शको प्रस्तुत करनेवाली कथा है। उनका कथन है कि प्रत्येक लेखकके समक्ष कभी न कभी यह प्रश्न उठ खड़ा होताहै कि तुम जो चाहतेहो, वह लिखोगे या पाठककी इच्छा-पूर्ति करनेवाली रचनाएं लिखोगे। 'धर्मग्लानि' (१९६७) नामक कहानीमें कहानीके नायक व्यासमूर्तिके समक्ष यही प्रश्न उठ खड़ा होताहै। व्यासमूर्तिके विचार (राजारामके ही मान लीजिये) इस प्रकार हैं:—'चौराहे पर आपने स्थान-दिशा-निर्देशक पट्टिकाओंको देखा होगा। वह अमुक स्थान जानेके लिए दिशाको सूचित करताहै। तदनुसार जानेसे हम निर्दिष्ट स्थान पहुंच सकतेहैं। एक बार अंधड़के कारण वह पट्टिका गिर गयी। उसे दुबारा गाड़ा गया, उलटे-पुलटे ढंगसे। तदनुसार जानेसे यात्री कभी अपने निर्दिष्ट स्थानपर नहीं पहुंच सकता। इसलिए उस गलत पट्टिकाकी चिन्ता न करते हुए, अपनी इच्छाके अनुसार चलना चाहिये। इसी प्रकार लेखकको भी पाठकोंके गलत-सलत निर्देशों की चिन्ता न कर, अपने मनके अनुकूल, आत्मविश्वास के साथ लिखना चाहिये।

इसलिए राजारामजीने अपने लिए एक नियम बना लियाहै कि 'लिखनेकी कुछ प्रेरणा मिलनेपर ही, अपना कथ्य समाजको परामर्शके रूपमें अथवा चेतावनी के रूपमें प्रस्तुत करेंगे, इस विश्वासके कारण ही मैं कुछ लिखताहूं। मेरा विश्वास है कि मेरी सभी कहानियां इस कसौटीपर खरी उतरेंगी।' वे लिखतेहैं कि 'मैं यह नहीं लिख सकता कि मेरी कहानियोंके पात्र, प्रदेश, परिस्थितियां, घटनाएं कल्पित हैं। क्योंकि मेरी कहानियोंमें मेरे जाने-पहचाने पात्र, संघटनाएं, समस्याएं ही चित्रित हुईहैं। यथार्थका पुट अधिक और कल्पनाका पुट बहुत कम है।

प्रारम्भमें आदर्शवादी कहानियां लिखनेवाले राजारामने कालक्रमसे यथार्थवादको अपनाया और वर्तमान समाजके, वह भी मध्यवर्गीय (महानगरीय नहीं, गांवों और बस्तियोंके) समाजके जीवन्त एवं वास्तविक चित्र प्रस्तुत करनेमें अपेक्षाकृत सफलता प्राप्त की। तेलुगुके कथा साहित्यके क्षेत्रमें राजाराम एक विशिष्ट हस्ताक्षर हैं।

प्रस्तुत कहानी संकलनमें कुल मिलाकर ४० कहानियां हैं। सभी कहानियां सामाजिक, वह भी मध्यवर्ग से संबंधित हैं। ये कहानियां मात्र समय काटनेके लिए पढ़नेवालोंके लिए नहीं हैं। नित्यके जीवनमें जिन घटनाओंका, जिन व्यक्तियोंका हमें सामना करना पड़ता है, उनसे प्रतिस्पन्दित होनेवाली मानसिकता इन कहानियोंमें परिलक्षित होतीहै। अपनी अनुभूति तथा उसकी अभिव्यक्ति द्वारा पाठकको प्रभावित कर सकने की अनुपम सामर्थ्य राजारामकी कलममें है। कुछ कहानियां व्यंग्य और हास्य प्रधान है तो कुछमें सहानुभूति और आत्मीयता। कुछ कहानियोंमें जीवनका ऐसा यथार्थ प्रस्तुत किया गयाहै, जो हमारे लिए अपरिचित नहीं है, पर हमारा ध्यान उसकी ओर नहीं गया। यथार्थका यह चित्रण हमें चकित कर देताहै। कुछ कहानियां हमें सोचनेके लिए प्रेरित करतीहैं तो कुछमें सीधा संदेश या उपदेश है। इस प्रकार अनेक दृष्टिकोणोंसे जीवनका चित्रण करनेवाली ये कहानियां रंग-बिरंगे फूलोंसे सजाये गये गुलदस्तेका स्मरण दिलाती हैं। किसी आलोचककी इस उक्तिको —

'कथा मधुर मधुभांडम्
मधुरांतकं राजाराम्।'[1]

सार्थक करतीहैं ये चालीस कहानियां।

संकलनकी पहली कहानीका नाम है 'सर्कस-डेरा' (सर्कसका तंबू)। भीड़में घुसकर, बड़े साहसके साथ टिकट प्राप्तकर, उन्हें अधिक मूल्यपर बेचनेको अपनी जीविकाका साधन बनानेवाला 'नागुलु' अपने पैरके कटकर, खूनके बहनेकी चिन्ता नहीं करता। वह कहता है कि मेरा पिता कुएं खोदकर, मिट्टी ढोताथा। एक दिन वही काम करते हुए गिरकर मर गया। पांच मंजिलवाले मकानके ऊपरी छत तक ईंट ढोनेवाली मजदूरिन, तारपर चलनेवाली लड़कीसे कम साहसी नहीं है। इस प्रकारकी चर्चामें लेखक यह ध्वनित करताहै कि सर्कस-फीटमें और साधारण मानवके जीविकोपार्जनके साधनोंमें साम्य है। अन्तमें शेरके मुंह में सिर रखनेवाले मेमनेको देखकर कहानीकार आश्चर्य

---

१. कथा चक्रवर्ती मधुरांतकम् शीर्षक लेख—श्री दंतुर्ति चिन रामचन्द्रराव।

प्रकट करते हुए कहताहै कि 'मैमनने शेरका विश्वास कैसे किया ?' नागुलुका यह कथन कि 'वे तो जानवर हैं न।' लेखकको लगताहै किसीने चाँटा जड़ दिया। एक घटना याद आतीहै जबकि पहली बार नागुलूको दस रुपयेका नोट--फुटकर रुपयोंके लिए—देकर, उस पर विश्वास न होनेसे, उद्विग्न होकर, उसे ढूंढ़ने निकल पड़ाथा। इस घटनाके याद आनेपर, वह लज्जा से सिर झुका लेताहै। सह-मानवपर विश्वास न रख सकनेवाले मानव-मनस्तत्त्वपर यह करारा व्यंग्य है।

'जिसका भरोसा नहीं किया जा सकता' भी इसी प्रकारकी कहानी है। जेबमें से सचमुच रुपये खोकर, रोनेवाले सुब्बय्याकी बातोंपर कोई विश्वास नहीं करता। अन्तमें उसे बचानेवाला भी कमीशन खाये बगैर उसे छोड़ता नहीं।

'रेलयात्रा' नामक कहानीमें पाकेट-मारके हाथ अपने रुपये खोनेवाले मास्टर साहबके प्रति सहानुभूति दिखानेवाले सहयात्री एक गंवार-गरीब आदमीको दोषी ठहरातेहैं, उसे गाली देतेहैं और पीटते भी हैं। वास्तविक चोर कोई और था। इस मार-पीट और होहल्लेमें 'एल्लय्या' के हाथ एक पर्स लगतीहै और वह अपनेको बचानेके लिए, वह पर्स मास्टर साहबको दे देताहै। मास्टर साहबके अस्सी रुपये (दस-दसके आठ) गये थे, अब उनके हाथमें अतिरिक्त एक पचासका नोट और एक बीसका नोट—सत्तर रुपये आ गये। वे चुपचाप उन्हें जेबमें रख लेतेहैं। लोग एल्लय्याको रेलसे उतारकर प्लेटफार्मपर ढकेल देतेहैं। पैसे वालोंके साथ ही यह दुनियां है। इनमें वास्तविक चोर कौन है?

इस प्रकार सामाजिक व्यंग्य करनेवाली और कतिपय कहानियां हैं।

पारिवारिक जीवनमें सामंजस्य पारस्परिक अनुकूलता और सौहार्दकी आवश्यकताको सूचित करने वाली कहानियोंमें 'वृन्दावनन्' श्रेष्ठ कहानी हैं। एक धनी परिवार, चार लड़के, बहुएं और उनकी सन्तानें। सभी सुख-सुविधाओंसे युक्त उस घरमें आनन्दके स्थान पर स्तब्धता छायी रहतीहै। सभी लोग अपने-अपने कामोंमें इतने व्यस्त रहतेहैं कि घरके अन्य सदस्योंको समझने और उनके प्रति आत्मीयताका भाव व्यक्त करनेके लिए समय ही नहीं रहता। कान्वेंटमें पढ़ने वाली सात सालकी राधिका ज्वरके कारण घर आती है। ज्वरके कारण उसे एकाध दिन मांके साथ रहनेका अवसर मिलताहै। बादमें फिर वही एकाकी-भाव। इस कहानीमें आधुनिक सभ्यताके प्रेमशून्य स्वर्ण-मंदिरमें जकड़े हुए लोगोंको मुक्ति कब मिलेगी ? इस प्रश्नका उत्तर पाठकोंपर छोड़ दिया गयाहै। जीवनमें पैसा ही सबकुछ नहीं है, सुख-भोगके साधन ही सबकुछ नहीं हैं। इन सबसे बड़ी वस्तु सौहार्द है, एक दूसरेको समझकर, आत्मीयतापूर्वक जीवनयापन करनाहै। मानवताको भूलकर, भीड़में एकाकी बनकर रहनेवाले आधुनिक सभ्य मानवको यह कहानी सोचनेके लिए विवश करतीहै।

परिवर्तित होनेवाले जीवन-विधान, जीवन-मूल्य आदिके कारण जीवनमें परिलक्षित होनेवाले विरोधाभासोंको उभारकर दिखानेवाली कहानी है 'जीवन प्रहसनम्'। गांवके मुखिया लोग पांडवोंकी द्यूतकथाको दिनमें कथावाचक द्वारा सुनानेकी और रातको नाटक के रूपमें प्रदर्शित करनेकी व्यवस्था करातेहैं। दिन भर पांडवोंकी कथाका वाचनकर, कथावाचक रातके समय नाटक देखने आताहै। जहां नाटक खेला जानेवाला था, उसके चारों ओर बड़ी भीड़ थी, बड़ा कोलाहल था। इसे देख वह चकित हो जाताहै। वहां भांति-भांतिके आधुनिक द्यूत-क्रीड़ाओंका आयोजन था। चकित होकर, वह व्यवस्थापकोंसे पूछताहै कि ये सब क्यों ? उत्तर मिलताहै कि इनसे प्राप्त होनेवाली राशि से ही कथावाचक और नाटकका आयोजन किया जाता है। वाह री दुनियां!

देश क्या, विश्वभरमें परिव्याप्त कथनी और करनीके अन्तरको राजारामने प्रभावशाली ढंगसे चित्रित कियाहै।

पारिवारिक जीवनमें पति और पत्नीके संबंधोंको चित्रित करनेवाली भी कतिपय कहानियां हैं। इनमें 'गाजु दीगलु-गालिपटालु' उल्लेखनीय है। पति पत्नी को आश्रय देनेवाला है और उसकी सुरक्षाके लिए उत्तरदायी है जैसे दीपककी बत्तीके लिए शीशेकी चिमनी। पति पतंग है तो पत्नी उसे स्थिरता प्रदान करनेवाली डोरी है।

'एडारि कोयिला' (रेगिस्तानका कोयल) विदेशों में (अमरीका) जाकर, भारत देश एवं भारतीयताको भूलनेवाले युवकोंको गुणपाठ सिखानेवाली रचना है।

इस प्रकार इस संकलनकी कथाएं मध्यवर्गके विभिन्न रूपोंका, समस्याओंका यथार्थ चित्रण करतीहैं

किन्तु उक्त यथार्थके पीछे आदर्शका पुट अवश्य रहता है। मध्यवर्गीय जीवनको समग्र रूपमें देखकर, चित्रित करनेकी राजारामकी क्षमता अद्वितीय है।

रचनाको पवित्र कर्तव्य माननेवाले श्री राजाराम ने युवा पीढ़ीके लेखकोंको संदेश देते हुए कहाहै कि 'लेखकका ध्येय धन कमाना नहीं होना चाहिये। उसे साहित्यके प्रति आदरका भाव रखना चाहिये। लेखक को प्रथमत: समाजका श्रद्धा-निष्ठाके साथ परिशीलन करना चाहिये। जनतासे सच्चा प्रेम हो तभी वह कहानी लिख सकताहै। जनता जिन समस्याओंका सामना कर रहीहै, उनके मूलभूत कारणोंको खोजना चाहिये। समयसे आगे रहना चाहिये। रचना-कार्यको पवित्र कर्तव्य मानना चाहिये। रचनाको संघर्षका कारण नहीं बनना चाहिये। रचनाका ध्येय समाज-कल्याण होना चाहिये। मानवमें निहित मानवताको उभारनेवाला होना चाहिये।

[साक्षात्कारसे : श्री तव्वा ओबुलरेड्डी और तोटा राममोहन) —अपने मनमें निश्चित संकल्पके अनुसार, समाज-कल्याणके लिए कहानी-रचनाको साधनके रूपमें ग्रहण करनेवाले राजारामने पिछले ४०-४५ वर्षोंसे तेलुगु कहानीके क्षेत्रको सुसम्पन्न किया है। तेलुगु कथा क्षेत्रमें राजारामके स्थानकी तुलना प्रेमचन्दसे कीजा सकतीहै।] □

कहानी : मैथिली

समकालीन मानवीय जीवनके बहुरंगी यथार्थ

सामाक पौती

कहानीकार : पंडित गोविन्द झा **समीक्षक : डॉ. विपिनबिहारी ठाकुर**

पंडित गोविन्द झा आधुनिक मैथिली साहित्यके एक मूर्धन्य एवं वरेण्य रचनाकार माने जातेहैं जिनके कृतित्वमें विधागत वैविध्यके दर्शन होतेहैं। उन्होंने जहां एक ओर भाषाशास्त्र, काव्यशास्त्र, व्याकरण आदिसे सम्बद्ध गम्भीर मौलिक ग्रन्थोंका सृजन कियाहै, वहीं दूसरी ओर कविता और कथाके क्षेत्रमें भी अपनी महत्त्वपूर्ण रचनाधर्मिताका परिचय दियाहै। दूसरे शब्दोंमें, रचनाकार गोविन्द झाने जहाँ विविध विषयोंसे सम्बद्ध गद्य-लेखनमें अपने गहन वैदुष्य और पांडित्यका परिचय दियाहै, वहीं कविता और कहानी जैसी सृजनात्मक विधाओंमें अपने कोमल और संवेदनशील हृदयकी छाप छोड़ीहै।

'सामाक पौती' पंडित गोविन्द झाकी नवप्रकाशित कथाकृति है जिसमें अबतक की प्रमुख उनकी अठारह कहानियोंका संकलन किया गयाहै। इन कहानियोंका रचनाकाल विगत चार दशकोंसे अधिकमें फैला हुआहै। प्रस्तुत कृतिकी भूमिकामें गोविन्द झाने स्पष्टत: निरूपित कियाहै कि रचनाकारके रूपमें उनकी प्रतिबद्धता किसी वाद, प्रवृत्ति या परम्परासे नहीं रही है। अपने परिवेशके यथार्थ जीवनका दर्शन करते समय यदि उनके मानसमें कोई भावोत्तेजक बिम्ब उतर जाताहै, तब वे उसकी अभिव्यक्तिके निमित्त कथाकी

रचना करतेहैं। दूसरे शब्दोंमें, कथा-सृजनके सन्दर्भमें उनकी प्रतिबद्धता मात्र सामाजिक यथार्थके प्रति ही बनी रहतीहैं और इसी प्रतिबद्धताके कारण वे कथा-रचना किया करतेहैं।

'सामाक पौती' पंडित गोविन्द झाका प्रतिनिधि कथा संग्रह है जिसमें उनकी प्राय: सभी चर्चित और महत्त्वपूर्ण कहानियां संकलित की गयीहैं। 'फूलक चोट', 'अन्तिम एकन्दी', 'सामाक पौती', 'पातक मनुक्ख', 'भीख', 'तोहर अभाग हुनक नहि दोस', 'दू बाट : एक खत्ता', 'अयाचीक डीह पर' आदि कहानियां कथाकारकी सबल और प्रभावोत्पादक रचनाएं मानीजा सकतीहैं क्योंकि इनमें समकालीन मानवीय जीवनके बहुरंगी यथार्थोंका अंकन हुआहै। इन कहानियोंके अवलोकनसे यह प्रतीत होताहै कि कथाकारने बड़ी पैनी दृष्टिसे वर्तमान जीवनकी सच्चाइयों और समस्याओंका अंकन करनेमें सफलता प्राप्त कीहै।

प्रस्तुत कथा संग्रहकी कुछ अतिविशिष्ट कहानियां ऐसी हैं जिनमें मानवीय सम्बन्धोंके ह्रास अथवा विघटन पर प्रकाश डाला गयाहै। इस दृष्टिसे 'सामाक पौती' सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कहानी मानीजा सकतीहै जिसमें बहनके अनमेल विवाहके कारण भाई बहनके बीचकी सम्बन्धहीनताका अंकन किया गयाहै। इस कहानीमें जगमायाके अनमेल विवाहकी दारुण पीड़ाको उभारा गयाहै। बाल्यकालमें ही जगमायाके माता-पिताका निधन हो जाताहै और कुछही समयके बाद पिताके द्वारा लिये गये ऋणके बोझके कारण उसका विवाह एक अधेड़ उम्रके सम्पन्न व्यक्तिसे करा दिया जाता है। छोटा भाई विवश और कातर भावसे अपनी बहनके प्रति होनेवाले इस भीषण अन्यायको देखता रहताहै। इस विवाहके बारह वर्षोंके उपरान्त भी दोनों भाई-बहनका कभी मिलन नहीं हो पाताहै। प्रस्तुत कहानीमें जगमायाके मनका द्वन्द्व दो रूपोंमें उभराहै, कभी तो वह अपने प्रति नूनू भाईकी विमुखताको लेकर क्षुब्ध होतीहै और कभी भाईके प्रति स्वयं अपने द्वारा दिखायी गयी उदासीनताके कारण व्यथित होतीहै। इस कहानीका एक दूसरा पक्ष भी है। नूनू भाईका दुर्भाग्य यह है कि बारह वर्षोंकी दीर्घ अवधिमें कभी भूलकर भी अपनी बहनसे मिलने उसकी ससुराल नहीं जा पाताहै क्योंकि उसके मनमें रह-रहकर यह भावना कचोट पैदा करती रहतीहै कि उसने जान-बूझकर अपनी बहनकी हत्या कीहै। वस्तुत: कथाकारने इस कहानीमें सूक्ष्मताके साथ यह निरूपित कियाहै कि आर्थिक समस्याके कारण विवशताकी स्थितिमें जगमायाका अनमेल विवाह होताहै जिसके परिणामस्वरूप दोनों भाई-बहनके बीच इतनी बड़ी भावनात्मक खाई आ उपस्थित होतीहै कि वे फिर कभी आपसमें मिल नहीं पाते। इस कहानीकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अनमेल विवाह जैसी विषम सामाजिक समस्याको लेकर यह पाठकोंके मनपर बहुत ही करुण प्रभाव छोड़तीहै।

इसी प्रकार 'फूलक चोट' कहानीमी आजकी भौतिकतावादी सभ्यताके बीच सहज मानवीय सम्बन्धों के लुप्त होते स्वरूपपर गहरी चोट करतीहै। कथानायक एक माध्यमिक विद्यालयका शिक्षक है जो पिताके पिंडदानके बाद गयासे लौटते हुए पटनामें रुककर भाई और भाभीसे मिलनेका प्रयास करताहै। दोपहरके समय वह अपने अफसर भाईके निवास स्थानपर पहुंचता है किन्तु उसकी भाभी उसपर बिल्कुल ही ध्यान नहीं देती। काफी समयके बाद उसके सामने बिस्कुटके साथ चाय रखी जातीहै। इसी क्रममें उसकी भाभी जहां एक ओर उसके बूढ़े होते रूपकी ओर इशारा करतीहै, वहीं दूसरी ओर वह अपने आकर्षक रूप-सौन्दर्यका प्रदर्शन करना नहीं भूलती। अन्तमें रात्रिके समय जब वह स्टीमरसे घरके लिए प्रस्थान कर रहा होताहै तब उसके मन में एकही भाव जगताहै कि यहां आनेपर उसे आत्मीयतापूर्ण भावके बदले एक दूरीका व्यवहार ही प्राप्त हुआ है। अत: यदि वह यहां न आता तो कहीं अच्छा होता क्योंकि वैसी स्थितिमें उसके मनपर चोट नहीं लगती।

'तोहर अभाग हुनक नहि दोस' भी संकलनकी एक प्रमुख कहानी मानीजा सकतीहै जिसमें पति-पत्नीके बीच व्याप्त भावनात्मक अलगाव और पारस्परिक व्यवहारमें व्याप्त कटुताका चित्रण हुआहै। इस कहानीमें पति बिंदेसर राय माध्यमिक विद्यालयका अध्यापक है जो घंटोंतक श्रम करके थका-मांदा घर लौटताहै पर उसकी पत्नी उसकी ओर थोड़ा भी ध्यान नहीं देती। अधेड़ उम्रके पति-पत्नीके बीच जिस प्रकार छोटी-छोटी बातों को लेकर कलह और झगड़े होते रहतेहैं उसमें यह स्पष्ट हो जाताहै कि इन दोनोंके बीच दाम्पत्य जीवनकी कोई समरसता नहीं बच पायीहै।

इस संकलनमें कुछ कहानियां ऐसी भी हैं जिनमें

वर्तमान सामाजिक परिवेशके बीच नारियोंकी कमजोर स्थितिका वर्णन किया गयाहै तथा उनके जीवनको आत्मनिर्भर बनानेके लिए कुछ उपयोगी मार्ग निर्देश भी प्रस्तुत किये गयेहैं। 'दू बाट : एक खत्ता' एक ऐसी ही कहानी है जिसमें दो युवतियोंके जीवनकी अभावपूर्ण स्थितियोंका विरोधात्मक ढंगसे अंकन किया गया है। ट्रेनके सफरमें एकही साथ शिक्षित और अशिक्षित दो युवतियां देखीजा रहीहैं। अशिक्षित युवती अपने भैंसुरके साथ ससुराल जा रहीहै, किन्तु छूत लगनेके भयसे भैंसुर उसे अपने डिब्बेमें बैठानेके बदले बगलके दूसरे डिब्बेमें चढ़ा देताहै। बरौनीसे गाड़ी खुलतीहै और दो स्टेशनके बादही उस युवतीकी अशिक्षा और अज्ञान का लाभ उठाकर कुछ असामाजिक ढंगके व्यक्ति उसे बीचके स्टेशनपर उतारकर अपने साथ ले जातेहैं। समस्तीपुर स्टेशन पहुंचनेपर जिस ढंगसे उसका भैंसुर विलाप करताहै उसको देखते हुए वहांपर उपस्थित लोगोंको स्थितिकी गम्भीरताका पता लगताहै। दूसरी ओर जो शिक्षित युवती है वह सम्पन्न और प्रतिष्ठित व्यक्ति सत्यानन्द बाबूकी पुत्री है और अपने विवाहके एक दिन पूर्व ही घर छोड़कर अपने प्रेमीके साथ भागी जा रहीहै। समस्तीपुर स्टेशनपर सत्यानन्द बाबू और वह देहाती अशिक्षित व्यक्ति दोनों ही एकही दयनीय स्थितिमें पहुंच जातेहैं। कथाकारने बड़ी बारीकीके साथ यह संकेत दियाहै कि जहां ग्रामीण स्त्रीके अपहरणके पीछे उसकी अशिक्षा मूल कारण है, वहीं दूसरी ओर सम्पन्न और शिक्षित युवतीके पलायन के पीछे उसकी अविवेकपूर्ण मानसिकता है जो उसे अमर्यादित स्थिति तक पहुंचातीहै। कहानीकारने वर्तमान सन्दर्भमें नारीकी संतुलित और मर्यादित स्थितिका निर्धारण करनेके लिए दोनों प्रकारकी अतियोंके बीच का रास्ता चुननेका परामर्श दियाहै।

इसी प्रकार 'पातक मनुक्ख' कहानीमें भी रूढ़िवादी समाजसे लड़नेवाली एक ग्रामीण स्त्रीके दृढ़ संकल्पका चित्रण किया गयाहै। ग्रामीण जीवनमें यह धारणा है कि यदि कोई व्यक्ति बारह वर्ष तक गांवसे अनुपस्थित रहताहै तब उसे मृत मान लिया जाताहै और एक ढंगमें पीपलके पत्तोंको लपेटकर उसका पुतला बनाया जाताहै और उस पुतलेका दाह-संस्कार कर दिया जाताहै। बतहुके बारह वर्ष तक लौटकर न आनेपर इसी परम्पराके अनुसार उसका श्राद्ध कर्म करनेकी योजना बनतीहै और जब उसकी पत्नी लालगंज वालीको इस तथ्यका पता चलताहै कि गांवके लोग उसके पतिके श्राद्ध कर्मके बदले उसकी बची-खुची जमीन भी उससे छीन लेना चाहतेहैं तो वह अपनेको उनके इस शोषणसे बचानेका निर्णय लेतीहै और गांव छोड़कर अन्यत्र चली जातीहै। कथाके अन्तमें यह संकेत दिया गयाहै कि भले ही किसी युगमें 'पर्णनर' होता हो, किन्तु आज तो चेतना सम्पन्न हाड़-मांसका मनुष्य हुआ करताहै। कथाकारने लालगंजवालीको ऐसी ही चेतना सम्पन्न स्त्रीके रूपमें दिखायाहै जो रूढ़िवादी ग्रामीण समाजके शोषणसे अपनेको बचानेका मार्ग ढूंढ लेतीहै।

संकलनकी अंतिम कहानी 'एक दुर्लभ जन्तुक खोज' में यह दिखाया गयाहै कि श्रीमती प्रेमलता सिंह प्रेम-विवाह करनेके कारण अपनी सासको दहेजकी भूखी दानवी मान रहीथी, किन्तु वह वस्तुतः प्रेम और स्नेहकी भूखी मानवी थी जिसके हृदयमें वात्सल्यका सागर लहराताथा।

आलोच्य कथा संग्रहमें कुछ ऐसी भी रचनाएं हैं जिनमें वर्तमान जीवनमें व्याप्त आर्थिक अभाव-ग्रस्तता की कसमसाहट और विवशताकी व्याप्ति मिलतीहै। 'अन्तिम एकन्नी', 'भीख', 'जनरल जौरक ऐंठन' इसी कोटिकी कहानियां मानीजा सकतीहैं। 'अन्तिम एकन्नी' शीर्षक कहानीमें मध्यवर्गीय पात्रकी उस विवशता का चित्रण हुआहै जो महीनेके अन्तिम दिनोंमें आर्थिक अभावके कारण उत्पन्न होतीहै। इस कहानीमें यह पात्र दो-तीन दिनों तक अपने पासकी अन्तिम एकन्नी को बचाकर रखताहै और अन्तमें ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जातीहै कि इसी बची हुई एकन्नीके चलते एक बैलूनवालेके समक्ष वह अपनेको प्रतिष्ठित बनाये रखने में समर्थ हो पाताहै।

'भीख' कहानीमें पवन नामक एक ग्रामीण युवकके चाचाकी मृत्यु अस्पतालमें हो जातीहै और वह उनके दाह-संस्कारके लिए भीख मांगनेको विवश होताहै। कथाके अन्तमें यह प्रश्न उठाया गयाहै कि क्या हम लोग आजभी उस स्थितिमें पहुंच चुकेहैं जिसमें कोई भीख मांगनेको विवश न हो। निश्चयही इस कहानी का अन्तिम प्रभाव मनुष्यकी उस विवशताको उजागर करनाहै जिसमें उसे भीख मांगने जैसे गर्हित कर्म करना पड़ताहै।

'जरल जौरक ऐंठन' कहानीका मुख्य पात्र यद्यपि पुराने जमींदार घरानेसे जुड़ा हुआहै पर आर्थिक दृष्टि से वह इस प्रकार टूट गयाहै कि लुक-छिपकर कुलीका कामभी कर लिया करताहै। इस कहानीका मूल स्वर यह है कि यदि किसीको निर्धनताके कारण कुलीका काम करना ही पड़े तो उसे यह कार्य श्रमकी महत्ताको स्वीकरते हुए खुलकर करना चाहिये।

आलोच्य कथा-संग्रहमें कुछ ऐसीभी कहानियां हैं जिनमें वर्तमान सामाजिक परिवेशमें व्याप्त विविध प्रकारकी कमजोरियोंके प्रतिबिम्ब उभरकर प्रकट हुए हैं। आजके ग्रामीण जीवनमें घूसखोरी, लूट-खसोट, दंगा-फसाद आदि विकृतियां व्यापक रूपसे फैल गयीहैं और उनके कारण हमारा सामाजिक जीवन कलुषित हो रहाहै। 'पण्डितक पराभव' कहानीमें एक व्यक्ति बड़ी धूमधामसे अपने यहां श्री सत्यनारायण भगवान्की पूजा करताहै और जब पुरोहितके द्वारा पूजा करनेका प्रयोजन पूछा जाताहै तब उसकी पत्नी अपनी ओरसे स्पष्टीकरण देती हुई कहतीहैं कि बहुत दिनोंके बाद उसके पतिको आफिसमें अच्छा टेबुल प्राप्त हुआहै! द्रष्टव्य यह है कि घूस दिलानेवाले टेबुलकी प्राप्तिको ध्यानमें रखकर यह पूजा की गयीहै, परिणामतः इतनी खटकनेवाली बातको लेकर जहां पुरोहित बने व्यक्ति को लज्जा और ग्लानिका अनुभव होताहै, वहीं पूजा कर रहे गृहस्वामी और उनके यहां उपस्थित अन्य लोगों को यह बात खटकनेवाली प्रतीत ही नहीं होती। वस्तुतः यह कहानी यह प्रदर्शित करतीहै कि घूसखोरी अथवा अनुचित रूपसे कीजा रही कमाई भी आजके समाजमें लोगोंके लिए सहज स्वीकार्य बनती जा रहीहै।

'कथाक अन्त' भी एक ऐसी ही कहानी है जिसमें ग्रामीण परिवेशमें एक सामान्य व्यक्ति भी अपने बाहु-बलके सहारे दूसरे लोगोंके छोटे-मोटे कार्य करके धन उपार्जित करताहै और ग्रामीण परिवेशमें नेताके रूपमें ख्याति प्राप्त कर लेताहै।

'अयाचीक डीह पर' भी इस संकलनकी एक विशिष्ट कहानी है जिसमें गांवके विपत्तिग्रस्त लोगोंके लिए प्राप्त होनेवाली रिलीफके सामानोंको गलत ढंगसे प्राप्त करनेवाले कुछ आदर्श भ्रष्ट युवकोंके कारनामे चित्रित किये गयेहैं। इस कहानीमें कथाकारने यह स्पष्ट किया है कि मिथिलाके गौरवशाली पंडित व्यक्तित्व अयाची मिश्रके वंशज टाइगर कहे जानेवाले युवकका इतना चारित्रिक पतन हो गयाहै कि वह न केवल रिलीफकी सामग्री छीननेके लिए लूटमार करताहै, बल्कि कानूनके शिकंजेसे बचनेके लिए बाढ़में अपनेको घायल बताकर पांच सौ रुपए ले लेताहै और साथही अपनी पितामही को कण्ठ दबाकर मार भी देताहै और बाढ़में उसके डूबकर मर जानेकी बात कहकर एक हजार रुपए अलगसे जुटा लेताहै। कहानीका मूल कथ्य यह है कि टाइगरके द्वारा जिस प्रकार पितामहीकी हत्याकी गयी है उससे पंडित अयाची मिश्रके सभी उज्ज्वल आदर्श ध्वस्त हो गयेहैं।

आलोच्य कथा संग्रहमें 'महामार्जार पदाधिकारी', 'बाढ़िक गप्प आ गप्पक बाढ़ि' आदि कतिपय व्यंग्यात्मक कहानियां भी हैं जिनमें सरकारके विभिन्न विभागोंकी ढीली ढाली कार्य-शैली तथा सरकारी अनुदान प्राप्त करनेवाली जन समूहकी गलत मानसिकता आदि बातोंपर चोट की गयीहै। पंडित गोविन्द झाकी ये कहानियां विषय-वस्तुकी भांति ही शिल्पकी दृष्टिसे भी समृद्ध प्रतीत होतीहैं। कथाकारके शिल्प-कौशलकी प्रभाव-छाया प्रायः सभी कहानियोंमें परिलक्षित होती है। इन कहानियोंमें प्रयुक्त रचना-शिल्पके कारण विषय-वस्तुकी बड़ी सबल अभिव्यंजना हुईहै। कहानियोंमें सर्वत्र प्रवाहपूर्ण और प्रांजल भाषा-शैलीके दर्शन होतेहैं। वर्णनके क्रममें स्थान-स्थान गद्यकी लयात्मकता उभरकर प्रकट हुईहै। 'ओधि : बांस : कोपड़' शीर्षक कहानीमें एक बैलगाड़ीकी गतिमयताका वर्णन है, उसके माध्यमसे ही आजके सामान्य जनकी निराशा और क्लान्तिको भी बड़ी सूक्ष्मताके साथ संकेतित किया गयाहै।

निष्कर्षतः 'सामाक पौती' में संकलित कहानियां अनेक विशिष्टताओंसे युक्त हैं। कथाकार गोविन्द झाने इन कहानियोंमें जहां एक ओर मिथिलाकी सांस्कृतिक चेतनाको उभारनेके साथही उसके सामाजिक परिवेश में व्याप्त यथार्थके विविध रूप प्रस्तुत कियेहैं, वहीं दूसरी ओर इनमें मानवीय संवेदनशीलताको भी बड़ी गहराईके साथ उजागर करनेका प्रयास कियाहै। ये कहानियां हमें मानवीय गरिमामें युक्त जीवन जीनेका संदेश भी प्रदान करतीहैं। कथ्यकी भांति ही ये कहानियां शिल्प और भाषाके धरातलपर भी अपनी सबलतासे हमें प्रभावित करतीहैं। ☐

राजस्थानी परिवेश सृजनात्मक कथानकोंसे ओतप्रोत

अधूरा सुपना

कहानीकार : नृसिंह राजपुरोहित **समीक्षक : डॉ. जगमोहन सिंह परिहार**

यथार्थवादी धरातलपर सृजित अपने सशक्त साहित्यके माध्यमसे, सहित्यकार युग-विशेषके गुण-दोषोंको उजागर तो करताही है, साथही, वह अपने मानवतावादी विचारोंके संपोषक साहित्यकी सहायता से मानवीय-आचरणके सुधारका मार्गभी, प्रशस्त करताहै। साहित्य अकादमी द्वारा १९९३ में पुरस्कृत डॉ. नृसिंह राजपुरोहितके 'अधूरा सुपना' कहानी संग्रह को भी, राजस्थानी भाषाकी ऐसीही सद्साहित्य रचनाओंकी श्रेणीमें रखाजा सकताहै जो सामान्य आदमी से जुड़कर प्रत्येक व्यक्तिके सुख-दुःखके साथ अन्तरंगता स्थापित करते हुए, दानवतासे मानवताकी ओर ले जानेका मार्ग प्रशस्त करतीहै।

'अधूरा सुपना' में उन्नीस कथाएं संगृहीत हैं। कथानकोंमें भिन्नता इन सभी कहानियोंमें राजस्थानी संस्कृतिके सौरभकी सुवास समान रूपसे विद्यमान है। सांस्कृतिक उपलब्धियों तथा नैतिक मान्यताओंका वर्तमान और भविष्य आज भयाक्रान्त परिवेशमें फंसा कराह रहाहै। फिरभी, विघटनकारी परिस्थितियोंसे थोड़ा-सा हटकर, आदर्शवादिताके ताने-बानेसे बनी 'अधूरा सुपना' की सभी कहानियाँ विफलताओं, अनैतिकताओं और अकारण थोपे गये संघर्षोंका सामना करते हुए जीवनके प्रति एक विशेष ललक, आकर्षण तथा आस्थाके भावोंको सुदृढ़-सम्बल प्रदान करतीहैं, जिनकी आज सर्वाधिक आवश्यकता है।

भारतीय कथाकारोंकी कथावस्तु मूलतः शहरी और ग्रामीण-जीवनके चरित्रांकनमें ही वर्गीकृत रहीहै। भारतीय ग्रामीण-परिवेशको अपनी कहानियोंका केन्द्र-बिन्दु बनानेवाले कथाकारोंके समान डॉ. नृसिंह राजपुरोहितने भी ग्रामीण-जीवन तथा वहांकी समस्याओं को चुनकर ग्राम्य-जीवनके शुभ-अशुभ पक्षोंको अनावृत करनेका सफल प्रयास कियाहै। इन कहानियोंसे इस कटु सत्यका भी उद्घाटन होताहै कि अनैतिक-भ्रष्ट जीवनसे नगरीय जीवनही आक्रान्त नहीं है बल्कि अवसरवादिता, भ्रष्टाचार, राजनीतिक षड़यन्त्र, योग्य के स्थानपर अयोग्य व्यक्तियोंकी जय जयकार, अनैतिकता और शासकीय अकर्मण्यता जैसे अनेकानेक कारण हैं जिनके फलस्वरूप ग्रामीण-जीवनकी तथाकथित सरलता, सहृदयता और निश्छलता जैसी विशेषताओं का भी अवमूल्यन-सा, होताजा रहाहै। 'सत्यमेव जयते' के आदर्श विचारोंसे अनुप्रेरित कहानीकारने यद्यपि असत्यपर सत्य तथा अन्यायपर न्यायकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन अवश्य करायाहै तथापि हम सब भलीभांति जानतेहैं कि आदर्शों, आस्थाओं और नैतिक मान्यताओं का वर्तमान तथा भविष्य कैसे भयाक्रान्त दौरसे गुजर रहाहै। फिरभी, निःसंकोच कहाजा सकताहै कि आदर्शवादिताके परिवेशसे परिवेष्ठित 'अधूरा सुपना' की सभी कहानियाँ अमानवीयताओंसे संघर्ष करते हुए जीवन और समाजके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करनेका सन्देश देतीहैं।

संग्रहके शीर्षकके नामकरणवाली 'अधूरा सुपना' कथा, ग्रामीण-परिवेशको सजीव रूपमें चित्रित करने वाली ऐसी ही कहानी है। कथाके नायक बाबू शिवलाल समाज सुधारवादी भावों तथा आदर्श विचारोंसे अनुप्रेरित व्यक्तित्वके धनी हैं। ग्राम्य-संस्कृतिके मोह

से प्रभावित होनेके कारण ही, राजकीय सेवासे अवकाश प्राप्त करनेके बाद, अपने पैतृक गांवमे जाकर वे समाज सुधार और लोक-सेवाके कार्योंमें जुट जातेहैं। बाबू शिवलालके मनमें ग्राम्य-जीवनके प्रति अनन्यता एवं अन्तरंगताके अटूट भाव विद्यमान थे परन्तु वहां रहनेवाले कतिपय ग्रामीणोंकी स्वार्थी मानसिकता, संकीर्णता और अवसरवादिताके चक्रव्यूहमें उलझकर, बाबू शिवलालकी आदर्शवादिता विखण्डित होने लगती है, चिरसंचित आस्थाओंके महल ध्वस्त होने लगतेहैं। जीवनमें पहली बार उनको इस कटु सत्यकी अनुभूति होतीहै कि सामाजिक, नैतिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टिसे नगरीय तथा महानगरीय सभ्यता-संस्कृतियां ही, प्रदूषित नहीं हुईहैं बल्कि ग्रामीण-अंचलोंमें रहनेवाले लोगोंकी रगोंमें भी, सामाजिक विद्रूपताओंके कीटाणु तेजीसे प्रसरित होतेजा रहेहैं। ऐसी प्रतिगामी और प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी, बाबू शिवलाल साहस नहीं खोते तथा दुर्दिनोंके बाद आनेवाले शुभ दिनोंकी प्रतीक्षा करतेहैं। अन्ततः ग्राम पंचायतके चुनावमें बाबू शिवलालकी विजय, अमानवीय-वृत्तियों पर मानवीय-वृत्तियोंकी विजयकी परिचायक कहीजा सकतीहैं। कहानीकार, इस कहानीके माध्यमसे यही सन्देश देना चाहताहै कि कठिनसे कठिन प्रतिगामी परिस्थितियोंमें भी, मनुष्यको अपना साहस नहीं खोना चाहिये।

'अधूरा सुपना' के अतिरिक्त 'दीठ', 'धन्नी भुआ', 'ओलभो' और 'विदाई' भी इस संग्रहकी सशक्त एवं प्रभावी कहानियां हैं। साधारण मध्य वर्गके सभी पात्र मध्यमवर्गीय सामाजिक जीवनका प्रतिनिधित्व करते है जिनमें अच्छाइयोंके साथ मानवीय दुर्बलताएं भी सहज-स्वाभाविक रूपमें, विद्यमान हैं। इन पात्रोंमें मानवोचित प्रेम, दया, ममता, शिष्टता, सहिष्णुता, विनम्रता, परदुःखकातरता और त्यागके साथ ईर्ष्या-द्वेष, छल-कपट, घृणा तथा अहंकार जैसे दुर्गुण भी हैं। तभी तो ऐसे पात्रोंके क्रियाकलापोंको देखकर किंचित् भी अतिरंजना अथवा भटकावका बोध नहीं होता प्रत्युत पाठक इन पात्रोंके साथ अन्तरंगता स्थापित कर आनन्दानुभूतिके भावोंसे अभिभूत हो उठता है।

इस संग्रहके अतिरिक्त डॉ. राजपुरोहितके 'पुन्न रो काम', 'रातवासो', 'अमर चूनड़ी', 'प्रभातियो तारो', 'भगवान महावीर', और 'मऊ चाली मालवे' जैसी कहानी संग्रह भी प्रकाशित पुरस्कृत और सम्मानित हो चुकेहैं। राजस्थानी साहित्य अकादमी तथा सोवियत लैण्ड नेहरू जैसे पुरस्कारोंसे सम्मानित डॉ. नृसिंह राजपुरोहित सरल, सौम्य, सहृदय और आदर्श शिक्षकके रूपमें भी सम्मानित हो चुकेहैं। डॉ. राजपुरोहितने जन्मसे अद्यावधि तक ग्रामीण जन-जीवनको बड़ीही सूक्ष्म तथा पैनी दृष्टिसे निरखा-परखाहै और अपनी इन्हीं अनुभूतियोंको कहानी रूपमें अभिव्यक्त कर, मनोरंजनके साथ-साथ पाठकोंका मार्ग दर्शन भी कियाहै। सामान्य बोलचालकी भाषा शैली मुहावरों तथा कहावतोंका प्रसंगानुरूप प्रयोग, भाषामें चित्रात्मकता, रोचकता तथा प्रवाह जैसी विशेषताएं आद्योपान्त देखीजा सकतीहैं। ☐

मूल्यों एवं आदर्शोंको जीवनमें उतारनेकी यातना

कन्यादान

नाटककार : विजय तेण्डुलकर

समीक्षक : डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी

मराठी नाटक 'कन्यादान' रचनात्मकताके अनेक स्तरोंमें से होते हुए नाटककारकी मूल दृष्टि तक पहुंचनेके रूपमें एक अतुलनीय नाट्यकर्म है। प्रत्यक्षत: पहला स्तर कथात्मक है, सुधारवाद का रूप है। इसमें उच्चवर्ग (ब्राह्मण) के यदुनाथ देवलालीकर उर्फ नाथ उर्फ भाईजी अपनी बेटी ज्योतिकी इच्छासे उसका विवाह एक दलित वर्ग (महार) के लड़के अरुण आठवलेसे कर देतेहैं। वे अपने समतापरक मानवीय मूल्योंको केवल विचारों तक सीमित न रखकर उन्हें व्यावहारिक रूप देने वाले सच्चे विचारक, निष्पक्ष जन-प्रतिनिधिके रूपमें सामने आतेहै। इसके साथ ही दूसरा रूपभी प्रकट हो जाताहै, जो कथाके आधारपर ही बनताहै, कि दलित वर्ग अपनी संस्कार-जड़तासे इस प्रकार अभिशप्त है कि नाथजीकी यह स्वस्थ एवं सही पहल भी उसमें परिवर्तन नही ला पाती। रातमें शराब पीकर पत्नी ज्योति को बुरी तरह पीटने, उच्चवर्णी सास-ससुरको गालियां देनेवाला अरुण आठवले 'बी. ए.' का अंगरखा चिपका कर एवं सृजनशील काव्यकार बनकर भी खलनायकके रूपमें दिखायी देने लगताहै। इस स्तरपर रचनाका व्यंजित स्वर यह है कि दलित वर्गको सुधारने, सबको समान स्तरपर लानेका प्रयत्न व्यर्थ है। वह अपनी जड़तासे बाहर नहीं निकल सकता तथा निकालनेका प्रयत्न करनेवाला अनायास ही अपने ही जीवनकी सार्थकता पर प्रश्नचिह्न लगा देताहै। स्थितिको और अधिक जटिल बनानेवाले अरुण आठवले जैसे वे लोग हैं, जो थोड़ा आगे आतेही अपनी निवार्य बुराइयोंको कोई-न-कोई जामा पहनाकर भस्मासुर बन जातेहैं।

परन्तु नाटक कहानीके स्तरसे आगे बढ़ताहै और दूसरे स्तरपर अरुण आठवलेके कुकृत्य मनोवैज्ञानिक स्तर लेते हुए दलितवर्गको सदियोंसे सतानेवाले उच्च वर्गके विरुद्ध प्रतिशोधका रूप ले लेतेहैं। इस रूपमें में पात्र व्यक्ति-चरित्र न होकर वर्गीय प्रतिनिधित्व पा जातेहैं— ज्योतिपर प्रहार कर आठवले पूरे उच्च वर्ग को लात मारताहै और मारते हुए वह स्वयं भी दलित वर्गकी एक इकाई बन जाताहै। इस मनोवैज्ञानिक वैचारिकताके समानान्तर ही वह कथायोजना भी विचारणीय है, जिसमें ज्योतिका विवाह मात्र रुचि या प्रेमकी भावाकुलतासे अधिक वैचारिक स्तरपर समता की धारणसे हुईहै। इसमें ज्योतिके पिता नाथकी स्वीकृति और प्रेरणाभी उनकी अपनी सुधारक वैचारिकता को साकार करनेकी इच्छा है। अत: रचनाको इस दूसरे वैचारिक स्तरपर ही समझना होगा। ज्योतिके वैवाहिक जीवनको देखते हुए पाठक-दर्शकको लग सकताहै कि ज्योतिकी मांका इस विवाहका विरोध यथार्थपरक था। अपनी सारी सुधारवादी पृष्ठभूमिके होते हुएभी वे मां रूपमें निर्णय लेते हुए अधिक व्यावहारिक थीं; जबकि पिता नाथबाबूने बेटीको अपने वैचारिक मूल्यों-आदर्शोंका माध्यम भर बनाकर ऐसा निर्णय करा दिया। इस निर्णयका परिणाम तो नाथके लिए नाटक आगे चलकर खोलताहै, परन्तु विचारोंकी अपरिपक्वतासे संभावित असफलताका संकेत, नाटकके मध्यमें ही आ जाताहै, जब अरुणके अत्याचारोंसे त्रस्त होकर उसे छोड़नेका निर्णयकर

ज्योति पिताके घर लौट आतीहै । पर तब अरुण आठवले गलदश्रु प्रेमी बनकर, पूर्णत: गलित अहंकी धृष्टताके साथ अपनी सारी गलतियोंपर प्रश्चा-ताप करते हुए सामने आताहै । उसकी इस नाटकबाजी को ज्योति समाप्त करना चाहतीहै और उधर समताके आदर्शको साकार कर दिखानेवाली पिताकी लड़ाईके उद्देश्यको ध्यानमें रखतीहै । इसी कारण ज्योति एक बार फिर अरुणके साथ जानेका निर्णय लेतीहै ।

यहींसे नाट्यकर्मका तीसरा स्तर, और महीन स्तर खुलताहै । सब कुछ प्रतीक संकेतमें बदल जाताहै और इसी स्तरपर नाटकके वास्तविक रहस्य खुलतेहैं । पहलें तो पिताके सामाजिक आदर्शोंको प्रतिफलित करने के लिए ज्योति उन्हींके बताये हुए मार्गपर चलकर अरुण की प्रवृत्तियोंको बदलना चाहतीथी, पर स्वयं ब्राह्मण पुत्री ही रह जातीथी । और इसीसे कष्ट अनुभव करती थी । धीरे-धीरे वह जान गयी कि विचारोंको जीवनमें उतारनेका यह मार्ग सरल नहीं है । अत: पिताके घरसे दुबारा निकलनेके बाद वह अपने अतीतके अस्तित्वको बिल्कुल मिटाकर अरुणके वातावरण व प्रवृत्तियोंमें रचबसकर उसे समझना चाहतीहै । यह संकेत वहां प्रकट होताहै, जहां वह पिताके घर आत्मीयतासे दूर हटकर आतीहै और उन लोगोंको अपने यहां आनेके लिए स्पष्ट रूपसे मना कर देतीहै—अर्थात् ब्राह्मणपुत्री पूरे रूपमें दलित-पत्नी बन जातीहै—"मी ज्योति यदुनाथ देवलालीकर नाहीं, ज्योति अरुण आठवले आहे । एक महारीण आहे...मी दलित नाही । मी महाराणी आहे । महाराणी असते, तशी मी महारीण आहे (८४-८५) ।" यहीं मूल संकेत खुलताहै कि दलितोंको सुधारनेके लिए उन्हें ठीक रूपमें समझना होगा और समझनेके लिए दलित बननाभी होगा । उच्चवर्णी बने रहकर अपने आसनसे बराबरीकी बात करना व्यर्थ हैं । दम्भ भी है । यह तो उन्हें अपने जैसा बनानेका आग्रह-जन्य मोह है । उपयुक्त प्रक्रिया है—उन्हें अपने जैसा बनानेके लिए स्वयंको पहले उनके बराबर बना लेना । उन्हें 'अपरक्लास' में ले आनेके साथ स्वयंको 'डिक्लास' करना । और कन्यादानकी ज्योति यही करती है ।

परंतु ऐसा करनेका अनिवार्य परिणाम एक कड़वा यथार्थ है । उनकी त्रासदियां इतनी विकराल हैं कि ऐसा करनेके प्रयत्नमें वे आपका अपना चिन्तन-संस्कार भुलवा देंगी । उनको कुछ बनानेमें आसक्त हुए कि कब आप महारमें संतरित हो जायेंगे, मालूम ही नहीं पड़ेगा । यह जटिलता बड़ी दुस्तर है, पर नाटककी साक्षीसे सामाजिक आदर्शोंकी सार्थकताकी यही अनिवार्य स्थिति भी है । ज्योतिके साथ यही होताहै । जब वह अरुणको संपूर्णतामें समझने जातीहै, महार बन जातीहै और जबतक ब्राह्मण बनी रह गयी थी, समझ न सकी, कष्ट पाती रही । जब कष्टोंसे एकाकार हुई, तो यातनामें सुख और सुखके क्षणोंमें यंत्रणाका अजीब मिलाजुला सत्य पा गयी । उसकी लातोंके बीच चुम्बन और मार खानेसे टूटती देहकी पीड़ाके साथ अरुणकी काव्य पंक्तियोंके मर्म समझ सकी । अरुणको, दलित वर्गको समझनेका यही मार्ग 'कन्यादान' दिखाता है ।

ज्योतिके इस सही मार्गपर पहुंचतेही सारे नाटक की अबतककी पूरी काया ही पलट जातीहै । नाथके रूपमें समस्त उच्च वर्ग ही खलनायककी भूमिकामें खड़ा दिखने लगताहै । तब ज्योतिके माध्यमसे हम जान जातेहैं कि पिताने अपनी सारी स्पष्टवादिता एवं प्रगतिशीलताके होते हुए भी इस वीभत्स व नग्न यथार्थसे उसका साक्षात्कार होने ही नहीं दिया । उसे वास्तविकतासे दूर रखा और सचके नामपर आभिजात्यकी खोलमें दुबके खोखले आदर्शोंको परोसते हुए उसके बीस वर्षका समय नष्ट कर दिया । इस कठोर यथार्थको जानने के लिए उसे अरुण आठवलेके पास जाना पड़ा । संकेतार्थक सत्य यह कि दलितोंका दु:ख कभी आभिजात्य वर्ग की समझमें आया ही नहीं । और जब कभी कुछ गहराईमें उतरे, थोड़ा उन्हें जाना; तो सुधारकी भावना बिखर गयी । तब अरुणके बैठनेसे नाथजीका घर गंदा होने लगा । वे घर तक धुलानेकी बात करने लगे । नाथकी यह सीमा अभिजात वर्गकी सीमा है । और अपनी यह मूर्खता न समझते हुए नाथजीने अपनी बेटीको प्रयोगकी आगमें झोंक दिया और स्वयं दूर बैठकर हाथ सेंकने लगे । उनके अनुभव एवं चिन्तनका अधूरापन यहीं उजागर हो जाताहै । इसे वह वर्ग कभी जान नहीं पाता ।

किंतु नाटकमें ज्योति द्वारा अंतमें बताये जानेके पहलेही नाथजी जान जातेहै कि यह सब उचित रूपमें नहीं हुआ क्योंकि नाटककारकी योजना ही है अवगत करानेकी । इसीलिए बेटीका आयोजन हुआहै, जो अपनाही खून है; अन्यथा सदाकी भांति जानकर भी

अनजान बने रहते। बाप-बेटीवाले आयोजनके और भी नाट्यार्थ है, जो यथास्थान ! यहां यह कि उपयुक्त मार्गकी विडम्बना उभरकर आतीहै। अपने कारण ज्योतिकी सही नियतिको बतातेहैं, "ते नुपतेच बुद्धि-बलपटू असतात। परतात ती प्यादी, आम्ही नव्हतं।" तभी सिद्धांतोंकी गठरीसे पिता बनकर वे सिद्धान्तोंको तोड़ना चाहतेहैं। अरुणकी घटिया किताबकी सार्वजनिक रूपसे प्रशंसा करतेहैं। बेटेसे अपनेको नकारनेके लिए कहतेहैं और अरुणको छोड़ आनेपर बेटी ज्योतिकी सहायता करके अपराधका मार्जन करना चाहतेहैं। और यहीं उनका पात्रत्व उपरम पा जाताहै। आगे की यात्रा ज्योतिकी यात्रा है।

और ज्योति उस व्यक्तिकी सहायता नहीं चाहती, जो तब सुधारक था, अब पिता बन गयाहै। क्योंकि शब्दोंके उसी निराधार वैचारिकताकी खोलमें वह फिर से दुबकना नहीं चाहती। बिना जीवन-सागरमें कूदे तैराकीके गुर सिखाने तथा डूबनेकी नौबत आनेपर वापस बुलानेवाले सुधारक एवं पिताके पाखंडको समझ गयीहै। वह पितासे कह देतीहै, "...विचार तुम्ही करा, मला विचार बंद करू—शिकायला हवं।...मारा चा नाही, आता विचारा चाच त्रास होतो।...तुमचा खोटेपणा पहतानां प्रचण्ड चीड़ आली।...हा सगलया पेचातून सुटू जगू शकतो वर आमच्याच वाटा यानं बंद का केल्या (८३-८४)। और वह वापस चली जातीहै क्योंकि पिताके घरमें आते ही उसे अपने (अरुण के) घरसे घृणा होने लगतीहैं। परंतु उसे तो वहीं जीना है, वहीं मरनाहै। ज्योतिके माध्यमसे नाटककार उच्चवर्गके गालपर सबसे बड़ा तमाचा तब मारताहै जब वह कहतीहै—मुझे मत छूइए। मेरी छांहसे बचिये, अन्यथा मेरी लपटें आपके सुखासीन मूल्योंको झुलसा देंगी।

पाखण्डका यह रूप पूरे उच्चवर्गका है। इस रूपमें नाथके माध्यमसे समूचा उच्चवर्ग ही नंगा हो जाता है। अरुणोंके न सुधरने व ज्योतियोंको गलत रूपसे प्रयुक्त करनेका दायित्व उसीका है। इस प्रकार—समाजमें दिखनेवाली नाथजीकी वास्तविक छविसे आरम्भ कर धीरे-धीरे अनकही एवं छिपी सचाइयोंको एक-एक करके खोलते हुए नाटकमें सचमुच ही उत्तम नाटकीयताका आनन्द आ जाताहै। इसी को प्रारंभमें अतुलनीय नाट्यकर्म कहा गया। बिना किसी विशेष कथा तत्त्व व मात्र तीन प्रमुख पात्रोंके माध्यमसे मन-मस्तिककी चूलें हिला देनेवाला यह अनुभव पैदा करना तेण्डुलकरजीका बहुत-बहुत जाना-पहचाना नाट्यकर्म है। 'बेबी', 'कमला', 'सखाराम बाइंडर आदि ऐसीही नाट्यकलाके सुन्दर नमूने हैं।

'कन्यादान' ज्योतिके माध्यमसे अरुणके रूपमें दलितवर्गके जीवनको समझनेका नाटक हैं। परंतु अरुण मंचपर सिर्फ तीन बार आताहै—वहभी थोड़ी ही देर के लिए। परंतु पूरे नाटकमें उसके होनेकी तीव्र अनुभूति होती रहतीहै। उसके मूल विषय होनेका यह नाट्यमय प्रमाण भी है। मंचपर नाथजीका पात्र वर्चस्व पाये हुएहै, क्योंकि उसी उच्चवर्गके कारण ही तो अरुण जैसोंका जीवन चर्चामें आ पाताहै। उनके निष्ठापरक प्रयत्नमें भी अपनी स्वाभाविक नियतिमें कितनी रोमैंटिक एवं वायवी, अतः झूठी, का गहन बोध जगानेके लिए उनके व्यक्तित्व एवं कार्योंको फैलाकर नितान्त सधे हाथोंसे उनके चरित्रको गढ़नेमें नाटककार आशातीत रूपसे सफल हुआहै। वे नेता है, जिसका उपयोग उन्हींके कथनोंमें समकालीन नेताओं की प्रवृत्तियोंका सटीक स्पष्टीकरणके एकाधिक स्थलों पर प्रच्छन्न ही सही, प्रखर व्यंग्य बनकर उभराहै। पत्नी सेवा व बेटा जयप्रकाश अपनी भूमिकाओंमें दोनों पक्षोंकी असाधारणताके बीच नितान्त साधारण मनुष्य बनकर नाटकके रिक्त स्थानोंकी पूर्ति करतेहै। अबतक हुए प्रमुख प्रयोगोंमें मराठीका सर्वप्रथम प्रयोग (फरवरी-८३) श्रीराम लागू (नाथजी) एवं सदाशिव अमरापुरकर (अरुण आठवले) के कारण अब तक अविस्मरणीय है। इसके अतिरिक्त उल्लेख्य प्रयोगों में १९८५ में श्रीराम सेंटर (दिल्ली) की ओरसे हुए हिन्दी मंचनमें एस. एम. जहीरने नाथ देबलालीकर तथा वीणा मेहता एवं सुभाष गुप्तने क्रमशः ज्योति एवं अरुणको साकार कियाथा। मुम्बईमें 'अंक' के लिए दिनेश ठाकुर (नाथजी) प्रीता माथुर (ज्योति) एवं वेद थापर (अरुण) ने इस त्रिकोणको भलीभांति प्रस्तुत कियाथा।

केवल एक ही घरमें नियोजित सारा कार्य व्यापार मंचकी सुलभता-सौकर्यताकी दृष्टिसे बहुत उपयोगी सिद्ध हुआहै। यह कौशल तेण्डुलकरजीके कई नाटकोंमें देखाजा सकताहै। इस मंच-नियोजनमें सभी कुछ बातचीतमें व्यक्त होताहै और इस कलामें प्रवी-

णता तेण्डुलकरजीके नाटक रूपमें प्रस्तुत कर देतेहैं कि नाटक शब्दों, शब्द-ध्वनियोंकी कला है। और इस नाटककी भाषा स्थानानुरूप नितांत सटीक एवं सधी है—हल्के-फुल्के क्षणोंमें जितनी फिसलती-फुदकती हुई है, मर्मस्थलोंपर उतनीही बेधक-मारक। व्यंजक तो इतनी कि सूत्रवत् प्रयोगकी साक्षी बनने योग्य। उत्कर्ष बिन्दुपर कवि कुसुमाग्रजकी पंक्तियों—"अनंत आमची ध्येया सक्ती, अनंत अन् आशा।

किनारा तुला पात्राल।"—का सुन्दर प्रयोग नाटकके दोनों पक्षोंके लिए अपने दोहरेपनमें बहुत सटीक बन पड़ाहै। नाथके संदर्भमें इन पंक्तियोंके संकल्पका दुष्परिणाम दिखाना और ज्योतिके प्रसंगमें प्रेरणास्पद संकेत बन जाना अद्भुत कलात्मकताका परिचायक हैं।

अरुणकी भाषाको न बदलकर केवल सभ्य समाज में वर्जित कुछ शब्दोंके प्रयोगसे ही तेण्डुलकरजीने काम चला लियाहै। संभवत: मराठीमें प्रचुर दलित लेखनके कारण अरुणके चरित्रकी इस रूपमें पहचान बनानेके लिए अलग भाषाकी आवश्यकता उन्होंने अनुभव की हो, पर हिन्दी अनुवादमें श्री वसंतदेवने उसे बंबइया रूप देकर इस आवश्यकताकी पूर्ति कर दीहै। ध्यातव्य है कि मराठी-मंचनमें अमर पुरकरके लिए अरुणकी भाषाका स्वरूप बदला गयाथा।

अंतमें बच रहताहै कि यह 'कन्यादान' क्या? हिन्दू विवाहकी वैदिक पद्धतिमें 'कन्यादान' एक विशिष्ट विधि है, जिसके बाद लड़की पिताकी नहीं रह जाती—वरपक्षमें बिठा दी जातीहै। ज्योति भी तब अरुणकी पंक्तिमें आ जातीहै, जब पिताके घरको एकदम पराया मान लेतीहै, खाना-पानी तक नहीं करती और वह आप्त वाक्य कहतीहै, "मी देवलालीकर नाहीं, मी ज्योति आठवले"। तभी उस विधिवाले 'कन्यादान' की अवधारणाका सच्चे अर्थोंमें यथार्थ रूप साकार होताहै। इसीलिए 'कन्यादान'! पर, एक बात और। पिता व उनके घरको ज्योति छोड़ जातीहैं, उनकी शिक्षा-दीक्षाका खोखलापन बता जातीहै, पर उन्हें उनके मूल्योंसे टूटते हुए नहीं देखना चाहती—बेटीके सुखके लिए भी नहीं। क्योंकि पिताके संकल्पों को पूरा करने, उनके आदर्शोंको जीवनमें उतारनेके लिए ही तो वह सारी यातनाएं सहतीहैं। अपने साथ वह 'कन्या' के अतिरिक्त मूल्योंका 'दान' भी पितासे ले जातीहै—इसलिए भी 'कन्यादान'!

तो फिर पिताके प्रति उसका रूख निषेधात्मक क्यों? यदि समर्पित रूप हो जाता, तो चरित्र भी आदर्श बन जाता। नाटक फीका पड़ जाता। अत: तिर्यक् दृष्टिमें उसके सहनेकी यातनाकी अभिव्यक्ति ज्योतिके चरित्रको यथार्थ बनाये रखतीहै, जो नाटककारकी संतुलित व मेधावी सृजनशीलताका साक्षी है।

इस प्रकार ज्योति व्यक्ति रूपमें नाथसे अलग है। परंतु उन्हींकी मूल्य-चिंताको व्यवहारमें उतारनेका विस्तार देतीहै। और, वे मूल्य सिर्फ नाथ देवलालीकरके हैं, उनके वर्गके—अभिजात वर्गके—नहीं। उस देवलालीकरके, जो सामाजिक आदर्शोंके सच्चे पक्षपाती हैं। इस रूपमें नाथ व ज्योति, पिता व संतानके अलावा भी, एक दूसरेके पूरक हैं—जीवनमें सिद्धान्त व व्यवहार पक्षके प्रतिनिधि। संभवत: संबद्ध चिन्तनमें व्यवहार पक्षकी कमीको देखते हुए तेण्डुलकरजीने दलित समस्या एवं सामाजिक दृष्टिको संतुलित करने के लिए ज्योतिको इस रूपमें प्रस्तुत कियाहै और दोनों के लिए अपना यही उत्तर भी दियाहै। □

जीवन्त वृत्तान्तपरक परन्तु संयमित शैलीका रेखांकन

अग्निकुंडमां ऊगेलुं गुलाब

कृतिकार : नारायण देसाई **समीक्षक : डॉ. उत्तम एल. पटेल**

जीवनीकार श्री नारायण देसाईने अपने पितृ-तर्पण के रूपमें पिताजीके जन्म शताब्दी वर्षमें यह जीवनी 'अग्निकुंडमां ऊगेलुं गुलाब' लिखना शुरु कियाथा। जीवनीकार महादेवभाईके केवल प्रशंसक ही नहीं, बेटे भी हैं। अत: जीवनी-लेखन उनके लिए सरल-सहज न था; फिरभी उन्होंने सत्यकी सीमामें रहकर चरित्रके साथ चारित्र्य गाथा गानेका प्रयास कियाहै। "यह कथा किसी साधु-संन्यासी महात्माकी नहीं है, किन्तु एक ऐसे रसिक जीवकी कथा है, जो संसारको भोग सकताथा; जिसने साधु होनेका कभी दावा नहीं किया, सारा जीवन जिसने इसी चिन्तामें बितायाथा कि जो काम ईश्वरने उसे दियाहै, उसके लिए वह लायक था कि नहीं।" (पृ ७१)।

लेखकने समग्र पुस्तकको पांच खंडों—स्मृति, प्रस्तुति, प्रीति, द्युति और आहुति---और ४४ अध्यायोंमें बांटाहै। जीवनीका प्रारंभ गांधीजीके निजी सचिव महादेवभाई देसाईकी मृत्युकी घटनाके चित्रणसे होताहै। जिस दिन उनकी मृत्यु हुईथी, स्वयं गांधीजीभी बावरे होकर उनकी ओर देखकर पुकार उठेथे—"महादेव, उठो महादेव।" (पृ. ३)। 'प्रस्तुति' खंडमें लेखकने महादेव भाईके गांधीजीसे आवर्षित होनेके पूर्वके जीवनको संक्षेपमें आलेखित कियाहै। तो 'प्रीति' और 'द्युति' खंडोंमें महादेवके मोहनसे आकर्षित होने—"नरहरि, मुझे तो इस पुरुषके चरणोंमें बैठ जानेका मन होताहै।" (पृ. ६१), तथा सन् १९१७ के नवम्बरसे महादेवके मोहनके साथ जुड़नेसे लेकर सन् १९३४-३५ मे अछूतोद्धारके गांधीजीके कार्यका प्रारंभ करने तक की घटनाएं वर्णित हैं। इन खंडोंमें चित्रित घटनाएं मात्र महादेवभाईके जीवनकी ही नहीं, अपितु भारतवर्षके जीवनकी भी महत्त्वपूर्ण घटनाएं हैं; जिसमें भारतकी स्वतन्त्रताके संघर्षका यथार्थ चित्रण है। सन् १९३५ में गांधीजी वर्धा रहनेके लिए गये उसके बादका महादेवका जीवन शारीरिक एवं मानसिक कसौटीमें पसरा हुआथा। उस समयको नारायणभाईने महादेवकी 'आहुति' के रूपमें प्रस्तुत कियाहै।

समीक्ष्य पुस्तकमें महादेवभाईके साथ गांधीजीकी जीवन-यात्रा असंपृक्त है। महादेव और मोहनमें कोई भेद नहीं था। अत: यह कथा केवल महादेवकी ही नहीं है, मोहनकी भी है। क्योंकि महादेव गांधीजीके सचिव बनकर ही 'अनमोल सिद्ध हुएथे, तो मोहन भी महादेवसे जुड़कर 'गांधी' बनेथे। यही कारण है कि महादेवकी प्रवृत्ति समझनेके लिए गांधीकी प्रवृत्ति समझना अनिवार्य है; और गाँधीकी प्रवृत्तियोंको समझनेके लिए देशके उस कालके इतिहासको समझना अनिवार्य है। यही कारण है कि महादेवकी कथा गांधी-कथाके साथ एकरूप हो गयीहै। किन्तु गांधीजीके अतिरिक्त महादेवभाईका पारिवारिक जीवन भी था। जिसका चित्रण लेखकने 'स्नेहधाम भर्यां भर्यां रे!' अध्यायमें मार्मिकतासे किया हैं। विवाहके बत्तीस सालोंके बाद महादेवका गृहस्थाश्रम शुरु हुआथा। बाबला (लेखक) की उम्र उस समय बारह सालकी थी। तब महादेव, दुर्गाबहन और बाबला साथमें रहेथे। चक्रवाक और चक्रवाकीके समान विरहमें जो रहे महादेव-दुर्गाका यह मिलन-

स्वरूप-निर्माणमें प्राप्त शक्तियोंके विविध स्रोतोंकी चर्चा भी की गयीहै। लेखिकाने इस बातको रेखांकित कियाहै कि मढेंकर द्वारा अपनाये गये रूप-बंध तथा भाषा रूप आशयकी प्रकृतिसे मेल खातेहैं। इस तालमेलको बनाये रखनेके परिणाम स्वरूप उनकी काव्य-भाषाको नया रूप प्राप्त होगया। इस संबंधमें ग्रंथ लेखिकाने कहाहै—"मढेंकरने मराठी भाषाकी मूलभूत चौखटको धक्का लगाये बिनाही उसमें अपनी कविताके लिए आवश्यक परिवर्तन किये। नूतन शब्दोंके प्रयोग, वाक्य-रचनामें परिवर्तन, भाषाकी उच्चारण प्रक्रिया एवं उतार-चढ़ावका उचित मान रखते हुए कविताकी लयको नूतन दिशा देना---आदि विविध मार्गोंको अपनाकर उन्होंने यह कार्य किया।" (पृ. १६२) काव्य-शैलीके विवेचनके क्रममें डॉ. विजया राजाध्यक्षका ध्यान मढेंकरकी काव्य-भाषागत अन्य विशेषताओंके साथ भाषा संघातकी ओर भी गयाहै। सटीक उदाहरणों द्वारा उन्होंने इन सभी विशेषताओंको स्पष्ट कियाहै। इस बातका पर्याप्त विवेचन किया गयाहै कि मढेंकरकी कविताओंकी दुर्बोधतामें काव्य-बिम्बोंकी जटिलता एक प्रमुख कारण है। मढेंकर अपनी कविता में बिम्बोंके प्रयोगके संबंधमें अधिक सजग सतर्क रहा करतेथे।" आरंभमें मढेंकरकी कविता अभिव्यक्तिकी दृष्टिसे कुछ-कुछ सांकेतिक, वर्णनात्मक, उपमा, उत्प्रेक्षा जैसे अलंकारोंको प्रधानता देनेवाली थी। वह स्वाभाविक भी था, पर धीरे-धीरे उसका स्वरूप परिवर्तित होने लगा। मढेंकर अपनी अनुभूतियोंका संघटन अधिक सजगताके साथ करने लगे। इस संघटनमें बिम्बोंको केंद्रीय स्थान प्राप्त होगया।" (पृ. १४२)। स्पष्ट है कि डॉ. विजया राजाध्यक्षने मढेंकरकी कवितामें बिम्बों के प्रयोगकी मीमांसा कीहै।

ग्रंथ लेखिकाने 'मढेंकरांची काव्य शैली' [मढेंकरकी काव्य शैली] शीर्षक अध्यायमें विविध अंगोंसे देखकर तथा विविध आधारोंको सामने रखते हुए मढेंकरकी काव्य शैलीका सूक्ष्मता के साथ विश्लेषण कियाहै। ऐसा करते समय उन्होंने इस बातका बराबर ध्यान रखाहै कि यह विश्लेषण मढेंकरकी काव्य-शैलीका सौंदर्य विशद करनेमें सहायक भी हो और उनकी काव्यगत कथित दुर्बोधताको दूर करनेमें उपयोगी भी। ग्रंथ लेखिका इसमें सफल रही है।

प्रथम खंडके चतुर्थ अध्यायमें मढेंकरपर आलोचकों द्वारा लगाये गये आक्षेपों-आरोपोंकी समीक्षा की है। इस समीक्षामें उनकी तर्कसंगत विचार-सरणीके दर्शन होतेहैं। पांचवें अध्यायमें परवर्ती मराठी कवियों, लेखकोंपर मढेंकरके प्रभावका विवेचन है। लेखिकाने यह भी स्पष्ट कियाहै कि इस प्रभावके कारण कवियों, वाचकोंमें अप्रत्यक्षतः मढेंकरीय काव्य-बोध विकसित हुआ—"उनके (प्रभावित कवियों, लेखकों) कारण वाचकोंका मढेंकरकी कविताके साथ निरन्तर संपर्क और संवाद रहा—इस अंतःसंवादमें से हो धीरे-धीरे मढेंकरीय बोधकी निर्मिति हुई। (पृ. १९९)।

"मढेंकरांची कविता:स्वरूप आणि संदर्भ' के द्वितीय खंडमें दो प्रधान बातोंका लेखिकाने विस्तृत विवेचन कियाहै—एक मढेंकरपर पड़े विविध प्रभावोंकी और दूसरी, मढेंकरके जीवन चरित्रकी। प्रभावोंकी विवेचनामें लेखिकाने स्पष्ट कियाहै कि मढेंकरपर मराठी संत कवियोंका प्रभाव था। आधुनिक कवियोंमें केशवसुत, गडकरी, बालकवि, माधव, ज्यूलियन आदिकी कविताओंने भी उन्हें प्रभावित कियाथा। विशेष बात यह है कि जितना प्रभाव उनपर पूर्ववर्ती मराठी कवियों का था उतना ही प्रभाव उनपर अंग्रेजी कविताकी पड़ाथा। मढेंकर कुछ वर्ष इंगलैंडमें रहेथे, अंग्रेजी साहित्यका उन्होंने विपुल वाचन कियाथा। परिणामतः उनके भौतिक व्यक्तित्व, काव्यागत विशेषताओं तथा लेखकीय व्यक्तित्वके गठनमें अंग्रेजी साहित्य एवं साहित्य-दृष्टिका बहुत बड़ा योग था। इस संबंधमें डॉ. विजया राजाध्यक्षने लिखा है—

"मढेंकरने दीर्घकाल तक तथा पूरी समरसताके साथ अंग्रेजी कविताका अध्ययन किया; अतः यदि उस कवितामें निहित जीवंत तथा नूतन रंग-गंध मढेंकरकी कवितामें न आते तो महत् आश्चर्य होता। विशेषकर मढेंकरके समयमें अंग्रेजी कवितामें जो मौलिक प्रयोग किये जा रहेथे; साथही उन प्रयोगोंके आनुषंगसे कविताके संबंधमें जो नूतन प्रवृत्ति प्रकट हो रहीथी—मढेंकरने उसके मर्मको आत्मसात्कर लियाथा। इससे कविके रूपमें उनका व्यक्तित्व समृद्ध होगया। यह समृद्ध व्यक्तित्व उनकी कवितामें प्रतिबिंबित हो गयाहै।" (खंड २ पृ. २१७)। किसी कविपर किसी के प्रभावको भी अलग-अलग ढंगसे देखा-परखाहै। इस संबंधमें भी उनकी दृष्टि सूक्ष्म व्यापक और तुलनात्मक

है। इसी दृष्टिकी सहायतासे उन्होंने मर्ढेकरकी अस्मिता एवं योगदानको सही-सही-रूपमें पाठकोंके सामने रख है। मर्ढेकरपर पडे प्रभावोंका यह विवेचन-विश्लेषण पाठकोंको मर्ढेकरकी कविताके प्रति एक नूतन दृष्टि देताहै।

मर्ढेकरको अपने जीवन-कालमें (सन् १९५६ में मर्ढेकरकी मृत्यु) कष्ट उठाने पडे, उपेक्षा सहनी पड़ी, अभियोगोंका सामना करना पड़ा। वे स्वयं अंतर्मुखी वृत्तिके थे। वे आत्म-श्लाघा व आत्मसमर्थनसे कोसों दूर रहे। यहांतक कि उन्होंने अपने संबंधमें लिखा भी नहीं। जबसे मराठी नवकविताके लिए अच्छे दिन आ गये, स्वाभाविक था कि पाठक नव कविताके प्रवर्तक कवि मर्ढेकरके व्यक्तिगत जीवनके संबंधमें भी उत्सुकता दिखायें। डॉ. विजया राजाध्यक्षने विवेच्य ग्रंथके द्वितीय खंडमें पाठकोंकी जिज्ञासा-पूर्ति हेतु मर्ढेकरके जीवनके कई अनछुए पहलुओंपर प्रकाश डालाहै। भौतिक व्यक्तित्व और सर्जनशील व्यक्तित्व एक ही व्यक्तिके ये दोनों रूप सदा समानांतर नहीं होते, कभी वे एक दूसरेके विरोधी भी पड़तेहैं। डॉ. विजया राजाध्यक्षने मर्ढेकरके भौतिक व्यक्तित्वके उन्हीं पहलुओं को लियाहै जो उनके सर्जनशील व्यक्तित्वके निर्माण में सहायक हुएहैं। इस प्रकारके आवश्यकके चयन और अनावश्यकके त्यागके निर्णयमें भी लेखिकाकी संतुलित एवं अनाग्रही दृष्टिके दर्शन होतेहैं।

संक्षेपमें विवेच्य ग्रंथके आशयका पट बहुतही व्यापक है। दोनों खंडोंका उपसंहार संक्षिप्त, अर्थपूर्ण एवं पठनीय हैं। प्रथम खंडके सात तथा द्वितीय खंडके छह परिशिष्ट विपुल सूचनाओंके संकलनोंसे भरेहैं। वे लेखिकाके परिश्रमके द्योतक, अनुसंधाताओंके लिए उपयोगी, अनुसंधान-कार्यकी प्रविधिके निर्वाहक ही नहीं बल्कि अनुसंधान कार्यकी गरिमाको बढ़ानेवाले हैं। मराठी नव-कविताके प्रवर्तकके रूपमें मर्ढेकरका समग्र आकलन अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक कार्य था। इस अतिमहत्त्वपूर्ण कार्यको संपन्न करनेके लिए मात्र शोधदृष्टि रखनेवाले अध्येताकी नहीं अपितु सर्जनशील शोधकर्ताकी आवश्यकता थी। इन दोनों रूपोंसे युक्त डॉ. विजया राजाध्यक्षने यह महत्त्वपूर्ण कार्य कर मराठी समीक्षा-साहित्यको एक अनूठा ग्रंथ-रत्न प्रदान कियाहै।

यह ग्रंथ-रत्न मर्ढेकरके प्रति उचित न्याय करता है। कहना पड़ताहै कि किसी कविके सम्यक् आकलनके उद्देश्यसे अनुसंधान-कार्य करनेवाले शोधकर्ताओंके लिए यह ग्रंथ प्रतिमान बनकर सदाके लिए प्रेरक तथा मार्गदर्शक होगा।

संदर्भ :

१. मर्ढेकरांची कविता: स्वरूप आणि संदर्भ (खंड १ व खंड २)

२. ललित पत्रिका—अप्रैल १९९२

३. ललित पत्रिका—अप्रैल १९९४

४. ललित पत्रिका—मई १९९४ □

अभिव्यंजक सारगर्भित शैली एवं कश्मीरी मुहावरोंके कुशल प्रयोग

केंह नतअ केंह

कृतिकार : सैयद रसूल पोंपुर **समीक्षक : डॉ. शिब्बन कृष्ण रैणा**

साहित्य अकादमीसे सम्मानित एवं पुरस्कृत प्रस्तुत निबन्ध-संग्रहमें कुल २० निबन्ध संगृहीत हैं। लगभग सभी निबन्ध लेखकके अनुभवसिद्ध संसारसे प्राप्त उन विचारों, भावों एवं स्मृतियोंपर आधारित हैं जिन्होंने लेखकके मन-मस्तिष्कको आलोड़ित किया और आलोड़नकी इस प्रक्रियामें सुन्दर निबन्धोंका रूप ग्रहण किया। सैयद रसूल पोंपुर कश्मीरीके जाने-माने कवि तो हैंही, गद्य-लेखकोंमें भी वे अग्रगण्य हैं। कश्मीरीमें उनकी अबतक दस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकीहैं जिनमें उनके तीन काव्य-संग्रह, एक निबन्ध संग्रह (यथ आदम वनस मंज़), एक कहानी संग्रह (अब कहां जाऊं ?), कुछ अनूदित रचनाएं, एक-दो आलोचना-ग्रन्थ आदि हैं। आलोच्य पुस्तकके प्राक्कथनमें लेखकने अपने रचनाकर्मकी सार्थकता एवं अपेक्षणीयतापर प्रकाश डालते हुए लिखाहै—''इसके बावजूद कि कश्मीरमें कश्मीरी भाषाको सरकारका अथवा आम जनताका प्रश्रय प्राप्त नहीं है, मैं फिरभी कुछ-न-कुछ छिटपुट रूपमें लिखता और छपवाता रहताहू। इस उद्देश्यसे नहीं कि इससे मुझे धन प्राप्ति होगी, बल्कि इसलिए कि मैं हाथमें तलवार थामे काल (वक्त) को अपने लेखनसे कुछ अच्छी चीजें भेंट करना चाहताहूं ताकि इसके क्रूर वारसे मैं बच सकूं क्योंकि मुझे लगताहै कि खुदाने मुझे इसीलिए पैदा कर बड़ा किया है।''

'केंह नतअ केंह' (कुछ न कुछ) लेखकने अपने जीवनानुभवोंको वाणी दीहै। कुछ निबंध शुद्ध मनोवैज्ञानिक कोटिके हैं, जैसे—'सादगी', 'भ्रम', 'शक', 'मितव्ययता', 'उपालम्भ' आदि। इन निबन्धोंमें लेखकने एक कुशल मनोवैज्ञानिककी भांति हमारे मनमें स्थित मनोविकारों या स्वभावगत विशेषताओंका विश्लेषण कियाहै। 'दिल कहताहै कि एक बार फिर वहां जाऊं', 'मुझे, बस, यही विश्वास चाहिये,' 'मानिए या न मानिए' आदि कुछ ऐसे निबन्ध हैं जिनमें लेखकने अपनी विभिन्न यात्राओंके आधारपर अपने खट्टे-मीठे अनुभवोंका सुन्दर वर्णन कियाहै। (साहित्यिक प्रसंगों में ये यात्राएं हैदराबाद, राउरकेला आदि स्थानोंपर हुईहैं।) 'अब फिर कर्फ्यू', 'यह दुनियां रहनेके लायक नहीं' आदि निबंध भोगे गये यथार्थसे जनित उन कटु-अनुभवोंको रेखांकित करतेहैं जो कश्मीरमें रहनेवाले किसीभी संवेदनशील साहित्यकारके अनुभव हो सकते हैं।

संग्रहके प्रारम्भमें लेखकका निबंध है—'बअ क्याजि छुस लेखान' (मैं लिखता क्यों हूं ?) इस निबंधमें लेखकने अपनी मानवीय एवं उदारवादी दृष्टि का परिचय देते हुए लिखाहै—''मैं चाहताहूं कि खुदासे मदद मांगकर मैं इस संसारमें व्याप्त असमानताओंको दूर करदूं ताकि कोई किसीके साथ नाइन्साफी न करे। मैं समुद्रोंपर पुल बनाना चाहताहूं, पर्वतोंके जिगर फाड़ना चाहताहूं, बादलोंको समेटना चाहताहूं, वायुको थामना चाहताहूं, रेगिस्तानों और ऊसरोंको रससिक्त करना चाहताहूं। आकाशके तारोंकी माला बनाना चाहताहूं....। मैं जानताहूं कि काम बड़ाही मुश्किल है, मगर मैं लिखता इसीलिए हूं।'' इसी निबंधके अंत में लेखकने लिखाहै—''मैं कश्मीरीमें इसलिए लिखताहू-

क्योंकि कश्मीरी मेरी मातृभाषा है और इस प्रकार मातृभाषाके प्रति मेरा ऋण उतर सकताहै। मैं यहभी जानताहूं कि मेरी मातृभाषा मेरी संस्कृतिका असली आईना और मेरे व्यक्तित्वकी सही पहचान है।"

निबन्ध 'सादगी' में लेखकने सादगीका सम्बन्ध उदात्ततासे जोड़कर उसके महत्त्वको सुन्दर शब्दोंमें यों रूपायित कियाहै—"हम सीधे चलें तो गिरने-चढ़नेकी गुंजाइश नहीं रहेगी और न ही रास्ता भूलेंगे। हमारी सोच सीधी-सरल होगी तो पर्वतोंकी ऊंचाइयां हमारे पैर चूमेंगी, जीवन सादा होगा तो खयाल भी ऊंचे होंगे, सादी दिनचर्या होगी तो जिन्दगीके सारे सुख सुलभ होंगे, सादा खाना-पीना होगा तो शरीर स्वस्थ होगा, लिबास सादा होगा तो शराफत भी रहेगी...। सादगी का मतलब है पाकदामनी। सादगी, प्रेम-बन्धुत्व और स्नेहका पर्याय हैं।"

'अब फिर कर्फ्यू' निबंधमें लेखकने कर्फ्यू शब्दकी व्युत्पत्ति आदिका परिचय देते हुए वर्तमान सन्दर्भमें कर्फ्यू से जनित असुविधा, भय और त्रासका बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन कियाहै—"कर्फ्यू का नाम सुनतेही जिन्दगीकी सांसें घटने लगतीहैं, रास्ते सिमटने लग जातेहैं, नजरोंकी वाणी गूंगी पड़ जातीहै, दिलकी धड़कन मद्धिम पड़ जातीहै, जिन्दगीकी गहमागहमीपर अंकुश लग जाताहै, चारों ओर मरघट का-सा मातम छा जाताहै। दिन बिताना मुश्किल और रात बितानी उससे भी मुश्किल हो जातीहै। ...किसीको कुर्सीपर बिठाना हो तो कर्फ्यू! किसीको कुर्सीसे उतारना हो तो कर्फ्यू...!!"

'यह दुनियां रहनेके लायक नहीं' निबंधमें लेखकने मानवकी रागात्मिका वृत्तिके ह्रास और उसके बदले उसमें शुद्ध व्यावसायिक भौतिकवादी दृष्टिके उदित होनेकी पीड़ाको व्यक्त कियाहै। वैज्ञानिक आविष्कारोंने मानव जीवनको सुखपूर्ण तो बनाया किन्तु उसे उतना ही तनावपूर्ण और जटिल भी बना दियाहै। ईर्ष्या, घृणा, अनास्था संशय, धर्मान्धता, कटुता, वैमनस्य, कुण्ठा आदि इसी भौतिकवादी दृष्टिके दुष्परिणाम हैं। इस निबंधके अंतमें (पुस्तकके अंतमें!) लेखकने कश्मीरीके प्रसिद्ध शायर अब्दुल अहद आजादकी ये महत्त्वपूर्ण पंक्तियां उद्धृत कीहैं—

"सद्बुद्धि फैलानेवाला प्रकाश था तू,
पर मिटा दिया उसको
तूने रे इन्सान!
इन्सानियतको किया बदनाम—
रे निर्दयी तूने!
कुदरतने अपने कोषोंके ढक्कन
खोलकर रखेथे तेरे लिए,
बांटकर खानेके बदले तू नाग बन
कुण्डली मारे बैठा रहा उनपर।
न दीनकी फिक्र, न धर्मका ग़म
बना फिरता फिरभी तू दीन-धर्मका
तथाकथित मुकद्दम।
करे इन्सानियत भी मातम
देख-देख तेरे सितम!..."

प्रस्तुत संग्रहके प्रायः प्रत्येक निबंधमें लेखककी मानवीय दृष्टि मुखर हो उठीहै और यही इस संग्रहकी बहुमूल्य विशेषता है। कश्मीरीमें मनोवैज्ञानिक और संस्मरणात्मक निबंध लिखनेकी परम्परामें प्रस्तुत संग्रह एक सार्थक और स्वागत-योग्य प्रयास है। प्रत्येक निबंधकी भाषा सारगर्भित, लालित्यपूर्ण और प्रांजल है। ☐

प्रसंग था। लक्ष्मण-पत्नी उर्मिलाके समान दुर्गाबहनके एकाकी जीवनकी गौरवपूर्ण कथा इसमें वर्णित है; क्योंकि महादेवका त्याग दुर्गाबहनके लिए गर्वका विषय था। यह अध्याय इस दृष्टिसे भी महत्त्वपूर्ण है कि इसे जीवनीकारने भी स्वयं देखा व भोगाथा। इस अध्यायके पूर्व अध्यायोंके लिए तो उन्हें सामग्री जुटानेके लिए अन्य स्रोतोंपर निर्भर रहना पड़ाहै। किन्तु प्रस्तुत अध्याय तो उनके जीवनका आँखों-देखा है।

लेखकने अपने पिताकी ही जीवनीकी रचना की है; फिरभी स्वयंको पिताके समान, जिन्होंने अपनी डायरीमें पुत्र-जन्मके दिनका भी जिक्र नहीं किया था; पुत्रने भी अपने आपको जीवनीमें गौण ही रखाहै; क्योंकि उनका लक्ष्य तो अपने कथा-नायकके अंतसको पहचानकर उसके आलोकमें सभी घटनाओंका चित्रण करना तथा नायकके अस्तित्वको उजागर करना ही रहाहै। लेखकका ताटस्थ्य सर्वत्र दर्शनीय है। उन्होंने महादेवभाईके गुणोंको ही उजागर नहीं कियाहै, उन पर लगे कलंकोंको भी प्रस्तुत कियाहै।

'अग्निकुंडमां ऊगेलुं गुलाब' की भाषा शुद्ध गुजराती है। भाषा सहज और सरल है, शैली मिश्रित हैं क्योंकि इसमें लेखकने पत्रों, डायरी तथा अन्य साहित्य का सहारा लियाहै। इस प्रकार इसमें पत्र-शैली, डायरी-शैली संवाद शैली तथा वर्णन-शैलीका मिश्रण है। इसकी शैली केवल लेखककी नहीं है, महादेव तथा गांधी आदि की भी है। लेखककी शैलीपर महादेवभाईकी शैलीका प्रभाव है। लेखकने भी महादेवभाईकी भांति खंडोंके प्रारंभ में एकसे अधिक सुवाक्य दियेहैं (पृ. ७५)। शैलीमें आवश्यकतानुसार विस्तार व लाघव है। कुछ बातोंका बार-बार पुनरावर्तन अखरताहै। परिणाम शैलीमें अरोचकता व नीरसता आ गयीहै। यह रचना केवल जीवनी ही नहीं, शोधग्रंथ भी है, क्योंकि लेखकने जो कुछ भी कहाहै, वह साधार है।

समीक्ष्य पुस्तकका शीर्षक 'अग्निकुंडमां ऊगेलुं गुलाब' गुजरातीके राष्ट्रीय कवि स्व. झवेरचंद मेघाणी के शब्द हैं। शीर्षक उचित ही है क्योंकि महादेवभाई की कथामें गुलाबकी सुगंध और अग्निकुंडके कारुण्यका मिश्रण था। जो स्वयं हनुमान-सा होकर स्वार्पण सेवा स्वयंमें उतारना और मात्र सेवा-भक्तिसे संसारको पार कर जानेकी इच्छासे गांधीजीसे आ मिलाथा। वही महादेव स्वयं कहतेथे कि गांधीजीका सचिव होना, यह ज्वालामुखीके मुखके पास रहने जैसा कठिन काम था। (पृ. ६६६)। महादेव तो गांधीजीके साधक थे। उनका मार्ग तो साधनाका मार्ग था। वह तो 'क्षुरस्य धारा' के समान दुर्गम था; फिरभी महादेव अपनी साधनामें सफल सिद्ध हुए। इसका कारण था महादेवकी विश्वसनीय निष्ठा तथा कुशलताके गुण। यही कारण है कि महादेवको गांधीजीके पीर, बबर्ची भिस्ती और सेवक, गांधीजीका दिमाग, गांधीजीके 'हृदयम् द्वितीयम्' या सचिव शिरोमणि आदि विशेषणों से अलंकृत किया गयाथा किन्तु इनके मूलमें तो गांधीजीके प्रति उनकी अपूर्व एवं अनन्य भक्ति तथा स्वार्पणका उनका मुख्य रस था। महादेवके कर्मठ, बौद्धिक तथा चरित्र्यवान् व्यक्तित्वके कारण ही तो गांधीजीने कहाथा—"महादेव मेरा बेटा, मेरा मित्र, मेरा सचिव सबकुछ है।" (पृ ४१०)। उनके जीवनको 'भक्तिका अखंड काव्य' कहाथा। महादेव तो 'सर्वे शुभोपमा योग्य पुरुष' थे। (पृ. ७०७)। किन्तु ये सबकुछ होने के लिए तो उन्हें अग्नि-परीक्षामें से पार होना पड़ा था। जगन्नाथपुरीके मंदिरमें अस्पृश्योंको प्रवेश न मिलनेसे पहले दुर्गाबहन, कस्तूरबा तथा अन्य दो-तीन बहनोंके प्रवेशकी घटनासे गांधीजीको तीव्र वेदना हुई थी। गांधीजीके डाँटनेपर अपनी गलतीके कारण महादेवभाईने गांधी-भक्तिके कारण उनसे विलग होनेका निर्णय भी कियाथा। वैसे गांधीजीने इस निर्णयको ठुकरा दियाथा। किन्तु इस अग्निपरीक्षासे महादेवका अंतःकरण सोनेके समान शुद्ध हो गयाथा और उनके चेहरेपर प्रसन्नताका गुलाब खिलने लगाथा।

महादेवभाईकी पच्चीस वर्षकी साधनाके बाद पच्चीस वर्षका यज्ञ शुरु हुआथा। जिसमें उन्होंने अपनी आत्माकी आहुति दीथी। उन्होंने अपने आपको गांधीजीके लिए समर्पित कर दियाथा, तो गांधीजीने भी उनके मानसपर आधिपत्य कर लियाथा। महादेवभाईने स्वयं शून्यवत् होकर गांधीजीके व्यक्तित्वमें अपने आपको मिला दियाथा। गांधीजीके परमभक्त होने और उसके साथ तादात्म्य साधनेका पूरा प्रयास करने के साथ महादेवभाईका व्यक्तित्व स्वतंत्र था। अंग्रेजी भाषापर उनका अद्भुत प्रभुत्व था। लॉर्ड मोर्लीकी अंग्रेजी पुस्तक 'ऑन कॉम्प्रोमाईज' के अनुवादके लिए एक हजार रुपयेका पुरस्कार मिलना, इसका प्रमाण है। अंग्रेजीके अतिरिक्त हिन्दी, बंगाली, संस्कृत और

मराठी भाषाके वे ज्ञाता थे। गुजराती और अंग्रेजी का साहित्य उन्होंने गांधीजीसे भी अधिक पढ़ाथा। गांधीजीने स्वयं कहाथा कि "मेरे संदेशको उनके सिवा अच्छीं तरहसे समझा सकनेवाला गुजरातीमें दूसरा नहीं है।" (पृ. ३६६)। वे सफल भाषन्तरकारके साथ-साथ समीक्षक भी थे। उनकी 'साकेत' की समालोचना उन्हें एक साहित्य समीक्षकके रूपमें प्रस्थापित करतीहै। (पृ. ५८२) भक्ति और सत्यनिष्ठाका संयम उन्हें एक श्रेष्ठ पत्रकारके पदपर आसीन करताहै। महादेव उपदेशक नहीं थे, रिपोर्टर थे और रिपोर्टके साथ-साथ परिस्थितियोंका विश्लेषण भी करतेथे। यही कारण है कि उनकी रिपोर्टोंके आधारपर इतिहास लिखे गयेहैं। डायरी तथा चरित्र-साहित्यमें उन्होंने योगदान दियाहै। इनका अध्ययन विशाल था। विश्व के महान् साहित्यकारोंकी पुस्तकोंका उन्होंने गहरा अध्ययन कियाथा। वे गांधीजीके भाष्यकार तथा परामर्शदाताभी थे। उनके इसी प्रकारके व्यक्तित्वके कारण ही तो कभी-कभी गांधीजीसे मतभेद भी होतेथे।

जीवनी-साहित्यकी दृष्टिसे गुजराती साहित्यमें 'वीर नर्मद' (विश्वनाथ भट्ट), 'नरसैंयों; भक्त हरिनो' (कनैयालाल मुनशी) तथा 'मणिलाल नभुभाई द्विवेदीनुं जीवनचरित्र' (अंबालाल पुराणी) जैसी महत्त्वपूर्ण कृतियोंको छोड़कर उपेक्षित ही रहाहै। इनका भविष्य निराशाजनक ही प्रतीत हो रहाथा, किन्तु 'अग्निकुंडमां ऊगेलुं गुलाब' इसमें आशाकी किरण अवश्य सिद्ध होतीहै।

कुछ गुजराती आलोचकोंने हिन्दीमें जो स्थान 'आवारा मसीहा' का है, वही स्थान गुजरातीमें 'अग्निकुंडमां ऊगेलुं गुलाब' का है, सिद्ध करनेकी कोशिश कीहै, जो उचित नहीं हैं। क्योंकि विष्णु प्रभाकरजी ने 'आवारा मसीहा' में अपराजेय कथाशिल्पी शरच्चंद्रकी जीवनी बहुत ही रोचक, सजीव एवं मार्मिक रूपमें प्रस्तुत कीहैं। वैसी रोचकता व मार्मिकता 'अग्निकुण्डमां ऊगेलुं गुलाब' में नहीं है। प्रभाकरजीको कभी भी शरत्‌बाबूके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआथा। एक 'बाहरके व्यक्ति' होनेके नाते 'आवारा मसीहा' की रचना करनेमें उन्हें चौदह वर्ष लगेथे; फिरभी जिस आस्थासे उन्होंने शरच्चंद्र को समझाहै, वह अप्रतिम है। जबकि नारायण देसाई तो महादेवभाईके बेटे हैं; फिरभी वे प्रभाकरजी के समान महादेवकी जीवनीको प्रस्तुत नहीं कर सके। इसका कारण यह है कि जहाँ प्रभाकरजीने शरच्चंद्रके जीवनसे संबंधित विवरणोंको ज्योंका त्यों न रखकर उन्हें अलंकारमयी, काव्यात्मक सरस शैलीमें कथात्मक रूपमें प्रस्तुत कियाहै, जबकि नारायण देसाईने महादेवभाईके जीवनसे संबंधित विवरणोंको ज्योंका त्यों ही रख दियाहै।

जीवनी अनुभवोंका शृंखलाबद्ध कलात्मक चयन है। इसमें वे हीं घटनाएं पिरोयी जातीहैं, जिनमें संवेदनाकी गहराई हो, भावोंको आलोड़ित करनेकी शक्ति हो। (आवारा मसीहा, पृ. ६) । इस दृष्टिसे 'आवारा मसीहा' सफल कृति है; क्योंकि इसकी अभिव्यक्ति कलात्मक है। प्रभाकरजीने इसमें काल, देश, व्यक्ति और घटनाकी सीमाओंको तोड़कर अनुभूतियोंका सौंदर्यमें विक्षेपण कियाहै; क्योंकि प्रभाकरजी एक उच्चकोटिके साहित्यकार हैं। सर्जकत्वके बिना जीवनी लिखना आसान नहीं है। इसका अभाव 'अग्निकुंडमां ऊगेलुं गुलाब' में अवश्य अखरताहै।

'आवारा मसीहा' में एक ऐसे व्यक्तिका चरित्र वर्णित है, जो आवारा था, चरित्रहीन था, स्त्रियोंका मसीहा था, साहित्यकार था। जबकि 'अग्निकुंडमां ऊगेलुं गुलाब' का नायक गांधीजीके साथ बराबर जुड़ाथा। इस दृष्टिसे भी जो रोचकता 'आवारा मसीहा' में है, वह 'अग्निकुंडमां ऊगेलुं गुलाब' के लिए कठिन अवश्य थी, किन्तु असंभव नहीं। जीवनी और इतिहास लेखनमें स्पष्ट अंतर है। इन दोनोंमें नाम और समयकी सच्चाई होतीहै, फिरभी जीवनी रसयुक्त साहित्य है। अतः 'अग्निकुंडमां ऊगेलुं गुलाब' जीवनीसे अधिक इतिहास प्रतीत होताहै, वहीं 'आवारा मसीहा' शुद्ध जीवनी है, शरच्चंद्रके जीवनका इतिहास मात्र नहीं। यही कारण है कि हिन्दीमें ही वह नहीं, बल्कि, बंगाली, मराठी जैसी भारतीय भाषाओंमें सर्जित जीवनी-साहित्यमें 'आवारा मसीहा' सर्वोत्तम है।

यह तो स्पष्ट है कि जो कलात्मकता 'आवारा मसीहा' को एक प्रशिष्ट कृति सिद्ध करतीहै, वह 'अग्निकुंडमां ऊगेलुं गुलाब' में नहीं है। फिरभी यह कृति गुजराती जीवनी-साहित्यके लिए, अपनी कुछ मर्यादाओंके होते हुएभी, दिशा निर्देश अवश्य करती है। □

सौन्दर्यशास्त्रीय एवं साहित्यिक संवेदनाका सौष्ठव अध्ययन

मर्ढेकरांची कविता : स्वरूप आणि संदर्भ

कृतिकार : डॉ. विजया राजाध्यक्ष **समीक्षक : डॉ. गजानन चव्हाण**

डॉ. विजया राजाध्यक्षने मराठीमें समीक्षा तथा सर्जनशील लेखनके क्षेत्रमें विपुल मात्रामें लिखाहै। कहानी लेखिकाके रूपमें उनका कृतित्व संख्यामें अधिक तथा गुणात्मकतामें उच्च स्तरीय है। अबतक उनके पंद्रह कहानी-संग्रह (एक सौ सतासी कहानियां) प्रकाशित हुएहैं। उनकी 'वैदेही', 'कमल', 'पुरुष', 'हुंकार', 'जन्म' आदि कहानियां श्रेष्ठ कहानियोंमें गिनी जाती हैं। मराठीके श्रेष्ठ समीक्षकोंने उन्हें लक्षणीय कहानी लेखिकाके रूपमें सराहाहै। "मर्ढेकरांची कविता : स्वरूप आणि संदर्भ" (मर्ढेकरकी कविता: स्वरूप तथा संदर्भ) डॉ. विजयाजी द्वारा अपने शोधप्रबन्धका श्रमपूर्वक किया गया संशोधित रूप है। यह ग्रंथ लेखिका के लगभग सतरह वर्षके अथक परिश्रमका सुफल है। यह द्विखण्डात्मक ग्रंथ कई अर्थोंमें लक्षणीय है।

मर्ढेकरकी कविताएं कठिन, दुर्बोध बतायी जाती हैं। विद्वान् लेखिकाने अपने दीर्घकालीन अध्यवसाय तथा परिश्रमके बलपर, इन कठिन, दुर्बोध बतायी जानेवाली कविताओंका अर्थ स्पष्ट करनेका नम्र तथा ईमानदार प्रयास कियाहै। इस ग्रंथमें कविताओंकी अर्थाभिव्यक्तिकी भाषागत विविधतासे लेखिकाकी निष्ठा और विश्वसनीय स्पष्ट झलकतीहै। यदि उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि इस दुर्बोध कविताकी सारीकी सारी गुत्थियाँ सुलझ नहीं रहीहैं, वहांपर उन्होंने अपनी असमर्थता स्पष्ट जता दीहै। उन्होंने दुर्बोध लगनेवाली कविताओंके अर्थ लगानेमें किसी प्रकारकी खींचातानी नहीं की। अधूरे, अस्पष्ट अर्थका आवरण चढ़ाकर मर्ढेकरकी कविताको अधिक अस्पष्ट बोझिल एवं धूमिल बनानेका प्रयास उन्होंने नहीं किया। यही कारण है कि इस पूरे प्रयास में मर्ढेकरकी कविताको समझ लेनेकी ललक रखनेवाले साहित्यानुरागी, अध्यवसायी पाठकोंका कहींपर भी भ्रमभंग नहीं होता। इस ग्रंथको पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि मर्ढेकरकी कविताओंके आकलनकी यात्रापर निकले हुए पाठकोंको अपने मार्गके कई अवरोध बहुत सीमा तक हटे हुए-से प्रतीत होंगे।

डॉ. विजयाजीने ग्रंथके आरंभमें ही कहाहै कि बा. सी. मर्ढेकरकी कविता उन्हें प्रिय रहीहै, ललकारती रहीहै। अपने प्रिय कलाकारपर समीक्षात्मक एवं शोधपरक लेखन करते समय समीक्षकको कई संकटों का सामना करना पडताहै। उसे इस बातका ध्यान रखना पड़ताहै कि भाव-विह्वलताकी धारामें बहकर वह समीक्षा कलाकारके विवेचन, विश्लेषण, मूल्यांकन में अनुचित पक्षपात तो नहीं कर रहाहै? डॉ. विजया इस संकटसे बच गयीहैं। उन्हें अपने साथ अपने पाठकोंकी जिज्ञासा तृप्तिको, अपेक्षित आनंद-प्राप्तिकी चिन्ता है। यही कारण है कि मर्ढेकरकी कविताओंके आशय तथा अभिव्यक्तिके विवेचन-विश्लेषणमें असाधारण संतुलन तथा वस्तुनिष्ठता आ पायीहै। उनमें निष्कर्षों तक पहुंचनेमें न आग्रही हठधर्मिता दिखायी देतीहै न बोझिल पंडिताऊपन। पाठकोंकी चिन्तामें विवेचनको आत्यंतिक सरल बना देनेका भी भय बना रहताहै। परिणामतः शोधपरक लेखनकी अपेक्षित गरिमा प्रायः समाप्त हो जातीहै। डॉ. विजया इस आशंकासे भी बची हुईहैं। उन्होंने शोध-परक लेखन की उचित गरिमाको बनाये रखाहै। लेखिकाने अपने

अध्येता तथा शोधकर्ता, इन दोनों रूपोंको अच्छा निर्वाह कियाहै। उन्होंने कहाभी है—"अध्येता तथा अनुसंधाता—मेरे इन दो रूपोंने एक दूसरेको काटा नहीं, दोनोंने एक दूसरेके साथ संगति बैठायीहै। यह तालमेल मेरे लिए मर्ढेकरके अभिप्रेत समग्र अनुसंधानके लिए बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ।" (पृ. २५)।

इस लेखके आरंभमें ही यह बात रेखांकित की गयीहै कि डॉ. विजया राजाध्यक्षका मराठीमें कहानी लेखिकाके रूपमें एक विशिष्ट स्थान है। नारी-संवेदना पर लिखी गयीं उनकी कहानियोंने पाठकोंको प्रभावित कियाहै। इधर उनकी कहानियोंपर स्वतंत्र संगोष्ठियां भी हुईहैं। यहां प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि गंभीर शोधपरक लेखनमें लेखककी सर्जनशीलता कहांपर और किस रूपमें हो सकतीहै? 'मर्ढेकरांची कविता: स्वरूप आणि संदर्भ' के वाचनसे स्पष्ट होताहै कि डॉ. विजया जीके व्यक्तित्वका सर्जनशील रूप इस ग्रंथकी भाषा शैलीमें प्रतिबिंबित हुआहै। उनकी भाषा शैलीमें एक आकर्षण है जो निश्चय ही मर्ढेकरके काव्य-संसारके प्रति पाठकोंको भी आकर्षित करनेमें सहायक ही नहीं अपितु ठउसके साथ तादात्म्य स्थापित करनेमें सहायता मिलतीहै।

आलोच्य शोध-ग्रंथमें 'आशय सूत्रांचा शोध' (आशय-सूत्रोंकी खोज) शीर्षक अध्याय अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। यह प्रथम खंडका दूसरा अध्याय है जो आकार में सभी अध्यायोंसे दीर्घ (पृ. २८ से पृ. १३९) है। 'उपोद्घात' शीर्षक प्रथम अध्यायमें डॉ. विजया राजाध्यक्षने मर्ढेकरकी प्रत्येक कविताको आकलित करनेके अपने उद्देश्यपर प्रकाश डालते हुए कहाहै कि "प्रबंध-लेखनके लिए आवश्यक अध्ययन आरंभ हुआ। उसकी दिशा मोटे रूपमें यों थी—मर्ढेकरकी प्रत्येक कविताकी गुत्थीको सुलझाना, उनकी कविताओंपर समग्र रूपमें विचार करना, उनके साथ जुड़े हुए जीवनपरक संदर्भ की खोज करना तथा उन्हें अंग्रेजी एवं मराठीकी काव्य परम्पराओंके विस्तृत पटपर रखकर देखना।" (पृ. ४)। ऐसा करनेमें उन्हें मराठीके प्रसिद्ध लेखक समीक्षक श्री. पु. भागवतसे प्रेरणा प्राप्त हुई। भागवतजीने उन्हें परामर्श दियाथा "आप मर्ढेकरकी कविताओंपर यथासंभव विस्तारसे लिखिये, प्रत्येक कवितापर बहुत गहराईमें जाकर लिखिये" (पृ. दस, प्रास्ताविक)। डॉ. विजया राजाध्यक्षने इस परामर्शका अक्षरश: निर्वाह करते हुए मर्ढेकरकी कविताओंको आशय-सूत्रोंको सामने रखा है। वस्तुत: दुर्बोध कविताके आशय तक पहुंचना सरल कार्य नहीं है। इसमें कई साधनोंका आधार ग्रहण करना पड़ताहै। रचना-समय, कलाकारके व्यक्तित्वके निर्माणमें सहायक भौतिक वैचारिक परिवेश, कविकी व्यक्तिगत आशा-आकांक्षाएं, उसकी स्वभावगत विशिष्टताएं, उसका जीवन-दर्शन साहित्य दर्शन, उसकी समस्याएं और उन समस्याओंके निराकरणके संबंधमें उसके अपने उपाय, आत्मानुसंधानकी दृष्टि आदिमें से होते हुए ही कोई दुर्बोध कविताके सही आशय तक पहुंच सकताहै। डॉ. विजया राजाध्यक्ष प्रदीर्घ परिश्रम, पुन: पुन: किये गये संशोधन अध्यवसाय, धैर्यके बलपर यह कठिन कार्य संपन्न कर सकी हैं। उनकी अथक परिश्रमशीलताका सुफल है प्रस्तुत ग्रंथमें समाविष्ट 'आशय-सूत्रांचा शोध' शीर्षक दीर्घ एवं महत्त्वपूर्ण अध्याय। इसके वाचनसे स्थान-स्थानपर यह अनुभव होताहै कि लेखिकाकी दृष्टि अपने उद्देश्य से कभी हटी नहीं। हां, एक बात अवश्य है कि अपेक्षित लक्ष्य तक पहुंचनेके लिए उन्होंने आवश्यकतानुसार अलग-अलग मार्ग अपनायेहैं। जहां संभव हो वहां सीधे-सीधे आशयके केंद्र तक पहुंचनेका, और कभी एक ही कविताके आशयगत पर्यायोंको एकके बाद एक रखकर, उसके केंद्र तक पहुंचनेका। साथही उन्होंने मर्ढेकरकी कवितामें प्रतिबिंबित विचार यात्राके विविध मोड़ों-परिवर्तनोंको भी स्पष्ट कियाहै। उदाहरण स्वरूप कुछ पंक्तियां देखी जा सकतीहैं—"आणखी काही कविता' (कुछ और कविताएं) में इस परिवर्तन का प्रतिबिंब दिखायी देताहै। इन कविताओंमें सामाजिक जीवनके प्रश्नोंकी अपेक्षा भाव जीवनके, अनुभूतियों तथा आध्यात्मिक जीवनके संघर्षोंको अधिक प्रधानता प्राप्त हो गयीहै। 'कांही कविता' (कुछ कविताएं) के समयपर अपनेसे कुछ-कुछ दूर हटे हुए मर्ढेकर फिर एक बार अधिक प्रगल्भ बनकर अपनी ओर लौट आये। इस यात्रामें उनकी काव्यदृष्टि भी अधिक निश्चित होगयी।" (पृ. ३६)।

प्रथम खंडके तीसरे अध्याय—'मर्ढेकरांची काव्य शैली' (मर्ढेकरकी काव्य-शैली) पर लेखिकाने विस्तृत विवेचन कियाहै। यह विवेचन बहुआयामी है। उन्होंने सटीक उदाहरणों द्वारा मर्ढेकरकी काव्य-भाषाके विविध रूपोंपर प्रकाश डालाहै। मर्ढेकरकी काव्य-भाषाके

परिशिष्ट

लेखक-समीक्षक परिचय

[भाषाओंके अकारादि क्रमसे]

असमी

कृति : मोर जे किमान हेपांह (गीति-काव्य)

कवि : केशव महन्त।

जन्म : २० जनवरी १९२६, पिजिकाजान चाय बगीचा (शोणितपुर)। शिक्षा : गुवाहाटी विश्वविद्यालयसे स्नातकोत्तर उपाधि। कार्य : उच्च विद्यालयोंमें अध्यापन, सोवियत देशके असमिया संस्करणके मुख्य सम्पादक, गुवाहाटी वि. वि. के प्रकाशन अधिकारीसे पदसे १९८४में सेवानिवृत्त।

साहित्य क्षेत्र : मूल लेखमें कृतियोंका परिचय। इनके अतिरिक्त अनूदित : कवि (ताराशंकर बंद्योपाध्याय), किनो गोवालर जालि (संतोष कुमार घोष); गद्य : हेरायो हेरोवा नाइ, मिलन, प्रवाह, लुइत, नतुन साहित्य पत्रिकाओंका सम्पादन।

सम्पर्क : निगाजी पाम, अम्बिकागिरि नगर, गुवाहाटी-७८१०२४।

समीक्षक : डॉ. भूपेन्द्र राय चौधरी।

गुवाहाटी वि. वि.में हिन्दी विभागके रीडर, असमिया और हिन्दीमें लेखन। असमिया लोकसाहित्यकी भूमिका, ब्रजबुलि साहित्य मुकुर इत्यादि डेढ़ दर्जन पुस्तकें प्रकाशित।

सम्पर्क : ७२, विश्वविद्यालय परिसर, गुवाहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी-७८१०१४।

उड़िया

कृति : चलन्ति ठाकुर (कहानी)

कृतिकार : शान्तनुकुमार आचार्य।

जन्म : १९३३; रावेन शॉ कालेज कटकसे रसायन विज्ञानमें एम. एस-सी.। अध्यापक, प्रशासक, आचार्य, १९९२में उत्कल वि. वि.के कुलसचिवके पदसे अवकाश ग्रहण। नर किन्नर, शताब्दीर नचिकेता, मांत्रिनका शरे आदि उपन्यास तथा सर्पयान जैसे कथा-संग्रह उड़िया पाठकोंमें लोक-प्रिय।

सम्पर्क : प्लाट नं. ७८८, शहीदनगर, महर्षि दयानन्द मार्ग, भुवनेश्वर-७५१००७.

समीक्षक : डॉ. वनमाली दास

जन्म : १९२९; पुरी जिलेमें। जबलपुर वि.वि. उत्कल वि.वि. कटकमें शिक्षा। प्रशासनिक महाविद्यालयोंमें अध्यापन, अब सेवा निवृत्त। साहित्य क्षेत्रमें 'फकीरमोहन और प्रेमचन्द : एक तुलनात्मक समीक्षा (शोध प्रबन्ध), ओड़िया कृति और कृतिकार (पुरस्कृत), बेसुरी रागिणी (उपन्यास)।

सम्पर्क : प्लाट नं. ६३, सिरोपुर, भुवनेवर-७५१००१।

कन्नड़

कृति : कल्लु करगुव समय (कहानी)

कृतिकार : पी. लंकेश

जन्म : १९३५में शिमोगा जिलेमें। १९७१ तक बेंगलूरु वि.वि-के अंग्रेजी विभागमें प्राध्यापक। कर्नाटकके नव्य रचनाकार प्राय: अंग्रेजीके प्राध्यापक रहेहैं। १९८०में लंकेश साप्ताहिक (कन्नड़) का प्रकाशन प्रारम्भ किया, उसकी सफलतासे प्रेरित होकर प्राध्यापकीको नमस्कारकर पत्रकारिताके और सृजनात्मक लेखनमें। चार कथा संग्रह, दो उपन्यास, सात एकांकी, एक नाटक और एक कविता-संग्रह प्रकाशित।

सम्पर्क : ९, ईस्ट आंजनेय टेम्पल स्ट्रीट, पो. बा. ४१६, बसवन गुड़ी, बंगलोर-५६०००४।

समीक्षक : डॉ. टी. आर. भट्ट।

कर्नाटक वि.वि. में हिन्दी विभागमें प्राध्यापक।

सम्पर्क : प्रज्ञाश्री, [illegible]ल्याणनगर, धारवाड़-५८०००७।

कश्मीरी

कृति : केंह नतअ केंह (निबन्ध)

कृतिकार : सैयद रसूल पोम्पूर।

जन्म : १९४०, हसनपाड़ा (कश्मीर)। फारसीमें एम. ए. कामिल कश्मीरीपर शोध। गीतकार, बू

केवु किन्ह और खंदू काव्य संकलन। बावत-त-अलामत निबन्ध संग्रह। **सम्पर्क :** ५५, सदफ मोहल्ला सीकॉप, बिजबहेरी, कश्मीर-१९१२२४।

समीक्षक : डॉ. शिब्बनकृष्ण रैणा। **सम्पर्क :** २/५३७, अरावली विहार, अलवर-३०१००१।

कोंकणी

कृति : तरंगां (कहानी संग्रह)

कृतिकार : महाबलेश्वर सैल

जन्म : कारवाड़ (कर्नाटक)। उच्चतर माध्यमिक शिक्षाके बाद सैनिक जीवनमें प्रविष्ट। वहां से मुक्त होनेके बाद वरिष्ठ पोस्टमास्टर रूपमें कार्यरत। परन्तु पुस्तक-प्रेम तथा साहित्यिक रुचिके कारण चार नाटक लिखे, और दो कहानी-संग्रह।

सम्पर्क : पोस्टमास्टर, कारमोना, सलीटे, गोवा -४०३७१७.

समीक्षक : डॉ. चन्द्रलेखा डिसोजा

गोवा वि.वि.से पी-एच. डी.। विश्वविद्यालयके कोंकणी विभागमें व्याख्याता।

सम्पर्क : ४ शशि सदन, प्रथम तल, मुण्डिवेल, वास्को-डि-गामा (गोवा)-४०३८०२.

गुजराती

कृति : अग्निकुंडमां ऊगेलुं गुलाब (जीवनी)

कृतिकार : नारायनण देसाई

जन्म : १९२४, वलसाड। जीवनको अपनी पाठशाला मानकर औपचारिक शिक्षाको तिलांजलि। गांधीजीके अभिन्न सहयोगी पितृपाद महादेव भाईकी भांति सामाजिक न्यायके लिए पूरा जीवन भूदान आन्दोलन और भारतीय शान्ति सेना द्वारा संचालित विभिन्न सामाजिक कार्योंके लिए समर्पित कर दिया। गुजरातीके 'भूमिपुत्र' और हिन्दी के 'यकीन' पत्रोंके सम्पादनके अतिरिक्त विभिन्न विधाओंमें तीस पुस्तकें प्रकाशित।

सम्पर्क : सम्पूर्ण क्रान्ति विद्यालय, वेडदी-३९४६४१.

समीक्षक : डॉ. उत्तम एल. पटेल; अध्यक्ष हिन्दी विभाग, श्री वनराज आर्ट्स एवं कामर्स कॉलेज, धरमपुर (वलसाड)-३९६०५०.

तमिल

कृति : कादुकल् (उपन्यास)

कृतिकार : एस. वी. वेंकटराम

जन्म : १९२०, कुंबकोणम (तंजावूर)। अर्थशास्त्रमें स्नातक, हिन्दीमें विशारद। सम्पादन, लेखन तथा अनुवादसे जीवन आरम्भ। 'तेनी' और 'पालम', दो साहित्यिक पत्रिकाओंके माध्यम से नयी प्रतिभाओंको प्रोत्साहन तथा स्वयं रचनारत रहे। सात उपन्यास, सात कहानी संग्रह, दो उपन्यासिकाएं, दो निबन्ध-संग्रह, लगभग पचास जीवनियां लिखीं।

सम्पर्क : ३७, तोप्पु स्ट्रीट, कुंबकोणम-६१२००१।

समीक्षक : डॉ. एम. शेषन्।

आगरा तथा काशी हिन्दू वि. वि. वाराणसीसे हिन्दीमें एम. ए., पी-एच. डी.। सेवानिवृत्त हिन्दी प्राध्यापक।

सम्पर्क : प्लाट ७१०, डॉ. ए. रामास्वामी मुदालियर रोड, के. के. नगर (पश्चिम), मद्रास-६०००७८.।

तेलुगु

कृति : मधुरांतकम् राजाराम् कथलु (कहानी-संग्रह)

कृतिकार : मधुरान्तकम् राजाराम्

जन्म : १९३०, मोगराला (जि. चित्तूर)। अध्यापन कार्यसे सेवानिवृत्त। लगभग तेरह कहानी-संग्रह प्रकाशित (तीन सौसे अधिक कहानियां), तीन उपन्यास, पांच नाटक, चार नृत्य नाट्य, दो गीत संग्रह। एस.के. विश्वविद्यालय अनन्तपुरसे मानद डी. लिट्।

सम्पर्क : दमालचेरूवु (डा. घ.)—५१७१५२.

समीक्षक : डॉ. भीमसेन निर्मल

उस्मानिया वि.वि. के पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष। हिन्दी और तेलुगुमें अनुवादों सहित ४० कृतियां प्रकाशित।

सम्पर्क : १-१-४०५/७/1 गांधीनगर, हैदराबाद (आं.प्र.)

मणिपुरी

कृति : पुन्सिगी मरुद्यान (उपन्यास)

कृतिकार : अराम्बम बीरेनसिंह

जन्म : १९४७, काङबम लेइकाइ, इम्फाल। महाविद्यालयमें मणिपुरीके प्राध्यापक, संगीतमें रुचि। मणिपुरीमें पाच उपन्यास, वर्तमान छठा उपन्यास। पत्र-पत्रिकाओंमें भी लेखन।

सम्पर्क : काङबम लेइकाइ, इम्फाल-७९५००१।

समीक्षक : इबोहलसिंह काङ्जम, एवं देवराज

समीक्षक-द्वय मणिपुर वि.वि. के हिन्दी विभागसे संबद्ध और प्राध्यापक।

सम्पर्क : हिन्दी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय, कांचीपुर, मणिपुर-७९५००३।

मराठी

कृति : १ : मर्ढेकरांची कविता : स्वरूप आणि संदर्भ (अध्ययन-अनुशीलन)

कृतिकार : विजया राजाध्यक्ष

जन्म : १९३३, मिरज (महाराष्ट्र)। मराठी साहित्यमें पुणेसे एम.ए, बम्बईसे पी-एच. डी.। इस समय एस.एन.डी.टी. विश्वविद्यालयमें प्रोफेसर एमेरिटस। अबतक १६ कथा-संग्रह, तीन निबंध संग्रह, पांच आलोचना पुस्तकें प्रकाशित।

सम्पर्क : २ अभंग, साहित्य सहवास, बांद्रा (पूर्व), मुम्बई-४०००५१।

समीक्षक : डॉ. गजानन चह्वाण

हिन्दीमें स्नातकोत्तर उपाधि, पी-एच. डी। पुणे वि.वि.में हिन्दीके प्राध्यापक।

सम्पर्क : सी-५, प्राध्यापक निवास, पुणे विश्वविद्यालय, पुणे-४११००७।

कृति : २ : कन्यादान (नाटक)

कृतिकार : विजय तेंदूलकर

जन्म : १९२८, मुम्बई। शिक्षा एवं वृत्तिके लिए मुम्बई, पुणे, कोल्हापुरमें, १९६६से स्थायी रूपसे मुम्बईमें। नव्य रंगभूमिके प्रमुख आधार स्तंभ, प्रयोगशील रंगभूमिपर मुम्बईमें 'रंगायन', आविष्कार, अनिकेत एवं 'भारतीय विद्याभवन कला-केन्द्र' आदिमें सक्रिय। मूलतः नाटककार। 'घासीराम कोतवाल', 'शांतता कोर्ट चालू आहे' विशिष्ट कृतियां। लगभग १४ नाटक प्रकाशित। इनके अतिरिक्त ललित निबन्ध, लघुकथाएं।

समीक्षक : डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी

मुम्बई वि.वि.से एम.ए., पी-एच. डी.; हिन्दी विभाग गोवा वि.वि.में कार्यरत। अध्ययन-अनुशीलनसे संबद्ध चार कृतियां प्रकाशित। पत्र-पत्रिकाओंमें लेखन।

सम्पर्क : मेसिस, मोलाका सान्ताक्रुज, गोवा-४०३००५।

मलयालम

कृति : दैवतिण्टे कण्णु (उपन्यास)

कृतिकार : एन.पी. मुहम्मद

जन्म : १९२९, कालिकट (केरल)। लेखकके अबतक आठ उपन्यासों, नौ कहानी संग्रहों सहित तीस पुस्तकें प्रकाशित। 'केरल कौमुदी' में साप्ताहिक स्तम्भोंके लेखक, वरिष्ठ पत्रकार। सामाजिक जीवनमें भी क्रियाशील।

सम्पर्क : सुतालम, अष्चवट्टम, कोपीकोक्कोड़-६७३००७।

समीक्षक : डॉ. आरसु

कालिकट विश्वविद्यालयमें हिन्दी विभागमें प्राध्यापक। सम्पर्क : साकेत, स्पिनिंग मिलके पास, चेलेम्ब्रा-६७३६३४.

मैथिली

कृति : सागाक पौती (कहानी संग्रह)

कृतिकार : पंडित गोविन्द झा

जन्म : १९२३; इशापुर (मधुबनी)। श्री गोविन्द पंडितका मैथिलीके अतिरिक्त संस्कृत, हिन्दी, बंगला, नेपाली, उड़िया, असमियापर भी अधिकार। लेखन क्षेत्र भाषा विज्ञान, शब्द-कोश रचना, कथा साहित्य, नाटक, आलोचना, काव्य-शास्त्र और पिंगल तथा अनुवाद तक विस्तृत है। कहानी-नाटक क्षेत्रमें भी आपका विशिष्ट स्थान है।

सम्पर्क : मार्ग सं. ६, पटेलनगर (पूर्व), पटना-८०००२३.

समीक्षक : डॉ. विपिनविहारी ठाकुर

सम्पर्क : यूनिवर्सिटी प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग, उदयनाचार्य रोसड़ा कॉलेज, रोसड़ा (समस्तीपुर) बिहार।

राजस्थानी

कृति : अधूरा सुपना (कहानी संग्रह)

कृतिकार : नृसिंह राजपुरोहित

जन्म : १९२४, खांडप (बाडमेर)। पी-एच.डी.। राज्य और राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर श्रेष्ठ शिक्षक होनेका गौरव प्राप्त। पन्द्रहसे अधिक पुस्तकोंके लेखक, सम्पादक, अनुवादक। मूलतः कथाकार। गत १२ वर्षोंसे राजस्थानीकी मासिक पत्रिकाका सम्पादन।

सम्पर्क : पुरोहित कुटीर, डा. घ. खांडप, वाया मोकलसर, जि. बाड़मेर-३४३०४३।

समीक्षक : डॉ. जगमोहन सिंह परिहार

जोधपुर विश्वविद्यालयमें राजस्थानीके प्राध्यापक

सम्पर्क : मकान नं. ३ ग-१३, चौपासनी हाउसिंग बोर्ड, जोधपुर (राजस्थान)।

संस्कृत

कृति : जयन्तिका (उपन्यास)

कृतिकार : जग्गु बकुलभूषण

हमें हार्दिक दुःख है कि पत्रिका छपते छपते संस्कृत के इस प्रकाण्ड पण्डितका ९३ वर्षकी आयुमें देहावसान हो गया। स्वर्गीय श्री जग्गू बकुलभूषण का नाम जग्गु आलवार अयंगार था, परन्तु लेखक रूपमें वे यहां प्रकाशित नामसे प्रसिद्ध थे। संस्कृत और कन्नड़में उन्होंने [७० पुस्तकें लिखीं। वे कलकत्ता भारतीय भाषा परिषद्से भी पुरस्कृत हुएथे।

समीक्षक : डॉ. सत्यकाम वर्मा

डॉ. वर्मा दिल्ली विश्वविद्यालयमें संस्कृतके प्राध्यापक, बादमें विभागाध्यक्ष रहे। इनकी कृति भर्तृहरिके प्रसिद्ध ग्रंथ वाक्यपदीयका भाषावैज्ञानिक अध्ययन अपने समयकी बहुचर्चित और विद्वत्तापूर्ण कृति है। १९८५में वे गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयके कुलपति पदपर नियुक्त हुए। अब सेवानिवृत्त हो चुकेहैं, अबतक वैदिक साहित्य संबंधी आठ कृतियां प्रकाशित हो चुकीहैं।

सम्पर्क : ३३३ दीपाली, पीतमपुरा, दिल्ली-११००३४।

सिन्धी

कृति : हठयोगी (उपन्यास)

कृतिकार : तारा मीरचंदाणी

जन्म : १९३०, हैदराबाद (सिन्ध)। चार उपन्यास और कहानियों एवं नाटकोंके चार संग्रह प्रकाशित होनेके बादसे सिन्धी लेखनकी अग्रणी पंक्तिमें हैं। चार उपन्यास हैं : कुमायल कली (१९४९); उषा (१९५८), लहरून जी गूंज (१९९२) और हठयोगी।

सम्पर्क : ए-१, जैक ऐंक जिल एपार्टमैंट, नारंगीबाग रोड, पुणे-४११००१।

समीक्षक : प्रो. जगदीश लछाणी; श्रीमती चांदीबाई हिम्मतमल सुखाणी कॉलेज, उल्लासनगरमें हिंदी एवं सिन्धीके प्राध्यापक।

सम्पर्क : ७०१, राजीव एपार्टमैंट्स, गोल मैदान, उल्लास नगर, ठाणे-४२१००३।

हिन्दी

कृति-१ : अर्द्धनारीश्वर (उपन्यास)

कृतिकार : विष्णु प्रभाकर

जन्म : १९१२; मीरापुर (मुजफ्फरनगर)। मूलतः गद्यकार; उपन्यास, नाटक, कहानियां, निबन्ध, यात्रावृत्त, जीवनियां आदि विधाओंमें लेखन। शरच्चन्द्रकी प्रामाणिक जीवनी 'आवारा मसीहा'के लेखक रूपमें विख्यात और सम्मानित। इसका अनेक भाषाओंमें अनुवाद। लगभग छः दशकके अथक रचनाकार्यके परिणामस्वरूप पचहत्तरसे अधिक रचनाएं प्रकाशमें आयीहैं।

समीक्षक : डॉ मूलचंद सेठिया

'प्रकर' के सम्मानित और प्रतिष्ठित समीक्षक। राजस्थान विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागसे सेवा निवृत्त प्राध्यापक।

सम्पर्क : ८/२७६, विद्याधरनगर, जयपुर-३०२०१२।

कृति-२ : चैत्या (काव्य)

कृतिकार : नरेश मेहता

जन्म : १९२२, शाजापुर (मालवा)। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे स्नातकोत्तर उपाधि। लगभग ३० प्रकाशन, १३ काव्य-संकलन, सात उपन्यास, पांच कहानी संग्रह, दो नाटक, दो एकांकी तथा आलोचना कृतियां। विभिन्न राज्य सरकारों और संस्थाओंसे सम्मानित एवं पुरस्कृत।

सम्पर्क : निदेशक : प्रेमचन्द सृजनपीठ, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म. प्र.)।

समीक्षक : डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

सनातन धर्म महाविद्यालय, मुजफ्फरनगरमें हिन्दी विभागके अध्यक्ष।

सम्पर्क : १८६/१२, आर्यपुरी, मुजफ्फरनगर-२५१००१।

भारत सरकारका डाक विभाग

जनसाधारणको सताने और पीड़ित करनेका विभाग

आप स्वयं अनुभव कर सकते हैं कि :

१. पिछले ८-९ महीनेसे पोस्टकार्ड नहीं मिलते
२. २०, २५, ३५, ६०, ७५ पैसोंके टिकठ नहीं मिलते
३. केवल पैसे जमा करनेका धन्धा किया जाता है, भुगतानके समय चक्कर कटवाये जातेहैं।

अब स्थानीय डाकघरोंने जनसाधारणको सतानेके नये कार्य शुरू कियेहैं

१. स्थानीय डाकघरोंमे वी पी पी लेना पर्याप्त समयमे बन्द हैं

२. अब डाकघरोंने पंजीकृत डाकसे भेजे जानेवाले बुक-पंकेट लेनेसे मना करना शुरू कर दियाहै
इस कार्यके लिए वे मीलों दूर बड़े डाकघर का पता देतेहैं। समय-पैसा नष्ट करके पहुंचनेपर बड़ा डाकघर बताताहै कि यह तो स्थानीय डाकघरमें होना चाहिये।

३. इस देशका धन और समय नष्ट करनेका डाक विभाग अव्यावहारिक उपाय कर रहा है।

'प्रकर' की ओरसे प्रचारित

महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों और पुस्तकालयोंके लिए

'प्रकर–शुल्क'

प्रति अंक : ८.०० रु. एक वर्ष : ८०.०० रु. दो वर्ष : १५०.०० रु.

तीन वर्ष : २२०.०० रु. पांच वर्ष : ३६०.०० रु. दस वर्ष : ७२५.०० रु.

- विदेशोंमें समुद्री मार्गसे : एक वर्ष २००.०० रु.
- विदेशोंमें हवाई डाकसे : एक वर्ष ४८०.०० रु.
- राशि बैंक-ड्राफ्ट अथवा मनीआर्डरसे भेजें। दिल्लीसे बाहरके चैकमें १३.०० रु. जोड़ें।
- राशि 'प्रकर' के नामसे भेजें.

व्यवस्थापक 'प्रकर', ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७.

'पुरस्कृत भारतीय साहित्य'

प्रस्तुत अंकके साथ "पुरस्कृत भारतीय साहित्य" विशेषांक वार्षिक शृंखलाका बारहवां अंक है। इसके साथ पूरक रूपमें नवम्बर ९३ अंक भी प्रकाशित है। भारतीय साहित्यमें समग्र रूपसे जिस प्रवृत्तिके दर्शन होते हैं, उसके अन्तर्गत उसमें अपनी प्रादेशिक और क्षेत्रीय विशिष्टता होते हुए भी समग्र भारतीय साहित्यकी एकात्मक अन्तश्चेतनाके दर्शन होतेहैं और अन्तःस्फूर्तिके समान स्रोत प्रबल रूपसे उभरकर दृष्टिगोचर होतेहैं। यह भी लक्षित किया जा सकताहै कि समग्र भारतीय साहित्य राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक प्रभावों एवं रूप-शैली-शिल्प, चिन्तन (बहुधा व दग्रस्त चिन्तन) यूरोपसे आन्तरिक और प्रचुर रूपसे प्रभावित है।

न हिन्दी, न अन्य भारतीय भाषाओंके साहित्यका इस दृष्टिसे योजनाबद्ध रूपमें अध्ययन प्रस्तुत हुआ है, उसके भारतीय साहित्यपर चेतनात्मक प्रभावकी सामान्य चर्चा भी नहीं हुई। फिर भी, 'प्रकर' सभावित अध्ययनकी चेतनाको जागृत करनेके लिए इन विशेषांकोंके माध्यमसे प्रयत्नशील है।

अबतक पूरक अंक सहित इन बारह विशेषांकोंमें विभिन्न भारतीय भाषाओंके ग्रन्थोंपर जो समीक्षा-सामग्री प्रस्तुत हुई है, उनकी संख्या इस प्रकार है :

भाषा	ग्रन्थ संख्या	भाषा	ग्रन्थ संख्या	भाषा	ग्रन्थ संख्या
असमी	१०	डोगरी	१०	मराठी	१३
उड़िया	१३	तमिल	१३	मलयालम	१०
उर्दू	३	तेलुगु	११	मैथिली	१२
कन्नड़	१३	नेपाली	९	राजस्थानी	१२
कश्मीरी	६	पंजाबी	११	संस्कृत	९
कोंकणी	११	बंगाली	९	सिन्धी	११
गुजराती	१४	मणिपुरी	१२	हिन्दी	३५

सभी अंकोंकी कुल पृष्ठ संख्या : १३०० — कुल समीक्षित ग्रन्थ २२७

इन ग्रन्थोंकी समीक्षाओंमें न केवल भारतीय भाषाओंकी एकात्मकता के दर्शनके साथ विदेशी साहित्यके स्पष्ट, प्रबल और गहरे (अनेक बार प्रचारात्मक) प्रभावका भी साक्षात्कार होताहै, जोकि हिन्दी तथा भारतीय भाषाओंकी गहरी अनुकरणी प्रवृत्तिका संकेत है। साहित्यिक दृष्टिसे वैज्ञानिक विश्लेषणके लिए यह सामग्री सहायक है।

१९८३ से अबतक प्रकाशित 'पुरस्कृत भारतीय साहित्य' विशेषांकोंके पृथक्-पृथक् मूल्य इस प्रकार हैं : ८३—२०.०० रु.; ८४—२०.००; ८५—२०.००; ८६—३०.००; ८७—३०.००; ८८—३०.००; ८९—३५.००; ९०—३५.००; ९१—३५.००; ९२—४०.००; ९३—४०.०० रु.; नवम्बर'९३—१०.००; ९४—४०.०० रु.।

अध्ययन और शोधकी दृष्टिसे यह सामग्री प्रत्येक पुस्तकालयमें संग्रहणीय है।

सभी बारह अंकोंका डाकव्यय सहित मूल्य : ३७५०.०० रु.

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार : मुद्रक : संगीता कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा रायसीना प्रिंटरी चमेलिया रोड, दिल्ली-६।
प्रकाशन स्थान : ए-८/४२ राणा प्रतापबाग, दिल्ली-७ दूरभाष : ७११३७६३